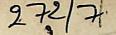
7.1 (F) (-) (A) (P);







\* अोश्म् \*

अथ वेदांगप्रकाश

तत्रत्यः प्रथमो भानः प्रति

# वणाँचारणाशिचा

पाणिनिसुनिञ्जणीता

श्रीमत्स्वामिद्यानन्द्सरस्वतीकृतव्याख्यासहिता

पठनपाठनव्यवस्थायां प्रथमं पुस्तकम्।

अजमेरनगरे वैदिक-यन्त्रालये मुद्रिता।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है, क्योंकि इसकी रिजप्टरी कराई गई है।

÷916

्स्प्रचदाः १,६७,२६,४६,०४०

विक्रमीय संवत् २००७

# भूमिका

मुक्त को इस पुस्तक का प्रकाश करना आवश्यक विदित इसिलये हुआ है। कि आजकल देवनागरी वर्णों के उचारण में बहुधा जो २ गड़बड़ हुई है उस उस को लोड़ कर यथायोग्य वर्णों का उचारण मनुष्य करें। जैसे ह्या, इसमें ज्+ज्+आ, ये तीन अच्चर मिले हैं, इन का उचारण भी जकार जकार और आकार ही का होना चाहिये, किन्तु ऐसा न हो कि जैसे दािचणात्य क्षीग अर्थात् द्राविड़, तैलक्क, कारणाटक और महाराष्ट्र दिवान, गुजराती लोग ग्याँन और पञ्चगौड़ ग्यान ऐसा अशुद्ध उचारण अन्ध परम्परा से वेदादिशास्त्रों के पाठ में भी करते हैं। ऐसे ही पञ्चगौड़ पाय: प के स्थान में स का और कोई कोई ख का और य के स्थान में ज का उचारण करते हैं। वैसे ही बङ्गाली लोग प और स के स्थान में भी श का उचारण करते हैं। यह अन्ध परम्परा नष्ट होकर शुद्धोचारण की परम्परा होनी योग्य है।

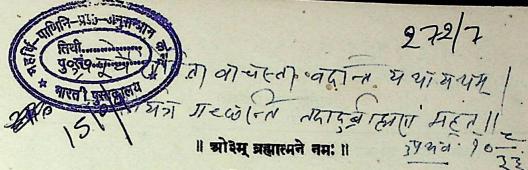
श्रीर जैसे पाणिनिस्त शिचा में तिरसठ श्रचर वर्णमाला में माने हैं, उन की गणना पूरी करने के लिये कई एक लोगों ने 'कुं, खुं, गुं, घुं' इन चार को यम मान के तिरसठ श्रचर पूरे किये हैं। भला यहां विचारना चाहिये कि जब पूर्वोक्त यम हैं तो 'चुं, छुं, छुं, छुं, टुं, टुं' इत्यादि यम क्यों न हों। श्रीर जो कोई कहे कि 'पलिक्की, चल्ल्वाः, जग्ग्मिः, जच्चनः' इत्यादि में 'क्, ख्, ग्, घ्' ये वर्ण यम कहाते श्रीर प्रातिशाख्य में भी प्रसिद्ध हैं, तो क्या इस बात को वे नहीं जानते कि वे वर्णन्तर कभी नहीं हो सकते, क्योंकि वे तो कवर्ग में पढ़े ही हैं।

तथा अपाणिनीय शिक्ता को पाणिनिकृत मान के पाठ किया करते और उस को वेदाङ्ग में गिनते हैं, क्या वे इतना भी नहीं जानते कि 'अध शिक्तां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा'। अर्थ — मैं जैसा पाणिनि मुित की शिक्ता का मत है वैसी शिक्ता करूंगा। इस में स्पष्ट विदित होता है कि यह प्रन्थ पाणिनि मुित का बनाया नहीं किन्तु किसी दूसरे ने बनाया है। ऐसे २ भ्रमों की निवृत्ति के लिये बड़े परिश्रम से पाणिनिमुनिकृत-शिक्ता का पुस्तक प्राप्त कर उन सूत्रों की सुगम भाषा में व्याख्या करके वर्णोच्चारण विद्या की शुद्ध प्रसिद्धि करता हैं, कि मनुष्यों को थोड़े ही परिश्रम से वर्णोच्चारणिवद्या की प्राप्ति शीध्र हो जावे।

इस प्रन्थ में जो २ बड़े श्रज्ञारों में पाठ है, वह २ पाणिनिमुनिकृत, श्रौर मध्यम श्रज्ञारों में श्रष्टाध्यायी श्रौर महाभाष्य का पाठ, श्रौर जो २ छोटे श्रज्ञारों में छुपा है वह मेरा बनाया है, ऐसा सर्वत्र समक्षना चाहिये॥

इति भूमिका समाप्ता॥

इ॰ दयानन्द सरस्वती (काशी)



# श्रथ वर्गोच्चारगाशिचा

--

( प्रश्न ) वर्ण वा अत्तर किनको कहते हैं ?

१-( अत्तर ) अत्तरं नद्मरं विद्यादश्रोतेर्वा सरोऽक्षरम् । वर्णे बाहुः पूर्वसूत्रे किमर्थग्रुपदिश्यते ॥ स्माउद्याम

महाभाष्य ७० १ । पा० १ । जा० २ ॥

मञ्जूष्य (श्रद्धारं नद्धारम् ) जो सर्वत्र <u>ज्याप्त</u> जिन का कभी विनाश नहीं होता, (षर्गी बाहु: पूर्वसूत्रे ) श्रथवा जिनको पूर्वसूत्र में वर्गा श्रीर श्रद्धार कहते हैं, (श्रियात् ) उनको प्रयत्न से जानें।

( प्रश्न ) किसलिये इनका उपदेश किया जाता है ?

२-( उत्तर ) वर्णक्षानं वाग्विषयो यत्र च ब्रह्म वर्चते । तद्यीमिष्टबुद्धयर्थे लघ्वर्थे चोपदिश्यते ॥

्रकोऽयमद्गरसमाम्रायो वाक्समाम्रायः पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमस्डितो वेदितच्यो त्रह्मराशिः सर्वेबदपुरयफलावाप्तिश्चास्य ज्ञाने भवति ।।

महाभाष्य ७०१। पा०१। छा०२॥

मनुष्य (यत्र) जिसमें (ब्रह्म च) शुन्द ब्रह्म वेद और प्रब्रह्म को प्राप्त हों, (वाग्विषय:) और वे जो वागी का विषय अर्थात् (वर्ग्झानम्) वर्णों का यथार्थ विद्यान है उसको जान सकें, (तद्र्थम्) इस इष्ट बुद्धि अर्थात् वर्णों का यथार्थ अभीष्ट द्वान और स्वल्प प्रयत्न से महालाभ को प्राप्त होने के लिए अन्तरों का अभ्यास उच्चारण की रीति प्रसिद्ध की जाती है।

सो यह श्रद्धारों का श्रच्छे प्रकार कथन वाक्समाम्नाय है, श्रर्थात् श्रपने शब्द-रूपी पुष्प फलों से युक्त चन्द्र और ताराओं के समान सुशोमित श्राकाश में स्थित राशि:=शब्दों का समुदाय श्रह्मराशि जानने योग्य है, श्रीर इसके यथार्थक्षान में सम्पूर्ण वेदों का फल प्राप्त होता है। इसमें वर्णों के ठीक २ उच्चारण से सुनने में प्रीति और श्रम की निवृत्ति होती है, इसलिए यह वर्णोच्चारण विद्या श्रवश्य जाननी चाहिये।

१. ब्राष्ट्राध्यायी के ब्राइटिंग् ब्रादि स्त्रों के व्याख्यान में यह कारिका है, व्याकरण की अपेक्षा में शिक्षा पूर्वसूत्र और उस में भी 'तमक्ररं॰' इस की अपेक्षा में पूर्व 'ब्राकाशवायु॰' इस सन्न में को व्याक्यान ॥ मितिरिया - २-२ । अट १-१५४-१४ ; ४. ४८, २ मित्रेमु ड्यारणां नामात ? जिल्ला नानितन प्रयत्नन का 68 यह के भिर्म ड्यारणां नामात ? जिल्ला नानितन प्रयत्निन का 68 यह के भा: परितहन का हितालारि पात का ते : प्रथानित प्रतिकारित का

(उत्तर) आकाशवायुप्रभवः शरारात्म सुबरम् पर्भ सा शाब्दः ॥१॥

श्राकाश श्रीर वायु के संयोग से उत्पन्न होनेवाला, नामि के नीचे से अपर उठता हुश्रा जो मुख को प्राप्त होता है, उसको 'नाद' कहते हैं। वह कएठ श्रादि स्थानों में विभाग को प्राप्त हुश्रा वर्ण भाव को प्राप्त होता है, उसको 'शब्द' कहते हैं। निर्माण को प्राप्त हुश्रा वर्ण भाव को प्राप्त होता है, उसको 'शब्द' कहते हैं। निर्माण को प्राप्त होता है, उसको 'शब्द' कहते हैं।

अ-आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युद्धके विवद्या । इन्छिल निर्मा निर्म

जीवात्मा वृद्धि से अर्थों की संगति करके कहने की इच्छा से मन को युक्त करता, विद्युत्कप मन जठराग्नि को ताइता, वह वायु को प्रेरणा करता और वायु उर:स्थल में विचरता हुआ मन्द स्थर को उत्पन्न करता है।

(प्रश्न) शब्द का स्वंद्धप कैसा है, किस फल को प्राप्त करता और किन पुष्पों से सेवित है ?

५-(उत्तर) तमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रं गुहाशयं सम्यगुशन्ति किस्ती सन्नेयसा चाभ्यदयेन चैव सम्यक् प्रयुक्तः पुरुषं युनक्ति ॥२॥

(विप्र:) विद्वान् लोग (तम्) उस आकाशवायु प्रतिपादित (अद्वरम्) नाशरिहत (गुहाशयम्) विद्यासुशिक्तासिहत बुद्धि में स्थित (परम्) अत्युक्तम (पित्रम्) गुद्ध (ब्रह्म) गुद्धराशि की (सम्यक्) अञ्छे प्रकार (उशन्ति) प्राप्ति की कामना करते हैं, ब्रोर (स एव) वही (सम्यक् प्रयुक्तः) अञ्छे प्रकार प्रयोग किया हुआ शब्द (अभ्युद्येन) शब्द आत्मा मन (च) श्रौर स्वसम्बन्धियों के लिये इस संसार के सब सुख तथा (श्रेयसा) विद्यादि ग्रुभ गुलों के योग (च) श्रौर मुक्तिसुख से (पुरुषम्) मनुष्य को (युनिक्त) युक्त कर देता है। इसलिये इस वर्णोचारण की श्रेष्ठ शिक्ता से शब्द के विद्यान में सब लोग प्रयत्न करें।

#### शब्द का लच्या

६-श्रोत्रोपर्लिब्ध्वेद्धिर्निर्माद्यः प्रयोगेणाभिष्वतित आकाशदेशः शब्दः ॥

महाभाष्य अ०१। पा०१। सू०२। आ०२॥

यह 'अइउण्' सूत्र की व्याख्या में लिखा है कि (श्रोत्रोपलब्धि:) जिसका

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

किमिद् मुच्यारण नोमिते ! विवदा तान्तरेन प्रयत्नेन को छयस्य वाये: प्रारत्य कण्डला त्वादि प्रतिष्वातः मुधा- स्तः स्वाने वेतिष्वाताप वर्ताणिक व्यविरिति । न्या दर्धन १ - २ - १ - पर वर्गतायन

थनः 726 पर निर्देश माणियारणशिवा

कान इन्द्रिय से ज्ञान (वुद्धिर्निर्प्राह्यः) श्रीर बुद्धि से निरन्तर प्रद्वण (प्रयोगेणाभि-ज्वितः) जो उच्चारण से प्रकाशित होता तथा (श्राकाशदेशः) जिसके निवास का स्थान श्राकाश है (शब्दः) वह 'शब्द' कहाता है।

( प्रश्न ) वर्णमाला में कितने वर्ण हैं ?

७-( उत्तर ) [ वर्णास् ] त्रिषष्टिः ॥ ३ ॥

तिरसठ हैं। श्रौर वे श्रकारादि वर्णों में विभक्त हैं। जैसे-

## अकारादि स्वरों का स्वरूप

ह्रस्व	दीर्घ	प्खुत	कवर्ग—क खग घ छ।	
স্থ	त्रा	श्र ३	चवर्ग—च छ ज भ ज। टवर्ग—ट ठ ड ढ स्।	
. इ	chos.	इ	्तवर्ग—तथद्धन। पवर्ग-पफवभम। ३०	83
उ	ऊ	ड ३	त्रस्य—यं रत्तव। भ	1
ऋ	艰	ऋ ३	_ ऊष्म—शषसह।: ५	4
त्तृ	0	त्तृ ३	श्रयोगवाहरूपं	4
0	. <b>U</b> .	प३	ं विसर्जनीय 🔰 🖔 हस्व	63
0	ù	पे ३		
0	त्र्रो	ऋो ३	ं त्रनुस्वार छ त्रीर यह ऋत्	
0	श्रो	श्री ३	इनको चार यम भी क	

उक्त वर्णों में अवर्ग के वर्ण अकार आदि 'स्वर' और कवर्ग आदि वर्गों के वर्ण 'व्यञ्जन' कहाते हैं। स्वर वर्ण शब्दों में शुद्धस्वरूप से भी रहते और व्यञ्जनों के साथ में मात्रारूप से भी आते हैं। मात्रारूप स्वरों में जब व्यञ्जन मिलाये जाते हैं तब प्रत्येक व्यञ्जन वारह प्रकार से कहा जाता है, उसका स्वरूप और संयोगचक (जिससे कि व्यञ्जन का परस्पर सम्बन्ध विदित होता है) आगे लिखते हैं—

#### बारह अचरों का स्वरूप

क्	क्	क्	क्	क्	क्	क	क्	क्	क्	क्	क्
क्	ऋा	1	室.	उ	ऊ	प्	क( / ए	ऋो	क्	ऋं	क् श्रः
T	TT	f.	9	9	6	1	1 4	f	7		:
<b>क</b>	का	कि	की	<b>3</b>	क्	के	कै	को	कौ	कं	कः

#### संयोगचक्रम्

क् य् श्र-क्य	ज्ञ्ञ-श	क् ऋ-छ	क् व् श्र-क
क् चू अ-क्च	ह य् ऋ-हा	क् ऋ-कृ	क्ष्श्र-स
कूर्श्च-क	ह व् अ-ह	क् ल-क्ल	श य् अ श्य

जैने यह ककार का स्वरों के साथ मेल करके स्वरूप दिखलाया गया है, वैसे ही खकारादि वर्णों का स्वरों के साथ मेल और स्वरूप का विद्यान बुद्धि से पढ़ने पढ़ाने वालों को लिख लिखा कर ठीक २ करना चाहिये।

#### स्वरों का लच्चग्

द्र—स्वयं राजन्त इति स्वराः ॥ महा० द्य० १। पा० २। सू० २६। घा० १॥ किन के उच्चारस में दूसरे वर्सों के सद्दाय की अपेक्षा न हो, वे 'स्वर' कहाते हैं।

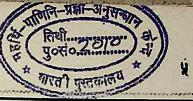
# ह स्वरों की संज्ञा

६-ऊकालोऽज्मूस्वदीर्घप्तुतः ॥ अ०१। पा०२। सू०२७॥

स्वरों की हस्य दीघं और प्लुत भेद से तीन संझा हैं। इनके उद्यारण समय का लक्षण यह है कि जितने समय में अङ्गुष्ठ के मूल की नाड़ी की गति एक वार होती है उतने समय में हस, उससे दूने काल में दीघं, और उसके तिगुने काल में प्लुत का व्यारण करना चाहिये। और स्वरों के उदात्तादि भी गुण हैं।

१०-वच्चैकदात्तः ॥ अ०१।२।२६॥
अर्थभ्वनि से 'उदात्त'। और—
११-नीचैरनुदात्तः ॥ अ०१ |२।३०॥
नीचे स्वर से 'अनुदात्त' बोला जाता है।
१२-समाहारः स्वरितः ॥ अ०१।२।३१॥
उदात्त और अनुदात्त स्वरों को मिलाकर बोलना 'स्वरित' कहाता है।
१३-ह्रवं लघु ॥ अ०१।४।१०॥
इस्त स्वर की 'लघु' संज्ञा। और—
१४-संयोगे गुरु ॥ अ०१।४।११॥
जो दो वा अधिक व्यञ्जनों का संयोग परे हो तो पूर्व हस्त अच् की 'गुरु' संज्ञा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative



होती है। जैसे 'विप्र:' यहां वकार में इकार की गुरु संज्ञा है क्योंकि इसके परे

१५-दीर्घंच॥ अ०१।४।१२॥ और दीर्घकी भी 'गुरु' संका है।

१६ - हलोऽनन्तराः संयोगः ॥ अ० १ । १ । १७ ॥

श्रनन्तर श्रर्थात् श्रचों का जो व्यवधान उससे रहित हलों की 'संयोग' संका है।

#### व्यञ्जन का लच्गा

भूम पर्

१७-भन्नम्भवति व्यञ्जनमिति ।। म० भ० १। पा० २। सू० २६। आ० १।। जिन का उच्चारण विना स्वर के नहीं हो सकता वे 'व्यञ्जन' कहाते हैं।

### उच्चारण करनेवालों के गुण

१८-माधुर्य्यमच्चरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः । धेर्ये लयसमर्थे च पडेते पाठका गुणाः ॥

(माधुर्यम्) वर्णी के उच्चारण में मधुरता (श्रव्यास्तः) भिन्न २ श्रव्यार (पद्च्छेदः) पृथक् २ पद् (तु) श्रीर (सुस्तरः) सुन्दरध्वनि (धेर्यम्) श्रीरता (च) श्रीर । लयसमर्थम् ) विराम यथा सार्थकता श्रीर जैसा हस्त दीर्घ प्लुत, उदास श्रमुदास स्त्रित स्तर, स्पर्श श्रादि श्राभ्यन्तर श्रीर विवारादि बाह्य प्रयत्न से श्रपने २ स्थानी में वर्णी का उच्चारण करना तथा सत्यभाषणादि भी वर्णी के उच्चारण करनेवालों के ग्रस्त हैं।

### स्वरों के उच्चारण में दोष

१६-प्रस्तं निरस्तमविलिम्बतं निर्हतमम्बूकृतं ध्मातमथो विकस्पितम् । सन्दष्टमेग्गीकृतमर्द्धकं द्रुतं विकीर्णमेताः स्वरदोषमावनाः॥ महाभाष्य श्र० १। पा० १। श्रा० १॥

(प्रस्तम्) जैसे किसी वस्तु को मुख से पकड़ कर बोलना (निरस्तम्) जैसे किसी वस्तु को मुख से प्रहण करके फेंक देना (श्रविलिम्बतम्) जिस का उच्चारण पृथक् २ करना चाहिये उसको वर्णान्तर में मिलाके बोलना (निर्हतम्) जैसे किसी को धका देना (श्रम्बूकृतम्) जैसे मुख में जल पर के बोलना (ध्मातम्) जैसे कर्म करे धुनना वा लोहार की भाठी के समान उच्चारण करना (विकिन्पतम्) जैसे कर्म करके

बोलना (सन्द्ष्म्) जैसे किसी वस्तु को दांतों से काटते हुए बोलना (एग्रीकृतम्) जैसे हरिण कूद के चलते हैं वैसे ऊपर नीचे ध्वनि से बोलना ( अर्द्ध कम् ) जितने समय में जिस वर्ण का उचारण करना चाहिये उसके आधे समय में बोलना ( द्रुतम् ) त्वरा से बोलना ( विकीर्णम् ) जैसे कोई वस्तु विखर जाय वैसा उचारण करना, ये सब दोष स्वरों के उचारण करनेहारों के हैं।

२०-अतोऽन्ये व्यव्जनदोषाः । शशः षष इति मा भूत् । पलाशः पलाष इति मा भूत् । मञ्चको मञ्जक इति मा भूत् ।। महाभाष्य अ०१। पा०१। आ०१।।

व्यञ्जनों के उचारण में भी दोषों को छोड़ कर बोलना चाहिये। जैसे (शशः) इन तालव्य शकारों के उचारण में (षष इति मा भूत्) मूर्डन्य षकारों का उचारण करना (पलाशः पलाषः) यहां भी पूर्ववत् जानना (मञ्जकः) कोई इस च के स्थान में (मञ्जकः) ज का उचारण करे, इत्यादि व्यञ्जनों के उचारण करनेहारों के दोष कहाते हैं। इसिलिये जिस २ ग्रज्जर का जो २ स्थान प्रयत्न ग्रोर उचारण का कम है वैसा ही उस २ का उचारण करना योग्य है।

(प्रश्न) इस प्रन्थ में कितने प्रकरण हैं ?

२१-(उत्तर) स्थानमिदं करणमिदं प्रयत्न एषो द्विघाऽनिलः स्थानम्। पीडयति वृत्तिकारः प्रक्रम एषोऽथ नाभितलात् ॥४॥

स्थान, करण, श्राभ्यन्तर प्रयत्न, बाह्य प्रयत्न, स्थान में वायु का ताइन, वृत्तिकार, प्रक्रम श्रोर नाभि के श्रधोभाग से वायु का उत्थान, ये श्राठ (प्र) प्रकरण कम से इस प्रस्थ में हैं।

#### अथ प्रथमं प्रकरणम्

२२-श्रकुहविसर्जनीयाः कण्ट्याः ॥ ४ ॥

त्रा, ग्रा, ग्रा, कु अर्थात् क, ख, ग, घ, छ, ह त्रीर : विसर्जनीय इन वर्णी का कएठ स्थान है। त्रर्थात् जो जिह्ना का मूल कएठ का श्रप्रमाग काकल्क के नीचे देश है उस कएठ स्थान से इनका शुद्ध उच्चारण होता है।

२३-इविसर्जनीयावुरस्यावेकेषाम् ॥ ६ ॥

कई एक श्राचार्थों का ऐसा मत है कि हकार श्रोर : विसर्जनीय का उचारण उरस्थान श्रर्थात् करठ के नीचे श्रीर स्तनों के ऊपर स्थान से करना चाहिये।

२४-जिह्वामूलीयो जिह्वयः ॥ ७ ॥

श्रीर वे ऐसा भी मानते हैं कि जिसलिये जीभ के मूल से इस जिहामूलीय का उचारण होता है इसलिये यह जिहामूलीय कहाता है।

# २५-कवर्ग ऋवर्णश्च जिह्नयः॥ ८ ॥

तथा उन का यह भी मत है कि जिस कारण कवर्ग और ऋवर्ण अर्थात् इस दीर्घ और प्लुत का जिह्नासूल भी स्थान है, इससे इनको जिह्ना की जड़ में से भी बोकना अग्रुंद्ध नहीं।

२६-सर्वसुखस्थानमुवर्णभित्येके ॥ ६ ॥

जिसलिये अवर्ण का उच्चारण सब मुख में करना शुक्क है, इसलिये कोई आचार्य अवर्ण को सर्वमुखस्थान वाला कहते हैं।

२७-कण्ठयानास्यमात्रानित्येके ॥ १०॥

तथा कई एक आञार्यों का मत ऐसा भी है कि जिन २ वर्णों का कएट स्थान है, उन सब का उच्चारण मुखमात्र में होना भी अशुद्ध नहीं।

२८-इचुयशास्तालव्याः ॥ ११ ॥

जो इ, ई, इ३, चु अर्थात् च, छ, ज, भ, अ, य और श हैं, इनका तालुस्थान अर्थात् दांतों के ऊपर से उचारण करना चाहिये। जैसे च के उचारण में जिस स्थान में जैसी जीभ की किया करनी पड़ती है यैसे शकार का उचारण करना योग्य है।

२६-ऋदुरवा सूर्द्धन्याः ॥ १२ ॥

ऋ, ऋ, ऋ रे, दु अर्थात् ट, ठ, ड, ढ, ण, र और व का उचारण सूर्वास्थान अर्थात् तालु के ऊपर से करना चाहिये। जैसी किया ट के उच्चारण में की जाती है वैसी ही व के उचारण में करनी उचित है।

३०-रेफो दन्तसूलीय एकेषाम् ॥ १३ ॥

कई एक आचार्यों का ऐसा मत है कि र का उच्चारण दांत के मूल से भी

३१-दन्तमूलस्तु तवर्गः॥ १४॥

वैसे ही कई एक आचार्यों के मत में तवर्ग अर्थात् त, थ, द, ध और न का उचारण दन्तमूल स्थान से भी करना अच्छा है।

ः ३२-तृतुलसा दन्त्याः ॥ १५ ॥

त्तु, तु त्र्यात् त, थ, द, ध, न, त स्रीर स इन वर्णी का दन्तस्थान स्राधात् दांतों में जिह्ना त्वगा के उच्चारण करना, है।

२२─वकारो दन्त्योष्ठयः ॥ १६ ॥ ः विकास वित

# वर्णोच्चारणशिक्षा

३४-सृक्किणीस्थानमेके॥ १७॥

0

कई एक आवार्यों के मत में वकार को स्विक ग्रीस्थान से बोलना चाहिये। जो दाँत और श्रोष्ठ के बीच में स्थान है उसे 'सृक्किशी' कहते हैं।

३५-उपूपध्मानीया ओष्ठन्याः ॥ १८॥

ड, ऊ, ड३, पू अर्थात् प, फ, ब, भ, म अरेर १ इस उपध्मानीय का आंष्ठस्थान से उच्चारण करना ग्रुद्ध है।

३६-अनुस्वारयमा नासिक्याः ॥ १६॥

ल को छोड़ के " श्रीर ' श्रमुस्वार को नासिका से बोलना श्रद्ध है।

३७-क्रण्ठयनासिक्यमनुस्वारमेके ॥ २०॥

कंठ और नासिका स्थानवाले ङकार को कोई आचार्य अनुस्वार के समान केवल नासिकास्थानी कहते हैं।

३८-यमार्च नासिक्यजिह्नामूलीया एकेषाम् ॥ २१ ॥

कई एक म्राचाय्यों के मत से यम वर्ण म्रर्थात् छ र ये भी नासिका न्ह्रीर जिह्नामूल स्थानवाले हैं।

प्रदे कंड ग्रीर तालु से बोलने योग्य हैं। र्स्टिंग (तिलु) श्री भी को कंठ श्रीर श्रीष्ठ से बोलना श्रुद्ध है। १८ जिल्ह ४०-ओदौती कराठयौष्ठयौ ॥ २३॥

४१-ङञणनमाः स्वस्थाननासिकास्थानाः ॥ २४॥ उकारादि पांच वर्णों को स्व २ स्थान श्रीर नासिकास्थान से बोलना चाहिए।

४२-द्वे द्वे वर्णे सन्ध्यक्षराणामारम्भके भवत ज्ञात ॥ २५ ॥ सन्ध्यक्तर अर्थात् जो ए, ऐ, अो, अो हैं, इन में दो २ वर्ण मिले होते हैं। जैसे का, आ से इ, ई मिल केए। अ, आ से ए, पे मिल के पे। अ, आ से उ, ऊ मिल के ओ। अ, आ से ओ, ओ मिल के औ हो जाते हैं। जैसे एकार के आदि में अकार का कंठ और अन्त में इकार का तालुस्थान है, इसी प्रकार स्रोकार में प्रथम कएठ और दूसरा श्रोष्ठ स्थान है।

४३-सरेफ ऋवणः ॥ २६॥

जो रेफ के सहित ऋवर्ण है, उसको मूर्द्धास्थान में बोलना चाहिये॥ इति प्रथमं प्रकरणम् ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

2

### अथ द्वितीयं प्रकरणम्

श्रव स्थानों के कहने के पश्चात् दूसरे प्रकरण का श्रारम्भ करते हैं। इस में जैसी २ किया से जिस २ वर्ण का उच्चारण करना होता है, उस २ का वर्णन है। अ परन्तु यहां इतना श्रवश्य समस्ता है कि सब वर्णों के उच्चारण में जिह्या मुख्य साधन है, क्योंकि उसके विना किसी वर्ण का उच्चारण कभी नहीं हो सकता।

## ४४-जिड्वयतालव्यमूईन्यदन्त्यानां जिह्वा करणम् ॥ १ ॥

जिनका जिह्नामूल, तालु. मूर्जा श्रीर दन्तस्थान है, उनके उद्यारण में जिह्ना मुख्य साधन है। क्योंकि जिस २ वर्ण का जो २ स्थान कहा है उस २ में जिह्ना लगाने ही से उनका ज्यों का त्यों उद्यारण होता है। यह सामान्य स्त्र है, इसका विशेष विधान श्रागे कहते हैं।

### ४५-जिह्वामूलेन जिह्वयानां तचेषामभ्यासम ॥ २॥

जिन वर्णों का जिह्नामूल श्रभ्यास श्रर्थात् उचारण स्थान है, उन जिह्नामूलीय वर्णों का जिह्नामूल से स्पर्श करके उचारण करना चाहिये 🛭 ।

### ४६-जिह्वोपाग्रेण मूर्द्धन्यानाम् ॥ ३॥

जिन वर्णों का मूर्द्धास्थान कहा है, उनका उच्चारण जिह्ना के ऊपरले अप्रभाग से मूर्द्धा को स्पर्श करके करना चाहिये।

#### ४७-जिह्वाग्राधः करणं वा ॥ ४ ॥

इनके उचारण में दूसरा पत्त यह भी है कि जिहाप्र के अधोभाग से मूर्ख को स्पर्श करके उचारण करना योग्य है।

#### ४८-जिइवाग्रेण दन्त्यानास् ॥ ४ ॥

जिन वर्णों का द्न्तस्थान कहा है, उनका उचारण जिह्ना के अप्रभाग से दांतों को स्पर्श करके ही करना चाहिये।

#### ४६-इत्येतदन्तः करणम् ॥ ६॥

इस प्रकार से मुख के भीतर स्थानों में वर्णों की उच्चारण क्रिया जाननी चाहिये।

इति द्वितीयं प्रकरणम् ॥

अ इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि जिह्नाम्तीय वर्षों का जिह्नाम्स उचारण सामक उनके बिये है जिन्हो जाता प्रकार बोलाने का सम्मास होते ।।

### अथ तृतीयं प्रकरणम्

त्रब स्थान श्रीर करण के कहने पञ्चात् तीसरे प्रकरण का श्रारम्भ किया जाता है। इसमें आभ्यन्तर प्रयत्नों का वर्णन किया है।

५०-प्रयत्नोऽपि द्विविधः ॥ १ ॥

प्रयत्न भी दो प्रकार के होते हैं।

४१-आभ्यन्तरो बाह्यइच ॥ २ ॥

आभ्यन्तर और बाह्य।

४२-म्राभ्यन्तरस्तावत् ॥ ३ ॥

इन दोनों में से प्रथम आभ्यन्तर प्रयत्नों को कहते हैं।

**४३-स्पृष्टकरणाः स्पर्शाः ॥ ४ ॥** 

ककार से लेके मकार पर्यन्त २४ पन्नीस वर्णी का स्पृष्ट प्रयत्न है, अर्थात् जिह्ना से स्व २ स्थानों में स्पर्श करके इन वर्णी का उच्चारण करना शुद्ध है।

४४-ईषत्स्पृष्टकरणाः अन्तस्थाः ॥ ५ ॥

थोबे स्पर्श करके अन्तस्थ अर्थात् य, र, ज, व का उच्चारण करना चाहिये।

४५-ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः ॥ ६॥

जिसलिये ऊष्म अर्थात् श, ष, स, ह का अपने २ स्थान में जिह्ना का किञ्चित् स्पर्श करके शुद्ध उच्चारण होता है, इसलिये इनका ईषद्वितृत प्रयत्न है।

**४६-विवृतकरणा वा ॥ ७ ॥**.

श्रीर इसमें दूसरा पत्त यह भी है कि स्व २ स्थान को जीभ से स्पर्श के विना भी इनका उचारण करना शुद्ध है। इसितये श, ष, स, ह का विवृत प्रयत्न भी है।

४७-विवृतकरणाः स्वराः ॥ ८ ॥

जिसिकिये उक्त स्थानों से जीभ को श्रहाग रख के स्वरों का उचारण करना योग्य है, इसिकिये इनका विवृत प्रयत्न है।

¥द-संवृतस्त्वकारः ॥ ६ ॥

अकार का संवृत प्रयत्न है। क्योंकि इसका उचारण कगठ को संकोच करके होता है, परन्तु इस का कार्य करने के समय विवृत प्रयत्न ही होता है।

४६-इत्येषोऽन्तः प्रयत्नः ॥ १०॥

यह आभ्यन्तर प्रयत्नों का प्रकरण पूरा हुआ

CC-0, Panini Kanya Maha Voyalaya Collection. An eGangotri Initiative:

# अथ चतुर्थं प्रकरणम्

६०-अथ बाह्याः प्रयत्नाः ॥ १ ॥

5

श्रव इसके आगे चौथे प्रकरण में वर्णों के बाह्य प्रयत्नों का वर्णन करते हैं।

६१-वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसविसर्जनीयजिह्वामूळीयोपध्मा-नीया यमौ च प्रथमद्वितीयौ विवृतकण्ठाः इवासाऽनुप्रदानाश्चाः ऽघोषाः ॥ २ ॥

यहां वर्ग शन्द से कु, चु, दु, तु, पु इन पांचों का ग्रहण है। इनके दो दो वर्ण ग्रंथात् कवर्ग में क, ख, चवर्ग में च, छ, टवर्ग में ट, ठ, तवर्ग में त, थ, पवर्ग में प, फ, ऊष्मों में श, ष, स ग्रोर : विसर्जनीय, अजिहामूलीय, अविद्यासानीय, अज्ञेर चे दो यम, इन ग्राठारह (१०) वर्णों का विवृत कंठ ग्रायीत् कंठ को फैला श्वासानुप्रदान उच्चारण के पश्चात् श्वास को युक्त कर ग्रोर अघोष सूद्म ध्वनि की योजनारूप क्रिया करके इनका उच्चारण करना चाहिये।

#### ६२-एके अल्पप्राणा इतरे महाप्राणाः ॥ ३ ॥

पांचों वर्गों के प्रथम तृतीय श्रीर पंचम श्रर्थात् क, ग, ङ, च, ज, अ, ट, ड, ग्र, त, द, न, प, ब, म, य, र, ल, व, यम प्रथम तृतीय श्रर्थात् ७ ६तने सब श्रहपप्राण् श्रर्थात् येथोडे श्रीर ख, घ, छ, भ, ठ, ड, थ, घ, फ, म, श, ष, स, इ, भ, भ, भ, छ, छ श्रीर श्रकारादि स्वर ये सब महाप्राण् श्रर्थात् श्रिधक बल से बोले जाते हैं।

६३-वर्गाणां तृतीय चतुर्था अन्तस्था हकारानुस्वारो यमो च तृतीयः चतुर्थो नासिक्याश्च संवृतकण्ठा नादानुप्रदाना घोषवन्तरच ॥ ४॥

पांचों वर्गों के तीसरे और चौथे वर्ण अर्थात् ग, घ, ज, क, ह, ह, द, घ, ब, भ, अन्तस्थ अर्थात् य, र, ल, व, ह, अतुस्वार और तीसरे चौथे यम अर्थात् ळ तथा सानुनासिक अकारादि स्वर इनका संवृतकंठ प्रयत्न अर्थात् कंठ का संकोच (नादानुप्रदानाः) इनके उच्चारण में अव्यक्त ध्वनि और (घोषवन्तः) इनका उच्चारण गम्भीर शब्द से करना चाहिये।

## ६४-यथा तृतीयास्तथा पश्रमाः ॥ ५ ॥

वर्गों के तृतीय वर्णों के समान पश्चम वर्णे अर्थात् ङ, अ, ण, न, म के संवृतकंड, नादानुअवानः अधीरा को प्राप्त अधीरा का कि संवृतकंड, नादानुअवानः अधीरा को प्राप्त अधीरा का कि संवृतकंड

# ६५-म्रानुनासिक्यमेषामधिको गुणः ॥ ६॥

पूर्वोक्त ड, ज, ण, न, म को मुख से बोले पश्चात् नासिका से बोलना ही इन का आजुनासिक गुण श्रधिक है।

६६-शादय ऊष्माणः॥ ७॥

शादि त्रर्थात् श, ष, स, ह की ऊष्मसंक्षा श्रौर ये महाप्राण प्रयत्न से बोले जाते हैं।

६७-[स]स्थानेन द्वितीयाः॥ ८॥

जो पांच वर्गों के दूसरे वर्ण अर्थात् ख, छ, ठ, थ, फ हैं, वे सकार के समान महाप्राण प्रयत्न से बोलने चाहियें।

६८-हकारेण चतुर्थाः ॥ ६॥

वर्गों के चतुर्थं अर्थात् घ, स, ढ, ध, स इन पांच वर्णों का हकार के समान महाप्राण प्रयत्न होता है।

इति चतुर्थं प्रकरणम्॥

## अथ पञ्चमं प्रकरणम् ॥

६६-तत्र स्पर्शयमवर्णकरे। वायुरयःपिएडवत्स्थानमभिपीडयति। अन्तस्थवर्णकरे। वायुर्दारुपिण्डवद् । ऊष्मस्वरवर्णकरे। वायुरूर्णी-पिण्डवद् । उक्ताः स्थानकरणप्रयत्नाः ॥ १॥

सब मनुष्यों को उचित है कि जो स्पर्श = ककार से लेके मपर्यन्त पठचीस (२४) वर्ण और चार यम हैं, इन को प्रकट करने वाले वायु को लोहे के गोले के समान स्थान में लगा के अन्तस्थ वर्णों के बोलने में वायु को काष्ठ के गोले के समान स्थान में लगा के और शादि तथा बाईस (२२) स्वरों के उच्चारण में वायु को उनके गोले के समान स्थान में लगा के बोला करें। इस प्रकार जो स्थान करण और प्रयत्न कह चुके हैं, उनका झान अवश्य करें।

#### इति पञ्चमं प्रकरण्म् ॥

#### अथ षष्ठं प्रकरण्म

७०-अवर्णी हस्वदीर्घण्छतत्वाच्च त्रैस्वर्ग्योपनयेन चानुनासिक्य-भेदाच्च संख्यातोऽष्टादशात्मक एवमिवर्णीदयः॥ १॥

श्रव श्रकारादि वर्णों के भेद दिखाते हैं। श्रकार के उदात्त, श्रजुदात्तं श्रीर स्विरत भेद हैं। श्रीर जब इन एक २ के साथ हस्य उदात्त, हस्य श्रजुदात्त, हस्य स्विरत श्रीर इसी प्रकार दीर्घ श्रीर प्लुत के साथ लगाते हैं तब श्रकार के नव (१) भेद हो जाते हैं। श्रीर जब ये साजुनासिक भेदयुक्त होते हैं तब इन नव २ के श्रठारह २ भेद होते हैं। इसी प्रकार इकार श्रादि स्वरों में प्रत्येक के श्रठारह (१८) भेद समभने चाहियें। परन्तु—

७१ - लुवर्णस्य दीर्घा न सन्ति ॥ २॥ जिसक्तिये लुकार के दीर्घ भेद नहीं होते।

७२-तं द्वादशं भेदमाचक्षते ॥ ३॥ इसलिये लुकार को वारह (१२) भेद से युक्त कहते हैं।

७३-यद्दच्छादाब्देऽद्याक्तिजानुकरणे वा यदा दीर्घाः स्युस्तदा-ऽष्टाददाभेदं ब्रुवते क्लृपक इति ॥ ४॥

जिन लोगों के मत में यहच्छा शब्द होते हैं, वे जब उनका अशक्तिज के अतु-करण में प्रयोग करते हैं तब लुकार को दीर्घ मान के उस के भी अठारह (१८) भेद कहते हैं। जैसे 'क्लूपक' के इस प्रयोग में होते हैं।

७४-सन्ध्यत्त्राणां ह्रस्वा न सन्ति तान्यपि द्वादशप्रभेदानि ।।॥। जिसक्तिये सन्ध्यत्तर अर्थात् ए, ऐ, ओ, औ इनके ह्रस्व नहीं होते, इसकिये इनके भी बारह २ भेद होते हैं।

७१-अन्तस्था ब्रिंगभेदा रेफवर्जिताः सानुनासिका निरनुना-सिकाइच ॥ ६॥

श्रीर र को छोड़ कर अन्तस्थ अर्थात् य, ल, व ये तीन साजुनासिक यँ, लँ, वँ श्रीर निरचुनासिक य, लं, विशेद से दो प्रकार के होते हैं।

७६-रेफोब्मणां सवर्णा न सन्ति ॥ ७ ॥

जिसलिये र श्रीर ऊष्म श्रर्थात् श, ष, स, ह का कोई सवर्णी नहीं होता, इसलिये इनके परे किसी वर्ण के स्थान में इनका सवर्णी श्रादेश नहीं होता।

#### ७७-वर्गो वर्गेण सवर्णः॥ =॥

परन्तु कु, चु, दु, तु, पु इन पाँच वर्ग और य, ल, व इन तीनों की परस्पर सवर्ण संद्या मानी जाती है। जैसे ककार का सवर्णी खकार समक्षा जाता है, वैसे सर्वत्र समक्षना चाहिये।

इति षष्ठं प्रकरणम् ॥
—— × ——

# अथ सप्तमं प्रकश्णम्

्र ७८-इत्येष क्रमो वर्णानाम् ॥ १ ॥ यह पूर्व अकारादि वर्णी का क्रम कह के—

७६-तत्रैते कौशिकीयाः इलोकाः ॥ २ ॥

षष्ठ प्रकरण के विषय में कोशिक ऋषि के श्लोक हैं, उनमें से आगे कुछ विशेष विषयक श्लोक लिखते हैं।

८०-सर्वान्तेऽयोगवाहत्वाद्विसर्गादिरिहाऽष्टकः। अकार उच्चारणार्थी व्यञ्जनेष्वनुबध्यते ॥ ३३॥

विना संयोग के प्राप्त होने से यहां सब वर्णमाला के अन्त में विसर्ग आदि अष्टक= विसर्जनीय, जिह्नामूलीय, उपध्मानीय, अनुस्वार, चार यम, गिना जाता है और अलग इसकी प्राप्ति होती है, इससे विसर्गादि अष्टक अयोगवाह कहाता और वर्णमाला के वर्णों से अलग गिना जाता है। वर्णमाला के व्यञ्जनों में एक अकार अनुबन्ध किया है, वह उच्चारणमात्र के लिये है कि जिससे व्यंजन का स्पष्ट उच्चारण हो।

८१-४क×पयोः कपकारौ च तद्वर्गीयाश्रयत्वतः।
पिलक्कनी चर्ल्यनतुर्जिग्मिर्जघ्यनुरित्यत्र यद्वपुः॥
नासिक्येनोक्तं कादीनां त इमेऽयमाः।
तेषामुकारः संस्थानवर्गीयलक्षकः॥४॥

र जिह्नामूलीय और उपध्मानीय के साथ में जो ककार और पकार हैं वे तहगींयाअयत्व से हैं अर्थात् उनका कवर्ग और पवर्ग के परे विधान है, इस से उन के साथ में ककार और पकार हैं। पिलकक्नी आदि प्रयोगों में जो क् ख़् ग् घ़ इत्याकारक अंश नासिकास्थानीय न् न् म् न् वर्णों से अप्रकटित अर्थात् गृहीत नहीं होता है वह अयम अर्थात् यम नहीं और ककारादि वर्णों का जो उकार आता है वह संस्थानवर्गीय वर्ण अर्थात् उन वर्गों के सजातीय वर्णों का लक्षक है। जैसे कु, चु, दु, तु, पु इनमें प्रत्येक वर्ण के उकार के संयोग से वर्गमात्र का बोध होता है।

इति सप्तमं प्रकरण्म्।।

16.50

### अथाष्ट्रमं प्रकरणम्

८२-उक्ताः स्थानकरणप्रयत्नाः ॥ १ ॥

त्रव सब वर्णों में स्थान, करण और प्रयत्नों को कह चुके। अगले प्रकरण में स्थान आदि के लक्षण कहते हैं।

८३-यत्रस्था वर्णा उपलभ्यन्ते तत्स्थानम् ॥ २ ॥ ॰

'स्थान' उसको कहते हैं कि जहां से प्रसिद्ध होके वर्ण सुनने में आते हैं।

८४-येन निर्वृत्यते तत्करणस् ॥ ३ ॥

स्थानों में जीभ श्रौर प्राण के जिस संयोग से वर्णों का उच्चारण करना होता है, उसको 'करण' कहते हैं।

८४-प्रयतनं प्रयतनः॥ ४॥

जो वर्गों के उच्चारण में पुरुषार्थ से यथावत् क्रिया करनी होती है, वह 'प्रयत्न' कहाता है।

८६-नाभिप्रदेशात्प्रयत्नप्रेरितः प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमाक्रामन्तु-रश्चादीनां स्थानानामन्यतमस्मिन् स्थाने प्रयत्नेन विचार्यते ॥ ४ ॥

जो ऊपर को श्वास निकलता है उसको 'प्राण' कहते हैं। जो आत्मा के उच्चारण की इच्छा से विचारपूर्वक नाभि देश से प्रेरणा किया प्राणवायु ऊपर को उठता हुआ कएठ आदि स्थानों में से किसी स्थान में उत्तम यहा के साथ विचारा जाता है. अर्थात अकारादि वर्णों के पृथक २ उच्चारण में वायु के संयोग से विचारपूर्वक यथायोग्य किया करनी चाहिये।

सब मनुष्यों को उचित है कि जिस २ प्रकरण में जिस वर्ण के उधारण के लिये जो २ बात लिखी है उसको ठीक २ जानकर विद्यार्थियों को जना के शृष्दाद्वारों के प्रयोग ज्यों के त्यों कर प्रशंसित हो सदा श्रानन्द से युक्त रह श्रीर सब विद्यार्थियों को भी वर्णोञ्चारण शुद्ध कराकर श्रानन्द में रक्खो।

इत्यष्टमं प्रकरण्म् ॥

ऋतुरामाङ्कचन्द्रेब्दे माघमासे सिते दिले । चतुर्थी शनिवारेऽयं प्रन्थः पूर्तिं समागतः ॥ 1936 714 1116

इति श्रीमत्स्वामिद्यानन्द्सरस्वतीप्रगीतव्याख्यासहिता पाणिनीयशिद्धास्त्रसंप्रहान्विता वर्णोच्चारणशिद्धाः समाप्ता ॥

# वैदिक-पुस्तकालय में मिलनेयाली पुस्तकों की सूची

ऋग्वेदभाष्य ६ भाग मूल्य	भर)		ल्य ॥)
यजुर्वेदमाष्य सम्पूर्ण ,,	₹0)	शास्त्रार्थ फीरोजाबाद	1=)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ,,	₹)	शास्त्रार्थ काशी	-)11
, केवल संस्कृत	III)	वेदविरुद्धमतखयडन	1-)
	011-)	वेदान्तिध्वान्तनिवारण नागरी	=)
त्रष्टाध्यायी मृत	11=)	ं,, अंग्रेज़ी	-)11
अष्टाध्यायी माध्य पहिला खएड	३॥)	भ्रान्तिनिवारण	1-)
,, दूसरा खण्ड	३॥)	स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश नागरी	)111
पंचमहायश्वविधि	=)11	,, त्रंग्रेज़ी	)11
निरुक्त .	111=)	ऋग्वेद संहिता सजिल्द	8)
संस्कृतवाक्यप्रबोध .	=)	अथर्ववेद संहिता सजिल्द	3)
<b>च्यवहारमानु</b>	=)	यजुर्वेद संहिता सजिल्द	₹)
भ्रमोच्छेदन	=)11		(11)
<b>म</b> नुभ्रंमोच्छेदन	1 -)	चारों वेदों की अनुक्रमणिका	२।)
सत्यधर्मविचार (मेला चांदापुर)	=)	ईशादिदशोपनिषद् मृल	111)
श्रायोद्देश्यरत्नमाला नागरी	)111		8)
,, मरहठी	-)	बृहदारएयकोप्निषद् भाष्य	8)
;, 🗎 श्रंग्रेज़ी	-)	. यजुर्वेदभाषाभाष्य	ਸ)
गोकरुणानिधि 🐪 💛	=)	नित्यकर्मविधि 🕜	)111
स्वामीनारायग्रमतखएडन	1)	इवनमन्त्र	)1110
सत्यार्थप्रकाश	(11)	Life of Swami Dayanand Sar	aswati
अार्याभिविनय गुटका	=)	(English) by Har Bilas Sarda I	Rs. 12 -
,, मोटे श्रद्धरों की	11=)	Dayanand Commemoration Volume(English) superi	on 10 L
संस्कारविधि	111=)	" -do-antique paper Re	5/-/-

नोटः-डाकमइस्रल सब का मूल्य से अलग होगा।

प्रवन्धकत्ती, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर.



\* श्रो३म् \*

# अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यो द्वितीयो भागः

# सन्धिविषय:

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां प्रथमो भागः।

श्रीयत्स्वामिद्यानन्द्सरस्वतीकृतव्याख्यासहितः।

पठनपाठनव्यवस्थायां चतुर्थं पुस्तकम्।

श्रजमेरनगरे, वैदिक-यन्त्रालये मुद्रितः

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है, क्योंकि इसकी रजिस्ट्री कराई गई है।

सृष्ट्याब्दाः १,६७,२६,४६,०४६

नववीं बार }

विक्रमीय संवत् २००४

मूल्य

A of the standard of the stand



# अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यो द्वितीयो भागः

# सन्धिविषय:

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां प्रथमो भागः।

श्रीमत्स्वामिद्यानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः।

पठनपाठनव्यवस्थायां चतुर्थं पुस्तकम् ।

श्रजमेरनगरे, वैदिक-यन्त्रालये मुद्रितः

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है, क्योंकि इसकी रजिस्ट्री कराई गई है।

सृष्ट्यन्दाः १,६७,२६,४६,०४६

नववीं वार }

विक्रमीय संवत् २००४'

मूल्य

the first particularly of the to

। अनुविक्ताकरात्या । विक्राप्तिक प्रवासी विक्रा तीहे

। इस्टान्ड वेहम राज्यात्रकाराज्य

eratural productions and

Pinis de la Completa de la Completa

ग्राह्म

Asst palenteral

्रवार्थः । १०००

# भूमिका

यह सिन्धिविषय व्याकरण का प्रथम भाग है। मैंने यह पुस्तक इसिलिये बनाया है कि जिससे व्याकरण में जितना सिन्ध का विषय है, उसको पढ़नेहारे सुख से समभ लेवें। व्याकरण का यही प्रथम विषय है कि जिसमें अच् के स्थान में हल्, हल् के स्थान में अच् और हल् के स्थान में अच् और हल् के स्थान में अच् भी हो जाते हैं। विना सिन्ध-ज्ञान यह वात समभ में कभी नहीं आ सकती। इसके विना जो २ शब्द का प्रथम और पश्चात् सक्त होता है, वह २ समभ में कभी नहीं आ सकता। इसके विना पदार्थ-ज्ञान और वाक्यार्थज्ञान क्योंकर हो सकता है ? जब तक यह सब नहीं होता, तब तक मनुष्य का अभीष्ट प्रयोजन भी प्राप्त नहीं हो सकता।

इस ग्रंथ में लोक ग्रौर वेद का विषय सम्पूर्ण रक्ला है, परन्तु पूर्वापर के स्थान में जो आदेश जिस २ नियम से होते हैं, वह २ इसी ग्रंथ से समक्क लेना चाहिये। ग्रौर जो जो परिभाषा महाभाष्यस्थ हैं, उन सब की व्याख्या, उदाहरण, प्रत्युदाहरणसहित 'पिरिभाषिक' ग्रंथ में लिखी है, क्यों कि जो सिन्धविषयादि व्याकरणविषय के प्रन्थ क्रम से लह्य पर सब सूत्र घटा कर बनाये हैं, जिससे पढ़ने पढ़ानेहारों को कुछ भी क्लेश न हो। इसलिये जो कोई इन ग्रन्थों को पढ़ें वा पढ़ावें वे सब निम्निखितित रीति से पठनपाठन करें ग्रौर करावें।

जहां २ एक उदाहरण वा प्रत्युदाहरण लिखा है, उसके सदृश दूसरे भी उदा-हरण प्रत्युदाहरण ऊपर से पढ़ते पढ़ाते जायँ कि जिससे शीघ्र ही पूर्ण बोध्र हो जाय। इसमें तीन प्रकरण हैं—एक संज्ञा, दूसरा परिभाषा, तीसरा कार्य। इनमें से 'संज्ञा' उसको कहते हैं कि जिससे थोड़े परिश्रम करके महालाभ होवे। 'परिभाषा' उसको कहते हैं कि जो संज्ञादि सूत्रों के विषयों की सहायक होकर उसके विषय को निर्दोष करके परिपूर्ण कर देवे। 'कार्य' उसको कहते हैं कि जिससे यथायोग्य शब्दों का साधुत्व किया जाता है। इन तीनों विषयों को जो कोई ठीक २ समम लेगा उसको श्रम्रस्थ 'नामिक' श्रादि ग्रन्थों को शीघ्र उपस्थित करके वेद श्रीर लोकिक ग्रन्थों का भी बोध श्रनायास से होगा।

इस प्रन्थ में जो सूत्रों के आगे अंक हैं वे तो इसी प्रन्थस्थ सूत्रों की संख्या जनाने के लिये हैं, और अ० इस संकेत के आगे जो तीन अंक लिखे हैं, उनमें प्रथम अंक से अध्याय, दूसरे से पाद, तीसरे से सूत्र की संख्या समभी जाती है।

स्वामिदयानन्दसरस्वती.

#### \* श्रो३म् \* सचिदानन्दात्मने नमः॥

# अथ सन्धिविषयः

यह पठनपाठन की व्यवस्था में चोथा पुस्तक है। 'सिन्ध' उसको कहते हैं कि जिसमें पूर्वापर वर्णी को मिलाकर पद ग्रोर वाक्यों का उचारण करना होता है। इस ग्रन्थ में इसी विषय की व्याख्या होने से इसका नाम 'सिन्धविषय' रक्खा है।

(प्रश्न) शब्द नित्य हैं वा अनित्य ?

(उत्तर) नित्य हैं।

( प्रश्न ) जब नित्य हैं तो शब्दों में लोप, आगम और वर्णविकार क्यों होते हैं ?

( उत्तर ) 'सिद्धन्तुं नित्यशब्दत्वात् । सिद्धमेतत् । कथम् ? नित्यशब्दत्वात् । नित्यशब्दत्वात् । नित्यश्चदाः । नित्येषु संतामादैचां संज्ञा क्रियते न संज्ञ्या आदेचो माव्यन्ते' ॥

महाभाष्य अ०१। पा०१। सू०१६। आ०३॥

ये दोष नहीं आ सकते, क्योंकि जो सत्य है वही होता है और जो असत्य है वह कभी नहीं होता।

'अय युक्तं यिन्नत्येषु शब्देष्त्रादेशाः स्युः १ नाढं युक्तम् । शब्दान्तरैरिह् मिन्नत्वत्यम् । तत्र शब्दान्तराच्छब्दान्तरस्य प्रतिपत्तिर्युक्ता । स्रादेशास्तिहीमे मिनिष्यन्ति स्रागमकानां सागमकाः । तत्कथम् १

सर्वे सर्वपदादेशा दाचीपुत्रस्य पासिनः। एकदेशविकारे हि नित्यत्वन्नो पर्यतं ॥ १॥

महाभाष्य ऋ० १ । पा० १ । सूत्र ३४ । ऋा॰ ५ ॥

( प्रश्न ) क्या नित्य शब्दों में आदेशादि का होना युक्त है ?

(उत्तर) हां, क्योंकि शब्दान्तरों के स्थानों में शब्दान्तरों के प्रयोगमात्र करने को आरेशादि होते हैं। जैसे—'आदि+सु-अन्त+सु+ओ' इत्यादि के स्थानों में 'आयन्तों' इत्यादि और 'पुरुष+आम्' इत्यादि आगमरहित पदों के स्थानों में 'पुरुषाणाम्' ऐसे जुडागमसहित के प्रयोग किये जाते हैं। इसी प्रकार दान्ती के पुत्र पाणिनि आचार्य के मत में सब शब्दसङ्गातों के प्रयोगिविषय में शब्दान्तरों के सङ्घातों का उच्चारण किया जाता है, क्योंकि एकरेशविकार अर्थात् इकार के स्थान में यकार और यकार के स्थान में इकार आदि कार्य होने से शब्दों का नित्यत्व सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे आचार्य के स्थान में शिष्य का उपयोग पिता के स्थानपत्र पुत्र, रेवदत्त के अधिकार में यक्षदत्त आदि का ग्रहण होता है, तथा घोड़े के स्थान में बैल और बैल के स्थान में घोड़ा जोड़ा जाता है। यहां किसी का नाश होजाता है ?

'कार्यविपरिणामाद्वा सिद्धम् । अथवा कार्यविपरिणामात् सिद्धमेतत् । किमिदं कार्यविपरिणामादिति ? कार्यां बुद्धिः सा विपरिणम्यते'।।

महाभाष्य ऋ० १। पा०। १। सू० ७२। ऋा० ८॥

इन शब्दों के प्रयोग होने से भी वे अनित्य नहीं हो सकते, क्योंकि बुद्धि और वाणी की क्रिया ही का विपरिणाम अर्थात् अवस्थान्तर होता है, शब्दों का नहीं। क्योंकि जो शब्द अनित्य हों तो उनकी पुन: पुन: प्रसिद्धि नहीं हो सकती। जैसे कोई मनुष्य 'गौ:' इसको बोल के मौन अथवा अन्य शब्दों का उचारण करके कालान्तर में पुन: 'गो' शब्द का उचारण करता है, जो 'गो' शब्द अनित्य होता तो पुन: कहां से आता ? और क्या उचारण के पश्चात् बुद्धि में 'गो' शब्द नहीं रहता ? तथा क्या सर्वञ्च ईश्वर के ज्ञान में किसी शब्द अर्थ और सम्बन्ध का कभी अभाव भी होता है ?

इसिलिये वहां ऐसा समसना चाहिये कि 'गौ:' शब्द के उचारण में जब तक वाणी की किया गकारस्थ होती तब तक श्रोकार में नहीं, जब तक श्रोकार में रहती तब तक विसर्जनीय में नहीं, जब तक विसर्जनीय में होती तब तक श्रवसान में नहीं रहती है। इसी प्रकार सर्वत्र वाणी की किया ही का विपरिणाम जानना चाहिये, शब्दों में श्रवस्थान्तर नहीं।

'नित्याश्च शब्दाः । नित्येषु शब्देषु कूटस्थैरविचालिभिवर्धौर्भवितव्यमन्पायोपजन-विकारिभिः' ॥ महाभाष्य ऋ० १ । पा० १ । सू० २ । ऋा० २ ॥

इसिलिये शब्द नित्य हैं, क्यों कि जो २ शब्दों में वर्ण हैं वे कूटस्थ अर्थात् निश्चल हैं। जो उच्चारणिकया से ताड़ित वायु की चालना होने से आकाशवत् सर्वत्र स्थित शब्द सुने जाते हैं, सो पर्वत के समान कूटस्थ हैं। न इनका अपाय अर्थात् लोप, न आगम, न विकार और न कभी वे चलते, और आकाश का गुण होने से उसके समान शब्द भी नित्य हैं। इसिलिये जो २ शब्दों के विषय में लोप, आगम, वर्णविकार आदि की साधन-प्रक्रियां शास्त्रों में लिखी हैं, सो २ शब्द, अर्थ और संबन्ध के जानने के लिये हैं।

देखो यह वचन है:-

'कथं पुनरिदम्भगवतःपाणिनेराचार्थस्य लच्चणं प्रवृत्तम् १ सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे'।। महाभाष्य ऋ०१। पा०१। ऋा०१॥

व्याकरणादि शास्त्रों की प्रवृत्ति नित्य शब्द नित्य अर्थ और नित्य सम्बन्धों के जानने ही के लिये हैं। इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि इस 'सन्धि-विषय' का झान अवश्य करें और करावें। क्योंकि जब अनेक पद अथवा अत्तर मिल कर होने से उनका खरूप पहिचानने में नहीं आता, तब उन के ज्ञान के विना पद और पदार्थ का ज्ञान भी नहीं हो सकता, विना इसके प्रीति और व्यवहार की सिद्धि के न होने से सुखलाभ कैसे हो सकता है ?

#### ( प्रश्न ) व्याकरणादि शास्त्र पढ़ने के कितने प्रयोजन हैं ?

(उत्तर) रत्ता। ऊह:। त्रागम:। त्तघु। त्रसन्देह:। तेऽसुरा:०। दुष्ट: शब्द:०। यदधीतम्०। यस्तु प्रयुङ्के०। त्रविद्वांस:०। विभक्तिङ्कुर्वन्ति०। यो वा इमाम्०। चत्वारि०। उत त्व:०। सक्तुिव०। सारस्तिीम्०। दशम्यां पुत्रस्य०। सुदेवो त्रसि वरुण इति०। ये त्राठारह १८ प्रयोजन हैं।

इनके अर्थ:—(रहा) मनुष्य लोगों को वेदों की रह्मा के लिये ब्याकरणादि शास्त्र अवश्य पढ़ने चाहियें, क्योंकि इनके पढ़ने ही से लोप, आगम और वर्णविकार आदि का यथावत् बोध होकर वेदों की रह्मा कर सकते हैं।

( ऊहः ) वेदों में सब लिङ्ग और सब विभक्तिसहित शब्दों के प्रयोग नहीं किये हैं, उनका बोध व्याकरणादि शास्त्र के विज्ञानपूर्वक तर्क के विनायथावत् कभी नहीं हो सकता।

( आगमः ) सब मनुष्यों को अवश्य उचित है कि साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़कर यथोक्त किया करके सुखलाम को प्राप्त हों। सो व्याकरणादि के पढ़े विना कभी नहीं हो सकता, क्योंकि सब विद्याओं को प्राप्त करने में व्याकरण ही प्रधान है। प्रधान में किया हुआ पुरुषार्थ सर्वत्र लाभकारी होता है।

(लघु) मनुष्यों को अवश्य उचित है कि वेदादि शास्त्रों के सब शब्द, अर्थ और सम्बन्धों को जानें। सो व्याकरणादि के पढ़े विना <u>थोड़े परिश्रम</u> से पूर्वोक्त पदार्थों का सहज से यथावत् जानना नहीं हो सकता।

( श्रसन्देह: ) मनुष्य व्याकरणादि को पढ़ के ही शब्दार्थ-सम्बन्धों को निस्सन्देह जान सकता है।

(तेऽसुरा:०) जो मनुष्य व्याकरणादि शास्त्रों की शिक्षा से रहित होते हैं, वे हज्जा गुज्जा करके अप्रतिष्ठित होकर नीचता को प्राप्त हो जाते, और जो व्याकरणादि की सुशिक्षा से युक्त होते हैं, वे श्रेष्ठता से सम्पन्न होते हैं।

( दुष्ट: शब्द:० ) स्वर और वर्ण के विपरीत करने से शब्द दुष्ट और बज्र के समान होकर वक्रा के अभिप्राय को विपरीत कर देता है, और जो व्याकरणादि को पढ़ के यथावत् स्वर और वर्णोचारण करते हैं, वे ही पंडित कहाते हैं।

(यद्धीतम्०) जो मनुष्य अर्थज्ञान के विना पाठमात्र ही पढ़ते जाते हैं, उनके हृद्य में विद्यारूप सूर्य्य का प्रकाश कभी नहीं होता, और जो व्याकरणादि शास्त्रों को अर्थसिहत पढ़ते हैं, वे ही सूर्य्य के प्रकाश के समान विद्यारूप प्रकाश को प्राप्त होकर अन्य मनुष्यों को इनकी प्राप्ति कराके सर्वदा आनिन्दत रहते हैं।

(यस्तु प्रयुङ्गे॰) जो मनुष्य विशेष व्यवहारों में शब्दों के प्रयोग ज्यों के त्यों करते हैं, वे ही अनन्त विजय को प्राप्त होते, और जो ऐसा नहीं करते, वे सर्वत्र पराजित होकर सर्वदा दु:खित रहते हैं। ( ऋषिद्वांसः ०) जो विद्याहीन मनुष्य होते हैं वे सभा तथा बड़े छोटै मनुष्य के सङ्ग में भाषणादि व्यवहारों को यथावत् नहीं कर सकते । उनको विद्वानों की सभा में स्त्री के समान जिज्जत होना पड़ता. ऋौर जो विद्वान् होते हैं वे पूर्वोक्त व्यवहारों को यथावत् करके सर्वत्र प्रशंसा को प्राप्त होते हैं।

(विमक्तिं कुर्वन्ति॰) जो विद्वान् होते हैं वे ही यज्ञकर्म अथवा सभा के बीच में यथायोग्य विभक्तिसिंहत शब्दों के प्रयोग कर सकते, और जो व्याकरणादि शास्त्र को पढ़े नहीं होते वे इसमें समर्थ नहीं हो सकते हैं।

(यो वा इमाम्०) जो मनुष्य पद, स्वर और अच्चारों को शुद्धतापूर्वक उच्चारण करके अपनी वाणी को पवित्र करता है, वही यज्ञ और सभा आदि व्यवहारों में मान्य को प्राप्त होता है।

(चत्वारिक) जिसके श्रातमा में शब्दविया प्राप्त होती है, वही महाविद्वान् होकर श्रपने श्रोर श्रन्य सब मनुष्यों के कल्याण करने में समर्थ होता है।

(उत त्वः०) जो मनुष्य व्याकरणादि विद्या को नहीं पढ़ता. वह विद्यायुक्त वाणी के दर्शन से रहित होकर देखता और सुनता हुआ भी अन्धे और बहिरे के समान होता, और जो इस विद्या के खरूप को प्राप्त होता है, उसी को विद्या परमेश्वर से लेकर पृथिवी-पर्यन्त पदार्थों का खरूप यथावत् जना देती है।

(सक्तमिव०) जैसे चलनी से सक्तु को छानकर मैदा और भूसी अलग २ कर देतें हैं, वैसे जो पनुष्य विद्यायुक्त होते हैं वे सत्याऽसत्य का विवेक करके सत्य का प्रहृण और असत्य का त्याग ठीक २ कर सकते हैं।

(सारखतीम्०) जब मनुष्य श्रविद्वान् होते हैं, तब आन्तियुक्त होकर सभा श्रौर यज्ञशालादि के व्यवहारों में श्रनृतमाषण कर दूषित हो जाते, श्रौर जो व्याकरणादि शास्त्रों को पढ़कर वेदोक्त व्यवहारों को यथावत् करते हैं, वे ही सुभूषित होकर सर्वत्र प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं।

(दशस्यां पुत्रस्य॰) मनुष्यों को आवश्यक है कि अपने सन्तानों का नाम जन्म सें दशवें दिन शास्त्रोक्तरीति से रक्खें। परन्तु शास्त्रों के पढ़े विना नाम में दो वा चार अचर और वे वर्ण किस प्रकार के हों इत्यादि नहीं जान सकते। और जो विद्वान होते हैं वे तो शास्त्रोक्त प्रमाणों को जानकर उक्त व्यवहार को यथावत् कर सकते हैं।

(सुदेवो श्रसि वह्ण इति०) जैसे विद्वान् लोग सब विद्याश्रों को पढ़कर सत्य देव कहाते हैं, वैसे हम भी हों। इत्यादि प्रयोजनों के लिये शास्त्रों को पढ़ना सब मनुष्यों को श्रवश्य चाहिये।

यह श्रठारह १८ प्रयोजन यहां संदोप से लिखे हैं, किन्तु इनके प्रमाण श्रीर विस्तारपूर्वक 'श्रष्टाध्यायीं की भूमिका में लिखेंगे। सिन्ध और संहिता ये दोनों एकार्थ हैं। ( प्रश्न ) 'संहिता' किसको कहते हैं ?

( उत्तर ) 'पाः सन्निक्षषः संहिता । शब्दाविगमः, व्हादाविशमः, पौर्वापर्य-मकालव्यपेत सहिता' ॥ महाभाष्य ऋ० १ । पा० ४ । सू० १०८ । ऋा० ४ ॥

जहां पूर्व वर्ण वा पदों को पर के साथ उच्चारित शब्द ध्याने श्रीर काल का व्यवधान न हो, उसको 'संहिता' कहते हैं, िक जहां श्रद्धारों के साथ श्रद्धार, पदों के साथ पद श्रीर वाक्यों के साथ अक्य मिलाकर उच्चारण िकये वा िल के जाते हैं। जैसे—'श्र+श्र' ये दानों मिल कर 'श्रा', श्रीर 'श्र+इं मिल कर 'ए' इत्यादि श्रद्धारें, 'धर्मार्थकाममोद्धाः' इत्यादि पदों श्रीर 'श्रिमिनिले पुरोहितं यञ्चस्य देवमृत्विजम्' इत्यादि वाक्यों की संहिता कहाती हैं।

(प्रश्न) 'अवसान' किसको कहते हैं ?

( उत्तर ) विरामो असानम् ॥ अ०१। पा० ४। सू० १०६॥

जहां क्रिया ग्रौर वर्श का ग्रभाव तथा काल व्यवधान हो उसको 'श्रवसान' कहते हैं। क्योंकि 'वाक्य वक्त्रधानं हिं" वाक्य वक्ता के ग्रधीन होता है, चाहे संहिता करे, चाहे श्रवसान करे। परन्तु इसमें यह नियम समक्षना श्रवश्य है कि एकपद, समास श्रौर धातु तथा उपसर्ग के योग में तो संहिता ही करनी, श्रौर वाक्य में संहिता तथा श्रवसान दोनों पच्च ग्रुद्ध हैं। सो चार प्रकार का होता है— १—स्वर, २—हल्, ३—हल्स्वर, श्रौर ४—ग्रयोगवाह सन्धि।

१—'स्वरसिन्ध' उसको कहते हैं कि जहां दो वा श्रधिक खर मिलकर एक हो जाते हैं। जैसे—'श्र+श्र'=श्रा। 'श्र+इ'=ए इत्यादि। २—'हल्सिन्धि' उसको कहते हैं कि जहां हल् स परे हल का मेल हो जाता है। जैसे—कान्स्न्यम्। यहां 'ए+त्+स्+न्+य' मिले हैं। ३—'हल्खरसिन्ध' उसको कहते हैं कि जहां हल् श्रीर श्रच् का मेल होता

है। जैसे - 'क+ग्र'=क इत्यादि।

त्रीर ४—'त्रयोगवाहसन्धि' उसको कहते हैं कि जिसमें श्रच् श्रौर हल् के साथ जिह्नामूलीय उपध्मानीय छकार, श्रनुसार श्रनुनासिक श्रौर विसर्जनीय का मेल होता है। जिह्नामूलीय—देवदत्त किंद्वरोति; किंद्वर व्रवनित, इत्यादि उपध्मानीय—वालक प्रवित; वृत्त प्रकाति, इत्यादि। हस्य छकार—सछहितासि। दीर्घ छकार—तेषाछ सहस्रयोजने, इत्यादि। श्रनुस्वार—प्रशंसन्ति, इत्यादि। श्रनुनासिक—ताँश्चिनोति, इत्यादि। विसर्जनीय—परमेश्चरः, इत्यादि।

पढ़ने श्रीर पढ़ानेवाले ऐसी उत्तमरीति से इस को पढ़ें पढ़ावें जिससे संयुक्त शब्दों को यथावत् शीघ्र जानकर विद्या के ग्रहण करने श्रीर कराने में उपयुक्त होकर शास्त्रों के पढ़ने में सामर्थ्य को प्राप्त कर के सुखी हो जावें॥

# अथ संज्ञाप्रकरणम्

८७-अथ शब्दानुशासनम् ॥ १॥

शब्दानुशासन शास्त्र का अधिकार किया जाता है।

अर्थात् शब्दों को कैसे बनाना, बोलना श्रीर परस्पर सम्बन्ध करना चाहिये, इस प्रकार की शिचा का श्रारम्भ किया जाता है। यह प्रतिक्षासूत्र है।

श्रह उ ण्॥ २ ॥ ऋ ल क्॥ ३ ॥ ए श्रो ङ्॥ ४ ॥
ऐ श्रो च्॥ ४ ॥ ह य व र द ॥ ६ ॥ लण् ॥ ७ ॥
अ म ङ ण न म्॥ द ॥ भ भ ज् ॥ ६ ॥ घ ढ घ ष्॥ १० ॥
ज ब ग ड द श्॥ ११ ॥ ख फ छ ठ थ च ट न च्॥ १२ ॥
क प य्॥ १३ ॥ श ष स र ॥ १४ ॥ ह ल् ॥ १४ ॥
ये चौदह सूत्र वर्णोपदेश के लिये हैं।

इसको वर्णसमाम्नाय वा 'श्रच्चरसमाम्नाय' भी कहते हैं। शब्दविषय में जितने वर्ण हैं, वे सब ये ही हैं। इन चौदह सूत्रों में श्रन्त के चौदह वर्ण हलू पढ़े हैं, वे प्रत्याहार बनाने के लिये हैं॥

८८-हत्तन्त्यम् ॥ १६ ॥ १ । ३ । ३ ॥

उपदेश में धातु आदि के जो २ अन्त्य हल् अर्थात् व्यञ्जन वर्ण हैं, वे इत्संज्ञक हों। जैसे—ण् क् इत्यादि। 'उपदेश' प्रहण् इसिलये हैं कि—'अप्रिचित्' यहां त् की इत्संज्ञा न हो॥ १६॥

८६-श्रादिरन्त्येन सहेता ॥ १७ ॥ १ । १ । ७० ॥

जो २ इन सूत्रों में श्रादि वर्ण हैं, वे इत्संक्षक श्रन्त्य वर्णों के साथ संक्षा बनकर मध्यस्य वर्णों श्रोर श्रपने रूप को भी ग्रहण करानेवाले होते हैं।

जैसे—'श्र इ उ ण्' यहाँ आदि वर्ण श्रकार ण् के साथ 'श्रण्' संज्ञा को प्राप्त होता है, सो 'श्र इ उ' का श्राहक होता है। इसी प्रकार 'श्रच्' के कहने से 'श्र इ उ श्रुह ल ए ओ ए श्रो' वर्णों का प्रहण होता है। श्रोर जो श्रच् प्रत्याहार के बीच में 'ण् क् च्' श्रादि श्राते हैं, इनका प्रहण नहीं होता, क्योंकि चौदह सूत्रों के चौदह श्रन्त्य के हलों की इत्संद्रा होकर लोप होजाता है।

यहां व्याकरण के चौदह सूत्रों में जितने प्रत्याहार बनते हैं, उनको निम्नलिखित प्रकार से जानो। जैसे—

श्रकार से सात ७ प्रत्याहार—श्रण्; श्रक; श्रच्; श्रद्; श्रम्; श्रशः श्रल्।

इकार से तीन ३ प्रत्याहार—एकः, इचः; इणः। उकार से एक १ प्रत्याहार—ऐच।

एकार से दो १ प्रत्याहार—एकः, एचः। ऐकार से एक १ प्रत्याहार—ऐच।

हकार से दो २ प्रत्याहार—श्रणः, हलः।

यकार से पांच ४ प्रत्याहार—यणः, यमः, यञः, ययः, यदः, यदः।

वकार से एक १ प्रत्याहार—अमः। मकार से एक १ प्रत्याहार—म्यः।

ककार से एक १ प्रत्याहार—अमः। मकार से एक १ प्रत्याहार—मयः।

ककार से एक १ प्रत्याहार—अमः। अकार से एक १ प्रत्याहार—अशः।

भकार से एक १ प्रत्याहार—अषः। जकार से एक १ प्रत्याहार—अशः।

वकार से एक १ प्रत्याहार—वशः। जकार से एक १ प्रत्याहार—अशः।

वकार से एक १ प्रत्याहार—श्रवः। जकार से एक १ प्रत्याहार—अशः।

वकार से दो २ प्रत्याहार—स्यः, अदः। चकार से दो २ प्रत्याहार—चयः, चरः।

शकार से दो २ प्रत्याहार—शरः, शलः।

शकार से दो २ प्रत्याहार—शरः, शलः।

ये सब मिलकर बयालीस ४२ प्रत्याहार बनते हैं॥ १७॥

६०-वृद्धिरादैच् ॥ १८ ॥ १ । १ ॥ (म्य) (म्र) विक्रा दीर्घ आकार और पेच् प्रत्याहार पे औ, इनकी वृद्धि संज्ञा हो ।

जैसे—'कमु+घञ्+सुं=कामः। 'गर्ग+यञ्+सु'=गार्थः (गर्गस्य गोत्रापत्यम्)। 'गीञ्+एवुल्+सु'=नायकः (यो नयति सः)। 'शिव+त्रण्+सु'=शैवः। 'उपगु+त्रण्+सु'= श्रोपगवः॥ १८॥

६१-अदेङ् गुणः ॥ १६ ॥ १ । १ । २ ॥ इस्य अकार, एङ् अर्थात् ए, अो, इन तीन वर्णों की गुण संक्षा है। जैसे—तरिता; चेता; स्तोता ॥ १६॥

६२ — हलो उनन्तराः संयोगः ॥ २०॥ १ | १ | ७ ॥ जिनके बीच में कोई खरन हो, इस प्रकार के दो वा श्रिष्ठिक हलों की संयोग संझा हो। जैसे — इन्द्रः ; श्रिष्ठाः ; श्रादित्यः , इत्यादि ॥ २०॥

६२-मुखनामिकावचनोऽनुनासिकः ॥ २१ ॥ १ ॥ १ ॥ ८ ॥ इन्नु मुख श्रोर कुन्नु नासिका से जिस वर्ण का उचारण हो, उसकी श्रुनासिक संज्ञा हो।

जैसे—'अ, म, ङ, ण, न' इन पांच वर्णों, श्रतुस्वार श्रोर श्रतुनासिक के चिह्न को भी 'श्रतुनासिक' कहते हैं।। २१॥

# ६४-तुल्यास्यप्रयतं सवर्षम् ॥ २२ ॥ १ । १ । ६ ॥

जिन वर्णों का कर्छ त्रादि स्थान और आध्यन्तर प्रयत समान हो, उनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है।

जैसे - 'क ख ग घ ङ' इत्यादि की सवर्ण संज्ञा है। स्थान प्रयत्नों का विषय (वर्णो॰ २२—६⊏) में है ॥ २२॥

६५-नाउभली । २३ | १ | १ | १० |।

श्रच् हल् परस्पर सवर्णसंज्ञक न हो ।

जैसे - म्र-ह। इ-श। म्रा-ष, इत्यादि की परस्पर सवर्णसंज्ञा नहीं होती ॥२३॥

६६-वाक्यस्य टेः प्लुत उदास्तः ॥ २४ ॥ ८ । ८ । ८२ ॥

प्लुनप्रकरण में यह अधिकार सुत्र है।

यहां से त्रागे जो कहेंगे, वह वाक्य के टिसंइक भाग को प्लुत उदात्त समक्ता जावेगा ॥ २४ ॥

६७-प्रत्यभिवादेऽश्रद्भे ॥ २५॥ ८ । २ । ८३॥

प्रत्यभिवाद में वाक्य के टिको प्लुत उदात्त खर हो, त्रीर शद्ध के प्रत्यभिवाद में नही।

जो पूर्व अभिवादन—नमस्कार—िकया जाता है उसका जो उत्तर देनेवाले की अरेर से वाक्य होता है उसको 'प्रत्यभिशद' कहते हैं। जिसके आगे तीन का अङ्क होता है, वह 'प्लुत का चिह्न' समक्षा जाता है।

प्लुत के तीन भेद हैं—प्लुतोदात्त ; प्लुतानुदात्त ; प्लुतखरित । उन में से प्लुतोदात्त का यहां विधान करते हैं । श्रमिवाद —श्रमिवादये देवदत्तोऽहम्भोः । प्रत्यिवाद —श्रायुष्मानेधि देवदत्त ३ इति, इत्यादि । यहां 'श्रग्रद्व' ग्रहण इसिलये हैं कि—'श्रमिवादये तुषजकोऽहम्भोः, श्रायुष्मानेधि तुषजके यहां नहीं हुश्रा ॥ २४ ॥

६८-वा०-त्रशूद्रश्च्यसूयकेष्विति वसञ्यम् ॥ २६॥ ८ । २ । ८३ ॥

श्रद्ध के अभिवाद में जो निषेध है, वहां स्त्री और अस्पक अर्थात् निन्दक के टि को भी प्रत्यभिवाद में प्लुतोदात्त न हो।

जैसे —स्नी — श्रभिवादये गार्गी श्रहम्भोः, श्रायुष्मती भव गार्गि। वात्सी श्रहम्भोः, श्रायुष्मती भव वात्ति । श्रस्यक — श्रमिवादये स्थाल्यहम्भोः, श्रायुष्मातिध स्थालिन् । 'स्थाली' किसी निन्दक की संज्ञा है ॥ २६॥

# ६६-वा॰-भोराजन्यविशां वा ॥ २७ ॥ ८ । २ । ८३ ॥

भो, राजन्य— इत्रिय, विश्—त्रैश्य इन के प्रत्यभिवाद में जो वाक्य है, उस के टि को प्लुतोदात्त विकल्प करके हो।

भो—देवदत्तोऽहम्भोः, त्रायुष्मानेधि देवदत्त भो३ः इति ; त्रायुष्मानेधि देवदत्त भो३ः । राजन्य—इन्द्रवर्माऽहम्भोः । त्रायुष्मानेधीन्द्रवर्मा३न् ; त्रायुष्मानेधीन्द्रवर्मा३न् । विश्—ग्रमिवादये इन्द्रपालितोऽहम्भोः ; त्रायुष्मानेधीन्द्रपालित३ ; त्रायुष्मानेधीन्द्रपालित, इत्यादि ॥ २७ ॥

१००-दूराद्धृते च ॥ २८ ॥ ८ । २ । ८४ ॥

जो दूर से बुलाने में वर्त्तमान वाक्य है, उस के टि को प्लुतोदात्त हो।

दूर शब्द से यहां क्या सममाना चाहिये, क्योंकि जो दूर है, वही किसी के प्रति समीप भी होता है, इसिलये—

१०१-भा०-यत्र प्राकृतात् प्रयद्धाद् विशेषेऽनुपादीयमाने सन्देहो भवति श्रोध्यति न श्रोध्यतीति, तद् दूरिमहावगम्यते ॥ २६ ॥ महा० ८ । २ । ८४ ॥

जहां खाभाविक प्रयत्न से बुलाने में सुनने न सुनने का विशेष कारण न मिले, वहां सन्देह होता है कि जिसको बुलाते हैं, वह सुनेगा वा नहीं उसको 'दूर' कहते हैं।

उदाहरण—श्रागच्छ भो माणवक देवद्त्त ३ श्रत्र । यहां 'दूर' प्रहण इसिलये है कि—श्रागच्छ भो माणवक देवद्त्त, यहां प्लुत न हुआ ॥ २८—२६ ॥

१०२-हैहेप्रयोगे हैहयोः ॥ ३०॥ ८। २। ८४॥

'है, हे' शब्दों का प्रयोग हो, तो दूर से बुलाने में जो वास्य, उस में 'है, हे' शब्दों को प्लुतोदात्त हो।

उदाहरण — है ३ देवदत्त ; देवदत्त है ३ । हे ३ देवदत्त ; देवदत्त हे ३ ।

इस में दुबारा 'है, हे' प्रहण इसिलये है कि वाक्य के आदि अन्त में सर्वन्न 'है, हे' को प्लुतोदात्त हो जावे ॥ ३०॥

१०३-गुरोरचनाऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम् ॥३१॥ ८।२।८६॥

जो त्रमुकार को छोड़ के अनन्त्य गुरुवर्ण है, उस एक एक को सम्बोधनवाक्य में विकल्प करके प्लुतौदात्त हो।

देश्वदत्त. यहां 'दे' गुरु है, उसको प्लुतोदात्त होता है। देवदश्त, यहां दकार को प्लुतोदात्त होता है। इसी प्रकार—यश्चदत्त, इत्यादि।

यहां 'गुरु' प्रहण इसिलये हैं कि—वकार को प्लुत न हो। 'ऋकार का निषेध' इसिलये हैं कि—कृष्णदत्त ३, यहां ऋकार को प्लुत न हुआ। 'प्राचां' प्रहण इसिलये हैं कि—प्लुत उदात्त विकल्प करके हो। आयुष्मानेधि देवदत्त ३, यहां एक पत्त में नहीं होता। 'एकैक' ग्रहण इसिलये हैं कि—एक वाक्य में एक साथ कई वर्णों को प्लुत न हो॥ ३१॥

१०४-श्रोमभ्यादाने ॥ ३२॥ ८। २। ८७॥

श्रभ्यादान श्रर्थात् श्रारम्भ श्रर्थं में जहां श्रोम् का प्रयोग किया जाता है, बहां देलुतोदात्त होता है।

जैसे - श्रो३म् इषे त्वोर्जे त्वा। श्रो३म् श्रग्निमीळे पुरोहितम्, इत्यादि ॥ ३२॥

ं १०५-ये यज्ञकर्मणि ॥ ३३ ॥ ८ ।२ । ८८ ॥

यक्कर्म अर्थ में 'ये' इस पद को पंतुतोदात्त हो।

ये ३ यजामहे। 'यज्ञकर्म' इसिलये कहा है कि—'ये यजामहे' ऐसा पाठ करनेमात्र मैं प्लुत न हो, किन्तु विधियज्ञ में जब मन्त्र का प्रयोग हो वहीं प्लुत होते। और 'यजामहे' के साथ ही 'ये' शब्द को प्लुत अभीष्ट है, किन्तु 'ये देवासः' इत्यादि में प्लुत अभीष्ट नहीं॥ ३३॥

१०६-प्रण्वष्टेः ॥ ३४ ॥ ८ । २ । ८६ ॥

यक्कर्स में टि के स्थान में प्रण्व आदेश हो, सो प्लुत हो।

पाद वा आधी ऋचा के श्रंत्य टिसंइक (६७) भाग के स्थान में प्लुत श्रोंकार ही प्रगाव कहाता है। उदाहरण—श्रपां रेतांसि जिन्वतोश्म, इत्यादि॥ ३४॥

१०७-याज्यान्तः ॥ ३४ ॥ ८ । २ । ६० ॥

याज्याकांड में पढ़ें हुए मन्त्रों के ग्रन्त का जो टिसंइक भाग है, उसको प्लुतहो। उदाहरण—स्तोमैर्विधेमाग्नये३। जिह्नामग्ने चक्कषे हव्यवाहा३म्।

इस में 'अन्त' प्रहण इसिलये हैं कि—कोई २ ऋचा वाक्यसमुदायरूप हैं, इनमें प्रत्येक वाक्य के अन्त्य टिभाग को प्लुत न हो, किन्तु मन्त्रान्त में ही हो ॥ ३४ ॥ १०८—ब्रहिप्रेष्यश्रीषड्वीषडावहानामादेः ॥ ३६ ॥ ८ । २ । ६१ ॥

ब्रुहि, प्रेष्य, श्रोषट्, बौषट् श्रोर श्रावह, इनके श्रादि श्रचर को उदात्त प्लुत हो।

उदाहरण—ग्रम्नयेऽनुजूरिह । ग्रमये गोमयान् प्रेरेष्य । ग्रस्तु श्रोरेषट्। सोमस्याग्ने वीहीरे वोरेषट् । ग्रग्निमारेवह ॥ २६ ॥

### १०६-अग्रीत्प्रेषणे परस्य च ॥ ३७ ॥ ८ । २ । ६२ ॥

श्रश्नीध् ऋत्विग्विशेषको प्रेरणा करने में श्रादि श्रीर उससे पर को भी ज्लुतोदात्त हो। उदाहरण—श्रो३म् श्रा३वय, इत्यादि ॥ ३७॥

११०-विभाषा पृष्टवित्रवचने हेः ॥ ३८ ॥ ८ । २ । ६३ ॥

पूछे हुए के उत्तर देने में हि को प्लुतोदात्त हो विकल्प करके।

उहाहरण—श्रकार्षी: कटं देवदत्त ? श्रकार्षं हि३ ; श्रकार्षं हि, इत्यादि। 'पृष्टप्रतिवचन' ग्रहण इसिलये है कि—कटङ्करिप्यति हि, यहां न हो।। ३८॥

१११-निगृह्यानुयोगे च ॥ ३६ ॥ = । २ । ६४ ॥

वादी को प्रमाणों से उस के पत्त से हरा के अपने पत्त में पीछे नियुक्त करने में जो वाक्य, उसके टिमाग को प्लुतोदात्त विकल्प से हो

उदाहरण—'श्रनित्यः शब्दः'—िकसी ने यह प्रतिक्वा की, उसको युक्ति से हरा के उपहासपूर्वक कहे कि—श्रनित्यः शब्द इत्यात्थ३। श्रनित्यः शब्द इत्यात्थ ने यही कहा था, इत्यादि ॥ ३६॥

११२-त्राम्रेडितं भत्सीने ॥ ४० ॥ ८ । २ । ६४ ॥

धमकाने अर्थ में आम्रेडित वा उसके पूर्वभाग को प्रायः करके प्लुतोदात्त हो।

उदाहरण—चौर चौर३; चौर३ चौर घातिषष्यामि त्वा। दस्यो दस्यो३; दस्यो३ दस्यो बन्धियष्यामि त्वा, इत्यादि॥ ४०॥

११३-अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्चम् ॥ ४१ ॥ ८ । २ । ६६ ॥

श्रङ्ग शब्द से युक्त सापेच जो तिङन्त है, उसके टिको धमकाने श्रर्थ में प्लुतोदान्त हो।

उदाहरण—श्रङ्ग कूज३; श्रङ्ग व्याहर३ इदानीं झास्यसि जाल्म! इत्यादि। 'तिङ्' इसलिये कहा-कि—श्रङ्ग देवदत्त, यहां न हो॥ ४१॥

११४-विचार्यमाणानाम् ॥ ४२ ॥ ८ । २ । ६७ ॥

जो विचार्य्यमाण वाक्य हैं, उनकी टि को प्लुतोदात्त हो।

जैसे—होतव्यं दीन्नितस्य गृहा३इ इति, यहां दीन्नित के घर में हवन करना चाहिये, यह विचार करते हैं ॥ ४२ ॥ ११५-पूर्वेन्तु भाषायाम् ॥ ४३ ॥ ८ । २ । ६८ ॥ लौकिक प्रयोग में विचार्यमाण वाक्यों के पूर्व प्रयोग में व्लुतोदात्त हो । श्रिह्मिंद्रेः, रज्जुर्जु—यह सांप है वा रज्जु १ ॥ ४३ ॥ ११६-प्रतिश्रवणे च ॥ ४४ ॥ ८ । २ । ६६ ॥ स्वीकार अर्थ में जो वाक्य उसके टि को व्लुतोदात्त हो । गां देहि भोः, श्रहं ते ददामि३ ॥ ४४ ॥

११७-अनुदासं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः ॥ ४४ ॥ ८ । २ । १०० ॥ प्रश्न के अन्त में और अभिपूजित अर्थ में अनुदास प्लुत हो ।

प्रशान्त—ग्रगम३: पूर्वा३न् ग्रामा३न् ग्रग्निभूता३इ इति ; पटा३उ इति । यहां 'श्रगम३: पूर्वा३न् ग्रामा३न्' (४०) से ग्रादि मध्य में प्लुत हुन्ना है । ग्रिभपूजित—ग्रोभन: खल्वसि माण्यक३ त्रत्र, इत्यादि ॥ ४४ ॥

११८-चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने ॥ ४६ ॥ ८ । २ । १०१ ॥ उपमार्थवाची चित् अव्यय के प्रयोग में जो वाक्य उसकी टि को प्लुतानुदात्त हो।

उदाहरण — श्रमिचिद्भायां रत्। राजचिद्भाया रत्— श्रमि के तुल्य वा राजा के तुल्य तेजली होने। 'उपमार्थ' इसलिये कहा कि — कर्थचिदाहु:, यहां प्लुत न हो। 'प्रयुज्यमान' इसलिये है कि — श्रमिण्यको भायात्, यहां न हो॥ ४६॥

११६-उपरिस्विदासीदिति च ॥ ४७ ॥ ८ । २ । १०२ ॥
'उपरिस्विदासीत्' इस वाक्य के टि को प्लुतानुदात्त हो ।
उपरिस्विदासी३त् ॥ ४७ ॥

१२०-खरितमाम्रेडितेऽसृयासम्मतिकोपक्कत्सनेषु॥४८॥८।२।१०३॥

जो आम्रेडित—द्विर्वचन का परभाग—परे हो, तो अस्या, सम्मति, कोप और कुत्सन अर्थ में पूर्वभाग को खरित प्लुत हो।

श्रस्या—माण्वक ३ माण्वक श्रविनीतोऽसि । सम्मति—प्रियंवद्३ प्रियंबद् शोभनः खल्वसि । कोप—दुर्जन३ दुर्जन तूष्णीम्भव । कुत्सन याष्टीक३ याष्टीक रिका ते यष्टिः, इत्यादि ॥ ४८ ॥

## . १२१-चियाशीःपैषेषु निङाकाङ्चम् ॥ ४६॥ ८ ।। ८ ।। २ । १०४ ॥

चिया— आचार बिगाड़ना, आशीर्वाद और आज्ञा देने अर्थ में अन्य उत्तरपद की आकाङचा रखनेवाला तिङन्त पद प्लुतस्वरित हो।

स्तयं रथेन याति३ उपाध्यायं पदाति गमयति । सुतांश्च लप्सी ए३ धनं च तात । कटं कुरु३ यामं च गच्छ । 'त्राकाङ्चा' प्रहण इसिलये है कि—दीघं ते त्रायुरस्तु, यहां प्लुत न होवे ॥ ४६ ॥

### १२२-अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः ॥ ४० ॥ ८ । २ । १०४ ॥

प्रश्न श्रौर श्राख्यान श्रर्थ में अन्त्य श्रौर श्रनन्त्य पद के भी टिभाग को प्लुतस्वरित होवे।

त्रगम३: पूर्वा३न् ग्रामा३न् त्रज्ञिभूता३इ ; पटा३उ । त्राख्यान में त्रगम३: पूर्वा३न् ग्रामा३न् भो: ॥ ४०॥

## १२३-प्लुनावैच इदुती ॥ ५१॥ ८। २। १०६॥

(दूराद्धृते । ८। ८४) इत्यादि सूत्रों में जो प्लुत विधान किया है, वहां ऐच् को जो प्लुत आवे तो उसके अवयव इकार उकार को प्लुत हो।

पेश्तिकायनः। श्रीश्पगवः, यहां जब इवर्ण अवर्ण क्रावर्ण का समविभाग समका जाता है, तब इकार उकार द्विमात्र प्लुत होजाते हैं ॥ ४१ ॥

# १२४-एचोऽप्रगृह्यस्याद्राद्धूते पूर्वस्यार्द्धस्याऽऽदुत्तरस्येदुतौ ॥४२॥ ८ । २ । १०७ ॥

जो समीप से बुलाने में अप्रगृह्य एच् हैं, उसके पूर्व अर्द्धमाग अवर्ष को आकारादेश हो और उत्तरभाग को इकार उकार आदेश हों।

### १२५-वा०-प्रश्नान्ताभिपूजितविचार्य्यमाणप्रत्यभिवाद्याज्यान्ते-विवति वक्तव्यम् ॥ ५३ ॥ ८ । १०७॥

जो इस सूत्र में कार्यविधान है, वह प्रश्नान्त, श्रमिपूजित, विचार्यमाण, प्रत्यभिवाद श्रोर याज्यान्तविषय में समसना चाहिये।

प्रशान्त—ग्रामरः पूर्वारन् प्रामारन् श्रिप्तमृतारहः । पटारे । श्रिभप्तित— सिद्धोऽसि माणवकरे श्रिप्तमृतारहः । पटारे । विचार्यमाण्—होतव्यं दीन्तितस्य गृहारे । प्रत्यभिवाद —श्रायुष्मानेधि श्रिप्तित्वारा । याज्यान्त—उन्नान्नाय वशान्नाय सोमपृष्टाय वेधसे, स्तोमैर्विधेमाग्नयार्रहः, इत्यादि । पूर्वोक्त विषयों में परिगणन इसिलये किया है कि —विष्णुभूते घातयिष्यामि त्वाम्, यहां न हुआ।। ४२—४३॥

१२६-वा०-एचः प्लुतिबिकारे पदान्तग्रहणम् ॥ ५४॥ ८।२।१०७॥ जहां पच् को पूर्व सूत्र से आदेश करते हों, वहां पदान्त समभना चाहिये।

अर्थात् यद्दां नहीं होता—भद्रं करोषि गौः, यद्दां अन्त में विसर्जनीय आते हैं। यद्दां 'अप्रगृद्धा' प्रहण इसलिये हैं कि—शोभने खलु माले३॥ ४४॥

१२७-वा०-ग्रामन्त्रिते छुन्दस्युपसंख्यानम् ॥५५॥ ८।२।१०७॥ ग्रामन्त्रित परे हो, तो पूर्व को प्लुत हो वेदविषय में। जैसे—ग्रज्ञा३इ पत्नीवः॥ ४४॥

१२८-तयोर्घावचि संहितायाम् ॥ ४६ ॥ ८ । २ । १०८ ॥

पूर्वोक्त इकार उकार को य्, व् आदेश क्रम से होते हैं, अच् परे रहते संहिता में। अग्नाश्यिन्द्रम्। पटाश्वुद्कम्।। ४६॥ — इति प्लुतसंज्ञाप्रकरणम्।।

१२६-ईदूदेद्विचचनं प्रगृह्यम् ॥ ५७॥ १।१।१।१।। ई, ऊ, ए ये जिनके अन्त में हों ऐसे जो द्विचचनान्त शब्द, वे प्रगृह्यसंज्ञक हों। जैसे—अग्नी इमी। वायू इमी। माले इमे, इत्यादि॥ ५७॥

१३०-श्रद्सो मात्॥ ४८॥ १।१।१२॥

अदस् शब्द के मकार से परे ई, ऊ की प्रगृह्यसंद्वा हो। जैसे—अमी पते। अमृ इति ॥ ४८ ॥

१३१-शे॥ ४६॥ १।१।१३॥

जो विभक्ति के स्थान में शे त्रादेश होता है, उसकी प्रगृह्यसंज्ञा हो। जैसे—श्रस्मे इन्द्रावृहस्पती ॥ ४६॥

१३२-निपात एकाजनाङ् ॥ ६० ॥ १ । १ । १४ ॥

त्राङ्को छोड़कर जो केवल एक ही अच् निपात है, वह प्रगृह्यसंद्रक हो।

जैसे—ग्र, इ, उ। अ अपकाम । इं इन्द्रं पश्य । उ उत्तिष्ठ ॥ ६० ॥

१३३- अति।। ६१ ।। १ । १। १४ ॥

जो श्रोकारान्त निपात है, वह प्रगृह्यसंज्ञक हो।

जैसे—अथो इति । अहो इमे । भो इह, इत्यादि ॥ ६१ ॥

१३४-सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे ॥ ६२ ॥ १ । १ । १६॥

जो अनार्ष अर्थात् सौकिक इति शब्द के परे संबुद्धिनिमित्तक श्रोकार है, उसकी शाकल्य ऋषि के मत में प्रगृह्यसंज्ञा हो।

जैसे—वायो इति । ऋन्य ऋषियों के मत मैं—वायिवित । यहां 'श्रनार्ष'ग्रहण इसिवये हैं कि—श्रार्ष अर्थात् वैदिक इति शब्द के परे प्रगृह्यसंज्ञा न हो । जैसे— बन्धवित्यव्रवीत्, इत्यादि ॥ ६२ ॥

१३४–उञः ऊँ ॥ ६३ ॥ १ । १ । १७ ॥

शाकल्य त्राचार्य के मत में त्रानार्व इति शब्द परे हो, तो उन् की प्रगृह्यसंद्वा और उन् के स्थान में ऊँ ऐसा त्रादेश हो, उसकी भी प्रगृह्यसंद्वा हो।

जैसे—उ इति । ऊँ इति । विति ॥ ६३ ॥

१३६-ईदूती च सप्तम्यर्थे ॥ ६४ ॥ १ । १ । १८ ॥

सप्तमी विभक्ति के अर्थ में वर्त्तमान ईकारान्त ऊकारान्त शब्द प्रगृह्यसंद्वक हो। उदाहरण—मामकी इति । तनू इति । सोमो गौरी अधिश्रित: ॥ ६४ ॥

१३७-नवेति विभाषा ॥ ६४ ॥ १ । १ । ४३ ॥

निषेध और विकल्प के अर्थ की विभाषा संद्वा हो ॥ ६४ ॥

१३८-अद्रीनं कोपः ॥ ६६ ॥ १ । १ । ४६ ॥

विद्यमान के अदर्शन की लोप संक्षा हो ॥ ६६ ॥

१३६-श्रचोऽन्त्यादि टि ॥ ६७ ॥ १ । १ । ६३ ॥

जो अचों के बीच में अन्त्य अच् है, उससे लेके जो अन्त्यादि समुदाय,

जैसे - अग्निचित्, यहां अन्त्य के 'इत्' भाग की टि संद्वा है ॥ ६७॥

१४०-अलोऽन्त्यात्पूर्व उपघा ॥ ६८ ॥ १ । १ । ६४ ॥ 💢 जो वर्ण समुदाय पद में ऋन्त्य वर्ण से पूर्व वर्ण है, उसकी उपधा संज्ञा होती है। जैसे-निर, दुर्, यहां इ, उ की उपधा संज्ञा है ॥ ६८॥ १४१-ऊकालोऽज्भूस्वदीर्घप्तुतः ॥ ६६ ॥ १ । २ । २७ ॥

एकमात्रिक, द्विमात्रिक श्रौर त्रिमात्रिक अच् क्रम से हस्त, दीर्घ श्रौर प्लुतसंक्षक हों।

अ। आ। आ३॥ ६६॥

्र१४२-सुप्तिङन्तं पदम् ॥ ७० ॥ १ । ४ । १४ ॥ सुबन्त और तिङन्त शन्दों की पदसंज्ञा हो।। ७०।।

. १४३–प्राग्रीश्वरान्निपाताः ॥ ७१ ॥ १ । ४ । ५६ ॥ यह अधिकार सूत्र है। । १ । १ । १ ।

ः इससे आगे जो कहेंगे उनकी निपात संज्ञा होगी ॥ ७१ ॥

१४४-चाद्योऽसत्त्वे ॥ ७२ ॥ १ । ४ । ४७ ॥

जहां किसी निज द्रव्य के वाचक न हों, वहां च ग्रादि शब्द निपातसंज्ञक हों। च। वा। इ, इत्यादि की निपातसंक्षा है ॥ ७२ ॥

१४५-प्राद्य उपसर्गाः क्रियायोगे ॥ ७३ ॥ १ । ४ । ४८ ॥

प्र श्रादि शब्द असत्व अर्थ में निपात संज्ञक और क्रियायोग में उपसर्गसंज्ञक हों।।७३॥

१४६-गतिश्च ॥ ७४ ॥ १ । ४८ ॥

कियायोग में प्र आदि शब्द गतिसंज्ञक भी हों।। ७४।।

१४७-परः सन्निकर्षः संहिता ॥ ७५ ॥ १ । ४ । १०८ ॥

पर-ग्रतिशयकर-जो सम्निकर्व ग्रर्थात् वर्णौ की समीपता है, उसकी संहिता संज्ञा हो ॥ ७४ ॥

१४८-विरामोऽवसान्म्। १७६ ॥ १ । १०६ ॥

समाप्ति अर्थात् जिसके आगे कोई वर्ण न हो, उस अन्तिम वर्ण की अवसान संबा होने ॥ ७६॥

ः ः क्षेत्र इति संज्ञाप्रकृरण्ं समाप्तम् ॥

## अथ परिभाषाप्रकरणम्

### १४६-समर्थः पद्विधिः ॥ ७७ ॥ २ । १ । १ ॥

जो कुछ इस न्याकरण्यास्त्र में पद को विधानकार्य सुना जाता है, वह समर्थ को जानना चाहिये।

व्याकरण में प्रथम यही परिभाषा सर्वत्र प्रवृत्त होती है, क्योंकि "अपदक प्रयुक्जीत"—अपद अर्थात् सुप् तिङ् प्रत्यय से रहित शब्द का प्रयोग कभी न करना चाहिये। और सुप् तथा तिङ्भी समर्थ ही से विधान होते हैं असमर्थ से नहीं, क्योंकि विना संज्ञा के सामर्थ नहीं होता, सामर्थ्य के विना उससे प्रत्यय की उत्पत्ति नहीं हो सकती, और इसके विना प्रयोग भी नहीं बन सकता। क्योंकि—

"न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या न च केवलः प्रत्ययः । प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययार्थः सह ब्रूतः" ॥

इस महामाण्य के वचन का अभिपाय यही है कि दोनों के मिले विना कोई भी प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकता। इस कारण सामर्थ्य से विना किसी प्रत्ययकार्य्य वा कोई व्याकरण की बात पृथक नहीं हो सकती। इसिबये इसी सूत्र के भाष्य में—

"परिभाषायां च सत्यां यात्रान् व्याकरणे पदगन्धो नाम स सर्वः संगृहीतो भवति"॥

यह परिभाषा सूत्र है। इसिलये जो कुछ व्याकरण का विषय है, उस सब में इस सूत्र की प्रवृत्ति अवश्य होती है, क्योंकि जैसे विना धातुसंक्षा के भ्वादि शब्द कृत्संक्षक प्रत्ययों की उत्पत्ति में समर्थ नहीं होते, और कृत्संक्षक प्रत्यय भी धातु से परे नहीं हो सकते, वैसे विना प्रातिपदिक संक्षा के 'टाप' आदि स्त्री और 'अण्' आदि तिद्वत प्रत्यय उत्पन्न ही नहीं हो सकते। क्योंकि विना प्रातिपदिक संक्षा के उनका सामर्थ्य ही नहीं है, जो सुप् आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति करा सकें, और सुप्, स्त्री और तिद्वतसंक्षा के विना सुप् आदि प्रातिपदिकों के आगे होने में समर्थ ही नहीं हो सकते। पेसे ही सर्वत्र समक्ष लेना।

इस सूत्र में दो पत्त हैं, प्रथम पत्त में दो पद, श्रौर दूसरे पत्त में एक पद है। इससे श्राचार्य का यह श्रमिप्राय विदित होता है कि प्रथमपत्त से व्यपेत्तामाव सामर्थ्य, जिसमें पृथक् २ पद श्रला २ खर श्रोर भिन्न २ विभक्ति रहती हैं, उसका प्रकाश। श्रीर दूसरे पत्त से एकार्थीभाव सामर्थ्य श्रर्थात् जिसमें श्रनेक पदों का एक पद, श्रनेक खरों का एक खर, श्रीर श्रनेक विभक्तियों की एक विभक्ति हो जाती है। श्रीर जो व्यपेचा सामर्थ्य में समर्थ शब्द के श्रागे उत्तरपद विधि शब्द का लोप भी किया है, इससे यह सिद्ध होता है कि व्याकरण श्रादि सब शास्त्र श्रीर लोकव्यवहार में भी समर्थ के लिये सब विधान है, श्रसमर्थ के लिये कुछ भी नहीं। जैसे श्रांखवाला देखने में समर्थ होता है, इसलिये उसको देखने का उपदेश भी करते हैं कि इसको तू देख, श्रन्धे को कोई नहीं कह सकता, क्योंकि वह देखने में समर्थ नहीं है। वैसे ही कोई सामर्थ्यवाले के लिये जो कुछ विधान करता है, वह शुद्ध श्रीर सफल, श्रीर जो कोई इससे उलटा करता है, वह श्रग्रद्ध श्रीर निष्फल समक्ता जाता है।

इसिलये यह सूत्र जितने व्याकरण श्रादि शास्त्रों के विषय हैं, उन सब में लगता है। इससे यह भी समभना कि जो भट्टोजिदीिच्चत ने कौमुदी में इस सूत्र को समास ही में प्रवृत्त किया है, सो श्रग्रुद्ध ही है॥ ७७॥

### १४०-इको गुणवृद्धी ॥ ७८ ॥ १ । १ । ३ ॥

जहां २ गुण श्रीर वृद्धि शब्द करके गुण श्रीर वृद्धि का विधान करें, वहां २ इक् ही के स्थान में गुण श्रीर वृद्धि होते हैं।

ऐसा सर्वत्र व्याकरणशास्त्र में समक्त लेना। यहां त्रा, ए त्रौर त्रो की गुण संज्ञा, हो, ऐ ग्रौर त्रौ की वृद्धि संज्ञा है। जैसे – कर्त्ता, यहां त्रम के स्थान में (८४) से त्र गुण होकर (८७) से रपर हो गया है। चेता, यहां इकार के स्थान में एकार। ग्रौर स्तोता, यहां उकार को श्रोकार गुण हुत्रा है।

वृद्धि — कारकः, यहां ऋ के स्थान में आर् वृद्धि। नायकः, ऐतिकायनः, यहां ई और इ के स्थान में ऐ। और पावकः, औपगवः, यहां ऊ और उ के स्थान में औ वृद्धि हुई है।

'इक्' ग्रहण इसिक्षिये हैं कि — अन्तगः, यहां श्रोष्ठस्थानी 'गम्' धातु के मकार व्यक्षन के स्थान में श्रोष्ठस्थानी श्रोकार गुण न होने। श्रोर 'गुणवृद्धि' ग्रहण इसिक्षिये हैं कि — जहां संज्ञा शब्दों से गुण वृद्धि कहें, वहीं इक् के स्थान में हों। श्रोर 'द्योः' यहां दिव् शब्द को श्रोकारादेश कहा है. सो संज्ञापूर्वक विधि के न होने से वकार के स्थान में होता है। 'सः' यहां दकार के स्थान में श्रकारादेश होता है, पूर्ववत्।। अव।

### १५१-आचन्तवदेकस्मिन् ॥ ७६ ॥ १ । १ । २० ॥

जैसे त्रादि त्रौर त्रन्त में कार्य्य होते हैं, वैसे एक में भी हों। त्रर्थात् अनेकाश्रित कार्य भी एक को हो जावे।

जिससे पूर्व कोई न हो और परे हो उसको 'श्रादि' और जिससे परे कोई न हो पूर्व हो उसको 'श्रन्त' कहते हैं। इस कारण श्रादि श्रन्त को कहे हुए कार्य्य एक में नहीं बन सकते, इसलिये यह परिभाषा है। जैसे—( त्रार्धधातुकस्येड् वलादे: ॥ ७। २। ३४) श्रङ्ग से परे वलादि श्रार्धधातुक को इट् का त्रागम होता है, सो 'करिष्यति ; हरिष्यति' यहां तो स्य प्रत्यय वलादि के होने से होजाता है, और 'जोषिषत् ; मन्दिषत्' यहां केवल एकाच्चर सिप् का स्वल् प्रत्यय होने से नहीं प्राप्त होता था। इस परिभाषा सूत्र से यहां भी हो गया।

अन्तवत् — जैसे — 'घटाभ्याम् ; पटाभ्याम्' यहां अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है। 'आभ्याम्' यहां केवल अकार के होने से दीर्घ नहीं प्राप्त था, अन्तवत् मान के हो जाता है।। १९।।

### १४२-अवन्तौ टिकतौ ॥ ८० ॥ १ । १ । ४४ ॥

जो टकार श्रौर ककार श्रनुवन्धवाले श्रागम हों, वे श्रादि श्रन्त में यथासंख्य करके हो आवें।

अर्थात् टित् आगमं जिसको कहा हो उसी के आदि में और कित् जिसको विधान किया हो उसके अन्त में हो जावे। जैसे—टित्—पुरुषाणाम्, यहां उट् आम् के आदि में। अभवत्, यहां अट् का आगम धातु के आदि में। भविता, यहां इट् का आगम प्रत्यय के आदि में हुआ है। कित्—सोमसुत्; जटिलो भीषयते, यहां तुक् और षुक् आगम भी धातु के अन्त में हुए हैं, इत्यादि॥ ८०॥

### १५३-मिद्चोऽन्त्यात्परः ॥ ८१ ॥ १ । १ । ४६ ॥

जो मित् आगम वा प्रत्यय हैं, वह अन्त्य अच् से परे होता है।

जैसे—नुम्—निन्दति ; नन्दति । श्नम्—रुणुद्धि । मुम्—वाचंयमः । नुम्—कुलानि ; यशांसि इत्यादि ॥ ८१ ॥

### १५४-एच इग्रम्बादेशे ॥ ८२॥ १।१।४७॥

जहां २ एच् के स्थान में हस्व आदेश विधान करें, वहां २ इक् ही हस्य होजावें !

जैसे—गो—चित्रगु: ; शबलगु:, यहां त्रोकार के स्थान में उकार । रै—ग्रितिर, यहां ऐकार के स्थान में इकार । त्रीर नौ—ग्रिधिनु, यहां त्रीकार के स्थान में उकार त्रादेश होता है, इस्यादि ॥ ८२ ॥

#### १४४-वष्ठी स्थानेयोगा ॥ ८३ ॥ १ । १ । ४८ ।

जो २ इस व्याकरणशास्त्र में त्रानियतयोगा षष्ठी, त्रर्थात् जिसका नियम नहीं किया कि इस षष्ठी का योग इसमें हो, है वह २ स्थानेयोगा समसनी चाहिये, त्रर्थात् स्थान में उसका योग होवे। जैसे—( त्रलोऽन्त्यस्य ॥ १।१।४२) यहां 'त्रलः ; त्रान्त्यस्य'ये दोनों षष्ठी हैं। सो त्रानियतयोगा होने से स्थानेयोगा सम्की जाती हैं। जैसे─( इको गुणवृद्धी ॥ १।१।३) यहां 'इकः' यह षष्ठी है, इक् के स्थान में गुणवृद्धि होवें।

'खान' शब्द का लाभ इसी परिभाषा से सर्वत्र होता है, श्रीर जहां २ षष्ठी का नियम कर दिया है कि इस षष्ठी का योग यहां हो, वहां २ स्थान शब्द की उपस्थिति नहीं होती। जैसे—(शास इदङ्हलो: ॥ ६। ४। ३४) यहां 'शास' धातु की उपधा को इत् श्रादेश है, इत्यादि॥ ८३॥

१४६-स्थाने उन्तरतमः ॥ ८४ ॥ १ । १ । ४६ ॥

जो २ त्रादेश जिस २ के स्थान में प्राप्त हो, वह २ त्रुन्तरतम त्रर्थात् सहशतम हो। 'श्रन्तरतम' उसको कहते हैं कि जो श्रत्यन्त सहश हो। जो किसी के स्थान में होता है, वही 'श्रादेश' कहाता है। सो स्थान शब्द का लाभ तो पूर्व परिभाषा से हुआ, परन्तु जो स्थान में प्राप्त श्रादेश है वह कैसा होना चाहिये, सो नियम इस परिभाषा से करते हैं।

सादश्य चार प्रकार का होता है, तद्यथा – स्थानकृतम्, अर्थकृतम्, प्रमाणकृतम्,
गुणकृतश्चेति। 'स्थानकृत अन्तरतम' उसको कहते हैं कि जो २ कएठ आदि स्थान आदेशी
का होवही आदेश का मी होना अवश्य है। जैसे — 'दएड+अप्रम्'=दएडाप्रम्, यहां पूर्व पर
कएठस्थानी दो अकारों के स्थान में दीर्घ एकादेश कहा है, सो स्थानकृत आन्तर्य्य मान के
कएठस्थानवाले दोनों अकारों के स्थान में कएठस्थानवाला दीर्घ ही आकार होता है, अञ्च
स्थान होने से ईकार, ऊकार नहीं होते।

'श्रथंकृत श्रान्तर्थं' उसको कहते हैं कि जहां जैसा एक दो और बहुत श्रथीं का बोधक स्थानी हो, वहां वैसा ही श्रादेश भी होना चाहिये, स्थान सहश हो वा नहीं हो। जैसे—; तस्थस्थमिपां तान्तन्ताम: ॥ ३ । ४ । १०१) 'मवताम' यहां 'तस्' प्रत्यय दो श्रथीं का बोधक स्थानी है, उसके स्थान में 'ताम' श्रादेश भी दो श्रथीं का बोधक ही होता है। इसी प्रकार 'थस्' श्रादि के स्थान में भी समक्षना चाहिये।

'प्रमाण्कृत सादश्य' वह कहाता है कि जो एकमात्रिक स्थानी हो तो उसके स्थान में एकमात्रिक ही त्रादेश भी होवे, और द्विमात्रिक के स्थान में द्विमात्रिक त्रादेश होना श्रवश्य है, इत्यादि । जैसे—'श्रमुष्मै; श्रमूभ्याम्' यहां एकमात्रिक स्थानी है, उसके स्थान में एकमात्रिक ही, और द्विमात्रिक के स्थान में द्विमात्रिक श्रादेश होता है।

'गुण्कृत आन्तर्थं' उसको कहते हैं कि जो अल्पप्राण स्थानी हो तो उसके स्थान में अल्पप्राणवाला आदेश, और महाप्राण स्थानी हो तो महाप्राणवाला ही आदेश होने । जैसे—'वाग्यसित ; त्रिष्टुब्मसित' यहां हकार के स्थान में पूर्वसवर्ण आदेश की प्राप्ति में जैसा हकार नादवान और महाप्राण गुण्वाला है उसके स्थान में आदेश भी वैसा ही होना चाहिये। सो ये दोनों गुण वर्गों के चतुर्थ वर्णों में हैं, इस कारण गुण्कृत आन्तर्थ मान के घकार और भकार ही होते हैं, इत्यादि।

१५७-मा०-स्थान इत्यनुवर्त्तमाने पुनः स्थानग्रहणं किमर्थम् ? ॥ ८५ ॥ महा० १ । १ । ४६ ॥

प्रश्न-पूर्व सुत्र से स्थान की अनुवृत्ति आजाती, फिर स्थानप्रहण का प्रयोजन क्या है?

- १५ ८-मा०-यत्राने कविधमान्तर्थे तत्र स्थानत एवान्तर्थे बलीयो यथा स्यात् ॥ ८६ ॥ महा० १ । १ । ४६ ॥

उत्तर-जहां अनेक प्रकार के अर्थात् स्थानकृत आदि दो. तीन वा चारों आन्तर्थ मिलते हों, वहां स्थानकृत जो आन्तर्य है, अत्यन्त बलवान होने से वही प्रवृत्त किया जाता है।

जैसे—'चेता; स्तोता' यहां एकमात्रिक इकार उकार के स्थान में प्रमाणुकृत श्रान्तर्य को मानकर श्रकार गुण पाता है, सो न हो। स्थानकृत श्रान्तर्य से तालु श्रौर श्रोष्ठश्यानवाले एकार श्रोर श्रोकार हो जाते हैं, यह द्वितीय स्थानप्रहण का प्रयोजन है।

श्रीर यहां 'तम' श्रहण इसलिये है कि – वाग्वसति, यहां महाप्राण हकार के स्थान में महापाए आदेश किया चाहें तो द्वितीय खकार प्राप्त है. और जो नादवान किया चाहें तो तृतीय गकार प्राप्त होता है. तमप्रहण के होने से वर्गी का प्र आदि चौथा वर्ण महाप्राण श्रौर नाद गुणवाला है, वह होता है ॥ ८४—८६ ॥

१४६-उरण रपरः ।। ८७ ।। १ । १ । ४० ।।

जहां ऋ के स्थान में अण् का प्रसङ्ग अर्थात् अण् करने लगें, वहां तत्काल ही रपर हो, श्रर्थात् उस श्रण से परे रेफ भी हो जावे।

जैसे—'कर्त्ता; हर्त्ता'—यहां ऋ के स्थान में अकार गुण हुआ है, इसी से श्रण से परे रेफ भी हो जाता है। 'किरि: ; गिरि:'-यहां जो 'कु' श्रौर 'गृ' धातु के स्थान में इकारादेश किया है, वह रपर हो गया है। श्रोर 'द्वैमातुरः'-यहां उकार भी रपर हुआ है।

यहां 'उ:' प्रहण इसलिये है कि - अवदातं मुखम्, यहां 'दैप्' धात के पेकार के स्थान में त्राकार हुत्रा है, सो रपर न हो जावे। 'त्रण' प्रहण इसिलये है कि-सौधातिक:, यहां ऋकार के स्थान में अकङ् आदेश होता है, सो रपर न होवे ॥ ८७ ॥ MA 962

१६९-त्रजोऽन्यस्य ॥ ८८ ॥ १ । १ । ४ । ॥

जहां २ षष्टीनिर्दिष्ट के स्थान में आदेश कहें, वहां २ के अन्त्य अलु के स्थान में होवें।

जब (त्यदादीनाम: ॥ ७। २। १०२) विभक्ति के परे त्यदादि शब्दों के स्थान में श्रकारादेश होवे, ऐसा कहें; तब इसी परिभाषा की प्रवृत्ति होवे कि जो अन्त्य वर्ण दकार है उसके स्थान में अकारादेश हो जाता है। जैसे - स्यः। सः। यः। इदम्। तेभ्यः, इत्यादि॥ प्रत्म।

### १६१-डिच। ८६॥१।१।४२॥

जो ङित् अर्थात् जिसका ङकार इत् जाय, ऐसा अनेकाल् भी आदेश अन्त्य अल् के स्थान में हो।

यहां पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति आती है। जैसे—अनङ—'होतापोतारी; मातापितरी' यहां अनङ् आदेश अन्त्य अल् ऋकार के स्थान में होता है। यह सूत्र (६२) सूत्र का अपवाद है॥ ८६॥

प्रश्न-तातक् आदेश अन्त्य अल् के स्थान में प्राप्त है, सो क्यों नहीं होता ?

१६२-( उत्तर )-मा०-एवं तहींतदेव ज्ञापयति, न तातङन्सस्य स्थाने भवतीति-यदतं ङितं कारोति । इतरथा हि लोट एरुप्रकरण एव ब्रुयात् तिह्योस्तादाशिष्यन्यतरस्यामिति ॥ ६०॥ महा० १ । १ । ५२ ॥

यह इसी सूत्र पर महामाध्यकार ने समाधान किया है कि—जिस कारण ठातङ् श्रादेश ङित् किया है, इसी से श्राचार्य की शैली स्पष्ट विदित होती है कि यह अन्त्य श्रल् के स्थान में नहीं होता। जो अन्त्य श्रल् के स्थान में करना होता तो तृतीयाऽध्याय के चतुर्थपाद में (लोटो लङ्वत् ; एरु: ॥ ३। ४। ८४-८६) इन सूत्रों के श्रागे 'तात्' श्रादेश कहते, इस में लाघव भी बहुत श्राता था।

जो लोट् लकार का 'ति' और 'हि' का इकार उसको तात् आदेश विकल्प करके होवे, ऐसा कहने से अन्त्य अल् इकार के स्थान में हो ही जाता, फिर अङ्मात्र के अधिक पढ़ने और सप्तमाध्याय के प्रथमपाद में 'तातङ्' आदेश के कहने से ठीक जाना जाता है कि तातङ् आदेश में ङित्करण गुण वृद्धि प्रतिषेध आदि के लिये हैं, इस कारण अन्त्य अल् के स्थान में नहीं होता ॥ ६०॥

१६३-आदेः परस्य ॥ ६१ ॥ १ । १ । ५३ ॥

जो पर अर्थात् उत्तर को कार्य कहें, वह आदि अल् के खान में समभाना चाहिये।

यह सूत्र (तसादित्युत्तरस्य ॥ १ । १ । ६७) इस सूत्र का शेष है । यहां पढ़ने का प्रयोजन यह है कि—अल् की अनुवृत्ति इस में आ जावे, अन्यत्र पढ़ने से फिर 'अल्' प्रहण करना होता । जैसे—'आसीनोऽधीते',—यहां 'आस' धातु से उत्तर 'आन' को ईकारादेश कहा है, सो उसके आदि अल् अकार के स्थान में हो जाता है ।

'द्वीपम्'—यहां द्वि शब्द से परे अप् शब्द को ईकारादेश कहा है, सो उसके आदि अल् अकार के स्थान में हो जाता है ॥ ६१ ॥

### १६४-अनेकाल्शित् सर्वस्य ॥ ६२ ॥ १ । १ । ५४ ॥

जो अनेकाल् और शित् आदेश हो, वह सम्पूर्ण के स्थान में हो जावे।

'अनेकाल' जिसमें अनेक वर्ण हों। 'शित्' अर्थात् जिसका शकार इत् जाय। जैसे—(अस्तेर्भू:॥२।४।४२) यहां 'अस्' धातु के स्थान में 'मू' आदेश अनेकाल् होने से सब के स्थान में हो जाता है - भविष्यति, भवितव्यम्, इत्यादि। शित्— (इदम इश् ॥४।३।३) विभक्ति के परे 'इदम्' शब्द के स्थान में 'इश्' आदेश होता है, सो शित् होने से सब के स्थान में हो जाता है—इत:; इह, इत्यादि॥ ६२॥

१६५-स्थानिवदादंशोऽनल्विधौ ॥ ६३ ॥ १ । १ । ५४ ॥

जो त्रादेश है वह स्थानी के तुल्य होवे, त्रर्थात् जो काम स्थानी से सिद्ध होता है वही त्रादेश से भी होवे, परन्तु जो ऋलाश्रयविधि कर्त्तव्य हो तो त्रादेश स्थानिवत् न हो।

'स्थानी' उसको कहते हैं कि जो प्रथम तो हो पीछे न रहे। श्रीर 'श्रादेश' । उसको कहते हैं कि जो प्रथम न हो श्रीर पीछे हो जावे। जो एक के तुल्य दूसरे को मानकर कोई काम करना है, उसको 'श्रितदेश' कहते हैं। स्थानी श्रीर श्रादेश के पृथक् २ होने से स्थानी का कार्य श्रादेश से नहीं निकल सकता, इसलिये श्रादेश को । स्थानिवत् श्रितदेश करते हैं।

जैसे—'राजा'—यहां विभक्ति लोप होने पर भी पदसंक्षा रहती है, इत्यादि। 'आविधिषीष्ट'—यहां 'हन' धातु के स्थान में 'वध' आदेश हुआ है, उसको हन धातु का कार्य आत्मनेपद स्थानिवत् मानकर हो जाता है। 'पुरुषाय'—यहां जो 'छे' विभक्ति के स्थान में 'य' आदेश होता है, उसको सुण् मानकर दीर्घ और पदसंक्षा आदि कार्य भी मानते हैं, इत्यादि।

यहां 'वत्' करण इसिलये हैं कि—संज्ञाधिकार में यह परिभाषासूत्र पढ़ा है, सो आदेश की स्थानी संज्ञा न हो जावे। 'आदेश' प्रहण इसिलये हैं कि—आदेशमात्र स्थानिवत् हो जावे, अर्थात् जो अवयव के स्थान में आदेश होते हैं वे भी स्थानिवत् हो जावें। जैसे —'भवतु'—यहां इकार के स्थान में उकार हुआ है, उसके स्थानिवत् होने से ही पदसंक्षा आदि कार्य होते हैं। 'अनल् विधि' प्रहण इसिलये हैं कि—अल् विधि में स्थानिवद्भाव न हो।

'श्रल्विधि' शब्द में कई प्रकार का समास होता है। श्रल् से परे जो विधि; श्रल् की जो विधि; श्रल् में जो विधि; श्रीर श्रल् करके जो विधि करना, वहां स्थानिवद् भाव न हो। जैसे—श्रल् से परे विधि—'द्योः'—यहां दिव् शब्द के वकार को श्रीकारादेश हुश्रा है, उस हल् वकार से परे सु विभक्ति का लोप ( हल्ङ्याब्भ्यो० ॥ ६।१।६८) इस सूत्र से प्राप्त है, सो नहीं होता, क्योंकि यहां हल् से परे सु नहीं है। श्रल् की जो विधि—'द्युकामः'—यहां दिव् शब्द के वकार को उकारादेश हु आ है। सो जो स्थानिवत् माना जाय तो उस वकार का लोप (लोपो व्योविला। ६।१।६६) इस सूत्र स हो जावे। श्रल् में जो विधि—'क इष्टः'—यहां यकार के स्थान में इकार संप्रसारण हुआ है, सो जो स्थानिवत् माना जाय तो (हिश च।।६।१।१४४) इस सूत्र से उत्व प्राप्त है, सो नहीं होता।

त्रल् करके जा विधि वहां स्थानिवत् न हो — 'व्यूढोरस्केन ; महोरस्केन' — यहां विसर्जनीय के स्थान में सकारादेश हुआ है। उसको यदि स्थानिवत् मानें तो विसर्जनीय को अयोगवाहों में प्रसिद्ध है, उसका अद् प्रत्याहार में पाठ मानकर नकार को सकारादेश प्राप्त है, सो नहीं होता. इत्यादि। इस सूत्र का महान् विषय है, विशेष महाभाष्य में देख लेना। १३॥

# १६६-ग्रचः परस्मिन् पूर्वविधौ ॥ ६४ ॥ १ । १ । ४६ ॥

जिस अच् के स्थान में आदेश होनेवाला हो, उसके परे पूर्व को विधि करना हो, तो अच् के स्थान में जो आदेश है, वह स्थानिवत् होजावे।

जिसलिये पूर्व सूत्र में अल्विधि में स्थानियद्भाव का निषेध किया और उसी विषय में इस सूत्र में स्थानियद्भाव का विधान है, इसलिये यह सूत्र उसका अपवाद है। जैसे—'पटयित'—यहां पदु शब्द से णिच् प्रत्यय के परे उसके उकार का लोप हुआ है, उस उकार को इस सूत्र से स्थानियत् मानने से वृद्धि नहीं होती।

यहां 'श्रच्' ग्रहण इसिलये हैं कि—हल् के स्थान में जो श्रादेश हैं, वह स्थानिवत् न हो। जैसे—'श्रागत्य'—जो यहां मकार का लोप हुआ हैं, उसको स्थानिवत् मानें तो तुक् का श्रागम नहीं पावे। 'परिसमन' ग्रहण इसिलये हैं कि—जहां परिनिमित्तक श्रच् का श्रादेश न हो, वहां स्थानिवद्भाव न हो। जैसे—'श्रादीध्ये'—यहां जो इद् प्रत्यय को एकारादेश होता है, वह परिनिमित्त नहीं है, उसको यदि स्थानिवत् मानें तो 'दीधी' धातु के ईकार का लोप (यीवर्णयोदीधीवेव्यो:॥ ७।४।४३) से होजावे, सो नहीं होता।

'पूर्वविधि' प्रहण इसिलये है कि—जहां परिविधि कर्त्तव्य हो वहां स्थानिवद्माव न हो। जैसे—'नैधेय:'—यहां जब 'डुधाअं धातु के आकार का लोप कित् प्रत्यय के परे होता है, तब निधि शब्द बनता है। उस आकार को यदि स्थानिवत् मानें, तो द्वश्चम् प्रातिपदिकाश्चित जो ढक् प्रत्यय होता है, वह नहीं हो सके। परिविधि यही है कि प्रातिपदिक से परे प्रत्यय होते हैं॥ ६४॥

### १६७-न पदान्तद्विवयनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घज्ञ आर्थ-धिषु ॥ ६४ ॥ १ । १ । ४ ९ ॥

पदान्त, द्विर्वचन, वरे, यलोप, खर, सवर्ण, अनुस्वार, दीर्घ, जश्, चर् इन विधियों के करने में जो पर को निमित्त मान के आदेश होता है, वह स्थानिवत न हाने।

जो पूर्व सूत्र से स्थानियद्भाव का विधान किया है, उसी का नियत स्थानों में यह सूत्र निषेध करता है। जैसे—पदान्तविधि—'कौ स्तः'—यहां 'अस्' धातु के अकार का लोप पर को मानकर हुआ है, उसको स्थानिवत् मान के जो आव् आदेश प्राप्त है सो नहीं होता।

द्विवचनविधि—'व्द्वयत्र'—यहां इकार को यणारेश पर को मानकर हुआ है, उसके स्थानिवत् होने से धकार को द्विवचन नहीं पाता, इसिलये द्विवचनविधि में स्थानिवद्भाव का निषेध किया है। वरे विधि—ग्रर्थात् जो वरच् प्रत्यय के परे लोप होता है, वहां स्थानिवद्भाव न होवे। जैसे—'यायावरः'—जो यहां श्रकार का लोप परनिमित्त हुआ है, उसके स्थानिवत् होने से श्राकार का लोप प्राप्त है, सो न हुआ।

यलोपविधि—'ब्राह्मण्कगडूति:'—यहां यक् प्रत्यय के अकार का लोप पर को मानकर हुआ है, उसके स्थानिवत् होने से यकार का लोप नहीं पाता था। स्वरविधि — 'चिकीर्षकः'—यहां ग्रुल् प्रत्यय के परे 'चिकीर्ष' थातु के अकार का लोप होता है, उसके स्थानिवत् मानने से लित् प्रत्यय से पूर्व 'की' में उदात्त सर इष्ट है, यह नहीं हो सकता, सो हो गया।

सवर्णिविधि—'रुन्धः'—यहां अम् प्रत्यय के श्रकार का लोप हुश्रा है, उसके स्थानियत् होने से धकार के परे श्रनुस्वार को परसवर्ण श्रर्थात् नकाराहेश नहीं पाता था, सो हुश्रा। श्रनुस्वारिविध —'शिवन्ति'—यहां अम् प्रत्यय के श्रकार का लोप हुश्रा है, उसके स्थानिवत् होने से नकार को श्रनुस्वार नहीं प्राप्त होता था, सो हो गया।

दीर्घविधि—'प्रतिदीवना'—यहां 'प्रतिदिवन' शब्द के अकार का लोप हुआ है, उसके स्थानिवत् होने से दीर्घ नहीं पाता था सो हो गया। जश्विधि—'सिग्धः'—यहां 'घस्' धातु के अकार का लोप हुआ है, उसके स्थानिवत् होने से किन् प्रत्यय के तकार को धकार नहीं पाता था, सो होगया। चिविधि—'जचतुः'—यहां भी 'घस् धातु के अकार का लोप हुआ है, उसके स्थानिवत् होने से घकार को ककारादेश नहीं प्राप्त होता था, सो होगया।

१६८-वा॰-प्रतिषेषे स्वरदीर्घयकोपविधिषु कोपाजादेशो न स्थानिवत् ॥ ६६ ॥ १ ॥ १ ॥ ५७ ॥

जो सूत्र से पदान्त आदि विधियों में निषेध किया है. वह इस प्रकार से होना चाहिये कि स्वर, दीर्घ और यत्नोपविधि के करने में जो लोपक्रप अस् के स्थान में आदेश है, वही स्थानिवत् न हो, अन्य आदेश तो स्थानिवत् हो ही जावे। जैसे—सरिविध—'पञ्चारत्यः'— यहां इकार के स्थान में यणादेश हुआ है, उसके स्थानिवत् होने से (इगन्तकालकपाल ।।६।२।२६) इस सूत्र से पूर्वपद्प्रकृतिस्वर हो जाता है। दीर्घिविध—'किय्यों:'—यहां 'किरि' शब्द के इकार के स्थान में यणादेश होगया है, उसके स्थानिवत् होने से दीर्घ नहीं होता। यलोपविधि—'वाय्वोः'—यहां उकार के स्थान में वकार हुआ है, उसके स्थानिवत् होने से यकार का लोप नहीं होता। ६४—६६।

१६६-वा॰-किलुगुपघात्वचङ्परनिर्होसक्कत्बेषूपसंख्यानम्।।६७॥

यह दूसरा वार्तिक सूत्र के विषयों से त्रांतग स्थानिवद्भाव का निषेध करता है। को लुप्त न स्थानिवत्—जहां किए प्रत्यय के परे किसी का लोग हुआ हो, वहां स्थानिवद्भाव न हो। जैसे—'लौ:'—यहां किए प्रत्यय के परे णिच् प्रत्यय का लोग हुआ है, उसके स्थानिवत् नहीं होने से वकार को ऊठ् आदेश होता है।

जुकि न स्थानिवत् लुक् होने में स्थानिवद्भाव न हो। जैसे — 'पञ्चपटुः' — यहां तिद्धत प्रत्यय का लुक् होने से ङीष् प्रत्यय के ईकार का लुक् हुआ है, उसके स्थानिवत् नहीं होने से 'पटु' शब्द को यखादेश नहीं होता।

उपवाते न स्थानिवत्—उपधा का कार्य करने में स्थानिवद्भाव न हो। जैसे— 'पारिकीयः'—यहां 'परिका' शब्द से चातुर्राधिक 'ग्राण' प्रत्यय के परे आकार के स्थानिवत् नहीं होने से 'पारिक' शब्द से खोपध छ प्रत्यय हो जाता है।

मङ्परिनहों ते न स्थानियत्— बहां चङ् प्रत्यय के परे किसी का लोप हो, वहां स्थानियत् मानकर कोई कार्य न किया जावे। जैसे—'अवीवदत्'—यहां शिच् के परे शिच्का बोप हुआ है, उसके स्थानियत् नहीं होने से उपधा को हस्य हो जाता है।

कुते न स्थानिवत्—कुत्विधि करने में स्थानिवद्भाव न हो। जैसे —'श्रर्कः'—यहां 'श्रर्च' धातु से घञ् प्रत्यय के परे णिच् प्रत्यय का लोप हुत्रा है, उसके स्थानिवत् नहीं होने से चकार को ककारादेश हो जाता है।। ६७॥

### १७०-वा०-पूर्वत्राऽसिद्धे च ॥ ६८ ॥ १ । १ । ४ ७ ॥

इस तीसरे वार्तिक से अष्टाऽध्यायी के अन्त्य के तीन पादों के कार्य्य करने में स्थानिवद्भाव न हो।

ें जैसे—'यायष्टिः'—यहां 'यङ' प्रत्यय के अकार का लोप हुआ है, उसके स्थानिवत् होने से 'यज्' आतु के जकार को पकारादेश नहीं प्राप्त होता था, इत्यादिः॥ ६५ ॥

### १७१-द्विवेचने अचि ॥ ६६ ॥ १ । १ । ४८ ॥

द्विवंचननिमित्तक अजादि प्रत्यय परे हो, तो द्विवंचन करने के तिये अच् के स्थान में जो आदेश है, वह स्थानिरूप ही हो जावे।

इस सूत्र में स्थानिवद्भाव का विधान है, अर्थात् निषेध की अनुवृत्ति नहीं आती। इसी से यह भी अतिदेश हुआ। अतिदेश दो प्रकार के होते हैं—एक 'कार्याति-देश' और दूसरा 'रूपातिदेश'।

'कार्यातिदेश'—वह होता है कि जो आदेश को खानी के सहश मानकर खानी का काम आदेश से ले लेना। और 'रूपातिदेश'—उसको कहते हैं कि खानी अपने खान में खयं आजावे। क्योंकि जहां खानी के समान आदेश को मानने से काम नहीं चलता, वहां रूपातिदेश माना जाता है। सो इस सूत्र में रूपातिदेश है। जैसे—'पपतुः'—यहां 'अतुस्' प्रत्यय के परे धातु के आकार का लोप हुआ है, उसके खानिवत् होने से ही द्विवचन हो सकता है।

यहां 'द्विवचन' प्रहण इसिलये है कि—'गोदः'—यहां आकार का लोप अजादि प्रत्यय के परे हुआ है, परन्तु द्विवचननिमित्तक प्रत्यय नहीं,।इससे स्थानिव-द्वाव नहीं होता। और 'अच्' प्रहण इसिलये है कि—'देधीयते'—यहां अजादि प्रत्यय परे नहीं, इससे स्थानिवत् नहीं होता॥ ६६॥

### १७२-प्रत्ययकोपे प्रत्ययकच्णम् ॥ १००॥ १। १। ६१॥

जहां प्रत्यय का लोप हो जावे, वहां उस प्रत्यय को मानकर कोई कार्य प्राप्त होवे, तो हो जाय।

जैसे—'श्रिशिचित्'—यहां लोप के बलवान् होने से किए प्रत्यय का लोप प्रथम ही होजाता है, पीछे उसको मान कर तुक् का श्रागम होता है।

इस सूत्र में 'प्रत्यय' प्रहण इसिलये है कि जहां सम्पूर्ण प्रत्यय का लोप हो वहीं प्रत्ययनिमित्तक कार्य हो, और जहां प्रत्यय के अवयव का लोप हो वहां न हो। जैसे—'आध्नीत'—यहां प्रत्यय के अवयव सकार का लोप हुआ है, सो जो प्रत्यय लच्चण होवे तो 'हन्' धातु की उपधा का लोप नहीं प्राप्त होवे।

दूसरा 'प्रत्यय' प्रहण इसिलये है कि प्रत्यय के लोप में वर्णाश्रय कार्य प्राप्त होता हो, सो न हो। जैसे—रायः कुलम्='रैकुलम्'—यहां प्रत्यय के लोप में एच् प्रत्या-हार के आश्रय पेकार को आय आदेश प्राप्त है, सो नहीं हुआ ॥ १००॥

### १७३-न लुमताङ्गस्य ॥ १०१ ॥ १ । १ । ६३ ॥

अहां लुक्, रलु और लुप् इन शब्दों से प्रत्यय का अदर्शन हुआ हो, वहां उस प्रत्यय के परे जिसकी अङ्ग संद्वा हो, उसको प्रत्ययतत्त्वण मानकर कार्य न हो।

पूर्वसूत्र में जो प्रत्यवतत्त्वण कार्य सामान्य से कहा है, उसका इस सूत्र से विशेष विषय में निषेध करते हैं। जैसे—'गर्गाः'—यहां यज् प्रत्यय को मानकर वृद्धि और आधुदात्त खर प्राप्त है, सो नहीं होते।

इस सूत्र में 'लुमता' प्रहण इसलिये है कि—'धार्यते'—यहां णिच् प्रत्यय का जोप हुआ है, इससे प्रत्ययनिमित्तक कार्य जो वृद्धि है उसका निषेध नहीं होता॥१०१॥

### १७४-तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य ॥ १०२ ॥ १ । १ । ६४ ॥

जो ग्रब्द सप्तमी विभक्ति से निर्दिष्ट पढ़ा हो, उससे जो पूर्व शब्द था वर्ण हो उसी को कार्य हो, अर्थात् उससे परे और व्यवधानवाले को न होवे।

इस सूत्र में 'इति' शब्द अर्थ का बोध होने के लिये पढ़ा है, अन्यथा 'तस्मिन्'
पही शब्द जहां पढ़ते वहीं पूर्व का कार्य होता । जैसे—'द्धि+अत्र'—यहां अकार
सप्तमीनिर्दिष्ट है, उससे पूर्व जो इकार है, उसी को कार्य होता है।

इसमें 'निर्दिष्ट' प्रहण इसलियें है कि —व्यवधान में यगादेश न हो। जैसे— 'सिमधः'—यहां धकार व्यवधान में यणु नहीं होता॥ १०२॥

### १७४-तसादित्युत्तरस्य ॥ १०३ ॥ १ । १ । ६६ ॥

जो पञ्चमी विभक्ति से निर्देश किया कार्य है, बहु व्यवधानरहित पर के स्थान में हो।

पूर्वस्त्र से यहां 'निर्दिए' शब्द की अनुवृत्ति आती है। 'इति' शब्द यहां भी पूर्वोक्त प्रयोजन के लिये है। जैसे—'द्वीपम्'—यहां 'द्वि' शब्द से परे 'अप्' शब्द को ईकारादेश होता है।

इस सूत्र में 'निर्दिष्ट' प्रहण का प्रयोजन यह है कि अत्यन्त समीपवाले को कार्य हो। 'अन्तर्द्धाना आप:'—यहां 'अप' शब्द को ईकारादेश न होवे। (आदे: परस्य ॥ १। १। ४४) यह सूत्र लिख चुके हैं, सो इसी का शेष है ॥ १०३॥

### १७६-स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा ॥ १०४ ॥ १ । १ । ६७ ॥

व्याकरणशास्त्र में शब्द का जो रूप है, उसी का प्रहण होवे, शब्दशास्त्र में जो संहा है उसको छोड़ के, अर्थात् उसके पर्यायवाची और विशेषवाची का प्रहण न हो।

जैसे लोक में यह परम्परा है कि शृद्ध के उद्यारण से अर्थ की प्रतीति होती है, जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'गो' लाओ. तो चार पगवाली व्यक्तिविशेष को ले आता है, वैसे व्याकरण में शृद्धों से कार्य कहे हैं. अर्थों से उनका होना तो कदापि संभव नहीं। जैसे अग्नि से कुछ कार्य कहा, तो क्या अंगारों से वह काम हो सकता है ? इसलिये अग्नि के पर्यायवाची जितने शृद्ध हैं, उन सब से वह कार्य प्राप्त होता था, इस दोष के निवारण के लिये इस सूत्र का आरम्भ किया है।

जैसे—'गो' शब्द को कोई कार्यविधान किया है. वह उसके पर्यायवाची 'घेउ' आदि शब्दों से और विशेषवाची 'कृष्णा' आदि शब्दों से न हो।

इस सूत्र में 'रूप' ग्रहण इसलिये है कि शब्द का सम्बन्धी जो ऋर्थ है, उसका ग्रहण न होने ॥ १०४ ॥

जो इस सूत्र पर चार वार्तिक हैं, सो लिखते हैं-

१७७-वा॰-सित्ति द्विशेषाणां वृत्ताद्यर्थम् ॥ १०४॥ १।१।६०॥

सित् निर्देश करना चाहिये, श्रर्थात् जिन २ शब्दों के विशेषवाची शब्दों का श्रहण इप है, वहां २ एक सकार श्रिथक पढ़कर एक नवीन संकेत करना चाहिये, जिससे वृत्त श्रादि शब्दों के विशेषवाची शब्दों का बोध होजावे।

जैसे —(विभाषा वृत्तमृग०॥२।४।१२) इत्यादि एकवचन प्रकरण में सामान्यवाची 'वृत्त' त्रादि शब्दों के प्रहण में विशेषवाची 'न्यप्रोध' ऋदि का भी प्रहण होता है। जैसे—प्रज्ञन्यप्रोधम्। प्रज्ञन्यप्रोधाः, इत्यादि॥

१७८-वा०-पित्पर्यायवचनस्य च स्वाग्यर्थम् ॥ १०६॥ १।१।६७॥

जिन शब्दों के पर्यायवाची शब्दों स्त्रीर उनके विशेषवाची शब्दों का प्रहण स्त्रीर स्त्रपने रूप का प्रहण इष्ट है, वहां २ पित्संकेत करना चाहिये।

जैसे—(स्वे पुष: ॥ ३ । ४ । ४०) 'स्वपोषं पुष्यति'—यद्दां त्रपने सक्तप का प्रदण है । 'रैपोषं पुष्यति; धनपोषं पुष्यति'— यद्दां स्वशब्द के पर्यायवाची 'रै' आदि हैं । 'अश्वपोषम् ; गोपोषम्'—यद्दां अश्व आदि शब्द उसके विशेषवाची हैं ॥

१७६-वा॰-जित्पर्यायवचनस्यैव राजाद्यर्थम् ॥१०७॥१॥१॥६७॥ जिन राजादि शब्दों के पर्यायवाचियों का ही ब्रह्ण इष्ट है, बहां २ जित्संकेत करना चाहिये।

इस वार्तिक से (सभा राजामनुष्यपूर्वा ॥ २ । ४ । २३) इस सूत्र में 'राजन' शब्द के पर्यायवाचियों का ही प्रहण होता है—'इनसभम्; ईश्वरसभम्'—ये 'राजन' शब्द के पर्यायवाची हैं । त्रीर 'राजन' शब्द का प्रहण नहीं होता—'राजसभा'। त्रीर राजन् शब्द के विशेषवाचियों का भी प्रहण नहीं होता । जैसे—'चन्द्रगुप्तसभा; पुष्यमित्रसभा' इत्यादि ॥

# १ १८०-वा॰-भित्तस्य च तिष्ठशेषाणां च मत्स्याद्यर्थम् ॥ १०८॥ १ १ । ६०॥

जिन मत्स्यादि शब्दों के विशेषवाचियों श्रौर उनके खरूप का ग्रहण इन्न है, वहां कित्संकेत करना चाहिये।

इस वार्तिक से (पित्तमत्स्यमृगान्हिन्त ॥ ४ । ४ । ३ ४ ) इस सूत्र में 'मत्स्य' शब्द से अपने सक्षप और उसके विशेषवाची शब्दों का श्रहण होना इष्ट है । जैसे—मत्स्यान्हिन्ति='मान्सिक:'—यहां सक्षप का श्रहण । और उसके विशेषवाची—शाफिरक:; शाकुिकक:, इत्यादि ।

पर्यायवाची 'श्रजिह्म' श्रादि शब्दों का ग्रह्ण नहीं होता, परन्तु एक पर्यायवाची का भी प्रह्ण इष्ट है—मीनान्हन्ति='मैनिक:' ॥ १०४—१०८॥

### १८१-अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः ॥ १०६ ॥ १ । १ । ६८ ॥

अण प्रत्याहार श्रोर उदित् ये दोनों श्रपने सवर्णों के प्रहण करने वाले हों, अर्थात् इनको जो कार्यविधान किया हो, वह इनके सवर्णियों को भी हो. परन्तु प्रत्यय का अण् सवर्ण का ग्राहक न हो।

पूर्व सूत्र से 'सं; रूपं' इन दो शब्दों की श्रानुवृत्ति श्राती है। 'श्राण्' प्रत्याहार इस सूत्र में पर णुकार से लिया जाता है, श्रोर 'उदित्' करके कु, खु, दु, तु, पु ये पांच श्राहर लिये जाते हैं।

जैसे—( अस्य च्वौ ॥ ७ । ४ । ३२ ) यहां अकार को कार्य कहा है, सो आकार को भी होता है । तथा उदित्—(चुटू ॥ १ । ३ । ७) यहां चवर्ग टवर्ग का, (अटकुप्वां०॥ ६ । ४ । २ ) यहां 'कु, पु' शब्दों से कवर्ग पवर्ग का प्रहण होता है ।

इस सूत्र में 'प्रत्यय' का निषेध इसिंखये हैं कि—'ग्र; उ' इन प्रत्ययों में दीर्घ वर्णी का प्रहण न हो ॥ १०६॥

### . १८२-तंपरस्तत्कालस्य ॥ ११०॥ १।१।६६॥

जिससे तकार परे हो वा जो वर्ण तकार से परे आवे, वह उतने ही काल और अपने रूप का बोधक हो, अर्थात् तपर हस्व वर्ण को कार्यविधान किया हो, तो दीर्घ और प्लुत को न हो।

जैसे — 'श्रत्' — यहां दीर्घ श्राकार का श्रहण नहीं होता, क्योंकि उसके उचारण में दिगुण काल लगता है। तथा जहां २ स्त्रों में श्राकार तपर पढ़ा है, उसका प्रयोजन यह है कि उदात्त श्रजुदात्त श्रोर खरित का भी श्रहण हो, क्योंकि उदात्तादिकों में कालमेद नहीं होता।

हस्व खरों में पूर्व स्त्र से सामान्य करके सवर्ण प्रहरण प्राप्त था, सो इस स्त्र से हस्व तपर खरों में अधिक कालवाले दीर्घ प्लुत का निषेध कर दिया है। तथा पूर्वस्त्र से दीर्घ खरों में सवर्ण प्रहरण प्राप्त नहीं था, सो इस स्त्र से तत्काल के प्रहरण में उदात्तादि विशेष गुर्णों का भी प्रहरण हो जाता है॥ ११०॥

### १८३-येन विधिस्तद्नतस्य ॥ १११ ॥ १ । १ । ७१ ॥

जिस विशेषण करके विधि हो, वह जिसके अन्त में हो उसको कार्य हो।

जैसे—( श्रचो यत् ॥ ३।१। ६७) यहां 'श्रचः' यह पद धातु का विशेषण होने से श्रन्त शब्द का लाभ करके जो श्रच् को कार्यविधान है, सो अजन्त को होता है—'भव्षम्' इत्यादि ॥ १११ ॥

१८४-वा॰-समासप्रतययविधौ प्रतिषेधः ॥ ११२ ॥ १ ॥ १ ॥ ७१ ॥ समासविधान और प्रत्ययविधान में तदन्तविधि न हो।

समासविधान में—जैसे—'कष्टिश्रतः'—यद्दां तो समास होता है, श्रौर 'परमकष्टं श्रितः'—यद्दां तद्दन्त का समास नहीं होता। प्रत्ययविधि—नडस्यापत्यम्='नाडायनः'—यद्दां तो प्रत्ययविधान होता है, श्रौर—सूत्रनडस्यापत्यम्='सौत्रनाडिः'—यद्दां तद्दन्त से फक् प्रत्यय नहीं हुत्रा, इत्यादि॥ ११२॥

१८४-वा॰-उगिद्वर्णयहणवर्जम् ॥ ११३ ॥ १ । १ । ७१ ॥

पूर्व वार्तिक से जो निषेध किया है, सो प्रत्ययविधि में सर्वत्र नहीं लगता, अर्थात् उगित् ग्रहण और वर्ण ग्रहण को छोड़ के।

जैसे—'भवती'—यहां उदित् 'भवत्' शब्द से ङीप् प्रत्यय होता है, तो अतिभवती' यहां तदन्त से भी हो जावे। वर्ण प्रहण्—( अत इञ् ॥ ४।१। ६४) 'दािचः'—इत्यादि में अदन्त से भी प्रत्ययविधान होता है ॥ ११३॥

१८६-अच्छा ॥ ११४ ॥ १ । २ । २८ ॥ .

जहां २ व्याकरणशास्त्र में हस्त, दीर्घ और प्लुत विधान करें, वहां २ असू ही के स्थान में हों।

जैसे—(हस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ॥ १।२।४७) यहां प्रातिपदिक को हस्व कहा है। जैसे—रै—'श्रतिरि'—यहां पेकार को इकार श्रीर 'श्रधिनु'—यहां श्रीकार को उकार होता है। यहां 'श्रच्' ग्रहण इसिलये है कि—'सुवाग् ब्राह्मण्डुलम्' इत्यादि प्रयोगों में इलन्त को हस्व न हो।

दीर्घ—( त्रफ़त्सार्वधातुकयोदीर्घ: ॥ ७। ४। २४) स्तुः श्रु—'स्तूयतेः श्रूयते' यहां उकार के स्थान में ऊकार दीर्घ हुआ है। 'श्रच्' का नियम इसिलये है कि—'श्रिजीवीक्त्'—यहां तकार के स्थान में प्लुत न हो जावे।

परन्तु जहां संज्ञा शब्दों से हस्त, दीर्घ श्रोर प्लुत पढ़े हों वहीं श्रच् के स्थान में हों। यह नियम इसक्तिये है कि। त्यदादीनाम: ॥ ७। २। १०२) यहां श्रकारादेश कहा है, श्रोर श्रकार की हस्त संज्ञा है, तो यहां श्रच् की श्रपेत्ता न हो, इत्यादि ॥ ११४ ॥

# १८७-यथासंख्यमनुदेशः समानाम् ॥ ११४ ॥ १। ३। १०॥

जहां २ बराबर संख्यावालों का कार्य में सम्बन्ध करना हो, वहां २ यथासंख्य अर्थात् जैसा उनका क्रम पढ़ा हो, वैसा ही सम्बन्ध किया जावे।

जैसे—( एचोऽयवायाव: ॥६।१।७००) यहां एच् प्रत्याहार में चार वर्ण हैं, सो ही श्रय्, श्रव्, श्राय्, श्राव् ये चार श्रादेश हैं, सो प्रथम के स्थान में प्रथम, द्वितीय के स्थान में द्वितीय, तृतीय के स्थान में तृतीय, श्रीर चतुर्थ के स्थान में चतुर्थ होते हैं। इसी प्रकार सर्वत्र यह नियम जान लेना।

यहां 'समानाम्' प्रहण इसिलये हैं कि—( लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यानवः ॥ १। ४। ६०) यहां चार अर्थ और तीन उपसर्ग हैं, इससे यथासंख्य कम नहीं लगता, इत्यादि ॥ ११४॥

१८८-स्वरितेनाऽधिकारः ॥ ११६ ॥ १ । ३ । ११ ॥

उस खरित के चिद्र से अधिकार का बोध करना चाहिये।

जो ग्रद्धर के ऊपर खड़ी रेखा लगाते हैं, वह वर्ण का 'खरित' धर्म होता है। जैले—प्रत्ययः, धांतोः, कंमैण्यण्, इत्यादि।

श्रव जिसके ऊपर खरित का चिद्ध किया हो, वह श्रधिकार कहां तक जावेगा, वह बात उस उस के विशेष व्याख्यान से जानना ॥ ११६॥

१८६-विप्रतिषेधे परं कार्य्यम् ॥ ११७ ॥ १ । ४ । २ ॥ विप्रतिषेध में पर को कार्य होना चाहिये।

'इतरतरप्रतिषेषो विप्रतिषेषः'—जो परस्पर एक दूसरे का रोकना है, वह 'विप्रतिषेध' कहाता है। 'द्दी प्रसंगी यदान्यार्थी मवत एकस्मिश्र युगपत् प्राप्तुतः स विप्रतिषेषः'—जो पृथक् २ प्रयोजन-वाले दो कार्य एक विषय में एक काल में प्राप्त होते हैं, उसको 'विप्रतिषेध' कहते हैं।

जैसे—'वृत्ताभ्याम्'—यहां (सुपि च॥ ७। ३। १०२) इससे दीर्घ होता है। ग्रीर—'वृत्तेषु' यहां (बहुवचने भल्येत्॥ ७। ३। १०३) इससे एकाराश्य होता है। ये तो इनके पृथक् २ प्रयोजन हैं परन्तु—'वृत्तेभ्यः' यहां जो दो सूत्रों की प्राप्ति एक काल में होकर 'वृत्त' शब्द को दीर्घ श्रीर एकारादेश दोनों ही प्राप्त होते हैं, इसका न्याय इस परिभाषा सूत्र से किया है कि पर का कार्य एकारादेश हो जावे, श्रीर पूर्वसूत्र का कार्य दीर्घादेश न हो। इत्यादि श्रसंख्य प्रयोजन हैं।। ११७॥ \*

इसके परचात, यहां प्रथमावृत्ति में 'सुवामिन्त्रते पराङ्गवस्त्वरे' 'वाऽसरूपोऽश्वियाम्' 'धातु-सम्बन्धे प्रत्ययाः' में तीन सुत्र कनशः श्रीर व्याव्यात हैं, जो कि प्रथाप्रसंग सन्यत्र व्यावयात होने से वितीयावृत्ति में जानवृद्धकर निकास दिये गये। सातवीं शावृत्त तक वही क्रम चला, किन्तु श्रष्टमावृत्ति में सूत्र से पुनः दे दिये गये॥

### १६०-स्रन्तादिवच ॥ ११८ ॥ ६ । १ । ८४ ॥

जो पूर्व पर के स्थान में एकादेश विधान किया है, सो पूर्व का अन्त अवयव और पर का आदि अवयव समंभना चाहिये।

'पूर्व, पर श्रोर एक' शब्द की श्रनुवृत्ति इसके पूर्व सूत्र से श्राती है। इसके प्रयोजन—जैसे पूर्व का अन्तवत्—'ब्रह्मबन्धूः' यहां उकारान्त शब्द से ऊङ् प्रत्यय होता है। उकारान्त तो प्रातिपदिक श्रोर श्रप्रातिपदिक प्रत्यय का ऊकार है, इन दोनों उकारों का एकादेश प्रातिपदिक के ग्रहण करके गृहीत होने से खादि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है, श्रन्यथा नहीं हो सकती, इत्यादि।

पर का आदिवत्—'अशी इति; वायू इति'—यहां इकार, उकार और श्रौकार का एकादेश हुआ है, सो द्विवचन श्रौकार की आदिवत् होने से ही प्रगृह्य संज्ञा हो सकती है, अन्यथा नहीं हो सकती थी, इत्यादि ॥ ११८॥

### १६१-षत्वतुकोरसिद्धः ॥ ११६ ॥ ६ । १ । ८६ ॥

जो षत्व श्रौर तुक्विधि के करने में पूर्व पर के स्थान में एकादेश है, वह सिद्ध कार्य करने में श्रसिद्ध हो जाता है।

जैसे - षत्व-'कोऽसिचत्' यहां श्रकार को पूर्वक्रप पकादेश हुत्रा है, उसको षत्वविधि करने में श्रसिद्ध मान के षत्व नहीं होता, इत्यादि। तुक्विधि - 'श्रधीत्य ; परीत्य' - यहां सवर्णदीर्घ पकादेश को श्रसिद्ध मानकर हस्त्र से परे तुक् का श्रागम होता है, इत्यादि ॥ ११६॥

### १६२-वा॰-संप्रसारणङीद्सु मिद्धः ॥ १२० ॥ ६ । १ । ८६ ॥

परन्तु जहां संप्रसारण, ङि विभक्ति और इट् प्रत्यय के साथ एकादेश हुआ हो, तो वहां षत्व और तुक्विधि करने में एकादेश सिद्ध ही माना जावे।

क्योंकि सूत्र से निषेध प्राप्त था, उसी प्रतिषेध का यह प्रतिषेध है। जैसे— संप्रसारण—'शकहृषु' यहां शकपूर्वक 'ह्रेज्' धातु से किए के परे संप्रसारण को पूर्वक्रण एकादेश हुआ है। उसको असिद्ध मानने से सप्तमी विभक्ति के सकार को षत्व नहीं पाता था, इससे होगया।

ङि - 'वृत्ते छत्रम्; वृत्तेच्छत्रम्' - यहां वृत्त शब्द का ङि विभक्ति के इकार के साथ पकादेश हुत्रा है। जो उसको श्रसिद्ध मानें तो पूर्ववत् नित्य तुक् पाता है। (पदान्ताद्वा ॥ ६ । १ । ७६ ) से विकल्प इष्ट है, सो हो गया, इत्यादि ॥ १२० ॥ \*

\* इसके परचात् यहां प्रथमावृत्ति में 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' सूत्र और व्याख्यात था. जो कि यथाप्रसङ्ग अन्यत्र व्याख्यात होने से द्वितीयावृत्ति में जान बूक्तकर निकाल दिया गया। सातवीं आवृत्ति तक वहीं क्रम चला, किन्तु अष्टमावृत्ति में भूल से पुनः देदिया गया।।

# १६३-पूर्वत्राऽसिद्धम् ॥ १२१ ॥ ८ । २ । १ ॥

जो कार्य यहां से पूर्व सपाद्सप्ताऽध्यायी अर्थात् एक पाद और सात अध्याय में जितना शब्दकार्य कहा है, वहां सर्वत्र त्रिपादी का किया कार्य असिद्ध माना जावे, और त्रिपादी में भी पूर्व २ के प्रति पर २ सूत्र का कार्य असिद्ध माना जाय।

जैसे—'पादा उच्येते'—यहां (लोप: शाकल्यस्य ॥ ८।३।१६) इस सूत्र से अवर्णपूर्व वकार का लोप हुआ है। उसको असिद्ध मानकर गुण एकादेशरूप सन्धि नहीं होती। 'अस आयाहि'—यहां भी अवर्ण से पूर्व यकार का लोप होने से उसको असिद्ध मानकर सवर्ण दीर्घ नहीं होता, इत्यादि।

त्रिपादी में—'गोधुङ्मान'—यहां 'दुह' धातु के हकार को घकार, घकार को गकार और गकार को ङकार और दकार को धकार होता है। इस सब को असिद्ध मानकर मतुष् के मकार को वकारादेश नहीं होता, इत्यादि ॥ १२१॥

१६४-न लोपः सुप्स्वरसंज्ञातुरिवधिषु कृति ॥ १२२॥ ८। २।२॥

परन्तु प्रातिपदिकान्त नकार का जो लोप होता है, वह सुप्, खर, संश्वा श्रौर कृत्सम्बन्धी तुकविधि इन्हीं विधियों के करने में श्रसिद्ध माना जावे।

सुप्विधि में दो प्रकार का समास होता है—सुप् के स्थान में जो विधि; स्रोर सुप् के परे जो विधि। जैसे—सुप् के स्थान में जो विधि—'राजिभः, तक्तभः' यहां राजन, तक्तन शब्द के नकार का लोप हुत्रा है। उसको स्रसिद्ध न मानें तो भिस् विभक्ति को पेस् स्रादेश हो ही जावे, सो इष्ट नहीं है। तथा—सुप् के परे जो विधि—'राजभ्याम्; तक्तभ्याम्' यहां नलोपं को स्रसिद्ध मानने से विभक्ति के परे दीई नहीं होता।

स्वरविधि—'पञ्चार्मम्; सप्तार्मम्'—यद्दां पञ्चन् श्रौर सप्तन् शब्द के नकार का लोग हुत्रा है। उसको श्रसिद्ध मानकर (श्रमें चाऽवर्णं द्वचच् त्र्यच् ॥ ६।२।६०) इस स्वरविधायक सूत्र से श्रवर्णान्त पूर्वपद को श्राद्धदात्त स्वर प्राप्त है, सो नहीं होता, क्योंकि नलोग के श्रसिद्ध मानने से श्रवर्णान्त ही नहीं।

संज्ञाविधि—'पञ्चिभिः; सप्तिभः'—यहां पञ्चन् श्रोर सप्तन् शब्द के नकार का कोप हुआ है। उसको श्रसिद्ध मानकर पट्संज्ञा होती श्रोर तदाश्रय पट्संज्ञा के कार्यभी होते हैं। तुक्विधि—'ब्रह्मइभ्याम्; ब्रह्महिभः'—यद्दां नलोप को श्रसिद्ध मानकर जो कृत् के श्राश्रय से तुक्पाप्त है, सो नहीं होता।

यहां 'कृद्' प्रहण इसलिये है कि—'ब्रह्महच्छुत्रम्' यहां जो छुकाराश्रय तुगागम है, सो हो जावे, इत्यादि।

(प्रश्न) 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' इस उक्त सूत्रं से ही त्रिपादी के सब कार्य श्रक्तिद्ध हो जाते, फिर यह सूत्र किसलिये किया ?

(उत्तर) यह सूत्र नियमार्थ है, कि इतने ही विधियों के करने में तकार का लोप असिद्ध माना जावे, अन्यत्र नहीं। इससे—'राजीयित' यहां ईकारादेश अवर्णान्त मानकर हो जाता है, इत्यादि ॥ १२२॥

१६५-न मुने॥ १२३॥ ८। २।३॥

नाभाव करने में मुभाव असिद्ध नहीं होता, अर्थात् सिद्ध ही माना जाता है।

जैसे—'श्रमुना'—यहां 'श्रद्स्' शब्द के द्कार को मकार श्रौर श्रकार को उकारादेश त्रिपादी में होता है। उसको श्रसिद्ध नहीं मानने से घिसंश्रक से परे टा विभक्ति को ना श्रादेश हो जाता है। नाभाव कर लेने के पीछे जो मुभाव को श्रसिद्ध मानें, तो श्रदन्त श्रङ्ग को दीर्घ प्राप्त होता है, इसिं ये ऐसा श्रर्थ करना कि—'नाभाव के करने में श्रौर करने के पश्चात् भी मुभाव सिद्ध ही माना जावे' इत्यादि॥ १२३॥

१६६-वा०-संयोगान्तलोपो रोक्त्वे ॥ १२४ ॥ महा० ८ । २ । ६ ॥

यहां रु को उकारादेश करने में संयोगान्तलोप सिद्ध माना जाता है।

जैसे—'हरिवो मेदिनं त्वा'—यहां जो 'हरिवन्त्' शब्द में संयोगान्त तकार का खोप असिद्ध:माना जावे, तो हश् के न होने से उत्व प्राप्त नहीं होता, इत्यादि ॥ १२४ ॥

१६७-वा॰-सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वक्तव्यः ॥ १२५ ॥

महा० ६ | २ | ६ ॥

सवर्णदीर्घ एकादेश के करने में त्रिपादी में विद्यित सिच् प्रत्यय का लोप सिद्ध देश समझना चाहिये।

जैसे—'त्रलावीत्; त्रपावीत्'—यहां इद् से परे सिच् के सकार का लोप ईद् के परे हुत्रा है। पश्चात् उस सकार के लोप को त्रसिद्ध मानें, तो सवर्णदी पकादेश नहीं पावे, इत्यादि ॥ १२४॥

### १६८-वा॰-संयोगादिलोपः संयोगान्तलोपे ॥ १२६ ॥ महा० ८ । २ । ६ ॥

जो त्रिपादी में संयोगादि सकार ककार का लोप होता है, वह संयोगान्त स्रोप करने में सिद्ध माना जाने।

जैसे—'काष्ठतट्'—यहां संयोगादि ककार का लोप संयोगान्त लोप में सिद्ध मानने से संयोगान्त टकार का लोप नहीं होता, इत्यादि ॥ १२६ ॥

१६६-वा॰-निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेद्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः ॥ १२७॥ महा० ८ । २ । ६ ॥

जो निष्ठासंश्वक प्रत्ययों के स्थान में आदेश होते हैं, वे षत्व, खर, प्रत्यय और इट्विधि के करने में सिद्ध मानने चाहियें।

जैसे—पत्यविधि—'वृक्णः ; वृक्णवान्' यहां श्रोदित् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हुश्रा है। उसको सिद्ध मानने से (वश्यभ्रस्त्र०॥ ८।२।३६) इस सूत्र से पत्व नहीं होता, इत्यादि।

स्वरिविध—'चीर्चः'—यहां 'चीष' धातु से निष्ठा के परे इत्मात्र का लोप माना है। 'चीब्+इट्+क्न' इस अवस्था में निपातन से इट् का इ और क का त् इस प्रकार 'इत्' का लोप होकर क्र के अ में ब मिल के 'चीवः' बनता है। उसको सिख मानके (निष्ठा च द्वश्वजनात्।। ६।१।२०४) इससे आधुदात्त खर हो जाता है।

प्रत्ययविधि—'ज्ञीबेन तरित'=ज्ञीबक:—यहां भी उस लोप के सिद्ध मानने से ही द्वाचन लज्ञण उन् प्रत्यय होता है।

इट्विधि—'चीबः'—इसको जब तकार के स्थान में बकारादेश निपातन मानते हैं, तब उसको सिद्ध मानकर इट् नहीं होता ॥ १२७॥

२००-वा०-प्तुतिस्तुिगवधौ छे च ॥ १२८ ॥ महा० ८ । २ । ६ ॥

जो त्रिपादी में विधान किया हुआ प्लुत स्वर है, वह छुकार के परे तुक् विधि करने में सिद्ध ही समभाना चाहिये।

जैसे—'अग्ना३इच्छ्रत्रम्। पटा३उच्छ्रत्रम्'—यहां प्लुतको सिद्ध मानकर तुक् का आगम हो जाता है ॥ १२८॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

### २०१-वा०-श्चुत्वं धुइविभौ ॥ १२६ ॥ महा० ८ । २ । ६ ॥

जो शकार चवर्ग के योग में सकार तवर्ग को शकार चवर्ग होते हैं, उनको धुड्विधि में सिद्ध मानना चाहिये।

जैसे—'श्रद्+श्र्च्योतित'—यहां शकार को सिद्ध मानने से (ड: सि घुट्।। द।३।२६) इस सूत्र से घुट् का त्रागम नहीं होता।। १२६।।

२०२-वा०-ग्रभ्यासजरत्वचर्त्वमेत्वतुकोः॥१३०॥ महा०८।२।६॥

जो श्रभ्यास में भानों को जश्त्व श्रीर चर्त्व त्रिपादी में कहा है, उसको पत्व श्रीर तुक् के करने में सिद्ध मानना चाहिये।

जैसे—'बमण्तु: ; बमणु:'—यहां अभ्यास के मकार को बकारादेश हुआ है। उसको सिद्ध मानने से आदेशादि धातु को एत्व नहीं होता। चर्च्य—'उच्छिषति'—यह 'उच्छी विवासे' धातु का प्रयोग है, उसके अभ्यास में चकारादेश होता है।, उसको असिद्ध मानने से तुक् पाता है, सो सिद्ध मानकर न होवे॥ १३०॥

२०३-वा०-द्विवचने परसवर्षत्वम् ॥ १३१ ॥ महा० ८ । २ । ६ ॥

जहां जहां (श्रनिच च॥ ८।४।४७) करके द्विवचन करते हैं, वहां २ परसवर्ण सिद्ध ही मानना चाहिये।

जैसे—'सय्य्यन्ता ; सव्य्वत्ताः ; यहँरँ बोकम् ; तरँरँ बोकम् दिर्यादि में अनुस्वार को परसवर्ण आदेश होता है। उसको सिद्ध मानने से द्विवचन होता है, इत्यादि ॥ १३१ ॥

इति परिभाषात्रकरणं समाप्तम्॥



### त्रथं साधनप्रकरणम्

### अथ स्वरसन्धिः ॥

२०४-एकः पूर्वपरयोः ॥ १३२ ॥ ६ । १ । ८४ ॥

यह अधिकार सूत्र है।

यहां से घ्रागे जो २ कहेंगे, वह सब पूर्व पर के स्थान में एकादेश समसना योग्य है ॥ १३२ ॥

२०५-अकः सवर्षे दीर्घः ॥ १३३ ॥ ६ । १ । १०० ॥

श्रक प्रत्याहार से सवर्ण श्रच् परे हो, तो पूर्व पर के स्थान में सवर्ण दीर्घ एकादेश हो।

'अक्' प्रत्याहार में पांच वर्ण लिये जाते हैं—'श्र इ उ ऋ लू'। इनकी परस्पर सिन्ध दिखलाते हैं। श्रवर्ण में परस्पर चार प्रकार के सिन्ध होते हैं—'श्र+श्र; श्र+श्रा; आ+श्रा; श्रा+श्रा'। इन दो २ को मिलके सवर्ण दीर्घ श्राकार हो जाता है। जैसे—'परम+श्रर्थः'=परमार्थः। 'वेद+श्रादिः'=वेदादिः।'विद्या+श्रर्थां'=विद्यार्था। 'विद्या+श्रानन्दः'=विद्यानन्दः। श्रन्य शब्दों में भी श्रवर्ण सिन्ध इसी प्रकार के श्रावेंगे।

इवर्ण में भी चार भेद हैं—'इ+इ; इ+ई; ई+इ; ई+ई'। जैसे—'प्रति+इतिः'= प्रतीतिः। 'भूमि+ईशः'=भूमीशः। 'मही+इनः'=महीनः। 'कुमारी+ईहते'=कुमारीहते।

पैसे उवर्ण का भी चार प्रकार का विषय है। जैसे—'उ+उ; उ+ऊ; ऊ+उ; ऊ+ऊ'। क्रम से उदाहरण—'विधु+उदयः'=विधृद्यः। 'मधु+ऊर्णा'=मधूर्णा। 'चमू+ उद्गमः'=चमूद्गमः। 'बधू+ऊतिः'=बधूतिः।

ऋवर्ण के विषय में भी पेसा ही समभना, परन्तु लिखते भी हैं। 'पितु+ ऋगुम्'=पितृणम्, इत्यादि॥

परन्तु 'ऋ, लू' दो वर्णों में इतना विशेष है-

२०६-वा०-ऋति ऋ वा वचनम् ॥ १३४ ॥ ६ । १ । १०० ॥

हस ऋकार से सवर्ण ऋकार के परे पूर्व पर के स्थान में विकल्प करके हस्य ऋकार पकादेश होता, श्रोर दूसरे पत्त में दीर्घ एकादेश होता है।

सूत्र से सवर्ण दीर्घ एकादेश प्राप्त है, इसलिये यह वार्तिक पढ़ा है। जैसे— 'होत्र+ऋकारः'=होत्रकारः। द्वितीय पद्म में—'होत्र+ऋकारः'=होतृकारः॥

### २०७-वा०- लति ल वा वचनम् ॥ १३४ ॥ ६ । १ । १०० ॥

ऋकार लकार के स्थान प्रयक्ष एक नहीं हैं, इसिवये सवर्णसंशा विषय में वार्तिक लिख चुके हैं, श्रौर श्रक् प्रत्याहार में भी ऋ ल दोनों पढ़े हैं।

त्रमुकार से हस्व लकार के परे पूर्व पर के स्थान में विकल्प करके हस्व लकार एकादेश हो।

जैसे—'होत्-एकार:'=होत्लकार:। श्रौर जिस पन्न में ऋकार लकार को मिलके लकार पकादेश नहीं होता, वहां लकार के दीर्घ नहीं होने से दीर्घ ऋकार पकादेश ही होजाता है। जैसे—'होत्कार:'। इन दोनों की परस्पर सवर्ण संझा का फल भी यही है कि दोनों को मिलके पकादेश हो जावे।। १३३—१३४।।

### २०८- च्याद्गुणः ॥ १३६ ॥ ६ । १ । ८७ ॥

अवर्ण से असवर्ण अच परे हो, तो पूर्व पर के स्थान में गुण एकादेश होता है।

जैसे—'ग्र+इ। श्र+ई। ग्र+उ। ग्र+ऊ। ग्र+ऋ। ग्रा+इ। ग्रा+ई। ग्रा+उ। श्रा+ऊ। ग्रा+ऋ'। यह दश प्रकार का गुण एकादेश होता है। क्रम से उदाहरण—

'प्र+इद्म्'=प्रदेम् । 'प्रम+ईशः'=प्रमेशः । 'सूर्य+उद्यः'=सूर्योद्यः । 'शब्द+ ऊद्दा'=शब्दोहा । 'ब्रह्म+ऋषिः'=ब्रह्मिषः, यद्दां अकार ऋकार के स्थान में (उरण् रपरः ॥ १।१।५१) सूत्र से रपर अर्थात् 'अर्' आदेश हो गया है । 'कन्या+इयम्'= कन्येयम् । 'महा+ईश्वरः'=महेश्वरः । 'कृपा+उद्घाटनम्'=कृपोद्घाटनम् । 'रक्ता+ऊहः'= रक्तोहः । 'महा+ऋषिः'=महर्षिः । इसी प्रकार अन्य शब्दों में भी उदाहरण् आवेंगे ॥ १३६॥

### २०६-वृद्धिरेचि ॥ १३७ ॥ ६ । १ । ८८ ॥

ब्रवर्ण से पच् प्रत्याहार परे हो, तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि पकादेश हो जाय।

यह सूत्र गुणादेश का अपवाद है। एच् प्रत्याहार में चार वर्ण आते हैं—'ए ऐ ओ औ'। इन चार वर्णों के परे वृद्धि होती है। 'अ+ए। अ+ऐ। अ+ओ। अ+ओ। आ+ए। आ+ऐ। आ+ओ। आ+ओ'। इसी रीति से आठ प्रकार की वृद्धि होती है। जैसे—

'ब्रह्म+एकम्'=ब्रह्मैकम्।'परम+ऐश्वर्यम्'=परमैश्वर्यम्।'गुड+स्रोदनः'≕गुडौदनः। 'परम+स्रोषधम्'=परमोषधम् । 'ज्ञमा+एका'=ज्ञमैका । 'विद्या+ऐहिर्का'=विद्यैहिकी। ,महा+स्रोजस्वी'=महोजस्वी। 'स्नट्वा+स्रोपगवः'=स्नट्वोपगवः ॥ १३७॥ श्रब इन गुण वृद्धि के विशेष अपवादकप सूत्र लिखते हैं—

२१०-एत्येघत्यृद्सु ॥ १३८ ॥ ६ । १ । ८६ ॥

अवर्ण से पति, पधित और ऊठ् परे हों, तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश हो।

यहां 'एति' और 'एधित' इन दो धातुओं के परे (एङि पररूपम् ॥ ६।१। ६४) से पररूप एकादेश पाता था, इसलिये वृद्धि का आरम्भ किया है। और ऊठ् आदेश में गुण पाता था, उसका अपवाद है।

'उप+पति'=उपैति । 'उप+पमि'=उपैमि । 'प्र+पधते'=प्रैधते । 'उप+पधते'=उपैधते ।

ऊठ् —'प्रष्ठ+ऊहः'=प्रष्ठीहः । 'प्रष्ठ+ऊहे'=प्रष्ठीहे ॥ १३८ ॥

२११-वा०-श्रचादृहिन्याम् ॥ १३६ ॥ ६ । १ । ८६ ॥

श्रद्ध शब्द के त्रागे ऊहिनी शब्द हो, तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है। जैसे -'श्रद्ध+ऊहिनी'=श्रद्धौहिगी, यहां गुण एकादेश की बाधक वृद्धि है।। १३६।।

२१२-वा०-प्राद्होढोढ्येषैट्येषु ॥ १४० ॥ ६ । १ । ८६ ॥

प्र उपसर्ग के त्रागे ऊह, ऊढ, ऊढि, एष त्रौर एष्य शब्द हों, तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है।

जैसे —'प्र+ऊहः'≔प्रौहः। 'प्र+ऊढः'≔प्रौढः। 'प्र+ऊढिः'≔प्रौढिः। 'प्र+एषः'≔प्रैषः ; 'प्र+एष्यः'≔प्रैष्यः,इन दो शब्दों में पूर्व पर के स्थान में पररूप को बाध के वृद्धि होती है।।१४०।।

२१३-वा०-स्वादिरेरिणोः ॥ १४१ ॥ ६ । १ । ८६ ॥

स्व शब्द के आगे इर और इरिन् शब्द हों, तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि पकादेश होता है।

जैसे—'ख+इरम्'=स्वैरम्। 'ख+इरी'=स्वैरी।यहां गुण्पाता था,सो न हुआ।।१४१॥

२१४-वा॰-ऋने च तृतीयासमासे ॥ १४२ ॥ ६ । १ । ८६ ॥

अवर्णान्त पूर्वपद के आगे तृतीयासमास में ऋत शब्द हो, तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है।

जैसे—'सुखेन+ऋतः'=सुखार्तः । 'दुःखेन+ऋतः'=दुःखार्तः ।

यहां 'ऋत' प्रहण इसिनये हैं कि—'सुख+इतः'=सुखेतः, ऐसे वाक्यों में वृद्धि न हो। 'तृतीया' प्रहण इसिनये हैं कि—'परम+ऋतः'=परमर्तः, यहां भी वृद्धि एकादेश न हो। श्रोर 'समास' प्रहण इसिनये हैं कि—'सुखेन+ऋतः'=सुखेनर्तः, यहां भी वृद्धि एकादेश न हुआ। यहां गुण श्रोर प्रकृतिभाव भी पाया था।। १४२।।

### २१५-वा०-प्रवत्सतरकम्बलवसनानां च ऋषे॥१४३॥६॥१८६॥

प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन इन शब्दों के आगे ऋण शब्द हो, तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है।

जैसे—'प्र+ऋणम्'=प्रार्णम्। 'वत्सतर+ऋणम्'=वत्सतरार्णम्। 'कम्बल+ऋणम्'= कम्बलार्णम्। 'वसन+ऋणम्'=वसनार्णम्।यद्दां सर्वत्र गुण् श्रीर प्रकृतिभाव पाया था॥१४३॥

### २१६-वा०-ऋणदशाभ्यां च ॥ १४४ ॥ ६ । १ । ८६ ॥

त्रहण और दश शब्द के आगे ऋण शब्द हो, तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है।

जैसे—'ऋण+ऋणम्'=ऋणार्थम्। 'दश+ऋणम्'=दशार्थम्। यहां भी गुण झौर प्रकृतिभाव दोनों पाये थे॥ १४४॥\*

### २१७-उपसगीहति घाती ॥ १४४ ॥ ६ । १ । ६१ ॥

अवर्णान्त उपसर्ग से परे ऋकारादि धातु हो, तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश हो जाय।

यह सूत्र भी गुण एकादेश का बाधक है। 'प्र+ऋच्छ्रति'=प्राच्छ्रेति। 'उप+ ऋच्छ्रति'=उपाच्छ्रेति। 'प्र+ऋभ्रोति'=प्राभ्रोति।

यहां 'उपसर्ग' प्रहण इसलिये है कि—'खट्वा+ऋच्छति'=खट्वच्छीति, यहां वृद्धि न हुई ॥ १४४ ।।

### २१८ — वा सुप्यापिश ले: ॥ १४६ ॥ ६ । १ । ६२ ॥

अवर्णान्त उपसर्ग से परे ऋकारादि सुबन्त धातु हो, तो पूर्व पर के स्थान में विकल्प करके वृद्धि एकादेश होता है, पद्म में गुण हो जाय, परन्तु यह बात आपिशिका आचार्य के मत में है अन्य के नहीं।

यहां पूर्वस्त्र की अनुवृत्ति आती है। 'उप+ऋगीयति'=उपाणीयति ; उपणीयति। विकल्प के लिये 'वा' शब्द तो पढ़ा ही है फिर जो यहां 'आपिशिलि' का प्रहण है, सो सत्कारार्थ हैं ॥ १४६॥

Ę

<sup>\*</sup> इसके प्रचात् यहां प्रथमावृत्ति में 'ब्राटब्ब' सूत्र बौर व्याख्यात था. जो कि वर्थाप्रसङ्ख अन्यत्र स्याख्यात होने से द्वितीयावृत्ति में जान बूसकर निकास दिवा गया। सातवीं शावृत्ति तक यहाँ कम चला किंतु ब्रष्टमावृत्ति में भूज से पुनः दे दिया गया।

# २१६-एकि पररूपम् ॥ १४७ ॥ ६ । १ । ६४ ॥

अवर्णान्त उपसर्ग से परे एङादि धातु हो, तो पूर्व पर के स्थान में परक्रण एकादेश होता है।

यह सूत्र वृद्धि का अपवाद है। 'प्र+पंत्तति'=प्रेत्तति। 'उप+पत्तति'=उपेत्तति। 'प्र+स्रोषति'=प्रोषति। 'उप+स्रोषति'=उपोषति॥ १४७॥

२२०-वा०-एवे चानियोगे ॥ १४८ ॥ ६ । १ । १४ ॥

अनियोग अर्थात् अनियत अर्थ में अवर्णान्त से परे एव शब्द हो, तो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश हो जाय।

'इह्न+एव'=इहेव । 'श्रद्य+एव'=श्रद्येव ।

यहां 'श्रनियोग' ग्रहण इसिलये है कि—इहैव भव मा स्म गाः, यहां नियोग के होने के कारण पररूप न हुआ ॥ १४८॥

२२१-वा॰-शकन्ध्वादिषु च ॥ १४६ ॥ ६ ॥ १ ॥ ६४ ॥
शकन्धु आदि शब्दों में पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है ।
जैसे—'शक+अन्धुः'=शकन्धुः । 'कुल+अटा'=कुलटा, इत्यादि ॥ १४६ ॥
'सीमन्त' शब्द भी शकन्ध्वादि शब्दों के सदश है, परन्तु इस में भेद यह है कि—

२२२-वा॰-सीमन्तः केशेषु ॥ १५०॥ ६॥ १॥ ६४॥ केश अर्थ वाच्य हो, तो सीम शब्द से अन्त शब्द के परे पूर्व पर के स्थान में

परकप एकादेश हो जाय।

जैसे—'सीम+अन्तः'=सीमन्तः।

यहां 'केश' प्रहण इसिलये है कि अन्यत्र पररूप एकादेश न हो। अर्थात् जैसे सीमान्तः, यहां पररूप एकादेश न हुआ, किन्तु सवर्णदीर्घ एकादेश हो गया॥१४०॥

२२३-वा०-स्रोत्वोष्ठयोः समासे वा ॥ १४१ ॥ ६ । १ । ६४ ॥

जो अवर्णान्त के आगे ओतु, ओष्ठ शब्दों का समास किया हो, तो विकल्प करके पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है।

पत्त में बृद्धि हो जाती है, क्योंकि इस वार्त्तिक से वृद्धि की प्राप्ति में परक्षप एकादेश किया है। जैसे-'स्यूल+त्रोतुः'=स्यूलोतुः, स्यूलौतुः। 'विम्ब+त्रोष्ठी'=विम्बोष्ठी, विम्बौष्ठी।

यहां 'समास' प्रहण इसिलये हैं कि—एहि बालौतुरायाति, यहां समास के न

२२४-वा०-एमन्नादिषु छन्दसि ॥ १५२॥ ६। १। ६४॥

वेदस्थ प्रयोगों में अवर्ण से परे एमन् आदि शब्द हों, तो परक्रप एकादेश हो।

जैसे—'श्रपां त्वा+पमन्'=श्रपां त्वेमन्। 'श्रपां त्वा+श्रोद्मन्'=श्रपां त्वोद्मन्, इत्यादि। यहां वृद्धि पाई थी, सो न हुई॥ १४२॥

२२५-स्रोमाङोश्च ॥ १५३ ॥ ६ । १ । ६५ ॥

जो अवर्णान्त शब्द से परे श्रोम् श्रौर श्राङ् शब्द हों, तो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है।

जैसे—'कन्या+श्रोमित्युवाच'=कन्योमित्युवाच।

यह नियम केवल आङ्विषयक ही नहीं है, किन्तु—'आ+उनित्त'=ओनित । 'श्रद्य+ओनित्त'=अद्योनित । 'कदा+ओनित्त'=कदोनित्त, जैसे यहां आकार का उकार के साथ पररूप एकादेश होता है, वैसे उसको पर कां आदिवत् मान के पुनः पररूप एकादेश होता है। यहां भी वृद्धि प्राप्त थी, सो न हुई ॥ १४३॥ \*

२२६-अव्यक्ताऽनुकरणस्यात इती ॥ १४४ ॥ ६ । १ । ६८ ॥

जो इति शब्द परे हो, तो अव्यक्त शब्द का जो अनुकरण उसके अत् भाग को परक्रप पकादेश हो जावे।

जिसमें श्रकारादि वर्ण स्पष्ट न. निकलें, उसको 'श्रव्यक्त' शब्द कहते हैं। 'श्रजुकरण' वह कहाता है कि किसी मजुष्य ने जैसा शब्द किया हो उसका प्रतिशब्द—नक़ल—करनी।

जैसे-'पटत्+इति'=पटिति । 'घटत्+इति'=घटिति, इत्यादि ।

यहां 'अव्यक्त का अनुकरण' इसलिये कहा है कि—'जगत्+इति'=जगदिति, ऐसे वाक्यों में पररूप एकादेश न हुआ।। १४४॥

२२७-वा०-इतावनेकाज्यहणं श्रद्रथम् ॥ १४४ ॥ ६ । १ । ६८ ॥ जहां इति शब्द के परे अव्यक्त शब्द के अनुकरण को पररूप पकादेश किया है, वहां अनेकाच् अव्यक्त शब्द को हो।

अर्थात्—'श्रत्+इति'=श्रदिति, यहां एकाच् शब्द के 'श्रत्' भाग को परकप न हुआ ॥ १४४ ॥

\* इसके प्रचात् यहां प्रथमावृत्ति में 'उस्यपदान्तात्' द्यौर 'श्रतो गुयो' ये दो सूत्र और व्याक्यात थे, 'जो कि यथाप्रसङ्ग अन्यत्र व्याख्यात होने से द्वितीयावृत्ति में जान व्यक्तर निकास दिये गये। सातवीं श्रावृत्ति तक यही क्रम चला, किन्तु श्रष्टमावृत्तिः में सूल से पुनः दे दिये गये॥

# २२८-तस्य परमाम्रेडितम् ॥ १४६ ॥ ८ । १ । २ ॥

जो दिवंचन का पर भाग है, उसकी आम्रेडित संज्ञा होती है।

जैसे—'ऋक् ऋक्' यहां जो परे ऋक् शब्द है, उसको आम्रेडित कहते हैं। इसी प्रकार सर्वत्र समझना ॥ १४६॥

२२६-नाम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वा ॥ १५७ ॥ ६ । १ । ६६ ॥

जो आम्रेडितसंज्ञक अव्यक्त शब्द के अनुकरण का अत् भाग हो, उसको इति शब्द के परे परक्षप एकादेश न हो, किन्तु जो आम्रेडितसंज्ञक के अन्त में तकार है, उसको विकल्प करके परक्षप एकादेश होवे।

'पटत् पटत्' यहां परभाग आम्रेडित कहाता है। 'पटत् पटत्+इति'=पटत् पटैति। ग्रीर जिस पद्म में पररूप न हुआ, वहां—पटत्पटिदिति॥ १४७॥

२३०-वा०-नित्यमाम्रेडिते डाचि पररूपङ्कर्तव्यम् ॥ १५८॥ ६।१।६६॥

इस वार्त्तिक का प्रयोजन यह है कि जो अनुकरण में डाच् प्रत्ययान्त आम्रेडित परे हो, तो पूर्व के अन्त्य के तकार को नित्य परक्षप एकादेश हो जाय।

जैसे—'पटत्+पटा' यहांतकार को पर अर्थात् पकार का रूप हो जाता है। पटपटा करोति; पटपटायते। घटवटा करोतिः घटवटायते। शरशरा करोति; शरशरायते।

काशिकावाले जयादित्य आदि लोगों ने इस वार्त्तिक का सूत्रपाठ में व्याख्यान किया है, सो सत्य नहीं। महाभाष्य के देखने से स्पष्ट विदित होता है कि यह सूत्र नहीं है, किन्तु लेखक भ्रम से सूत्रों में लिखा गया है॥ १४८॥ \*

२३१-एङः पदान्तादित ॥ १४६ ॥ ६ । १ । १०८ ॥

प्रकादेश होता है।

जैसे—'ग्रग्ने+ग्रन्न'=ग्रग्नेऽत्र । 'वायो+ग्रंत्र'=वायोऽत्र । 'व्राह्मणो+ग्रव्रवीत्'= ब्राह्मणोऽव्रवीत् । 'ग्रुर्वे+ग्रदात्'=गुर्वेऽदात् ।

'श्रत्' ग्रहण इसलिये है कि-वायो+इति, यहां पूर्वरूप न हुआ।। १४६।।

\* इसके परचात् यडां प्रथमावृत्ति में 'सम्प्रसार्याच' सुत्र और म्बास्यात् या, जो कि संयाप्रसङ्ग धन्यत्र स्थास्यात होने से द्वितीयावृत्ति में जान बूमकर निकाल दिया गया । सातवीं बावृत्ति तक यही कम चला, किन्तु प्रष्टमावृत्ति में मूल से पुनः दे दिया गया ॥

# २३२-प्रकृत्यान्तःपाद्मव्यपरे ॥ १६० ॥ ६ । १ । ११४ ॥ वहां से लेके सात सूत्रों का विषय वेदों ही में समसना।

जहां पदान्त एङ् से परे वकार यकार न हों, तो श्रकार के परे एङ् प्रकृति करके श्रर्थात् ज्यों-का-त्यों बना रहे, परन्तु वह पाद के बीच में हो।

जैसे — त्रारे श्रस्मे च श्र्यवते । त्रयो श्रस्य पादाः । उपप्रयन्तो श्रध्वरम् । शुक्रं दुदुहे श्रह्नयः । यजिष्ठो श्रध्वरेष्वीड्यः, इत्यादि ।

यहां 'पाद के बीच में' इसलिये कहा है कि—द्विषतो वधोऽसि। रत्नसां भागोऽसि, इत्यादि में एङ प्रकृति करके न रहे। 'वकार यकार परे न हों' यह इसलिये है कि—तेऽवदन्। तेऽयु:, इत्यादि में भी प्रकृतिमाव न हो॥ १६०॥

२३३-अब्याद्वचाद्वक्रमुरव्रतायम्बन्त्ववस्युषु च ॥ १६१ ॥ ६। १। ११४ ॥

पदान्त एङ् से अञ्यात्, अवद्यात्, अवक्रमुः, अवत, अयम्, अवन्तु, अवस्यु इन उत्तरपदों में वकार यकार पर भी अकार परे हो, तो पदान्त एङ् प्रकृति करके रह जावे।

जैसे-वसुभिनों अव्यात् । मित्रमहो अवद्यात् । मा शिवासो अवक्रमुः । ते नो अवतः । शतधारो अयं मणिः । ते नो अवन्तु पितरः । शिवासो अवस्यवः, इत्यादि ॥ १६१ ॥

२३४-चजुब्युरः ॥ १६२ ॥ ६ । १ । ११६ ॥

यजुर्वेद में अकार के परे उरः शब्द का उरो पदान्त एङ्होता है, वह प्रकृति करके रहे। जैसे—उरो अन्तरिक्तम्, इत्यादि ॥ १६२ ॥

२३५-त्रापो जुवाणो वृष्णो वर्षिष्ठे स्रम्बे स्रम्बाले स्रम्बिके पूर्वे ॥ १६३ ॥ ६ ॥ १ ॥ ११७ ॥

यजुर्वेद में आपो, जुषाणो, वृष्णो, वर्षिष्ठे ये एङन्त शब्द अकार के पूर्व हों, तो प्रकृति करके रहें, और अम्बिके शब्द से पूर्व अम्बे, अम्बाले हों, तो ये दो शब्द इसी प्रकार रहें।

जैसे—ग्रापो ग्रस्मान् मातरः ग्रन्थयन्तु । जुषाणो त्रग्निवेतु स्वाहा । वृण श्रंशभ्यां गभस्तिभिः । वर्षिष्ठे त्रिधनाके । ग्रम्बे ग्रम्बाले ग्रम्बिके ॥ १६३ ॥

# २३६-अङ्ग इत्यादी च ॥ १६४ ॥ ६ । १ । ११८ ॥

जो यजुर्वेद में श्रकार परे हो, तो श्रङ्गे एङन्त शब्द प्रकृति करके रह जावे, श्रौर को श्रङ्गे इसके परे श्रादि एङ् है, सो भी प्रकृति करके रहता है।

जैसे-ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे अदीध्यत् । ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यत् इत्यादि ॥ १६४ ॥

### २३७- अनुदात्ते च कुघपरे ॥ १६४ ॥ ६ । १ । ११६ ॥

यजुर्वेद में जिस अनुदात्त अकार से परे कवर्ग और धकार हों, उसके परे पदान्त एक प्रकृति करके रह जावे।

जैसे - अयं सो अग्नि:। अयं सो अध्वरः, इत्यादि ॥ १६४ ॥

#### २३८-अवपथासि च ॥ १६६ ॥ ६ । १ । १२० ॥

श्रवपथास् इस श्रनुदात्त क्रिया के परे पदान्त जो एङ् है, वह प्रकृति करके रहे, यजुर्वेद में।

जैसे - त्रिक्ट्रेभ्यो अवपथाः, इत्यादिः॥ १६६ ॥

#### २३६-सर्वत्र विभाषा गोः ॥ १६७ ॥ ६ । १ । १२१ ॥

सर्वत्र अर्थात् लोक और वेद में गो शब्द से परे इस्त अकार रहे, तो गो शब्द का पङ् अर्थात् ओकार विकल्प करके प्रकृति अर्थात् ज्यों का त्यों बना रहे, और पद्म में सन्धि भी हो जाय।

गो अप्रम्। गोऽप्रम्। गो अङ्गानि, गोऽङ्गानि, ऐसे २ दो २ रूप होते हैं ॥ १६७॥

### २४०-अवङ् स्फोटायनस्य ॥१६८ ॥ ६ । १ । १२२ ॥

स्फोटायन आचार्य के मत में अच्मात्र के परे गो शब्द के ओकार के स्थान में अवङ् आदेश हो ही जाता है।

यहां पूर्व सूत्र से 'गो' शब्द की अनुवृत्ति आती है। जैसे—'गो+अश्वम्'= गवाश्वम्, यहां तो आदेश हुआ, परन्तु जहां अन्य आचार्यों के मत में अवङ् आदेश नहीं होता। वहां पूर्वरूप और प्रकृतिभाव होने से—'गोऽश्वम्' और 'गो अश्वम्' ये दो रूप भी होते हैं ॥ १६८॥

# २४१-इन्द्रेच॥ १६६॥ ६।१।१२३॥

गो शब्द के परे इन्द्र शब्द हो, तो नित्य अवङ् आदेश हो जाता है। जैसे—'गो+इन्द्रः'=गवेन्द्रः॥ १६६॥

२४२-प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ॥१७० ॥ ६ । १ । १२४ ॥

प्लुत संज्ञा त्रष्टमाध्याय में लिखी, श्रीर प्रगृह्य संज्ञा इसी प्रन्थ के श्रादि में लिख चुके हैं।

प्लुत श्रीर प्रगृह्यसंज्ञक शब्द अच् प्रत्याद्वार के परे ज्यों के त्यों बने रहें।

जैसे—देवदत्त ३इहागच्छ । माणवक ३इहागच्छ । हे ३इन्द्र । हे ३म्रग्ने, इत्यादि प्लुत के उदाहरण हैं। जहां २ प्लुत संज्ञा होती है, वहां २ उनकी परस्पर सन्धि कदापि नहीं होती। यहां तीन का श्रङ्क सर्वत्र प्लुत का चिह्न है।

प्रगृह्य संज्ञा के उदाहरण क्रम से ये हैं। ईकारान्त द्विवचन—ग्रग्नी इमी। श्रम्नी श्रन्न। ऊकारान्त द्विवचन—वायू इह। वायू श्रन्न। एकारान्त द्विवचन—माले इमे। खट्वे इमे। कन्ये श्रासाते। श्रदस् शब्द के ईकार ऊकार के—श्रमी श्रासते। श्रम् श्रासाते इत्यादि॥ १७०॥

२४२-म्याङोऽनुनासिकश्चन्दसि बहुत्तम् ॥ १७१ ॥ ६ । १ । १२५ ॥

वेद में आङ् उपसर्ग को अनुनासिक आदेश और प्रकृतिभाव भी होता है।

जैसे—ग्रभ्र ग्राँ ग्रपः। गभीर ग्राँ उप्रपुत्रः, इत्यादि। 'बहुत्त' के कहने से कहीं नहीं भी होता। जैसे—इन्द्रो बाहुभ्यामातरत्। ग्रा ग्रतरत्, यहां न तो ग्रनुनासिक श्रोर न प्रकृतिभाव हुग्रा॥ १७१॥

२४४-इकोऽसवर्षे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ॥ १७२ ॥ ६ । १ । १२६ ॥

शाकल्य त्राचार्य के मत में इक् प्रत्याहार से परे त्रसवर्ण ऋच् हो, तो उस इक् को प्रकृतिभाव और हूस्त ऋदिश हो।

'इ—म्रा। ई—म्रा। ई—म्रा। उ—म्रा। उ—म्रा। म्रा—म्रा। म्रा । म्रा । इ—न्रा। इ—न्रा। इ—न्रा। म्रा—इ। म्रा—उ। इ—ए। इ—ऐ। इ—म्रो। इ—म्रो। इत्यादि क्रम से दो २ प्रयोग बनेंगे। म्रान्य म्राचार्यों के मत में जो सन्धि पाती है वह हो जावेगी।

सन्धि अत्र ; सन्ध्यत्र । अग्नि आधानम् ; अग्न्याधानम् । कुमारि अत्र ; कुमार्यत्र, यद्दां ईकार दीर्घ था, परन्तु इसी सूत्र से इस्त हो गया। भूमि उद्धृता ; भूम्युद्धृता। कुमारि ऊति: ; कुमार्य्यूति: । कुमारि ऋच्छित ; कुमार्य्यूति । कुमारि खेवत ; कुमार्य्येहत। कुमारि औहत ; कुमार्य्येहत। कुमारि औहत ; कुमार्य्येहत।

वधु त्रागमनम् ; वध्वागमनम् । वधु इन्दति ; वध्वन्दति । वधु ईहते ; वध्वीहते । वधु त्रमृच्छति ; वध्वृच्छति । वधु एति ; वध्वेति । वधु त्रोखति ; वध्वोखति । वधु ऐधिष्ट ; वध्वैधिष्ट । वधु त्रौर्दिष्ट ; वध्वौर्दिष्ट ।

पितृ श्रयनम् ; पित्रयनम् । पितृ श्राद्रः ; पित्राद्रः । पितृ इतुः ; पित्रितुः । पितृ ईहा ; पित्रीहा । होतृ उला ; होत्रुला । पितृ ऊहः ; पित्रूहः, इत्यादि असंख्य प्रयोग बनते हैं ।

यहां 'श्रसवर्ण' प्रहण इसलिये हैं कि—'कुमारी+ईहते'=कुमारीहते, इसके दो प्रयोग न हों, किन्तु नित्य ही दीर्घ एकादेश हो जावे । श्रीर 'शाकल्य' प्रहण श्रादरार्थ है ॥ १७२॥

२४५-वा०-सिन्नित्त्यसमासयोः शाकलप्रतिषेषः॥१७३॥६।१।१२६॥

सित् प्रत्यय के परे श्रीर नित्यसमास में शाकल श्रर्थात् इस 'इकोऽसवर्षे' । सूत्र का कार्य न हो ।

'ऋतु+इयः' यहां 'इयः' सित् प्रत्यय है. इसके परे प्रकृतिभाव नहीं होता। ऋतियः, यह एक ही प्रयोग होता है। नित्यसमास—वि आकरणम्=व्याकरणम्। कुमारी अर्थः=कुमार्य्यर्थः, यहां प्रकृतिभाव और हस्त्र नहीं होता॥ १७३॥

२४६-वा०-ईषा अचादिषु च छन्दासि प्रकृतिभावमात्रम् ॥१७४॥ ६ । १ । १२६ ॥

जहां जहां वैदिक प्रयोगों में प्रकृतिभाव उक्त सूत्र के विषयों से पृथक् आवे, वहां वहां 'ईषा अत्ता' आदि शब्दों के समान सममना।

जैसे-ईषा अचाः। का ईमिरे पिशंगिका। पथा अगमन्, इत्यादि॥ १७४॥

२४७-ऋत्यकः ॥ १७५ ॥ ६ । १ । १२७ ॥

जो श्रक् प्रत्याहार से परे इस्व ऋकार हो, तो वह शाकल्य ऋषि के मत में प्रकृतिभाव श्रोर इस्व होता, श्रोर श्रन्य श्राचार्यों के मत में नहीं होता है। 'खट्वा+ऋश्यः'=खट्व ऋश्यः। 'माला+ऋश्यः'=माल ऋश्यः, यहां ह्रस्व ऋौर प्रकृतिभाव हुआ। और—खट्वश्यः; मालश्यः, यहां न हुआ। इत्यादि प्रयोग बनते हैं।

यहां 'श्रक्' प्रहर्ण इसिलये है कि —कुमारावृषी, यहां सिन्ध होजाय ॥ १७४॥

२४८-अप्तुनवदुपस्थिते ॥ १७६ ॥ ६ । १ । १२८ ॥

जो प्लुत से परे उपस्थित अर्थात् अनार्ष इति शब्द हो, तो प्लुत को अप्लुतवत् कार्य हो, अर्थात् प्लुत को प्रकृतिभाव न हो।

जैसे—'सुमद्रा३इति'=सुमद्रेति । 'सुमङ्गला ३इति'=सुमङ्गलेति । 'सुश्लोका३ इति'=सुश्लोकेति ।

जिन शब्दों की प्रगृह्यसंज्ञा होती है, उनमें से किसी २ की प्लुत संज्ञा भी होती है। जैसे — अभी ३इति, इत्यादि। यहां प्लुत को अप्लुतवत् नहीं हुआ, क्योंकि प्रगृह्य संज्ञा को मान के प्रकृतिभाव हो जाता है। १७६॥

२४६-ईरे चाऋवम्मेणस्य ॥ १७७ ॥ ६ । १ । १२६ ॥

जो प्जुत ईकार है, वह चाक्रश्मीण श्राचार्य के मत में श्रप्जुतवत् होता है, श्रर्थात् उसको प्जुत का कार्य नहीं होता।

'चिनु हो ३इदम्'=चिनु हो दम् । 'सुनु ही ३इदम्'=सुनु हो दम्, इत्यादि । यहां भी पूर्व सूत्र से प्रकृतिभाव हो आता, परन्तु यह सूत्र उपिश्यत से अन्यत्र ही अप्लुतवत् करता है ॥ १७०॥

२५०-इको यणिच ॥ १७८ ॥ ६ । १ । ७७ ॥

इक् प्रत्याहार अर्थात् 'इ उ ऋ ल' इन चार वर्णों से परे अच् हो, तो इन के स्थान में कम से यण् अर्थात् 'य व्र्ल्' ये चार वर्ण होजावें।

जैसे—'वापी+अश्वः'=वाप्यश्वः। 'कुमारी+अपि'=कुमार्य्यपि, यहां बहिरक्रलक्षण् यणादेश को असिद्ध मानकर संयोगान्तलोप नहीं होता। 'वधू+अत्र'=वध्वत्र। 'पितृ+ अर्थम्'=पित्रर्थम्। 'ल्+अनुबन्धः'=लनुबन्धः। इत्यादि असंख्य उदाहरण् बनते हैं॥१७८॥

२५१-एचोऽयवायावः ॥ १७६ ॥ ६ । १ । ७८ ॥

एच् अर्थात् 'ए त्रो ऐ ग्रौ' इन चार वर्णों से परे अच् हो, तो इनके स्थान में कम से 'त्राय्, श्राव्, श्राव्, श्राव्, श्राव्, ये श्रादेश होते हैं। 'जे+ग्रः'=जयः । 'माले+ग्रा'=मालया । 'माले+ग्रोः=मालयोः, इत्यादि । 'वायो+ ग्राथाहि'=वायवायाहि । 'लो+ग्रः'=लवः, इत्यादि । 'ऐ+ग्रः'=ग्रायः, इत्यादि । 'लौ+ग्रकः'= लावकः, इत्यादि ॥ १७६ ॥

२५२-वान्तो यि प्रत्यये ॥ १८० ॥ ६ । १ । ७६ ॥

वान्त अर्थात् जो पूर्व सूत्र से अव्, आव् आदेश कहे हैं, वे विकारादि प्रत्यय के परे भी हो जावें।

जैसे—ग्रव्—'बाभ्रो+य:'=बाभ्रव्य:। ग्राव्—'नौ+य:'= नाव्य:, इत्यादि।

यहां 'वान्त' प्रहण इसिलये है कि—रैयित, यहां न हो। 'यकारादि' प्रहण इसिलये है कि—नौका, यहां न हो। 'प्रत्यय' प्रहण इसिलये है कि—गोयानम्, यहां श्रव श्रादेश न हो जावे॥ १८०॥

२५३-वा॰-गोर्यूतौ छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ १८१॥६।१।७६॥

वैदिक प्रयोगों में गो शब्द से परे यूति हो, तो गो शब्द के स्थान में वान्त आदेश

श्रा नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुत्ततम्, यहां 'गो' श्रागे 'यूतिः' इसका 'गव्यूतिः' हुत्रा है ॥ १८१॥

२५४-वा॰-अध्वपरिमाणे च ॥ १८२ ॥ ६ । १ । ७६ ॥

मार्ग के परिमाण का ऋर्थ हो, तो यूति शब्द के परे गो शब्द के स्थान में वान्त आदेश हो।

जैसे—'गो+यृतिः'=गव्यूतिः । गव्यूतिमध्वानं गतः । दो कोश को 'गव्यूति' कहते हैं ॥ १८२ ॥

२४४-घानोस्तिन्निमित्तस्यैव ॥ १८३ ॥ ६ । १ । ८० ॥

जहां यकारादि प्रत्यय को मानके धातु को एच् हुआ हो, तो यकारादि प्रत्यय के परे अब्, आब् आदेश होता है, अन्यत्र नहीं।

'मो+यम्'=भन्यम् । 'श्रवश्यतो+यम्'=श्रवश्यतान्यम् ।

यहां 'धातु' प्रह्ण इसिलये हैं कि प्रातिपदिक का नियम न हो जावे। 'तिमित्त' प्रह्ण इसिलये हैं कि—ग्रोयते; लौयमानि:, यहां यकारादि प्रत्ययनिमित्त एच्नहीं है।। १८३॥

# २५६-च्यजय्यौ शक्यार्थे ॥ १८४ ॥ ६ । १ । ८१ ॥

यत् प्रत्यय परे हो, तो शक्यार्थ में 'चि, जि' घातुओं के एकार को अय् आहेश निपातन किया है।

द्देतुं शक्य:=च्चय:। जेतुं शक्यो=जय्य:।

'शक्यार्थ' इसलिये कहा है कि -- होयं पापम्, इत्यादि में अय् नहीं होवे ॥ १८४॥ २५७-क्रय्यस्तद्र्थे ॥ १८५॥ ६ । १ । ८२॥

क्री धातु का अर्थ जो वेचने का है वह वाच्य हो और यत् प्रत्यय परे हो, तो 'क्री' धातु के एकार को अय् आदेश निपातन किया है।

क्रय्यो गौ: । क्रय्यः कम्बतः ।

'तद्र्थ' इसिलये कहा है कि — क्रेयं धान्यम्, यहां द्रव्यवाच्य विक्रेयाई में न होवे ॥ १८४॥

२४८-अय्यप्रवय्ये च छन्दासि ॥ १८६ ॥ ६ । १ । ८३ ॥

यत् प्रत्यय परे हो, तो वेद विषय में 'भी' श्रौर प्रपूर्वक 'वी' धातु के एकार को श्रय श्रादेश निपातन किया है।

भय्यम् । प्रवय्या । यहां 'भय्य' शब्द में त्रपादान में प्रत्यय है, स्रोर 'प्रवय्या' स्त्रीलिङ्ग में नियत है । वेद में इसिलये कहा है कि —भेयम् । प्रवेयम्, यहां न हो ॥ १८६॥

२४६-वा०-हृद्य्या त्राप उपसंख्यानम् ॥१८७॥६।१।८३॥

जल अर्थ में हृद् शब्द के एकार को यत् प्रत्यय के परे अय् आदेश हो।

हृद्य्या त्रापः !। १८७॥

इति स्वरसन्धिः॥

### श्रथ हल्स्वरसन्धिः।।

२६०-चोः कुः ॥ १८८॥ ८। २। ३०॥

पदान्त में वर्त्तमान चवर्ग के स्थान में कवर्ग आदेश हो जाता है, और कल् परे हो तो भी।

इससे 'वाच्' श्रादि चकारान्त शब्दों को ककारादेश हो जाता है। जैसे—'वाच्+ सु'=वाक्; वाग्, इत्यादि॥ १८८॥

२६१-मलां जशोऽन्ते ॥ १८६ ॥ ८ । २ । ३६ ॥

पदान्त में कलों के स्थान में जशू आदेश हों।

देखो. जहां चकारान्त शब्दों को ककार होता है, उनसे उत्तरपद के श्रादि में खर हों, तो ककार को गकार हो जाता है। जैसे—'वाक्+श्रत्र'=वागत्र। श्रौर चकार के, 'श्रच्+श्रन्तः'=श्रजन्तः, इत्यादि, यहां जकार हो जाता है।

'प्रष्ठवाद्ः दित्यवाद्ः तुरासाद्' इत्यादि हकारान्त शब्दों से परे खर हों, तो इनको जश् आदेश हो जाता है। जैसे—'प्रष्ठवाद्+इह'=प्रष्ठवाडिह।

'षट्+ग्रन्तः'=षडन्तः । 'विट्+इह'=विडिह । 'सम्राट्+ग्रत्र'=सम्राडत्र । 'विराट्+ ईहते'=विराडीहते, इत्यादि टकारान्त शब्दों के स्थान में डकारान्त हो जाते हैं।

जो धकारान्त शब्दों से परे खर हो, तो दकार हो जाता है। जैसे—'समिध्+ अत्र'=समिदत्र। 'समिध्+आधानम्'=समिदाधानम्, इत्यादि।

जो तकारान्त शब्दों से परे अजादि उत्तरपद हों, तो तकार को दकार हो जाता है। जैसे—'विद्युत्+आपतनम्'=विद्युदापतनम्। 'विद्युत्+इह'=विद्युदिह।

पकारान्त तथा भकारान्त शब्दों के अन्त में अजादि उत्तरपद परे हों, तो बकार आदेश हो जाता है। जैसे—'अप्+अयनम्'=अवयनम्। 'तिप्+अन्तः'=ितवन्तः। 'सुप्+अन्तः'=सुबन्तः, इत्यादि। भकारान्त—'अनुषुभ्+एव'=अनुषुदेव। 'त्रिषुभ्+आदि'=ित्रषुवादि।

जो इनसे भिन्न श्रन्य वर्णान्त शब्द पदान्त में श्रावेंगे, तो उनमें कुछ विशेष विकार न होगा। जैसे – 'अय्+श्रादि'=अयादि। 'सम्+श्रवेति'≔समवैति। 'प्रातर्+श्रत्र'=प्रातरश्र। 'पुनर्+इह'=पुनरिह, इत्यादि॥ १८६॥

इति इल्स्वरसन्धः॥

### अथ हल्सिन्धः॥

श्रव इसके श्रागे पदान्त श्रथवा श्रपदान्त नकार मकार वा श्रन्य वर्ण को जिस २ वर्ण के परे जो २ कार्य्य होते हैं, उस २ को लिखते हैं—

२६२-मोऽनुस्वारः ॥ १६० ॥ ८ । ३ । २३ ॥

जो हल् परे हो, तो पदान्त मकार को अनुखार होता है।

जैसे - 'त्रामम् +याति'=त्रामं याति ।

यहां 'पदान्त की अनुवृत्ति' इसितये है कि - गम्यते, यहां अनुस्तार न हुआ ॥ १६०॥

२६३-नश्चाऽपदान्तस्य ऋति ॥ १६१ ॥ = । ३ । २४ ॥

जो अल् प्रत्याहार परे हो, तो अपदान्त अर्थात् एक पद में नकार और मकार को अनुस्वार होता है।

जैसे - 'मीमान्+सते'= मीमांसते । 'पुम्+सु'=पुंसु, इस्यादि ।

इस विषय में यह समभना चाहिये कि 'श; ष; स; ह' इतने वर्णों के परे अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार हो जाता है परन्तु वैदिक प्रयोगों में 'श; ष; स; र; ह इन वर्णों के परे अनुस्वार को ७ आदेश होता है, क्योंकि—'रेकोमणां सवर्णां न सित ॥ महा॰ १।१।२॥ इस ज्ञापक से सवर्णादेश का निषेध होकर असवर्णादेश होता है। इस में भी जो कुछ विशेष होगा वह आगे लिखेंगे।

'सल्' प्रत्याहार ग्रहण इसिलये हैं कि—मन्यते, यहां न हुआ। श्रीर सल् प्रत्याहार में बाक़ी जो वर्ण बचे हैं, उनके परे श्रपदान्त नकार मकार को श्रमुस्वार होके जो कुछ विकार होता है, वह श्रागे लिखेंगे॥ १६१॥

२६४-मो राजि समः कौ ॥ १६२ ॥ ८ । ३ । २४ ॥

किप् अत्ययान्त राजृ धातु परे हो, तो सम् उपसर्ग के मकार को मकार ही आदेश हो।

जैसे—'सम्+राट्'=सम्राट्। 'साम्+राज्यम्'=साम्राज्यम्।

यहां 'सम्' प्रहण इसिलये हैं किं—स्वयंराट्, इत्यादि में नहीं होता। 'किप् मत्ययान्त' प्रहण इसिलये हैं कि—संराजितव्यम्। संराजितुम्, यहां न हुआ।। १६२॥

### २६५-हे मपरे वा ॥ १६३ ॥ = । ३ । २६ ॥

जिससे परे मकार हो, ऐसे हकार के परे पदान्त मकार को अनुस्वार विकल्प करके होता है, द्वितीय पत्त में मकार ही बना रहता है।

जैसे — कि ह्यावयितः किम्ह्यालयित । कथं ह्यालयितः कथम्ह्यालयितः इत्यादि । यहां 'मपर हकार' का प्रहण इसिलये है कि — 'कि हसिस' इत्यादि में न हो ॥१६३॥ २६६ — वा० — यवलपरे यवला वा ॥ १६४ ॥ ८ । ३ । २६ ॥

जिससे परे य ,व, ल वर्ण हों ऐसा हकार परे हो, तो पदान्त मकार को सानुनासिक य, व, ल विकल्प करके होते हैं, पन्न में श्रनुस्वार होजाता है।

य-किय्ँ ह्योऽभवत्ः कि ह्योऽभवत्। व-किव् ह्यलयितः कि ह्यलयित। ल-किल्ँ ह्यादयित। कि ह्यादयित, इत्यादि।

प्रत्युदाहरण—जैसे — किं हृष्यसि, इत्यादि में न हुन्ना ॥ १६४॥ २६७-जपरे नः ॥ १६४॥ ८॥ २॥ २०॥

जो हकार से परे नकार हो, तो मकार को विकल्प करके नकार आदेश होता है, पन्न में अनुस्वार होगा।

जैसे—िकन्इनुते; किं इनुते। कथन्इनुते; कथं इनुते, इत्यादि।

'नपर हकार' इसलिये कहा है कि— किं हृद्यं तेऽस्ति, यहां न हुआ।। १६५॥

अव पदान्त नकार मकार को अनुस्वार हो के जो २ विशेष होता है, सो लिखते हैं—

२६८—अनुस्वारस्य यि परसवर्णः।। १६६॥ ८।४०॥

जो यय प्रत्याहार परे हो, तो अपदान्त अनुस्वार को परसवर्ण आदेश होता है।

इससे उत्तरसूत्र में पदान्तप्रहुण के ज्ञापक से यह सूत्र अपदान्त के लिये है। जैसे—

'चं+ड:'=चएड:। 'कं+पनम्'= कम्पनम्, इत्यादि।

परसवर्ण त्रर्थात् जिस वर्ग का अज्ञर परे हो, उसी वर्ग का अनुनासिक वर्ण
अनुस्वार के स्थान में हो जाता है। जैसे—कंवर्ग के परे पूर्व अनुस्वार के स्थान में ङकार
ही होगा, इसी प्रकार सर्वत्र समक्षना चाहिये॥ १६६॥

'ग्रं+कः'=ग्रङ्गः ! 'ग्रं+चनम्'=ग्रञ्चनम् । 'वं+टनम्'=वएटनम् । 'ग्रं+तितः'=ग्रन्तितः।

# २६६-वा पदान्तस्य ॥ १६७ ॥ ८ । ४ । ४८॥

यय् प्रत्याहार के परे पदान्त अनुस्वार को पर का सवर्णी आदेश विकल्प करके होता है।

जैसे - कटङ्करोतिः, कटं करोति । बालञ्चेतयितः, बालं चेतयित । ब्रामग्टीकतेः, ब्रामं टीकते । नदीन्तरितः, नदीं तरित । प्रजामिपपर्तिः, प्रजां पिपर्ति । सँय्यन्ता , संयन्ता । सँव्यत्सरः, संवत्सरः । यँह्लोकम्, यं लोकम्, इत्यादि ॥ १६७॥

—इत्यनुस्वारप्रकेरणम्॥

२७०-तोर्ति ॥ १६८ ॥ ८ । ४ । ४६ ॥

लकार परे हो, तो तवर्ग के स्थान में परसवर्ण हो जावे।

जैसे—'श्रग्निचित्+लुनाति'=श्रग्निचिल्लुनाति। 'विद्युत्+लेलायते'=विद्युल्लेलायते। 'मवान्+लत्त्वयति'=भवारँ लत्त्वयति, इत्यादि॥ १६८॥

२७१-इलोः कुक् दुक् शरि ॥ १६६ ॥ ८ । ३ । २८ ॥

शर् प्रत्याहार परे हो, तो पदान्त ङकार स्वार को विकल्प करके कुक् दुक् का आगम यथाक्रम से होता है।

जैसे — उद्ङ्क्श्रोते; उद्ङ् शेते। उद्ङ्क्षष्ठः; उद्ङ् षष्ठः। उद्ङ्क्सुनोति; उद्ङ् सुनोति। प्रवण्ट्शेते; प्रवण् शेते। प्रवण्ट्ष्वष्कते; प्रवण् ष्वष्कते। प्रवण्ट्सरित; प्रवण् सरित, इत्यादि॥ १६६॥

२७२-डः सि घुट्॥ २००॥ ८।३। २६॥

जो पदान्त डकार से परे सकारादि उत्तरपद हो, तो उसको विकल्प करके घुट्

जैसे —श्वित्त्सीयते; श्वित् सीयते। मधुलिद्त्सीयते; मधुलिद् सीयते इत्यादि ॥ २००॥

२७३-नश्च ॥ २०१ ॥ ८ । ३ । ३० ॥

जो पदान्त नकार से परे सकारादि उत्तरपद हो, तो उसको धुट् का आगम विकल्प करके होता है।

भवान्त्सनोतिः भवान् सनोति, इत्यादि ॥२०१ ॥

# २७४-शि तुक्॥ २०२॥ ८।३।३१॥

जो पदान्त नकार से परे शकारादि उत्तरपद हो, तो उसको विकल्प करके तुक् का आगम होता है।

जैसे—भवाञ्च्छेते; भवाञ्छेते, इस्रादि ॥ २०२ ॥ २७५-ङमो हस्वाद्चि ङमुण् नित्यम् ॥ २०३॥ ८ । ३ । ३२ ॥

हस्य से परे जो पदान्त ङ्म् प्रत्याहार, उससे परे अजादि उत्तरपद को नित्य ही ङमुद् का आगम होता है। अर्थात् ङकार से ङुद्, गुकार से गुद्, नकार से परे जुद् का आगम होता है।

जैसे—'तिङ्+ग्रतिङः'=तिङ्ङतिङः। उदङ्ङास्ते। प्रवण्णास्ते। प्रवण्णवोचत्। कुर्वन्नास्ते। 'तस्मिन्+इतिं=तस्मिनिति, इत्यादि॥ २०३॥

२७६-मय उञ्जा वो वा ॥ २०४ ॥ ८ । ३ । ३३॥

जो मय् प्रत्याहार से परे उज् अव्यय, उसको अजादि उत्तरपद परे हो, तो विकल्प करके वकार आरेश होता है।

जैसे – शम् – उ – श्रस्तुः शम्बस्तु । तद् – उ – श्रस्यः तद्वस्य । किम् – उ – श्रावपनम्ः किम्वावपनम्, इत्यादि ॥ २०४॥

अब इसके आगे तुक् का आगम लिखते हैं -

२७७-ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ॥ २०५ ॥ ६ । १ । ७१ ॥ पूर्व हस्त को तुक् का आगम होता है, जो पित् कृत् परे हो तो । पुरुषकृत् । अग्निचित्, इत्यादि ॥ २०४ ॥

२७८-संहितायाम् ॥ २०६ ॥ ६ । १ । ७२ ॥

यह अधिकार सूत्र है। इसके आगे जो २ कहेंगे सो २ संहिता विषय में समभाना ॥ २०६॥

२७६-छे च ॥ २०७ ॥ ६ । १ । ७३ ॥

जो इस से परे छकारादि उत्तरपद हो, तो पदान्त श्रोर श्रपदान्त में भी उसकी तुक् का श्रागम होता है।

जैसे —'इ+स्रुति'=इच्छ्रति । गच्छ्रति । स्वच्छ्रन्दः । देवदत्तच्छ्रत्रम्, इत्यादि ॥२०॥

# २८०-आङ्माङोश्च ॥ २०८ ॥ ६ । १ । ७३ ॥

जो आङ् श्रीर माङ् से परे छुकार हो, तो उसको तुक् का श्रागम होता है ईषद्र्थ, कियायोग, मर्य्यादा, श्रमिविधि इन श्रथों में श्राकार ङित् श्राता है। ईषद्र्थ—'श्रा+छायां'=श्राच्छाया। कियायोग—'श्रा+छादनम्'=श्राच्छादनम्। मर्य्यादा—'श्रा+छायायाः'=श्राच्छायायाः। श्रमिविधि—'श्रा+छायम्'=श्राच्छायम्। 'मा+छैत्सीत्ं=माच्छैत्सीत्। माच्छिद्दत्, इत्यादि॥ २०८॥

२८१-दीर्घात् ॥ २०६ ॥ ६ । १ । ७४ ॥

जो अपदान्त अर्थात् एकपद में दीर्घ से परे छकार हो, तो उसको तुक् का आगम होता है।

जैसे—'ही+छुति'=हीच्छुति । म्लेच्छुति, इत्यादि ॥ २०६ ॥ २८२-पदान्ताद्वा ॥ २१० ॥ ६ । १ । ७६ ॥

जो पदान्त दीर्घ से परे छकारादि उत्तरपद हो, तो उसको तुक् का श्रागम विकल्प करके होता है।

जैसे-गायत्री छुन्दः, गायत्रीच्छुन्दः, इत्यादि ॥ २१० ॥

२८२-वा॰-विश्वजनाद्गीनां छन्द्स्युपसंख्यानम् ॥२११॥ ६।१।७६॥ विश्वजन आदि शब्दों से परे छकार को विकल्प करके तुकू का आगम होता है। पूर्व ( छे च ॥ ६ । १ । ७३ ) इस सूत्र से हस्व से परे नित्य तुक् प्राप्त था, उसका विकल्प यह समभना चाहिये। जैसे-विश्वजनछुत्रम् विश्वजनछुत्रम् ॥ २११ ॥

—तुक् प्रकरण पूरा हुआ **॥** 

२८४-स्तोः रचुना रचुः ॥ २१२ ॥ ८ । ४ । ३६ ॥

सकार और तवर्ग को शकार और चवर्ग के साथ क्रम से शकार और चवर्ग होते हैं। जैसे—'विष्णुमित्रस्+शोभते'=विष्णुमित्रश्शोभते। सकार का चवर्ग के साथ, जैसे—'देवद्त्तस्+चलति'=देवद्त्तश्चलति, इत्यादि। तवर्ग का शकार के साथ, जैसे—'अग्निचित्+शेते'=अग्निचिच्छेते, इत्यादि। तवर्ग का चवर्ग के साथ, जैसे—'अग्निचित्+ छाद्यति'=अग्निचिच्छादयति, इत्यादि अनेक उदाहरण हैं ॥ २१२॥

२८५-छुना छुः ॥ २१३ ॥ ८ । ४ । ४० ॥

सकार और तवर्ग को षकार और टवर्ग के साथ षकार और टवर्ग होते हैं। जैसे—'पुरुषस्+षष्ठ:'=पुरुषष्पष्ठः,इत्यादि।'पुरुषस्+टीकते'=पुरुषष्टीकते,इत्यादि। टवर्ग का सकार के साथ—'ग्रुद्रस्+टलति'=ग्रुद्रष्टलति, इत्यादि। तवर्ग का टवर्ग के साथ—'योषित्+टलति'=योषिट्टलति, इत्यादि॥ २१३॥

# २८६-न पदान्ताद्वीरनाम् ॥ २१४ ॥ ८ । ४ । ४१ ॥

त्रनाम् अर्थात् षष्ठी के बहुवचन को छोड़ के पदान्त टवर्ग से उत्तर सकार और तवर्ग को षकार और टवर्ग आदेश न हों।

जैसे-षद् सन्ति। मधुलिद् तरित, इत्यादि ॥ २१४॥

जो सूत्रकार ने 'श्राम्' श्रर्थात् षष्ठी के बहुवचन को छोड़ के घुत्व का निषेध किया है, उसी में वार्त्तिककार कहते हैं कि—

२८७-वा॰-अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् ॥२१४॥ ८।४।४१॥

नाम् के निषेध के साथ नवति श्रौर नगरी शब्द का भी निषेध कहना चाहिये।

जैसे—'षट्+नाम्'=षण्णाम् । 'षट्+नवतिः'=षण्णवतिः । 'षट्+नगर्यः'=षणण्-गर्यः, इत्यादि ।

सूत्र में 'पदान्त' ग्रहण इसिलये हैं कि—'ईड्+ते'=ईट्टे, यहां टवर्रा आदेश का निषेध न हुआ। 'टवर्ग से परे' इसिलये हैं कि—'निष्-तप्तम्'=निष्टसम्। 'सर्पिष्-तमम्'= सर्पिष्टमम्, यहां द्वत्व हो ही गया॥ २१४॥

२८८-तोष्टिष ॥ २१६ ॥ ८ । ४ । ४२ ॥

षकार के योग में तवर्ग को टवर्ग आदेश न हो।

जैसे—'योषित्+षग्ढः'= योषित्षग्ढः, इत्यादि ॥ २१६॥

२८६-शात् ॥ २१७ ॥ ८ । ४ । ४३ ॥

शकार से परे तवर्ग को चवर्ग आदेश न हो।

जैसे-विश्नः। प्रश्नः, यहां जकारं न हुआ।। २ १७।।

२६०-घरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ॥ २१८ ॥ ८ । ४ । ४४ ॥

जो श्रनुनासिकादि उत्तरपद परे हो, तो पदान्त यर् को श्रनुनासिक श्रादेश विकल्प करके होता है।

जैसे—'वाक्+नमित'=वाङ्नमितः वाग्नमित । जिस पत्त में श्रानुनासिक नहीं हुत्रा, वहां पदान्त में जश श्रादेश होता है। 'त्रिष्टुभ+नाम'=त्रिष्टुसामः त्रिष्टुव्नाम।

यहां 'पदान्त' प्रहण इसिलये है कि—दभ्नोति। चुभ्नाति । रुक्मम्, इत्यादि उदाहरणों में नहीं होता ॥ २१८॥

### २६१-वा॰-यरोऽनुनासिके प्रत्यये भाषायां नित्यं वचनम् ॥ २१६ ॥ ८ ॥ ४ ॥ ४४ ॥

अनुनासिकादि प्रत्यय परे हो, तो यर् को अनुनासिक नित्य ही होता है, भाषा अर्थात् लौकिक प्रयोग विषय में।

जैसे-प्राङमयम् । चिन्मयम्, इत्यादि ।

यहां 'भाषा' प्रहण इसलिये है कि वेद में पूर्ववत् दो ही प्रयोग हों। जैसे—वाङ्-मयम्; वाग्मयम्, इत्यादि ॥ २१६॥

२६२-अचो रहाभ्यां दे ॥ २२० ॥ ८ । ४ । ४४ ॥

श्रपदान्त में श्रच् से उत्तर जो रेफ हकार श्रौर उनसे उत्तर जो यर हों, तो उनको विकल्प करके द्वित्व होता है।

जैसे—'कार+यम्'=कार्य्यम्; कार्यम् । हर्य्यनुभवः; हर्यनुभवः । ब्रह्ममः, ब्रह्म । श्रप-हन्नुतिः, श्रपह्नुतिः, इत्यादि ।

यहां 'श्रच् से परे' इसिलये कहा है कि—रातिईलयित, इत्यादि। यहां द्विर्वचन न हुआ ॥ २२०॥

२६३-अनचि च ॥ २२१ ॥ = । ४ । ४६ ॥

जो अच् से परे और हल् के पूर्व यर् प्रत्याहार हो, उसको विकल्प करके द्वित्व होता है।

जैसे—'द्धि+स्रत्र'≔द्द्ध्यंत्र; द्ध्यत्र, इत्यादि । यहां द्वित्व होकर (२३३) सूत्र से पूर्व धकार को दकार होगया।

'अच्' ग्रहण इसिक्ये है कि — स्मितम् । स्तुतम्, इत्यादि में न हो ॥ २२१ ॥ २६४ —वा० – ब्रिचेचने यणो मयः ॥ २२२ ॥ ८ । ४ । ४६ ॥

इस वार्त्तिक के दो अर्थ हैं। एक तो—यण से परे मय् को द्वित्व होता है। और दूसरा—मय् से परे यण को द्वित्व हो।

जहां यण से परे मय् को द्वित्व होता है, वहां—उल्का। वल्म्मीकम्; इत्यादि उदाहरण वनते हैं। श्रीर जहां मय् से परे यण् को द्वित्व होता है, वहां—दध्यत्र। मध्वत्र, इत्यादि उदाहरण बनते हैं॥ २२२॥

२६४-वा०-शरः खयः ॥ २२३ ॥ ८ । ४ । ४६ ॥ .

इस वार्त्तिक में भी दो मत हैं। एक तो—शर् से परे खय्को द्विवंचन होता है। और दूसरा—खय् से परे शर् को द्विवंचन हो।

जैसे स्थाता । स्प्फोटः । स्त्रोतः । रच्योति । संवत्स्सरः । क्ष्षीरम् । अप्स्सराः, इत्यादि ॥ २२३ ॥ २६६-वा॰-अवसाने च॥ २२४॥ ८। ४। ४६॥

जो त्रवसान में यर् हैं, उनको विकल्प करके द्विर्वचन होता है। जैसे—वाक्क्; वाक्, इत्यादि॥ २२४॥

२६७-नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य ॥ २२४ ॥ ८ । ४ । ४७ ॥

जो आक्रोश अर्थ में आदिनी शब्द परे हो, तो पुत्र शब्द के तकार को द्विवंचन न हो।
यह (अनचि च॥ ८।४। ४६) इस सूत्र का अपवाद है। जैसे—'पुत्र+ आदिनी'=पुत्रादिनी।

आक्रोश' प्रहण इसलिये है कि-पुत्त्रादिनी सर्पिणी, यहां हो गया ॥ २२४॥

२६८-वा०-तत्परे च ॥ २२६ ॥ ८ । ४ । ४७ ॥

पुत्र शब्द से परे पुत्र शब्द हो, तो भी उसको द्विवचन न हो। जैसे—पुत्रपुत्रादिनी॥ २२६॥

२६६-वा॰-वा इतजग्धयोः ॥ २२७ ॥ ८ । ४ । ४७ ॥

जो पुत्र शब्द से परे हत और जग्ध शब्द हों, तो उसको विकल्प करके द्विवचन होता है।

जैसे - पुत्त्रहतीः पुत्रहती । पुत्त्रजग्धीः पुत्रजग्धी, इत्यादि ॥ २२७ ॥

३००-वा०-चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसाद्धः ॥ २२८ ॥ ८।४।४७॥

जो शर् प्रत्याहार के परे चय् प्रत्याहार हो, तो हसके स्थान में वर्गों के द्वितीयवर्ष आदेश हो आते हैं। यह पौष्करसादि आचार्य्य का सत है।

क्शाता; ख्शाता । वत्सर; वथ्सरः । अप्सराः; अपसराः, इत्यादि ॥ २२८ ॥ ३०१-शरोऽचि ॥ २२६ ॥ ८ ॥ ४ ॥ ४८ ॥ जो अच् परे हो, तो शर् प्रत्याहार को हिर्वचन न हो । दर्शनम् । कर्षति, इत्यादि । यहां 'अच्' प्रहण इसिकये है कि—दश्र्यते, इत्यादि में निषेध न हो ॥ २२६ ॥ ३०२-त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य ॥ २३० ॥ ८ ॥ ४६ ॥ जहां तीन आदि वर्ण इकट्ठे हों, वहां शाकटायन आचार्य के मत से दिर्वचन न हो।

जैसे—इन्द्रः। चन्द्रः। उष्ट्रः। राष्ट्रम्, इत्यादि ॥ २३० ॥

३०३—सर्वत्र शाकल्यस्य ॥ २३१ ॥ ८ ॥ ४० ॥ जहां २ द्विवंचन कह आये हैं, वहां २ शाकल्य आचार्य्य के मत से न होना चाहिये। जैसे—अर्कः । ब्रह्मा । दश्यत्र । मध्यत्र, इत्यादि ॥ २३१ ॥ ३०४—दिघिदाचार्याणाम् ॥ २३२ ॥ ८ ॥ ४१ ॥ सब आचार्यों के मत से दीर्घ से परे यर् को द्विवंचन न होना चाहिये। जैसे—दात्रम् । पात्रम् । स्तोत्रम्, इत्यादि ॥ २३२ ॥ ३०५—अत्वाञ्जश् आशि ॥ २३३ ॥ ८ ॥ ४१ ॥ जो अश् प्रत्याहार परे हो, तो क्षलों के स्थान में जश आदेश होता है। जैसे—'लभ+धा'=लब्धा । 'दोध्+धा'=दोग्धा । दद्ध्यत्र, इत्यादि । यहां 'अश्' प्रहण् इस्तिये हैं कि—दत्तः । आत्थ, इत्यादिकों में न हो ॥ २३३ ॥ ३०६—खिर च ॥ २३४ ॥ ८ ॥ ४१ ॥

जो खर् प्रत्याहार परे हो, तो क्षलों को चर् ब्रादेश हों। जैसे—'भेद्+ता'=भेता। 'लिभ्+सा'=लिप्सा। 'युयुध्+सते'=युयुत्सते, इत्यादि॥ २३४॥

३०७-उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ॥ २३४ ॥ ८ । ४ । ६० ॥

उद् से परे स्था श्रौर स्तम्म धातुं के सकार के स्थान में पूर्व का सवर्णी श्रादेश होता है।

जैसे—'उद्+स्थानम्'=उत्थानम्, यद्दां एक थकार को पूर्व सुत्र (२३४)से तकार हो जाता है । उत्थाता । उत्थातुम् । उत्थातव्यम् । 'उद्+स्तम्भनम्'=उत्तम्भनम् । उत्तिम्भता । उत्तिम्भता । उत्तिम्भतव्यम्, इत्यादि ।

'स्थास्तम्म' का ग्रहण इसलिये है कि—'उद्+स्कम्नोति'=उत्स्कम्नोति, इत्यादि में न हुन्ना ॥ २३४ ॥

३०८-बा०-उदः पूर्वत्वे स्कन्देश्बन्दस्युपसंख्यानम् ॥ २३६ ॥ ८ । ४ । ६० ॥

वैदिक प्रयोगों में उद् उपसर्ग से परे स्कन्द धातु को पूर्वसवर्ण आदेश हो। जैसे—अध्न्ये दूरमुत्कन्दः।यहां 'उद्+स्कन्दः' सकार को पूर्वसवर्णतकार होकर— 'उत्कन्दः' ऐसा होता है।। २३६॥

२०६ - वा०-रोगे चेति वक्तव्यम् ॥ २३७ ॥ ८ । ४ । ६० ॥
रोग अर्थ में भी उद् उपसर्ग से परे स्कन्द को पूर्व सवर्ण आदेश हो जावे।
जैसे - उत्कन्दो रोगः ॥ २३०॥

# ३१०-भाषो हो अन्यतरस्याम् ॥ २३८॥ ८। ४। ६१॥

भय प्रत्याहार से परे हकार को पूर्वसवर्ण आदेश विकल्प करके होता है। जैसे—कवर्ग से परे हो, तो घकार—वाग् हसति; वाग्घसति। टवर्ग से परे हो, तो ढकार—लघड् हन्ताः लघड्ढन्ता। तवर्ग से परे हो, तो धकार—अग्निचित् हसति; अग्निचिद्धसति। पर्वा से परे हो, तो भकार होता है—त्रिष्टुव् हसति; त्रिष्टुव्मसति, इत्यादि।

यहां 'भय्' ग्रहण इसिलये है कि —भवान् इसित, इत्यादि में न हो ॥ २३८॥ ३११-शरछोऽटि ॥ २३६॥ ८॥ ४॥ ६२॥

जो भय से परे और अद् प्रत्याहार के पूर्व शकार हो, तो उसको छकार आदेश विकल्प करके होता है।

जैसे—वाक् छेते; वाक् शेते। मधुलिट् छेते; मधुलिट् शेते। त्रिष्टुप् छेते; त्रिष्टुप् शेते, इत्यादि ॥ २३६ ॥

३१२-वा०-छत्वममीति वक्तव्यम् ॥ २४० ॥ ८ । ४ । ६२ ॥ जो अम् प्रत्याद्दार परे हो, तो भी भ्रय् से परे शकार को छकार आदेश होता है। जैसे—तत् श्लोकेन, तच्छ्लोकेन। तत् श्मश्रुः, तच्छ्मश्रु, इत्यादि ॥ २४० ॥ ३१३-इलो यमां यमि लोपः ॥ २४१ ॥ ८ । ४ । ६३ ॥ हल् से परे यम् का लोप विकल्प करके होता है, जो यम् परे हो तो। जैसे—'शय्य्या'—यहां तीन यकार हैं, इनमें से मध्यस्थ यकार का लोप होकर—श्य्या। 'दध्य्यत्र'—यहां भी वैकल्पिक लोप होकर—दध्यत्र, इत्यादि।

यहां 'हल्' ग्रहण इसिलये हैं कि—वित्तम्, यहां न हुआ। 'यम् का लोप' इसिलये कहा है कि—अग्निः, यहां लोप न हुआ। और 'यम् परे' इसिलये हैं कि—शार्क्षम्, यहां न हुआ। २४१॥

३१४-मरो मिर सवर्षे ॥ २४२ ॥ ८ । ४ । ६४ ॥

जो सवर्णी कर् परे हो, तो हल् से परे कर् का लोप विकल्प करके होता है। जैसे - प्रत्त्त्तम्। अवत्त्तम्, यद्दां चार तकार होते हैं। तीन प्रथम ही हैं, श्रोर एक पीछे द्विर्वचन होने से हो जाता है। उनमें से एक वा दो का लोप होकर -प्रत्तम्, प्रतम्। अवत्त्तम्, अवत्तम्।

उत्त्थानम्, यद्दां भी एक तकार का लोप विकल्प करके हो जाता है — उत्थानम्, इत्यादि ॥ २४२ ॥

#### इति इल्सन्धिः॥

### अथ अयोगवाहसन्धः॥

अब इसके आगे 'अयोगवाहसिन्ध' का प्रकरण लिखा जाता है-

३१४-ससजुषो हा।। २४३॥ ८।२। ६६॥

जो पदान्त सकार और सजुष् शब्द का मूर्द्धन्य पकार है, उसको रु आदेश होता है।

पदान्त दो प्रकार का होता है। एक तो—ग्रवसान में, ग्रर्थात् जिससे ग्रागे कोई पद वा ग्रज्ञर न हो। ग्रीर दूसरा—उत्तरपद के परे भी पदान्त कहाता है।

इसमें से जो अवसान में सकार को रु होता है, उसका विषय नामिक पुस्तक में आवेगा। और यह अयोगवाह प्रकरण है, यहां शब्दों की मिलावट दिखलाई जाती है। यह 'रु' आदेश सब दन्त्य सकारान्त शब्दों को होता है, इसलिये 'संजुष' शब्द के मूर्द्धन्य षकार को रु विधान किया है।

पदान्त सकार भी दो प्रकार का होता है। एक—खरान्त शब्दों से विभक्ति का सकार। श्रौर दूसरा —जो प्रथम से ही सकारान्त होते हैं। विभक्ति से सकारान्त, जैसे—पुरुष सु, इत्यादि। प्रथम से सकारान्त, जैसे—मनस, पयस्, धनुष्, हविष्, इत्यादि॥ २४३॥

श्रव इस पदान्त सकार को रु श्रादेश होकर पीछे क्या २ कार्य्य होता है, सो क्रम से लिखते हैं—

३१६-एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि॥ २४४॥६।११११॥

ककार श्रौर नञ्समास को छोड़, हल् प्रत्याहार परे हो, तो पतत् श्रौर तत् शब्द के सु का लोप हो।

जैसे—स पठति । एष गच्छति, इत्यादि ।

यहां 'ककार का निषेध' इसिलये है कि—एवको गच्छित । सको ब्रूते, यहां न . हुआ। 'नञ् समास में निषेध' इसिलये है कि—ग्रनेषो दधाति । ग्रसो याति, इत्यादि में न हो। 'हल्' ग्रहण इसिलये है कि—'एषस्+ग्रत्र'= एषोऽत्र।'सस्+ग्रत्र'=सोऽत्र, यहां 'सु' का लोप न हो॥ २४४॥

३१७-स्यरछुन्दासि बहुत्तम् ॥ २४४ ॥ ६ । १ । १३२ ॥

वैदिक प्रयोगों में हल् प्रत्याहार परे हो, तो त्यद् शब्द के सु का लोप बहुल करके हो।

जैसे—स्यते द्युमां इन्द्र सोमः। 'बहुल'ग्रहण से यहां नहीं भी होता—यत्र स्यो निपतेत्। यहां 'झन्द्सि' इसिलये कहा है कि लोक में नहो—स्यो हसित। स्यो धावति, इत्यादि ॥ २४४॥

३१८-सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ॥ २४६ ॥ ६ । १ । १३३ ॥

जो अजादि उत्तरपद पद परे हो, तो तद शब्द के पदान्त सकार का लोप होता है, परन्तु लोप होने से छन्दों के पाद की पूर्ति होती हो तो।

जैसे—सेमन्नो अध्वरं यज, यहां जब—'सस्+इमम्' पद के परे लोप नहीं पाया था, सो लोप होकर गुण एकादेश हो गया, तब—'सेमम्' ऐसा हुआ। जो न होता तो नव अज्ञरों के होने से पाद भी पूर्ण नहीं होता।

लोक में—सैव शद्भो महाबली, यहां भी—'सस्+एवस्' इस अवस्था में विभक्ति के सकार का लोप होकर वृद्धि एकादेश हो जाता है।

यहां 'पादपूरण' इसिलये है कि—स इव ब्याघ्रो भवेत्, यहां न हों ॥ २४६॥

त्रब इन दो सूत्रों से जहां सकार का लोप नहीं होता, वहां स्वरादि उत्तरपदों के परे द को क्या २ होता है, सो क्रम से लिखते हैं—

३१६-श्रतो रोरप्लुताद्प्लुते ॥ २४७ ॥ ६ । १ । ११२ ॥

जो अप्लुत हस्त श्रकार से अप्लुत श्रकार परे हो, तो रु के स्थान में उकार

जैसे-'पुरुषर्+अत्र'=पुरुषोऽत्र । 'मनर्+अर्पय'=मनोऽर्पय, इत्यादि ।

'अप्लुत से परे' इसिलये है कि — सुश्रोता३ अत्र त्वमिस, यहां उत्वादेश न हो। 'अप्लुत परे हो' इसिलये है कि — तिष्ठतु पय आ३ियदत्त, यहां न हो॥ २४७॥

त्रब जहां त्रवर्णान्त वा त्रन्य खरान्त शब्दों से परे 'रु' हो त्रौर उत्तरपद में त्रश् प्रत्याहार, तो क्या होना चाहिये, इस विषय में लिखते हैं—

३२०-भो'भगोत्रघोत्रपूर्वस्य घोऽशि ॥ २४८ ॥ ८ । ३ । १७ ॥

जो भोस्, भगोस्, श्रघोस् श्रौर श्रवर्णपूर्वक रु से परे श्रश् प्रत्याहार हो, तो 'रु' के स्थान में 'य्' श्रादेश हो जाता है।

जैसे—'भोय्+अत्र'=भो अत्र । 'भगोय्+इह'=भगो इह । 'अघोय्+उत्तिष्ठ'= अघो उत्तिष्ठ ।

श्रकार से परे त्राकार के पूर्व—'पुरुषय्+त्रागच्छति'=पुरुष श्रागच्छति । श्राकार से परे श्रकार के पूर्व— 'ब्राह्मणाय्+श्रविदुः'=ब्राह्मणा श्रविदुः ॥ २४८ ॥ अब जो 'रु' के स्थान में 'य्' आरेश हुआ है, इसका स्था होना चाहिये, सो लिखते हैं— ३२१—व्योर्लेघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य ॥ २४६ ॥ ८ । ३ । १८॥

जो अवर्ण से परे यकार वकार है, उसको लघुप्रयत्नतर आदेश हो, शाकटायन आचार्य्य के मत में।

जिसके उचारण में बहुत थोड़ा बल पड़े, वह' लघुप्रयत्नतर' कहाता है। (एचोऽयवा-याव: ॥ ६ । १ । ७८ ) इस उक्त सूत्र से पदान्त में जो 'श्रय्' श्रादि श्रादेश होते हैं, वेतथा जो पूर्व सूत्र से रु के स्थान में यकारादेश होता है, उन सब यकार वकारों का यहां प्रहण है।

पुरुषयागच्छति । पुरुपयिद्द । ब्राह्मणायविदुः, इत्यादि । श्रय् श्रादि श्रादेश—'के श्रासते'=कयासते । 'वायो श्रायाद्दि'=वायवायाद्दि । 'श्रियै उद्यतः'=श्रियायुद्यतः । 'श्रसौ श्रादित्यः'=श्रसावादित्यः ।

जो यह लघुप्रयत्नतर आदेश होता है सो उदाहर हों में बहुत कम आता है। १४६॥

अब जहां लघुप्रयत्नतर आदेश नहीं होता, वहां क्या होता है, सो दिखलाते हैं— ३२२-लोप: शाकल्यस्य ॥ २५०॥ ८। ३। १६॥

जो अवर्ण से परे और अश् प्रत्याहार के पूर्व पदान्त यकार वकार हों, तो उनका विकल्प करके लोप होता है, शाकल्य आचार्य के मत में।

जैसे—'पुरुषय्+ग्रागच्छति'=पुरुष ग्रागच्छतिः पुरुषयागच्छति । 'ब्राह्मणाय्+ ग्रविदुः'=ब्राह्मणा ग्रविदुः; ब्राह्मणायविदुः । 'कय+ग्रासते'=क ग्रासते; कयासते । 'गृहय्+ ग्रासते'=गृह ग्रासते; गृहयासते । 'वायव्+ग्रायाहि'=वाय ग्रायाहि; वायवायाहि ।'पादाव्+ उच्येते'= पादा उच्येते; पादाक्षुच्येते । 'हर्य्+पहि'=हर पहि; हरयेहि । 'विष्णव्+इह'= विष्णु इह; विष्णुविह, इत्यादि ॥ २५० ॥

# ३२३-स्रोतो गार्ग्यस्य ॥ २५१ ॥ ८ । ३ । २० ॥

अश् प्रत्याहार परे हो, तो जो ओकार से परे रु को यु होता है, उसका नित्य ही लोप होने।

'गार्ग्य' का प्रहण पूजार्थ है। 'भोय्+ग्रत्र'=भो श्रत्र। 'भगोय्+इह'=भगो इह। 'श्रद्योय्+इह'=ग्रद्यो इह ॥ २४१॥

३२४-डाञिच पदे॥ २४२॥ ८।३।२१॥

उञ् पद के परे अवर्ण के आगे जो पदान्त यकार वकार हों, तो उनका

जैसे—'सय् उ प्राण्स्य प्राणः'=स उप्राण्स्य प्राणः। 'कय् उ स्विजायते पुनः'=क उ स्विजायते पुनः। 'कय् उ सन्ति'=क उ सन्ति। 'वायव् उ वाति'=वाय उ वाति। 'श्रियाय् उ यतते'=श्रिया उ यतते, इत्यादि ॥ २४२॥

'सजुष्' श्रादि शब्दों को रु विधान कर चुके हैं। उस रेफान्त को पदान्त में दीर्घ श्रादेश हो जाता है। उससे उत्तरपद में जो खर होगा, तो रेफ उस में मिल जावेगा, श्रीर जो हल् वर्ण श्रावेगा तो उसके ऊपर रेफ चढ़ जावेगा।

स्वर में—सजूरत्र । सजूरिह इत्यादि । परन्तु ऋकार के परे रेफ ऊपर ही चढ़ है—सजूर्ऋषिः । वायुर्ऋच्छति, इत्यादि । 'श्रक्तिर्+श्रत्र'=श्रक्तिरत्र । 'श्रक्तिर्+ श्रानीयते'=श्रक्तिरानीयते, इत्यादि ॥

जो त्रश् प्रत्याहार में खरों से भिन्न वर्ण रहें, तो वहां क्या होना चाहिये, सो बिखते हैं—

३२५-हाशि च।। २५३।। ६। १। ११३।।

हस्त अकार से परे रु के रेफ को उकार आदेश होता है, जो हश् प्रत्याहार परे हो तो।

जैसे—'पुरुष+उ+इसित' उकार के साथ गुण एकादेश होकर—पुरुषो हसित, इत्यादि॥ २४३॥

३२६ - हलि सर्वेषाम् ॥ २५४ ॥ ८ । ३ । २२ ॥

हल् प्रत्याहार के परे भो, भगो, अघो और अवर्ण जिसके पूर्व हो, उस यकार का लोप सब आचार्यों के मत से हो।

'भोय्+इसित'=भो इसित । 'भगोय्+इसित'=भगो इसित । 'श्रघोय्+इसित'=श्रघो इसित । श्राकारान्त से—'पुरुषाय्+इसिन्त'=पुरुषा इसिन्त । 'बालाय्+नन्दन्ति'=बाला नन्दन्ति । 'चन्द्रमाय्+वर्द्धते'=चन्द्रमा वर्द्धते, इत्यादि ।

हश्मात्र में इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है। यहां 'हल्' प्रहण उत्तर सूत्रों के लिये है, क्योंकि यहां 'हश्' प्रत्याहार से ही प्रयोजन है ॥ २४४॥

जब इकार त्रादि खरों से परे रु हो त्रौर हश् प्रत्याहार उत्तरपद् में त्रावे, तो रु का रेफ उत्तर वर्ण के ऊपर चढ़ जाता है—जैसे—सजूर्देवेन। सजूर्याति त्राग्निर्दहित। वायुर्वाति। गौर्धावति, इत्यादि॥ हरा प्रत्याहार में रेफ भी आता है, उसके परे क्या होना चाहिये, सो लिखते हैं — ३२७-रो रि ।। २५५ ।। ८ । ३ । १४ ॥

जो रेफ के परे रेफ हो, तो पूर्व रेफ का लोप होता है।

जैसे—'प्रातर्+रक्रम्'=प्रात रक्तम् । 'निर्+रक्तम्'=नि रक्तम् । 'गुरुर्+ राजते'=गुरु राजते ॥ २४४॥

अब लोप होकर क्या होन। चाहिये, सो लिखते हैं— ३२८-द्रलोपे पूर्वस्य द्धिंऽणः ॥ २५६ ॥ ६ । ३ । १११ ॥

जहां रेफ, ढकार का लोप हो, वहां उस रेफ, ढकार से पूर्व ऋण को दीर्घ ऋादेश हो जावे।

दीर्घ होकर-प्रातारक्रम् । नीरक्तम् । गुरू राजते, इत्यादि ॥ २४६ ॥

३२६-हो हे लोपः ॥ २४७ ॥ ८ । ३ । १३ ॥

ढकार के परे ढकार का लोप हो।

जैसे—'लिह्+क्र+सु'='लिट्+हम्'=लिटम् । 'गुह्+क्र+सु'='गुट्+हम्'=गुटम्, यहां ढकार के लोप में भी पूर्व अण् को दीर्घ होकर—लीटम्। गूटम्, इत्यादि उदाहरण होते हैं ॥ २४७॥

त्रव हलादि वर्णों में खर् प्रत्याहार के परे रुको क्या होना चाहिये, सो लिखते हैं— ३३०-खरवसानयोर्विसर्जनीयः ॥ २४८॥ ८।३।१५॥

खर् प्रत्याहार के परे और अवसान में रेफ के स्थान में विसर्जनीय आदेश होता है।

जैसे—'नदी+जस्+स्रवन्ति'=नद्यः स्रवन्ति।'पुरुष+सु+शेते'=पुरुषः शेते, इत्यादि। स्वाभाविक रेफ—गोः स्रवति। धूः सरति॥ २४८॥

खर् प्रत्याहारमात्र में विसर्जनीय होकर क्या २ होता है, सो त्रागे लिखते हैं— ३३१-विसर्जनीयस्य सः ॥ २५६ ॥ ८ | ३ | ३४ ॥

खर् प्रत्याहार अर्थात् छ, ठ, थ, च, ट, त इन छ: वर्णों के परे विसर्जनीय को सकार आदेश होता है। खर् प्रत्याहार में जो अन्य वर्ण रहे, उनके परे दूसरा कार्य कहेंगे। 'पुरुषस्+चेतित'= पुरुषश्चेतित । 'सजूस्+चेतित'=सजूश्चेतित । 'सजूस्+छिनत्ति'=सजूशिछनत्ति । श्रोर— 'वासस्+छादयित'=वासश्छादयित, यहां विसर्जनीय को सकार होकर (२१२) सूत्र से श होता है।

उक्तस्थकारः ! पुरुषस्तरित । 'उक्तस्+टकारः'=उक्तप्टकारः । 'उक्तस+टकारः'=उक्त-ष्ठकारः, (२१३) सूत्र से स को ष हो गया है ॥ २४६ ॥

३३२-शर्परे विसर्जनीयः ॥ २६० ॥ ८ । ३ । ३४ ॥

शर् जिससे परे हो ऐसा खर् प्रत्याहार परे हो, तो पूर्व विसर्जनीय को विसर्जनीय हो। जैसे—पुरुष: ज्ञाम्यति। पुरुष: त्सरु:, इत्यादि॥२६०॥

३३३-वा शरि ॥ २६१ ॥ = । ३ । ३६ ॥

शर् प्रत्याहार के परे विसर्जनीय को विकल्प करके विसर्जनीय आदेश हो।

जैस-पुरुषः शेते; पुरुषश्शेते। कवयः षट्ः कवयष्यट् । धार्मिकाः सन्तु, धार्मिकाः स्तन्तु, धार्मिकाः स्तन्तु, धार्मिकाः

३३४-वा०-वा शर्पकरणे खर्परे लोवः ॥ २६२ ॥ = । ३ । ३६ ॥

जिससे परे खर् प्रत्याहार का वर्ण हो ऐसा जो शर्, उसके पूर्व विसर्जनीय हो, तो विकृत्प करके लोप हो।

जैसे - पुरुषाः ष्ठीवन्तिः, पुरुषा ष्ठीवन्ति। वृत्ताः स्थातारः, वृत्ता स्थातारः, इत्यादि।

यहां खर्परक शर् प्रत्याहार में तीन २ प्रयोग बनेंगे—पुरुषाः छीवन्तिः, पुरुषा छीवन्तिः, पुरुषा छीवन्तिः, इत्यादि ॥ २६२ ॥

श्रव खर् प्रत्याहार में सब वर्णों के साथ विसर्जनीय की सन्धि तो दिखला दी, परन्तु खर् प्रत्याहारस्थ क, ख, प, फ इन चार वर्णों के साथ विसर्जनीय को जो २ होता है, सो दिखलाते हैं—

३३४-कुप्बोः ८क८पी च ॥ २६३ ॥ ८ । ३ । ३७ ॥

कवर्ग पवर्ग अर्थात् क, ख, प, फ इन चार वर्णी के परे विसर्जनीय को विकर करके क्रम से जिह्नामूलीय और उपध्मानीय आदेश हों। पुरुष भूकरोतिः पुरुषः करोति । वाल भिव्यते । वालः खिद्यते । पुरुष पठिते । पुरुष पठिते । पुरुष पठिते । प्रावे । प्रावेश पद्मानीय आदेश नहीं होते, उस पत्त में विसर्जनीय ही रहते हैं ॥ २६३ ॥

### ३३६-सोऽपदादौ ॥ २६४ ॥ ८ । ३ । ३८ ॥

जो त्रपदादि त्रर्थात् एक पद में कवर्ग पवर्ग परे हों, विसर्जनीय के स्थान में सकार त्रादेश हो जाता है।

जैसे—'यशः+कल्पम्'=यशस्कल्पम्। 'पयः+कल्पम्'=पयस्कल्पम्। 'श्रयः+पाश-म्'=श्रयस्पाशम्। 'श्रन्थः+पाशम्'=श्रन्थस्पाशम्, इत्यादि। यहां कल्पप्, पाशप् प्रत्ययों के परे ह केविसर्जनीय को सकार हुआ है।। २६४॥

यहां से त्रागे जो पूर्व सूत्र से जिह्नामूलीय, उपध्मानीय त्रादेश होते हैं, उन्हीं के त्रापवाद सब सूत्र समभना—

३३७-वा०-सोऽपदादावनवययस्य ॥ २६५ ॥ द । ३ । ३८ ॥

जो अपदादि कवर्ग पवर्ग में विसर्जनीय को सकारादेश कहा है, वह अव्यय के विसर्जनीय को न हो।

जैसे-प्रातःकल्पम् । पुनःकल्पम्, इत्यादि ॥ २६४ ॥

३३८-वा०-रोः काम्ये नियमार्थम् ॥ २६६ ॥ ८ । ३ । ३८ ॥

जहां काम्यच् प्रत्यय के परे विसर्जनीय को सकारादेश होता है, वहां रु के रेफ का विसर्जनीय हो, तो सकारादेश [ हो, नहीं तो ] न हो।

जैसे-गी: काम्यति । पू: काम्यति, [ यहां न हुआ ] ॥ २६६ ॥

३३६-इषः षः ॥ २६७ ॥ ८ । ३ । ३६ ॥

इण् प्रत्याहार से उत्तर जो विसर्जनीय, उसको मूर्जन्य बकार आदेश हो, अपदादि कवर्ग पवर्ग परे हो तो ।

जैसे — हविष्काम्यति । सजूष्कल्पम् । दोष्कल्पम् । हविष्पाशम् । दोष्पाशम् ।

यहां 'त्रपदादि' की त्रातुवृत्ति करने का यह प्रयोजन है कि गुरु: कारयित।
गुरु: पाठयित, यहां सकारादेश न हो। 'कवर्ग पवर्ग' की त्रातुवृत्ति इसिवये त्राती है
कि सिप्स्ते। धतुस्ते, यहां मूर्द्धन्य न हो॥ २६७॥

श्रव यहां से श्रागे श्रवर्ण से परे विसर्जनीय को सकार श्रीर इस् प्रत्याहार से परे उसको मूर्धन्य श्रादेश सब सूत्रों में कहेंगे, ऐसा श्रधिकार समसना—

### ३४०-नमस्पुरसोर्गत्योः ॥ २६८ ॥ ८ । ३ । ४० ॥

जो कवर्ग और पवर्ग परे।हों, तो गतिसंद्यक नमस् और पुरस् शब्दों के विसर्जनीय को सकार आदेश होता है।

'नम:+कर्त्ता'=नमस्कर्ता । 'नम:+कृत्य'=नमस्कृत्य । पुरस्कर्ता । पुरस्कृत्य, इत्यादि ॥ २६⊏ ॥

### ३४१-इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य ॥ २६६ ॥ ८ । ३ । ४१ ॥

इकार वा उकार जिसकी उपधा में हैं, उस प्रत्ययभिन्न शब्द के विसर्जनीय को पकार होता है।

जैसे—'निर्+कृतम्'=निष्कृतम् । 'निर्+पीतम्'= निष्पीतम् । 'दुर्+कृतम्'= दुष्कृतम् । 'दुर्+पीतम्'=दुष्पीतम् । 'त्राविस्+कृतम्'=त्राविष्कृतम् । 'प्रादुस्+कृतम्'= प्रादुष्कृतम्, इत्यादि ।

यहां 'अप्रत्यय' प्रहरा इसलिये है कि—वायुः पाति, यहां षकार आदेश नही ॥२६६॥

३४२-वा॰-पुम्मुहुसोः प्रतिषेधः ॥ २७० ॥ ८ । ३ । ४१ ॥

पुम् त्रौर मुहुस् इन शब्दों में भी श्रप्रत्यय के विसर्जनीय हैं, यहां इस उक्त स्त्र से विसर्जनीय को पकाराऽऽदेश न हो।

जैसे - पुंस्काम: । मुद्दु:काम:, यहां विसर्जनीय को षकार न हो ॥ २७० ॥

#### . ३४३-तिरसोउन्यतरस्याम् ॥ २७१ ॥ ८ । ३ । ४२ ॥

गतिसंग्रक तिरस् शब्द के जो विसर्जनीय हैं, उनको कर्का पवर्ग के परे सकारादेश विकल्प करके होता है, पन्न में विसर्जनीय रह जावेंगे।

तिरस्कृतम् । तिरस्कर्ताः तिरःकर्ताः । तिरस्कर्ताः । तिरस्कृत्यः तिरःकृत्यः । तिर-

गति'प्रहण इसिलये है कि - तिर:कृत्वा, यहां सकारादेश न हो ॥ २७१ ॥

# ३४४-दिस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे ॥ २७२ ॥ ८ । ३ । ४३ ॥

कृत्वसुच् प्रत्यय के ऋर्थ में वर्त्तमान जो द्वि, त्रि ऋौर चतुर् शब्द, इनके विस-र्जनीय को षकार ऋदिश विकल्प करके हो, कवर्ग पर्वा परे हो तो।

द्विष्करोतिः द्विःकरोति । त्रिष्करोतिः त्रिःकरोति । चतुष्करोतिः चतुःकरोति । द्विष्पठतिः द्विःपठति । त्रिष्पठतिः त्रिःपठति । चतुष्पठतिः चतुःपठति इत्यादि ।

यहां 'कृत्वोऽर्थ' प्रहण इसिलये है कि—चतुष्कपालम् । चतुष्कग्ठम् । चतुष्पथम्, इत्यादि में विकल्प न हो ॥ २७२ ॥

३४४-इसुसोः सामध्ये ॥ २७३ ॥ ८ । ३ । ४४ ॥

यहां विकेल्प की अनुवृत्ति आती है।

जो सामर्थ्य विदित होता हो, तो कवर्ग पवर्ग के परे विकल्प करके इस् उस् प्रत्ययान्त शब्दों के विसर्जनीय को पकारादेश होता है।

जैसे-इविष्करोति; इवि:करोति । सर्पिष्करोति; सर्पि:करोति । ज्योतिष्पश्यति; ज्योतिःपश्यति । यजुष्पठति, यजुःपठति, इत्यादि ।

यहां 'सामर्थ्य' ग्रहण इसिलये है कि—तिष्ठतु सिप: करोतु बलमन्नम्, इत्यादिकों में सापेन्त होने से बकारादेश न हुन्ना ॥ २७३ ॥

३४६-नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्यस्य ॥ २७४ ॥ ८ । ३ । ४५ ॥

जो कवर्ग पवर्ग के परे समास में अनुत्तरपदस्थ अर्थात् उत्तरपद में इस् उस् न हों, तो उन इस् उस् प्रत्ययान्त शब्दों के विसर्जनीय को नित्य पकार आदेश हो जावे।

जैसे—सर्पिकुरिडका। सर्पिष्पात्रम्। धनुष्करः, इत्यादि।

यहां 'त्रजुत्तरपद्स्थ' ब्रह्मण इसिलये है कि सुसिपिःपानम्। सुसिपिःकुरिदका, इत्यादि में षकारादेश नहीं हुआ।। २७४॥

३४७-ग्रतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्षीष्वनव्ययस्य ॥ २७४॥ ८ । ३ । ४६॥

जो [ समास में ] अकार से परे अव्यय को छोड़कर अनुत्तरपदस्थ विसर्जनीय को छ और किम धातुतथा कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा और कर्णी शब्द परे हों, तो सकार आदेश हो। जैसे अयस्कार: श्रियस्काम: । श्रयस्कंस: । पयस्कुम्म: । पयस्कुम्मी, यहां स्त्रीलिंग में भी होता है । पयस्पात्रम् । श्रयस्कुशा । श्रयस्कर्णी ।

यहां 'अकार से परे' प्रहण इसिवये है कि—गी:कार:। पू:कार:, यहां सकार न हो। 'तपरकरण' इसिवये पढ़ा है कि—भा:काम:, यहां न हो। श्रीर 'श्रव्यय का निषेध' इसिवये है कि—श्रन्त:करण्म्।प्रात:काल:।पुन: करोतु। 'समास' इसिवये है कि—यश: करोति, यहां न हो। 'श्रनुत्तरपदस्थ' इसिवये है कि—सुवय: काम:, यहां न हो॥ २७४॥

३४८-अधः शिरसी पदे ॥ २७६ ॥ ८ । ३ । ४७ ॥

जो समास में पद शब्द परे हो, तो अधस् और शिरस् के अनुत्तरपदस्थ विसर्जनीय को सकार आदेश होता है।

श्रधस्पदम् । शिरस्पदम् । श्रधस्पदी । शिरस्पदी ।

यहां 'समास' ग्रहण इसलिये हैं कि—ग्रधः पद्म्,यहां न हो । 'श्रमुत्तरपद्ख्य' ग्रहण इसलिये हैं कि—परमशिर्ःपद्म्, यहां सकारादेश न हुन्ना ॥ २७६ ॥

अश्च-कस्कादिषु च ॥ २७७ ॥ ८ । ३ । ४८ ॥

जो २ शब्द कस्क आदि गण में पढ़े हैं, उनके विसर्जनीय को यथालिखित सकार वा पकार आदि जानना चाहिये।

यहां भी एक पद् से परे विसर्जनीय श्रीर उत्तरपद में कवर्ग पवर्ग पर लिये जाते हैं। जैसे—'क:+क:'=कंस्क:। कौतस्कुत:। श्रातुष्पुत्र:। श्रुनस्कर्णः। सद्यस्कालः। सद्यस्कीः। साद्यस्कः। कांस्कान्। सर्पिष्कुरिडका। धनुष्कपालम्। बहिष्पूलम्। यजुष्पात्रम्। श्रय-स्कारडः। मेदस्पिरडः, इति ॥ २७७ ॥

३५०-छन्द्सि वाऽप्राम्नेडितयोः ॥ २७६॥ ६। ३। ४६॥

जो प्र श्रीर श्राम्नेडित को छोड़कर कवर्ग पवर्ग परे हों, तो वेद् में विकल्प करके विसर्जनीय को सकारादेश होता है।

जैसे—ग्रयः पात्रम्; ग्रयस्पात्रम् ।

यहां 'प्र श्रोर श्राम्रेडित का निषेध' इसिबये है कि इन्द्राय सोमा: प्रदिवो हिवाना: । श्राम्रेडित पुरुष: पुरुष: परि, इत्यादि में सकारादेश न हुआ ॥ २७८॥

३४१-कःकरत्करतिकृषिकृतेष्वनिदितेः ॥ २७६ ॥ ८ । ३ । ४० ॥

कः, करत्, करित, कृषि, कृत इनके परे वेदों में अदिति शब्द को छोड़ कर सब शब्दों के विसर्जनीय को सकारादेश होता है।

विश्वतस्कः। विश्वतस्करत्। यशस्करति। विश्वतस्कृषि। अधस्कृतम् सहस्कृतम्, इत्यादि।

पूर्वसूत्र से सर्वत्र विकल्प करके प्राप्त था, इसिलये यह सूत्र नियमार्थ किया है। यहां 'श्रदिति का निषेध' इसिलये है कि—यथा नो श्रदितिः करत्, यहां सकारादेश न हुआ।। २७६॥

३५२-पश्चम्याः परावध्यर्थे ॥ २८० ॥ ८ । ३ । ५१ ॥

वेदों में जो अधि के अर्थ का परि उपसर्ग परे हो, तो पंचमी के विसर्जनीय को सकारादेश होता है।

जैसे-विश्वतस्परि। दिवस्परि, इत्यादि।

यहां 'पञ्चमी' का प्रहण इसिलये हैं कि—या गौ: पर्योति, इत्यादि में नहीं होता। 'परि' इसिलये हैं कि—लोकेश्यः प्रजापितः समैरयत्, इत्यादि में नहो। 'ऋध्यर्थ' इसिलये हैं कि—दिवः पृथिन्याः पर्योज उद्भृतम्, इत्यादि में नहो। २८०॥

३५३-पाती च बहुत्सम् ॥ २८१ ॥ ८ । ३ । ५२ ॥

वेदों में पाति धातु के प्रयोग परे हों, तो कहीं २ पश्चमी के विसर्जनीय को सकारादेश होता है।

जैसे—दिवस्पातु । राज्ञस्पातु । वृकेभ्यस्पातु, इत्यादि । कहीं २ नहीं भी होता— परिषदः पातु, इत्यादि ॥ २८१ ॥

३५४-बष्ठन्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपद्वयस्पोषेषु ॥ २८२॥ ८। ३।५३॥

वेदों में जो पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् श्रौर पोष परे हों, तो षष्ठी के विसर्जनीय को सकार श्रादेश होता है।

जैसे —वाचस्पति: । दिवस्पुत्राय सूर्य्याय । दिवस्पृष्ठे । पृथिव्यास्पृष्ठे । तमसस्पारम् । इडस्पदे समिध्यते । सूर्यं चजुर्दिवस्पय: । रायस्पोषेण समिषा मदन्त: ।

यहां 'बष्टी' ग्रहण इसलिये है कि - मनु: पुत्रेभ्यो दायं व्यभजत्, यहां न हुआ ॥ २८२॥

३५५-इडाया वा ॥ २८३ ॥ ८ । ३ । ५४ ॥

जो वेदों में पूर्वसूत्रोक्त पति आदि शब्द परे हों, तो इडा शब्द की षष्ठी के विसर्जनीय को विकल्प करके सकारादेश होता है।

जैसे—इडायास्पतिः । इडायाः पतिः इत्यादि ॥ २८३ ॥

३५६-ग्रम्नरूघरवरित्युभयथा च्छन्दासि ॥ २८४ ॥ ८। २। ७०॥

अम्नस् अधस, अवस् इन शब्दों के सकार को रु आदेश विकल्प करके होता है।

जैसे—'श्रम्नस्+एव'=ग्रम्नरेव। 'ऊधस्+एव'=ऊधरेव। 'ग्रवस्+एव'=ग्रवरेव, इत्यादि॥ २८४॥

३५७-ग्रहन् ॥ २८५ ॥८ । २ । ६८ ॥

अहन् शब्द को रु आदेश होता है; पदान्त में।

'श्रहन्+भ्याम्'=ग्रहोभ्याम् ॥ २८४ ॥

इस सूत्र पर यह वार्त्तिक है:-

३४८-वा॰-रुत्वविधावह्रोरूपरात्रिरथन्तरेषूपसंख्यानम् ॥ २८६॥ ८ । २ । ६८ ॥

रुत्वविधि प्रकरण में रूप, रात्रि और रथन्तर शब्दों के परे, श्रहन् शब्द के नकार को रु श्रादेश होता है।

जैसे—'ग्रहन्+रूपम्'=ग्रहोरूपम्। 'ग्रहन्+रात्रः'=ग्रहोरात्रः। 'ग्रहन्+रथन्तरम्'= ग्रहोरथन्तरम् ॥ २८६॥

३५६-रोऽसुपि ॥ २८७ ॥ ८ । २ । ६६ ॥

जो सुप् से भिन्न कोई उत्तरपद परे हो, तो अहन् शब्द के नकार को र् आदेश होता है।

इसमें यह विशेष है कि जहां रु होता है, वहां उत्व भी होता है, श्रौर जहां र् होता है, वहां उत्व नहीं होता । जैसे—'श्रहन्+द्दाति'=श्रहर्ददाति । श्रहन्+भुङ्क्ते'=श्रह-रृङ्क्ते इत्यादि ॥ २८७ ॥

इस पर यह वार्त्तिक है-

३६०-वा०-श्रहरादीनां पत्यादिषु ॥ २८८ ॥ ८ । २ । ६६ ॥

जो श्रहन् श्रादि शब्दों में रेफ होता है, उसके स्थान में एक पत्त में रेफ को रेफ ही हो जावे, पित श्रादि शब्द परे हों तो।

प्रयोजन यह है कि एक पत्त में रेफ को विसर्जनीय और एक पत्त में रेफारेश होता है । जैसे—श्रहपंति:, श्रह:पति: । गीपंति:, गी:पति: । श्रहर्कम्मं; श्रह: कर्म, इत्यादि ॥ २८८॥

३६१-वा॰-छन्दासि भाषायां च प्रचेतसो राजन्युप-संख्यानम् ॥ २८६ ॥ ८ ॥ २ ॥ ६६ ॥

लौकिक और वैदिक प्रयोगों में प्रचेतस् शब्द के सकार को राजन्य शब्द के परे ह आदेश विकल्प करके होता है, पत्त में रेफ आदेश हो जावेगा।

जैसे—'प्रचेतस+राजन्'=प्रचेतोराजन्; प्रचेताराजन् ॥ २८६ ॥

त्रौर पूर्ववार्तिक के जो तीन शब्दों के परे र् विधान किया है, वह नियमार्थ है कि—'श्रहर्+रम्यम्'=श्रहोरम्यम्, यहां र् श्रादेश न हो।।

३६२-वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहान्दः ॥ २६० ॥ ८ । २ । ७२ ॥

जो पदान्त और अवसान में वसुप्रत्ययान्त और स्रंसु, ध्वंसु और अनडुह शब्द हों, तो उनको दकारादेश होता है।

वसुप्रत्ययान्त—'विद्रस्+ग्रासनम्'=विद्वदासनम्। 'सेदिवस्+ग्रागमनम्'=सेदिव-दागमनम्, इत्यादि । 'उखास्रस्+ग्रत्र'=उखास्रदत्र 'पर्णध्वस्+ग्रत्र'=पर्णध्वदत्र, इत्यादि । 'ग्रनहुह+इच्छा'=ग्रनहुदिच्छा। 'ग्रनहुह+उल्लंघनम्'=ग्रनहुदुल्लङघनम्, इत्यादि ॥ २६०॥

अब जहां रु के पूर्व अच्को अनुनासिक होता है, उसका प्रकरण लिखते हैं—

३६३-अत्राऽनुनासिकः पूर्वस्य तु वा ॥ २६१ ॥ ८ । ३ । २ ॥

यह सूत्र अधिकार के लिये है।

जहां २ त्रागे रु विधान करेंगे, वहां २ रु के पूर्व वर्ण को विकल्प करके श्रतु-नासिक होगा ॥ २६१ ॥

३६४-स्रातोऽटि नित्यम् ॥ २६२ ॥ ८ । ३ । ३ ॥

जो वेदों में श्रद् प्रत्याहार के परे रु से पूर्व श्राकार हो, तो उसको श्रमुनासिक नित्य ही हो जावे। जैसे-सूर्य वड् महाँ ग्रसि । देवाँ ग्रासादयादिह ॥ २६२ ॥

३६५-श्रनुनासिकात् परोऽनुस्वारः ॥ २६३ ॥ ८ । ३ । ४ ॥

जिस पत्त में रु से पूर्व अनुनासिक नहीं होता, वहां उससे पूर्व वर्ण को अनुस्वार हो जाता है।

जैसे-'विद्वान्+सन्+चिनोति'=विद्वांसंश्चिनोति ॥ २६३॥

३६६-वा॰-विभाषा भवद्भगवद्घवतामोञ्चात्रस्य ॥ २६४ ॥ ८ । ३ । १ ॥

वेदों में विकल्प करके भवत्, भगवत्, श्रघवत् शब्दों के श्रन्त को रु श्रौर श्रव भाग को श्रोकार श्रादेश होता है।

जैसे—'भवत्+पहि'=भो पहि; भवन्नेहि। 'भगवत्+पहि'= भगो पहि; भगवन्नेहि। 'श्रघवत्+याहि'= श्रघो याहि; श्रघवन् याहि, इत्यादि॥ २६४॥

अब सुट् प्रकरण को लिखते हैं, जो कि इसी रुप्रकरण से सम्बन्ध रखता है— ३६७-सुट् कात् पूर्वः ॥ २६५ ॥ ६ । १ । १३४ ॥

यह अधिकार सूत्र है।

यहां से आगे जहां २ सुद् का विधान करेंगे, वहां २ वह ककार से पूर्व होगा ।।२६४।।

३६८-श्रडभ्यासच्यवायेऽपि ॥ २६६ ॥ ६ । १ । १३४ ॥

जिसको सुट् का आगम विधान करें, उसको अट् और अभ्यास के व्यवधान में भी ककार से पूर्व सुट् होवे॥ २१६॥

३६६-संपर्श्यपेभ्यः करोतौ भूषणे ॥ २६७ ॥ ६ । १ । १३६ ॥

भूषण अर्थ में सम् परि, उप इन उपसर्गों से कु धातु का कोई प्रयोग परे हो, तो उसके ककार से पूर्व सुट का आगम होता है।

जैसे-्'सम्+करोति'='सम्+सुट्+करोति'=संस्करोति ।

उक्क (२६६) सूत्र से श्रद्ध के व्यवधान में—'सम्+श्र+करोत्'=समस्करोत्। 'सम्+श्रकार्षीत्'=समस्कार्षीत्। त्रक्ष्यास के व्यवधान में—'सम्+चकरतुः'=सब्वस्करतुः । 'सम्+चकरः'=सब्व-स्करुः, इत्यादि ।

'परि+सुट्+करोति'= परिष्करोति, जो यहां दन्त्य सकार को मूर्झन्य हो जा । है, इसका विषय 'ऋष्यातिक' प्रन्थ के षत्वप्रकरण में लिखा है। 'परि+श्र+सुट्+करोत्'= पर्ध्यस्करोत्, पर्थ्यष्करोत्, ये दो प्रयोग षत्व के विकल्प से होते हैं। 'उप+सुट्+करोति'= उपस्करोति। उपस्कार:। उपस्कर्ता। उपस्कृतम्, इत्यादि॥ २६७॥

ग्रव सम् के मकार को क्या होना चाहिये, सो लिखते हैं :--

३७०-समः सुटि ॥ २६८ ॥ ८ । ३:। ४ ॥

सुट् परे हो, तो सम् के मकार को रु आदेश हो।

इस सूत्र से रु आदेश होकर विसर्ग प्राप्त हुआ, उसका अपवाद यह वार्तिक है—
३७१-वा०-संपुकानां सत्वम् ॥ २६६ ॥ ८ । ३ । ५ ॥

सम्, पुम्, कान् इनके रु को सकार ही होता है।

रु को जो सकार किया है, उससे पूर्व वर्ण के ऊपर अनुनासिक और अनुसार उक्त सूत्र से समभना।

त्रजुनासिक पत्त में —सँस्स्करोति; सँस्करोति, यहां पत्त में एक सकार का लोप भी हो जाता है। सँस्स्कार; सँस्कार:। जहां दो सकारों में एक को द्विवचन होता है, वहां तीन सकार भी हो जाते हैं —सँस्स्कार:।

त्रानुनासिक न हुत्रा तो—संस्कारः; संस्कारः; संस्कारः, ये छः प्रयोग होते हैं ॥ २६८—२६६ ॥

३७२-समवाये च ॥ ३००॥ ६।१।१३७॥

जहां समुदाय अर्थ में क धातु हो, वहां सम्, परि, उप इनसे परे ककार के पूर्व सुट् का आगम दोता है।

जैसे—संस्कृतम् । परिष्कृतम् । उपस्कृतम् । यहां भी पूर्व के समान सब उदाहरण समभना ॥ २००॥

३७३-उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु ॥३०१॥६।१।१३८॥

'प्रतियत्न' श्रर्थात् जो किसी व्यवहार में श्रनेक गुणों का श्रारोपण करना; 'वैकृत' श्रर्थात् विकार को प्राप्त होना; 'वाक्याध्याहार' श्रर्थात् जो जानने योग्य श्रर्थ है, उसके जानने के त्रिये वाक्य बोलना, इन तीन श्रर्थों में जो उप उपसर्ग से परे कु धातु का प्रयोग हो, तो ककार से पूर्व सुद् का श्रागम हो।

प्रतियत्न-उगस्कुरुते एधोदकस्य। वैकृत-उपस्कृतं भुङ्क्ते। वाक्याध्याहार-

उपस्कृतं ब्रूते, इत्यादि ॥ ३०१ ॥

#### ३७४-किरती लवने ॥ ३०२ ॥ ६ । १ । १३६ ॥

लवन अर्थात् काटने अर्थ में जो कृ धातु का प्रयोग हो, तो उप उपसर्ग से परे उसके ककार से पूर्व सुट् आगम होता है।

जैसे — 'उप+किरति' यहां ककार से पूर्व सुट् होकर — कृषीवलः चेत्रमुपस्किरति। अर् के व्यवधान में — उपास्किरत्। अभ्यास के व्यवधान में — उपचस्करतुः॥ ३०२॥

### ३७५-हिंसायां प्रतेश्च ॥ ३०३ ॥ ६ । १ । १४० ॥

हिंसा अर्थ में उप तथा प्रति उपसर्ग से परे कृ धातु का प्रयोग हो, तो ककार से पूर्व सुद् का आगम होता है।

जैसे -उपस्किरति जीवान्। प्रतिष्किरति जीवान्, इत्यादि ॥ ३०३ ॥

३७६-त्रपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने ।। ३०४ ।। ६ । १ । १४१ ।।

चतुष्पात् अर्थात् चार् पगवाले व इा, हाथी, ऊंट, बकरी, गौ आदि और शकुनि अर्थात् मोर, तीतर, मुर्गा आदि, ये कर्चा हों, तो अप उपसर्ग से परे कृ धातु के ककार से पूर्व सुद् का आगम होता है, करोदना अर्थ स्चित होता हो तो ॥ ३०४॥

३७७-वा०-किरतेईर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वक्तव्यम्।।३०४॥ ६ । १ । १४१ ॥

हर्ष-श्रानिन्दत होना, जीविका-कुछ प्राप्ति की इच्छा करना, कुलायकरण-किसी का श्राश्रय लेना, इन तीन श्रथों में उक्क सुद् का श्रागम होता है।

हर्ष - अपस्किरते वृषो हृष्ट: - बैल जब आनन्द्युक्त होते हैं तो सींगों से भूमि को करोदा करते हैं।

जीविका —श्रपिकरते कुक्कुटो भक्त्यार्थी — मुरगे चुधातुर होकर श्रपनी चौंच से भूमि को करोदा करते हैं।

कुलायकरण—त्रपस्किरते श्वाऽऽश्रयार्थी—कुत्ता त्राश्रय त्रर्थात् शरण चाहता हुत्रा भूमि को करोदता है, इत्यादि ॥ ३०४॥

३७८-कुस्तुम्बुरूणि जाति: ॥ ३०६ ॥ ६ । १ । १४२ ॥ यहां जाति अर्थ में कुस्तुम्बरु शब्द के तकार से पूर्व को सुदू का आगम निपातन किया है।

'कुस्तुम्बुरु' किसी श्रौषधि का नाम है, उसके फल—कुस्तुम्बुरूणि फलानि। यहां 'जाति' श्रहण इसलिये है कि—कुतुम्बुरूणि फलानि, यहां सुट् न हुश्रा॥ ३०६॥

३७६-अपरस्पराः कियासातत्ये ॥ ३०० ॥ ६ ॥ १ ॥ १४३ ॥ किया के निरन्तर होने में 'अपरस्पराः' यह शब्द निपातन किया है । अपरस्पराः पटन्ति—निरुष्टग्रोर उत्तम विद्यार्थी लोग निरन्तर पढ़ते हैं । यहां 'सातत्य' ग्रहण इसलिये है कि—अपरपरा गच्छन्ति—अनियम से चलते हैं। यहां सुद् न हुआ ॥ ३०० ॥

है ८० - वा० - समो हिततनयोवी लोपः ॥ ३० ८ ॥ ६ । १ । १४३ ॥ हित और तत शब्द के परे सम् के मकार का लोप विकल्प करके होता है। संहितम् । संततम् । संततम् ।

इसी सतत शब्द से 'सातत्य' बनता है। जहां लोप नहीं होता वहां मकार को अनुस्नार होकर विकल्प से परसवर्ण भी हो जाता है॥ ३०८॥

३८१-वा०-सम्तुमुनोः कामे लोपो वक्तव्यः ॥ ३०६। ६।१।१४३॥ जो काम शब्द परे हो, तो सम् श्रौर तुमुन् प्रत्यय के मकार का लोप होता है। 'सम्+कामः'=सकामः। 'भोकुम्+कामः =भोकुकामः, इत्यादि ॥ ३०६॥

३८२-वा॰-ग्रवश्यमः कृत्ये लोपो वक्तव्यः ॥ ३१० ॥ ६।१।१४३॥ जो कृत्य प्रत्ययान्त शब्दों के परे पूर्व श्रवश्यम् शब्द हो, तो उसके मकार का लोप हो जावे।

'श्रवश्यम्+भाःयम्'=श्रवश्यभाव्यम् । श्रवश्यलाव्यम्, इत्यादि । इन वार्त्तिकों का यहां प्रसंग नहीं था, परन्तु इसी (३०७ ) सूत्र पर थे, इसीलिये लिख दिये हैं ॥ ३१० ॥ ३८३-गोष्पदं सेवितासेवितप्रमाणेखु ।। ३११ ।। ६ । १ । १४४ ।। सेवित, असेवित और प्रमाण अर्थ का वाचक 'गोष्पदम्'यह निपातन किया है। सेवित—गोष्पदो देशः । असेवित—अगोष्पदमरगयम् । प्रमाण—गोष्पदपूरं वृष्टो मेघः।

यहां इन अर्थों का प्रहण इसिलये हैं कि -'गोः पदम्'=गोपदम्, यहां सुट, न हुआ । और इन अर्थों में ऐसा विग्रह होना चाहिये कि —गावः पद्यन्ते प्राप्यन्ते

यत्र तत् गोष्पदम् ॥ ३११ ॥

३८४-आस्पदं प्रतिष्ठायाम् ॥ ३१२ ॥ ६ । १ । १४५ ॥
प्रतिष्ठा अर्थ में 'आस्पदम्' यह निपातन किया है ।
आस्पदं स्थिरमालध्यम्, यहां भी 'पद' शब्द के पूर्व सुट् हुआ है ।
यहां 'प्रतिष्ठा' प्रहण इसलिये है कि—आपद्मप्रतिष्ठां प्राप्तो देवदत्तः, यहां न हुआ ॥ ३१२ ॥

३८५-ग्राश्चर्यमनित्ये ॥ ३१३ ॥ ६ । १ । १४६ ॥

अनित्य अर्थात् जो कभी २ हो सर्वदा न हो, इस अनित्य अर्थ में 'आश्चर्यम्' यह निपातन किया है।

'श्र+चर्यम्' यहां चकार से पूर्व सुट् हो जाता है—श्राश्चर्यमिदं कर्मा । 'श्रनित्य' ग्रहण इसलिये हैं कि—श्राचर्यं सत्यम्, यहां न हुआ, क्योंकि सत्य का श्राचरण नित्य ही करना चाहिये ॥ ३१३ ॥

३८६-वर्चस्केऽवस्करः ॥ ३१४ ॥ ६ । १ । १४७ ॥ वर्चस्क अर्थात् अन्न के मल अर्थ में 'अवस्करः' यह निपातन किया है। यहां 'वर्चस्क' प्रहण इसलिये हैं कि—अवकरः, यहां न हुआ ॥ ३१४ ॥

३८७-अपस्करो रथाङ्गम् ॥ ३१५ ॥ ६ । १ । १४८ ॥ रथ के अङ्ग अर्थात् अवयव अर्थ में 'अपस्करः'यह शब्द सुद् सिहत निपातन किया है। यहां 'रथाङ्ग' प्रहण इसिलये है कि —अपकरः, यहां न हुआ ॥ ३१४ ॥

३८८-विष्किरः शकुनिर्विकिरो वा ॥ ३१६ ॥ ६ । १ । १४६ ॥ शकुनि अर्थात् पत्ती अर्थ में विपूर्वक किर शब्द के ककार से पूर्व खुद का आगम विकल्प करके निपातन किया है।

विष्करः; विकिरः, दोनों पित्तविशेष के नाम हैं ॥ ३१६॥

## ३८६-हृखाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे ॥ ३१७ ॥ ६ । १ । १५० ॥

वैदिक शब्दों में हस्व से परे चन्द्र शब्द हो, तो उसके चकार से पूर्व सुट् का आगम होता है।

सुश्चन्द्रो युष्मान्। 'सु+चन्द्रः'=सुश्चन्द्रः।

'हस्त से परे इसिलिये कहा है कि —पराचन्द्रः, इत्यादि में न हुत्रा। 'उत्तरपद' ग्रहण इसिलिये है कि समास में ही सुद् का आगम हो। जैसे—ग्रुक्रमिस चन्द्रमिस, यहां न हुआ।। ३१७॥

३६०-प्रतिष्कश्रम् कशेः ॥ ३१८ ॥ ६ । १ । १४१ ॥

यहां प्रतिपूर्वक कश् धातु का 'प्रतिष्कशः' यह शब्द निपातन किया है। 'प्रति+कशः'=प्रतिष्कशः, यहां ककार से पूर्व सुद् श्रौर सकार को मूर्द्वन्यादेश

निपातन से हुआ है ॥ ३१८ ॥

३६१-प्रस्करवहरिश्चन्द्रावृषी ॥ ३१६ ॥ ६ । १ । १५२ ॥

ऋषि अर्थ में 'प्रस्कग्व'; हरिश्चन्द्रः' ये दोनों शब्द सुद् आगम के साथ निपातन किये हैं।

अर्थात् ये दोनों ऋषि के नाम हैं। जहां और किसी के नाम होने वहां सुद

न होगा, इत्यादि ॥ ३१६॥

३६२- सस्करसस्करिणौ वेणुपरित्राजकयोः ॥ ३२० ॥६।१।१५३ ॥

'मस्कर:' बांस की लकड़ी, श्रीर 'मस्करी' उसकी धारण करने वाला संन्यासी ये दोनों शब्द वेखु श्रीर परिव्राजक श्रर्थ में निपातन किये हैं।

जहां इनसे अन्य अर्थ हो वहां 'मकरः'—धूर्तता, और 'मकरी'—धूर्त मनुष्य का

नाम जानना ॥ ३२० ।।

३६३-कास्तीराजस्तुन्दे नगरे ॥ ३२१ ॥ ६ । १ । १५४ ॥

'कास्तीर' श्रीर 'श्रजस्तुन्द' ये दो शब्द नगर श्रर्थ में निपातन किये हैं। श्रर्थात् किसी नगर के नाम हों, वहां इन दो शब्दों के तकार से पूर्व सुद् होता है।

कास्तीरं नाम नगरम्। अजस्तुन्दं नाम नगरम्। अन्य अर्थी में -- कातीरम्।

अजतुन्दम्, ऐसा ही रहेगा ॥ ३२१ ॥

३६४-पारस्करप्रभृतीिन च संज्ञायाम् ॥ ३२२ ॥ ६ । १५५ ॥ जहां 'पारस्कर' आदि शब्द संज्ञा अर्थात् किसी के नियत नाम होते हैं, वहां इन में सुद् का आगम किया है ।

जैसे-पारस्कर:-किसी देश का नाम है। अन्यत्र-पारकर:। कारस्कर: किसी बृत्त का नाम है। अन्यत्र-कारकर:। रथस्पा-किसी नदी का नाम है। अन्यत्र - रथपा । किण्कु:-पक हाथ वा वितस्ति भर नाप का नाम है। अन्यत्र-किकु:। किष्किन्धा—किसी गुफा का नाम है। अन्यत्र—किकिन्धा ॥ ३२२॥

## ३६५-वा०-तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् पश्च ॥ ३२३ ॥ ६ । १ । १४४ ॥

चोर और देवता अर्थ में तत् और बृहत् शब्द से कर और पति शब्द यथासंख्य परे हों, तो इनको सुर्का आगम और तत् तथा बृहत् शब्द के अन्त्य तकार का लोप भी हो जावे।

जैसे—'तत्+करः' यहां तकार का लोप और सुट् होकर—तस्करः यह नाम चोर का है। तथा 'बृहत्+पितः' यहां सुट् श्रौर तलोप होकर —बृहस्पितः, परमात्मा का वा वेदपारग ब्रह्मर्षि का नाम है ॥ ३२३॥

## ३६६-वा०-प्रात्तुम्पतौ गवि कत्तरि ॥ ३२४ ॥ ६ । १ । १५५ ॥

प्रउपसर्ग से परे तुम्प धातु का प्रयोग और इस धातु का कर्त्ता गौ हो, तो सुट् होता है। 'प्र+तुम्पति'=प्रस्तुम्पति गौः, इत्यादि ।

यहां 'गौ कर्त्ता' इसलिये कहा है कि-प्रतुम्पति सिंहः, यहां न हुआ।। ३२४॥

## ३६७-वा॰-प्रायस्य चित्तिचित्तयोः सुडस्कारो वा ॥ ३२५ ॥

जो प्राय शब्द से परे चित्ति श्रौर चित्तं शब्द हो, तो सुडागम श्रथवा प्राय शब्द को अस् आदेश हो जावे।

'प्राय+चित्तिः'=प्रायश्चित्तिः। 'प्राय+चित्तम्'=प्रायश्चित्तम्।

श्रीर इस सूत्र के महाभाष्य में यह भी लिखा है कि जहां किसी सूत्र वा वार्तिक से सुद् विधान न किया हो, श्रीर वेदादि सत्य शास्त्रों में देखने में श्रावे, तो उसको पार-स्करप्रभृति गण के भीतर ही जानो, क्योंकि पारस्करप्रभृति आकृतिगण है ॥ ३२४॥

इति सुट् प्रकरणम् ॥

#### ३६८-पुमः खय्यम्परे ॥ ३२६ ॥ ८ । ३ । ६ ॥

श्रम् प्रत्याहार जिससे परे हो ऐसा खय् प्रत्याहार परे हो, तो पुम् शब्द के मकार को रु आदेश होता है।

जैसे- 'पुम्+कामा' यहां ककार तो खय् प्रत्याहार में श्रौर उससे परे जो श्राकार वह श्रम् प्रत्याहार में गिना जाता है - पुँस्कामाः पुँस्स्कामाः पुंस्कामाः पुंस्कामाः पुँस्पुत्रः पुँस्सुत्रः, पुंस्पुत्रः, पुंस्सुत्रः। पुँश्चलीः, पुँश्यलीः, पुंश्यलीः, पुंश्यलीः, इत्यादि।

'खय्' प्रहण इसिलये हैं कि — पुन्दासः, यहां न हुआ। और 'श्रम्परे' प्रहण इसिलये हैं कि — पुंचीरम्, यहां न हुआ।

यहां एक पत्त में सकार को द्विवेचन हो जाता है। इस प्रकरण में रुका अधिकार है। परन्तु पुम् शब्द को उक्त (संपुंका०) सिन्धि०-२६६ इस वार्त्तिक से सकारादेश इसिलिये होता है कि कवर्ग पवर्ग के परे विसर्जनीय को जिह्नामूलीय और उपध्यानीय आदेश कहें हैं वे न हों।। ३२६।।

## ३६६-नरछुव्यप्रशान् ॥ ३२७॥ ८। ३।७॥

प्रशान् शब्द को छोड़ के पदान्त नकार को रु त्रादेश होता है, जो छुव् प्रत्याहार से परे श्रम् प्रत्याहार हो तो।

श्रीर पूर्व सूत्र से रु से पूर्व वर्ण को श्रानासिक श्रीर श्रानुसार हो जाते हैं। जैसे—'भवान्+छिनत्ति'—नकार को रु, रु को विसर्जनीय, विसर्जनीय को सकार, सकार को शकार होकर—भवाँशिछनत्ति; 'भवांशिछनत्ति। 'भवान्+चेतित'=भवाँश्रोतित; भवांश्चे-तित। 'सन्+च'=सँश्च; संश्च। 'भवान्+टीकते'=भवाँशिकते; भवांशिकते। 'भवान्+तर्प-यति'=भवाँस्तर्पयित; भवांस्तर्पयित, इत्यादि।

यहां 'प्रशान् का निषेध' इसिलये है कि -प्रशाज छिनित्त । प्रशाञ् चेतित, यहां रु त्रादेश न हुत्रा । 'छुव्' प्रहण इसिलये है कि -भवान् वदतु, यहां न हुत्रा । 'ग्रम्पर' प्रहण इसिलये है कि -भवान् त्सरित, यहां न हुत्रा ॥ ३२० ॥

## ४००-उभयथर्त्तु ॥ ३२८ ॥ ८ । ३ । ८ ॥

पूर्व सूत्र से नित्य प्राप्त रु श्रादेश का।इस सूत्र से विकल्प किया है।

अम्परक छुव् प्रत्याहार के परे ऋग्वेद में नकारान्त पद के नकार को रु आदेश हो विकल्प करके।

जैसे—तिसमस्त्वा द्धाति, तिस्मस्त्वा द्धाति। जिस पद्म में रु नहीं होता. वहां नकार बना रहता है—तिसम्त्वा द्धाति, इत्यादि ॥ ३२८ ॥

## ४०१-दीर्घाद्टि समानपादे ॥ ३२६ ॥ ८ । ३ । ६ ॥

दीर्घ से परे पदान्त नकार को ऋट् प्रत्याहार के परे समानपाद ऋर्थात् एकपाद में रु ऋर्वेद में विकल्प करके।

जैसे—'जनाँ श्रचुच्यवीतन'—यहां रु को यकार होके लोप हो जाता है। गिरींर-चुच्यवीतन—यहां लोप न होने से श्रकार में रेफ मिल गया।

'विकल्प' प्रहण इसलिये है कि—श्रादित्यान् याचिषामहे, यहां रु श्रादेश न हुआ।

रु के पूर्व अनुनासिक नित्य होता है, सो लिख चुके हैं परन्तु वह दीर्घ आकार से ही परे नित्य होगा, ईकार ऊकार से तो विकल्प करके होगा —परिधी रितः, परिधीं-रित । वसूँरिहः, वसूंरिह । त्वमग्ने वसूँरिह । रुद्रां आदित्यां उत, इत्यादि ॥ ३२६ ॥

४०२-नृत् पे ॥ ३३० ॥ ८ । ३ । १० ॥

जो पकारादि उत्तरपद परे हो, तो नृन् शब्द के नकार को विकल्प करके रु आदेश होता है।

म्रन्य कार्य्य सद्य पूर्व के तुल्य जानना । जैसे — नॄँ: पिपर्त्तिः नॄँ ूँ पिपर्त्तिः नॄँ: पिपर्तिः नॄँ ूँ पिपर्तिः नॄँ ूँ पिपर्तिः नृं ूँ पिपर्तिः नृं ूँ पिपर्तिः ।

यहां 'पकारादि' ग्रहण इसिलिये हैं कि—नृन् भोजयित, यहां कुछ भी विकार नहीं होता ॥ ३३०॥

४०३-स्वतवान् पायौ ॥ ३३१ ॥ ८ । ३ । ११ ॥

पायु शब्द परे हो, तो खतवान् शब्द के नकार को व आदेश विकल्प करके होता है। जैसे—भुवस्तस्य खतवाः पायुरग्ते। खतवान् पायुः, इत्यादि। यहां सब कार्यः पूर्ववत् होते हैं॥ ३३१॥

४०४-कानाऽम्रेडिते ॥ ३३२ ॥ ८ । ३ । १२ ॥

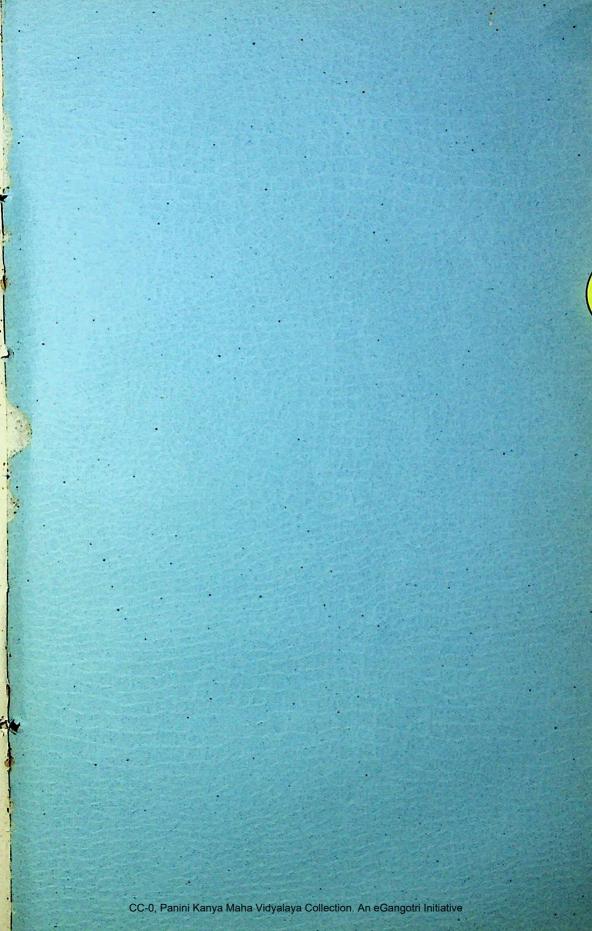
ब्राम्रेडित अर्थात् द्वितीय कान् शब्द परे हो, तो कान् शब्द के नकार को रु ब्रादेश होता है।

जैसे—'कान्+कान्'—यहां रु होकर (संपुंकानां सत्वम्) सन्धि०—२६६ इस वार्त्तिक से जिह्नामूलीय श्रोर विसर्जनीय को बाधकर सकार ही हो जाता है—कांस्कान् ॥ ३३६॥

इतीरितस्सान्धविधिम्महामुनेर्निशम्य सन्धेर्विषयस्सतां मुदे। सुखेन तच्छास्त्रप्रवृत्तयेऽनया मयार्थ्यया किरतयार्थ्यभाषया॥

> इति श्रीमत्स्वामिद्यानन्दसरस्वती-प्रणीतार्थ्यभाषाविवृत्तिसहित-स्सन्धिविषयस्समाप्तः॥





# वैदिक-पुस्तकालय में मिलनेवाली पुस्तकों की सूची

श्वानेदसाध्य ६ माग स्वय ४२) याजुर्वेदसाध्य सम्पूर्ण ,, २०) श्वानेदादिमाध्यभूमिका ,, ३) त केवल संस्कृत ।।।) वेदांगप्रकाश १४ माग ६।।।-) श्वाध्यायी, मृल ।।=) श्वाध्यायी, मृल ।।=) श्वाध्यायी माध्य पहिला लयह ३।।) त द्सरा लयह ३।।) त द्सरा लयह ३।।। तिकृष्ण ।।=) संस्कृतवावयप्रविध   -)। संस्कृतवावयप्रविध   -)। स्वप्रदारमाजु   -)। स्		u21 1	विवाइपद्धति	ਯੂਦੂਸ਼ 11 <b>1</b>
प्रस्वेदादिमान्यभूमिका ,, ३) ,, केवल संस्कृत    ) वेदांगप्रकाश १४ माग ह   -) प्रष्टाध्यायी, मूल   =) प्रष्टाध्यायी, मूल   =) प्रष्टाध्यायी मान्य पहिला खपड २॥) प्रंचसहायप्रविचि   -)। निरुक्त    -) संस्कृतवाक्यप्रवेध   -)। संस्कृतवाक्यप्रवेध   -)। स्यवहारमानु   -)। स्यवहारमानु   -)। स्यवहारमानु   -)। प्रव्यहारमानु   -)। प्रव्यवेद संहिता किल्द   -)। प्रव्यवेद संहिता किल्य   -)। प्रव्यवेद संहिता किल्य   -)। प्रव्यवेद संहिता किल्य   )। प्रव्यवेद संहिता किल्य				
श्चानेदादिमाध्यभूमिका ,, के कल संस्कृत ।।।) वेदांगप्रकाश १४ भाग ६।।।-) श्रष्टाध्यायी, मृल ।।=) श्रष्टाध्यायी भाष्य पहिला लयड ३।।) ,, द्सरा लयड ३।।) पंचमहायश्वविधि =)।। निरुष्ठ  ।।।-) संस्कृतवाक्यप्रकोध =)।। ध्यवहारमानु =)। स्यवहारमानु =)। श्रमोच्छेदन =)।। सत्यधमेविचार (मेला चांदापुर) =) श्रमोच्छेदन =)।। श्रम्पविचार (मेला चांदापुर) =) श्रमोच्छेदन =)।। श्रमच्छेदन =)।। श्रमच्छेदन =)।।। श्रमचेद संहिता काग्टर वाउन्ड ३। श्रचवेद संहिता काग्टर वाउन्ड ३। श्रमचेद संहिता काग्टर वाउन्ड ३। श्रमचेद संहिता काग्टर वाउन्ड ३। श्रमचेद संहिता काग्टर वाउन्ड ३। श्रचवेद संहिता काग्टर वाउन्ड ३।	यज्ञवेदमाष्य सम्पूर्ण "	२०)		
त्रेवंगप्रकाश १४ भाग हा।।) वेदांगप्रकाश १४ भाग हा।।) अष्टाध्यायी, मृल ।।=) अष्टाध्यायी भाष्य पहिला खयड है।।) ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,		₹)	शास्त्राथे काशी	-)11
वेदांगप्रकाश १४ माग हा।।-) प्रशास्त्रायी, मृल ।।=) प्रशास्त्रायायी, मृल ।।=) प्रशास्त्रायायी, मृल ।।=) प्रशास्त्रायायी, मृल ।।=) प्रशास्त्रायायी, मृल ।।=) प्रशास्त्रायायायाय वार्षे ।।=) प्रशास्त्रायायाय वार्षे ।।=) प्रशास्त्रायाय वार्षे ।।=) प्रशास्त्रायाय वार्षे व्यव्यव्यव्यव्यव्यव्यव्यव्यव्यव्यव्यव्यव		111)	वेदविरुद्धमतखएडन	1-)
प्रशास्त्राची मृल ॥=) प्रशास्त्राची मृल दसरा खण्ड रे॥) प्रवसहायद्विषि =>॥ तिरुक्त ॥=> संस्कृतवावयप्रवोध =>॥ संस्कृतवावयप्रवोध =>॥ स्वमन्तव्यापन्तव्यप्रकाश नागरी  ॥ तरुक्त  ॥=> संस्कृतवावयप्रवोध =>॥ स्वमन्तव्यापन्तव्यप्रकाश नागरी  ॥ अग्रवंद संहिता बढ़िया जिल्द श। प्रशुवंद संहिता काग्टर वाउन्ड रे।			वेदान्तिध्वान्तनिवारण नागरी	=)
प्रशास्त्राची भाष्य पहिला लयड है।।)  पंचमहायज्ञावि		Secretary Secretary	· 7 · 0	-)11
प्रविद्या प्राप्त प्रविद्य है।।  प्रविद्या प्रविद्य है।।  प्रविद्या प्रविद्य है।।  निरुक्त ।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।	म्रष्टाध्यायी, मूल			
पंचमहायश्विषि	अष्टाध्यायी भाष्य पहिला खएड			
पंचमहायद्वविधि =)॥	,, दूसरा खपड		स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश नागर	đ )
संस्कृतवाक्यप्रवोध  संस्कृतवाक्यप्रवोध  =)   स्यवहारमातु  अध्यविद संहिता कारटर वाउन्ड ३)  सामवेद संहिता जिल्द १।।  आप्तेद संहिता सजिल्द १।।  चारों वेदों की अजुक्रमणिका २।।  आपोंदेश्यरत्नमाला नागरी  भारहठी  भारहठी  भारहठी  भारहठी  भारहठी  भारहठी  भारहठी  आपोंसिवनय गुटका  सत्यार्थप्रकाश  ३।।  अध्यविद संहिता कारटर वाउन्ड ३)  सामवेद संहिता कारटर वाउन्ड ३।  सामविद संहिता कारटर वाउन्ड ३।  सामविद संहिता कारटर वाउन्ड ३।  सामवेद संहिता कारटर वाउन्ड ३।		=)11	ग्रंबे	計 )
संस्कृतवाक्यप्रवोध =)   प्रयवहारमानु =)   प्रमोच्छेदन =)   प्रमुभाच्छेदन =)   प्रस्त्रधमिवचार (मेला चांवापुर) =) प्रायोहिश्यरत्नमाला नागरी   )    प्रायोहिश्यरत्नमाला नागरी     प्रायोहिश्यरत्नमाला नागरी     प्रायोहिश्यरत्नमाला नागरी     प्रावेद्यश्यप्रकोपानिषद् माष्य   ४) प्रज्ञवेद्यग्यप्रकोपानिषद् माष्य   ४) प्रज्ञवेदमालामाष्य   ४) प्रज्ञवेदमालामाष्य   ४) प्रज्ञवेदसालामाष्य   ४। प		111=)	ऋग्वेद संहिता बढिया जिल्द	8)
अमोच्छेदन हैं।।  अनुअभाच्छेदन हैं।।  अनुअभाच्छेदन हैं।।  अनुअभाच्छेदन हैं।।  सत्यधर्मविचार (मेला चांवापुर) हैं।  अग्विंद संहिता सजिल्द है।।)  चारों वेदों की अनुक्रमणिका है।।  अग्विंद स्वारिंद सोपिन वर्ष सृल ।।।।  अग्विंद स्वारिंद सोपिन वर्ष सृल ।।।।  अग्विंद सार्च है।  अग्विंद सार्च है।।  अग्विंद सार्च है।  अग्विंद सार्च है।।  अग्विंद सार्च है।।  अग्विंद सार्च है।  अग्विंद संहिता जिल्द है।  सामवेंद संहिता सजिल्द है।।  चारों वेदों की अगुक्क मणिका है।  अग्विंद सार्च है।  अग्विंद सार्च है।  अग्विंद संहिता सजिल्द है।।  चारों वेदों की अगुक्क मणिका है।  अग्विंद सार्च है।  अग्विंद सार्च है।  अग्विंद संहिता सजिल्द है।।  चारों वेदों की अगुक्क मणिका है।।  इश्वारिंद सोहिता सजिल्द है।।  चारों वेदों की अगुक्क मणिका है।।  इश्वारिंद सोहिता सजिल्द है।।  चारों वेदों की अगुक्क मणिका है।।  इश्वारिंद सोहिता सजिल्द है।।  चारों वेदों की अगुक्क मणिका है।।  इश्वारिंद सोहिता सजिल्द है।।  चारों वेदों की अगुक्क मणिका है।।  चिंद सार्च है।।  चारों वेदों की अगुक्क मणिका है।।  चारों वेदों की अगुक्क मणिका है।।  चारों वेदों की अगुक्क मणिका है।।  चारों वेदों की अगुकक मणिका है।।।  चारों वेदों की अगुकक मणिका है।।।।  चारों वेदों की अगुकक मणिका है।।।।।।।  चारों वेदों की अगुकक मणिका है।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।।		=)		(\$ 3
अमोच्छेदन  मतुश्रमोच्छेदन  सत्यधर्मविचार (मेला चांवापुर)  मार्योद्देश्यरत्नमाला नागरी  मरहठी  मरहरही  मरहरठी  मरहठी  मरहठी  मरहठी  मरहठी  मरहठी  मरहरठी  मरहठी  मरहठी  मरहठी  मरहरठी  मरहठी  मरहठी  मरहठी  मरहठी  मरहरठी  मरहठी  मरहठी  मरहठी  मरहठी  मरहठी  मरहठी  मरहठी  मरहठी  मरहरठी  मरहठी  मरहरठी  मरहरही  मरहरही  सामवेद संहिता सजिल्द  २।)  इशादिदशोपनिषद् मुल  ॥।)  इशादिदशोपनिषद् मुल  ॥।)  मरहरठी  मरहरठी  मरहरठी  मरहरें की अनुक्रमणिका  २।)  इशादिदशोपनिषद् मुल  ॥।)  मरहरें की अनुक्रमणिका  २।)  मरहरें के अनुक्रमणिका  २।)  मरहरें के अनुक्रमणिका  सामवेद संहिता सजिल्द  सामवेद संहित सजिल्द  सामवेद संहिता सजिल्द  सामवेद संहित संहितो  सामवेद संहिता सजिल्द  सामवेद संहिता सजिल्द  सामवेद संहिता संहिता संहिता  सरवादें के अनुक्रमणिका  सामवेद संहिता संहित संहिता  सरवादें के अनुक्रमणिका  सामवेद संहिता संहिता  सरवादें के अनुक्रमणिका  सामवेद संहिता  सरविद्य संहिता  सरविद्य संहिता  सरविद्य संहिता  सरविद्य संहिता  सरविद्य संहिता  सरविद्य संहिता  सर				
सत्यधर्मविचार (मेला चांदापुर) ह) प्रायोंदेश्यरत्नमाला नागरी )।।।  ग मरहठी				
सत्यधर्मविचार (मेला चांदापुर)  ग्रायोंदेश्यरत्नमाला नागरी  ग्रायोंदेश्यरत्नमाला नागरी  ग्रायहरी  ग्रायहरी			Mind Man West	
आर्थोद्देश्यरत्नमाला नागरी  ,, परहठी  ,, प्रंग्रेज़ी  गोकरुणानिधि  स्वामीनारायणमतस्वपडन  सत्यार्थप्रकाश  श।  शाधीमिवनय गुटका  , मोटे अवरों की			चारों वेदों की अनुक्रमाणका	्र (।)
११       मरहठी       )       बृहदारएयकोपानिषद् भाष्य       ४)         ११       गोकरुणानिषि       =)       नित्यकमित्रिषि       )।।।         स्वामीनारायणमतखण्डन       ।)       ह्वनमन्त्र       )।।।         सत्यार्थप्रकाश       १॥)       Life of Swami Dayanand Saraswati (English) by Har Bilas Sarda 12 - -         ११       मोटे अवरों की       ॥=)       Dayanand Commemoration			ईशादिदशोपनिषद् मृल	III)
११       मरहठी       )       बृहदारएयकोपानिषद् भाष्य       ४)         ११       गोकरुणानिषि       =)       नित्यकमित्रिषि       )।।।         स्वामीनारायणमतखण्डन       ।)       ह्वनमन्त्र       )।।।         सत्यार्थप्रकाश       १॥)       Life of Swami Dayanand Saraswati (English) by Har Bilas Sarda 12 - -         ११       मोटे अवरों की       ॥=)       Dayanand Commemoration	श्रायोंदेश्यरत्नभाला नागरी	)11	ह्यान्द्रोग्योपनिषद् भाष्य	8)
११       मोकरुणानिधि       ।       पजुर्वेद भाषाभाष्य       ५)         गोकरुणानिधि       ।       नित्यकमितिधि       ।।।।         स्वामीनारायणमतलण्डन       ।)       ६वनमन्त्र       ।।।।         सत्यार्थप्रकाश       १॥)       Life of Swami Dayanand Saraswati (English) by Har Bilas Sarda 12 - -         १०       मोटे अवरों की       ॥=)       Dayanand Commemoration		-)		8)
गोकरुणानिधि	,, श्रंप्रेज़ी	-)		뉙)
स्वामीनारायणमतलएडन ।) सत्यार्यप्रकाश शा। भार्याभिविनय गुटका , मोटे अवरों की ।।=) इवनमन्त्र )।।। Life of Swami Dayanand Saraswati (English) by Har Bilas Sarda 12 - - Dayanand Commemoration		=)		· )III
सत्यार्यप्रकाश १॥) आर्थाभिविनय गुटका  , मोटे अवरों की ॥=) Dayanand Commemoration	स्वामीनारायग्रमतखण्डन	1)		
भार्याभिविनय गुटका  "" " " " " " " " " " " " " " " " " "		(11)		
,, मोटे अवरों की ।।=) Dayanand Commemoration				
Bajanana Commence				
Healtight   III)   Volume (English) Rs. 10		STEP IN THE ST		
	सस्कारावाघ	, 111)	Volume (English)	Ks. IV

नोटः-डाकमइस्ल सब का मूल्य से अलग होगा।

प्रबन्धकत्त्री,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Coचेन्द्रिक वस्त्रकात्वर ग्रजमर.



\* श्रो३म् \*

## श्रथ वेदाङ्गप्रकाशः

SCHANLAL AGRAV B. /. Hons. LL. B. P. N तत्रसंस्तृतीयो भाग; Income Tax & Sales Tax Practice BARL OMTL. JABAL

नामिकः

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां द्वितीयो भागः।

श्रीमत्स्वामिदयानन्द्सरस्वतीकृतव्याख्यासहितः।

पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चमं पुस्तकम्।

श्रजमेरनगरे वैदिकयन्त्राज्ञयं मुद्रितः ।

इस पुस्तक के छापने का श्रधिकार किसी को नहीं है, क्योंकि इसकी रजिस्टरी कराई गई है।

सृष्ट्यन्दाः १,६७,२६,४६,०४६

सातवीं वार

विक्रमीय संवत् २००६

मूल्य ॥)

🗴 श्रोदम् 🏶

## श्रथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यस्तृतीयो भागः

# नामिकः

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां द्वितीयो भागः।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः।

पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चमं पुस्तकम् ।

श्रजमेरनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है, क्योंकि इसकी रजिस्टरी कराई गई है।

सृष्ट्यब्दाः १,६७,२६,४१,०४६

सातवीं वार

विक्रमीय संवत् २००६

16 (II)

## ग्रथ नामिकः

यह पढ़ने पढ़ाने की व्यवस्था में पांचवां पुस्तक है। प्रथम 'सन्धिविषय' को पढ़ कर पश्चात् इसको पढ़ना चाहिये। 'नामिक' इसिलिये इसको कहते हैं कि इसमें सुप् के साथ नाम अर्थात् संज्ञा आदि शब्दों का विधान है, और इसी हेतु से 'नाम्नां व्याख्यानों अन्यो नामिकः' यह ति दितार्थं संगत होता है, क्योंकि यहां 'नाम' शब्द से व्याख्यान अर्थं में 'ठक्' प्रत्यय हुआ है। नामवाचकों को प्रयोगसिद्धि के लिये मुनिवर पाणिनिजी ने प्रातिपदिकसंज्ञा से विधान किया है।

(प्रश्न) 'प्रातिपदिक संज्ञा' का क्या फल है ?

( उत्तर ) सुप्, स्त्री और तद्धितप्रत्ययों का विधान होना।

(प्रश्न) 'सुप्' किसका नाम है ?

(उत्तर) प्रथमा के एकवचन से लेके सप्तमी के बहुवचन पर्यन्त इकीस (२१) प्रत्ययों के संघात का।

(प्रश्न) 'सुप्' के कितने अर्थ हैं ?

(उत्तर) सुपां करमीदयोऽण्यर्थाः संख्या चैव तथा तिङाम् ॥

महामाध्य ऋ० १। पा० ४। स्० २१। ऋ।० २॥

ये ग्यारह (११) अर्थ सुप् के हैं —कर्मा; कर्ता; करण; संप्रदान; अपादान; सम्बन्ध; अधिकरण; और हेतु तथा एकत्व; द्वित्व; और बहुत्व।

(प्रश्न) 'शब्द' के प्रकार के होते हैं ?

(उत्तर) नाम च घातु जमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् । नैगम-रूढिमवं हि सुसाधु ॥ महा अ०३। पा०३। सू०१। आ०१॥

तीन प्रकार के, अर्थात्—'योगिक; कृढि; और योगकृढि'। परन्तु यास्क्रमुनि आदि निरुक्तकार और वैयाकरणों में शाकटायनमुनि सब शब्दों को धातु से निष्पन्न अर्थात् यौगिक और योगकृढि ही मानते, और पाणिनि आदि कृढि भी मानते हैं। परन्तु सब ऋषि मुनि वैदिक शब्दों को योगिक और योगकृढि तथा लौकिक शब्दों में कृढि भी मानते हैं।

(प्रश्न) उक्त यौगिक, रूढि और योगरूढि इन तीन प्रकार के शब्दों के क्यां क्या तज्ञ सु हैं ?

(उत्तर) 'यैणिक' उनको कहते हैं कि जो प्रकृति और प्रत्ययार्थ तथा अवयवार्थ का प्रकाश करते हैं। जैसे—कर्त्ता, हर्त्ता, दाता, अध्यापक, लम्बकर्ण, शास्त्रज्ञान, कालज्ञान, इत्यादि।

'रूढि' उनको कहते हैं कि जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ न घटता हो, किन्तु ये संज्ञाबोधक हों। जैसे—खट्या, माला, शाला, इत्यादि।

'माण्डिं' उनको कहते हैं कि जो अवयवार्थ का प्रकाश करते हुए अपने योग से अन्य अर्थ में नियत हों। जैसे—दामोदर, सहोदर, पङ्कज, इत्यादि।

उक्त तीन प्रकार के शब्द नामान्तर से भी प्रसिद्ध हैं, अर्थात्—'जाति; गुण; किया; श्रौर यहच्छाशब्द'। 'जातिवाचक' उनको कहते हैं कि जिनका योग श्राकृति श्रौर बहुत व्यक्तियों के साथ हो। जाति के दो भेद हैं—सामान्यजाति श्रौर सामान्यविशेषजाति।

'सामान्यजाति' उसको कहते हैं कि जिसका योग तुल्य आकृति और बहुत समान व्यक्तियों में रहता हो। जैसे—मनुष्य, पशु, पत्ती, इत्यादि। 'सामान्यविशेषजाति' उसको कहते हैं कि जो पदार्थ किसी में सामान्य और किसी से विशेष हो। जैसे— मनुष्यादि सामान्यजातियों में स्त्री, पुरुष, इत्यादि। पशुत्रों में गौ, हस्ती, अश्व, इत्यादि। और पित्तयों में हंस, काक, इत्यादि।

'गुणवाची' शब्द वे हैं जो द्रव्य के आश्रित हों। जैसे—धर्म, अधर्म, संस्कार, श्रुक्त, हरित, नील, पीत, रूप, गन्ध, स्पर्श, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दु:ख, ज्ञान, इत्यादि।

'क्रियाशब्द' उनको कहते हैं कि जो चेष्टा और व्यापार आदि के वाचक हों। जैसे—भवति, करोति, पचति, आस्ते, शेते, इत्यादि।

श्रीर 'यदच्छाराज्य' उनको कहते हैं कि कोई मनुष्य यथावत् बोलने में श्रसमर्थ होकर जिनका श्रन्यथा उचारण करे। जैसे—'त्रृतक' के बोलने में 'तृतक' का उचारण करते हैं।

( प्रश्न ) इन शब्दों के प्रयोग कितने भेदों से होते हैं ?

(उत्तर ) स्त्रीतिङ्ग, पुह्मिङ्ग ऋौर नपुंसकतिङ्ग इन तीनों भेदों से।

(प्रश्न) इन भेदों के लच्चण और प्रमाण क्या हैं ?

(उत्तर) स्तनकेशवती स्त्री स्याह्मीमशः पुरुषः स्मृतः । उभयोरन्तरं यच तदभावे नपुंसकम् ॥

महा॰ अ॰ ४ । पा० १ । सू० ३ ॥ :

जिसके बड़े २ लोम हों वह 'पुरुष'। जिसके स्तन और शिर के बाल बड़े २ हों वह 'स्नी', और जो इन दोनों के मध्यस्य चिह्नवाला हो, वह 'नपुंसक' कहाता है।

पुक्षिङ्ग के उदाहरण, जैसे—पुरुष:, पुरुषी, पुरुषा:, इत्यादि।स्त्रीलिङ्ग के—ग्रम्या, श्रम्ये, श्रम्या:, इत्यादि। नपुंसकलिङ्ग के—नपुंसकम्, नपुंसके, नपुंसकानि, इत्यादि।

(प्रश्न) इस प्रमाण और लच्चण से मनुष्य आदि चेतनव्यक्तियों में तो लिङ्ग-ज्ञान होता है, परन्तु जड़ पदार्थों में नहीं, क्योंकि उनमें पुरुष, स्त्री और नपुंसक के चिह्न कुछ भी नहीं देख पड़ते हैं।

(उत्तर) उनमें भी कचित् २ कुछ २ लिङ्गों के चिद्व देख पड़ते हैं। जैसे-भागः, भागो, भागाः, इत्यादि। यहां पुल्लिङ्ग का चिद्व 'घञ्'। खट्वा, खट्वे, खट्वाः। नदी, नदी, नदाः, इत्यादि। यहां स्त्रीलिङ्ग के चिद्व 'टाप्' श्लोर 'ङीप्'। ज्ञानम्, ज्ञाने ज्ञानानि, यहां 'ल्युट्' प्रत्यय नपुंसक का चिद्व है।

जैसे इन शब्दों में व्याकरण की रीति से प्रत्यय लिङ्ग के द्योतक दिखलाई देते हैं, वैसे सर्वत्र वेद निरुक्त और निघर्द्ध आदि में निर्देश देखकर शब्दों के लिङ्गों की व्यवस्था यथावत् जाननी उचित है। क्योंकि:—'लिङ्गमिश्च लेकाश्रयताञ्चिङ्गस्य ।। महाव्यवस्था प्रशाव । सूव्या ।। महाव्यवस्था प्रशाव ।। स्वया ।। स्वया

#### ( प्रश्न ) शब्दविषयं कितना है ?

(उत्तर) सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्त्रारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या वहुधामिन्नाः। एकश्वतमध्वरर्युशाखाः। सहस्रवत्मी सामवेदः। एकविश्वतिधा बाह्वृष्ट्यम्। नवधा श्राधर्वणो वेदः। वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावा- क्लब्दस्य प्रयोगविषयः। एतावन्तं शब्दस्य प्रयोगविषयमननुनिशम्य सन्त्यप्रयुक्ता इति वचनं केवलं साहसमात्रमेव। एतिस्मिश्चातिमहति शब्दस्य प्रयोगविषये ते ते शब्दास्तत्र तत्र नियतविषया दृश्यन्ते॥ महा० ऋ० १। पा० १। परपशाहिके॥

जो मनुष्य सातद्वीपयुक्त पृथिवी, तीन लोक अर्थात् नाम जन्म और स्थान, साङ्गोपाङ्ग वेद —अर्थात् एकसो एक व्याख्यानयुक्त यजुः; हजार व्याख्यानयुक्त सामः क्ष्रिक्षित व्याख्यानयुक्त ऋकः; नव व्याख्यानयुक्त अर्थवेदेद, वाकोवाक्य अर्थात् दर्शनशास्त्रः, 'इतिहासः पुराणम्'—साम गोपथ ब्राह्मण् और वैद्यक अर्थात् चरक स्थ्रुत आदि, इस बहुत बड़े शब्द के विषय को देखे सुने विना कोई कहे कि अदृष्टशब्दों का निर्देश कहीं नहीं किया, यह उसका कहना केवल हठ और अज्ञान का भरा हुआ है। क्योंकि जो साधारण्ता से प्रयोगविषय देखने में नहीं आता, वह विद्यानों के देखने में विस्तीर्ण शब्दविषय में आता है॥

## [ त्रथाजन्तप्रकरणम् ]

४०५-अथ शब्दानुशासनम् ॥ १॥ अ० १।१।१॥

यहां 'अथ' शब्द अधिकार के लिये हैं।

शब्दों का अनुश्रासन अर्थात् उनकी शिद्धा का अधिकार किया जाता है। यहां से आगे कम से शब्दों का विषय दिखाया जायगा॥

( प्रश्न ) शब्द का लच्चाण क्या है ?

४०६—( उत्तर ) श्रोत्रोपलिबर्बुद्धिर्निग्रीहाः प्रयोगेणाऽभिज्वित स्नाकाश-देशः शब्दः ॥ २ ॥ महा० १ । १ । १ ॥

जिसका कानों से सुनकर बोध हो, जो बुद्धि से निरन्तर ग्रहण करने के योग्य, उच्चारण से प्रकाशित, श्रौर श्राकाश जिसके रहने का स्थान है, वह 'शब्द' कहाता है।

(प्रश्न) शब्द के के भेद हैं ?

(उत्तर) चार, ग्रर्थात्-नाम, श्राख्यात, उपसर्ग और निपात। इन चारों में से नाम शब्दों का व्याख्यान इस प्रन्थ में किया जायगा।

(प्रश्न) नामवाचक कौन शब्द हैं ?

४०७-( उत्तर ) मत्वप्रधानानि नामानि ॥ ३॥ निरु० १। १॥

जो मुख्यता से सत्वप्रधान अर्थात् द्रव्य और गुणों के वाचक शब्द हैं, उनको 'नाम' कहते हैं।

जैसे-गौ:, ग्रश्व:, पुरुष:, इत्यादि ॥

( प्रश्न ) व्याकरण में कैसे २ शब्दों का विधान किया जाता है ?

४०८-( उत्तर ) समर्थ पद्विधिः ॥ ४ ॥ अ० २ । १ । १ ॥

पद्विधि समर्थ के श्राश्रित होती है। 'समर्थ' श्रर्थात् जिसके साथ जिसकी योग्यता हो, उसी के साथ उसका पदकार्य्य होता है।

जैसे—'भू+तन्यत्' यहां धातुसंज्ञा के विना 'भू' शब्द प्रत्ययविधान में असमर्थ तथा 'तन्यत्' यह कृत् और प्रत्ययसंज्ञा के विना विधान होने ही में असमर्थ है। इसी प्रकार सर्वत्र समसना चाहिये। तथा जिस पद के साथ जिसकी योग्यता हो, उसी से उसका समास होता है।

व्याकरण में सब सूत्रों से प्रथम इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है, तत्पश्चात् सुबन्त विषय में प्रातिपदिकसंज्ञा होती है।।

प्रातिपदिकसंज्ञाविधायक सूत्र—

४०६-अर्थवद्घातुरप्रत्ययः प्रातिपादिकम् ॥ ४ ॥ । ०१। २। ४४॥

यहां 'अर्थवत्' शन्द में 'मतुप्' प्रत्यय नित्ययोग में किया है, क्योंकि शन्द और अर्थ का सनातन संवन्ध है।

केवल धातु श्रोर प्रत्यय से पृथक् श्रर्थवान् शब्द, वह पातिपदिकसंज्ञक हो। जैसं—धन, वन, इत्यादि॥

४१०-कृत्तद्धितसमासारच ॥ ६ ॥ अ० १। २। ४६ ॥

कृद्न्त, तिद्धतान्त और समास भी प्रातिपदिकसंज्ञक हों।

जैसे — कृदन्त में — 'श्रश्रीक् +तृच्', तिद्धत में — 'उपगु+श्रण्', समास में — 'राजन्+क्स्+पुरुष+सु' इत्यादि श्रव्युत्पन्न व्युत्पन्न दोनों पत्तों में उक्क स्त्रों से प्रातिपदिक संज्ञा होती है।।

४११-ङचाप्प्रातिषदिकात् ॥ ७॥ अ०४।१।१॥

यह अधिकारसृत्र है।

ङचन्त. त्रावन्त, त्रौर प्रातिपदिक से स्वादिक, स्त्रीवाचक त्रौर तद्धितप्रस्यय होते हैं॥ उनमें से 'स्वादिक' प्रस्यय यथा—

४१२-स्वीजसमीटञ्जष्टाभ्यांभिम्ङेभ्यांभ्यम्ङसिभ्यांभ्यम्ङसी-

सांङचोस्सुप् ॥ ८ ॥ अ० ४ । १ । २ ॥ जात्रकार्यः अध्यन्त, आवन्त और प्रातिपदिक से 'सु' आदि इक्कीस (२१) प्रत्ययं हों ॥

४१३-सुपः ॥ ६ ॥ अ० १ । ४ । १०२ ॥

सुप् प्रत्याहार के जो तीन २ वचन हैं, वे एक २ के प्रति एकवचन, द्विवचन श्रौर बहुवचन संज्ञक हों।।

४१४-वि अक्तिरच ॥ १० ॥ अ० १ । ४ । १०३ ॥ तिङ् और सुप् के जो तीन २ वचन हैं, वे विभक्तिसंज्ञक हों ॥

१. इन्हीं प्रत्ययों के प्रथम 'सु' से लेकर अन्त्य प्' पर्यन्त का 'सुप्' प्रत्याहार है ॥ ः

## श्रव यथाक्रम से विभक्तियों के रूप लिखते हैं—

वचन	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया-	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
एकवचन	स्र	श्रम्	टा	ङे	ङसि	ङस्	<b>ভি</b>
द्विवचन	त्र्यो	ग्रौट्	भ्याम्	भ्याम्	भ्याम्	ग्रोस	ग्रोस्
बहुवचन	जस्	ग्रस्	भिस्	भ्यंस्	भ्यस्	ंश्राम्	सुप्

इस प्रकार से सातों विभक्तियों के ऋलग २ रूप जान लेना चाहिये॥

४१५-द्वयेकयोर्द्धिव चनैकवचने ॥ ११ ॥ अ० १ । ४ । २२ ॥

दो पदार्थों के कहने की इच्छा हो, तो द्विवचन और एक पदार्थ के कहने की इच्छा हो, तो एकवचन हो।

'जैसे-पुरुष+सु; 'पुरुष+ श्रौ' ॥

४१६-बहुबु बहुवचनम् ॥ १२॥ भ्र० १।४। २१॥

बहुत पदार्थों की कहने की इच्छा हो, तो बहुवचन हो।

जैसे—'पुरुष+सुः, पुरुष+त्र्यौः, पुरुष+जस'॥ •

इनमें से प्रथम—'पुरुष+सु' इसका साधन, जैसे —

४१७-उपदेशेउजनुनासिक इत् ॥ १३ ॥ ऋ॰ १ । ३ । २ ॥

जो उपदेश में अनुनासिक अन् है वह इत्संज्ञक हो।

'उपदेश' यहां उसको कहते हैं कि धातु, सूत्र श्रौर गणों में पाणिन्यादि मुनियों का प्रत्यत्त कथन है। इस सूत्र से 'सु' इसके 'उकार' की इत्संज्ञा होकर—

४१८-तस्य लोपः ॥ १४ ॥ श्रं० १। ३। ६ ॥

जिसकी इत्संज्ञा हुई हो, उसका लोप हो।

लोप होकर--'पुरुष+स्'इस अवस्था में-

४१६-सुप्तिङन्तं पद्म् ॥ १५ ॥ ऋ०१ । ४ । १४ ॥

जिसके अन्त में सुप् वा तिङ् हो, उस समुदाय की पदसंज्ञा हो।

इससे 'सु' श्रोर 'तिप्' श्रादि प्रत्ययान्त शब्दों की पदसंक्षा होती है। तिङन्तों की व्याख्या 'श्राख्यातिक' में लिखी जायगी॥

'पुरुष+स्' इसकी पदसंज्ञा होकर, पश्चात्— ४२०-ससजुषो रुः ॥ १६ ॥ श्र० ८ । २ । ६६ ॥ सकारान्त पद श्रोर सजुष् शब्द के स् श्रौर ष् को रु श्रादेश हो। 'पुरुष+रु' इस श्रवस्थामें 'रु'के उकार की इत्संज्ञा होकर लोप होगया—'पुरुष+र्'॥

४२१-विरामो अवसानम् ॥ १७॥ अ०१॥४०६॥ वक्ता की उक्ति का जो विराम अर्थात् ठहरना है, उसकी अवसानसंज्ञा हो। जैसे—'पुरुष+र' इससे रेफ की अवसानसंज्ञा हुई॥ अवसानसंज्ञा का फल—

४२२-खरवसान योर्विसर्जनीयः ॥ १८ ॥ द्या ८ । १४ ॥ खर्पत्याहार रेफ से परे हो, तो अवसान में रेफ को विसर्जनीय आदेश हो पदान्त में। इससे रेफ के स्थान में विसर्जनीय हो के—पुरुषः ॥

अब प्रथमा विभक्ति का द्विवचन—'पुरुष+श्रौ' इस श्रवस्था में पूर्व पर को वृद्धि-एकादेश दोकर—पुरुषो सिद्ध हुश्रा ॥

प्रथमा विसक्ति का बहुवचन—'पुरुष+जस्' इस अवस्था में--

४२३--चुट् ॥ १६ ॥ अ० १ | ३ | ७ ॥ जो प्रत्यय के आदि में चवर्ग और टवर्ग हों, तो उनकी इत्संक्षा हो । इससे 'जकार' की इत्संक्षा होकर लोप होगया। 'पुरुष+अस्' इस अवस्था में—

४२४-न विभक्तो तुस्माः ॥ २०॥ अ०१।३।४॥ जो विभक्तियों के अन्त में वर्ता स और ए हैं। उनकी रचरांका न के

जो विभक्तियों के अन्त में तवर्ग, स् श्रौर म् हैं, उनकी इत्संज्ञा न हो। इस ते 'पुरुष+श्रस्' यहां अन्त के सकार की इत्संज्ञा न हुई। अब इस अवस्था में—

४२५-प्रथमयोः पूर्वसवर्षः ॥ २१ ॥ ऋ० ६ । १ । १०१ ॥

जो अक्पत्याहार से परे प्रथमा और द्वितीया का अन् हो, तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो।

जैसे—'पुरुषास्'। रुत्व, विसर्जनीय होकर—पुरुषाः॥

अश दितीया विभक्ति का एकवचन—'पुरुष+श्रम्' इस श्रवस्था में— ४२६-श्रमि पूर्वः ॥ २२ ॥ श्र० ६ । १ । १०६ ॥

१. इत्संज्ञा—( उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥ १ । ३ । २ ) नामिक – १३ ॥

२. लोपः—( तस्य लोपः ॥ १ । ३ । ६ ) नामिक—१४ ॥

३. वृद्धिरेकादेशः—( वृद्धिरेचि ॥ ६ । १ । ८८ ) सन्धि०—१३७ ॥

अक् प्रत्याहार से अम् का अच् परे हो, तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्णक्रप एकादेश हो।

जैसे--पुरुषम्॥

द्वितीया का द्विवचन—'पुरुष+ग्रोट्' यहां टकार' की इत्संज्ञा ग्रोर लोप तथा श्रकार ग्रोकार को वृद्धि एकादेश होकर—पुरुषो, हुआ ॥

द्वितीया का बहुवचन-'पुरुष-शस्' इस अवस्था में-

४२७-त्रशकताद्धिने ॥ २३ ॥ अ०१ । ३ । ८ ॥

तिद्धत से अन्यत्र प्रत्यय के आदि जो लकार, शकार और कवर्ग, उनकी इत्संज्ञा हो।

इससे इत्संक्षक शकार का लोप हो गया। जैसे — 'पुरुष+श्रस्'। इस श्रयस्था मैं पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो के — 'पुरुषा+स्'।

४२८—तस्माच्छमो नः पुंसि ॥ २४ ॥ अ०६ । १ । १०२ ॥ किये हुए पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश से परे शस् प्रत्यय के सकार को नकार आदेश हो। जैसे —पुरुषान् ॥

त्रव तृतीया विभक्ति का एकवचन—'पुरुष+टा' इस अवस्था में—

४२६-टाङसिङसाभिनात्स्याः ॥ २५ ॥ अ० ७ । १ । १२ ॥ अव्यादत अङ्ग से परेटा, ङसि, ङस् के स्थान में क्रम से इन, आत्, स्यये तीन आदेश हों । जैसे - 'पुरुष+इन'। अब पूर्व पर को गुण्य एकादेश होकर - पुरुषेन ।

४३०- अर्कुप्वाङ्नुमृज्यवायेऽपि ॥ २६ ॥ अ० ८ । ४ । २ ॥

एक पद में अट् प्रत्याहार, कवर्ग. पवर्ग, आङ और नुम् इनके व्यवधान में भी जो रेफ् और पकार से परे नकार हो, तो उसके स्थान में गुकारादेश हो।

जैसे—पुरुषेण्॥

तृतीया विमक्ति का द्विवचन—'पुरुष+भ्याम्' इस अवस्था में—

४३१-यसात् प्रत्ययाविधिस्तद्।दिप्रत्ययेऽङ्गम् ॥२७॥ अ०१।४।१३॥

जिस धातु वा प्रातिपदिक से परे प्रत्यय विधान करें उसकी तथा वह धातु वा प्रातिपदिक जिसके आदि में हो उसकी भी श्रृङ्गसंज्ञा होती है।

सु मादि सब प्रत्ययों के परे पूर्व की श्रङ्गसंज्ञा होती है।

- १. इसमें टकार अनुबंध सुट् प्रत्याहार के लिये है ॥
- २. गुणः—( श्राद्गुणः ॥ ६ : १ । ८७ ) सन्धि०—१३६ ॥

४३२-सुपि च।। २८॥ अ००।३।१०२॥ जो यजादि सुप् परे हो, तो अकारान्त अङ्ग को दीर्घ हो।

जैसे-पुरुषाभ्याम्॥

1

तृतीयां का बहुवचन - 'पुरुष+भिस्' इस अवस्था में----४३३-अतो भिस ऐस् ॥ २६॥ अ०७॥१॥६॥

जो अकारान्त अङ्ग से परे भिस् हो, तो उसको ऐस् आदेश हो।

त्रानेकाल् होने से भिस् मात्र के स्थान में ऐस् हुआ। अब वृद्धि, रुत्व और विसर्जनीय होकर—पुरुषै: ॥

४३४-बहुतं छन्द्सि ॥ ३०॥ अ००॥ १॥ १०॥
परन्तु वैदिकप्रयोगों में भिस् के स्थान में ऐस् आदेश बहुत करके होता है।
जैसे—देवेभिः, देवैः। करणेभिः, करणैः, इत्यादि सब अकारान्त शब्दों में
दो २ रूप होंगे॥

चतुर्थी का एकवचन—'पुरुष+ङे' इस श्रवस्था में— ४३५-ङेर्घ: ॥ ३१॥ श्र० ७॥१॥१३॥ जो श्रकारान्त श्रङ् से परे ङे हो, तो उसके स्थान में 'य' श्रादेश हो। जैसे—'पुरुष+य'। यहां भी दीर्घ' होकर—पुरुषाय॥

द्विवचन—'पुरुष+भ्याम्'=पुरुषाभ्याम् ॥

बहुवचन--'पुरुष+भ्यस्'-

४३६-बहुवचने भल्येत् ॥ ३२ ॥ अ० ७ । ३ । १०३ ॥

बहुवचन में भलादि सुप् परे हो, तो श्रकारान्त श्रङ्ग को एकार श्रादेश हो। जैसे—'पुरुषे+भ्यस्'। रुत्व'ं, विसर्जनीय होकर—पुरुषेभ्यः॥

- १. वृद्धिः—( वृद्धिरेचि ॥ ६ । १ । ८८ ) सन्धि०—१३७ ॥
- २. रुत्वम् ( ससंजुषो रुः ॥ ८। २। ६६ ) नामिक —१६॥
- ३. विसर्जनीयः—( खरवसानयोविंसर्जनीयः ॥ ८।३। १४) सन्धि॰ २४८॥
- ४. दीर्घः ( सुपि च ॥ ७ । ३ । १०२ ) नामिक २८ ॥
- १. रूत्वम्—। संसजुषो रुः ॥ ८। २। ६६) नामिक—१६॥
- ६. विसर्जनीयः Parkni स्वापन Mana Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

पञ्चमी का एकवचन—'पुरुष+ङसि' ङसि के स्थान में आत्' और उससे सवर्णदीघिदिश होकर—पुरुषात्॥

पञ्चमी का द्विवचन—'पुरुष+भ्याम्' पूर्ववत् दीर्घ होके—पुरुषाभ्याम् ॥ बहुवचन—'पुरुष+भ्यस्'=पुरुषेभ्यः॥

क्री का एकवचन—'पुरुष+ङस्' इसके स्थान में उक्तसूत्र (२४) से 'स्य' आदेश होकर—पुरुषस्य ॥

द्विवचन—'पुरुष+श्रोस्'—

४३७-म्रोसिच॥३३॥ म्र०७।३।१०४॥

ग्रोस् विभक्ति परे हो, तो श्रकारान्त श्रंग को एकार श्रादेश हो।

इससे 'पुरुष' के अन्त्य अकार को एकार होकर—'पुरुषे+ओस्' हुआ। एकार को 'अय्' और सकार को रुत्व, विसर्जनीय होकर—पुरुषयो:॥

बहुबचन-ग्राम्—'पुरुष+ग्राम्'— '४३८-हस्वनद्यापो नुद्।। ३४ ॥ ऋ०७। १ ॥ ५४॥

हस्य स्वर, नदीसंज्ञक ईकारान्त, ऊकारान्त और आकारान्त से परे आम् को नुद्र का आगम हो।

टित्व धर्म से आम् के <u>आदि में</u> नुट् हुआ। जैसे—'पुरुष+नुट्+आम्'। इस अवस्था में उकार और टकार की इत्संज्ञा' और लोप हाकर—'पुरुष+न्+आम्'। आकार में नकार मिल के—'पुरुष+नाम्'।

४३६-नामि ॥ ३५ ॥ अ०६ । ४ । ३ ॥

नाम् अर्थात् जो षष्ठी का बहुवचन तुट् सहित आम् परे हो, तो अजन्त अङ्ग को दीर्घादेश हो।

जैसे-पुरुषानाम्, यहां नकार को गुकार होके-पुरुषागाम्॥

सप्तमी का एकवचन—िङ—'पुरुष⊹िङ' ङ्की इत्संद्वा<sup>६</sup> श्रीर लोप होकर श्रकार श्रीर इकार के स्थान में गुण एकादेश एकार हुश्रा—पुरुषे ॥

- 1. ग्रात् ( टाङसिङसामिनात्स्याः ॥ ७ । १ । १२ ) नामिक २४ ॥
- २. सवर्णदीर्घादेशः—(ग्रकः सवर्णे दीर्घः ॥ ६ । १ । १००) सन्घ०— १३३ ॥
- ३. टिख आदि में—( ब्राचन्तौ टिकतौ ॥ १ । १ । ४१ ) सन्धि ८० इससे हुन्ना ॥
- ४. उकारेस्रांज्ञा ( उपदेशे ८ जनुभासिक इत् ॥ १ २ ३ । २ ) नामिक १३ ॥ टकारेस्रांज्ञा—( इजन्सम् ॥ १ । ३ ३ ) सिध ॰ — १६ ॥
- १. याकार—( भ्रट्कुप्वाङ्नुम्ब्यवायेऽपि " दा ४ । २ ) नामिक—२६ ॥
- इ. ट्रकी इत्संज्ञा—( तराकतिवृते ॥ १ ३ । ८ ) नामिक २३ ॥

द्विवचन - 'पुरुष + स्रोस्' पूर्ववत् एकार, स्रय् स्रोर स् को रुत्व, विसर्जनीय होके - पुरुषयो: ॥

सप्तमी का बहुवचन —सुप्—'पुरुष+सुप्' अन्त्य इल् पकार की इत्संका और पूर्ववत् एकार डोकर—'पुरुषे+सु' इस अवस्था में—

४४०- त्रादेशप्रत्ययोः ॥ ३६ ॥ ऋ० ८ । ४ । ४६ ॥

इण्यत्याहार और कवर्ग से परे आहेश और प्रत्यय के सकार को मूर्जन्य अर्थात् षकार आदेश हो।

जैसे - पुरुषेषु ॥

४४१-मः बोधने च ॥ ३७ ॥ अ० २ । ३ । ४७ ॥ सम्बोधन अर्थ में भी प्रथमा विभक्ति हो।

प्रातिपदिकार्थं से संबोधन ऋर्थं ऋधिक होने से पूर्वसूत्र से प्रथमा विभक्ति प्राप्त न थी, इसिलिये यह सूत्र कहा।

४४२-मामन्त्रितम् ॥ ३८॥ अ०२।३।४८॥ सम्बोधन में जो प्रथमा तदन्त शब्दस्वरूप श्रामन्त्रितसंशक हो।

४४३-एकवचनं सम्बुद्धिः ॥ ३६ ॥ अ०२ । ३ । ४६ ॥ ग्रामन्त्रित प्रथमा विभक्ति के एकवचन की सम्बुद्धि संज्ञा हो। जैसे—'पुरुष+सु' उकार की इत्संज्ञा होके—'पुरुष+स्' इस ग्रवस्था में— ४४४-एङ्हस्वात्सम्बुद्धेः ॥ ४० ॥ अ०६ । १ । ६६ ॥

जो एङन्त और हस्वान्त प्रातिपदिक से परे सम्बुद्धि का हल् हो तो उसका लोपधो। संबोधन अर्थ दिखाने के लिये—हे; है; अङ्गः, भोस्; ओ, इत्यादिक शब्द भी संबोधन प्रथमान्त शब्द के साथ रहते हैं। जैसे—हे पुरुष। हे पुरुषो। हे पुरुषाः। वा - पुरुष। पुरुषो। पुरुषाः ॥

इसी प्रकार परमेश्वर; शिव; कृष्णा; वृत्तः घट; पट; ग्रन्थ; वेदः न्यायः धर्म्भः अर्थः कामः मोत्तः व्यवहारः परमार्थ, इत्यादि अकारान्त पुल्लिङ शब्दों के रूप जानने चाहियें।।

१. ग्रय्—( एचोऽयवायावः ॥ ६। १। ७८) सन्धि०—१७६॥

२. 'सम्बोधन'—ग्रत्यन्त चेताने को कहते हैं ॥

३. ( प्रातिपदिकार्थं लिङ्गपरिमाण्यचनमाके प्रथमा ॥ २ । ३ । ४६ )

४. पुरुषः पुरुषो, पुरुषाः । पुरुषम्, पुरुषो, पुरुषान् । पुरुषेयाः पुरुषो। पुरुषायः । पुरुषः । पुरुषायः । पुरुषायः । पुरुषायः । पुरुषायः । पुरुषः ।

अकारान्त नियतनपुं मकतिङ्ग धन शब्द--'धन' शब्द को पूर्ववत् प्रातिपदिकसंज्ञा आदि कार्य होकर—'धन+सु' इस श्रवस्था में—

४४५-त्र्रतोऽम् ॥ ४१ ॥ अ० ७ । १ । २४ ॥ श्रकारांत श्रङ्ग[नपुंसक लिङ्ग]सेपरे सु श्रीग श्रम् विभक्तियों के स्थान में श्रम् श्रादेश हो। इस अम् करने का यही प्रयोजन है कि सु और अम् का लुक् पाता है, सो न हो-धनम्॥

'धत+श्रौ'—

४४६-नपुंसकाच्च ॥ ४२ ॥ अ० ७ । १ । १६ ॥ जो नपुंसक लिङ्ग से परे श्रीङ् हो, तो उसके स्थान में शी श्रादेश हो। जैसे—'धन+शी'। श्की इत्संज्ञा हो के—'धन+ई' इस अवस्था में (आदुगुण्ः॥ ६।१।८७) इस सूत्र से गुण हो के -धने॥

'धन+जस्'—

४४७-जरशसोः शिः ॥ ४३ ॥ अ० ७ । १ । २०॥ ओ अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रातिपदिक से परे जस् और शस् विभक्ति हों, तो उनके स्थान में शि आदेश हो।

जैसे-- 'धन+शि'।

४४८-शि सर्वनामस्थानम् ॥ ४४ ॥ अ०१ । १ । ५६ ॥ शि सर्वनामस्थानसंज्ञक हो।

शकार की इत्संद्वा होके—'धन+इ' इस अवस्था में गुण्<sup>3</sup> प्राप्त हुआ, उसको बाध के—

४४६-नपुंसकस्य भलचः ॥ ४४ ॥ अ० ७ । १ । ७२ ॥

जो सर्वनामस्थान परे हो, तो भलन्त और अजन्त नपुंसक लिङ्ग को नुम् का श्रागम हो।

'धन+तुम्+इ' यहां मकार और उकार की इत्संज्ञा होके—'धन+नि' ऐसा हुआ। इस अवस्था में—

४४०-सर्वनामस्थाने चाऽमम्बुद्धौ ॥ ४६ ॥ अ० ६ । ४ । ८ ॥ जो संबुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परें हो, तो नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ हो। इस 'धन' शब्द के अन्त को दीर्घ हो के-धनानि॥

<sup>1. (</sup>स्त्रमोर्नेपु सकात् ॥ ७ । १ । २३ ) नामिक — ७२ इस सूत्र से लुक् प्राप्त था ॥

२. 'म्रोङ्' यह प्रथमा म्रोर द्वितीया विभक्ति के द्विवचन की सूचना है।।

३. गुयः—( श्राद्गुयाः ॥ ६ । १ । ८७ ) सन्धि — १३६ ॥

'थन+अम्' यहां अम् विभक्ति का लुक् नहीं होता है, किन्तु उसके स्थान में पूर्ववत् अम् आदेश होके प्रथमाविभक्ति के तुल्य—धनम्। धने। धनानि॥

तृतीया विभक्ति से लेके सब विभक्तियों में 'पुरुष' शृष्द के समान प्रयोग समकता चाहिए । जैसे — धनेन। धनाभ्याम् । धनै: । धनाय । धनाभ्याम् । धनेभ्यः । धनात् । धनाभ्याम् । धनेभ्यः । धनस्य । धनायोः । धनानाम् । धने । धनयोः । धनेषु । संबोधन चेतन ही में घट सकता है, इसलिये इसके संबोधन में प्रयोग नहीं बनते ॥

वस्त्र; शस्त्र; पात्र; बल; वन; जल; सलिल; गृह; इत्यादि नियत नपुंसकित्रों के भी रूप 'धन' शब्द के समान जानना चाहिए ॥

अकारान्त स्रीतिंग शब्द कोई भी नहीं है, क्योंकि स्नीतिंग में अकारान्त से टाप वा डीप् आदि प्रत्यय हो जाते हैं।।

जो श्रकारान्त धरम् शब्द १ हिंग श्रीर नेपुंसकित में है, उसके रूप भी पुरुष श्रीर धन शब्द के समान जानना चाहिये। जैसे—धर्मः। धर्मी। धर्माः। धर्मम्। धर्मी। धर्मान्। धर्मेण्। धर्माश्याम्। धर्मैः। धर्माय । धर्माश्याम्। धर्मेश्यः। धर्मात्। धर्माश्याम्। धर्मेश्यः। धर्मस्य। धर्मयोः। धर्माणाम्। धर्मे। धर्मयोः। धर्मेषु।

नपुंसकलिंग में अर्मम् । धर्मे । धर्माणि । धर्मम् । धर्मे । धर्माणि, इत्यादि ॥

#### अथ आकारान्तविषयः ॥

अाकारान्त सोमपा शब्द-

1

'सोम' स्रोषधियों के रस को कहते हैं, उसको जो पिये वा उसकी रक्षा करे उसका नाम 'सोमपा है। यह 'सोमपा शब्द विशेष के अनुसार तीनों लिङ्गों में होता है। जैसे—सोमपा: पिराडत:, सोमपा स्त्री, सोमपं कुलम्।

उनमें से प्रथम पुल्लिङ्ग, जैसे — 'सोमपा+सु' इत्संज्ञा और विसर्जनीय होके —सोमपाः। 'सोमपा+औ' वृद्धि पकादेश होके —सोमपौ। 'सोमपा+जस्' जकार की इत्संज्ञा और जोप तथा सकार को विसर्जनीय और एकादेश होके —सोमपाः॥

यहां एक रचन ग्रीर बहुवचन में भेद तभी होगा कि जब इसके साथ विशेष-वाची का निर्देश किया जायगा। जैसे—सोमपाः पग्रिडतः। सोमपाः पग्रिडताः।

'सोमपा+ग्रम्' पूर्वसवर्ण एकादेश होके—सोमपाम् । सोमपो—पूर्ववत् ॥ 'सोमपा+शस् इस श्रवस्था में—

४५१-यचि सम्।। ४७॥ अ०१।४। १८॥

यादि त्रजादि सर्वनामस्थानभिन्न कप्पत्ययाविधे स्वादि प्रत्यय परे हों, तो पूर्व की भसंज्ञा हो।

१. कप्प्रत्ययावधि पंचमान्याय के (उरः प्रभृतिभ्यः कप् ।१।४।१४०) इसः सूत्र तकं प्रत्ययं सेनां चाहिये ॥

४४२-त्रानो पानोः ॥ ४= ॥ अ०६।४।१४०॥

भसंबक आकारान्त धातु का लोप हो।

जो आदेश सामान्य से विधान किया जाता है, वह ( अलो अन्त्यस्य ॥ १। १। ४२) इस परिभाषाक्ल से अन्त्य वर्ण के स्थान में समसना चाहिये। 'सोमपा' शब्द में 'पा' आकारान्त धानु है इसके अन्त्य आकार का लोप होके—सोमप: ॥

सोमपा । सोमपाभ्याम् । सोमपाभिः । सोमपे । सोमपाभ्याम् । सोमपाभ्यः । सोमपः । सोमपाभ्याम् । सोमपाभ्यः । सोमपः । सोमपः । सोमपाम् । सोमपि । सोमपोः । सोमपासु संबोधन में कुछ विशेष नहीं —हे संमपाः । हे सोमपौ हे सोमपाः ॥

स्वीतिंग में भी 'सोमपा' शब्द के प्रयोग ऐसे ही होते हैं। पान्तु नपुंसकतिंग में भी कुछ विशेषता है—'सोमपा+सु' इस अवस्था में—

४५३ - हस्वो नपुंसके प्रातियदिकस्य ॥ ४६ ॥ अ०१।२ । ४७॥

जो नपुंसकलिंग में वर्त्तमान अजन्त प्रातिगदिक है, उसको हस्वादेश हो।

जैसे—'सोमप+सु'। ग्रव सब विभक्तियों में 'धन' शब्द के समान सब कार्य समभाना चाहिये। जैसे—स मपम्। सोमपे। सोमपानि। सोमपम्। सोमपे। सोमपानि। सोमपम्। सोमपे। सोमपानि। सोमपेन सोमपाभ्याम्। सोमपेः। सोमपाय सोमपाभ्याम्। सोमपेभ्यः। सोमपान्। सोमपेनाम्। सोमपेनामपे। सोमपेनाम्। सोमपे। सोमपयोः। सोमपानाम्। सोमपे। सोमपेनामपेनाम्। सोमपे।

इसी प्रकार — गोजा; प्रथमजा; गोषा; कूपखा; दिधिका; त्राज्यपा; कीलालपा, इत्यादि शब्दों के भी प्रयोग तीनों लिंगों में समस्रना चाहिये ॥

म्राकाशन्त कन्या शब्द\_

'कन्या+सु' इस अवस्था में-

४५४-इल्ड-या प्रयो दीर्घात्सुनिस्यपृक्तं हल् ॥ ५०॥ अ०६।१।६८॥ इलन्त और दीर्घ डीप्, डीप्, डीन्, टाप्, डाप् चाप् ये जिनके अन्त में हों, उन से परे जो सु, ति, सि इनका अपृक्ष हल् उसका लोप हो।

जैसे-कन्या॥

'कन्या+श्रो' इस श्रवस्था में-

844- औड़ आप: || ४१ || अ०७ | १ | १८ || जो आवन्त अङ्ग से परे औड़् हो, तो उसको शी आदेश हो | शकार की इत्संक्षा और गुणु हो के - कन्ये ||

१, 'म्रोक्' यह प्रथमा और दिताया के दिवचन की सूचना है।।

'कन्या+जस्' जकार की इत्संज्ञा, पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश, रुत्व, विसर्जनीय होके—कन्याः॥

'कन्या+श्रम्' पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होके - कन्याम् ॥

'कन्या+श्रोट्' पूर्ववत् - कन्ये ॥

'कन्या+शस' शकार की इत्संक्षा, पूर्वसवर्णदीर्घ, रुत्व श्रौर विसर्जनीय होके —कन्या: ॥

'कन्या+टा' इस अवस्था में—

४४६-आङि चाऽऽपः ॥ ४२ ॥ अ० ७ । ३ । १०४ ॥

त्रावन्त श्रंग से परे टा विभक्ति हो. तो उसको एकार हो।

जैसे -'कन्ये+टा' टकार की इत्संक्षा होके—'कन्ये+ग्रा' इस अवस्था में अय् ग्रादेश होकर—कन्यया।

कन्याभ्याम् । कन्याभिः ॥

'कन्या+ङे' इस अवस्था में-

४४ ५-योडापः ॥ ४३ ॥ ऋ० ७ । ३ । ११३ ॥

श्राबन्त श्रंग से परे जित् प्रत्यय को याट का श्रागम हो।

जैते—'कन्या+याट्+डे'। टकार, ङकार की इत्संद्वा श्रोर लोप तथा इससे वृद्धि एकादेश होके—कन्यायै॥

कन्याभ्याम् । कन्याभ्यः । कन्यायाः । कन्याभ्याम् । कन्याभ्यः । कन्यायाः । 'कन्याभ्याः । कन्याभ्यः । कन्याभयः । 'कन्याभ्योः विसर्जनीय द्वांके — कन्ययोः । 'कन्याभ्याम्'=कन्यानाम्' ॥

, 'कन्या+याट्+िंड इस ऋवस्था में—

४५८-डेर्म्झटाम्नीभ्यः ॥ ५४ ॥ अ० ७ । ३ । ११६ ॥ आवन्त, नदासंज्ञक और नी इन अंगों से परे ङि के स्थान में आम् आदेश हो। जैसे—'कन्याया+आम्' यहा दीर्घ एकादेश होके—कन्यायाम्॥

कन्ययोः । कन्यासु ॥

संबोधन में इतना विशेष है कि—'कन्या सु' पूर्ववत् सकार का लोप हो कें— ४५६-सम्बुद्धी च ॥ ५५ ॥ अ० ७ | ३ । १०६ ॥ सम्बुद्धि परे हो तो आबन्त अंग को एकार आदेश हो। जैसे—हे कन्ये।हे कन्ये।हे कन्याः ॥

१. ( इस्वनग्रापो नुद् ॥ ७ । १ । १४ , नामिक ३४ इससे नुद् होगया ॥

१. ( इत्याचारा उर् । क्रन्याः । क्रन्याम् क्रन्ये, क्रन्याः । क्रन्यया क्रन्यान्याम्, क्रन्याभिः । क्रन्यायै,

इसी प्रकार—प्रजा; जाया; छाया; माया; मेधा; श्रजा, इत्यादि श्राकारान्त

परन्तु जरा शब्द में कुछ विशेष हैं—

४६०-जराया जरसन्यतरम्याम् ॥ ५६॥ अ०७॥२॥ १०१॥

अजादि विभक्तियों के परे जरा शब्द की जरस् आदेश हो, विकल्प करके।

जरा। जरसी; जरे। जरसः; जराः, इत्यादि॥

## अथ इकारान्तविषयः॥

इकारान्त नियतपुद्धिङ्ग आग्नि शब्द--

पूर्ववत् सब कार्य होकर-ग्रप्तिः। 'श्रप्ति+ग्रो' यहां पूर्वसवर्णदीर्घ' एकादेश ईकार होके—ग्रप्नी।।

'श्रग्नि+जस' इस श्रवस्था में जकार की इत्संज्ञा होके— ४६१-जासि च ॥ ५७॥ श्र० ७॥ ३॥ १०१॥ १०० जो जस प्रत्यय के परे पूर्व हस्वान्त श्रङ्ग हो. तो उसको गुण हो। इससे इकार को एकार गुण श्रीर एकार को 'श्रय्' श्रादेश होकर—श्रग्नयः॥

४६२-वा॰-जसादिषु छुंद्सि वा वचनं प्राङ्ग् णौ चङ्ग्रुपधायाः॥४८॥ अ० ७ । ३ । १०१॥

gradult to make and an area

जस् श्रादि विभक्तियों में इस प्रकरण में जो कार्य कहे हैं, वे वेद में विकल्प कर के हों। जैसे—गुण का विकल्प—श्रयः, श्रग्न्यः। शतकतवः, शतकत्वः। पशवे, पश्वे॥ 'श्रग्नि+श्रम्' यहां (श्रमि पूर्वः॥ ६।१।१०६) इस सूत्र से पूर्वकृप हो के—श्रिमम्। 'श्रग्नि+श्रो' पूर्ववत्—श्रग्नी। 'श्रग्नि+श्रस्' पूर्वसवर्णदीर्घ श्रोर सकार को नकारादेश होके—श्रग्नीन्॥

'श्रग्नि+टा'—

४६३-शेषो ध्यमित्व। । ४६॥ अ०१।४।७॥

शेष श्रर्थात् जिनकी नदी संज्ञा न हो ऐसे जो हस्त इकारान्त उकारान्त शब्द हैं, उनकी घिसंज्ञा हो।

इससे अग्नि शब्द की घि संज्ञा होके-

कन्याभ्याम्, कन्याभ्यः । कन्यायाः कन्याभ्याम् कन्याभ्यः । कन्यायाः, कन्ययोः, कन्यानाम् । कन्यायाम्, कन्यायाः, कन्यायायः, कन्यायाः, कन्यायायः, कन्यायाः, कन्यायाः, कन्यायाः, कन्यायाः, कन्यायाः, कन्यायाः, कन्

- १. प्रवंसवर्गा (प्रथमयोः पूर्वसवर्गः ॥ ६ । १ । १०१ ) नामिक-- २१ ॥
- २. जहां गुण नहीं होता है, वहां (इको यणिच ॥ ६ । १ । ७७ ) सन्धि० १७८ इससे यणु आदेश होजाता है ॥

४६४-आङे। नास्त्रियाम् ॥६०॥ अ००।३॥१२०॥ जो घिसंज्ञक अंग से परे आङ् अर्थात् टा विभक्ति हो, तो उसके स्थान में ना आदेश हो, स्त्री लिङ्ग में न हो।

अग्रिना ॥

श्रद्भिभ्याम् । श्रद्भिभिः ॥

'श्रग्नि+ङे'—

४६ ५-घेर्ङिति ॥ ६१ ॥ अ० ७ । ३ । १११ ॥ जित्प्रत्यय परे हो, तो घ्यन्त ग्रंग को गुणादेश हो । उसकी 'ग्रय्' श्रादेश होके—ग्रग्नये ॥

श्रक्षिश्याम् । श्रक्षिश्यः ॥

'ग्रिप्ति+ङिसि' ङकार की इत्संज्ञा और इकार को गुण हो के—'ग्रिप्ते+ग्रस्' इस ग्रवस्था में—

४६६-ङसिङमोश्च ॥ ६२ ॥ अ०६ । १ । १०६ ॥

जो पदान्त एङ् से परे ङस् सम्बन्धी अकार हो, तो पूर्व पर के स्थान में पूर्व कप पकादेश हो।

जैसे-ग्रग्ने: ॥

अग्निभ्याम् । अग्निभ्यः । अग्नेः । 'अग्नि+श्रोस्' यहां य् आदेश हो गया—अग्न्योः । 'अग्नि+श्राम्' यहां तुर्' और दीर्घ' हो कर—अग्नीनाम्, सिद्ध हुआ ॥

'श्रग्नि+िङ' इस श्रवस्था में—

४६७-ग्रच्च घेः ॥ ६३ ॥ ग्र॰ ७ । ३ । ११६ ॥

जो घिसंज्ञक इकारान्त उकारान्त शब्द से परे कि विभक्ति हो, तो उसके स्थान में श्रीकार श्रीर घिसंज्ञक शब्द के इकार उकार को श्रकारादेश हो।

जैसे — 'अग्न+श्री'। वृद्धि एकादेश हो के — अग्नी ॥

श्राग्योः । श्रग्निषु ॥

संबोधन—'ग्रग्नि+सु' यहां संवृद्धिसंज्ञा हो के—

४६८ – हूस्वस्य गुणः ॥ ६४ ॥ ऋ० ७ । ३ । १०८ ॥

संबुद्धि परे हो, तो हस्वान्त ग्रंग को गुण हो।

इससे गुण हो के । एङ्हस्वात्सम्बुद्धेः ॥ ६।१।६६) इस सूत्र से सकार का लोप हुन्ना —हे त्राने ॥

हे असी। हे असयः। यहां संहिता क्यों नहीं होती, सो (हैहेप्रयोगे हैहयोः॥

१. नुट—( इस्वनद्यापो नुद् ॥ ७। १ । ५४) नामिक—३४॥ 🚈 🦢

२. दीर्घ-( नामि॥ ६। ४।३) नामिक-३४॥ अ

द। २। द१) इस सूत्र से 'हे' की ज्लुतसंद्धा हो के उसको प्रकृतिभाव हो जाता है ॥ इसी प्रकार वृद्धिः रिव, इत्यादि इकारान्त पुद्धिक शब्दों का साधुत्वविषय जानना चाहिये।।

परन्तु पित शब्द में इतना विशेष है—

४६६-पित: ममास एव ॥ ६५ ॥ अ०१ । ४ । ८ ॥

पित शब्द समास ही में घिसंज्ञक हो ।

इससे समास से अन्यत्र पित शब्द को घिसंज्ञा के कार्य नहीं होते—पत्या। पत्ये ॥

'पित+इसि' यहां 'पत्यस्' इस अवस्था में—

४७०-एयत्यात्पः स्य ॥ ६६ ॥ अ०६ । १ । १११ ॥

जो ख्य और त्य इनसे परे इस सम्बन्धी अकार हो, तो उसको पूर्वक्रप

उकार आदेश हो।

पत्युः ॥

'पति+िक' िक को श्रोकार<sup>3</sup> श्रादेश हो गया—पत्यौ ॥

म्रोर साखि शब्द में विशेष यह है कि—'सखि+सु'—

४७१-अनङ् सौ ॥ ६७ ॥ अ० ७ । १ । ६३ ॥

जो संबुद्धिभिन्न सु विभक्ति परे हो, तो सिख शब्द को अनङ् आदेश हो। अनङ् आदेश के अ, ङ्इनकी इत्संक्षा और लोप तथा दीर्घ होकर—'सखान्+ सु' (हल्ङ्याक्यो दीर्घात्०॥ ६।१।६८) इस (४०) सूत्र से सु का लोप, और—

इत्ङ्बाक्या दावात्०॥ ६ । १ । ६८ ) इस ( २० ) दुत्र स छु फा बाप, आर ४७२—नत्नोपः प्रातिपदिकान्तस्य ॥ ६८ ॥ अ०८ । २ । ७ ॥

प्रातिपदिकान्त पद के नकार का लोप हो। इस सूत्र से नकार का लोप होके—सखा॥

'सिख+ग्री' इस ग्रवस्था में—

४७३--मच्युरसंबुद्धौ ॥ ६६ ॥ अ० ७ । १ । ६२ ॥

ग्रसंबुद्धि में जो सिख शब्द, उससे परे जो सर्वनामस्थान, सो णित् हो।

१७४-मचोऽञ्िषति ॥ ७० ॥ अ० ७ । २ । ११५ ॥ जित् स्रोर णित् प्रत्यय परे हों, तो स्रजंत स्रंग को वृद्धि हो । जैसे—'सलै+स्रो' स्रब पैकार को 'स्राय' स्रादेश होके—सखायो । सखायः ।

१. यह सूत्र अष्टमाध्याय में प्लुतप्रकरण में कहा है।।

२. प्रकृतिसाव—( प्लुतप्रगृद्धा श्रचि नित्यस् ।। ६ । १ । १२४ ) सन्धि०—१७० ॥

३, कि को भौकार—( इदुद्भ्यामीत् ॥ ७ । ३ । ११८) इससे हुआ ॥

४. दीर्व-( सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ ॥ ६ । ४ । ८ , नामिक -- ४६ ॥

सकायम् । सकायौ ॥

त्रागे 'पति' शब्द के समान—सखीन्। सख्या। सख्ये। सख्युः। सख्युः। सख्युः। सख्यौ, इत्यादि॥

इकाशन्त नियतनपुंसकालिंग चारि शब्द—
'वारि+सु' इस अवस्था में—
४७६-स्वमोर्नपुंनकात् ॥ ७२ ॥ अ० ७ । १ । २३ ॥
जो नपुंसकतिङ्ग से परे सु अर अम् हों, तो उनका लोप हो।
वारि ॥

'वारि+ग्रौ' यहां (नपुंसकाच ॥ ७ । १ । १६ ) इस (४२) सूत्रसे श्रौकार के स्थान में 'शी' श्रादेश श्रौर शकार की इत्संज्ञा होके—'वारि+ई' इस श्रवस्था में—

४७७-इकोऽचि विभक्तौ ॥ ७३ ॥ अ० ७ । १ । ७३ ॥

जो अजादि विभक्ति परे हो, तो इगन्त नपुंसक अंग को नुम् का आगम हो।
नुम् होके—वारिणी। 'वारि+जस्' यहां 'शि' आदेश और दीर्घ' हो के—वारीणि॥
फिर भी द्वितीयाविभक्ति में—वारि। वारिणी। वारीणि॥

वारिगा। वारिभ्याम् । वारिभिः । वारिगो । वारिभ्याम् । वारिभ्यः । वारिगः । वारिभ्याम् । वारिभ्यः । वारिगः । वारिगोः ।

'वारि+म्राम्' यहां नुद्र मौर नुम् दोनों की प्राप्ति में पूर्वविप्रतिषेध से नुद्र होता है। यदि नुम् हो तो पूर्वान्त होने से दीर्घन हो —वारीणाम्। वारिणि। वारिणोः। वारिषुः॥

इसके संबोधन में प्रयोग नहीं बनते, क्योंकि 'वारि' शब्द से जल का प्रह्ण होता है। उसके जड़ होने से संबोधन नहीं बन सकता।

४. वारि वारिणी, वारीणि । वारि वारिणी, वारीणि । वारिणा, वारिम्याम्, वारिमेः । वारिणे, वारिम्याम्, वारिम्यः । वारिणः, वारिम्याम्, वारिम्यः । वारिणः, वारिणोः, वारीणाम् । वारिणि, वारिणोः, वारिषु ।।

१. 'शि' ब्रादेश —( जश्शसोः शि: ॥ ७ । १ । २० ) नामिक — ४३ ॥

२. दीर्घ—। सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ ॥ ६ । ४ । ८ ) नामिक—४६ ॥

३. नुम् (इको अचि विभक्ती ।। ७ । १ । ७३ ) इससे प्राप्त हुन्ना, तथा (इस्वनवापो नुट् ।। ७ । १ । ४४ ) नामिक —३४ इससे नुट् प्राप्त हुन्ना । इन दोनों की युगपत् प्राप्ति में (विप्रतिषेधे परं कार्यम् ।। १ । ४ । २) सन्धि – ११७ । इस परिमाषा से पर कार्य्य नुम् ही पाया, उस नुम् को (नुमचिरतुज्वज्ञावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन ) इस वार्तिक बज्ज से नुम् बाध के पूर्व कार्य नुट्' होता है ।।

इसी प्रकार श्रौर भी सब नियतनपुंसकिंग इकारान्त श्रादि श्रादि शब्दों का साधुत्व जानना चाहिये॥

परन्तु—ग्रास्थिः दिधः सिव्धः त्राचि, इन चार नपुंसकिता इकारान्त शब्दों के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं, उनको लिखते हैं—

ग्रस्थि। ग्रस्थिनी। ग्रस्थीनि। फिर मी—ग्रस्थि। ग्रस्थिनी। ग्रस्थीनि।। 'ग्रस्थि+टा' इस ग्रवस्था में—

४७८-मस्यिद्धि नक्थ्यच्णामनङुद्क्काः॥ ७४॥ स्र००। १।७५॥ तृतीयादि स्रजादि विभक्तियों के परे स्रस्थि, दिध, सिक्थ, स्रीच शब्दों को स्रनङ् स्रादेश हो।

जैसे—'श्रखनङ्+टा' इस श्रवस्था में श्र. ङ्, ट्र. इनकी इत्संज्ञा हो के लोप होगया। उक्त श्रजादि' विभक्तियों में 'श्रस्थन्' इसकी भसंज्ञा होके—

४७६-अज्ञोपोऽनः॥ ७१॥ अ०६।४।१३४॥

अजादि विमिक्तियों के परे अन्नन्त भ मंज्ञक अंग के अकार का लोप हो। इससे-सकारोत्तर अकार का लोप हो गया। जैसे—'अश्वन्+आ' स्थ्, न्, टा के आकार में मिल के—अस्थना। अस्थने। अस्थनः। अस्थनः। अस्थनाः। अस्थनाम्॥

'ग्रखन्+ङि'—

४८०-विभाषा ङिश्योः ॥ ७६ ॥ अ०६ ॥ ४ । १३६ ॥ ङि और शि विभक्ति के परे भसंज्ञक अञ्चन्त अंग के अकार का लोप विकृत्प करके हो।

ग्रस्थिनः ग्रस्थिन ॥

श्रम्थनोः । हलादि विभक्तियों के परे 'वारि' शब्द के समान जानना चाहिये ॥ 'श्रस्थि' श्रादि शब्दों की व्यवस्था कुछ वेद में विशेष है—

४८१-छन्दस्यपि हर्यते ॥ ७७ ॥ अ० ७ । १ । ७६ ॥

वेद में भी अस्थि आदि शब्दों में उदात्त अनङ् आदेश देखने में आता है। यहां प्रयोजन यह है कि 'अनङ्' आदेश नियम से कहा है। उससे अन्यत्र भी देखने में आता है। जैसे—इन्द्रो द्धीचो अस्थिभिः। भद्रं पश्येमात्त्रभिः। अस्थान्युत्कृत्य जुहोति, इत्यादि॥

४८२-ई च द्विवचने ॥ ७८ ॥ अ० ७ । १ । ७७ ॥ द्विवचन विभक्ति के परे ऋस्थि आदि शब्दों को उदात्त ईकार आदेश वेद में होता है । अजी ते इन्द्र पिक्नले । अस्थीभ्याम् । दधीभ्याम् । सक्थीभ्याम् । अज्ञीभ्यां ते नासिकाभ्याम्, इत्यादि ॥

१. श्रजादि विमक्ति—य, हे, इसि, इस्, श्रोस् श्रास्, हि, श्रोस् ॥

२. ग्रस्थि, ग्रस्थिनी, ग्रस्थीनि । ग्रस्थि, ग्रस्थिनी, ग्रस्थीनि । ग्रस्थना, ग्रस्थिभ्याम्, ग्रस्थिभि; ।

इकारान्त नियतस्त्रीलिङ्ग वेदि शब्द--

वेदि: । वेदी । वेदय: । वेदिम् । वेदी । वेदी: । वेदा । वेदिम्याम् । वेदिमि: ॥ 'वेदि+ङे' इस स्रवस्था में—

४८३-ङिनि हस्वश्च ॥ ७६॥ अ०१।४।६॥

स्त्रीलिंग के वाचक हस्त इकारान्त उकारान्त शब्द, श्रीर जिनके स्थान में इयङ् उवङ् होते हैं, ऐसे जो दीर्घ ईकारान्त अकारान्त शब्द हैं, उनकी नदी संज्ञा विकल्प करके हो।

दूसरे पत्त में हस्त इकारान्त उकारान्त शब्दों की 'घिसंझा' भी होती है। इस कारण 'वेदि' शब्द की 'नदी' श्रौर 'घि' दोनों संज्ञा होती हैं। प्रथम नदीसंज्ञा होकर—

४८४-त्राग्नद्याः ॥ ८० ॥ ऋ० ७ । ३ । ११२ ॥

नद्यन्त श्रंग से परे ङित् विभक्ति को श्राट् का श्रागम हो।

'वेदि+श्राट्र+ङे' यण् श्रीर वृद्धि एकादेश होके — वेद्यै; जिस पद्म में नदीसंझा न हुई वहां घिसंझा होके—'वेदि+ङे' यहां श्रीन शब्द के समान गुण श्रीर श्रय् श्रादेश होके—वेदये ॥

वेदिभ्याम् । वेदिभ्यः । 'वेदि+श्राट्+ङसि' ट, ङ् इ इनकी इत्संक्षा होके—वेद्याः, विसंक्षा पत्त में—वेदेः । वेदिभ्याम् । वेदिभ्यः । 'वेदि+श्राट्+ङस्' पूर्ववत्—वेद्याः, वेदेः । वेदोः । 'वेदि+श्राम्' यहां नुद्' होके—वेदीनाम् ॥

'वेदि्+िङ' नदीसंज्ञा में —'वेदि्+म्राट्+म्राम्'=वेदाम्; घिसंज्ञा में —वेदौ। वेद्योः। वेदिषु रें ॥

इसी प्रकार-श्रुति; स्मृति; बुद्धि; धृति; कृति; वापि; हानि; रुचि; भूमि श्रीर धृलि श्रादि शब्दों का साधुन्व जानना चाहिये॥

## अथ ईकारान्तविषयः ॥

ईकागन्त पुल्लिङ्ग मेनानी शब्द— 'सेनानी+सु' उकार का लोप, रुत्व श्रौर विसर्जनीय होके—सेनानीः॥ 'सेनानी+श्रौ'—

४८५-एरनेकाचोऽमंयोगपूर्वम्य ॥ ८१ ॥ अ०६ । ४ । ८२ ॥

ग्रस्थने, ग्रस्थिभ्याम्, ग्रस्थिभ्यः । ग्रस्थनः, ग्रस्थिभ्याम्, ग्रस्थिभ्यः । ग्रस्थनः, ग्रस्थनोः, ग्रस्थनाम् । ग्रस्थिनः, ग्रस्थनिः, ग्रस्थिषु ।।

वेदे — ग्रस्थी । ग्रस्थानि । ग्रस्थीभ्याम् । ग्रस्थोमेः, ईदशान्यपि ।।

१. नदीसंज्ञा मान के ( इस्वनद्यापो नुद् ॥ ७ । १० । २४ ) नामिक— ३४ इससे नुद् हुन्ना ॥

२. वेदिः, वेदी, वेदयः। वेदिस्, वेदी, वेदीः। वेदाः, वेदिश्याम्, वेदीः, वेदीः, वेदीनास्। वेदान्, वेदीः, वेदीः। वेदिषु ॥

जिमसे धातु का अवयव संयोग पूर्व न हो ऐसा जो इवर्ण है, तदन्त अनेकाच् श्रंग को अच् परे हो, तो यणादेश हो।

. सेनान्यौ । सेनान्यः । सेनान्यम् । सेनान्यौ । सेनान्यः सेनान्या ॥

सेनानीभ्याम् । सेनानीभिः । सेनान्ये । सेनानीभ्याम् । सेनानीभ्यः । सेनान्यः । सेनानीभ्याम् । सेनानीभ्यः । सेनान्यः । सेनान्योः । सेनान्याम् । 'सेनानी+िक' यद्दां नी से परे कि को श्राम् श्रादेश होके—सेनान्याम् । सेनान्योः । सेनानीषु । संबोधन में यहां कुछ विशेष नहीं है—हे सेनानीः । हे सेनान्यो । हे सेनान्यः ॥

इसी प्रकार—ग्रामणी; ग्रग्नणी; यज्ञनी; सुधी, इत्यादि शब्दों के रूप भी जानना ॥ परन्तु 'ग्रामणी' शब्दमें वेद में यह विशेष है कि— ४८६—श्राग्रामण्योश्छन्द् सि ॥ ८२ ॥ श्र० ७ । १ । ५६ ॥ वेद में श्री ग्रीर ग्रामणी शब्द से परे ग्राम् हो तो, उसको नु ग्रागम होता है। जैसे—श्रीणाम् । ग्रामणीनाम् ॥

श्रौर—सुधी शब्द में यह विशेष है कि—'सुधी+सु'=सुधी: । 'सुधी+श्रौ'— ४८७−न भूसुधियोः ॥ ८३ ॥ ऋ०६ । ४ । ८५ ॥

अजादि विभक्ति के परे भू और सुधी शब्द को यणादेश न हो।

यणादेश के निषेध होने से इयङ् उवङ् आदेश होते हैं —सुधियौ । सुधियः । सुधियम् । सुधियो । सुधियः । सुधिया । सुधियः । सुधियः

सुधीषु।संबोधन में यहांभी कुछ विशेष नहीं। 'भू' शब्द का साधुत्व आगे आवेगा।। 'सुधी' और 'भू' शब्द का बेद में यह विशेष हैं कि— ४८८-छुन्द्स्युभयथा।। ८४।। अ०६। ४। ८६।।

वैदिकप्रयोग विषय में अजादि विभक्तियों के परे भू और सुधी शब्द को यणादेश विकल्प करके हो।

सुध्योः सुधियो । सुध्यः, सुधियः, इत्यादि ॥

'सनानी' आदि शब्द यदि स्त्रीलिङ्ग के विशेषण हों तो इनके प्रयोगों में कुछ विशेषता नहीं है, और नपुंसकलिङ्ग हों तो इनके प्रयोग 'वारि' शब्द के समान होते हैं, क्यों कि नपुंसकलिङ्ग में उक्त हस्त इकारान्त हो जाते हैं।

- १. ग्रास्—( हेराम्नद्याम्नीभ्यः ॥ ७ । ३ । ११६ ) नामिक—५४ ॥
- २. श्रीगामुदारो धरुगो रयीगाम् । अप्यत्र सूत्रप्रामगीनाम् ॥
- ३. प्रामणीः, प्रामण्यौ, प्रामण्यः । प्रामण्यम्, प्रामण्यौ, प्रामण्यः । प्रामण्याः, प्रामणीभ्याम्, प्रामणीभ्याम्, प्रामणीभ्यः । प्रामण्यः, प्रामणीभ्याम्, प्रामणीभ्यः । प्रामण्यः, प्रामणीः, प्रामणीः, प्रामण्योः, प्रामणीः, प्रामण्योः, प्रामणीः, हे प्रामण्यौः हे प्रामण्योः । ।
  - ४. सुद्ध ध्यायतीति सुधीः परिस्तः, सुद्ध ध्यायति या सुद्ध धीर्यस्या वेति विग्रहे श्रीवत् ।।

अब जो शब्द नियतस्त्रीतिङ्ग ईकारान्त हैं उनके विषय में तिखते हैं— नियत ईकारान्त स्त्रीतिङ्ग कुमारी शब्द—

'कुमारी+सु' यहां उकार की इत्संका और लोप तथा ङीवन्त से अपृक्त हल् सु का लोप' होकर—कुमारी॥

'कुपारी+ग्रौ'—

४८६-दीर्घाजास च।। ८४।। छ०६।१।१०४॥

दीर्घ से परे जस् वा इजादि विभक्ति हों, तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्णदीर्घ पकादेश न हो।

यहां 'कुमारी' दीर्घ ईकारान्त शब्द है, इससे पूर्वसवर्ण दीर्घ का निषेध होकर यणादेश होता है। जैसे—कुमार्य्या। कुमार्यः॥

दीर्घईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों का जस् विभक्ति के परे वेद में यह विशेष है —

४६०-वा बन्द्सि ॥ ८६ ॥ ऋ० ६ । १ । १०४ ॥

[ वेद में ] जो दीर्घ से परे जस् हो, तो उसको पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश विकल्प कारके हो।

जैसे – कुमारी:, कुमार्यः । वधूः, वध्वः, इत्यादि ॥ कुमारीम् । कुमार्यों । कुमारीः । कुमार्या । कुमारीभ्याम् । कुमारीभिः ॥ 'कुमारी+क्रे' यहां –

४६१-यूरूयाख्यो नदी ॥ ८७ ॥ अ०१ । ४ । ३ ॥ जो स्नीलिङ्ग के वाचक ईकारान्त शब्द हैं; उनकी नदी संक्षा हो । कुमार्यों ॥

कुमारीभ्याम् । कुमारीभ्यः । कुमार्याः । कुमारीभ्याम् । कुमारीभ्यः । कुमार्याः । कुमार्याः । कुमार्याः । कुमार्याः । कुमार्याः । कुमार्याः । कुमारीषु ॥

संबोधन में अपृक्त हल् 'सु' का लोप होकर— ४६२-अभ्वार्थ नद्यो हैस्वः ॥ ८८ ॥ अ० ७ द्वि । १०७ ॥ सम्बुद्धि परे हो, तो अभ्वार्थ और नदीसंबक्तों को हस्ताऽऽदेश हो। हे कुमारि । हे कुमार्थ्यों । हे कुमार्थ्यः ॥

१. ( हल्ङ्याक्स्यो दीर्घात सुतिस्यप्रक हल् ॥ ६ । १ । ६८ ) नामिक १० ॥

२. नचन्त मानकर .श्रायानद्याः ।। ७ । ३ ' ११२ ) नामिक— ८० इससे 'श्राट्' श्रागम होगया ।

३. । इस्वनबापो नुट् । ७ । ३०। ४४ नामिक—३४ इससे नुट् होगया ।।

४, ( प्रत्ययतोपे प्रत्ययतत्त्रणम् ॥ १ । १ । ६१ ) सन्धि०— १०० इस परिभाषा से

जो ईकारान्त ङीप्, ङीष्, ङीन् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं, उनको 'कुमारी' शब्द के तुल्य समभना चाहिये। जैसे—नदी; सरस्वती; ब्राह्मणी; त्रासुरी; किशोरी; वधूटी; चिरण्टी; कत्रीं, इत्यादि॥

परन्तु ईकारान्त स्त्री शब्द के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं।

'स्नी+सु' पूर्ववत् कार्य होकर—स्त्री। 'स्नी+ग्री' इस ग्रवस्था में—
४६३—स्त्रियाः ॥ ८६॥ श्र०६। ४। ७६॥
जो श्रजादि प्रत्यय परे हो, तो स्त्री शब्द को इयङ् श्रादेश हो।
स्त्रियौ। स्त्रियः॥

'स्त्रि+ग्रम्' इस ग्रवस्था में— ४६४—बाऽम्श्रमोः ॥ ६० ॥ ग्र० ६ । ४ । ८० ॥

श्रम् श्रौर शस् प्रत्यय परे हों, तो स्त्री शब्द को इयङ् श्रादेश विकल्प करके हो। स्त्रियम्; जिस पत्त में इयङ् न हुश्रा, वहां पूर्वरूप एकादेश होकर स्त्रीम्। स्त्रियौ। स्त्रियः; स्त्रीः॥

7

स्त्रिया। 'स्त्री+ङे'—

४६४-नेयङुवङ्स्थानावस्त्री ॥ ६१ ॥ अ०१ । ४ । ४ ॥

जिन स्त्रीतिक ईकारान्त अकारान्त शब्दों के स्थान में इयङ्, उवङ् आदेश होते हैं, वे नदीसंक्षक न हों, परन्तु स्त्री शब्द तो नदीसंक्षक हो।

'स्त्री+त्राट्+डें ≔िस्तरें । स्त्रियाः । स्त्रियाः । स्त्रियोः । स्त्रीगाम् । स्त्रियाम् ।

स्त्रियो:। स्त्रीषु॥

संबोधन में नदीसंद्वा के होने से हस्व' हो गया—हे स्त्रि। हे स्त्रियो। हे स्त्रियः॥ ग्रीर जो ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग दूसरे प्रकार के हैं—ग्रवी; तरी; स्तरी; तन्त्री; ययी; पपी; लच्मी; श्री, ये भी 'कुमारी' शब्द के समान हैं, परन्तु इनसे परे सु अपृक्त हल् लोप नहीं होता, क्योंकि ये ङीप, ङीष् वा ङीन् प्रत्ययान्त शब्द नहीं हैं॥

श्रीर इन दूसरे प्रकार के शब्दों में एक श्री शब्द-में कुछ विशेष है। जैसे—

'भ्री+सु'=भ्री:। 'भ्री+ग्रौ'—

४६६-म्राचि रनुघातुभुवां य्वोरियङुवङौ ॥६२॥ म्र०६ । ४ । ७७ ॥ जो म्रजादि प्रत्यय परे हों, तो श्नुप्रत्ययान्त धातु के इवर्ण उवर्ण भ्रौर भ्रू शब्द इनके इकार को इयङ् भ्रौर उकार को उवङ् भ्रादेश हों ।

जैसे —श्रियो<sup>२</sup>,। श्रियः । श्रियम् । श्रियौ । श्रियः । श्रिया । 'श्री+ङे'=श्रियै; श्रिये ।

१. इस्व—( श्रम्बार्थनचोर्ड्स्वः ॥ ७ । ३ । १०७ ) नामिक — मम ॥

२. किप् प्रत्ययान्त शब्द प्रातिपदिकसंज्ञक होके भी धातुसज्ञा का त्याग नहीं करते हैं।।

३. ( किति इस्वरच ॥१।४।६ ) नामिक—७६ इस सूत्र से विकल्प करके 'नदी'संज्ञा होगई ।

श्रियाः, श्रियः । श्रियाः, श्रियः । श्रियोः ॥

'श्री+ग्राम्' इस ग्रवस्था में—

४६७-बाऽऽसि ॥ ६३ ॥ ऋ० १ । ४ । ४ ॥

इयङ् उवङ् स्थानी स्त्रीवाचक ईकारान्त ककारान्त शब्द स्नाम् विभक्ति के परे

नदीसंज्ञापत्त में —श्रीणाम्; श्रन्यत्र —श्रियाम्। वेद् में —श्रीणाम् वह एक ही प्रयोग होता है॥

'श्री+िक' नदीसंज्ञापत्त में —िश्रियाम्; अन्यत्र —िश्रियोः। श्रीषु। हे श्रीः। हे श्रियौ। हे श्रियः॥

#### अथ उकारान्तविषयः॥

उकारान्त पुल्लिङ्ग वायु शब्द--

वायु:। 'वायु+श्री' पूर्वसवर्णदीर्घ होकर—वायू। 'वायु+जस्' घिसंज्ञा होते से ग्रुण श्रीर (एचोऽयवायाव:॥६।१।७८) सन्धि० –१७६ इस सूत्र से श्रवादेश होके —वायव:। 'वायु+श्रम्', पूर्वस्वर्ण दीर्घ, श्रीर सकार को नकार अवदेश होकर—वायुन्॥

वायुना । वायुभ्याम् । वायुभिः । वायवे । वायुभ्याम् । वायुभ्यः । 'वायु+ङ्कित्त' गुण ग्रौर पूर्वरूप' एकादेश होके—वायोः । वायुभ्याम् । वायुभ्यः । वायोः । 'वायु+ग्रोस्' यणादेश होके—वाय्वोः । वायूनाम् । 'वायु+ङि' ङि को ग्रौकार' तथा उकार को श्रकार' होकर वृद्धि एकादेश हुन्रा—वायौ । वाय्वोः । वायुषु ॥

सम्बोधन में — 'वायु+स्' अपृक्तहल् लोप आरे गुण होकर — हे वायो । हे वायव: ॥

इसी प्रकार - विश्वः प्रश्वः भानुः गुरुः शत्रु, इत्यादि उकारान्त, पुल्लिङ्ग शब्दों का साधुत्व समभना ॥

परन्तु उकारान्त क्रोष्टु शब्द में कुछ विशेष है— ४६८-तृज्वत्क्रोष्टुः ॥ ६४ ॥ ऋ॰ ७ । १ । ६५ ॥

- १. ( श्रीप्रामण्योरछन्दसि ॥ ७ । १ । १६ ) नामिक— ८२ इससे नित्यं नुद् होगयां ॥
- . २. ( असि पूर्वः ॥ ६ । १ । १०६ ) नामिक—२२ ॥
  - ३. सकार को नकारादेश-( तस्माच्छ्रसो नः पुंसि ।। ६ । १ । १०२ ) नामिक-२४ ॥
  - ४. (ङसिङसोश्च ॥ ६ । १ । १०६ ) नामिक—६२ इससे पूर्व रूप हुआ ॥
  - र. कि को औ, तथा उ को अ-( अब घे: 1 ७ 1 ३ । ११६ ) नामिक ६३ ॥
  - इ. स् जोप ( हल्ङ्याव्भ्यो दीर्घास्युतिस्यप्रक्तं हल् ।। ६ । १ । ६८ ) नामिकं १० ॥
  - ७. गुर्या—( इस्वस्य गुर्याः ॥ ७ । ३ । १०८ ) नामिक—६४ ॥

जो ईकारान्त ङीप्, ङीष्, ङीन् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं, उनको 'कुमारी' शब्द के तुल्य समभना चाहिये। जैसे—नदी; सरस्वती; ब्राह्मणी; आसुरी; किशोरी; वधूटी; चिरएटी; कर्जी, इत्यादि॥

परन्तु ईकारान्त स्त्री शब्द के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं।

'स्त्री+सु' पूर्ववत् कार्य होकर—स्त्री। 'स्त्री+स्रौ' इस स्रवस्था में—
४६३—स्त्रियाः ॥ ८६॥ स्त्र०६। ४। ७६॥
जो स्रजादि प्रत्यय परे हो, तो स्त्री शब्द को इयङ् स्रादेश हो।
स्त्रियौ। स्त्रियः॥

'स्त्रि+ग्रम्' इस ग्रवस्था में— ४६४—वाऽम्श्रमोः ॥ ६० ॥ अ०६ ॥ ४ । ८० ॥ ग्रम् ग्रौर शस् प्रत्यय परे हों, तो स्त्री शब्द को इयङ् ग्रादेश विकल्प करके हो। स्त्रियम्, जिस पद्म में इयङ् न हुत्रा, वहां पूर्वरूप एकादेश होकर—स्त्रीम्। स्त्रियो । स्त्रियः, स्त्रीः॥

स्त्रिया। 'स्त्री+ङे'-

४६४-नेयङुवङ्स्थानावस्त्री ॥ ६१ ॥ अ०१ । ४ । ४ ॥

जिन स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त ऊकारान्त शब्दों के स्थान में इयङ्, उवङ् आरेश होते हैं, वे नदीसंज्ञक न हों, परन्तु स्त्री शब्द तो नदीसंज्ञक हो।

'स्नी+त्राट्+ङे =िसये । स्नियाः । स्नियाः । स्नियोः । स्नीगाम् । स्नियाम् । स्नियोः । स्नीषु ॥

संबोधन में नदीसंबा के होने से हस्व' हो गया — हे स्त्रि । हे स्त्रियो । हे स्त्रियः ॥ श्रीर जो ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग दूसरे प्रकार के हैं — श्रवी; तरी; स्तरी, तन्त्री; ययी; पपी; लक्ष्मी; श्री, ये भी 'कुमारी' शब्द के समान हैं, परन्तु इनसे परे सु अपृक्त हल लोप नहीं होता, क्योंकि ये ङीप, ङीष् वा ङीन् प्रत्ययान्त शब्द नहीं हैं ॥

श्रौर इन दूसरे प्रकार के शब्दों में एक श्री शब्द-में कुछ विशेष है। जैसे—

'श्री+सु'=श्री:। 'श्री+ग्रौ'—

४६६-अचि रनुघातुभुवां रवो।रियङुवङौ ॥६२॥ अ०६। ४। ७७॥ जो अजादि प्रत्यय परे हों, तो रनुप्रत्ययान्त धातु के इवर्ण उवर्ण और भू शब्द इनके इकार को इयङ् और उकार को उवङ् आदेश हों।

जैसे —श्रियो<sup>३</sup>। श्रियः । श्रियम् । श्रियौ । श्रियः । श्रिया । 'श्री+ङे'=श्रियै; श्रिये ।

१. इस्व—( अम्बार्थनबोर्इस्वः ॥ ७ । ३ । १०७ ) नामिक — ८८ ॥

२. किप् प्रत्ययान्त शब्द प्रातिपदिकसंज्ञक होके भी घातुसज्ञा का त्याग नहीं करते हैं।।

३. (किति इस्वरच ॥१।४।६ ) नामिक-७३ इस सूत्र से विकत्प करके 'नदी'संज्ञा होगई ।

श्रियाः, श्रियः । श्रियाः, श्रियः । श्रियोः ॥

'श्री+ग्राम्' इस ग्रवस्था में—

४६७-बाऽऽसि ॥ ६३ ॥ ऋ० १ । ४ । ४ ॥

इयङ् उवङ् स्थानी स्त्रीवाचक ईकारान्त अकारान्त शब्द आम् विभक्ति के परे विकल्प करके नदीसंज्ञक हों।

नदीसंज्ञापत्त में —श्रीणाम्; श्रन्यत्र —श्रियाम्। वेद में —श्रीणाम् यह एक ही प्रयोग होता है॥

'श्री+ङि' नदीसंज्ञापच्न में—श्रियाम्; अन्यत्र—श्रियि । श्रियोः । श्रीषु । हे श्रीः । हे श्रियौ । हे श्रियः ॥

#### अथ उकारान्तविषयः॥

उकारान्त पुल्लिङ्ग वायु शब्द-

वायु: । 'वायु+श्री' पूर्वसवर्णदीर्घ होकर—वायू । 'वायु+जस्' घिसंझा होने से गुण श्रीर (एचोऽयवायाव: ॥६।१।७८) सन्धि० –१७६ इस सूत्र से श्रवादेश होके —वायव: । 'वायु+श्रम्', पूर्वसवर्ण दीर्घ, श्रीर सकार को नकार श्री श्रीर होकर—वायून् ॥

वायुना । वायुभ्याम् । वायुभिः । वायवे । वायुभ्याम् । वायुभ्यः । 'वायु+ङ्सि'
गुण श्रीर पूर्वरूप' एक(देश होके—वायोः । वायुभ्याम् । वायुभ्यः । वायोः । 'वायु+श्रोस्'
यणादेश होके—वाय्वोः । वायूनाम् । 'वायु+ङि' ङि को श्रीकार' तथा उकार को
श्रकार' होकर वृद्धि एकादेश हुश्रा—वायौ । वाय्वोः । वायुषु ॥

सम्बोधन में—'वायु+स्' अपृक्तहल् लोप श्रौर गुण होकर—हे वायो। हे वायव:।।

इसी प्रकार - विश्वः प्रश्चः मानुः गुरुः शत्रु, इत्यादि उकारान्त, पुल्लिङ्ग शब्दों का साधुत्व समभना ॥

परन्तु उकारान्त क्रोष्टु शब्द में कुछ विशेष है— ४६८-तृज्वत्क्रोष्टुः ॥ ६४ ॥ ऋं० ७ । १ । ६५ ॥

- १. (श्रीप्रामण्योरछुन्द्सि ॥ ७ । १ । ४६ ) नामिक— ८२ इससे नित्य नुद् होगया ॥
- . २. ( अमि पूर्वः ॥ ६ । १ । १०६ ) नामिक—२२ ॥
  - ३. सकार को नकारांदेश--( तस्माच्छ्रसो नः पु'सि ॥ ६ । १ । १०२ ) नामिक---२४ ॥
  - ध. (ङसिङसोश्च ॥ ६ । १ । १०६ ) नामिक—६२ इससे पूर्व रूप हुआ ॥
  - ४. कि को त्रौ, तथा उ को अ-( अर्ब घे: ॥ ७ । ३ । ११६ ) नामिक ६३ ॥
  - इ. स् जोप —( हल्ङ्याव्भ्यो दीर्घास्युतिस्यप्रक्तं हल् ।। ६ । १ । ६८ ) नामिकं—१०॥
  - ७. गुण-( इस्वस्य गुण: ॥ ७ । ३ । १०८ ) नामिक-६४ ॥

जो संबुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हो, तो कोष्टु शब्द तृच् श्रत्ययान्तवत् हो। क्रोष्टु ऋकारान्त 'कर्त्तु' शब्द के समान हो जाता है —क्रोष्टा। क्रोष्टारो। क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्। क्रोष्टारो।

यहां 'संवुद्धिभिन्न' इसलिये है कि —हे क्रोष्टो। 'सर्वनामस्थान' इसलिये है

कि कोष्ट्र, यहां तुज्बद्भाव न हुआ।।

४६६-विभाषा तृतीयादिष्वचि ॥ ६५ ॥ अ० ७ । १ । ६७ ॥
तृतीयदि अजादि विभक्तियों के परे कोष्ट् शब्द को तृज्बद्भाव विकल्प करके हो।
कोष्टाः, कोष्टुना । 'कोष्टु+आम्' यहां नुद् और तृज्बद्भाव दोनों प्राप्त हुए, तो
नुद् हुआ ॥

उकारान्त नपुंसक्तिङ्ग वस्तु शब्द--

'वस्तु+सु' सु का लुक् होके —वस्तु। द्वित्रचन में 'शी' आरेश, शकार की इत्संका और (नपुंसकस्य क्रलचः ॥ ७। १। ७२) इस (४५) सूत्र से नुमागम होके —वस्तुनी। 'वस्तु+तस्' के स्थान में 'शि' आदेश ओर पूर्व को नुमागम—'वस्तु+नुम्+इ'=वस्तूनि। पेसे ही द्वितीया में ॥

'वस्तु+टा' विसंज्ञा और उससे परे टा के स्थान में ना आहेश होकर—वस्तुना। वस्तुभ्याम् वस्तुभिः। वस्तुने। वस्तुभ्याम्। वस्तुभ्यः। वस्तुभ्याम् वस्तुभ्यः। वस्तुभ्यः। वस्तुनाः। वस्तुनोः। वस्तुनाः। वस्तुनाः।

इसी प्रकार—श्मश्रु; जातु; स्वादु; त्रश्रु; जतु; त्रशु; तालु, द्रत्यादि नियत-नपुंसकतिक शब्दों के प्रयोग भी जानना ॥

उकारान्त नियतस्रीलिंग धेनु शब्द-

धेतु: । धेनू । धेनव: । धेतुम् । धेनू । धेनू: । 'धेतु+टा' टकार की इत्संक्षा श्रौर यण् होके—धेन्वा । धेतुभ्याम् । धेतुभि: । 'धेतु+ङे' यहां विकल्प करके नदी संज्ञा' श्रौर द्वितीय पत्त में घिसंक्षा होने से दो २ प्रयोग होते हैं । श्रथांत्—धेन्वै; धेनवे । धेतुभ्याम् । धेतुभ्य: । धेन्वा:, धेनो: । धेतुभ्याम् । धेतुभ्य: । धेन्वा:, धेनो: ।

१. यह तृज्वत् स्रतिदेश रूपातिदेश है, स्रर्थात् तृच् प्रत्ययान्त 'क्रुश्' धातु का जो रूप है, उसका स्रतिदेश किया है।

२. तुज्बद्गाव प्रस्त से प्राप्त था, उसको बाध के पूर्व विप्रतिषेध से ( तुमि ५० ) इस वार्तिक बल से तुट्ट हुआ ॥

३. विसंज्ञा — (शेषो ध्यसिख ॥ १ । ४ । ७ ) नामिक — ४६ ॥

थ यको ना—( प्राङो ना स्रयास । ७। ३। १२०) नामिक—६०॥

क् नदीसंज्ञा विकल्प—( किति इस्वश्च ।। १ । ४ । ६ नामिक—७३ ।।

इ. ( वेक्ति ॥ ७ । ३ । १११ ) नामिक — ६१ इससे गुणादेश हो जाता है ॥

धेन्वो: । धेनूनाम् । धेन्वाम्; धेनौ । धेन्वो: । धेनुषु । संबोधन में गुण होके—हे धेनो । हे धेनू । हे धेनव: ॥

इसी प्रकार—रज्जु; सरयु; कुहु; तनु; रेणु, इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी वाहियें।

### अथ ऊकारान्तविषयः ॥

दीर्घ ऊकारान्त शब्द तीन प्रकार के होते हैं—धात्वन्त, उणादिप्रत्ययान्त, श्रीर नियत स्त्रीवाचक ऊङ् प्रत्ययान्त । जैसे—धात्वन्त—पिभू:। उणादि प्रत्ययान्त—कर्ष्रः। नियत स्त्रीवाचक ऊङ् प्रत्ययान्त—ब्रह्मबन्धः, इत्यादि॥

उनमें से धात्वन्त परिभू शब्द के प्रयोग पुक्षित्र में दिखलाते हैं—

'परिभू+सु'=परिभू: । 'परिभू+श्री' यहां उवङ्' श्रादेश होके—परिभुवा। परिभुव:। परिभुवम्। परिभुवा। परिभुव:। परिभुवा। परिभूभ्याम्। परिभूभि:। परिभुव। परिभूभ्याम्। परिभूभ्य:। परिभुव:। परिभूभ्याम्। परिभूभ्य:। परिभुव:। परिभुवा:। परिभुवा:।

वर्षाभुः हन्भुः कारभुः पुनर्भुः, इन चार शब्दों के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं— वर्षाभुः । 'वर्षाभु+श्रो'—

वर्षाभूः। वर्षाभू+म्राः— ८५ ॥ भ्रव्य ६ । ४ । ४ ॥ ॥

श्रजादि सुप् विभक्तियों के परे वर्षाभू शब्द के उकार को यणादेश हो। वर्षाभ्वो । वर्षाभ्व: । वर्षाभ्वम् । वर्षाभ्वो । वर्षाभ्व: । वर्षाभ्वा ॥

वर्षाभूभ्याम् । वर्षाभूभिः । वर्षाभ्वे । वर्षाभूभ्याम् वर्षाभूभ्यः । वर्षाभ्वः । वर्षाभूभ्याम् । वर्षाभूभ्यः । वर्षाभ्वः । वर्षाभ्वोः । वर्षाभ्वाम् । वर्षाभुवि । वर्षाभ्वोः । वर्षाभूषु । हे वर्षाभूः । हे वर्षाभ्वो । हे वर्षाभ्वः ॥

हन्भू:। 'हन्भू+ग्री' इस ग्रवस्था में-

प्रश्-वार्-हन्कारपुनःपूर्वस्य सुवो यण् वक्तव्यः ॥६७॥६।४।८४॥ श्रजादि सुप् विभक्तियों के परे दन्, कार, पुनर् ये हैं पूर्व जिसके ऐसे भूशष्द के उकार को यणावेश हो।

जैसे—इन्स्वो । इन्स्वः । कारभूः । कारभ्वौ । कारभ्वः ॥ पुनर्भूः । पुनर्भ्वौ । पुनर्भ्वः, इत्यादि ॥

वद में 'पुनर्भू' ऋादि शब्दों के प्रयोगों में उवक् श्रीर यण् दोनों आदेश होते हैं। जैसे -पुनर्भुवौ; पुनर्भ्वौ । पुनर्भुवः, पुनर्भ्वः। पुनर्भुवम्, पुनर्भ्वम्, इत्यादि ॥

१. उवङ्—( ग्रचि रनुधातुभ्रवां खोरियङ्वङो ॥ ६ । ४ । ७७ ) नामिक—६२ ॥

२. यण्, उवङ्—(छन्दस्युमयथा ॥ ६ । ४ । ८६ ) नामिक—८४ ॥

उक्त ऊकारान्त शब्द विशेष्य लिङ्ग के आश्रय से तीनों लिङ्गों में हो सकते हैं। ऊकारान्त अनियत स्त्रीवाचकों को स्त्रीलिङ्ग में कुछ विशेष कार्य्य नहीं होते हैं। यदि वे नपुंसकलिङ्ग में आवें तो उनको हस्वादेश होकर वे प्रयोग विषय में 'वस्तु' शब्द के समान हो जाते हैं।

श्रौर उणादिप्रत्ययान्त कर्षू इत्यादिकों में यदि कोई पुक्किक समका जावे तो उसके प्रयोग 'परिभू' शब्द के समान समक्षना चाहिए ॥

नियतस्त्रीलिंग ऊङ्प्रत्ययान्त ब्रह्मबन्धू शब्द--

व्रह्मबन्धः । 'ब्रह्मबन्धू+ग्रो' यहां यण् होके—ब्रह्मबन्ध्वौ । ब्रह्मबन्ध्वः । 'ब्रह्मबन्धः । व्रह्मबन्धः । व्रह्मबनः । व्रह्मबन्धः । व्रह्मबन्धः । व्रह्मब

इसी प्रकार-वृश्ः चमुः रमश्रः मंहितोरूः वामोरूः कमगडलुः गुग्गुलुः दर्द्रः इत्यादि ककारान्त स्त्रीलिङ शब्दों के प्रयोग समकते चाहियें ॥

### अथ ऋकारान्तविषयः ॥

ऋकारान्त नियतपुद्धिङ्ग पितृ शब्द--

त्रमुकारान्त शब्द दो प्रकार के होते हैं। अर्थात् एक वे जिनको सर्व-नामस्थान में दीर्घ होता है, और दूसरों को नहीं होता। वे दोनों प्रकार के शब्द जिङ्गभेद से तीनों जिङ्गों में आते हैं॥

- १. इस्व —(इस्वो नपु'सके प्रातिपदिकस्य ॥ १ । २ । ४७ ) नामिक ४६ ॥
- २. 'कर्ष्' यह करीषाग्नि में पुश्चिक्ष और नदी अर्थ में स्त्रीलिक्ष है।।
- इ. पूर्वेरूप—( श्रमि पूर्वः ॥ ६। १। १०६) नामिक—२२ ॥
- ४. नदीसंज्ञा—( यू स्थ्याख्यो नदी । १ । ४ । ३) नामिक—८७ तथा नद्यन्त को मानकर ब्राट् इत्यादि कार्य होते हैं ॥
  - ४. इस्व -। ग्रम्बार्थनचोर्हस्वः ॥ ७ । ३ । १०७ ) नामिक— ८८ ॥
- इ. दीर्घादेशप्रकरण के । अप्तृततृच्स्वसृतप्तृनेष्टृत्वष्टृचतृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् ॥ अ० ६।४।११) इस सूत्र में 'नप्तृ' आदि शब्दों का प्रहृण अन्युत्प त्तपच में दीर्घादेश विधान के लिये और खुप्पित पच में तो नियम के लिये है कि जो उणादि तृत्तुजन्त शब्दों को दीर्घादेश हो तो नप्त्रादिकों को ही हो । इससे—पितृ, आतृ, जामातृ इत्यादि शब्दों को सव नामस्थान के परे दीर्घादेश नहीं होता, और अष्टाध्यायीस्य कर्तृ, स्तोतृ आदि शब्दों को होता है । जैसे—कर्ता । कर्तारो । स्तोता । स्तोतारो, इत्यादि ॥

पितृ श्रादि शब्दों को सर्वनामस्थान के परे दीर्घादेश नहीं होता । जैसे— पिता । 'पित्-सु'—

४०२-ऋदुशनस्करंशोऽनेहसां च ।। ६८ ।। अ० ७ । १ । ६४ ।। ऋकारान्त, उशनस्, पुरुदंशस् और अनेहस् शब्दों को संवुद्धिभिन्न सु विभक्ति के परे अनङ् आदेश हो ।

अनङ् होके—'पितृ+ग्रनङ्+सु' श्रकार ङकार की इत्संशा श्रौर तकार श्रकार में मिल के—'पितन्+सु' यहां नान्त श्रङ्ग को दीर्घ' श्रौर नकार का लोप होके—पिता॥

'पितृ+ग्रौ'—

४०३-ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ॥ ६६ ॥ अ००।३।११०॥ ङि और सर्वनामस्थान परे हो, तो ऋकारान्त अङ्ग को गुणादेश हो। ऋकार के स्थान में अर्' गुण होके—पितरौ। पितरः। पितरम्। पितरौ॥

'पितृ+शस्' यहां शकार की इत्संज्ञा, पूर्वसवर्ण दीर्घ पकादेश और सकार को नकारादेश होके—पितृन्। 'पितृ+टा' टकार की इत्संज्ञा ऋ के स्थान में र् आदेश होके—पित्रा। पितृभ्याम्। पितृभिः। पित्रे। पितृभ्याम्। पितृभ्याम्। पितृभ्याम्।

'पितृ+ङसि' यहां—

५०४-ऋत उत्॥ १००॥ घ०६।१।११०॥

जो ऋकारान्त से परे ङसि, ङस् सम्बन्धी अकार हो, तो पूर्व पर के स्थान में उकार पकादेश हो।

फिर उकार रपर हुआ। जैसे—पितुर्स्।

४०५-गत्सस्य ॥ १०१॥ अ० ८। २। २४॥

रेफ से परे संयोगान्त सकार का ही लोप हो।

सकार का लोप और रेफ को विसर्जनीय होके—पितुः॥

पितृभ्याम्। पितृभ्यः। पितुः। पित्रोः॥

'पितृ+आम्' यहां नुर्ष्ण और दीर्घण होके—

- १. नान्त ग्रङ्ग को दीर्घ—( सर्व नामस्थाने चास बुद्धी ।। ६ । ४ । ८ ) नामिक ४६ ।।
- २. नलोप नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ॥ ८ । २ । ७ ) नामिक-६८ ॥
- ३. पूर्वसवर्णं दोर्घ -( प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ॥ ६ । १ । १०१ ) नामिक--२१ ॥
- ४. र—( इको यणचि ॥ ६ । १ । ७७ ) सन्धि०—१७८ ॥
- ४. रपर— उरण् रपरः ॥ १ । १ । १० ) सन्धि०—५७ ॥
- ६. तुट्—( इस्वनद्यापो तुट् ।। ७ । ३ । १४ ) नामिक—३४ ।।
- ७. दोर्घ-( नामि ॥ ६ । ४ । ३ ) नामिक-३४ ॥

५०६-वा०-रवाभ्यां णत्वे ऋकारग्रहणम् ॥ १०२ ॥ ८ । ४ । १ ॥

र, ष से परे गुत्व विधान में ऋकार ग्रहण करना चाडिये, त्रर्थात् एकपद में ऋकार से परे भी नकार के स्थान में गुकारादेश हो।

जैसे-पितृणाम् ॥

'पित्+िक' गुण श्रौर रपर होके—िपतिर । पित्रोः । पितृषु । सम्बोधन मं संबुद्धिगुण होके—हे पितः । हे पितरौ । हे पितरः ॥

इसी प्रकार—आतः जामातः, इत्यादि संज्ञाशब्दों के प्रयोग समभने चाहियें॥ परन्तु नृ शब्द को आम् विभक्ति के परे जो कुछ विशेष होता है, सो तिस्ते हैं—

४०७-न च॥१०३॥ अ०६।४।६॥

तुर्सिहत ग्राम् विभक्ति के परे नृ शब्द के ऋकार को विकल्प करके दीर्घ हो। जैसे—नृणाम्। नृणाम्॥

संबोधन में -हे न:। हे नरी। हे नर:॥

दूसरे प्रकार के ऋकारान्त शब्दों में ऋकारान्त पुक्तिक होतृ शब्द— 'होतृ+सु' पूर्ववत् प्रातिपदिकसंज्ञादि तथा अनङारेशादि-कार्य होकर — होता।। 'होतृ+औ' यहां गुण होके—'होतर्+औ'—

४०८-श्रप्तृन्तृच्स्वस्त्रनप्तृने ष्टुत्वष्ट्रच तृ रोतृ पोतृप्रशास्तृणाम् ' १०४ अ०६ । ४ । ११ ॥

जो संबुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हो, तो त्राप शब्द, तृन् तृच् गत्ययान्त और स्वसृ, नप्तु, नेष्ट, त्वषृ, च्लंतु, होतृ, पोतृ, प्रशास्तु इन शब्दों को दीर्घा हो।

जैसे—होतारौ । होतारः । होतारम् । होतारौ । शेष प्रयोग पितृ शब्द के समान समभना ॥

इसी प्रकार—कर्नु; हर्ने आदि तथा नप्तु; ब्टू; त्वष्टु; चन्दुः वेत्रुः प्रशास्त्र शब्दों के प्रयोग भी समभने चाहियें।।

१. गुरा - (ऋतो डिसर्व नामस्थानयोः ॥ ७ । ३ । ११० ) नामिक - ११ ।।

२. संबुद्धिगुया -( इस्वस्य गुयाः । ७ । ३ । १०८ ) नामिक-६४ ॥

३ पिता पितरौ, पितरः। पितरम् पितरो, पितॄन्। पित्रा, पितृभ्याम्, पितृभिः। पित्रे, पितृभ्याम्, पितृभ्याम्, पितृभ्याम्, पितृभ्याम्, पितृभ्याम्, पितृभ्याम्, पितृभ्याम्, पितृभ्याः, पितृशाः, पितृशाः, पितृशाः, पितृशाः, पितृशाः, पितृशाः, पितृशाः, पितृशाः, पितृशाः, पित्राः, पितराः, पितराः

४. दूसरे अर्थात् जिनको सर्वनामस्थान के परे दीर्घादेश होता है।।

## ऋकारान्त नपुंसकिलङ्ग कर्नृ शब्द--

'कर्नु+सु' यहां सु विमिक्त का लुक्ै होके—कर्नु । 'कर्न् +श्री' श्रीकार के स्थान में शी श्रादेश और पूर्व को नुम् होके—कर्नुणी। 'कर्नु +जस्' यहां शिं श्रादेश नुम् श्रीर दीर्घ होके—कर्नृणि। द्वितीया विमिक्त में भी कर्नु । कर्नृणी। कर्नृणि॥

'कर्च+टा' यहां से लेकर अजादि विभक्तियों में नुम् होवेगा—कर्नुणा । कर्न्यभ्याम्। कर्त्तभः। कर्त्रभः। कर्त्तभः। कर्ति। कर्त्तभः। कर्त्तभः। कर्ति। कर्ति। कर्त्तभः। कर्ति। कर्त्तभः। कर्ति। कर्त

इसी प्रकार और भी ऋकारान्त नपुसकिल शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें।। परन्तु जो ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग में केवल स्त्रसु; दुहित; ननान्द; यातु; मातु; तिसु; च सु, ये सात शब्द हैं, इन क रूप कुछ भिन्न होते हैं।।

नियत ऋकार नत स्रोतिङ्ग दुहितृ शब्द —

'दुहित्य+सु'=दुहिता। दुहितरो। दुहितरः। दुहितरम्। दुहितगो। दुहितृः, यहां पुल्लिङ्ग केन हाने सं'शस्' कसकार को नकार न हुआ। दुहित्रा दुहित्यम्याम् । दुहितृभिः। आगो 'पितृ शब्द कसमान समभना चाहिय॥

तिस, चतस शब्द में विशेष यह है कि—

५०६-त्रिचतुरोः स्त्रियां तिस्चतस्।। १०५॥ अ०७। २। ६६॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान त्रि ग्रीर चतुर् शब्द हों, तो उनको तिस् श्रीर चतस् श्रीश हों।

- १. सु लुक् - (स्वमोर्न पु'सकात् ॥ ७ । १ । २३ ) नामिक ७२ ॥
- २. भ्रौ को शो (नपुं नकाच्च ॥ ७ । १ । १६) नामिक ४२ ॥
- ३, पूर्व को नुभ् (नपु सकस्य कलचः ॥ ७ । १ । ७२ ) नामिक ४१ ॥
  - ४. जप को शि (जश्शसोः शिः॥७।१।२०) नामिकं ४३॥
  - ४. पूर्व को दीर्घ—( सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धी ।। ६ । ४ । ८ ) नामिक— ४६ ॥
  - इ. अजादि विमक्ति में नुम्—( इकोऽचि विमक्ती ॥ ७ । १ । १३ ) नामिक ७३ ॥
  - ७. गुगा ( ऋतो ङि सर्वतामस्थानयोः ॥ ७ । ३ । ११० ) नामिक ६६ ॥
- म. यहां (न लुमताङ्गस्य ।। १ । १ । १३ ) सन्धि०—१०१ इस परिमाषा के श्रानित्य पत्त में (इस्वस्य गुयाः ।। ७ । ३ । १०८ ) नामिक—६४ इससे गुया हो नाता है । उक्त परिमाषा का श्रानित्य पत्त (इकोऽचि विमक्तो ।। ७ । १ । ७३ ) इसको न्याख्या में महासाध्यकार ने कहा है ।।

४१०-अचि र ऋतः ॥ १०६॥ अ० ७। २। १०॥

जो अजादि विभक्ति परे हों, तो तिस् श्रौर चतस् शब्द के ऋकार को रेफ आदेश हो।

'तिस्+जस्'=तिसः। शस् में भी ऐसा ही होता है ॥

४११-न तिस्चतस् ॥ १०७॥ अ०६।४।४॥

तिस त्रीर चतस शब्दों को नुद् सहित त्राम् विभक्ति परे हो, तो दीर्घन हो।

तिस्णाम्। चतस्णाम्॥

४१२-छन्दस्युभयथा ॥ १०८ ॥ अ०६ । ४ । ४ ॥

वैदिक प्रयोगों में नुद्सहित आम् विभक्ति के परे तिसृ, चतसृ शब्दों को विकल्प करके दीर्घ होते।

तिसृणाम् तिस्णाम् । चतसॄणाम् चतसृणाम् ॥ इसी प्रकार इन छः शब्दों के अन्य प्रयोग ऋकारान्तवत् समक्षने चाहियें ॥ परन्तु स्वसृ शब्द को सर्वनामस्थान में 'होतृ' शब्द के समान दीर्घ होता है— स्वसा । स्वसारो । स्वसारः । स्वसारम् । स्वसारो ॥

## अथ ऐकारान्तविषयः ॥

पेकारान्त पुर्ल्लिंग रै शब्द—

'रै+सु'—

४१३-रायो इति ॥ १०६ ॥ अ० ७ । २ । ८४ ॥

हलादि विभक्तियों के परे रै शब्द को आकारादेश हो।

जैसे--'रा+सु' उकार की इत्संज्ञा श्रौर लोप तथा सकार को रुत्व श्रौर विसर्जनीय होके--रा:॥

'रै+ग्रो' ग्रजादि विमिक्तयों के परे सर्वत्र ऐकार के स्थान में—ग्राय्' ग्रादेश होजाता है—रायो। रायः। रायम्। रायो। रायः। राया।।

'रै+भ्याम्' इत्यादि में भी हलादि विभक्तियों के होने से श्राकारादेश होजाता है— राभ्याम् । राभिः । राये। राभ्याम् । राभ्यः। रायः। राभ्याम् । राभ्यः। रायः। रायोः । रायाम् । रायि। रायोः। रासु। यहां 'रै' शब्द धन का वाचक है, इसिंकये संबोधन नहीं होता।।

१, ( पुचोऽयवायावः ॥ ६.। १ । ७८ ) सन्धि०—१७६ इस सूत्र से ॥

जो श्रन्य कोई 'ऐकारान्त' शृब्द श्रावे, तो उसके भी प्रयोग इसी प्रकार समक्षेत्र चाहियें।।

# अथ आकारान्तविषयः ॥

श्रीकारान्त पुल्लिङ्ग वा स्त्रीलिङ्ग गो शब्द-

परन्तु इसके दोनों लिङ्गों में एक से ही प्रयोग होते हैं। 'गो+सु'-

४१४-गोनो जिन् ॥ ११० ॥ अ० ७ । १ । ६० ॥

जो गो शब्द से परे तर्शनामस्थान विभक्ति हों, तो वे शित् के समान हो जावें। सर्वनामस्थान को शित्वत् होने से वृद्धि हो जाती है। यहां भी 'गो' शब्द को वृद्धि होके—गौ:। गावौ। गावः॥

'गो+श्रम्'-

प्रथ-द्यातोऽम्दासीः ॥ १११ ॥ द्य० ६। १। ६३ ॥

जो श्रम् श्रौर शस् विमक्ति परे हों, तो श्रोकारान्त शब्द के श्रोकार की श्राकारादेश हो।

जैले—'गा+अम्' पूर्वक्रप एकादेश होकर—गाम् ॥

गावौ। गाः। टा विमक्ति के परे अवादेश होके—गवा। गोभ्याम्। गोभिः। गवे। गोभ्याम्। गोभ्यः। 'गो+ङिसि' यहां पूर्वकप् —पकादेश होके—गोः। गोभ्याम्। गोभ्यः। गोः। गवोः। गवाम्। गवि। गवोः। गोषु। जो किसी अर्थं में इस शब्द का संबोधन आवे तो कुछ विशेष न होगा॥

#### अथ श्रीकारान्तविषयः॥

स्रोकारान्त स्त्रीतिङ्ग नौ शब्द--

'नौ+सु'=नौः। 'नौ+ग्रो'=नावौ। नावः। नावम्। नावौ। नावः। नावा। नौभ्याम्। नौभिः। नावे। नौभ्याम्। नोभ्यः। नावः। नौभ्याम्। नौभ्यः। नावः। नावोः। नावाम्। नावि। नावोः। नौषु॥

इसी प्रकार—ग्रीकारान्त पुश्चिक्त ग्ली शब्द समस्रना— ग्ली: । ग्लावी । ग्लाव:, इत्यादि ॥

१. वृद्धि—( ग्रचोऽन्यिति ॥ ७। २। ११४) इस स्त्रसे ॥

२. पूर्वेरूप—( इसिक्सोरच ॥ ६। १। १०६) नामिक—६२॥

# अथ हलन्तप्रकरणम् ]

श्रव जो २ प्रसिद्ध हलन्त शब्द वेदादि प्रन्थों में त्राते हैं, उनकी प्रयोगव्यवस्था दिसाई जाती है— श्रथ चकारान्तविषयः ।।

चकारान्त स्त्रीलिङ्ग वाच् शब्द—

'बाच्+सु' यहां चकार के स्थान में ककार होके— '११६-वावसाते।। ११२ ॥ अ०८ । ४ । ५५ ॥

जिसे—वाक्; वाग्॥

वाचौ। वाचः। वाचम्। वाचौ। वाचः। वाचा। 'वाच्+भ्याम्' यहां भी चकार को ककारादेश हो के—'वाक्+भ्याम्' इस अवस्था में—जशं आदेश हो कर—वाग्भ्याम्। वाग्भ्यः। वाचः। वाग्भ्याम्। वाग्भ्यः। वाचः। वाचः

संकेत में कह चुके हैं कि 'वाच' शब्द वाणी का वाची है, इसलिये जडभाव होने से यह संबोधन में नहीं आता॥

इसी 'प्रकार शुच्; त्वच्; सुच् इत्यादि शब्दों के रूप भी समभने चाहियें॥

जो चकारान्त शब्दों में निम्नलिखित शब्द हैं, जैसे – प्राच्; प्रत्यच्; उदच्; प्रश्रीच; दृध्यच्; मध्यच्; क्रुञ्च् इत्यादि किन्प्रत्ययान्त शब्दों को पदान्त में सर्वत्र क्रुत्व हो जाता है।

'प्राच्+सु' यहां—

्रा श्री ७६ जागित्चां सर्वनामस्थानेऽघातोः ॥ ११३ ॥ अ०० । १ । ७० ॥ । ११३ ॥ सर्वनामस्थानं परे हो, तो धातुरहित उगित् प्रातिपदिक और अञ्चु को उम्का आगम हो ।

'प्रान्च्+सु' इस अवस्था में (इल्डियार।।६।१।६८) इस (४०) सूत्र से लोप होकर— ४१८—संयोगान्तस्य लोपः ॥ ११४ ॥ अ०८ । २ । २३ ॥ संयोगान्त पद के अन्त्य वर्ण का लोप हो । इससे चकार का लोप होके—

१. यह वाणी का नाम है ॥

र. चूको क्—(चौ: कु: ना देन २ न इ०) सन्व० — १ मह ॥

३. यहां ( कतां जशोऽन्ते ।। मार इसे सन्धं - १ मह इस सूत्र से जश् आदेश होता है ॥

४१६-किन्प्रत्ययस्य कुः ॥ ११४ ॥ ऋ॰ ८ । २ ६२ ॥ किन् प्रत्यय जिससे कहा हो, उसको पदान्त में कवर्गादेश हो।

इससे नकार को अनुनासिक 'ङ्' आदेश होजाता है, जैसे—प्राङ् । प्रत्यङ्, इत्यादि ॥

'प्रान्च्+ग्रौ' यहां नकार को श्रनुखार श्रीर श्रनुस्वार को परसवर्ण होके — प्राञ्जौ । प्राञ्जम् । प्राञ्जौ ॥

'प्र+ग्रज्+शस्' इत्यादि सर्वनामस्थान भिन्न विभक्तियों के परे भसंद्वा डोकर— ५२०—ग्रज्यः ॥ ११६ ॥ ग्र० ६ । ४ । १३८ ॥

भसंज्ञक श्रञ्चु धातु के श्रकार का लोप हो।

जैसे—'प्र+च्+शस्' यहां—

भर१-चौ ॥ ११७॥ ऋ०६।३।१३८॥ चु शब्दमात्र ऋज्चु धातु परे हो, तो पूर्व को दीर्घ हो। इससे प्रशब्द को दीर्घ हो के—प्राचः। प्राचा॥

'प्राच्+क्याम्' यहां चकार को क्ं ग्रौर ककार को ग्<sup>६</sup> होके—प्राग्क्याम्। प्राग्क्षिः । प्राचे । प्राग्क्याम् । प्राग्क्यः । प्राचः । प्राचः । प्राचोः । प्राचाम् । प्राचि । प्राचोः । प्राक्षु ॥

इसी प्रकार—प्रत्यङ् । प्रत्यञ्जो । प्रत्यञ्जो । प्रताचः, यहां 'चौ' इससे दीर्घादेश होता है ॥

इत्यादि सब चकारान्त शब्दों के प्रयोग समभने चाहियें। परन्तु उक्त शब्दों में । परन्तु अवद्यों । परन्तु अवद्यों में । परन्तु अवद्यों । परन्तु अवद्यों में । परन्तु अवद्यों में । परन्तु अवद्यों में । परन्तु अवद्यों में । परन्तु अवद्यों । परन्तु । परन्तु अवद्यों । परन्तु । परन्त

भरर-उद् इत् ॥ ११८॥ ग्र०६ । ४। १३६॥ उद् उपसर्ग से परे भसंज्ञक ग्रंचु धातु के ग्राकार को ईकार त्रादेश हो।

- १. (किन: कुरिति सिध्येत प्रत्ययप्रहणं कृतम् । किन्प्रत्ययस्य सर्वत्र पदान्ते कुलमिष्यते ।। महाभाष्य ८।२।६२) इसी सूत्र पर है । यहां प्रत्यय प्रहण का यही प्रयोजन है कि जिस २ घातु से किन् प्रत्यय का विधान किया हो, उस २ को पदान्त में कवर्गादेश हो जाय।।
  - २, न को श्रतुस्वार—( नश्चापदान्तस्य मति ।। द । २४ ) सन्धि०-- ११ ी।
  - ३, श्रनुस्वार को परसवर्थं—(श्रनुस्वारस्य यथि परसवर्थः ॥ 🖘 ४०) सन्धि- १६६ ॥
  - ४. 'चु' इससे उस ग्रन्च धातु का ग्रहण है कि जिसके ग्रकार नकार का लोप हो जाता है।।
  - ४. च्को क् (चोः कः ॥ म. १.२ । ३० ) सन्धि०—१ममः॥
  - ६. क् को ग्—( सत्तां जश् सिशा प्राप्त । ४२ । ४२ ) सन्धि २३३ ।। 💯 🗢
  - ७, 'क्रुक्च' यहां धात्ववयव अपदान्त-नकारं के अनुस्वार को प्रसवर्य हो जाता है।।

उदीच: । उदीचा । उदीचे । उदीच: । उदीचो: । उदीचां ।

(ऋत्विग्दधृक्०॥३।२।४६) इस सूत्र में निपातन होने से 'क्रुब्च्' शब्द

की उपधा के नकार का लोप नहीं होता-कुङ्॥

सर्वनामस्थान में 'कृञ्च' शब्द 'प्राच्' शब्द के तुल्य है —कृञ्ची। कुञ्च:। कुञ्चम्। कुञ्ची। 'कृञ्च+शस्' यहां भी कुछ विशेष नहीं —कृञ्चः। कृञ्च। 'कृञ्च+भ्याम्' यहां च् को क् ग्रीर अनुस्वार को परसवर्ण ङकार हो के ककार का लोप' होजाता है — कुङ्भ्याम् । कुङ्भिः। कुञ्चे। कुङ्भ्याम् । कुङ्भ्यः। कुञ्चः। कुञ्चः।

### अथ छकारान्तविषयः ॥

स्रकारान्त स्त्रीलिङ्ग वा पुलिलङ्ग प्रास्थे शब्द---'प्रास्+सु' यहां--

५२३- ब्रश्चभ्रस्जसृजयजराजभ्राजच्छ्रदाां षः ॥ ११९ ॥ अ०८।२।३६॥

अत् परे वा पदान्त में ब्रश्च, भ्रस्त, सृत्त, यज, राज, भ्राज इन को तथा कुकारान्त श्रोर शकारान्त शब्दों को पकारादेश हो।

जैसे—'प्राष्+सु' यहां ष् के स्थान में ड् होके—'प्राड्+सु' सु का लोप श्रीर इ के स्थान में विकल्प से चर् होके—प्राट्; प्राड्, दो प्रयोग होते हैं॥

'प्राक्न्म्त्रो' यहां दीर्घ से परे छुकार को तुगागम होकर तकार को चकार होजाता है—प्राच्छो । प्राच्छः । प्राच्छम् । प्राच्छो । प्राच्छा । 'प्राछ भ्याम्' प्रद्वां पूर्ववत् छुकार को ष स्रोर ष् के स्थान में इ होके—प्राइभ्याम् । प्राइभिः । प्राच्छो । प्राइभ्याम् । प्राइभ्यः । प्राच्छोः । प्राच्छोः । प्राच्छो । प्राच्छोः । प्राच्छोः ॥

'प्राड्+सु यहां डकार को टकार' होके—प्राट्सु। डकार से परे सकार को धुद् का आगम भी विकल्प करके होता है। जैसे—प्राट्त्सु; प्राट्सु। सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं है॥

- १, क् का लोप (संयोगान्तस्य लोप: ।। ६। २। २३) नामिक ११४।।
  - २, यह पूछने वाले वा वाली का नाम है।।
  - ३. ष् को द्—( कलां जशोऽन्ते ॥ म । २ । ३६ ) सन्ध०—१मध ॥
- . १ ४, इ को विकल्प चर्- ( बावसाने ।। ८ । ४ । ४४ ) नामिक- ११२ ।।
  - ं र. तुक्—(दीर्घात् ॥ ६ । १ । ७४ ) सन्धि०—२०६ ॥
    - त्को च्—(स्तोः रचुना रचुः ।। ८ । ४ । ३६:) सन्धि०.—२१२ ।।
    - ७. इ को ट्—( खरि च ॥ द । ४ । ४४ ) सन्धि०—२३४ ॥
    - प्त. श्रृट् —( डा सि श्रुट् ॥ प्र । ३ । २३ ) सन्धि०—२०० ॥

## श्रथं जकारान्तविषयः ॥

जकारान्त पुल्लिङ्ग ऋत्विज् शब्द--

'ऋत्विज्+सु' यह शब्द किन्प्रत्ययान्त है, इस कारण इसको पदान्त में इकवर्गादेश होजाता है। इस कवर्ग को विकल्प करके चर् श्रोर दूसरे पत्त में जश् होके—ऋत्विक्, ऋत्विग्॥

त्रुत्विजौ । ऋत्विजः । ऋत्विजम् । ऋत्विजौ । ऋत्विजः । ऋत्विजा । ऋत्विग्भ्याम् । ऋत्विग्भः । ऋत्विजे । ऋत्विग्भ्याम् । ऋत्विग्भ्यः । ऋत्विजः । ऋत्विग्भ्याम् । ऋत्विग्भ्यः । ऋत्विजः।ऋत्विजोः। ऋत्विजाम्। ऋत्विजि । ऋत्विजोः ॥

'ऋत्विज्+सु' यहां कृत्व होने से जकार को ग् आदेश होकर ग् को क् अरोर सु के स् को प्रश्रादेश हो जाता है। जैसे—ऋत्विक्षु। सम्बोधन में यहां कुछ विशेष नहीं है ॥ इसी प्रकार—उध्यिज्; अरिज्; उशिज्; विग्जु, इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी

समभने चाहियें॥

परन्तु कोई २ जकारान्त शब्दों के प्रयोगों में कुछ विशेष भी कार्य्य होता है । जैसे— परित्राज्—

इस शब्द के पदान्त में सर्वत्र जकार को पकारादेश होता है। पकार के स्थान में ट्, ड् पूर्ववत् होके—परिवादः। परिवाडः। परिवाड्श्याम्। परिवाड्भिः। परिवाजे। परिवाड्भ्याम्। परिवाड्भ्यः, इत्यादि पूर्ववत् जानो। परिवाट्त्सुः। परिवाट्सुः। यहां भी सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं॥

इसी प्रकार — विश्वभ्राज्; सम्राज्; विश्वराज्; विराज्; यवभृज् इत्यादि शब्दौ

के प्रयोग भी जानने चाहियें॥

परन्तु युज्<sup>६</sup> श्रौर त्रवयाज् इन दो शब्दों में कुछ विशेष हैं— 'युज्+सु'—

५२४ - युजेरसमासे ॥ १२० ॥ अ० ७ । १ । ७१ ॥ सर्वनामस्थान विभक्तियों से परे युज् शब्द को उम् का आगम हो ।

जैसे—'युन्ज्+सु' यहां श्रन्य कार्य 'प्राङ्' शब्द के तुल्य सममना चाहिये— युङ् । युञ्जो । युञ्जः । युञ्जम् । युञ्जो । युजः । युजा । युग्भ्याम् । युग्भः । युजे । युग्भ्याम् । युग्भ्यः । युजः । युग्भ्याम् । युग्भ्यः । युजः । युजोः । युजोः । युजोः । युज्जे ॥

- १. 'ऋत्विज्' उसको कहते हैं जो ऋतु २ में यज्ञ करे वा करावे ॥
- २. पदान्त में कुत्व—(किन्प्रत्यस्य कु: ॥ ८। २। ६२) नामिक—११४॥
- ३. ग्कोक्—(खरिच॥ ८।४।४४) सन्धि॰ -- २३४॥
- ४, स् को प्—( ब्रादेशप्रत्ययोः ॥ ८ । ४ । ४६ ) नामिक—३६ ॥
- ४. 'भुरिज्' इत्यादि शब्दों को (चोः कुः ॥ ८ । २ । ३ ॰ ) सन्धि ॰ १८८ ॥
- ६, 'युज्' यह युक्त होनेवाले का नाम है ।।

इन उक्त शब्दों में जहां कहीं सम्बोधन की योग्यता हो, वहां प्रथमा विभक्ति के तुल्य ही सम्बोधन में भी प्रयोग समक्षने चाहियें॥

श्रवयाज्'--

'अवयाज्+सु' इसकी सब विभक्तियों में पदसंज्ञा होती है।

५२५-वा०-श्वेतवाहादीनां डस् पदस्य ॥१२१॥अ०३।२। ७१॥

श्वेतवाहादि प्रातिपदिकों को पदान्त में उस् आदेश हो।

श्वेतवाहादिकों में 'अवयाज्' शब्द भी है। प्रथमा विभक्ति के एकवचन में इस के 'आज्' भात्र को 'डस्' होकर—'अवयस्' यहां—

५२६-अत्वसन्तस्य चाघातोः ॥ १२२ ॥ अ० ६ । ४ । १४ ॥

जो सम्बुद्धिभिन्न सु विभिन्न परे हो, तो धातुरिहत अत्वन्त और असन्त शब्द की उपधा को दीर्घादेश हो।

श्रवयाः ॥

श्रवयाजौ । श्रवयाजः । श्रवयाजम् । श्रवयाजौ । श्रवयाजः । श्रवयाजा ॥

'श्रवयाज्' श्रादि शब्दों को हलादि विभक्तियों में डस हो के—'श्रवयस्+भ्याम्' यहां (ससजुषो रु: ॥ ८। २। ६६) इस (१६) सूत्र से पदान्त सकार को रु हो के—'श्रवय+रु+भ्याम्' यहां रुकार के उकार की इत्संका, लोप, रेफ को उकार श्रीर पूर्व पर को गुण एकादेश श्रोकार हो के—श्रवयोभ्याम्। श्रवयोभिः ॥

श्रवयाजे । श्रवयोभ्याम् । श्रवयोभ्यः । श्रवयाजः । श्रवयोभ्याम् । श्रवयोभ्यः । श्रवयाजः । श्रवयाजोः । श्रवयाजाम् । श्रवयाजि । श्रवयाजोः । श्रवयस्मुः श्रवयःसु ॥

संबोधन में-

५२७-अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च<sup>3</sup> ॥ १२३ ॥ अ०८।२। ६७॥ श्रवयाः, श्वेतवाः, पुरोडाः ये निपातन हैं।

हे अवया: । हे अवयाजी । हे अवयाज: ॥

## अथ टकारान्तविषयः ॥

टकारान्त स्त्रीलिंग वा पुल्लिंग सरट् शब्द

'सरट्+सु' यहां (हल्ङ्या०॥६।१:।६८) इस (४०) सूत्र से लोप और विकल्प से चर् हो के सरट्: सरड्॥

सरटो। सरटः । सरटम् । सरटो । सरटः । सरटा । 'सरट+भ्याम्' यहां जश् होके सरङ्भ्याम् । सरङ्भिः । सरटे । सरङ्भ्याम् । सरङ्भः । सरटः ।

- १, यहां भवपूर्वक यज धातु से ( भ्रवे यजः ।। ३ । २ । ७२ ) इस सूत्र से किन् प्रत्यय होता है ।।
- २. र्को उ-(हशि.चं।। ६। १.। ११३) सन्धि०--२४३।।
- ३. हे 'अवयस्' यहां उक्त सूत्र से दीर्घ नहीं पाता है। इस कारण दीर्घ सिद्ध करने के लिये यह सूत्र है।
- ४, जश्—( मलां जशोऽन्ते ॥ ८। २। ३३) सन्धि०—१८३ ।

सरङ्भ्याम् । सरङ्भ्यः । सरटः । सरटोः । सरटाम् । सरटि । सरटोः । सरट्रसु, सरट्रसु । सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं ॥

इसी प्रकार अन्य भी—लघट् आदि टकारान्त शब्दों के रूप समक्षने चाहियें॥

#### अथ तकारान्तविषयः ॥

तकारान्त नियतपुद्धिंग मरुत् शब्द--

'मरुत्+सु' पूर्ववत्—मरुत्। मरुत्। मरुतः। मर

इसी प्रकार—हरित्; रोहित्; संश्चत्; तृपत्; वेहत् इत्यादि तकारान्त स्नीलिङ्ग श्रीर पुज्जिङ्ग शब्दों के प्रयोग समान ही जानने चाहिये ॥

श्रव उन तकारान्तों को दिखलाते हैं कि जिनमें कुछ विशेष कार्य होते हैं— तकारान्त पुर्लिंग पठत्र शब्द—

'पठत्+सु' यहां सर्वनामस्थान में नुम् रश्रीर संयोगान्तलोप हो के—पठन्। पठन्ती। पठन्तः। पठन्तम्। पठन्तौ। पठतः। श्रागे 'महत्' शब्द के समान प्रयोग जानने चाहिये।। इसी प्रकार—पचत्; कुर्वत्; गच्छत्; पृषत्; बृहत् इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी समभने चाहिये॥

महत् शब्द में कुछ विशेष हैं। जैसे—

'महत्+सु' यहां पूर्ववत नुम् का आगम हो के—'महन्त्+सु' इस अवस्था में— ५२८-सान्तमहतः संयोगस्य ॥ १२४॥ अ०६॥ ४॥ १०॥

जो संबुद्धिमित्र सर्वनामस्थान परे हो, तो संकारान्त संयोगी नकार की और महत् शब्द की उपधा को दीर्घ हो।

यहां भी पूर्ववत् तकार का लोप श्रीर दीर्घ हो के-महान्। महान्तो। महान्तः। महान्तम्। महान्तौ। श्रागे के प्रयोग 'मरुत्' शब्द के समान जानने चाहिये ॥

'मतुप् प्रत्ययान्त तकारान्त' शब्दों को 'श्रसन्त' शब्दों के समान संबुद्धिमिन्न सु विभक्ति परे दीर्घ होता है—गोमान्; यवमान्; धनवान्; श्रखवानः; विद्यावान् इत्यादि । श्रागे सब विभक्तियों में रूप 'पठत्' शब्द के समान समकता चाहिये—गोमता। गोमद्भवाम्, इत्यादि । संबोधन में—हे गोमन् । हे यवमन् । हे धनवन्, इत्यादि ॥

१. 'पठत्' पढ़नेवाले की कहते हैं। 'पठत्' आदि शब्द खीलिङ्ग में खीबन्त होकर प्रयोगविषय में 'कुमारी' शब्द के समान हो जाते हैं।।

२, तुम्—( उगिद्वां सर्वनामस्थानेऽधातोः ॥ ७ १ १ १ ७० ) नामिक—११३ ॥। \*\* रि. इ. दीर्घ—( अत्यसन्तस्य चाधातोः ॥ ६ । ४ । १४ ) नामिक—१२२ ॥

# अथ दकारान्तविषयः ॥

दकारान्त स्त्रीलिङ्ग सम्पद् शब्द-

'सम्पद्+सु' यहां भी (हल्ङ्या० ॥ ६ । १ । ६८ ) इस (४०) सूत्र से लोप श्रौर प से चर् होकर दो प्रयोग होते हैं —सम्पद्; सम्पत् । सम्पदौ । सम्पदः, इत्यादि ॥ इसी प्रकार—श्रद्; भसदः, दृषदः, विपदः, श्रापदः, प्रतिपद् स्त्रीलिंग श्रौर—वेदिविदः, काष्ठभदः, नल्डिछद् इत्यादि दकारान्त शब्दों के रूप तीनों लिंगों में समान समसने चाहियें। जैसे—

शरतः शरद्। शरदो। शरदः, इत्यादि। श्रौर—वेदवितः, वेदविद्। वेदविदी।

वेद्विद्ः, इत्यादिवत्॥

अथ नकारान्तंविषयः ॥

नकारान्त पुल्लिङ राजन् शब्द—

'राजन्+सु' यहां दीर्घ देशेर नलोप होकर—राजा। राजानी। राजानः। राजानम्। राजानो। 'राजन्+शस्' यहां त्रक्षोप' होकर—'राजन्+श्रस्' नकार को अकारादेश होकर—राज्ञः। राज्ञा॥

'राजन्+भ्याम्' यहां भी नकार का लोप होके—'राजभ्याम्'। श्रव यहां नलोप के पश्चात् (सुपि च ॥ ७ । ३ । १०२ ) इस (२०) सूत्र से दीर्घादेश क्यों न हो । सो यह नलोप के श्रसिद्ध होने से नहीं होता । राजभिः । राज्ञे । राजभ्याम् । राजभ्यः । राज्ञः । राजभ्याम् । राजभ्यः । राज्ञः । राज्ञोः । राज्ञाम् ॥

'राजन्+िड' यहां (विभाषा ङिश्यो: ॥ ६। ४। १३६) इस (७६) सूत्र से अकार का लोप विकल्प से होकर दो प्रयोग बन जाते हैं—राज्ञि; राजिन। संबोधन में—हे राजन्। हे राजानी। हे राजान:॥

इसी प्रकार — वृषन् ; तच्चन् ; प्लीहन् ; क्लेदन् ; स्नेहन् ; मूर्द्धन् ; मज्जन् ; विश्वप्सन् ; स्थामन् ; सुत्रामन् ; धरिमन् ; शरिमन् ; जनिमन् ; प्रथिमन् ; स्रदिमन् ; महिमन् ; सुदामन् ; सुधीवन् ; पृतपावन् ; भूरिदावन् इत्यादि शब्दों के रूप भी समक्षने चाहिये ॥

स्रोर जिन नकारान्त शब्दों में कुछ विशेष कार्य होता है, उनको यहां लिखते हैं—

१. 'सम्पद्' यह धनादि ऐश्वर्य का चोतक है ॥

२. दीर्घ - ( सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धो ॥ ६ । ४ । ८ ) नामिक—४६ ॥

ह. न लोप—( नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ।। म । २ । ७ ) नामिक—६म ।।

४. ब्रह्मोप — ( ब्रह्मोपोऽनः ॥ ६ । ४ । १३४ ) नामिक—७४ ॥

४. न को ज्—(स्तोः रचुना रचुः ॥ ८ । ४ । ३६ ) सन्धि०—२१२ ॥

६, नबोप श्रसिद्ध—(नबोपः सुप्स्वरसंज्ञातुक्विधिषु कृति ॥ = । २ । २) सन्धि०—१२२ ॥

पुर्देशम न कारान्त आत्मन् शब्द-

श्रात्मा । श्रात्मानी । श्रात्मानः । श्रात्मानम् । श्रात्मानी ॥

इस शब्द में इतना विशेष है कि—शस्, टा, डे, डिस, डस्, श्रोस्, श्राम्, डि, श्रोस् इन विभक्तियों में भसंज्ञा के होने से—

५२९-न संयोगाद्रमन्तात्॥ १२५॥ अ०६।४।१३७॥

जा वकारान्त और मकारान्त संयोग से परे अन् हो, तो तवन्त भसंशक अकार का लोप न हो।

जैसे —श्रात्मनः। श्रात्मना। श्रात्मने। श्रात्मनः। श्रात्मनः। श्रात्मनोः। श्रात्मनाम्। श्रात्मनि। श्रात्मनोः॥

इसी प्रकार सुशर्मन् सुधर्मन् अश्मन् शक्मन् परिज्यन् यज्वन् सुपर्वन् अर्थन् शक्मन् परिज्यन् यज्वन् सुपर्वन् अर्थन् सातरिश्वन् इत्यादि शब्दों क रूप भी जानने चाहिये ॥

परन्तु नकारान्त पुद्धिंग ग्राध्येमन् श्रीर पूष्न् शब्दों के क्यों में इतना विशेष है कि जहां कहीं समास होकर ये दोनों नपुंसकितक होजावें, वहां प्रथमा विसक्ति के बहुवचन में—

५३०-इन्हन्यूषार्यम्णां शौ ॥ १२६ ॥ अ० ६ । ४ । १२ ॥

इन्, हन्, पूषन्, और अर्थमन् ये जिनके अन्त में हों, उन अङ्गों की उपधा की शि विभक्ति के परे दीर्घ होजावे।

यह सूत्र नियमार्थ है, त्रर्थात् जो सर्वत्र सर्वनामस्थान में नकारान्त की उपधा को दीर्घादेश प्राप्त था, सो न हो, किन्तु 'शि' के परे ही हो। जैसे—बहुपूषािख। बहुर्यमािख॥

५३१-सी च॥ १२७॥ अ०६। ४। १३॥

त्रीर पुक्किक में भी [ सम्बुद्धिभिन्न ] सु विभक्ति के परे इन्, इन्, पूषन् और श्रर्थमन् इनकी उपधा को दीर्घ हो।

जैसे—धनी। शत्रुहा।पूषा। अर्थमा, इनको अन्य विमक्तियों में नियम के होने से दीघ नहीं होता। जैसे—पूषणी। अर्थमणी। पूषणी। अर्थमणी। पूषणी। अर्थमणी। अर्थमणी। आगे इनके कप 'राजन' शब्द के समान समसने चाहियें॥

वेद में पपूर्व नान्त की उपधा में कुछ विशेष है। जैसे-

५३२-वा षपूर्वस्य निगमे ॥ १२८॥ अ०६। ४ । ९॥

जो वेद में संवुद्धिमिन्न सर्वनामस्थान परे हो, तो पकार पूर्व वाले नान्त की उपधा के अच् को विकल्प करक दीर्घ हो।

स तत्ताणं तिष्ठन्तमत्रवीत्। स तत्त्रणं तिष्ठन्तमत्रवीत्। ऋभुत्ताणमिन्द्रम्। ऋभुत्तणमिन्द्रम्, इत्यादि॥ श्वन्; युवन्; श्रौर मघनन् शन्दों के प्रयाग सर्वनामस्थान में 'राजन्' शब्द के समान होते हैं, परन्तु सर्वनामस्थान-भिन्न श्रजादि विभक्तियों में कुछ विशेष है। जैसे—

श्वा । श्वानौ । श्वानः । श्वानम् ॥

'श्वन+शस्'—

५३३-इवयुवमघोनामतिद्धिते ॥ १२९ ॥ अ०६ । ४ । १३३ ॥ जो मसंबक श्वन, युवन और मघवन श्रङ्ग हैं, उनको संप्रसारण हो। इससे वकार को उकार हुआ। जैसे—'श्उश्रन्+शस्'।

५३४-सम्प्रसारणाच ॥ १३०॥ अ०६।१।१७॥ जो सम्प्रसारणसंबद्ध वर्ण से परे अच हो, तो पूर्व पर के स्थान

जो सम्प्रसारणसंज्ञक वर्ण से परे अच् हो, तो पूर्व पर के स्थान में पूर्व रूप प्रकादेश हो।

इससे उकार श्रकार को मिल के उकार हुआ। जैसे—श्रुनः। श्रुना॥ श्रवस्याम्। श्र्वभिः। श्रुने। श्र्वभ्याम्। श्र्वभ्यः। श्रुनः। श्रुनोः। श्रुनाम्। श्रुनि। श्रुनोः। श्र्वसु॥

युवा । युवानो । युवानः । युवानम् । युवानो । यूनः । यूना । युवभ्याम् । युविभः । यूने । युवभ्याम् । युवभ्यः । यूनः । युवभ्याम् । युवभ्यः । यूनोः । यूनो

मधवा । मधवानी । मधवानः । मधवानम् । मधवानी । मधोनः । मधोना । मधवस्याम् । मधवनः । मधोनः । मधोनः । मधवस्याम् । मधवस्यः । मधोनः । मधवस्याम् । मधवस्यः । मधोनः । मधोनोः । मधवस्यः । संबोधनं में—हे मधवनः । हे मधवानः ॥

५३५-मघवा बहुलम् ॥ १३१ ॥ अ०६ । ४ । १२८ ॥ मघवन् इस अङ्ग को तृ श्रादेश बहुल करके हो ।

जैसे — 'मघवत् +स' यहां त्रमुकार की इत्संज्ञा, लोप, उम् श्रौर उपधादीर्घ श्रादि कार्य्य होकर—मघवान् । मघवन्तौ । मघवन्तः । मघवन्तम् । मघवन्तौ । मघवन्तः । मघवन्तम् । मघवन्तौ । मघवन्तः । मघवन्ता । 'मघवत् +भ्याम्' यहां जश् होके — मघवद्भश्याम् । मघवद्भिः, इत्यादि ॥

१, 'यूनः' यहां संप्रसारण होकर 'यु+उ+नः' इस अवस्था में सवर्णदीर्घ एकादेश हो जाता है ।।

२. जुम्-( उगिद्चां सर्वनामस्थाने अवातोः ॥ ७ । १ । ७० ) नामिक-११३ ॥

३, उपघा दीर्घ—( सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ ।। ६ । ४ । ८ ) नामिक—४६ ।।

भः (श्वयुवमघोनामति हते ।। ६ । ४ । १३३ ) इस सूत्र में 'मघवन' शब्द के नकारान्त निर्देश से इसके तुमाव प्रधांत् मघवतृ शब्द को संप्रसारण नहीं होता । प्रथवा 'श्वयुव ' इस सूत्र में (प्रह्मोपोऽनः ।। ६ । ४ । १३४ ) इस उत्तरसूत्र से 'ग्रनः' इस पद का ग्राकर्षण करके, श्व, युव, मघव इस्रादि नकारान्त शब्दों ही को संप्रसारण होता है ।।

## नकारान्त न गुंसकविङ्ग सामन् शब्द--

'सामन्+सु' यहां सुलोप और नलोप' होकर—साम। 'सामन्+श्री' श्रोकार के स्थान में शी आदेश और विकल्प करके श्रकार का लोप' होकर—सामी। सामनी। 'सामन्+जस्' शि' आदेश और नान्त की उपधा को दीर्घ होके—सामानि। फिर भी—साम। साम्नी; सामनी। सामानि। आगे 'राजन्' शब्द के समान इसके प्रयोग जानने चाहियें।।

संबोधन में इतना विशेष है कि-

५३६-वा०-वा नपुंसकानाम् ॥ १३२॥ अ०८। २।८॥ संबुद्धि में नपुंसकलिङ्ग शब्दों के नकार का लोप विकल्प करके होते। हे साम; हे सामन्॥

इसी प्रकार-सीमन्; नामन्; व्योमन्; रोमन्; लोमन्; पामन् इत्यादि शब्दों के रूप भी जानने चाहियें॥

श्रीर जो—कर्मन्; चर्मन्; भस्मन्; जन्मन्; शर्मन् इत्यादि मकारान्त संयोगवाहे नकारान्त नपुंसक शब्द हैं, उनके प्रयोग सर्वनामस्थान में 'सामन्' शब्द के समान श्रीर श्रन्य विभक्तियों में 'श्रात्मन्' शब्द के समान समक्षने चाहियें। जैसे—कर्मणा, इत्यादि॥

नकारान्त पुल्लिङ्ग वृत्रहन् शब्द---

'वृत्रहन्+सु' यहां (सौच॥६।४।१३) इस (१२७) सूत्र से दीर्घ होके खुत्रहा॥ 'वृत्रहन्+ग्रौ'—

५३७-एकाजुत्तरपदे णः ॥ १३३ ॥ अ०८ । ४ । १२ ॥

जिस समास में एकाच् शब्द उत्तरपद हो, उसमें पूर्वपदस्थ रेफ षकार से परे प्रातिपद्धिकान्त जुम् श्रीर विभक्तिस्थ नकार को सकारादेश हो।

जैसे—वृत्रहणो । वृत्रहणः । वृत्रहण्म् । वृत्रहणो ॥

'वृत्रहन्+शस्' यहां हन् के अकार का लोप होकर —

५३८-हो हन्ते व्णिन्नेषु ॥ १३४ ॥ अ० ७ । ३ । ५४ ॥

जित् िंगत् प्रत्यय वा नकार परे हो, तो हन् धातु के हकार को धकारादेश हो।

- १, सुलोप—( स्वमोन पु'सकात् ॥ ७ । १ । २३ ) नामिक—७२ ॥
- २. नलोप—( न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ॥ ८ । २ । ७) नामिक—६८ ॥
- ३. शी आदेश—( न्पु'सकाच ॥ ७ । १ । १६ ) नामिक—४२ ॥
- ४, अलोप विकल्प—( विभाषा ङिश्योः ॥ ६ । ४ । १३६ : नामिक—७६ ॥
- श आदेश ( जश्यसोः शिः ॥ ७ । १ । २० ) नामिक ४३ ।।
- ६. नान्तापथा दीर्घ—( सर्वतामस्थाने चा असम्बुद्धो ।। ६ । ४ । ८ ) नामिक—४६
- ७. अलोप—( अह्वोपोऽनः ॥ ६ । ४ । १३४ ) नामिक ७५ ॥

वृत्रक्षः । वृत्रह्म्याम् । वृत्रह्म्याम् । वृत्रह्म्यः । वृत्रह्म्याम् । वृत्रह्म्यः । वृत्रह्म्यः । वृत्रह्म्यः । वृत्रह्मयः । वृत्रह्माः । वृत्रह्माम् । वृत्रह्माः । वृत्रहमाः । वृत्रह

इसी प्रकार-ब्रह्मन्; भ्रूण्डन् इत्यादि शब्दों के प्रयोग समभने चाहिये ॥

न्कारान्त नपुंसकिखङ्ग अहन् शंबद---

'श्रहन्+सु'—

५३९-अहन् ॥ १३५ ॥ अ०८। २। ६८॥

पदान्त में अहन् शब्द को रु आदेश हो।

विसर्जनीय होके-ग्रहः॥

'श्रहन्+श्रो'—'सामन्' शब्द के समान—श्रद्धी; श्रहनी। श्रहानि। फिर भी— श्रहः। श्रद्धी; श्रहनी। श्रहानि। श्रद्धा। 'श्रहन्+श्याम्' यहां भी नकार को रु, उसके रेफ को उकार श्रोर श्रकार उकार को गुण एकादेश होके—श्रहोश्याम्। श्रहोभिः। श्रद्धे। श्रहोश्याम्। श्रहोश्यः। श्रद्धः। श्रद्धोश्याम्। श्रहोश्यः। श्रद्धः। श्रद्धाः। श्रद्धाः। श्रद्धाम्। श्रद्धः, श्रहनि। श्रद्धोः। श्रहस्सुः, श्रद्धःसु॥

यद्यपि 'ग्रिनि' तथा 'इनि' प्रत्ययान्त अनेक नकारान्त शब्दों में कुछ विशेष नहीं, तथापि उनमें से एक के प्रयोग लिखते हैं—

इन्नत पुल्लिङ्ग दण्डिन् शब्द-

'द्रिडन्+सु' यहां (सौ च ॥ ६ । ४ । १३ ) इस (१२७) सूत्र से दीर्घ होके— दर्गडी । दिग्डनो । दिग्डनः । दिग्डनम् । दिग्डनो । दिग्डनः । दिग्डना । दिग्डभ्याम् । दिग्डिभिः । दिग्डिने । दिग्डिभ्याम् । दिग्डिभ्यः । दिग्डिनः । दिग्डिभ्याम् । दिग्डिभ्यः । दिग्डिनः । दिग्डिनोः । दिग्डिनाम् । दिग्डिनि । दिग्डिनोः । दिग्डिषु । संबोधन में --हे दिग्डिन् । हे दिग्डिनो । हे दिग्डिनः ॥

इसी प्रकार—धनिन्; कुमारवातिन्; शीर्षवातिन्; उष्णभोजिन्; साधुकारिन्; प्रकाबादिन्; ध्वाङ्चराविन्; स्थिष्डलश्।यिन्; परिडतमानिन्; सोमयाजिन् इत्यादि शब्दों के प्रयोग जानने चाहियें।।

'द्ष्डिन' आदि शब्द यदि किसी प्रकार नपुंसकतिङ्ग में भी आवें, तो उनके प्रयोग प्रायः 'वारि' शब्द के समान समक्षेत्रे चाहियें। परन्तु षष्ठीविभक्ति के बहुवचन में द्रिडन् आदि नकारान्त शब्दों को दीर्घ नहीं होगा।।

१. 'बृत्रहत्' इस अवस्था में (अचः परस्मिन् पूर्वविधी ।। १ । १ । १६) सन्धि०—६४ इस परिमाषा से अलोप स्थानिवत् हो, तो नकार के परे 'ह' न मिले । यहां हकार को कुत्वविधान-सामर्थं से अलोप स्थानिवत् नहीं होता ॥

नकारान्त पञ्चन्; मप्तन्; ग्रौर ग्रष्टन् इत्यादि बहुवचनान्त संख्यावाची शब्द तीनों तिङ्गों में समान ही होते हैं—

'अष्टन्+जस्'—

५४०-अप्टन आ विभक्ती ॥ १३६ ॥ अ० ७ । २ । ८४ ॥ विभक्तिमात्र के परे अप्टन् शब्द को आकारादेश हो ।

यद्यपि सूत्र में विकल्प ग्रहण नहीं है तथापि (श्रष्टाभ्य श्रोश ॥ ७। १। २१) इस (१५७) सूत्र में आकारान्त अप्टन् शब्द के ग्रहण से स्चित होता है कि श्रप्टन् शब्द को आकारादेश विकल्प करके होता है। जैसे—'श्रप्टा+जस्'; 'श्रप्टन+जस्' इस श्रवस्था में—

५४१-अष्टाभ्य औश् ॥ १३७॥ अ० ७। १। २१॥

जिसको आकारादेश किया हो ऐसे अप्टन् शब्द से परे जस और शस् विभक्ति को आकारादेश हो।

वृद्धि एकादेश होकर—श्रष्टौ। श्रष्टौ।

द्वितीय पत्त में-

५४२-व्यान्ता षट् ॥ १३८ ॥ अ० १ । १ । २४ ॥ षकारान्त और नकारान्त संख्यावाची शब्द षट्संद्वक हो । षट्संद्वा होकर—

४४३-षड्भ्यो लुक् ॥ १३९ ॥ अ० ७ । १ । २२ ॥

षट्संज्ञक श्रर्थात् पकारान्त श्रीर नकारान्त संख्यावाची शब्दों से परे जस् श्रीर शस् विभक्ति का लुकू हो।

अष्ट तिष्ठन्ति । अष्ट पश्य ॥

त्रष्टिभः; त्रष्टाभिः । त्रष्टभ्यः; त्रष्टाभ्यः । त्रष्टभ्यः; त्रष्टाभ्यः ॥

'अष्टन्+श्राम्' इस श्रवस्था में-

५४४-षर्चतुभ्येश्च ॥ १४० ॥ अ० ७ । १ । ५५ ॥

षट्संज्ञक श्रोर चतुर् शब्द से परे श्राम् विमक्ति को तुर् का श्रागम हो। तुर् होकर—'श्रष्टन्+नाम्' इस श्रवस्था में—

५४५-नोपघायाः ॥ १४१ ॥ अ० ६ । ४ । ७ ॥

जुट्सहित श्राम् विभिक्त परे हो, तो नान्त श्रङ्ग की उपधा को दीर्घ हो। जैसे—'श्रष्टान्+नाम्' न लोप होकर—श्रष्टानाम्॥

त्रष्टसुः त्रष्टासु ॥

पञ्च । पञ्च । पञ्चिमः । पञ्चभ्यः । पञ्चभ्यः । पञ्चानाम् । पञ्चसु ॥

्रसी प्रकार सप्तन्ः नवन्ः दशन् इत्यदि पर्संश्वक शब्दों के प्रयोग

## तथा नकारान्तों में प्रतिदिवन् शब्द में कुछ विशेष है-

प्रतिदिवा। प्रतिदिवानौ। प्रतिदिवानः। प्रतिदिवानम्। प्रतिदिवानौ। 'प्रतिदि-वन्+श्रस्' यहां (त्राङ्गोपोऽनः ॥ ६। ४। १३४) इस (७४) सूत्र से असंका में त्रकार का लोप होकें—

४४६-इलिच ॥ १४२ ॥ अ॰ ८ । २ । ७७ ॥

इल् परे हो, तो रेफान्त वकारान्त धातु की उपधा के इक् को दीर्घ हो। इससे भसंज्ञा में सर्वत्र ही दीर्घ हो के—प्रतिदीव्नः। प्रतिदीव्ना । प्रतिदीव्ने । प्रतिदीव्नः। प्रतिदीव्नः। प्रतिदीव्नोः। प्रतिदीव्नाम्। प्रतिदीव्निः। प्रतिदीव्नोः॥

इन्नत शब्दों के प्रयोगों में - पृथिन्; मथिन्; श्रीर ऋग्रुचिन् इन तीन शब्दों के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं—

'पथिन्+सु'—

५४७-पथिमथ्यु भुक्षामात् ॥ १४३ ॥ अ०७ । १ । ८५ ॥ सु विभक्ति के परे पथिन्, मथिन् ऋभुक्तिन् इन शब्दों को आकारादेश हो। यहां नकार के स्थान में आकारादेश होके—'पथि+आ+सु' इस अवस्था में—

५४८-इतोऽत्सर्वनामस्थाने ॥ १४४ ॥ अ० ७ । १ । ८६ ॥ सर्वनामस्थान विभक्तियों के परे पथिन द्यादि शब्दों के इकार को अकारादेश हो । 'पथ्+श्र+श्रा+सु' इस अवस्था में—

४४९-था न्यः ॥ १४५ ॥ अ० ७ । १ । ८७ ॥

पथिन् स्रोर मिथन् शब्द के थकार को सर्वनामस्थान विभक्तियों के परे

इससे 'न्थ' ब्रादेश होकर—'पन्थ+ग्र+ग्रा+सु' यहां श्रकार श्रौर श्राकार को दीर्घ पकादेश होके—पन्था: ॥

'प्शिन्+ग्री' यहां इकार को श्रकार होकर—पन्थानी । पन्थान: । पन्थानम् ॥ 'प्शिन्+शस'—

४५०-भस्य टेलीपः ॥ १४६ ॥ अ० ७ । १ । ८८ ॥ भ नंशक पथिन आदि शब्द की टि अर्थात् इन्मात्र का लोप हो । जैसे-'पथ+शस्ं=पथः॥

पथा। पथिभ्याम् । पथिभिः । पथे । पथिभ्याम् । पथिभ्यः । पथः । पथिभ्याम् । पथिभ्यः । पथः । पथोः । पथाम् । पथि । पथोः । पथिषु ॥

इसी प्रकार-मधिन् और ऋभुद्धिन् शब्दों के रूप भी समक्षने चाहियें ॥

१ यहां (विमाषा किरयोः ॥ ६ । ४ । १३६) नामिक—७६इस सूत्र से विकल्प करके अलोप होकर दो प्रयोग हो जाते हैं ॥

## अथ पकारान्तविषयः ॥

पकारान्त अनियतिसंग सुप् शब्द-

'सुप्+सु' यहां (हल्ङ्याब्० ॥ ६ । १ । ६८) इस (४०) सूत्र से रुकार का लोप होके—सुप्; सुव्। 'सुप्+श्रो'=सुपौ। सुपः। सुपम्। सुपौ। सुपः। सुपा। 'भ्याम्' श्रादि कलादि विभक्तियों में पकार को बकार' होजाता है—सुबभ्याम्। सुब्भिः। सुपे। सुब्भ्याम्। सुब्भ्यः। सुपः। सुब्भ्याम्। सुब्भ्यः। सुपः। सुपोः। सुपाम्। सुपि। सुपोः। सुप्सु॥

इसी प्रकार - तिपः मिपः कपः शप् आदि शब्दों के प्रयोग भी समभने चाहिये। परन्तु अप् शब्द में कुछ विशेष है ॥

पकारान्त नियतस्रीलिंग बहुवचनान्त अप् शब्द--

अप् शब्द से सातों विभक्तियों के बहुवचन ही आते हैं। 'अप्+जस्' यहां दीर्घ' होके—आपः। 'अप+शस्' यहां कुछ विशेष नहीं—अपः॥

'श्रप+भिस्' यहां—

0

भूभ१-अपो भि: ॥ १४७ ॥ अ० ७ । ४ । ४८ ॥ भकारादि प्रत्यय के परे अप् शब्द के अन्त को तकारादेश हो। तकार के स्थान में दकार होकर—अद्भि:। अद्भय:। अद्भय:॥ अपाम्। अप्सु॥

अथ भकारान्तंविषयः ॥

भक्तारान्त नियतस्त्रीलिंग क्रकुभ् राब्द--

'ककुम्+सु' यहां सु के सकार का लोप' होके मकार [को बकार' श्रीर उस ] के स्थान में विकल्प करके सलों को चर् होते हैं। जैसे — ककुष्; ककुप्। ककुमी। ककुम:। ककुम:।

इसी प्रकार - त्रिष्टुभ्; त्र्रानुष्टुभ् त्रादि शब्दों के प्रयोग समभने चाहियें ॥

- १. प् को बु—( कलां जशोऽन्ते ॥ ८ । २ । ३६ ) सन्धि०—१८६ ॥
- २. दीर्च-(म्रप्तृत्तृत्स्वस्नप्तृनेष्टृत्वष्टृचनृहोतृपोत्प्रशास्तृयास् ॥ ६।४।११) नामिक-१०४॥
- ३. 'क्कुम्' यह दिशा का नाम है ॥
- ४. स् का लोप—( हल्ड्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् ॥ ६ । १ । ६८) नामिक—४०॥
- १. म् को ब्—( क्रलां जशोऽन्ते ।। ८ । २ । ३६ ) सन्धि०—१८६ ।।
- ६. चर् विकल्प-( वावसाने ॥ = । ४। ४४ ) नामिक-११२ ॥

# अथ रेफान्ताविषयः।।

रेफ.न्त नियतस्त्रीलिंग गिर शब्द-

'गिर्+सु' यहां भी सकार का लोप होकर— १४२-वेरिपधाया दीर्घ इकः ॥ १४८॥ अ०८।२। ७६॥

जो पदान्त में रेफवकारान्त धातु की उपधा इक्, उसको दीर्घ हो।

गी: । गिरो । गिरः । गिरम् । गिरो । गिरः । गिरा । गांश्याम् । गीर्भः । गिरे । गीर्भ्याम् । गीर्भः । गिरः । गिरोः । गिरोः । गिराम् । गिरि । गिरोः ॥

'गिर्+सु' यहां खर् प्रत्याहार के परे ह के स्थान में विसर्जनीय' पाते हैं। इसिलिये यह उत्तर सूत्र नियमार्थ है—

४४३-राः सुपि॥ १४९॥ अ०८। ३। १६॥

सुप् अर्थात् सप्तमी बहुवचन के परे रेफ के स्थान में विसर्जनीय हों, तो रु के

इससे 'गिर्' इसके रेफ को विसर्जनीय न हुए। उपधा को दीर्घ और सकार को मूर्जन्यादेश होके—गीर्जु ॥

इसी प्रकार धुर्; पुर्; तुर्; भुर्; जूर्; तूर् इत्यादि शब्दों के प्रयोग समझने झाहियें।। परन्तु रेफान्त शब्दों में चतुर शब्द के प्रयोग विशेष होते हैं। इस शब्द से बहुवचन विभक्ति ही आती है। और तीनों लिङ्गों में इसका प्रयोग किया जाता है—

'चतुर्+जस्'—

प्रथ8-चतुरनडुहोरामुदात्तः ॥ १४०॥ अ०७॥१।९८॥ जो सर्वनामस्थान विभक्ति परे हो, तो चतुर् और अनडुह शब्द को आम् का आगम और यह उदात्त भी हो।

आम् आगम तु से परे होकर—'चतु+आम्+र्+जस्' यणादेश, विसर्जनीय और इत्संज्ञादि कार्य्य होकर—चत्वारः॥

'चतुर्+शस् व्चतुरः, पुर्ह्मिंग में ऐसे प्रयोग होते हैं। नपंसकितंग में जस् श्रीर शस् विभक्ति के स्थान में शि श्रादेश होजाता है -चत्वारि।चत्वारि। क्षीलिंग में त्रि, चतुर् शब्द को तिस् श्रीर चतस् श्रादेश होजात हैं। यह सब व्यवस्था ऋकारान्त विषय में कह चुके हैं॥ चतुर्भिः। चतुर्भ्यः। चतुर्भ्यः॥

'चतुर्+श्राम्' यहां श्राम् विमक्ति को तुद्<sup>3</sup> का श्रागम होकर—

- १. विसर्जनीय—( सरवसानयोविसर्जनीयः ॥ ६ । ३ । १४ ) नामिक—२४६ ॥
- २. स् को च-( ब्रादेशप्रत्यययोः । ८ । ४ । ४६ ) नामिक-३६ ।।
- ३. आस् को नुट-(पट्चतुभ्येश ।। ७ । १ । ११) नामिक- १४० ।।

प्रभ्य -रषाभ्यां ने। णः समानपदे ॥ १४१॥ अ०८। १॥ पकपद में रेफ और षकार से परे नकार को सकारादेश हो। इससे सकार और उसको द्वित्व' होजाता है। चतुरस्मिम् चतुर्षु ॥ उक्त 'त्रि और 'चतुर्' शब्द किसी शब्द के साथ बहुत्रीहि समास में हों, तो सब

'त्रि' शब्द के प्रयोग इकारान्त में नहीं लिखे, संख्यावाची के सम्बन्ध से यहां लिखते हैं।

,इकारान्त संख्यावाची नियतबहुवचनान्त त्रि शब्द-

'त्रि+जस्' बहुवचन में (जिस च ॥ ७।३।१०१) इस (४७) सूत्र से गुण होके—त्रयः। 'त्रि+शस्'=त्रीन्। नपुंसकालिक में 'जस्' श्रोर 'शस्' विभक्ति को शि श्रादेश, जुम् का श्रागम श्रोर दीर्घ होके—त्रीणि। त्रीणि। त्रिभिः। त्रिभ्यः। त्रिभ्यः।

'त्रि+ग्राम्' ग्राम् विभक्ति के परे उद् का ग्रागम होके—'त्रि+नाम्' यहां— ५५६—त्रेस्त्रयः ॥ १५२॥ अ० ७। १। ५३॥ उद् सहित ग्राम् विभक्ति परे हो, तो त्रि शब्द को त्रय ग्रादेश हो। त्रयाणाम्। त्रिष्ठ ॥

अथ वकारान्तविषयः॥

वकारान्त नियतस्त्री लिङ्ग दिख्रे शब्द—

'दिव्+सु' यहां—

४५७-दिव औत्॥ १५३॥ अ००॥ १। ८४॥

सु विभक्ति के परे दिव् शब्द को श्रौकारादेश हो।

इससे वकार के स्थान में श्रौ होकर—'दि+श्रौ+सु' यगादेश होके—धौः॥

दिवो। दिवः। दिवम्। दिवौ। दिवः। दिवा। 'दिव्+श्याम्'—

४५८-दिव उत्॥ १५४॥ अ०६॥ १॥ १३०॥

पदान्त में दिव् शब्द के वकार को उत् श्रादेश हो।

वकार को उकार श्रौर पूर्व को यगादेश हाकर—सुभ्याम्। सुमिः। दिवे। सुभ्याम्।

सुभ्यः। दिवः। सुभ्याम्। सुभ्यः। दिवः। दिवोः। दिवाम्। दिव। दिवोः। सुषु॥

१. द्वित्व—( अचो रहास्यां द्वे ॥ ८ । ४ । ४१ ) सान्ध०—२२० ॥

२. यह प्रकाशमान पदार्थ का नाम है।।

# अथ श्कारान्तविषयः ॥

शकारान्त स्त्रीलिङ्ग दिश् शब्द--

'दिश्+सु' पदान्त में कुत्व होकर—दिक्; दिग्। दिशो। दिशः। दिशम्। दिशो। दिशः। दि

इसी प्रकार—विश् ; लिश् ; घृतस्पृश् ; दश् ; की दश् ; ईदश् ; सदश् ; तादश् ; यादश् ; एतादश् ; त्यादश् इत्यादि शब्दों के प्रयोग समक्षने चाहियें॥

वेद में विशेष यह है कि—

१५६-हक्स्ववस्स्वतवसां छन्दासि ॥ १५५ ॥ अ०० । १ । ८३ ॥ वेद्मं दगन्त, स्ववस् श्रीर खतवस् शन्दों को सु विभक्ति के परे नुम् का श्रागम हो । जैसे—ईटङ् । कीटङ् । याटङ् । ताटङ् । सटङ्, इत्यादि । 'खवस्' श्रीर 'खतवस्' इन दोनों के प्रयोग सकारान्तों में देख लेना ॥

परन्तु इन तालव्यान्त शब्दों में यदि कोई शब्द नपुंसकलिंग में भी आवे तो उसके प्रयोग इस प्रकार होंगे—

शकारान्त नपुंसकालिङ्ग सदृश् शब्द--

सहम् । सहग् । सहगी । सहंशि । फिर भी – सहम् । सहग् । सहगी । सहंशि । सहशी । सहार्थ । सहग् । सहगी । सहंशि । सहगा, इत्यादि पूर्ववत् ॥ अथ सकारान्तविषयः ॥

सकारान्त नियतप्रिक्षङ चन्द्रमस् शब्द-

'चन्द्रमस्+सु' यहां दीर्घ<sup>3</sup> होकर—चन्द्रमाः । चन्द्रमसौ । चन्द्रमसः । चन्द्रमसम् । चन्द्रमसौ । चन्द्रमसः । चन्द्रमसा । 'चन्द्रमस्+भ्याम्' यहां सकार को कं श्रोर ह को उं श्रादेश होकर—चन्द्रमोभ्याम् । चन्द्रमोभिः । चन्द्रमसे । चन्द्रमोभ्याम् । चन्द्रमोभ्यः । चन्द्रमसो । चन्द्रमसोः । चन्द्रमसोः । चन्द्रमसोः । चन्द्रमसोः । चन्द्रमसाम् । चन्द्रमसा । चन्द्रमसोः । चन्द्रमसोः ।

इसी प्रकार-जातवेदस्; विश्वयशस्; द्रविणादस्; विश्ववेदस्; विश्वभोजस्;

१. 'दिश्' यह शब्द किन्प्रत्ययान्त है ॥

२. कुल्व—(किन्प्रत्ययस्य कुः ॥ ८ । २ । ६२ ) नामिक—११४ इस सूत्र से ॥

३. दीर्घ—( प्रत्यसन्तस्य चाघातोः ॥ ६ । ४ । १४ ) नामिक—१२२ ॥

४. स् को रु—( ससजुषो रुः ॥ ८ । २ । ६६ ) नामिक—१६ ॥

१. र को उ-( हशि च ॥ ६ । १ । ११३ ) सन्धि -- २४३ ॥

त्र्रङ्गिरस्; नोधस्; पुरोधस्; वयोधस्; वेधस्; तृचत्तस् इत्यादि पुलिङ्ग शब्दों के प्रयोग समक्षने चाहियें॥

पूर्व जितने शब्द लिखे हैं, वे सब ग्रसुन्प्रत्ययान्त हैं । श्रसुन्प्रत्ययान्त पुक्किश्च शब्दों में विशेष यह है कि—

सकारान्त पुश्चिङ्ग उदानस् शब्द--

'उशनस् । सु' यहां अन्य को अनङ् शारेश, अङ्मात्र की इत्सं शारे एकादेश होकर—'उशनन् । सु' यहां नान्त अङ्ग की उपधा को दीर्ध अौर विभक्ति का लोप हो के — उशना । और संबुद्धि में —हे उशनन् हे उशन् हे उशनः । हे उशनसी । हे उशनसी । हे उशनसी । हे

इसी के समान—ग्रनेहस्; पुरुदंशस् इन दोनों के भी प्रयोग जानने चाहियें। परन्तु संबुद्धि में जो 'उशनस्' शब्द के तीन प्रयोग लिखे हैं, वसे इन दोनों के नहीं होंगे, क्योंकि उशनस् शब्द को संबुद्धि में भी विकल्प करके श्रनङादेश श्रोर नलोप कहा है। इन दोनों को नहीं॥

सकारान्त शब्द बहुत प्रकार के होते हैं। उनमें से श्रसुन्प्रत्ययान्त पुक्किश्न शब्दों को उक्त रीति से जानना चाहिये॥

सकारान्त प्रिल्लाङ्ग विद्वस् शब्द-

'विद्रस्+सु' यहां नुम्' का त्रागम होके—'विद्रन्+स्+सु' इस अवस्था में दीर्घ, 'सु के सकार का लोप<sup>8</sup> त्रीर संयोगान्तलोप' होकर—विद्रान्। विद्रांसौ। विद्रांसः। विद्रांसम्। विद्रांसौ॥

'विद्रस्+शस्' यहां—

४६०-वसोः संप्रसारणम् ॥ १४६ ॥ अ० ६ । ४ । १३१ ॥

भसंज्ञक वसुप्रत्ययान्त शब्दों को संप्रसारण हो।

वकार को उ संप्रसारण और पूर्वरूप होकर—'विदुस्+शस्' इस अवस्था में वसु के सकार को मूर्जन्य आदेश हो जाता है—विदुष: । विदुषा ॥

- १. ग्रनङ्—( ऋदुशनस्पुरुदंशोऽनेहसां च ॥ ७ । १ । ६४ ) नामिक—६८ ॥
- २. नान्त दीर्घ—( नोपधायाः ॥ ६ । ४ । ७ ) नामिक—१४१ ॥
- ३. ( उशनसः संबुद्धाविप पत्तेऽनिङ्यते ॥ ७ । १ । १४ ) इस वार्तिक से विकल्प होकर तीन प्रयोग बन जाते हैं ॥
  - नुम्—( उगिद्वां सर्वनामस्थाने प्रधातोः ॥ ७ । १ । ७० ) नामिक—११३ ।।
  - १. दीर्घ (सान्तमहतः संयोगस्य ॥ ६ । ४ । १० ) नामिक १२४ ॥
  - ६. स् का लोप—(हल्ङ्याव्भ्यो दीर्घात्युति ।। ६। १। ६८) नामिक ४० इस सुत्र से ॥ ई
- ७. संयोगान्त लोप—(संयोगान्तस्य लोपः ॥ ६।२।२३) नामिक –११४ इससे विद्वस् शब्द के सकार का लोप होता है ॥

'विद्यस्+भ्याम्'—

४६१-वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ॥ १५७ ॥ ८ । २ । ७२ ॥ वसुप्रत्ययान्त, स्रंसु, ध्वंसु श्रौर श्रनडुह् इन शब्दों के पदान्त सकार हकार को दकारादेश हो ।

विद्वदुभ्याम्-। विद्वद्भिः॥

विदुषे । विद्रद्भ्याम् । विद्रद्भ्यः । विदुषः । विद्रद्भ्याम् । विद्रद्भ्यः । विदुषः । विदुषोः । विदुषोः । विदुषोः । विद्रषोः ॥

श्रब पर्गाध्वस् --

इसी प्रकार—उखास्रस् आदि शब्दों के प्रयोग समझने चाहियें।। ऊषिवस्—

यह कसुप्रत्ययान्त, सकारान्त शब्द है— ऊषिवान् । ऊषिवांसौ । ऊषिवांसः । ऊषिवांसम् । ऊषिवांसौ । ऊषुषः । ऊषुषा । ऊषिवद्भ्याम् । ऊषिवद्भः । ऊषुषे । ऊषिवद्भ्याम् । ऊषिवद्भ्यः । ऊषुषः । ऊषिवद्भ्याम् । ऊषिवद्भ्यः । ऊषुषः । ऊष्ववद्भ्याम् । ऊषिवद्भ्यः । ऊषुषः । ऊषुषोः । ऊष्ववद्भ्याम् । ऊषिवद्भ्यः । ऊषुषः । उष्ठिषोः । उष्ठिष्वत् । हे उषिवन् । हे उषिवांसौ । हे उषिवांसौ । हो अषिवांसः । इसके प्रयोगों में सब कार्य्यं 'विद्रस्' शब्द के समान होते हैं ॥

इसी प्रकार—तस्थिवस्; पिवस्; सेदिवस्; शुश्रुवस्; उपेयिवस् इत्यादि कसुप्रत्ययांन्त शब्दों के प्रयोग समक्षने चाहियें॥

एक प्रकार के सकारान्त शब्द ईयसुन्प्रत्ययान्त होते हैं। जैसे—श्रेयस्; अल्पीयस्; प्रपीवस्; क्रनीयम्; यवीयस् इत्यादि। इन शब्दों के प्रयोग प्रथमा के एकवचन से लेकर पांच वचनों में 'विद्रस्' शब्द के समान होते हैं—

'यवीयस्+सु'=यवीयान् । यवीयांसौ । यवीयांसः । यवीयांसम् । यवीयांसौ । यवीयसः । यवीयसा । यवीयोभ्याम् । यवीयोभिः । यवीयसे । यवीयोभ्याम् । यवीयोभ्यः । यवीयसः । यवीयोभ्याम् । यवीयोभ्यः । यवीयसः । यवीयसोः । यवीयसाम् । यवीयसि । यवीयसोः । यवीयस्दुः, यवीयःसु । हे यवीयन्, इत्यादि ॥

इसी प्रकार ईयसुन्पत्ययान्त सब शब्दों के प्रयोग जानने उचित हैं॥

ईयसुन् श्रोर कसुप्रत्ययान्त शब्द जब स्त्रीतिङ्ग में श्राते हैं, तब ईकारान्त हो जाते हैं। जैसे-विदुषी, इत्यादि॥ श्रीर श्रसुन्पत्ययान्त श्रर्थात् श्रासरस् ; उषस् ; सुमनस् इत्यादि स्नीतिङ्ग शब्दों के प्रयोग 'चम्द्रमस्' शब्द के तुल्य होते हैं॥

त्र सुन्प्रत्ययान्त दो खरवाले शब्द प्राय: नपुंसकलिङ्ग में आते हैं। इनमें इतना भेद है कि—

पयस्—

'पयस्+सु' सु लोप होकर—पय:। 'पयस्+श्री' यहां श्री के स्थान में शी' होकर—पयसी। 'पयस्+जस्' यहां भी जस् के स्थान में शि' श्री नुम् का श्रागम होकर—पयांसि। फिर भी—पय:। पयसी। पयांसि। श्रन्य प्रयोग चन्द्रमस्' शब्द के समान समभने चाहियें॥

इसी प्रकार—मनस् ; भूयस् ; पाथस ; वचस् ; श्रम्भस् ; एनस् इत्यादि शब्दों के प्रयोग विचारने योग्य हैं॥

स्ववम् ; स्वतवम् इन दो सकारान्त शब्दों को वेदविषय में सु विभक्ति के परे तुम् का आगम होजाता है। जैसे—स्ववान्। स्वतवान्॥

४६२-वा०-स्ववःस्वतवसोमीस उषसञ्च छन्दिस त इष्यते।। १४८॥ अ०७। ४। ४८॥

भकारादि प्रत्यय परे हों, तो वैदिकप्रयोग विषय में खबस्, खतवस्, मास, उषस् इन शब्दों को तकारादेश हो।

जैमे—सवद्भिः। सवद्भ्यः। स्रतवद्भिः। स्रतवद्भ्यः। माद्भिः। उपद्भिः, इत्यादि॥

पक प्रकार के सकारान्त शब्द इस्, उस् प्रत्ययान्त होते हैं। जैसे—विषुस्; यजुस्; अरुस्; धनुस्; आयुस्; ज्योतिस्; आर्चिस्; शोचिस्; वर्हिस्; हिन्स्; सिप्स् इत्यादि सकारान्त शब्दों में कोई विशेष सूत्र नहीं घटते। और इन शब्दों के अन्त्य औपदेशिक सकार को पीछे मूर्ज्ञन्यादेश हो जाता है। ये शब्द केवल नपुंसकित में ही आते हैं, परन्तु लिङ्गानुशासन की रीति से आर्चिस् और अदिस् इनशब्दों के प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में भी होते हैं।

सकारान्त नपुंसकितङ्ग यजुस् शब्द—

'यजुस्+सु' यहां 'पयस्' शब्द के समान सब कार्य होकर—यजुः। यजुषी। यजुषि। फिर भी—यजुः। यजुषी। यजुषि। यजुषा। 'यजुस्+भ्याम्' यहां सकार

- १. श्रौ को शी—( नपु'सकाच ॥ ७ । १ । १६ ) नामिक—४२ ।।
- २. जस् को शि—( जरशसोः शिः ॥ ७ । १ । २० ) नामिक—४३ ॥
  - ३. नुम्—। उगिद्वां सर्वनामस्थाने ऽधातोः ॥ ७ । १ । ७० ) नामिक ११३ ॥
  - ४. तुम्ः ( इक्स्ववस्स्वतवसां छन्दंसि ॥ ७ । १ । ८३ ) नामिक १११ ॥
- १. स् को मूर्ड न्य प् ( आदेशप्रत्ययोः ॥ दं । ४ । ४६ ) नामिक—३६ ॥

कः रु' होके अन्य कार्यों की प्राप्ति न होने से रेफ ऊपर चढ़ जाता है—यजुर्भ्याम्। यजुनि: यजुषे यजुर्भ्याम्। यजुर्भ्यः। यजुषः। यजुर्भ्याम्। यजुर्भ्यः। यजुषः। यजुषोः। यजुषाम्। यजुषि। यजुषोः। यजुष्षुः, यजुःषु ॥

यथा इसन्त-ज्योतिस्-

ज्योतिः । ज्योतिषी । ज्योतिषि । फिर भी—ज्योतिः । ज्योतिषी । ज्योतिषि । ज्योतिषा । ज्योतिषा । ज्योतिर्भाम् । ज्योतिर्भाः । ज्योतिषोः । ज्योतिर्भाम् । ज्योतिर्भाः । ज्योतिषाः । ज्योतिर्भाम् । ज्योतिर्भाः । ज्योतिषाः । जयोतिषाः । जयोति

स्नीतिङ्ग में इतना भेद है कि - छिदिम् -

छुदि: । छुदिषी । छुदिष: । फिर भी—छुदि: । छुदिषी । छुदिष: । ग्रागे 'यजुस्' ग्रार 'ज्योतिस्' शब्द के समान जानो ॥

## अथ षकारान्तविषयः ॥

वकारान्त स्त्रीलिंग प्रावृष् शब्द-

'प्रावृष्+सु' यहां षकार को डकार यहां विकल्प से चर् होकर—प्रावृद्; प्रावृद्ध । प्रावृषो । प्रावृषः । प्रावृषम् । प्रावृषो । प्रावृषः । प्रावृषः । प्रावृद्धः ।

इसी प्रकार—विपुष्; त्विष्; रुष् इत्यादि शब्दों के प्रयोग जानने। श्रीर ब्रह्मद्विष् श्रादि पुक्किक शब्दों के प्रयोग भी 'प्रावृष्' शब्द के समान समक्षने चाहियें॥

परन्तु स्राशिष् शब्द में कुछ विशेष है-

'आशिष्+सु' यहां धातु की उपधा के इक् को दीर्घ होकर—आशीः । आशिषौ । आशिषः । आशिषम् । आशिषौ । आशिषः । आशिषा । आशीर्भ्याम् । आशीर्मः । आशिषे । आशीर्भ्याम् । आशीर्भ्यः । आशिषः । आशीर्भ्याम्, इत्यादि ॥

संख्यावाची बहुवचनान्त षुष् शब्द-

इससे बहुवचन विभक्ति ही त्राती है । 'षष्+अस्' 'षष्+शस्' यहां अस् ग्रौर शस् का लुक् होकर—षट् । षट् । षड्भि: । षड्भ्य: । षड्भ्य: । 'षष्+श्राम्' यहां

१. स् को रु—( ससजुषो रुः ।। ८ । २ । ६६ । नामिक — १६ ।।

२. प् को ड् ( मलां जशो अन्ते ॥ ८ । २ । ३६ ) सन्धि - १८६ ॥

३. विकल्प से चर्-( वावसाने ॥ ८ । ४ । ४४ ) नामिक - ११२ ॥

थ. यहां ( हिंत च ॥ ६ । २ । ७७ ) नामिक - १४२ इससे दीर्घ होता है ॥

४. जस् शस् का लुक्—( पड्स्यो लुक् ॥ ७ । १ । २२ ) नामिक—१३ ।।

तुर् का आगम होकर — 'षष्+नाम्' षकार को इ हो के — 'षड्नाम्'। यहां अनाम्' इस प्रतिषेध से पुत्वनिषेध न हुआ, किन्तु टवर्ग डकार से परे तवर्ग नकार को एकार और डकार को परसवर्ण होकर — षएणाम्। षट्त्सु, षट्सु ॥

### अथ हकारान्तविषयः ॥

हकारान्त पुल्लिङ्ग वा स्त्रीलिंग गोदुह् शब्द— 'गोदुह्-सु.'—

४६३-दादेधीतोर्घः ॥ १४६ ॥ अ० = । २ । ३२ ॥

भल् परे हो, वा पदान्त में दकारादि धातु के हकार को घकारादेश हो। यहां पदान्त में घकार होकर—

१६४-एकाचा बद्यो अब् ऋषन्तस्य स्थ्वोः ॥१६०। अ० ८।२।३७॥

स्, ध्व परे हो, वा पदान्त में एकाच् धातु का अवयव जो अपन्त बश्, उसको भव् आदेश हो।

यहां पदान्त में दकार को धकार होकर—'गोधुघ्+सु' घकार को जश् ग्र<sup>3</sup> स्रोर उसको विकल्प चर्<sup>8</sup> होकर—गोधुक्, गोधुग्॥

गोदुहौ । गोदुह: । गोदुहम् । गोदुहौ । गोदुह: । गोदुहा । गोधुगुभ्याम् । गोधुग्भ्यः । गोदुह: । गोधुग्भ्याम् । गोधुग्भ्यः । गोदुह: । गोधुग्भ्याम् । गोधुग्भ्यः । गोदुह: । गोधुन्भ्याम् । गोदुह: । गोदुहो: । गोधुन्नु । सम्बोधन में कुञ्ज विशेष नहीं होता ॥

गुडलिइ—

इस शब्द के प्रयोगों में इतना विशेष है कि हकार को घकारादेश नहीं होता— गुडलिट्; गुडलिड्। गुडलिड्भ्याम्। गुडलिट्त्सुः गुडलिट्सु॥

भित्रद्भुहः उन्मुहः पृतस्निहः उत्स्तुह इन चार शब्दों में विशेष यह है कि— ४६४—वा द्वहमुह्हण्णुह्हिणहाम् ॥ १६१ ॥ अ० ८ । २ । ३३ ॥

जो भल् परे वा पदान्त में हो, तो दुह, मुह् स्तुह, स्निह् ये जिनके अन्त में हों, उनको विकल्प करके घकारादेश हो।

- १. नुट् श्रागम— ( षट्चतुभ्रयश्च ॥ ७ । १ । ४४ ) नामिक —१४० ॥
- २. 'त्रनाम्' यह प्रतिषेघ (न पदान्ताटोरनाम् ॥ ८। ४१) सन्धि २१४ इस सूत्र के विषय से ॥
  - ३. घ को जश् ग्—( कलां जशो न्ते ॥ ८ । २ । ३ ६ ) सन्धि० १८ ६ ।।
  - ४. विकल्प चर-( वावसाने ॥ ८ । ४ । ४४ ) नामिक-११२ ॥

जिस पत्त में घकार होता है, वहां 'गोदुह्' शब्द के समान प्रयोग बनते हैं। स्रोर जहां हकार बना रहता है, वहां 'गुडिलह' शब्द के समान प्रयोग समसने चाहियें॥

नियतस्त्रीख्रिङ उपानह् शब्द-

'डपानइ+सु' यहां—

४६६ – नहीं घः॥ १६२॥ अ० ≈। २। ३४॥

जो सल् परे वा पदान्त में हो, तो नह् धातु के हकार को धकारादेश हो। धकार को दकार और विकल्प चर् होकर—उपानत् उपानद् ॥

उपानहो । उपानहः । उपानहम् । उपानहो । उपानहः । उपानहा । उपानद्भ्याम् । उपानद्भः । उपानहे । उपानद्भ्याम् । उपानद्भ्यः । उपानहः । उपानद्भ्याम् । उपानद्भ्यः। उपानहः । उपानहोः । उपानहाम् । उपानहि । उपानहोः । उपानत्सु ॥

इसी प्रकार-परीगाद्द आदि शब्दों के प्रयोग सममने चाहियें।।

हकारान्त नियतपुर्ह्मिग अनुडुह् शब्द-

'त्रनडुह्+सु'—

४६७-सावनडुहः ॥ १६३ ॥ अ०७ । १ । ८२ ॥ जो सु विभक्ति परे हो, तो अनडुह् शब्द को नुम् का आगम हो।

इससे नुम् श्रीर संयोगान्त लोप होकर—'श्रनडुन्'। यहां श्राम् का श्रागम' सर्वनामस्थान विभक्तियों में श्रन्त्य श्रच् से परे होता है—'श्रनडु+श्रान्'। यणादेश होकर—श्रनडुवान्।।

श्रनड्वाहो । श्रनडवाहः । श्रनड्वाहम् । श्रनड्वाहौ । श्रनडुहः । श्रनडुहा । 'श्रनडुह्+भ्याम्'यहां हकार को दकारादेश<sup>२</sup> होकर—श्रनडुद्भ्याम् । श्रनडुद्भिः । श्रनडुहे । श्रनडुद्भ्याम् । श्रनडुद्भ्यः । श्रनडुहः । श्रनडुद्भ्याम् । श्रनडुद्भ्यः । श्रनडुहः । श्रनडुहोः । श्रनडुहाम् । श्रनडुहि । श्रनडुहोः । श्रनडुन्सु ॥

[संबुद्धि के परे (श्रम् संबुद्धी ।। ७ । १ । ६६ ) इस सूत्र से श्रम् का श्रागम होकर—हे श्रनड्वन् । हे श्रनड्वाही । हे श्रनड्वाही ।।]

.इति इलन्तप्रकरण्म्॥

१. श्रास् का श्राराम ( चतुरन्दुहोरामुदात्त: ॥ ७ । १ । ६८ ) नामिक — १५० ।।

२. हकार को द्—( वसुस्रंसुध्वंस्वनहुहां दः ॥ ८ । २ । ७२ ) नामिक—११७ ॥

# [ अथ पादादि शब्द प्रकरणम् ]

४६८-पद्द्रोमास्हिन्नशसन्यूषन्दोषन्यकञ्चकन्नदन्नासञ्चस्प्र-भृतिषु ॥ १६४ ॥ अ॰ ६ । १ । ६३ ॥

इस सुत्र के यहां लिखने का प्रयोजन यह है कि इसमें जितने शब्द हैं, वे स्नका-रान्तादि क्रमानुसार जहां २ लिखे जाते हैं, वहां २ यह सूत्र कई बार जनाना पड़ता, इसलिये यहां लिखा।

इसमें—पाद; दन्त; मास; हृदय; उदक; आसन; आस्य इतने शब्द अकारान्त । नासिका; निशा ये दो आकारान्त । असुज् यह जकारान्त । यृष्; दोष् ये दो षकारान्त । यकत्, शकृत् ये दो तकारान्त हैं।

सर्वनामस्थान को छोड़ के अन्य विभक्तियों में पाद आदि शब्दों के स्थान में निम्नलिखित आदेश विकल्प करके जानने चाहियें।

जैसे-पाद शब्द को 'पद्'-

'पद्+श्रस्'=पदः। पदा। पद्भ्याम्। पद्भिः। पदे। पद्भ्याम्। पद्भ्यः। पदः। पद्भ्याम्। पद्भ्यः। पदः। पदोः। पदाम्। पदि। पदोः। पत्सु॥

दन्त शब्द को 'दत्'—

द्तः । द्ता । द्द्भ्याम् । द्द्भिः । द्ते । द्द्भ्याम् । द्द्भ्यः । द्तः । द्द्भ्याम् । द्द्भ्यः । द्तः । द्तोः । द्ताम् । द्ति । द्तोः । द्त्सु ॥

नासिका शब्द को 'नस्'-

नसः । नसा । नोभ्याम् । नोभिः । नसे । नोभ्याम् । नोभ्यः । नसः । नोभ्याम् । नोभ्यः । नसः । नसोः । नसाम् । नसि । नसोः । नस्युः नःसु ॥

मास शब्द को 'मास्' हलन्त आदेश-

मासः। मासा। 'मास्+भ्याम्' यहां (भोभगोश्रघोश्रपूर्वस्य योऽशि॥ ८।३। १७) इस सूत्र' से श्रवर्णपूर्व रुको यकारादेश होकर (हत्ति सर्वेषाम्॥ ८।३।२२) इस सूत्र' से यकार का लोप होगया। जैसे—माभ्याम्। मासिः। मासे। मास्याम्। माभ्यः। मासः। माभ्याम्। माभ्यः। मासः। मासोः। मासाम्। मासिः। मासोः। मास्यः मासः॥

१. सन्धि०—२१८॥

२. सन्धि०—२४४॥

स्रोर वेद में भकागदि विभक्तियों के परे इस हलन्त 'मास्' शब्द के सकार को तकारादेश' होजाता है । जैसे—मादुभ्याम्। मादुभिः । मादुभ्याम्। मादुभ्यः, इत्यादि॥

हृद्य शब्द को 'हृद्'— हृदः । हृदा । हृद्भ्याम् । हृद्भिः । हृदे । हृद्भ्याम् । हृद्भ्यः । हृदः । हृद्भ्याम् । हृद्भ्यः । हृदः । हृदोः । हृदाम् । हृदि । हृदोः । हृत्सु ॥

निशा शब्द को 'निश्'—

निशः। निशा। 'निश्+भ्याम्' यद्दां शकार को ष्' श्रौर उसको डकारादेश<sup>3</sup> होकर—निङ्भ्याम्। निङ्भ्यः। निशः। निङ्भ्याम्। निङ्भ्यः। निशः। निङ्भ्याम्। निङ्भ्यः। निशः। निशः।

श्रासन शब्द को 'श्रसन्' श्रादेश—

ग्रस्तः । ग्रस्ता । ग्रसभ्याम् । ग्रसिः । ग्रस्ते । ग्रसभ्याम् । ग्रसभ्यः । ग्रस्तः । ग्रसभ्याम् । ग्रसभ्यः । ग्रस्तः । ग्रस्तोः । ग्रस्ताम् । ग्रस्तिः ग्रसिनः ग्रसिने । ग्रस्तोः । ग्रससु ॥

युष् शब्द को यूषनः दोष् शब्द को दोषनः युकृत् को यकनः शुकृत् को शकनः उदक् को उदनः श्रास्य शब्द को श्रासन्। 'यूषन्' श्रादि सब शब्दों के प्रयोग 'श्रसन्' शब्द के समान जानो ॥

पाद; दन्तः; मास, इन तीन शब्दों के प्रयोग दूसरे पद्म में अकारान्त पुलिक 'पुरुष' शब्द के समान । हृद्य, उदक, आसन इन तीनों के अकारान्त नपुंसकतिक 'धन' शब्द के समान । नासिका और निशा शब्द के प्रयोग 'कन्या' शब्द के समान । असुज् शब्द के प्रयोग 'ऋत्विज्' शब्द के समान । यूष् शब्द के प्रयोग 'प्राष्ट्रिष' शब्द के समान । दोष् शब्द के प्रयोग 'प्राष्ट्रिष' शब्द के समान । दोष् शब्द के प्रयोग 'प्राष्ट्रिष' शब्द के समान, और यकुत्; शब्द शब्दों के प्रयोग 'उद्दिवत' शब्द के समान समक लेने चाहियें ॥

१. स् को त-( स्ववःस्वतवसोमांस उपसश्च जुन्दिस त द्र्यते ॥ ७ । ४ । ४८ ) नामिक-१४८ यह वार्तिक प्रथम 'स्ववस्' ग्रन्द पर क्रिख चुके हैं ॥

२. श् को प—। व्रश्चअस्जस्जस्जयजराजआजच्छशां पः ॥ ८। २। ३६) नामिक— ११६॥

३. प् को द्—( मलां जशोऽन्ते ॥ म । २ । ३६ ) सन्धि०— १म६ ॥

४. यहां (बिमापा किश्योः ॥ ६ । ४ । १३६ ) नामिक—७६ इस सूत्र से विकल्प करके सकार का स्रोप डो जाता है ॥

# [ अथ सर्वनामप्रकरणम् ]

अब इसके आगे सर्वनामवाची शब्द लिखेंगे सर्वादि शब्द तीनों लिङ्गों में आते हैं। प्रथम पृक्षिङ्ग में सव —

'सर्व+सु'=सर्वः । सर्वौ । 'सर्व+जस्'—

प्रह—जसः श्री ॥ १६५ ॥ अ०० ॥ १ । १७ ॥ जो अकारान्त सर्वनाम से परे जस् होने, तो उसको श्री आदेश होजाने । शकार की इत्संज्ञा और पूर्व पर के स्थान में गुण पकादेश होकर—सर्वे ॥ सर्वम् । सर्वो । सर्वो । सर्वोग् । सर्वोग् । सर्वोः ॥ 'सर्व+क्षे'—

४७०-सर्वनाम्नः स्मै ॥ १६६ ॥ अ० ७ । १ । १४ ॥ जो अदन्त सर्वनाम से परे डे विभक्ति होवे, तो उसको स्मै आदेश हो जावे। जैसे—सर्वस्मै ॥

सर्वाभ्याम् । सर्वेभ्यः । 'सर्व+ङसि'—

५७१-ङसिङ्योः स्मात्सिनौ ॥ १६७ ॥ अ० ७ । १ । १५ ॥ जो अकारान्त सर्वनाम से परे ङसि और ङि विभक्ति हो, तो इनको कम से सात् और सिन् आदेश हो।

सर्वसात्॥

'सर्व+इस्' यहां स्य' त्रादेश होकर—सर्वस्य। सर्वयोः। 'सर्व+त्राम्'— १७२-आमि सर्वनामनः सुद्॥ १६८॥ अ०७॥१॥ ५२॥ जो त्रवर्णान्त सर्वनाम से परे त्राम् विभक्ति हो, तो उसको सुद् त्रागम हो। 'सर्व+साम्' यहां त्रंग को एकारादेश<sup>3</sup> त्रौर सुद् के सकार को मूर्बन्यादेश<sup>3</sup> होकर—सर्वेषाम्॥

'सर्व+िङ' उक्त सूत्र से 'िङ' को 'िसन्' श्रादेश होकर—सर्वस्मिन् । सर्वयोः । सर्वेषु ॥

नपुंसकित में — सर्वम् । सर्वे । सर्वािषा । फिर भी — सर्वम् । सर्वे । सर्वािषा । आगे सब विभक्तियों में पुल्लिङ्ग के समान जानना ॥

क्षींलिंग में--टाप् होकर अकारान्त सर्वादि सब शब्द आकारान्त होकर

१. स्य — ( टाङसिङसामिनात्स्याः ॥ ७ । १ । १२ ) नामिक — २४ इससे यह आदेश हुआ है ॥

२. म्र को ए-(बहुवचने मत्येत्॥ ७।३।१०३) नामिक-३२॥

३. सु को पू- ( श्रादेशप्रत्ययोः ॥ ८ । ४ । ४३ ) नामिक--३६ ॥

प्रयोगविषय में 'कन्या' शब्द के तुल्य होते हैं । जैसे—सर्वा । सर्वे । सर्वाः । सर्वाम् । सर्वे । सर्वाः । सर्वाभ्याम् । सर्वाभः । 'सर्वा+ङे'—

४७३-सर्वनाम्नः स्याङ्द्रस्तश्च ॥ १६६ ॥ श्च० ७ । ३ । ११४ ॥ जो सर्वादि श्रावन्त श्रङ्ग से परे ङित् विभक्ति हो, तो उसको स्याद् का श्रागम हो, श्रीर सर्वनाम को हस्त भी होजावे।

'सर्वस्या+ए' पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होकर — सर्वस्ये । सर्वस्याः ॥

सर्वाभ्याम् । सर्वाभ्यः । सर्वस्याः । सर्वयोः । सर्वासाम् । 'सर्वस्या+िक' यहां आवन्त से परे कि विभक्ति को आम् आदेश होकर सवर्णदीर्घ एकादेश होजाता है— सर्वस्याम् । सर्वयोः । सर्वासु ॥

इसी प्रकार तीनों लिंग में विश्व श्रादि गंग्पिटित शब्दों के भी प्रयोग समसने चाहियें ॥ उभ शब्द नियतद्विवचन में श्राता है । इसकी सर्वनामसंज्ञा का प्रयोजन श्रकच् प्रत्यय होना है । जैसे उभको । उमी । उभाभ्याम् ३ । उभयोः २ ॥

उभय शब्द 'सर्व' शब्द के समान है। जैसे—उभय:। उभयी। उभये, इत्यादि॥ कतर; कतम; इतर; अन्य; अन्यतर, इन पांचों शब्दों के प्रयोग नपुंसक लिङ्ग में कुछ विशेष होते हैं—

अ १७४ - अद्ब्दतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ॥ १७०॥ अ०७॥ १। २५॥ जो दतर अर्थात् कतर आदि पांच नपुंसकतिङ्ग में वर्तमान शब्दों से परे सु और अम् विभक्ति हो, तो इनके स्थान में अदुद् आदेश हो।

जैसे—'कतर+सु' 'कतर+श्रम्'=कतरत्; कतरद् । इसी प्रकार—कतमत् । इतरत्। श्रन्यत्। श्रन्यतरत्।

इतर शब्द को वेद में कुछ विशेष है-

१७४ – नेतराच्छन्दसि ॥ १७१ ॥ अ० ७ । १ । २६ ॥

वैदिक प्रयोगों में जो नपुंसक लिङ्ग में वर्त्तमान इतर शब्द से परे सु और अम् विभक्ति होवे, तो उसको अद् आदेश न हो।

जैसे-इतरम् २॥

प्रथ६ — वा॰ - एकतरात् सर्वत्र ॥ १७२ ॥ ७ । १ । २६ ॥ सर्वत्र अर्थात् वेद् श्रौर लोक में जो नपुंसक लिङ्गस्थ एकतर शब्द से परे सु

जैसे - एकतरन्तिष्ठति । एकतरं पश्य ।।

🧸 ्त शब्द अन्य का पर्यायवाची है, इसमें कुछ विशेष नहीं ॥

नेम शब्द में विशेष यह है कि—

४७७-प्रथमचरमतयाल्पार्द्धकतिपयनमाश्च ॥१७३॥ अ०१।१।३३॥

जो जस् विभक्ति के परे प्रथम, चरम, तयप्प्रत्ययान्त, ग्रहप, श्रई, कतिपय, नेम, ये शब्द हों, तो इनकी सर्वनामसंज्ञा विकल्प करके हो न्यूना जिल्ला पर आठम क्र

नेम शब्द का सर्वादिगण में पाठ होने से प्राप्तविभाषा है। प्रथमादिकों की सर्व-नाम संज्ञा में अपूर्वविधान विकल्प है। इसिलये जिस एक् में सर्वनामसंज्ञा होती है, वहां सर्व शब्द के समान जस् विभक्ति के स्थान में शी आदेश हो जाता। और जहां सर्वनाम संज्ञा नहीं होती, वहां पुरुष शब्द के तुल्य प्रयोग जस् विभक्ति में भी होते हैं। जैसे—

प्रथमे; प्रथमा: । चरमे; चरमा: । तयप्प्रत्ययान्त—द्वितये; द्वितया: । त्रितये; त्रितया: । त्रितये; त्रितय

सम अरे सिम शब्दों के कुछ विशेष प्रयोग नहीं, किन्तु सर्व शब्द के समान ही हैं॥

५७८-पूर्वपरावरदाचिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञा-

याम् ॥ १७४ ॥ अ॰ १ । १ । ३४ ॥

जस् विभक्ति के परे संज्ञाभिन्न व्यवस्था में पूर्व, पर, अवर, द्विण, उत्तर, अपर, अधर, ये शब्द हों, तो इनकी सर्वनामसंज्ञा विकल्प करके हो, और अन्यत्र तो नित्य ही हो जावे।

जैसे—पूर्वेषाम् । प्रथमादि शब्दों के समान इनके भी रूप होते हैं । जैसे— पूर्वे; पूर्वा: । परे; परा: । अवरे; अवरा: । दिल्लाणे; दिल्लाणाः । उत्तरे; उत्तराः । अपरे; अपरा: । अपरे; अपरा: । अपरे; अधरा: । अपरे खंशा और व्यवस्था अर्थ धंगा, वहां तो पूर्वादिकों की सर्वनामसंज्ञा ही न होगी और 'पुरुष' शब्द के समान प्रयोग होंगे ॥

४७६-स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ॥ १७४ ॥ अ० १ । १ । ३४ ॥

जस् विभक्ति परे हो, तो ज्ञाति अर्थात् बन्धु और धन के पर्यायवाची स्व शब्द को छोड़ के अन्य अर्थों में इसकी सर्वनामसंज्ञा विकल्प करके हो।

स्वे पुत्रा:, खा: पुत्रा:। स्वे पितर:, खा: पितर:। इसके अन्य सब प्रयोग 'सर्व' शब्द के समान जानो। त्रोर जहां जाति त्रोर धन के वाची ख शब्द की सर्वनाम संज्ञा नहीं होती, वहां 'पुरुष' शब्द के समान प्रयोग हो जाते हैं॥

४८०-अन्तरम्बहिर्योगोपसंव्यानयोः ॥ १७६ ॥ अ० १ । १ । ३६ ॥ बिद्वर्योग जो कुछ अलग हो और उपसंव्यान जो मिला हो। बिद्वर्योग और उपसं-व्यान अर्थ में जस् विभक्ति परे हो, तो अन्तर् शब्द की सर्वनामसंद्या विकल्प फरके हो।

अन्तरे; अन्तरा वा गृहाः। अन्तरे; अन्तरा वा शाटकाः।

सर्वनामवाची पूर्वाद् नव शब्दों में जो विशेष है, सो लिखते हैं-

४८१-पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ॥ १७७ ॥ अ० ७ । १ । १६ ॥ पूर्वाद नव शब्दों से परे जो ङसि श्रोर ङि विभक्ति हों, तो उनके स्थान में

स्मात् और स्मिन् भादेश विकल्प करके हों।

जिस पद्म में उक्त आदेश नहीं होते वहां 'पुरुष' शब्द के समान रूप हो जाते हैं। जैसे—पूर्वस्मातः पूर्वात । पूर्विस्मनः पूर्वे । परस्मातः परात् । परिस्मनः परे । अवरस्मातः अवरात् । अवरस्मिनः अवरे । दिच्चणसातः दिच्चणात् । दिच्चणस्मिनः दिच्चणे । उत्तरसातः उत्तरात् । उत्तरसानः उत्तरे । अपरसातः अपरात् । अपरिसनः अपरे । अधरसातः अधरसातः अधरात् । अधरसानः अधरे । स्वस्मातः स्वात् । स्वस्मिनः स्वे । अन्तरसातः अन्तरात् । अन्तरसानः अन्तरात् । अन्तरसानः अन्तरात् ।

श्रव इसके श्रागे सर्वाद्यन्तर्गत त्यदादि शब्दों के भी प्रयोग तीनों लिङ्ग में दिखलाते हैं।

पुक्तिंग त्यद् शब्द--

'खदु+सु'-

४८२-त्यदादीनामः ॥ १७८॥ अ०७।२।१०२॥

जो सु आदि विभक्ति परे हों, तो त्यदादि शब्दों के अन्त को अकारादेश हो।
यहां दकार को अकार और दोनों अकारों को एकादेश होकर—'त्य+सु' इस
अवस्था में—

४८३—तदोः सः सावनन्त्ययोः ॥ १७६ ॥ ७ । २ । १०६ ॥ सु विभक्ति परे हो, तो त्यदादि शब्दों के स्रादि वा मध्य में जो तकार दकार है. उनको सकारादेश हो ।

जैसे-स्यः॥

त्यौ। त्ये। त्यम्। त्यौ। त्यान्। त्येन। त्याभ्याम्। त्यैः। त्यस्मै। त्याभ्याम्। त्येभ्यः। त्यस्मात्। त्याभ्याम्। त्येभ्यः। त्यस्य। त्ययोः। त्येषाम्। त्यस्मिन्। त्ययोः। त्येषु॥ नपुंसकितंग त्यद् शब्द—

'त्यद्+सु' यहां सु और श्रम् का लुक्' होने से श्रन्त्य तकार को सकारादेश नहीं होता—त्यत्; त्यद्। त्ये। त्यानि। फिर भी—त्यत्; त्यद्। त्ये। त्यानि। श्रागे 'सर्व' शब्द के समान जानो॥

स्त्रीलिंग त्यद् शब्द--

'स्यदु+सु' यहां विभक्तिविषय मानकर श्रकारादेश होके श्रकारान्त से टाप्

१. सु अम् का लुक् (स्वमोर्नेपुंसकात्॥ ७। १। २३) नामिक — ७२॥

२. अकारादेश — ( खदादीनामः ॥ ७ । २ । १०२ ) नामिक—१७८ ॥

३, अकारान्त से टाप्—( अजायतष्टाप् ॥ ४ । १ । ४ ) ॥

होजाता है - 'त्या+सु' पीछे त्रादि तंकार को सकार होकर-स्या। त्ये। त्याः। त्याम्। त्ये। त्याः। त्याम्। त्याभाम्। त्याभाम्। त्याभ्याम्। त्याभ्याम्। त्याभ्याम्। त्याभ्याम्। त्याभ्याम्। त्याभ्याम्। त्याभ्याः। त्याभ्याः।

पुल्लिङ्ग तद् शब्द-

सः । तौ । ते । तम् । तौ । तान् । तेन । ताभ्याम् । तैः । तस्मै । ताभ्याम् । तेभ्यः । तस्मात् । ताभ्याम् । तेभ्यः । तस्य । तयोः । तेषाम् । तस्मिन् । तयोः । तेषु ॥

नपुंसकतिङ्ग तद् शब्द--

तत्। तद्। ते। तानि। फिर भी—तत्। तद्। ते। तानि। आगे पुल्लिक के समान ॥ स्त्रीलिक तद् शब्द—

सा । ते । ताः । ताम् । ते । ताः । तया । ताभ्याम् । ताभिः । तस्यै । ताभ्याम् । ताभ्यः । तस्याः । तस्या

यहां तीनों लिङ्ग में 'त्यद्' शब्द के समान सूत्र लगते हैं। तथा 'यद्' शब्द में भी कुछ विशेष नहीं।

पुश्चिङ्ग यदु शब्द--

यः । यौ । ये । यम् । यौ । यान् । येन । याभ्याम् । यैः । यस्मै । याभ्याम् । येभ्यः । यस्मात् । याभ्याम् । येभ्यः । यस्य । ययोः । येषाम् । यस्मिन् । ययोः । येषु ॥

नपुंसकलिंग यदू शब्द--

यत्; यद् । ये । यानि । फिर भी—यत्; यद् । ये । यानि । श्रन्य प्रयोग पुत्तिक के समान जानने चाहियें ॥

स्त्रीलिंग यद् शब्द--

या । ये । या: । याम् । ये । या: । यया । याभ्याम् । याभि: । यस्यै । याभ्याम् । याभ्यः । यस्याः । याभ्याम् । याभ्यः । यस्याः । ययोः । यासाम् । यस्याम् । ययोः । यासु ॥

पुलिंखग एतद् शब्द--

'प्तद्+सु' यहां 'प्तद्' शब्द के मध्य तकार को सकारादेश होकर मूर्द्धन्य वकारादेश होजाता है- एव:। पतो। पते॥

४८४-द्वितीयाटीस्वेनः ॥ १८०॥ अ० २ । ४ । ४४ ॥ श्रन्वादेश विषय में द्वितीया, टा श्रीर श्रोस् विभक्ति परे हों, तो इदम् श्रीर पतत् शब्द को एन श्रादेश हो।

१, स्याट् का ज्ञागम—( सर्वनाम्नः स्याड्ठ्स्वश्च ॥ ७ । ३ । ११४ ) नामिक - १६३ ॥

२. तकार को सकार—( तदोः सः सावनन्त्रयोः ॥ ७ । २ । १०६ ) नामिक— १७६ ॥

'अन्वारेश' उसको कहते हैं कि जहां एक वाक्य में किसी शब्द को कहकर विषयान्तर प्रकाशित करने के लिये उसी शब्द को दूसरे वाक्य में कहें। जैसे—एतं बालं शिक्तामपीपठः, अथो एनं वेदमध्यापय। एनो एनान्। एतेन बालेन रात्रिरधीता, अथो एनेनाहर प्यधीतम्। एतयोर्बालयोः शोभनं शीलम्, अथो एनयोः कुशाआ मेथा। यहां तीनों जगह उत्तर उत्तर वाक्य में एनादेश हुआ है।

परन्तु केवल 'पतद्' शब्द के प्रयोगों में कुछ विशेष न होगा-

एतम् । एतौ । एतान् । एतेन । एताभ्याम् । एतैः । एतस्मै । एताभ्याम् । एतेभ्यः । एतस्मात् । एताभ्याम् । एतेभ्यः । एतस्य । एतयोः । एतेषाम् । एतस्मिन् । एतयोः । एतेषु ॥

नपुसकलिंग एतद् शब्द--

पतत्ः एतद् । एते । एतानि । फिर भी—एतत्ः एतद् । एते । एतानि । अन्य प्रयोग पूर्व के समान जानना ॥

स्त्रीलिंग एतद् शब्द--

प्वा । पते । पताः । पताम् । पते । पताः । पतया । पताभ्याम् । पताभाः । पतस्यै । पताभ्याम् । पताभ्यः । पतस्याः । पताभ्याम् । पताभ्यः । पतस्याः । पताभ्यः । पतास्यः । पता

पुर्श्विग इदम् शब्द-

'इदम्+सु'—

४८५-इदमो मः ॥ १८१ ॥ अ० ७। २। १०८ ॥

सु विभक्ति परे हो, तो इदम् शब्द के मकार को मकार ही आदेश हो, अर्थात् स्यदादिकों को जो अकारादेश कहा है, सो न हो।

४८६-इदोऽय् पुंसि ॥ १८२ ॥ अ० ७ । २ । १११ ॥

पुक्किक विषय में इदम् शब्द के इद् भाग को अय् आदेश हो। 'अय्+अम्+स्' हल्ङ्यादिलोप होकर—अयम्।।

'इदम्+ग्रो' यहां त्रकारादेश' होकर—'इद+ग्रो'—

४८७-दश्च ॥ १८३ ॥ अ० ७ । २ । १०९ ॥

विभक्ति के परे इदम् शब्द के दकार को मकारादेश हो।

'इम+ग्री' यहां पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होकर—इमौ। 'इम+जस्' 'सर्व' शब्द के समान—इमे। इमम्। इमौ। इमान्॥

'इद्म्+टा' यहां भी मकार को अकारादेश' और एकादेश होकर—

१. म्रकारादेश—( खदादीनामः ॥ ७ । २ । १०२ ) नामिक— १७८ ॥

२. प्कादेश-( अतो गुयो ॥ ६ । १ । ६७ ) ॥

.४८८-अनाप्यकः ॥ १८४ ॥ अ० ७ । २ । ११२ ॥

त्राप् अर्थात् टा और ओस् विमक्ति परे हो, तो ककारिमन्न इदम् शब्द के इद् भाग को अन आदेश हो।।

टा के स्थान में इन होकर - अनेन।

'ककारिमन्न' कहने का प्रयोजन यह है कि—'इमकेन' यहां अन आरेश न हो। अगले सूत्र में हल् प्रहण के होने से इस सूत्र करके अन आरेश अजादि विभक्तियों में होता है, सो तृतीयादि अजादि विभक्तियों में भी टा और ओस् के परे ही जानना चाहिये, अन्यत्र नहीं॥

'इद्+भ्याम्'—

४८६-इलि लोपः ॥ १८४॥ अ०७। २ । ११३॥ तृतीयादि हलादि विभक्ति परे हों, तो इदम शब्द के इद् भाग कालोप हो। 'अभ्याम्' अदन्त अङ्ग को दीर्घ' होकर—आभ्याम्॥

'अ+भिस्' यहां भी अदन्त शब्दों के समान भिस् विभक्ति को ऐस् आदेश प्राप्त है, इसिलये—

५६०-नेदमदसोरकोः ॥ १८६ ॥ अ ७ । १ । ११ ॥

जो ककारभिन्न इदम् अरि श्रद्स शब्द से परे भिस् विभक्ति हो, तो उसको ऐस् श्रादेश न हो।

फिर एकारादेश<sup>3</sup> होकर—एभि: । 'ककारिमन्न' इसलिये कहा है कि— इमकै: । त्रमुकै: ॥

श्रस्मै । श्राभ्याम् । एभ्यः । श्रस्मात् । श्राभ्याम् । एभ्यः । श्रस्य । 'इद्म्+श्रोस्' यहां भी पूर्वसूत्र से 'श्रन' श्रादेश होकर—श्रनयोः । एषाम् । श्रस्मिन् । श्रनयोः । एषु ॥

जब इदम् शब्द अन्वादेश में आता है, तब कुछ प्रयोग विशेष होते हैं—
४६१-इंदमोऽन्वादेशेऽशानुदात्तस्तृतीयादौ ॥ १८७॥
अ०२॥४॥३२॥

श्रन्वादेश विषय में तृतीयादि विभिक्त परे हों, तो इद्म् शब्द के स्थान में श्रनुदात्त श्रश श्रादेश हो।

अन्वादेश के भी रूप जैसे पूर्व लिख चुके वैसे ही होंगे, परन्तु खर में भेद होगा। जहां तृतीयादि हलादि विभक्तियों में इद्भाग का लोप होगा, वहां - आभ्याम्। अस्मै, ऐसा खर होगा। श्रीर जहां अन्वादेश में श्रश् श्रादेश होगा, वहां — श्राभ्याम्। श्रस्मै, ऐसा होगा॥

१. त्रदन्त ब्रङ्ग को दीर्घ-(सुपि च ॥ ७ । ३ । १०२ ) नामिक-- २ ॥

२. एकारादेश-( बहुवचने मत्त्येत् ॥ ७ । ३ । १०३ ) नामिक-३२ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

(द्वितीयाटौस्वेन: ॥ २।४।४४) इस उक्त (१८०) सूत्र से द्वितीया, टा, स्रोस् इन तीन विभक्तियों में जैसे 'एतत्' शब्द को उत्तर वाक्य में 'एन' स्रादेश स्रोर पूर्व वाक्य में एतत् शब्द का प्रयोग स्राता है, वैसे यहां भी पूर्व वाक्य में 'इदम्' शब्द का प्रयोग स्रोर उत्तर वाक्य में 'स्रश्' स्रादेश का प्रयोग किया जाता है ॥

नपुंसकालिंग इदम् शब्द-

इसमें इतना विशेष है कि इदम् के मकार को आ और सु विभक्ति को अम् होके—इदम्। इमे। इमानि। फिर भी—इदम्। इमे। इमानि। आगे पुलिङ्गके सदश प्रयोग होंगे॥

स्त्रीलिंग इदम् शब्द--

'इदम्+सु' यहां श्रकारादेश का निषेध होकर—

प्रहर-यः सौ ॥ १८८ ॥ अ० ७। २। ११०॥

सु विभक्ति परे हो, तो इदम् शब्द के दकार को यकारादेश होवे।

इयम्। त्रागे इसको श्रदन्त के होने से टाप् होकर 'कन्या 'शब्द के समान जानो । जैसे — इमे । इमाः । इमाम् । इमे । इमाः । 'इद+टा' श्रन श्रादेश होके — श्रनया । यहां भी 'भ्याम्' श्रादि तृतीयादि हलादि विभक्तियों में इद् भाग का लोप होजाता है — श्राभ्याम् । श्राभ्यः । श्राभ्याम् । श्राभ्यः । श्राभयः ।

पुल्लिङ अदस् शब्द--

'ग्रदस्+सु'—

प्रहर-अदस औं सुले। पश्च ॥ १८६ ॥ अ० ७ । २ । १०७ ॥ जो सु विमक्ति परे हो, तो श्रदस् शब्द के सकार को श्रो श्रादेश श्रोर सु विमक्ति का लोग हो जावे।

'श्रद्+श्रो' यहां द्कार को सकारादेश होकर — श्रसी ॥

'श्रदस्+श्री' यहां से श्रागे श्री श्रादि विभक्तियों में श्रकारादेश होकर 'श्रद' सर्वत्र रह जाता है। 'श्रद्+श्री'—

५६४-अदसोऽसेदीं दे। मः ॥ १६०॥ अ०८। २।८०॥ सकार भिन्न श्रदस् शब्द के दकार से परे श्रवर्श को उवर्श श्रादेश श्रीर उसके दकार को मकारादेश हो जावे।

'श्रमु+श्री' यहां पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होके — श्रमू ।।

- १. इद् को अन्—( अनाप्यकः ॥ ७। २। ११२) नामिक १८४॥
- २. इद् भाग का लोप (हिल लोपः ॥ ७।२। ११३) नामिक १८४॥
- ३. दकार को स्—(तदोः सः सावनन्त्ययोः।। ७।२।१०६) नामिक—१७६।!
- ४. अकारादेश ( त्यदादीनामः ॥ ७ । २ । १०२ ) नामिक— १७८ ॥

'श्रद्+जस्' यहां 'सर्व' शब्द के समान श्रदन्त सर्वनाम से परे जस् को शी श्रीर पूर्व पर के स्थान में गुण एकादेश होकर—'श्रदे' यहां—

४६४-एत ईइ.हुवचने ॥ १९१ ॥ अ० ८ । २ । ८१ ॥

श्रदस् शब्द् के दकार से परे जो एकार उसको ईकारादेश श्रीर दकार को मकारादेश हो, बहुवचन में।

अमी॥

'श्रमु+श्रम्'=श्रमु । श्रमू । श्रमून । श्रमुना । श्रमूभ्याम् । 'श्रदस्+भिस' यहां भिस् को ऐस् का निषेध, एकार को बहुवचन में ईकार श्रीर दकार को मकारादेश होकर—श्रमीभि: ॥

श्रमुषो । श्रम्भयाम् । श्रमीभ्यः । श्रमुष्मात् । श्रम्भयाम् । श्रमीभ्यः । श्रमुष्य । श्रमुषोः । श्रमोषाम् । श्रमुष्मन् । श्रमुषोः । श्रमीषु ॥

नपुंसकीलङ्ग अदस् शब्द-

'श्रदस् +सु' यहां सु श्रोर श्रम् का लुक् सकार को रुत्व श्रीर रुको विसर्जनीय होके—श्रदः। 'श्रमु+श्रो'=श्रम् । श्रम्नि । फिर भी—श्रदः। श्रम् । श्रम्नि । श्रागे पुलिङ्ग के समान जानो ॥

स्त्रीलिङ अदस् शब्द—

'श्रद्स्+सु' पूर्ववत् — असौ। 'श्रदा+श्रौ' इस अवस्था में वृद्धि एकादेश, दकार से परे श्रोकार को दीर्घ ऊकार श्रोर दकार को मकारादेश होकर — असू। असूः। श्रमूम्। श्रमू । श्रमूः। 'श्रदा+टा' यहां श्राकार को एकार श्रौर उसको श्रय् श्रादेश होकर — 'श्रद्या' इस श्रवस्था में दकार से परे श्रकार को उकार श्रौर दकार को मकारादेश होकर — श्रमुया। श्रमूभ्याम्। श्रमूभ्याम्।

सर्वनाम पुर्ल्लिग एक शब्द-

एक:।एको।एके।एकम्।एकौ।एकान्।एकेन।एकाभ्याम्।एकै:।एकस्मै। एकाभ्याम्।एकेभ्य:।एकस्मात्।एकाभ्याम्।एकेभ्य:।एकस्य।एकयो:।एकेषाम्। एकस्मिन्।एकयो:।एकेषु॥

न्पुंसकिक में — एकम्। एके। एकानि। फिर भी-एकम्। एके। एकानि। आगें पुलिक के समान॥

- १. भिस् को ऐस् का निपेध (नेदमदसोरकोः ॥ ७।१।११) नामिक १८६॥
- २. सु ग्रीर ग्रम् का लुक् (स्वमोर्नपु'सकात्।। ७ । १ । २३ ) नामिक ७२ ।।
- इ. स को रु—( ससजुपो रुः ॥ ८। २। ६६) नामिक—१६॥

स्त्रीलिंग एक शब्द—

'सर्वा' शब्द के समान । जैसे एका । एके । एका: । एकाम् । एके । एकाः । एकया । एकाम्याम् । एकाम्याम् । एकाम्याम् । एकाम्याम् । एकाम्याम् । एकाम्याम् । एकाम्याः । एकयोः । एकासाम् । एकस्याम् । एकयोः । एकासाम् । एकस्याम् । एकयोः । एकासाम् ।

पुल्लिंग संख्यावाची द्वि शब्द-

इस शब्द के नियत द्विवचनान्त ही प्रयोग किये जाते हैं। 'द्वि+ग्रौ' त्यदादिकों में होने से ग्रकारादेश होकर वृद्धि एकादेश हो जाता है—द्वौ। द्वौ। 'द्वि+भ्याम्' ग्रकारादेश ग्रौर दीर्घ होकर—द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वयो:। द्वयो:॥

नपुंसक ऋौर स्त्रीलिङ्ग में प्रथमा ऋौर द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में —द्वे। द्वे ऐसे प्रयोग होंगे। ऋगो पुल्लिङ्ग के तुल्य जानो॥

सर्वनामवाची युष्मद् और अस्मद् शब्द-

इन दोनों शब्दों के तीनों लिङ्ग और सातों विभक्तियों में एक प्रकार के प्रयोग होते हैं। इसलिये इनके प्रयोग साथ २ ही लिखते हैं—

'युषाद्+सु । श्रसाद्+सु'—

४६६-मपर्यन्तस्य ॥ १६२ ॥ अ० ७ । २ । ६१ ॥

यह अधिकारसूत्र है । यहां से आगे युष्मद् और अस्मद् शब्द को जो आदेश कहें, वे मपर्यन्त को हों ।

४६७-त्वाही सौ॥ १६३॥ अ०७। २। ६४॥

जो सु विभक्ति परे हो, तो युष्मद् श्रस्मद् शब्दों के मपर्यन्त के स्थान में क्रम से त्व श्रीर श्रह श्रादेश हों।

युष्म्, श्रस्म् को श्रादेश होकर—'त्व+श्रद्+सु । श्रह+श्रद्+सु' । ५६८-दोषे लोपः ॥ १६४ ॥ अ० ७ । २ । ६० ॥ शेष श्रर्थात् श्रादेश होकर जो श्रद् भाग बचा है, उसका लोप हो । जैसे—'त्व+सु । श्रह+सु' ।

४६६-के प्रथमयोर्म् ॥ १६४ ॥ अ० ७ । १ । २८ ॥

जो युष्मद् श्रस्मद् शब्दों से परे के श्रौर प्रथमा, द्वितीया विभक्ति हों, तो इनके स्थान में श्रम् श्रादेश हो ।

जैसे—'त्व+अम् । अह+अम्'। पूर्वरूप एकादेश होकर—त्वम् । अहम् ॥

'युषाद्+श्रौ। श्रस्मद्+श्रौ'—

६००-युवावी द्विचने ॥ १६६ ॥ अ० ७ । २ । ६२ ॥

द्विवचन विभक्तियों के परे युष्मद् श्रस्मद् शब्दों के मपर्यन्त के स्थान में क्रम से युव, श्राव श्रादेश हों। 'युव+अद्+श्रो । त्राव+अद्+श्रो'। अद् भाग का लोप होके—'युव+श्रो। आव+श्रो'।

६०१-प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ॥ १६७॥ अ००॥ २। ८८॥ जो भाषा अर्थात् लौकिक प्रयोगविषय में प्रथमा विभक्ति का द्विवचन परे हो, तो युष्मद् श्रस्मद् शब्द को श्राकारादेश हो।

जैसे- युवाम्। श्रावाम्। 'भाषा' के कहने से वेद में श्राकारादेश नहीं होता-युवाम्। श्रावाम्, ऐसे ही प्रयोग होते हैं॥

'युष्मद्+जस्। अस्मद्+जस'—

६०२-युयवयी जासि ॥ १६८ ॥ अ० ७ । २ । ६३ ॥

जो जल् विभक्ति परे हो, तो युष्मद् श्रस्मद् शब्दों के मपर्य्यन्त के स्थान में क्रम से यूय, वय त्रादेश हों।

शेष अद् भाग का लोप और जस् को अम् आदेश होकर — यूयम् । वयम् ।। 'युष्मद्+अम् । अस्मद्+अम्'—

६०३-त्वमावेकवचने ॥ १६६ ॥ अ० ७। २। ६७॥

एकवचन विभक्तियों में युष्पद् श्रस्मद् शब्द के मपर्यन्त के स्थान में क्रम से त्व, म श्रादेश हों।

'त्व+श्रद्+श्रम् । म+श्रद्+श्रम्'---

६०४-द्वितीयायां च ॥ २०० ॥ अ० ७ । २ । ८७ ॥

द्वितीया विभक्ति के परे युष्मद् अस्मद् शब्दों को आकारादेश हो।

अन्त्य दकार को आकार और दोनों को सवर्णदीर्घ एकाईश होकर— त्वाम्। माम्॥

'युष्मद्+श्रो। अस्मद्+श्रो' यहां मपर्यन्त को युव आव, दकार को आकार, श्रो के स्थान में श्रम् श्रोर पूर्वसवर्षदीर्घ एकादेश होकर—युवाम्। आवाम्।

'युष्मद्+शस् । अस्मद्+शस्' यहां भी दकार को आकार और सवर्णदीर्घ एकादेश होके—

६०५-कासो न ॥ २०१ ॥ अ० ७ । १ । २६ ॥ युष्मद् श्रस्मद् शब्द से परे जो शस्, उस सकार को नकारादेश हो। जैसे—युष्मान् । श्रस्मान् ॥

'युष्मद्+टा! श्रस्मद्+टा' यहां एकवचन में युष्मद् श्रस्मद् के मपर्यन्त को त्य, म श्रादेश हो के—'त्व+श्रद्+टा। म+श्रद्+टा'।

१. जसु को ग्रम् ग्रादेश - ( के प्रथमयोरम् ॥ ७ । १ । २८ ) नामिक-१६५ ॥

२. [ यहां ( ग्रादेः परस्य ॥ १ । १ । १३ ) इससे शस् के ग्रकार के स्थान पर नकारादेश होकर (संयोगान्तस्य लोपः ॥ ८ । २३ ) से सकार का लोप होता है ॥ ] ६०६-योऽचि ॥ २०२ ॥ ७ । १। ८६ ॥

त्रनारेश त्रर्थात् जिसकों कोई त्रादेश न हुत्रा हो, वह त्रजादि विभक्ति परे हो, तो युष्मद् अस्मद् शब्द को यकारादेश हो।

अन्त्य दकार को य् और अकार को पूर्वसवर्ण एकादेश होकर —त्वया। मया।।

द्विवचन मॅ—'युव+त्रद्+भ्याम् । त्राव+त्रद्+भ्याम्' यहां—

६०७-युष्मदस्मदोरनादेशे ॥ २०३ ॥ अ० ७ । २ । ८६ ॥ जिसको कोई आदेश न हुआ हो वह हलादि विभक्ति परे हो, तो युष्मद् अस्मद्

शब्द को आकारादेश हो।

द्कार को आकार और दीर्घएकादेश होके —युवाभ्याम्। आवाभ्याम्। युष्माभिः। श्रस्माभि:॥

'युषाद्+ङे। श्रस्मद्+ङे'—

६०८-तुभ्यमस्यो ङिय ॥ २०४ ॥ ऋ० ७। २। ६५ ॥

के विभक्ति परे हो, तो युष्मद् अस्मद् शब्द के मपर्यन्त को तुभ्य अौर महा त्रादेश कम से हों।

विभक्ति को अम् अदेश और अद्भाग का लोप होके - तुभ्यम्। महाम्॥

युवाभ्याम् । त्रावाभ्याम् । 'युष्मद्+भ्यस् । त्रस्मद्+भ्यस्'—

६०६-भ्यसोऽभ्यम् !। २०५ ॥ अ० ७ । १ । ३० ॥

युष्मद् अस्मद् शब्दों से परे भ्यस् विभक्ति को अभ्यम् आदेश हो। अद्भाग का लोप होकर —युष्पभ्यम् । अस्मभ्यम् ॥

'युष्मद्+ङसि । त्रस्मद्+ङसि' यहां एकवचन में मपर्य्यन्त को त्व, म त्रादेश श्रीर श्रदुभाग का लोप होकर—

६१०-एकवचनस्य च ॥ २०६॥ अ० ७। १। ३२॥

जो युष्मद् अस्मद् से परे पश्चमी विभक्ति का एकवचन हो, तो उसको अत् आदेश हो।

'त्व+श्रत्। म+श्रत्'। पररूप गुग्र्<sup>र</sup> एकादेश होकर—त्वत्। मृत्॥

युवाभ्याम् । त्रावाभ्याम् । 'युष्मद्+भ्यस् । त्रसाद्+भ्यस्' यहां त्राद्भाग का लोप होके-

६११-पश्चम्या अत् ॥ २०७ ॥ अ० ७ । १ । ३१ ॥

जो युष्मद् ग्रस्मद् शब्द से परे पश्चमी विभक्ति का भ्यस् हो, तो उसको अत् आदेश हो।

परकंप पकादेश होके - युष्मत्। श्रस्मत्॥

१. विसक्ति को श्रम्—( के प्रथमयोरम् ॥ ७ । १ । २८ ) नामिक—१६५ ॥

२.. पररूपगुर्य-( श्रतो गुर्यो ॥ ६ । १ । ६७ ) ॥

'युष्मद्+ङस्। ग्रस्मद्+ङस्'—

६१२-तवममें। ङिस्।। २०८॥ अ०७।२। ६६॥

ङस् विभक्ति के परे युष्मद् अस्मद् शब्द के मपर्यन्त को तव और मम आदेश हों। यहां भी अद्भाग का लोप होकर - 'तव+ङस्। मम+ङस्'।

६१३-युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽञ् ॥ २०६॥ अ००॥१॥ २०॥ जो युष्मद् अस्मद् शब्दों से परे ङस् विभक्ति हो, तो उसको अश् आदेश होवे। अश् आदेश में 'शकार' इसिलिये हैं कि ङस्मात्र के स्थान में अकार होजावे। पररूप एकादेश होके—तव। मम॥

'युष्मद्+श्रोस् । श्रस्मद्+श्रोस्' यहां भी द्विवचन में मपर्यन्त को युव श्राव, श्रौर दकार को यकारादेश होकर—युवयो: । श्रावयो: ॥

'युष्मद्+न्राम् । त्रस्मद्+न्राम्' यहां सर्वनामसंज्ञा के होने से सुट्र त्रौर त्र्रद्भाग का लोप होकर—

६१४-साम आकम् ॥ २१० ॥ अ० ७ । १ । ३३ ॥

जो युष्मद् श्रस्मद् शब्दों से परे सुट्सहित पष्टी का वहुवचन श्राम् विभक्ति हो, तो उसको श्राकम् श्रादेश हो।

फिर एकादेश होकर-युष्माकम् । अस्माकम् ॥

'युष्मद्+ि । अस्मद्+ि 'यहां भी एकवचन में मपर्थन्त को त्व, म और दकार को यकारादेश होके—त्विय । मिष् । युवयोः । आवयोः । 'युष्मद्+सु । अस्मद्+सु' यहां दकार को आकार अश्वेश होके—युष्मासु । अस्मासु ॥

त्रव इन दो शब्दों में विशेष इतना है कि— ६१४-युदमदस्मदेश षष्टीचतुर्थी दितीयास्थयोविशावी ॥ २११॥ स्र०८। १। २०॥

षष्ठी, चतुर्थी श्रोर द्वितीया विभक्ति के साथ वर्त्तमान, पद से परे जो युष्मद् श्रस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में क्रम से वाम् श्रोर नी श्रादेश हों, श्रोर वे श्रागे कहें नियमानुसार श्रनुदात्त भी होजावें।

यहां वाम् श्रौर नौ द्विवचन युष्मद् श्रस्मद् के स्थान में समक्षे जाते हैं। जैसे—षष्टी द्विवचन—'युष्मद्+श्रोस्। श्रस्मद्+श्रोस् = श्रामो वां स्वम्, जनपदो नौ स्वम्। यहां—युवयोः, श्रावयोः ऐसा प्राप्त था। चतुर्थीस्थ—ग्रामो वां दीयते, जनपदो नौ दीयते। यहां—युवाभ्याम्, श्रावाभ्याम् प्राप्त हैं। द्वितीयास्थ—माण्वको वां पश्यित, माण्वको नौ पश्यित। यहां—युवाम्, श्रावाम् प्राप्त हैं।

१, द को य— (योऽचि॥ ७।१। ८१) नामिक—२०२॥

२. सुट्—( ग्रामि सर्वनाम्नः सुट् ॥ ७ । १ । १२ ) नामिक—१६८ ॥

३, द को ब्रा—( युष्मदस्मदोरनादेशे ॥ ७ । २ । ८६ ) नामिक—२०३ ॥

इस सूत्र में 'स्थ' ग्रहण इसिलये है कि—हृष्टो मया युष्मत्पुत्रः, यहां समास में षष्टी का लुक् होने से आदेश और अनुदात्त भी नहीं हुआ ॥

६१६-बहुवचनस्य वस्नसौ ॥ २१२ ॥ अ० ८ । १ । २१ ॥

जो षष्टी, चतुर्थी त्रौर द्वितीया विभक्ति के साथ वर्त्तमान, पद से परे बहुवचनान्त

युष्मदु अस्मदु पद हों, तो उनके स्थान में क्रम से वस् और नस् आदेश हों।

जैसे—षष्टीस्थ—विद्या वो धनम्, राज्यं नो धनम्। यहां - युष्माकम् अस्माकम् ऐसा प्राप्त था। चतुर्थीस्थ—नमो वः पितरः, शन्नो भवतु। यहां—युष्मभ्यम्, अस्मभ्यम् पाता है। द्वितीयास्थ—वालो वः पश्यति मा नो वधीः। यहां — युष्मान्, अस्मान् प्राप्त था।।

६१७-तेमयावेकवचनस्य ॥ २१३ ॥ अ० ८ । १ । २२ ॥

जो पष्टी श्रौर चतुर्थी विभक्ति के साथ वर्त्तमान, पद से परे श्रपादादि में एक

वचनान्त युष्मदु अस्मदु पद हों, तो उनके स्थान में क्रम से ते, मे आदेश हों।

जैसे — [षष्ठीस्थ — विद्या ते धनम् . राज्यं मे धनम् । यहां तव ग्रोर मम पाता है । चतुर्थीस्थ — ] नि मे धेहि, नि ते दधे । यहां — तुभ्यम्, महाम् ऐसा प्राप्त है, इत्यादि ॥

६१८-त्वामी ब्रितीयायाः॥ २१४॥ अ० ८। १। २३॥

जो पद से परे एकवचन द्वितीयान्त युष्मद् ग्रस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में क्रम से त्वा मा ये अनुदात्त त्रादेश हों।

जैसे - कस्त्वा युनक्ति । पुनन्तु मा देवजनाः, इत्यादि । यहां - त्वाम्, माम् प्राप्त हैं ॥

६१६-न चवाहाहैवयुक्ते ॥ २१५ ॥ अ० ८ । १ । २४ ॥

जो युष्मद् अस्मद् को च, वा, ह, अह, एव इनका योग हो, तो उनके स्थान में वाम्, नौ आदि आदेश न हों।

जैसे—ग्रामो युवयोश्च स्वम् । ग्राम त्रावयोश्च स्वम्, इत्यादि ॥

६२०-पर्यार्थेश्चानालोचने ॥ २१६ ॥ अ० ८ । १ । २५ ॥

जो पश्यार्थ धातुत्रों के अनालोचन अर्थ में वत्तमान युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में वां नौ आदि आदेश न हों।

जैसे — प्रामस्तवां संप्रेच्य संदृश्य समीच्य [वा] गतः। प्रामस्तव संप्रेच्य गतः। प्रामो मम संप्रेच्य गतः, इत्यादि ॥

६२१-सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा ॥ २१७ ॥ अ० ८ । १ । २६ ॥ प्रथमान्त पद जिससे पूर्व हो ऐसे युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में वां नौ आदि आदेश विकल्प करके हों।

जैसे—श्रथो प्रामे कम्बलो मे खम्। श्रथो ग्रामे कम्बलो मम खम्। श्रथो जनपदे कम्बलस्त खम्। श्रथो जनपदे कम्बलस्तव खम्, इत्यादि ॥

६२२-वा०-युष्मदस्मदोरन्यतरस्यामनन्वादेशे ॥ २१८॥८।१।२६॥ जहां अनन्वादेश अर्थात् किसी वाक्य के पीछे उसी का निर्देश करना न हो, ऐसे अर्थ

में वर्तमान जो युष्मद् ग्रह्मद् पद हों, तो उनके स्थान में वाम्, नौ ग्रादेश विकल्प करके हों। जैसे — प्रामं कम्बलो वां सम्। ग्रामे कम्बलो युवयो: स्वम्। प्रामे कम्बलो नौ स्वम्। श्रामे कम्बल ग्रावयो: स्वम्॥

६२३-वा०-अपर आह-सर्व एव वान्नावादयो उनन्वादेशे विभाषा वक्तव्याः ॥ २१६ ॥ ८ । १ । २६ ॥

इस विषय में किन्हीं लोगों का ऐसा मत है कि अनन्वादेश में सब वां, नौ आदि आदेश विकल्प करके हों।

जैसे—कम्बलस्ते सम्। कम्बलस्तव सम्। कम्बलो मे सम्। कम्बलो मम सम्॥ भवत् शब्द सर्वादिगण् में पढ़ा है, इसकी सर्वनाम संज्ञा होने का प्रयोजन यह है कि—अकच्छेषात्वानि। अकच्—भवकान्। शेष—स च भवांश्च भवन्ती। आत्व—भवादशः॥ पुलिंजग अवत् शब्द—

'भवत्+सु'यहां सर्वनामस्थानसंज्ञा होने से नुम्', सु के परे दीर्घ', हल् से परे सकार का लोप अगर संयोगान्तलोप होकर — भवान् । भवन्तो । भवन्तो । भवन्तो । भवन्तो । भवतः । भवतः । भवदः । भवतः । भवदः । भवतः । भवताः । भवतः । भवतः । भवतः । भवताः । भवताः । भवताः । भवताः । भवताः । भवताः । भवतः । भवताः । भवताः । भवताः । भवतः । भवतः । भवतः । भवतः । भवताः । भवतः । । भवतः । भवतः । भवतः । भवतः । भवतः । भवतः । । भवत

कीर्लिंग में ईकारान्त होके—भवती। भवत्यो। भवत्यः, इत्यादि स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त 'कुमारी' शब्द के समान जानो॥

सर्वनाम पुल्लिंग किम् श्बद-

'किम्+सु'—

६२४-क्तिमः कः ॥ २२० ॥ अ० ७ । २ । १०३ ॥
सव विभक्तियों में किम् शब्द को क आरेश हो ।
अन्य कार्य (सर्व) शब्द के समान—कः । को । के । कम् । को । कान् । केन ।
काभ्याम् । कैः । कस्मै । काभ्याम् । केभ्य । कस्मात् । काभ्याम् । केभ्यः । कस्य । कयोः ।
केषाम् । कस्मिन् । कथोः । केषु ॥

नपुंसक्रलिंग में—िकम्। के। कानि। फिर भी—िकम्। के। कानि। आगे पुक्तिङ्ग के समान।।

क्षीलिंग में—का। के। काः। काम्। के। काः। कया। काभ्याम्। काभिः। कस्यै। काभ्याम्। काभ्यः। कस्यै। काभ्याम्। काभ्यः। कस्योः। कासाम्। कस्याम्। कयोः। कासाम्। कस्याम्। कयोः। कासु॥ —शब्दों का क्रपविषय पूरा हुन्ना॥

१. नुम्—( उगिद्वां सर्वनामस्थाने ८ धातोः ॥ ७ । १ । ७० ) नामिक—११३ ॥

२. सु के परे दीर्घ-( श्रत्वसंतस्य चाधातोः ॥ ६ । ४ । १४ ) नामिक-१२२:॥

३. हल् से परे सलोप—( हल्ङ्या० ।। ६ । १ । ६८ ) नामिक - ४० ।।

४. संयोगान्त कोप-( सयोगान्तस्य कोपः ॥ ६ । २३ ) नामिक-११२ ॥

त्रव वे नियम लिखते है कि जो वेदों में पुरुष त्रादि सब शब्दमात्र में घटेंगे-दरभ-सुपां सुलक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड यायाजालः ॥ २२१॥ अ० ७ । १ । ३६॥

६२६ चा० सुपां च सुपा भवन्तीति वक्त व्यम् ॥ २२२ ॥ सूत्र ग्रीर वार्तिक का अर्थ इकट्टा ही किया जाता है। वैदिक प्रयोग विषय में सुप् अर्थात् सु आदि इक्षीस प्रत्यय कि जिनको सात विभक्ति कहते हैं, उनके स्थान में सुप् अर्थात् किसी के स्थान में कोई प्रत्यय का आदेश, जुक्, पूर्वसवर्ण, आत्, शे, या, डा, ड्या, याच् आल् ये आदेश होजाते हैं।

सुप् न्यू जवः सुपन्थाः, यहां बहुवचन जस् के स्थान में एकवचन सु आदेश हुआ है। पन्थानः, ऐसा प्राप्त था। युक्ता मातासी दुरि दिल्लायाः, यहां सप्तमी एकवचन के स्थान में पष्ठी का एकवचन होजाता है। दिल्लायाम्, ऐसा पाता था।

जुक् परमे व्योमन्, यहां सप्तमी के एकवचन का जुक् होगया है। व्योम्नि, ऐसा प्राप्त है। सोमो <u>गौरी</u> श्रिधिश्रतः; मामकी तन् इति, यहां सप्तमी के एकवचन का जुक् हुआ है। सोमो गौर्याम्, मामक्याम् तन्वाम्, ऐसा प्राप्त था।

पूर्वसवर्ष — धीती; मती, यहां तृतीया के एकवचन को पूर्वसवर्ष आदेश हुआ है। धीत्या; मत्या, ऐसा प्राप्त था। आत् — उमा यन्तारा, यहां प्रथमा वा द्वितीया के द्विवचन के स्थान में उमो यन्तारों, ऐसा पाता था।

शे—युष्मे वाजवन्धवः, यहां वहुवचन जस् के स्थान में — यूयं वाजवन्धवः, ऐसा प्राप्त था। या — उरुया, यहां तृतीया के एकवचन टा के स्थान में — उरुणा, ऐसा प्राप्त था। डा — नामा पृथिव्याम्, यहां सप्तमी के एकवचन के स्थान में डा होगया है। नामो पृथिव्याम्, ऐसा प्राप्त था।

ड्या—ग्रजुएचा, यहां तृतीया के एकवचन के स्थान में ड्या होगया है। ग्रजुएुमा, ऐसा पाता था। याच् —साधुया। यहां प्रथमा के एकवचन को याच् हुग्रा है। साधु, ऐसा होना था। ग्राल् — वसन्ता यजेत, यहां सप्तमी के एकवचन को त्राल् ग्रादेश हो गया है। वसन्ते, ऐसा होना था॥

६२७-वा॰-इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम् ॥२२३॥ ७।१।३६॥

सुपों के स्थान में इया, डियाच, ईकार ये तीन आदेश हों।

इया - दाविया परिज्मम्, यहां तृतीया के प्रकवचन को इया होगया है। दारुणा, ऐसा पाता था। डियाच् — सुमित्रिया न आप श्रोषधयः सन्तुः सुद्धेत्रियाः सुगात्रिया, यहां भी सुमित्राः, श्रोर सुद्धेत्रिणा, सुगात्रिणा, ऐसा प्राप्त था। ईकार — हति न शुक्तं सरसी श्यानम् यहां सप्तमी के एकवचन को ईकार होगया है। सरसि श्यानम्, ऐसा होना था॥ ६२८-आङ्याजयारां चापसंख्यानम् ॥ २२४ ॥ ७ । १ । ३६ ॥ आङ्, श्रयाच्, श्रयार् ये भी तीन सुपों के स्थान में श्रादेश हों।

आङ्—प्र बाह्वा, यहां तृतीया के एकवचन को आङ् आदेश हुआ है। प्र बाहुना, ऐसा प्राप्त था। अयाच्—स्वप्तया वाव सेचनम्, यहां भी तृतीया के स्थान में अयाच् हुआ है। स्वप्नेन, ऐसा प्राप्त था। अयार्—स नः सिन्धुमिव नावया, यहां भी तृतीया के एकवचन को अयार् हुआ है। नावा, ऐसा प्राप्त है।।

#### अव लिङ्गानुदाासनविषयक प्रत्ययों का संकेत करते हैं—

श्रष्टाध्यायी श्रीर उणादिस्थ प्रत्ययों का परिगणन कि जिनके तीनों लिंगों में प्रयोग होते हैं—तव्यत्, तव्य, श्रनीयर, केलिमर, यत्, क्यप्, एयत्, एयुल्, तृच्, ल्यु, णिनि, श्रच्, क, श्र, क, खुन्, थकन्, एयुर्, बुन्, श्रण्, क, टक्, श्रच्, ट, इन, खश्, खच्, श्रण्, ड, णिनि, टक्, ख्युन्, खिक्णुच्, खुकञ्, किन्, कञ्, किप्, णिव, व्युट्, विट्, कप्, णिवन्, विच्, मिनन्, विनिप्, विनिप्, किप्, णिनि, क्विप्, इन्ति, क्विनिप्, डा, ङ्विनिप्, श्रतन्, निष्ठा, कवाच्, क्वसु, श्रत्, श्रानच्, श्रानन्, चानश्, श्रतः, तृन्, इन्णुच्, क्वु, क्वु, घितुण्, बुञ्, युत्त, उकञ्, षाकन्, इनि, श्रालुच्, रु, कारच्, घुरच्, कुरच्, क्वरप्, उक्त, र, उ, कि, किन्, निजङ्, श्रारु, कु, क्लुकन्, क्कन्, वरच्, क्विप्, प्रम्, इत्र, क्त, एवुल्, श्रण्, खल्, यच् इतने कृतप्रत्ययान्त शब्द श्रीर तिवतं सब तीनों लिंगों में श्राते हैं॥

नियत पुर्लित प्रत्यय—घञ्, अच्, अप्, अच् प्रत्ययान्तों में भयादि शब्दों को छोड़कर, अथुच्, नङ, नन्, कि, घ, ड, डर, इक्, इकवक्, घञादि प्रत्ययान्त शब्द कत्ताभिन्न सब कारक और भाव में नियत पुल्लिङ्ग ही आते हैं, परन्तु नङ्ग्रत्ययान्तों में याञ्चा शब्द को छोड़ के, क्योंकि यह केवल स्त्रीलिङ्ग में ही आता है ॥

नियत नपुंसकालिंग प्रत्यय—क्र, ल्युट् प्रत्यय कर्ताभिन्न कारक श्रीर भाव में ये सब नपुंसकालिङ्ग में ही श्राते हैं॥

नियत स्त्रीतिंग प्रत्यय — किन्, क्यप्, श्र, श्रङ्, युच्, इञ्, एवुच्, श्रनि, ये कर्त्ताभिन्न कारक श्रोर भाव में श्राते हैं। तथा टाप्, ङीप्, डाप्, डीष्, ऊङ्, ङीन्, ति, इतने प्रत्यान्त शब्द नियत स्त्रीलिङ्ग में श्राते हैं॥

श्रव श्रागे उणादिप्रत्ययान्त शब्द श्रीर लिङ्गानुशासन तथा श्रर्द्धचांित की लिङ्गव्यवस्थादि लौकिक, त्रैदिक प्रयोगों की व्यवस्था से जान लेना ॥

इति श्रीमद्यानन्दसरस्वतीस्वामिकृतव्याख्यासाहितो

नामिकः समाप्तः ॥

वसुकालांकचन्द्रेऽव्हे चैत्रमासि सिते दले। चतुर्दश्यां बुधे बारे नामिकः पूरितो मया ॥ १॥

# त्रथ नामिकान्तर्गतानां शब्दानां

## सूचीपत्रम्

प्राहट	gy	. शब्द	gg	शब्द	पृष्ठ
शब्द	20	श्रवयाज्	३्ट	उद्श्वित्	XE
श्रद्धि श्रद्धि	१६	श्रवर	. 88	उन्मुह्	XX
त्राप्त अप्र <b>णी</b>	२२	ग्रवी	् २४	<b>उपान</b> ह	४६
श्र <b>क्षि</b> श्रक्षिरस्	28	अश्मन्	88	उपेयिवस्	४२
त्राज्ञर <b>्</b> त्रजा	१६	अथु	. २६	उभ	Éo
श्रुतिरि	120	<b>अश्ववत्</b>	3,5	उभय	60
श्रथर्वन्	. ४१	श्रप्रम् .	४४	उशनस्	प्र
श्रदस्	६६	<b>श्रस्</b> ज्	. 1	<b>ৰি</b> হা	इष
श्रधर	६१	ग्रस्थि	. 20	डषस्	. ४३
अनुडुह्	४६	श्रस्मद्	६प	उष्णभोजिन्	88
अ <u>तुषु</u> भ्	थंड	अहन्	કંક	उध्गिज् 💮	₹0
<b>अनेहस्</b>	प्र	श्राज्यपा	<b>१</b> 8.	<b>ऊ</b> षिवस्	42
श्रन्तर	. दश	श्रात्मन्	११	ऋत्विज्	20
ग्रन्य	<b>ξ</b> 0	ञ्चापद	४०	ऋ भु चिन्	. ४६
श्रम्यतर	Ęo	त्रायुस्	×3	. एक	0.3
अपर	६१	त्राशिस्	ं प्रष्ठ	एकतर .	
अप	6.8	ग्रासन्	と	एतद्	६३
श्रप्सरस्	. ५३	आसुरी	. २४	एतादश्	X.
श्रमस्	£\$.	आस्य	¥=	एनस्	४३
<b>अ</b> रुस्	X3	इतर	, <b>ξ</b> 0	ककुम्	80
श्रचिस्	४३	इदम्		कतम	६०
अर्थ	8.8	ईंदश्	. Ko	कतर	Ęo
अर्ध	83	उखाम्नस्	. ४२	कतिपय	<b>६१</b>
अर्थमन्	88	उत्तर .	. हर	कनीयस्	प्र
श्रवीच् .	38	उत्स्नुह्	**	कन्या	र्ध
श्रालप	<b>68</b>	उदक्	大云	कप्	80
ब्रल्पीयस्	४२	उद्च्	8x	कमएडल्	श्य
THE PERSON NAMED IN COLUMN 2 I	The second second second	THE RESERVE TO SHARE THE PARTY OF THE PARTY			THE RESERVE OF THE PARTY OF THE

शब्द	gg	शब्द	पृष्ठ	शब्द	as
कर्ष	30	<b>प्राम</b> णी	२२	तिप्	थ७
कर्त्री	२४	ग्लो	३३	विस्	. 38
कर्मन्	85	घट	. ११	तुर्	४८
कर्ष्	रेष	घृतपावन्	80	तूर्	र्द
काम	११	<b>घृतस्निह्</b>	XX	तृपत्	38.
कारभू	२७	<b>घृतस्पृश्</b>	χo	त्यदु	६२
काष्ट्रभिद्	80	चतस्	38	त्यादृश्	Xo.
किम्	७३	चतुर्	४८	त्रपु	२६.
किशोरी	२४	चन्द्रमस्	yo	त्रि	88.
कीहश्	Xo	चसू	२८	त्रितय	<b>68</b> .
कीलालपा	१४	चरम	६१	त्रिष्टुभ्	८७
कुमारघातिन्	88	चर्मन्	. ४३	त्व	६०
कुमारी	२३	चिरण्टी	२४	त्वच्	. \$8
कृति ः	२१	छुदिस्	. 78	त्वध्	३०
कृष्ण	55	छाया	१६	त्विष्	. 78
कुर्वत्	3.5	<b>ज</b> तु	२६	.दिच्चिण	ं ६१
कुहु	२७	जनिमन्	Ro	द्रिडन्	- 88
कूपखा	- 68	जन्मन्	83	द्धि	२०
मुञ्	३६	- जरा	१६	द्धिका	१४
क्रोष्टु	२४	जल	१३	द्ध्यच्	इंड
क्लेदन्	80	जातवेदस्	५०	द्स्त	×0
चनृ	३०	जानु	२६	दर्	• २८
गच्छत्	38	जामातृ .	३०	दशन्	RX
गिर्	४८	जाया	१६	दिव्	38
गुग्गुलू	् २८	जूर्	क्षेत्र	दिश्	.Xo
गुडलिह्	XX	ज्योतिस्	४४	दुहित्	38
गुरु	२४	तच्चन्	र्व	<b>ह</b> न्भू	२७
गृह	१३	तदु	६३	हर्ग	Xo
गृह गो	३३	तनु	२७	ह्यद्	80
गोजा •	१४	तन्त्री	२४	दोष् .	· XE
गोदुह्	XX	तरी	२४	द्रविगोदस्	χo
गोमस्	3,6	तिस्थवस्	५२:	ब्रि	६द
गोषा	१४	तारश्	, Xo	द्वितय	46
प्रन्थ	११	ताबु	88	धन	15

TIPE	पृष्ठ	शब्द	वृष्ठ	शब्द	as a
शब्द		पपीवस्	. ५२	प्राच	38
धनवत्	38	पयस्	×3	प्राञ्च.	३६
धनिन्	प्रव	पर	६१	प्रावृष्	X8
धनुस्	४०	परमार्थ	88:	प्रियचतुर् 🦈	38
धरिमन्	१३	पुरमेश्बर	. 28	<b>प्लीह</b> न्	80
धर्म	अद	परिज्मन्	8 ह	बहिंसू	χą
भ्रुट् भूति	28.	परिभू	२७	बल	\$5
भृति भृति	28	परिवाज्	३७	बहुपूषन्	કર
घेडु	२६	परीग्रह	५६	बह्वर्यमन्	. ४१
ध्वांत्तराविन्	88	पर्राध्वस्	. ५२	वुद्धि	२१
नखिछुटु	80	पात्र	१३	<b>बृहत्</b>	38
नदी	રુક	. पाथस्	. X3	व्रह्मद्विष्	78.
ननान्ह	38.	पाद	ey.	व्रह्मन्	. 88
नप्तृ	30	पामन्	४३	त्रहाबन्धू	२८
नवन्	XS.	पितृ	२८	व्रह्मवादिन्	88
नामन्	४३	पुनर्भू	२७	व्राह्मग्री	. २४
नासिका	थ्र	पुरुदंशस्	४१	भवत्	9રૂ.
निशा	X	पुरुष	६	भसद्	So
न	३०	पुरोडाश्	3X	भस्मन्	88
नुचत्त्	48	पुरोधस्	प्रश	भावु	२४
नेम	६१.	पुर्	8=	<b>मु</b> रिज्	इ.७
नेषु •	- 3o	पूर्व	६१	भुर्	82
नोधस्	38	पूर्व पूषन्		भूमि	२१
नो ः	३३	पृषत्	35	भूयस्	. ५३:
न्याय	. 28.	पोत्र	३०	भूरिद्वन	.80
पचत्	38	प्रज़ा	. १६	भ्रातृ	30
पञ्चन्	४४	प्रतिदिवन्	. ४६	भ्रणहन्	88
पट	११	प्रतिपद्	४०	मघवन्	ે
पठत्	38	प्रत्यच्	ЯX	मजन	80
परिस्तमानिन्	. 88	प्रथम		मथिन् '	. ५६
पति	१८	प्रथमजा	१४.		इंड.
पथिन्	88	प्रथिमन्	89	मनस्	. X3
पपिषस्	43	प्रभु ।	२५		3.5
पपी	28	प्रशास्त	\$0	महत्	₽£.

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ	शब्द	वृष्ठ
महिमन्	80	रोहित्	36	विश्ववेदस्	20
मातरिश्वन्	<b>ध</b> र्	लच्मी	२४	वृत्त	११
मात्	. 38	नघट्	38	वृत्रहन	<b>४३</b>
माया	१६	<b>बि</b> ष्ट्र	X0	वृषन्	80
मास	. עש	लोमन्	४३ !	वेद	88
मित्रदुद्द	XX.	वचस्	Ex	वेदविदु	४०
मिप्	८७	विराज् .	३७	वेदि	र १
<b>मू</b> र्धन्	80	वधू	२८	वेधस्	. 48
मेघा	१६	वधूटी ं	२४	वेहत्	3.5
मोच	११	वन .	१३	व्यवहार	. ११
<b>म्रदिमन्</b>	80	वन्हि	१=	व्योमन्	४३
यकृत्	X드	वपुस्	४३	शक्त्	XE.
यजुस्	ξ×	वयोधस्	४१	शक्मन्	न्न
यञ्चनी	२२	वर्षाभू	२७	शत्रु	२४
यज्वन्	. 85	वस्तु	२६	शत्रुहन्	81
यद्	६३	वस्त्र	१३	शप्	80
ययी	२४	वाच्	३४	शरद्	80
यवभृज्	३७	वामोरू	२८	शरिमन्	80
यवमत्	3,5	वायु	२४	शर्मन्	४३
यवीयस्	<b>५</b> २	वारि	. 98	शस्त्र	१३
यातृ	28	वापि	२१	शिव	18
यादश्	Ko	विद्यावत्	38	शीर्षघातिन्	88
युज्	३७	विद्वस्	४१	ग्रच्	इंड
युवन्	४२	विपद्	80	ग्रुश्रुवस्	५२
युष्मद्	६८	विपुष्	४४	शोचिस्	इप्र
यूष्	X⊏	विभु	२४	रमश्रु	२६
যেন্ত্র	२७	विराज्	₹0	श्मश्रू	रद
रिव	१८	विश् 🗸	χο	श्री	२४
राजन्	80	विश्व	६०	श्रुति	28
<b>য</b> িব	२१	विश्वप्सन्		श्रेयस्	४२
रुष्	XX	विश्वमोजस्	X0	श्वन्	४२
रेख र्थे ।	२७	विश्वभाज्	ू इ७	<b>भ्वेतवाह</b>	रेट
\$ 125	३२	विश्वयशस्	<b>30</b>	षष् संश्चत्	8%
रोमन् "	83	विश्वराज्ञ	10	सम्बत्	38

		WIZZ	ââ	शब्द	पृष्ठ .
शब्द	पृष्ठ	शब्द	क्षत्र	स्थामन्	80
संहितोरू	२८	सीमन्		स्तेहन्	80
सक्थि	२०	सुत्रामन्	80	स्मृति	<b>२</b> १
स्रिख	१=	सुद्रामन्	80		इट
सदश्	- Xo	सुधर्मन्	કશ	स्रुच्	, ६१
सप्तन् .	88	सुधी	२२	ख	. ५३
सम	६१	सुधीवन्	80	स्रतवस्	<b>4</b> 3
सम्पद्	४०	सुपर्वन्	. ८१	स्ववस्	
सम्राज	. ঽ৩	सुव्	80	स्रस्	32
	३्ट	सुमनस्	प्रव	<b>सा</b> दु	२६
सरट्	३७	सुशर्मन्	. ८१	हरित्	३६
सरयु	२४	सेदिवस्	४२	<b>हर्त</b>	30
सरस्रती	४३	सेनानी	२१	हविस्	४३
सर्पिस्	38	सोमपा	23	हानि	. 28
सर्व	१३	सोमयाजिन्	88	हृद्य	- k=
सिंतिल .		स्तरी	<b>२</b> ४	होत	३०
साधुकारिन्	88		२४		
सामन्	४३	स्री	४४		
सिम	६१	स्थिगिडलशायिन्			

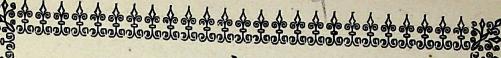


## वैदिक-पुस्तकालय में मिलनेवाली पुस्तकों की सूची

ऋग्वेदभाष्य ६ भाग      मूल्य	(११)	विवाहपद्धति	मृत्य ।।)
यज्ञवेदभाष्य सम्पूर्ण "	20)	शास्त्रार्थ फीरोजाबाद	1=)
श्चान्वेदादिभाष्यभूमिका	3)	शास्त्रार्थ काशी	-)11
,, केवल संस्कृत	111)	वेदविरुद्धमतखएडन	1-)
	(이=)	वेदान्तिध्वान्तनिवारण नागरी	=)
श्रष्टाध्यायी मृत्त	11=)	,, अंग्रेज़ी	-)11
श्रष्टाध्यायी भाष्य पहिला खएड	३॥)	भ्रान्तिनिवारण	1-)
,, दूसरा खयड	<b>३॥)</b>	स्त्रमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश नागरी	
पंचमहाय इविधि	=)11		
निरुक्त	111=)		
संस्कृतवाक्यप्रबोध	=)	ऋग्वेद संहिता सजिल्द	8)
<b>ब्यवहारभा</b> नु	=)	त्र्यथवेवेद संहिता सजिल्द	<b>3</b> )
भ्रमोच्छेदन	=)11	यजुर्वेद संहिता सजिल्द	₹)
<b>भ</b> तुभ्रमोच्छेदन	-)	तामनव तावता तानवन	(11)
सत्यधमीविचार (मेला चांदापुर)	=)	चारों वेदों की अनुक्रमणिका	२।)
श्रायींदेश्यरत्नमाला नागरी	)11,	ईशादिदशोपनिषद् मृत	III)
,, मरहठी	-)	श्रीक्लाक्तानामन् नान्य	8)
,, भंग्रेज़ी	-)	बृहदारएयकोपनिषद् भाष्य	. 8)
गोकरुगानिधि	=)	यजुर्वेदभाषाभाष्य	A)
स्वामीनारायग्रमतख्यडन	1)	नित्यकर्मविधि	)[[]
सत्यार्थप्रकाश	(11)	इवनमन्त्र	)III ::
त्रायाभिवितय गुटका	=)	Life of Swami Dayanand S	
, मोटे अन्तरों की	11=)	(English) by Har Bilas Sar	
संस्कारविधि	111)	Dayanand Commemoration Volume (English)	
		orame (Bush)	Tra. IO

नोटः-डाकमहस्रल मब का मूल्य से ऋलग होगा।

प्रयन्धकत्ती, बैदिक पुरंतकालय, अजमेर.



🛪 श्रोःम् 🛪

## अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रस्यश्चतुर्थो भागुःme Tor & Sales Tax Practition

# कारकीयः

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां तृतीयो भागः।

श्रीमत्स्वामिद्यानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः।

पठनपाठनव्यवस्थायां षष्टं पुस्तकम्।

अजमेरनगरे वैदिकयन्त्राखये मुद्रितः।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है, क्योंकि इसकी रजिस्टरी कराई गई है।

स्ष्यन्दाः १,६७,२६,४६,०४६.

पांचवीं वार १०००

विक्रमीय संवत् २००६

मुल्य (≅)

## भूमिका

मैंने 'कारकीय' प्रन्थ इसिलये बनाया है कि जिससे पढ़ाने और पढ़नेवालों को सुगमता से कारक सिंध बोध होके वेदादि शास्त्रों का वाक्यार्थ-बोध सुगमता से होवे। मनुष्य जितना अर्थ कारकों से जान सकता है उतना अन्य प्रकरणों से नहीं, क्योंकि यह कारकसमूह किया, द्रव्य और गुणवाची शब्दों के संबन्ध से समस्त वाक्यों के अर्थों का प्रकाशक है। 'उच्यतेऽर्थस्य विज्ञानाय विज्ञापनाय वा यत्तद्वाक्यम्' जो अर्थ के जानने और जनाने के लिये कहा जाता है वह 'वाक्य' कहाता है।

जो मनुष्य श्राठों कारकों की विद्या को यथावत् जानलेता है, वह वाक्याथों में सुबोध होता है। जिसलिये कारक संज्ञा के श्राधीन ही प्रथमा श्रादि विभक्तियों का विधान श्रष्टाध्यायी में है, इसलिये इस ग्रंथ में कारक सूत्रों के साथ विभक्ति-विधायक सूत्रों को भी लिख के उदाहरण प्रत्युदाहरण लिखे हैं। यहां एक उदाहरण वा प्रत्युदाहरण को जान श्रोर जना के उसके सदश श्रसंख्यात उदाहरणों को श्रध्यापक लोग जान लें श्रोर विद्यार्थियों को भी जना देवें, कि जिस से सद्यः संस्कृत बोल दूसरे के संस्कृत को समक्ष श्रोर वेदादि शास्त्रों के वाक्यार्थ जान के उथवहार में भी बहुत उपकार होते।

जैसे किसी से किसी ने पूछा कि 'तं कस्मादागच्छासे' तू कहां से आता है, वह उत्तर देवे कि 'नगरात' नगर से, इस एक ही पद से कारक का जाननेहारा 'अहमागच्छामि' इन दोनों पदों के कहे विना भी पूरा वाक्यार्थ जानलेता है।

कारकों के बोध ही से मनुष्य कारक विषयों का विद्वान हो सकता है, इत्यादि प्रयोजनों के लिये कारकों का जानना जनाना सब को उचित है। इस ग्रन्थ में ग्र॰ संकेत से श्रष्टाध्यायी, १ से श्रध्याय, २ से पाद, श्रोर ३ से सूत्र समक्त लेना।।

इति भूमिका॥

## अथ कारकीयः

#### अथोपक्रमः

(प्रश्न) कारक श्रीर कारकीय किस को कहते हैं?

( उत्तर ) 'यत् कोति तत् कारकम्' जो करनेहारा श्रर्थ है यह 'कारक' कहाता, श्रीर इस ग्रन्थ में इसका व्याख्यान है इसलिये इसको 'कारकीय' कहते हैं।

( प्रश्न ) कारक कितने प्रकार के होते हैं ?

(उत्तर) त्राठ-कर्ता; कर्म; करण; संप्रदान; श्रपादान; शेष; श्रधिकरण; श्रौर हेतु। इन में से—

१—'क्त्ती' उसकी कहते हैं कि जो पदार्थ, सकत साधनयुक्त होके स्वतंत्रता से सब क्रियाओं को करे। जैसे —देवदत्तः पठितः, शकाशा वर्तते, इत्यादि। यहां विद्या पठन क्रिया का कर्त्ता देवदत्तं श्रोर वर्त्तमान क्रिया का श्राकाश है।

२—'कर्म' उसको कहते हैं कि जो किया जाय । इस के तीन भेद हैं— ईप्सिततम; श्रेनीप्सितयुक्त श्रीर श्रकथित।

'ईप्सिततम कर्म' उसको कहते हैं कि जिस को श्रत्यन्त श्रभीए जान के करें। जैसे—सुखिमच्छिति; मोजनं करेति, श्रोदनं पचिति; ग्रामं गच्छिति, इत्यादि। यहां सुख होने की इच्छा, भोजन का करना, चावल का पकाना, श्रीर ग्राम को जाना किसी विशेष प्रयोजन के लिये श्रत्यन्त श्रभीए होने से 'ईप्सिततम कर्म' कहाता है।

'श्रनीप्सितयुक्त कर्म' उस को कहते हैं कि जिस की इच्छा तो न हो परन्तु संयोग होने से किया ही जावे। जैसे—देवदचा श्रामं गच्छन् चारान् परयति कण्टकानुत्बङ्घयति, इत्यादि। यहां चोरों को देखने श्रोर कांटों में चलने की इच्छा तो किसी को नहीं होती परन्तु संयोग से चोरों का देखना श्रोर कांटों का उल्लंघन करना श्रवश्य होता है।

'श्रकथितयुक्त कर्म' उस को कहते हैं कि जिस का किसी गौगु<sup>र</sup> भाव से निमित्त करके ईप्सिततम के साथ योग हो। जैसे—गां देशिय पयः; माग्रवकं पन्थानं

१. 'स्वतन्त्र: कर्त्ता' इस से यहां कर्ता संज्ञा होती है, श्रीर सब कारकों में एकवचन के उदाहरणों से पृथक् द्विवचन बहुवचन के प्रयोग भी जान लेना ॥

२. ईप्सिततम मुख्यकर्म श्रीर श्रकथित गौया कहाता है, श्रीर मुख्यकर्म के विना गौया किसी वाक्य में नहीं श्राता ।। पृच्छित इत्यादि । यहां लड़के को पूछुने रूप निमित्त के विना मार्ग का ज्ञान अगैर गाय का दोहनरूप निमित्त के विना दूध की प्राप्ति नहीं हो सकती। परन्तु इस 'पृच्छिति' किया के साथ लड़के और 'दोग्धि' किया के साथ साज्ञात् गाय का संबन्ध नहीं है, किन्तु पन्था और दूध का है।

:—'करण' उसको कहते हैं कि जिस से कर्ता अपने कर्तव्य कर्म को कर सके। इस के दो भेद हैं —गोण और मुख्य।

'गौण करण' उस को कहते हैं कि जो साधारणता से क्रिया की सिद्धि का निमित्त हो । जैसे — इस्ताम्यां फूकारादिनागिः प्रज्वलाते, इत्यादि । यहां अग्नि की जलन क्रिया का निमित्त हाथों की फूकनादि क्रिया हैं।

The second of the

'मुख्य करण' कारक उस को कहते हैं कि साज्ञात् संबन्ध से कर्तव्य कर्म की सिद्धि में यथावत् उपयुक्त हो, जिस के विना वह कर्म कभी न हो सके। जैसे— इन्धनरानिः प्रज्वलितः, अनिनादनं पचित, इत्यादि। यहां अग्नि को जलाने में इन्धन और चावल के पकाने में अग्नि ही मुख्य साधक है।

४—'तंप्रदान' उसको कहते हैं जिस से किसी का अभीष्ट सिद्ध किया जाय। जैसे—विद्यार्थने विद्यान्ददाति; अध्यापकाय धनं प्रयच्छिति; अतिथयेऽत्रादिकं ददाति, इत्यादि। यहां विद्यादान कर्म से विद्यार्थी, धनदान क्रिया से आचार्य और अञ्चादि पदार्थ के देने से अतिथि का अभीष्ट सिद्ध किया जाता है, इसलिये ये 'संप्रदान' हैं।

१—'अपादान' उस को कहते हैं कि जहां प्राप्त का त्याग और अप्राप्त देश की प्राप्ति की जाय। जैसे—गृहादागच्छाते गच्छाते वा; गृरुकुलादागच्छाते गच्छाते वा; प्रामादागच्छाते गच्छाते वा<sup>3</sup>, इत्यादि। यहां पढ़ने के लिये प्राप्त घर को छोड़ कर अप्राप्त पाठशाला और पूर्णविद्या पढ़ के गुरुकुलनिवासक्तप देश को छोड़ कर जन्मभूमि को प्राप्त होना प्रयोजन है, किन्तु छोड़ने क्तप किया के कर्म की 'अपादान संज्ञा' है, अर्थात् जिस का वियोग कर दूसरे को प्राप्त होना होता है।

६—'शेष कारक' उसको कहते हैं कि जो अर्थ अपादानादि संज्ञाओं से गृहीत न हो। जैसे—यस्य प्रशस्तमा यशालिनो यज्ञदत्तस्य पुत्रः पठित, यहां पठनिक्रया के कत्ती पुत्र का संबन्धी यज्ञदत्त पिता है, जिस का पुत्र पढ़े वह भाग्यशाली है।

१. यहां दूध का निमित्त गो श्रोर मार्ग का निमित्त होने से बालक गौराकर्म तथा दूध श्रौर मार्ग मुख्य है।।

२. यहां प्रामादागच्छाति; प्रामादागच्छातः; प्रामादागच्छान्त इत्यादि सब वचन श्रीर तीनीं पुरुष के प्रयोग होते हैं, क्योंकि एक स्थान से एक श्रीर श्रनेक का भी श्राना सम्भव है। श्रीर कई स्थानों से एक पुरुष का श्राना नहीं बनता, इसी कारण श्रपादानसंज्ञक शब्द में सब वचन नहीं होते। श्रीर जहां श्रनेक स्थानों से श्रनेकों का श्राना होगा वहां श्रपादान में भी सब वचन होंगे—
ग्रामाम्यामागच्छतः; ग्रामेभ्य श्रागच्छान्ति, इत्यादि॥

वेदस्य मन्त्रस्यार्थं जानाति—वेद् के मन्त्र के द्रार्थं को जानता है। यहां मन्त्र का वेद त्र्रीर त्रार्थं का शेष मन्त्र है। त्रयस: कुठारेण वृद्धं छिनाति—लोह के कुल्हाड़े से वृद्धा को काटता है। यहां लोहा कुल्हाड़े का शेषार्थं है। त्राप्तस्याऽध्यापकस्य विद्यार्थिने ददाति—निष्कपट सत्यवादी पूर्णविद्यावान् पढ़ानेहारे पिएडत के विद्यार्थीं को देता है। यहां विद्यार्थीं का शेष पढ़ानेहारा है। राज्ञों त्रामादागच्छाति—राजा के गाम से त्राता है। यहां गाम का शेष कारक राजा है। राज्ञः पुरुषस्य पत्रों दर्शनीयोऽस्ति—राजा के पुरुष का पुत्र देखने में सुन्द्र है। गुरेाः कुले निवसति—विद्यार्थी पढ़ने के लिये गुरु के कुल में निवास करता है। यहां त्राधिकरण कारक कुल शब्द का शेष गुरु है। राज्ञों मंत्री देवदणं गामं गमयति, इत्यादि—राजा का मन्त्री देवदण्तं को प्राप्त में मेजता है। यहां हेतु कारक मन्त्री का शेष राजा है। इसी प्रकार शेष कारक को सब से बड़ा जानो, क्योंकि यह सब के साथ व्यापक रहता है। इसके विना कोई कारक नहीं रहता, चाहे शेष का प्रयोग हो वा न हो।

७—'अधिकरणा उसको कहते हैं कि जो आधेय का आधार रूप अर्थ हो। सो तीन प्रकार का होता है। तद्यथा—अधिकरणं नाम त्रिःप्रकारकं मनति। व्यापकमीपश्लोपिकं वैषयिकमिति॥ अ०६। पा०१। सू० ७३। आ०३। व्यापक; औपश्लेषिक; वैषयिक।

'व्यापक' अधिकरण उसको कहते हैं कि जिसका योग सब व्यक्ति और अवयवों में रहे। जैसे—दिक्कालाकाशेषु पदार्थाः सन्ति, ईश्वरे सर्व जगद्वत्तेते', इत्यादि—दिशा काल और आकाश में सब पदार्थ रहते और सब जगत् ईश्वर में है।

'श्रोपश्लेषिक' उस को कहते हैं कि जहां श्राधार श्रोर श्राधेय का संयोग हो। जैसे—खट्वायां शेते; गृहे निवसति, इत्यादि । यहां खाट श्रोर सोनेवाले श्रोर घर तथा घर में रहनेवाले का स्पर्शमात्र संयोग है।

'वैषयिक' उसको कहते हैं कि जिस में जो रहे। जैसे—धर्मे प्रतिष्टते; विद्यागं यतते' इत्यादि। मनुष्य की धर्म में वर्त्तने से प्रतिष्ठा और जो विद्या में यस करता है वह जानी होता है।

द—'हेतु कारक' उसको कहते हैं कि जो अर्थ किया करनेहारे का प्रेरक हो। जैसे—देवदत्तो विद्यामधित, गुरुरेनं विद्यामध्यापयित; विचद्यणो धर्म करोति, उपदेष्टेनं धर्म कारयित, इत्यादि। यहां पढ़नेहारे विद्यार्थी के पढ़ने के लिये प्रेरक गुरु और धर्म के करनेहारे चतुर पुरुष को धर्म करानेहारा उपदेशक हैं।

त्रौर इसमें इतना विशेष समभना चाहिये कि साचात् करनेहारे की 'कर्चृ कारक' संज्ञा त्रौर प्रेरणा करनेहारे की 'हेतु' संज्ञा है।

<sup>9.</sup> जैसे — तिंलेषु तेलम्; दम्रिन घृतम्, इत्यादि भी न्यापक श्रिधिकरण् में गिने जाते हैं, क्योंिक तिलों के सब श्रवयवों में तेल श्रीर दही के सब श्रवयवों में घृत न्यापक है। दिशा श्रादि के उदाहरण् सामान्य श्रीर ये विशेष हैं।।

२. प्रतिष्ठा का विषय धर्म श्रीर विद्या प्रयत्न का विषय है।।

#### (प्रश्न) वाक्य किसको कहते हैं ?

(उत्तर) आल्यांत साव्ययकारकविशेषणं वाक्यम्। सिवशेषण्मेकतिङ् वा—जो आर्च्यात अव्यय कारक और विशेषण्युक्त, हो सो 'वाक्य' कहाता है। 'साव्यय' जैसे—देवदत्त उचैः पठित, इत्यादि—देवदत्त उचे खर से पढ़ता है। 'सकारक'—मनुष्यो धर्ममाचरेत्, इत्यादि—मनुष्य धर्माचरण् करे। 'सिवशेषण्'—बुद्धिमान्देवदत्त ऋजु पठित, इत्यादि—खुद्धिमान् देवदत्त कोमलता से पढ़ता है।

श्रथवा जिसमें विशेषण युक्त एक तिङन्त पद हो, वह 'वाक्य' कहाता है। इसी के पूर्वोक्त उदाहरण—देवदत्त उनैः पठति, इत्यादि जानो।

( प्रश्न ) वाक्य के कौन से प्रयोजन हैं ?

(उत्तर) त्रानेक त्रर्थ की प्रतीति त्रोर व्यवहार में प्रवृत्ति त्रादि हैं। क्योंकि—
त्रथंगत्यर्थः शब्दप्रयोगः। त्रथं प्रत्यायिष्यामीति शब्दः प्रयुज्यते॥ महामाध्य त्र०१। पा०१। स्०४।
त्रा०७। त्रर्थ के जानने के लिये शब्द का प्रयोग किया जाता है। वक्तुं योग्य पदसमुदाय वाक्यम्—जो कहने को योग्य हो, जिसमें त्र्यनेक पदों का योग हो, वह 'वाक्य' कहाता है।
जब तक कोई किसी को वाक्य वोल के त्र्यर्थ का वोध नहीं कराता तब तक उसका प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता, व्यवहार में प्रवृत्ति नहीं होती, त्रौर जब तक व्यवहार ठीक २ नहीं होता तब तक उसका कार्य सिद्ध होकर सुखप्राप्ति रूप प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता। इसलिए वाक्य त्रौर वाक्यार्थ का बोध करना सब मनुष्यों को त्रवश्य उचित है।

(प्रश्न) वाक्यार्थ योध में कितने कारण हैं ?

( उत्तर ) चार-श्राकांत्ता; योग्यता; श्रासत्ति श्रीर तात्पर्य ।

१—'श्राकां ज्ञा'! उसको कहते हैं कि वाक्य में जिन पदों का प्रयोग है उनके साथ जिन श्रम्युक्त पदों का श्रवश्य संबन्ध करना हो। जैसे—श्रनुतिष्ठत, यहां श्रमुतिष्ठत इस क्रियापद के साथ यूयं श्रोर धर्म इन दों पदों श्रोर यूयमधर्मम् इस वाक्य में संस्कत इस क्रियापद की श्राकां ज्ञा श्रवश्य है, क्यों कि इनके विना वाक्य की पूर्त्त कभी नहीं हो सकती। तथा—'श्रनाकां ज्ञा' उसको कहते हैं कि जिस वाक्य में सब योग्य पदों का प्रयोग हो। जैसे—यूयं धंममनुतिष्ठतः यूयमधर्म संत्यजत, इत्यादि उदाहरण समक होना।

१. इन के विना कोई भी वाक्य नहीं होता, श्रौर न इनके जाने विना श्रौर ग्रंथ के वाक्यों के सल्य सल्य श्रमिशाय का बोध किसी को हो सकता है।।

२. वाक्य का वाच्या तिङ् के विना नहीं किया, इस कार्या इसको शुद्ध वाक्य नहीं कर सकते, किन्तु मार्कोदित वाक्य कहावेगा ॥

२—'योग्यता' उसको कहते हैं कि जो पद जिसके साथ प्रयोग करने योग्य हो वा जिस से जो कार्य्य सिद्ध होता हो, उन्हीं का प्रयोग करना। जैसे—चतुषा पश्यित; श्रोत्रेण शृणोति; अलन सिंचित; श्रप्तिना दहति, इत्यादि—मनुष्य श्रांख से देखता, कान से सुनता, जल से सींचता श्रोर श्रप्ति से जलाता है। यहां वाक्यार्थ की योग्यता है, श्रीर—कर्णेन पश्यित; हस्तेन शृणोति; श्रप्तिना सिञ्चित, जलन दहित, इत्यादि में वाक्यार्थ की योग्यता नहीं है, क्योंकि कान से देखने, हाथ से सुनने, श्राग से सींचने श्रीर जल से जलाने का कभी संभव नहीं होसकता।

३—'श्रासित्तं उस को कहते हैं कि जिस पद की जिस के साथ योग्यता हो उसको उसी के साथ योग्यता हो उसको उसी के साथ योग्यता । जैसे—हे देवदत्त त्वामित कंचित्रात प्रातरक्वा सायंकाले ब्र्याद् प्रामं गच्छेति—कोई किसी से प्रातःकाल 'तू' ऐसा कह कर चुपचाप रहे, पश्चात् सायंकाल में कहे कि श्राम को जा। यहां चार पहर के विलम्य होने से इस का वाम्यार्थ बोध किसी को नहीं होसकता, क्योंकि पदों का श्राभिसंबन्ध निकट नहीं है। श्रोर जैसे—हे देवदत्त तं ग्रामं गच्छ, इत्यादि वाक्य श्रर्थवोधक हो सकते है, क्योंकि यहां कर्त्ता कम्म श्रोर किया का उच्चारण एक समय में समीपस्थ है।

४—'तात्पर्य' उसको कहते हैं कि वक्षा जिस श्रिभप्राय के जानने के लिये वाक्य वोले, उसी के श्रमुकूल दूसरे को समम्भना उचित है। जैसे किसी ने कहा कि—महान्देह्यत्र दातव्यमेन दह्यदिते वेदितव्यम्। जैसे किसी ने किसी से कहा कि श्राप मुमको कुछ दीजिये, यहां श्रहण करने के योग्य पदार्थों का मिलना वक्षा का प्रयोजन है। ऐसा न समम्भना कि श्रयं दुःखदायिनस्तुयाचक इत्यस्य तात्पर्यार्थः। जैसे पूर्व वाक्य में कोई ऐसा समभे यह मुमसे दुःखदायक पदार्थों को चाहता है, ऐसा समम्भना उसके तात्पर्यार्थ से विरुद्ध है। इसलिये सव को वाक्य वोध के कारण श्रवश्य जानने चाहियें॥

इत्युपक्रमः ॥

### (१) कर्त्तृकारक

६२६-कारके ॥ १ ॥ अ० १ । ४ । २३ ॥

संज्ञाधिकार के बीच पढ़ने श्रोर श्रागे श्रागे सूत्रों में इसकी श्रानुवृत्ति होने से यह श्रधिकार सूत्र है। इस से जहां जहां स्वतंत्र श्रादि शब्दों की संज्ञा की जावेगी, वहां वहां सर्वत्र कारक शब्द का श्रधिकार समका जावेगा।

क्रिया ग्रोर द्रव्य का संयोग ग्रोर क्रिया की सिद्धि करनेवाले को 'कारक' कहते हैं ॥ १॥

६३०-स्वतंत्रः कत्ता ॥ २ ॥ अ०१ । ४ । ४४ ॥

स्व=त्राप, तंत्र:=प्रधान (स्रतंत्र)। जो त्राप ही क्रिया के करने में प्रधान हो, उसकी कर्तृकारक संज्ञा है ॥ २॥

६३१-तत्प्रयोजको हेतुश्च ॥ ३ ॥ अ० १ । ४ । ४ ॥

जो वह खतंत्र प्रेरणा करनेवाला हो, तो उस की हेतु श्रीर कर्ता दोनों संज्ञा होती हैं॥ ३॥

५५ ६३२-प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ।। ४॥ अ०२।३। ४६॥

जो जिस अर्थ के साथ समर्थ होता है उस को 'प्रातिपदिकार्थ' कहते हैं। इसके अर्थमात्र, लिक्न अर्थात्—स्त्री, पुरुष नपुंसकमात्र, परिमाण अर्थात् तोल मात्र, और वचन—पक दो बहुत मात्र, इन अर्थों में प्रथमा विभक्ति होती है।

इसी सूत्र के भाष्य में तिखा है कि—तिङ्समानाधिकरणे प्रथमेत्येतल्लच्चणं करिष्यते। अस्ति भवति आदि तिङन्त कियाओं के साथ जिस का समानाधिकरण हो उसको उक्त कथित और अभिहित कहते हैं। उसी में प्रथमा विभक्ति होती है। इससे भिन्न कारकों में द्वितीयादि होती हैं, सो आगे कहेंगे।

कर्ता श्रोर हेतु कारक के उदाहरण प्रातिपदिकार्थमात्र में — देवदत्तो प्रामं गच्छति; यह्नदत्तो देवदत्ते प्रामं गमयति; देवदत्त श्रोदनं पचिति; यह्नदत्तो देवदत्तेनौदनं पाचयति, इत्यादि। यहां गच्छति, पचिति क्रिया के करने में देवदत्त स्वतन्त्र होने से कर्ता श्रोर यह्नदत्त की प्रेरणा का कर्म है, उस का इन्हीं क्रियाश्रों के साथ समानाधिकरण

9. यहां 'प्रातिपिदिकार्थं' उसको कहते हैं कि जो उस शब्द की सत्तामात्र हो, ग्रौर जो ग्रर्थ के साथ शब्द का विशेष संबन्ध होता है। इसीलिये लिङ्ग ग्रादि का प्रहण है। जैसे—पुमान्, इस शब्द में जो पुरुष व्यक्ति के साथ सामान्य सम्बन्ध है वही प्रातिपदिकार्थ है। ग्रौर पुरुषपन ग्रर्थात खी से श्रवण होना है यह प्रातिपदिकार्थ नहीं है, किन्तु लिङ्ग है।

होने से उसमें प्रथमा विभक्ति होती है। तथा अर्थ मात्र के कहने से उच्चै:, नीचै: इत्यादि में भी प्रथमा विभक्ति होजावे।

लिङ्गमात्र में —कुमारी, यहां जो प्रातिपिद्कार्थ युवा श्रवस्था है उससे स्नीत्व पृथक् है. इसलिये प्रातिपिद्क संज्ञा नहीं प्राप्त थी। पुल्लिङ्ग —वृत्तः। वृत्त एक जाति है, यहां जो जातित्वमात्र प्रातिपिद्कार्थ है वह पुल्लिङ्ग व्यक्ति से पृथक् है। नपुंसक — कुलम्, यहां भी नपुंसकपन प्रातिपिद्कार्थ जो जनसमुद्य है उस से पृथक् है।

परिमाणमात्र में —द्रोण: । खारी । आढकम् इन तोल के वाची शब्दों में प्रथमा होती हैं । वचनमात्र में —एक: । द्वो । बहव:, यहां जो एक दो और बहुत संख्यात्व है, वह प्रातिपदिकार्थ से पृथक् है ।

यहां 'मात्र' ग्रहण इसिलये है कि इससे भिन्न अन्यत्र कर्मादि के विषय में प्रथमा न हो ॥ ४ ॥

यह कर्नु कारक पूरा हुआ ॥

#### (२) कर्मकारक

#### ६३३-कर्तुरीप्सिततमं कर्म॥ ४॥ अ०१।४। ४६॥

जो बहुत कारकों से युक्त वास्य के बीच में कर्त्ता को अत्यन्त इष्ट कारक है, वह कर्मसंज्ञक होता है ॥ ४॥

इस का फल-

#### ६३४-अनिमहिते ॥ ६॥ अ०२।३।१॥

यह अधिकार विभक्तिविधान प्रकरण में है। 'अभिहित' उस को कहते हैं कि जिस से लकारादिप्रत्ययान्त कियाओं का समानाधिकरण होने। और जिसमें लकारादि प्रत्ययों का समानाधिकरण न हो उसी को अनिमहित, अनुक्र और अकथित भी कहते हैं।

इस के आगे जो २ विभक्तिविधान प्रकरण के सूत्र लिखे जावेंगे, उन सब में यही अधिकार समका जावेगा। और संज्ञाप्रकरण का अधिकार लिख चुके हैं॥ ६॥

- १. एक शब्द के उचारण से सामान्य श्रर्थात् श्रसंख्य व्यक्तियों का बोध होना 'जाति' कहाती है। सो वृत्त शब्द के उचारण से व्यक्ति, श्राकृति श्रौर जाति तीनों का बोध होता है, जिङ्गार्थ इन तीनों से प्रथक् है।
- २. तोलन साधक दोण श्रादि शब्द, घृत त्रादि मेय श्रर्थात् परिमाण विषयों के संबन्ध में मान श्रर्थात् इयत्ताकरणार्थं होने से प्रातिपदिकार्थं से पृथक् हैं, इसिलये इनका प्रहण् है।।

## ६३५-कर्मणि द्वितीया॥ ७॥ अ०२।३।२॥

अनिमहित कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति हो।

ग्रामं गच्छति। वेदं पठित । यज्ञं करोति, यहां ग्राम का जाना, वेद का पढ़ना, ग्रामं गच्छिति। वेदं पठित । यज्ञं करोति, यहां ग्राम का जाना, वेद का पढ़ना, ग्रीर यज्ञ का करना अत्यन्त इपे हैं, इसिलये ग्राम वेद ग्रीर यज्ञ की कर्मी संज्ञा हो के द्वितीया विभक्ति होजाती हैं। इसी प्रकार सर्वत्र जानना।

अनिभिहित का प्रयोजन यह है कि - पष्ट्यो वेदः, यहां वेद शब्द के अभिहित

होने से द्वितीया न हुई ॥ ७ ॥

६३६-वा०-समयानिकषाहाप्रतियोगेषूपसंख्यानम् ॥ ८॥ अ०२।३।२॥

समया, निकषा, हां, प्रति इन चार अव्ययों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। समया ग्रामम् । निकषा ग्रामम्। हा देवदत्तम्। देवदत्तं प्रति। यहां सर्वत्र देवदत्त ग्रोर ग्राम शब्द में द्वितीया विभक्ति हुई है।। प्र॥

६३७-वा०-अपर आह-द्वितीयाऽभिधानेऽभितःपरितःसमयानि-क्रबाऽध्यविधिग्योगेषूपसंख्यानम् ॥ ६॥ अ०२।३।२॥

श्रभितः, परितः, समया, निकषा, श्रध्यधि, धिक् इन शब्दों के योग में द्वितीया विमक्ति होवे।

समया श्रीर निकषा शब्द पूर्ववार्त्तिक में श्राचुके हैं, इन के उक्त उदाहरण जानने।

श्रभितो त्रामम् । परितो त्रामम् । श्रध्यिध त्रामम् । धिग् जाल्मम् ।। ६ ॥

६३८-का०-अपर आह-

उभसवर्तसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु तते।ऽन्यत्रापि दृइयते ॥१०॥ अ०२।३।२॥

उभयतस्, सर्वतस्, धिक, उपर्य्युपरि, ऋध्यधि, ऋधोधो इनके योग में भी द्वितीया विभक्ति होने।

जैसे—उभयतो प्रामम् । सर्वतो प्रामम् । धिग्जाल्मम् । उपर्युपरि प्रामम् । अध्यि प्रामम् । अध्यि प्रामम् ।

श्रीर इन के योग से श्रन्यत्र जहां किसी सूत्र वार्त्तिक से द्वितीया विधान न हो, वहां भी इसी कारिका के प्रमाण से होती है। जैसे—वुभुक्तितन्न प्रतिभाति किञ्चित्, इत्यादि। यहां प्रति के योग में द्वितीया हुई है॥ १०॥

१ जो पदार्थ प्रत्यन्त इष्ट नहीं होता. उस की सिद्धि के लिये शरीर इंद्रिय मन बुद्धि प्रादि की यथार्थ प्रवृत्ति नहीं होती, फिर उस की कमें संज्ञा भी नहीं हो सकती ॥

२, यहां अनिमिहत कर्म नहीं है, इसिलये यह द्वितीयाविमिकिविधान प्रकरण बांधा है।।

#### ६३९-तृतीया च होइछुन्दिस ॥ ११ ॥ अ० २ । ३ । ३ ॥

वेदविषयक 'हु' धातु के अनिभिद्दित कर्मकारक में तृतीया और चकार से द्वितीया विभक्ति भी होती है।

यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति । यवागूमग्निहोत्रं जुहोति ।

'छन्द' का ब्रह्ण इसिलये हैं कि – यवागूमब्रिहोत्र' जुहोति, यहां लोक में तृतीया विभक्ति न हो ॥ ११ ॥

६४०-अन्तरान्तरेण युक्ते ॥ १२ ॥ अ० २ । ३ । ४ ॥ अन्तरा, अन्तरेण इन दो अव्ययों के योग में द्वितीया विभक्ति हो । अग्निमन्तरेण कथं पचेत् ॥ १२ ॥

६४१-कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ॥ १३॥ अ०२।३। ४॥

श्रत्यन्त संयोग श्रर्थ में कालवाची श्रौर मार्गवाची शब्दों से द्वितीया विभक्ति होवे।

मासमधीतोऽजुवाकः। क्रोशं कुटिला नदी ।

यहां 'श्रत्यन्त संयोग' ग्रहण इसलिये है कि—दिवसस्य द्विर्भु ङ्क्रे, इत्यादि में द्वितीया न हो ॥ १३ ॥

६४२-अपवर्गे तृतीया ॥ १४ ॥ अ०२ । ३ । ६ ॥

जो शुभ कर्म की समाप्ति है उसको श्रापवर्ग कहते हैं, इस श्रत्यन्त संयोग श्रर्थ में कालवाची श्रोर मार्गवाबी शब्दों से तृतीया विभक्ति हो।

मासेनाधीतोऽजुवाकः । क्रोशेनाधीतोऽजुवाकः ।

यहां 'त्रपवर्ग' प्रह्मा इसिलये है कि—मासमधीतोऽनुवाको न चानेन गृहीतः, इत्यादि स्थल में तृतीया न हो ।। १४॥

.

.7.

१, यह द्वितीया विभक्ति का प्रकरण है, श्रौर पूर्वसूत्र में तृतीया विधान है, सो द्वितीया का ही श्राप्ताद है, इसिलये यहां तृतीया की श्रानुवृत्ति नहीं श्राती, द्वितीया की ही श्राती है। श्रौर यह सूत्र श्रप्त विधायक है, श्रथीत् श्रन्तरा श्रन्तरेण इन श्रव्ययों के योग में किसी विभक्ति का विधान किसी सूत्र से नहीं है॥

२. यहां ग्रत्यन्तसंयोग यह है कि महीने के बीच पढ़ने में कोई श्रनध्याय वा विपेच न हुआ, यह उस काल और पठनिक्रया का ग्रत्यन्त संयोग है। क्रोश भर टेड़ी नदी, यहां मार्ग और नदी का ग्रत्यन्त संयोग है, क्योंकि क्रोश भर में टेड़ाई व्याप्त है॥

३. अर्थात् जहां एक महीने में पढ़ के समाप्त कर दिया हो, श्रीर श्रच्छे प्रकार जान जिया हो, वहीं हो ॥

### ६४३-सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ॥ १४ ॥ अ० २ । ३ । ७ ॥

जो अत्यन्त संयोग अर्थ में दो कारकों के बीच काल और मार्गवाची शब्द हों, तो उनसे सप्तमी और पञ्चमी विभक्ति हों।

त्रद्य देवदत्तो भुक्त्वा द्वश्वहाद् भोक्ना; द्वश्वहे भोक्ना । इहस्थोऽयिमध्वासः कोशा-स्त्रद्यं विध्यति; कोशे लद्यं विध्यति, इत्यादि ॥ १४ ॥

६४४-गत्यर्थकमणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ॥ १६ ॥ अ० २ । ३ । १२ ॥

जिनकी चेष्टा किया विदित होती हो, ऐसे गत्यर्थक धातुत्रों के मार्गरहित अनिभिद्दित कर्म में द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति हों।

ब्रामं गच्छति; ब्रामाय गच्छति । ब्राममेति; ब्रामायैति<sup>?</sup> ।

'गत्यर्थक' धातुत्रों का प्रहण इसिलये हैं कि—कटं करोति, यहां चतुर्थी न हो। 'कर्म' प्रहण इसिलये हैं कि—ग्रश्वेन गच्छिति, यहां करण में द्वितीया और चतुर्थी न हों। 'चेष्टा' प्रहण इसिलये हैं कि—मनसा गृहं गच्छिति, यहां चेष्टा के न होने से चतुर्थी नहीं होती। श्रीर 'श्रनध्विन' प्रहण इसिलये हैं कि—ग्रध्वानं गच्छिति, यहां चतुर्थी न हो।। १६।।

६४५-वा०-अध्वन्यर्थग्रहणम् ॥ १७ ॥ अ० २ । ३ । १२ ॥

श्रध्व के पर्यायवाची शब्दों का भी निषेध में प्रहण होना चाहिये।

जैसे—ग्रध्वानं गच्छति, यहां चतुर्थी नहीं होती। वैसे ही—पन्थानं गच्छति, इत्यादि में भी चतुर्थी न हो ॥ १७ ॥

६४६-वा॰-आस्थितप्रातिषेधश्च ॥ १८॥ अ०२।३।१२॥ मार्गवाची मुख्य शब्दों का निषेध होना चाहिये।

क्योंकि—उत्पथेन पन्थानं गच्छति; पथे गच्छति, यहां चतुर्थी का निषेध न हो जावे ॥ १८ ॥

श्रव कर्म संज्ञा में जो विशेष सूत्र, वार्त्तिक तथा कारिका बाक़ी हैं, वे लिखते हैं। उन में कर्म संज्ञा होके प्रथम सूत्र से ही द्वितीया विभक्ति होती है—

१. यहां श्रनभिहित कर्मा में (कर्मीण द्वितीया ॥ श्र० २ । ३ । २ ) कारकीय—७ इससे द्वितीया ही पाती है, उसका यह श्रपवाद है ॥

२. यहां मार्गवाची मुख्य शब्द यों नहीं है कि गड़बड़ मार्ग से शुद्ध मार्ग के जिये जाता है। शुद्ध मार्ग का चलना गीया है।।

# ६४७-तथा युक्तं चानीप्सितम् ॥ १६॥ अ०१।४। ४०॥

जिस प्रकार ईप्सिततम कारक की कर्म संज्ञा होती है, वैसे ही जिसका अकस्मात् योग हो जाय, तो उस युक्त अनीप्सित की भी कर्म संज्ञा हो।

ग्रामं गच्छन् वृकान् पश्यितः, तृणानि स्पृशित—ग्राम को जाता हुआ भेड़ियों को देखता, श्रीर घास का स्पर्श करता जाता है। भेड़ियों का देखना तो उसको अनिष्ट है, श्रीर घास का स्पर्श होना इष्ट श्रनिष्ट दोनों ही नहीं। इष्ट केवल ग्राम का जाना है, सो उसकी कर्म संज्ञा पूर्वसूत्र से ही हो गई। यहां भेड़िया श्रीर घास की कर्म संज्ञा हो जाने से द्वितीया विभक्ति हो जाती है॥ १६॥

## ६४८-अकथितं च ॥ २०॥ अ०१।४। ४१॥

अपादान आदि सब कारकों में जिसकी कोई संज्ञा न की हो उसको 'अकथित' कहते हैं। उस अकथित की भी कर्म संज्ञा हो जावे।

जैसे—अजां नयित प्रामम्। भारं वहित प्रामम्। यहां अजा और भार शब्द की तो कर्म संज्ञा (कर्त्तुरी०॥१।४।४६) इस उक्ष (४) सूत्र से सिद्ध ही है। प्राम शब्द में किसी कारक संज्ञा की प्राप्ति नहीं थी, इससे उसकी इस सूत्र से कर्म संज्ञा हो के द्वितीया होती है।

जो इस सूत्र का व्याख्यान महाभाष्यकार ने किया है, सो लिखते हैं—

६४९-का॰-दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिचिजामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ। ब्रुविशासिगुणेन च यत्सचते तदकीर्त्तितमाचरितं कविना ॥२१॥ म॰ १।४। ४१॥

इस कारिका से सूत्र का प्रयोजन दिखलाया है। दुइ, याच, रुध, प्रच्छ, भिन्न, चित्र, त्रूज् ग्रौर शासु इन धातुश्रों के योग में उपयोग का जो निमित्त हो, उसकी ग्रपूर्वविधि ग्रर्थात् जिसका विधान पूर्व ग्रपादान ग्रादि कारकों में कुछ भी न किया हो, तो इस सूत्र से कर्म संज्ञा हो।

जैसे दुह—गां दोग्धि पयः।याच पौरवं गां याचते। रुध— गामवरुणि द्व न्नजम्। प्रच्छु—माणुवकं पन्थानं पृच्छुति। भिद्म—पौरवं गां भिद्मते। चिञ्—वृत्तमविनोति फलानि। बूञ्—पुत्रं धर्म बृते।शासु—सन्तानं धर्मं शास्ति॥ २०—६१॥

१. उपयोग उसको कहते हैं कि जिस का क्रिया के साथ मुख्य संबन्ध हो। श्रौर उसका निमित्त वह है कि जिस के विना उसकी सिद्धि न हो। जैसे—पौरवं गां याचते, यहां गौ तो उपयोगी कर्म है, वह ईप्सिततम होने से पूर्व सूत्र से कर्मसंज्ञक हो जाता. श्रौर इसी कर्म का याचन क्रिया के साथ मुख्य संबन्ध है। श्रोर पौरव जो दाता पुरुष है वही इस गौ का निमित्त है, उसके विना गौ नहीं मिल सकती। इसलिये पौरव श्रकथित कर्म है, उस की कर्म संज्ञा इस सूत्र से होती है।

(प्रश्न) जहां कर्म कारक में लकारादि प्रत्यय विधान हैं, वे जहां दो कर्म हों वहां किस कर्म में होने चाहियें ?

( उत्तर )--

६५०-का०-कथिते लादयश्चेत्स्युः षष्ठीं कुर्यात्तदा गुणे। अकारकं स्रकथितात्कारकं चेत्तु नाकथा॥ २२॥ स०१। ४। ५१॥

विचार करते हैं कि जो कथित प्रधान कर्म में लकारादि प्रत्यय किये जावें, तो गौण अर्थात् अकथित कर्म में षष्टी विभक्ति होनी चाहिये।

जैसे—दुद्यते गोः पयः। याच्यते पौरवस्य कम्बलः। क्योंकि जो श्रकथित है वह कारक नहीं, किन्तु जो कथित है वही कारक है। जिस जिस में लकारादि प्रत्यय होते हैं उस उस कथित कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है, श्रौर जो श्रकथित है कि जिस में किसी विभक्ति की प्राप्ति नहीं, उस के शेष होने से वहां षष्ठी हो जाती है। २२॥

६५१-का०-कारकं चेद्रिजानीयाद्यां यां मन्येत सा अवेत्॥ २३॥ म०१।४। ५१॥

श्रीर जिसको श्रकथित जानते हो, उसको जो कारक जानो तो जिस जिस कारक संज्ञा में उसकी प्रवृत्ति हो सकती हो, वही विभक्ति उसमें करनी चाहिये।

जो उस अकथित की अपादान संज्ञा हो सकती हो, तो वहां पश्चमी विभक्ति करनी चाहिये। जैसे—दुह्यते गो: पय:। याच्यते पौरवात्कम्बल:।। २३॥

पूर्वकारिका से जो कथित कर्म में लकारादि प्रत्ययों का विधान किया, सो किसी किसी ब्राचार्य्य का मत है। ब्राब तीसरी कारिका से पाणिनिजी का मत दिखलाते हैं—

1.

६४२-का०-

कथितेश्मिहिते त्वविधिस्त्वमितिर्गुणकर्माणि लादिविधिःस परे। भ्रवचेष्टितयुक्तिषु चाप्यगुणे तदनल्पमतेर्वचनं स्मरत ॥२४॥ म॰ १।४। ५१॥

जो कथित कर्म में लकारादि प्रत्यय होते हैं, यह तुम्हारी बुद्धि से तुमने विधान किया है '। परन्तु पाणिनिजी के मत से तो गौण अर्थात् अकथित कर्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहियें।

<sup>3.</sup> यह संकेत उन जोगों की थ्रोर है कि जिन का मत प्रथम कारिका से कथित कमें में जकारादि प्रवयों का होना दिसताया है।।

जैसे (गितबुद्धि०॥१।४।४२) इस आगे के (३०) सूत्र में गौण कर्म में लकारादि प्रत्यय होते हैं, वैसे यहां भी हों—गौर्दुद्यते पय:। गौर्दोग्धव्या पय:। गौर्दुग्धा पय:। गौर्देग्धा पय:, इत्यादि। जहां अप्रधान गौ कर्म में लकार्याद् प्रत्यय होते हैं, वहां अप्रधान होते होते हैं, वहां अप्रधान होते होते होते हैं। अप्रिक्त होने से प्रथमा और पय: के अनिभिद्दित होने से द्वितीया विभक्ति होती है।

तथा ध्रवयुक्ति=अकर्मक श्रौर चेष्टितयुक्ति=गत्पर्थक धातुश्रों के श्रगुणे=कथित कर्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहियें। जैसे —श्रक्षमंक —श्रासितव्यो देवदत्तो यञ्चदत्तेन। गत्पर्थक —श्रजा नेतव्या प्रामम्। महाभाष्यकार पतञ्जिल मुनि कहते हैं कि हे वैयाक-रण लोगो! श्रगाध बुद्धिवाले पाणिनि श्राचार्य का यह मत है, तुम लोग जानो॥ २४॥

अब जो मत त्रान्य वहुत आचायों का है, सो चौथी कारिका से दिखाते हैं—

६५३-का०-प्रधानकर्मण्याख्येये लादीनाहुर्द्विकर्मणास्। अप्रधाने दुहादीनां ण्यन्ते कर्त्तुश्च कर्मणः॥ २५॥

स॰ १ । ४ । ५१ ॥

जो द्विकर्मक धातु हैं, उनके प्रधान कथित कर्म्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहियें। जैसे-श्रजां नयित ग्रामम्। श्रजा नीयते ग्रामम्। श्रजा नीता ग्रामम्। यहां प्रधान कथित श्रजा कर्म्म है, उस में लकारादि के होने से प्रथमा विभक्ति, श्रोर ग्राम में श्रन-मिहित होने से द्वितीया होती है।

तथा दुहादि अर्थात् जो धातु प्रथम कारिका में गिनाये हैं, उनके अकथित अर्थात् गौण कर्मा में लकारादि प्रत्यय होने चाहियें। इस के उदाहरण दे चुके हैं।

श्रीर एयन्तावस्था में जिन धातुश्रों के जिस कर्त्ता की कर्म संज्ञा होती है, उन के उसी कर्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहियें। जैसे-यज्ञदत्तो गच्छिति ग्रामम्। यहां 'यज्ञदत्त' गमधातु का प्रथम स्वतन्त्र कर्त्ता श्रीर 'ग्राम' कर्म है। जव उस का एयन्ता-वस्था में प्रयोजक कर्त्ता 'देवद्त्त' होता है, तब 'यज्ञदत्त' की कर्म संज्ञा हो जाती है—देवद्त्तो यज्ञदत्तं ग्रामं गमयित, यहां श्रप्रधान यज्ञदत्त है, उसी में लकार होने से। देवद्त्तेन यज्ञदत्तो ग्रामङ्गम्यते, यहां गौण कर्म्म यज्ञदत्त में प्रथमा विभिन्न होती है, श्रीर ग्राम में द्वितीया होजाती है।

यह चौथी कारिका से जो लकाशदि प्रत्यय विधान में व्यवस्था की है, सो बहुत ऋषि लोगों का सिद्धान्त हैं। इससे यही व्यवस्था सब से बलवान् है॥ २४॥

जो प्रथम कारिका में कहे हैं, उन से भिन्न द्विकर्मक धातु कितने हैं, सो पांचवीं कारिका से दिखाते हैं—

६५४-का॰-नीवह्योईरतेश्चाऽपि गत्यर्थानां तथैव च। विकम्मकेषु ग्रहणं द्रष्टव्यमिति निश्चयः॥ २६॥ म॰ १।४। ५१॥ नी, वहि, हरित श्रोर एयन्तावस्था में जिन का कर्त्ता कर्म्म होता है, वे सब द्विकर्माकों में गिने जाते हैं ॥ २६॥

अकर्मक धातु सकर्मक कैसे होते हैं, यह विषय छठी कारिका से दिखाते हैं— ६५५-का०-कालभावाध्वगन्तव्याः कर्मसंज्ञा स्वक्रमणाम् ॥२७। म०१।४। ५१॥

काल — ज्ञादि, भावं — होना, अध्वगन्तव्य — मार्ग में चलना, ये तीनों सव अकर्मकों के योग में कर्मसंज्ञक हो जाते हैं।

जैसे काल—मासमास्ते। मासं खिपिति—श्रयुक्त एक मास बैठा रहता है, श्रीर एक मास सोता है। यहां महीना कर्म्स हो गया। प्रयोजन यह है कि एक महीना बैठ के काटता है, श्रीर एक महीना सोके काटता है, तो बैठने श्रीर सोने का कर्म महीना हो गया।

भाव—गोदोहमास्ते। गोदोहं स्विपित। यहां गौ का जो दोहना भाव है, वही उसके वैठने श्रीर सोने का कर्म्म है। श्रध्वगन्तव्य—क्रोशमास्ते। क्रोशं स्विपित—सवारी में बैठ के मार्ग में चलता हुश्रा मनुष्य कोश भर वैठा कोश भर सोया, श्रर्थात् जो दो कोश वैठने श्रीर सोने में मार्ग व्यतीत किया, वही वैठने सोने का कर्म्म हो गया है॥ २७॥

६५६-वा॰-देशश्राकर्मणां कर्मसज्ञा भवतीति वक्तव्यम् ॥२८॥ अ०१।४। ५१॥

इस वार्तिक से अकर्मक धातुओं का देश भी कर्मसंज्ञक होता है। जैसे—पञ्चालान स्विपिति—कोई विमान आदि यान में वैठा हुआ पंजाब देश भर सोता ही चला गया, उसके सोने का कर्म पंजाब देश होगया॥ २०॥

६४७-का॰-विपरीतन्तु यत्कर्म तत्कल्म कवयो विदुः॥ २६॥ म॰ १।४। ५१॥

ईिप्सततम कर्म से भिन्न जो कर्म है, उस को विद्वान् लोग 'कर्म' कहते हैं। जिस के बीच में कर्म संज्ञा के सब काम नहीं किये जाते किंतु केवल द्वितीया विभक्ति मात्र ही की जाती है, तथा जिस किसी में अन्य भी कर्मसंज्ञा के कार्य होते हों, उससे जो दूसरा होता है वह विपरीत कर्म कहाता है, उसी को 'कर्म' कहते हैं। जैसे—भारं

१. यहां 'भावं भवनं भूतिं भवति देवदत्तः' जैसे भावार्थवाची भाव श्रादि शब्द भवति क्रिया के कर्मा होने से भू धातु सकर्माक हो जाता है, वैसे सब श्रकार्मक धातुश्रों की व्यवस्था जाननी । 'देवदत्त एधनमेधते' इत्यादि, यहां कृदमिहितो भावो द्रव्यवद्गवति । महाभाष्य श्र० ३ । पा० १ । सु॰ ६६ कहा है कि जो तब्यदादि प्रत्ययों से कथित भाव है, वह द्रव्य के समान होता है ॥ वहित ग्रामम्, यहां प्रधान जो भार कर्म है उसमें तो कर्म के सब कार्य्य होते हैं, श्रौर ग्राम शब्द में केवल द्वितीया विभक्ति होती है। इससे इसकी 'कल्म' संज्ञा है।

तथा—गां दोग्धि पयः,यहां प्रधान कर्म तो पय है परन्तु लकारादि प्रत्यय विधान कर्म संज्ञा के कार्य हैं, वे गो शब्द में किये जाते हैं। इससे यहां पय शब्द की 'कल्म' संज्ञा है।

यहां विशेष कल्म संज्ञा रखने के लिये कर्म शब्द के रेफ को लकारादेश (संज्ञा-छन्दसो०) इस वर्त्तिक से संज्ञा मान के किया है ॥ २६॥

६४८-गतिवुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकत्ती स णौ॥ ३०॥ अ०१।४। ४२॥

गत्यर्थक, वुद्धचर्थक, प्रत्यवसानार्थक अर्थात् भोजनार्थक, शब्दकर्मक और अकर्मक, इन धातुओं का जो णिच् प्रत्यय के पहिले कर्त्ता है, वह णिच् के हुए पश्चात् कर्मसंज्ञक हो।

गत्यर्थक—गच्छिति ग्रामं देवदत्तः, गमयित ग्रामं देवदत्तम्। याति ग्रामं देवद्त्तः, यापयित ग्रामं देवदत्तं यञ्चद्तः। यहां णिच् के पिहले का जो कर्त्ता देवदत्त है वह णिच् के पश्चात् कर्मसंज्ञक हो के उससे द्वितीया हो जाती है। बुद्धवर्थक—जानाति विप्रः शास्त्रम्, ज्ञापयित विप्रं शास्त्रम्। बुद्धवरेत देवदत्तः शास्त्रम्, बोधयित देवदत्तं शास्त्रम्।

प्रत्यवसानार्थक—ग्रश्नाति फलानि माण्वकः, ग्राशयति फलानि माण्वकम् । मुङ्क्त ग्रोदनं बालकः, भोजयत्योदनं बालकम् । शब्दकर्मक—ज्रुते धर्मं ब्राह्मणः, वाचयति धर्मं ब्राह्मणम् । उपदिशति धर्मं ब्राह्मणः, उपदेशयति धर्मं ब्राह्मणम् । ग्रक्मक—स्विपित वालः, स्वापयति धात्री बालम् । पुत्रः शेते, माता पुत्रं शाययति । यहां सर्वत्र जो श्रग्य-न्तावस्था में कर्त्ता है वही णिच् में कर्म हो गया है ।

इस सूत्र में 'गत्यर्थादि' धातुत्रों का ब्रह्ण इसिलये हैं कि — पचत्योदनं देवद्त्तः, पाचयत्योदनं देवद्त्तेन, यहां कर्म संज्ञा के न होने से कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है। श्रीए अणिकर्त्तां श्रहण इसिलये है कि —देवद्त्तो यज्ञद्त्तं गमयित, तमन्यो गमयित देवद्त्तेन, यहां णिच् के परे गम धातु का कर्त्ता है, सो दूसरे णिच में कर्म्म-संज्ञक नहीं होता ॥ ३०॥

अब आगे इस सूत्र के वार्तिक लिखते हैं—

६४६-वा०-हरोः सर्वत्र ॥ ३१ ॥ ऋ० १ । ४ । ४२ ॥

सर्वत्र त्रर्थात् दोनों पच्च में दश धातु का जो त्रर्ययन्तावस्था का कर्त्ता है, वह रयन्तावस्था में कर्मसंज्ञक होवे

पश्यति रूपतर्कः कार्षापण्यम्, दर्शयति रूपतर्कं कार्षापण्यम्, यहां रूपतर्क शब्द् की कम्मे संज्ञा होती है ॥ ३१ ॥ ६६०-वा०-आदिखादिनीवहीनां प्रतिषेधः ॥३२॥ अ०१।४।५२॥ आ०१।४।५२॥ आदि, खादि इन दो धातुओं के प्रत्यवसानार्थ होने और नी, वहि इन दो के गत्यर्थक होने से कर्मा संज्ञा प्राप्त है, इसिलये प्रतिषेध किया है।

श्रद्—श्रत्ति देवदत्तः, श्रादयित देवदत्तेन । यहां श्रग्यन्त ध्रातु के कर्त्ता देवदत्त की कर्म संज्ञा न होने से द्वितीया विभक्ति न हुई ॥ ३२ ॥

तथा बहुत आचार्यों का ऐसा मत है कि-

६६१-वा०-अपर आह-

सर्वमेव प्रत्यवसानकार्यमदेन भवतीति वक्तव्यं परस्मै-पदमपि। इदमेकामिष्यते, क्लोऽधिकरणे च ध्रौव्यगति-प्रत्यवसानार्थभ्य इति ॥ ३३॥ अ०१ ॥ ४२॥

प्रत्यवसानार्थ धातुश्रों को जितना कार्य होता है, उसमें से श्रद धातु को कुछ भी न हो, तथा निगरणार्थ मान के जो परस्मैपद ' प्राप्त है वह भी न हो।

श्रति देवदत्तः, श्रादयते देवदत्तेन, यहां श्रात्मनेपद होता है। प्रत्यवसानार्थ का एक कार्य श्रद्ध धातु को होना चाहिये—इदमेषां जग्धम् रे।

खादित देवदत्तः, खाद्यित देवदत्तेन, यहां भी श्रिणि के कर्ता देवदत्त शब्द की कर्मा संज्ञा न हुई। नी—नयित भारं देवदत्तः, नाययित भारं देवदत्तेन। यहां नी धातु के कर्ता देवदत्त की कर्मा संज्ञा न होने से उस में द्वितीया न हुई। वह—वहित भारं देवदत्तः, वाहयित भारं देवदत्तेन। यहां सर्वत्र णिच् में कर्ता की कर्म संज्ञा नहीं होती॥ ३३॥

परन्तु 'वह' धातु में इतना विशेष है कि-

६६२-वा॰-वहरनियन्तुकक्तिस्य ॥ ३४ ॥ अ० १ । ४ । ५२॥

यहां पूर्व वार्त्तिक से निषेध की श्रनुवृत्ति चली श्राती है। नियन्ता श्रर्थात् जहां सारथी 'वह' धातु का कर्त्ता न हो, वहीं कर्म संज्ञा का निषेध हो, श्रन्यत्र नहीं।

- १, परस्मैपद (निगरण्यचलनार्थेभ्यश्च ।। श्र० १ । ३ । ८७ ) इस स्त्र में निगरणार्थ शब्द प्रत्यवसानार्थ का पर्य्यायवाची है, श्रीर प्रत्यवसान तथा निगरण् इन दोनों का शब्द भेद होने से 'प्रस्मैपदमि' यह कहा है, नहीं तो प्रत्यवसान के कहने से हो ही जाता ।।
- २. 'जग्धम्' यहां श्रद धातु के प्रत्यवसानार्थं होने से श्रधिकरण कारक में क प्रत्यय विधान है, सो प्रत्यवसान से सब कार्क्यों के निषेध में इसका भी निषेध पाया था। 'एषाम्' यह कर्मों में पष्टी श्रीर 'जन्धम्' श्रधिकरण् में क प्रत्यय है। (इदमेकमिष्यते) इस से निषेध का निषेध किया है॥
- ३. पूर्व वार्त्तिक से सामान्य श्रर्थ में 'वह' धातु के श्रिण कर्त्ता की कर्म संज्ञा का प्रतिपेध है, इस वार्त्तिक से उसी का नियम करते हैं कि वह निषेध नियन्ता जहां कर्त्ता हो वहां न लगे ॥

जैसे—वहन्ति बलीवर्दा यवान्, वाहयति बलीवर्दान् यवान् । यहां कर्म संज्ञा होके द्वितीया विभक्ति हो जाती है ॥ ३४॥

६६३-वा०-अचेरहिंसार्थस्य ।। ३४॥ अ०१।४। ४२॥

यहां भी पूर्व वार्त्तिक से 'प्रतिषेधः' इस पद की अनुवृत्ति चली आती है। जो हिंसार्थ से भिन्न अर्थ में वर्त्तमान भन्न धातु, उस का अणि में जो कर्त्ता, उसकी णिच् में कर्म संज्ञा न हो।

जैसे-भचयति पिएडीं देवदत्तः, भच्चयति पिएडीं देवदत्तेन ।

इस वार्त्तिक में 'हिंसार्थ का निषेध' इसिलये हैं कि—मत्त्रयति वलीवर्दान् यवान्—खेत के छोटे २ जो वैलों से चराये। यहां खेतवाले की हिंसा समभी जाती है। क्योंकि खेत ही से उसका जीवन है। इससे कमें संज्ञा का निषेध नहीं हुआ।। ३४॥

<sup>६६४</sup>-वा॰-अकर्मकग्रहणे कालकर्मणासुपसंख्यानम् ॥ ३६॥ अ॰ १।४। ५२॥

जो अकर्मक धातुत्रों का सूत्र में प्रहण है, वहां कालकर्मवाले धातुत्रों का भी प्रहण समक्षना चाहिये।

जैसे — मासमास्ते देवद्त्तः, मासमासयित देवद्त्तम्। यहां मास प्रथम कर्म है, श्रिण के कर्त्ता देवद्त्त की कर्म संज्ञा होके द्वितीया विभक्ति हो गई है॥ ३६॥

## ्रे ६६५-हक्रोरन्यतरस्याम् ॥ ३७ ॥ अ० १ । ४ । ५३ ॥

ह त्रौर क धातु का जो त्र्रायन्तावस्था का कर्त्ता है, वह एयन्तावस्था में विकल्प करके कर्मसंज्ञक हो।

जैसे — ग्रभ्यवहारयति सैन्धवान्तैन्ध्र वैर्वा । विकारयति सैन्धवान् सैन्ध-

- १. यहां प्रेरक हांकनेवाले की विवत्ता नहीं है, इसलिये वाहन क्रिया के स्वतन्त्र कर्त्ता बैल हो गये॥
- २. यह वार्त्तिक सूत्र से ही संबन्ध रखता है। मच धातु के प्रत्यवसानार्थ होने से सामान्य अर्थों में मच धातु के अणिकर्त्ता की कर्म संज्ञा प्राप्त है। सो जहां हिंसा अर्थात् पीड़ा पहुंचाना अर्थ हो, वहीं अणिकर्त्ता की कर्म संज्ञा हो, और अहिंसा में निपेध हो जावे॥
- ३. कालकर्मवाले धातु श्रकर्मकों के समान समके जाते हैं, इसलिये श्रकर्मकों के साथ इन का उपसंख्यान किया है ॥
- ४. घातुओं के अनेकार्थ होने से कई अर्थों में कर्मसंज्ञा प्राप्त है, और कई में नहीं। जैसे— अम्यव और आक्पूर्वक ह धातु प्रत्यवसानार्थक है. वहां प्राप्त है, अन्यत्र नहीं। तथा विपूर्वक कृधातु शब्दकर्मक और कहीं अकर्मक है, वहां प्राप्त, अन्यत्र अप्राप्त। इस प्रकार यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है॥

# ६६६-वा॰-ह्रक्रोवीवचनेऽभिवादिटृशोरात्मनेपद उपसंख्या-नम् ॥ ३८ ॥ अ॰ १ । ४ । ५३ ॥

जो अभिपूर्वक वद और दश धातु का अणि में कर्त्ता है, वह एयन्तावस्था में कर्मसंज्ञक विकल्प करके हो, आत्मनेपद में।

जैसे — श्रमिवदति गुरुं देवदत्तः, श्रभिवादयते गुरुं देवदत्तेन देवदत्तं वा । पश्यन्ति भृत्या राजानम्, दर्शयते भृत्ये राजा दर्शयते भृत्यान् राजा था। यहां श्रमिपूर्वक वद धातु शब्दकर्मक श्रोर दश धातु बुद्धवर्थक है, वहां तो पूर्व सूत्र से कर्मसंज्ञा प्राप्त थी, श्रन्य श्रर्थ में नहीं। इस वार्त्तिक से सर्वत्र विकल्प करके हो जाती है, इसी से यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा कहाती है ॥ ३८॥

यह कर्मकारक पूरा हुआ।

### (३) करणकारक

६६७—साधकतमं करणम् ॥ ३६ ॥ अ०१ ॥ ४२ ॥ जो क्रिया की सिद्धि करने में मुख्य साधक हो, वह कारक करणसंज्ञक हो ॥ ३६॥ इसका फल —

६६८-कर्तृकरणयोस्तृतीया ॥ ४० ॥ अ० २ । ३ । १८ ॥ अनिभिद्वत कर्ता और करण कारक में तृतीया विभक्ति हो।

कर्ता—जै —देवद्त्तेन कृतम्; देवद्त्तेन क्रियते—देवद्त्त ने किया, यहां देवद्त्त कर्ता । श्रौर—दात्रेण यवान् लुनाति; परशुना काष्ट्रं वृश्चिति, इत्यादि—दरांति से जवों को काटता श्रौर कुल्हाड़े से लकड़ी को छीलता है, यहां दरांति श्रौर कुल्हाड़ा करण हैं ॥ ४०॥

६६९-वा॰-तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानस् ।। ४१ ॥ अ॰ २ । ३ । १८ ॥

#### प्रकृति आदि शब्दों से भी तृतीया विभक्ति हो।

- १. यहां 'खुनाति' खेत का खुनना और 'बृश्चति' बृत्त का काटना, इन क्रियाओं के मुख्य साधन दात्र और कुल्हादी हैं, इन के विना उक्त क्रिया कदाचित् नहीं हो सकती ।।
- २ यहां से नेके तृतीया विभक्ति विधायक प्रकरण में जो कुछ सूत्र वार्तिक हैं, वे अपूर्व विधायक इसिंबये समक्ते जाते हैं कि उन में तृतीया किसी से प्राप्त नहीं है।।

प्रकृत्या दर्शनीय:—यह स्वभाव से देखने योग्य है। प्रायेण वैयाकरण:—यह कुछेक व्याकरण भी पढ़ा है, इत्यादि। यहां अनिभिद्दित कर्त्ता करण कारकों के न होने से तृतीया विभक्ति नहीं प्राप्त थी, सो इस वार्तिक से विधान की है। प्रकृति आदि शब्द बहुत हैं, सो अष्टाध्यायी महाभाष्य के पढ़ने से आवेंगे॥ ४१॥

६७०-सहयुक्ते अधाने ॥ ४२ ॥ अ० २ । ३ । १६ ॥

सह शब्द युक्त अप्रधान कर्त्ता कारक में तृतीया विभक्ति होती है।

जैसे—पुत्रेण सहागतः पिता—पुत्र सहित पिता श्राया, इत्यादि । यहां पुत्र श्रप्रधान है, उस में तृतीया विभक्ति हो गई, प्रधान पिता में न हुई ॥ ४२ ॥

% ६७१-येनाङ्गविकारः॥ ४३॥ अ०२।३।२०॥

जिस अङ्ग अवयव से श्रारीर का विकार प्रसिद्ध हो, उस अवयव में तृतीया विभक्ति हो।

जैसे-शिरसा खल्वाटः। श्रद्गणा काणः-यह शिर से खल्वाट श्रीर श्रांख से काणा है, इत्यादि॥ ४३॥

६७२-इत्थंभूतलच्णे ॥ ४४ ॥ अ० २ । ३ । २१ ॥

इत्थंभूत त्रर्थात् इस प्रकार का वह है, इस त्रर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से तृतीया विभक्ति होवे।

जैसे—ग्रिप भवान् मेखलया ब्रह्मचारिणमद्राचीत्। धर्मेण सुखम्। पापेन दुःखम्, इत्यादि। यहां मेखला शब्द से ब्रह्मचारी का खरूप, धर्म से सुख ग्रीर पाप से दुःख जाना जाता है।

इत्थंभूत से भिन्न में तृतीया विभक्ति न हो । जैसे—वृत्तं प्रति विद्योतते विद्युत्, इत्यादि ॥ ४४ ॥

६७३-संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि ।। ४५ ।। अ० २ । ३ । २२ ॥

संपूर्वक क्षा धातु के अनिभिद्दित कर्म में तृतीया विभक्ति विकल्प करके होवे, पक्ष में द्वितीया हो।

मात्रा संजानीते बालः । मातरं संजानीते बालः ॥ ४४ ॥

६७४ — हेती ॥ ४६ ॥ अ॰ २ | ३ | २३ ॥ हेत्वाची शब्द में तृतीया विभक्ति हो ।

3. यहां अनभिहित कर्म में द्वितीया ही प्राप्त है तृतीया नहीं, इस कारण यह अप्राप्त विभाषा है। श्रोर उसी द्वितीया का अपवाद यह तृतीया समस्ती जाती है, पच में द्वितीया भी होती है ॥ विद्यया यशः —विद्या से कीर्त्ति होती। श्रोर—धनेन दानम्—धन से दान होता है, इत्यादि॥ ४६॥

६७५-वा॰-निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां प्रायदर्शनम् ॥ ४७ ॥ अ॰ २ । ३ । २३ ॥

निमित्त, कारण और हेतु इन तीन शब्दों और इन के सम्बन्धी शब्दों से सब

विभक्ति बहुल करके होती हैं।

जैसे—निमित्त—कि निमित्तं वसति, पठित, गच्छिति, द्रायाति, करोति, तिष्ठिति, इत्यादि । केन निमित्तेनः, कस्मै निमित्तायः, कस्मान्निमित्तातः, कस्य निमित्तस्यः, कस्मिन्नि मित्ते च । कारण्—िकङ्कारण्मः, केन कारण्नः, कस्मै कारण्यः, कस्मात् करण्यातः, कस्य कारणस्यः, कस्मिन् कारणे च वसति । हेतु—को हेतुः, कं हेतुमः, केन हेतुनाः, कस्मै हेतवेः, कस्माद्धेतोः, कस्य हेतोः, किस्मन् हेतौ च वसतीत्यादि । ४७॥

६७६-अकर्त्तरर्थेणे पश्चमी ॥ ४८ ॥ अ० २। ३। २४ ॥

ऋग अर्थ में कर्त्ताभिन्न हेतुवाची शब्दों से पश्चमी विभक्ति हो।

जैसे - शताद् बद्ध:, इत्यादि - ऋणी को सौ रुपये ऋण होने के कारण ऋण-वाले ने बांधा।

यहां 'अकर्त्तरि' ग्रहण इसलिये है कि—शतेन बन्धितः, यहां सौ रुपयों से वंधवाया। इस प्रयोजक कर्त्ता की विवक्ता होने से पश्चमी विभक्ति न हुई॥ ४८॥

९३ ४६७७-विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् ॥ ४६ ॥ अ०२ । ३ । २५ ॥

स्त्रीतिङ्ग को छोड़ के पुल्लिङ्ग वा नपुंसक तिङ्ग में वर्तमान जो गुणवाची हेतु शब्द, उससे विकल्प करके पञ्चमी विभक्ति हो।

जैसे—मौढ चाद्वद्धः। मौढ चेन बद्धः, इत्याद् —यह मूर्ख जन अपनी मूर्खता से आप ही बंधा है।

यहां 'स्रीलिङ्ग का निषेध' इसलिये किया है कि—प्रज्ञया पूजितः, इत्यादि । यहां पञ्चमी विभक्ति न हो ॥ ४६॥

६७८-षष्टी हेतुप्रयोगे ॥ ५० ॥ अ० २ । ३ । २६ ॥

हेतु शब्द के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे —िवद्याया हेतोर्गुरुकुले वसति, इत्यादि —िवद्या प्रहण के हेतु से यह ब्रह्मचारी गुरुकुल में वसता है।। ४०।।

- १. 'हेतु' उस को कहते हैं कि जिस के साथ जिसका प्रयोग हो उसका निमित्त कारण समका जावे। यहां भी विद्या यश का निमित्त कारण है॥
- २. निमित्त, कारण श्रीर हेतु शब्दों से सब वचन यथायोग्य सब कर्ता श्रीर क्रिया भी होती है, परन्तु मुख्य प्रयोजन श्राप्त लोगों के प्रयोग विषय में साधुत्व करने के लिये यह वचन है ॥

६७६-सर्वनाम्नस्तृतीया च ॥ ५१ ॥ अ०२ । ३ । २७ ॥ सर्वनामवाची विशेषण सिंदत हेतु शब्द के प्रयोग में तृतीया और षष्ठी विभक्ति हों । जैसे—केन हेतुना कस्य हेतोर्वा वसित, इत्यादि—यह जन किस हेतु से वसता है ॥ ५१ ॥

अब करण संज्ञा में जो विशेष सूत्र हैं, सो लिखते हैं—

६८०-दिवः कर्म च ॥ ४२॥ अ० १। ४। ४३॥

पूर्व सूत्र' से नित्य करण संज्ञा प्राप्त थी, उसका वाधक यह सूत्र है।

जो दिवु धातु के प्रयोग में साधकतम अर्थात् किया की सिद्धि में. मुख्य हेतु कारक है, वह कर्म्ससंज्ञक और चकार से करणसंज्ञक भी हो।

जैसे—अन्ताननीर्वा दीव्यति, इत्यादि<sup>२</sup>—पासों से खेलता है ॥ ४२ ॥

६८१-परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् ॥ ४३ ॥ अ०१ । ४ । ४४ ॥

यहां भी (साधक ।। ग्र०१। ४२) इस पूर्व (३६) सूत्र से नित्य करण संज्ञा पाती थी, सो इस सूत्र से करण ग्रौर पत्त में संप्रदान संज्ञा की है।

परिक्रयण अर्थात् जो सब प्रकार खरीदने अर्थ में साधकतम कारक है, वह संप्रदानसंक्षक विकल्प करके हो, और पत्त में करण्संक्षक हो।

जैसे-शताय शतेन वा परिक्रीणाति, इत्यादि-सौ रुपयों से खरीदता है ॥ ४३॥ यह करणकारक पूरा हुआ।

#### (४) सम्प्रदानकारक

६८२-कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ॥५४॥ अ०१।४। ३२॥ अत्यन्त इष्ट पदार्थ समस्र के जिसके लिये देने का अभिप्राय किया जाय, वह कारक सम्प्रदानसंज्ञक होवे॥ ४४॥

१. पूर्वसूत्र—( साधकतमं करण्म् ॥ घ्र० १ । ४ । ४२ ) कारकीय—३६ ॥

२. इत्यादि सूत्रों के उदाहरणों में केवल करण संज्ञा होके तृतीया विभक्ति प्राप्त थी, उसके ये सूत्र अपवाद हैं। बहुन्यापक उत्सर्ग श्रोर अल्पन्यापक अपवादसंज्ञक, उत्सर्ग सूत्रों ही के विषय में अपवाद सूत्र प्रवृत्त होते, श्रोर अपवाद सूत्रों के विषय में उत्सर्ग सूत्र प्रवृत्त होते, किन्तु अपवाद विषयों को छोड़ के उत्सर्ग सूत्रों की प्रवृत्ति होती है, ऐसा सर्वत्र समक्तना चाहिये।

इसका फल-

६८३-चतुर्थी संप्रदाने ॥ ४५ ॥ अ० २ । ३ । १३ ॥

संप्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति हो।

जैसे-शिष्याय विद्यां ददाति', इत्यादि-श्राचार्य शिष्य को विद्या देता है।। ११॥

६८४-वा॰-चतुर्थीविधाने तादर्थ्य उपसंख्यानस् ॥ ५६॥ अ॰ २।३।१३।

तादर्थ्य श्रर्थात् जिस कार्य के लिए कारणवाची शब्द का प्रयोग किया हो, उस कार्य्यवाची शब्द से चतुर्थी विभक्ति होवे।

जैसें यूपाय दारु। कुएडलाय हिरएयम्, इत्यादिं —यह खंभा के लिये काष्ट्र, श्रौर कुंडल के लिये सोना है ॥ ४६ ॥

६८४-चा०-कुलृपि संपद्यमाने ॥ ५७॥ अ०२।३।१३॥ जो क्रृप धातु का उत्पन्न होनेवाला कारक है, उसमें चतुर्थी विमक्ति हो। जैसे-मूत्राय कल्पते यवाग् । विद्याये कल्पते बुद्धिमान्, इत्यादि-मूत्र के उत्पन्न करने में यवागृ श्रोर विद्या पढ़ने के लिये बुद्धिमान् समर्थ होता है॥ ५७॥

६८६-वा॰-उत्पातेन ज्ञाप्यमाने ॥ ४८ ॥ अ॰ २ । ३ । १३ ॥

श्राकाश से विजली के चमकने श्रीर श्रोले पत्थर श्रादि गिरने को 'उत्पात', कहते हैं। उस उत्पात से जो बात जानी जावे, वहां चतुर्थी विभक्ति होवे।

जैसे — वाताय किपला विद्युद्।तपायातिलोहिनी । कृष्णा सर्वविनाशाय दुर्भिचाय सिता भवेत् — पीली बिजली जो चमके तो वायु अधिक चले, इत्यादि ॥ ४८ ॥

६८७ वा॰ - हितयोगे च ॥ ५६ ॥ अ॰ २ | ३ | १३ ॥ हित शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति हो ।

जैसे — हितमरोचिकिने पाचनम्, इत्यादि — जिस की रुचि भोजन पर न हो उसके लिये पाचन श्रोषध हितकारी है।। ४६॥

विष्य कियार्थोपपदस्य च कमीणि स्थानिनः ॥६०॥ अ० २।३।१४॥ अनिविद्य कर्मकारक में द्वितीया विभक्ति पाती थी, उसका अपवाद यह सूत्र है।

१. यहां अत्यन्त इष्ट पदार्थ विद्या है, इसी से उसकी कर्म संज्ञा हो के द्वितीया हुई है । और विद्या जिस शिष्य के लिये देने का अभिप्राय है उसी की संप्रदान संज्ञा होकर च्तुर्थी होती है ।।

२. यहां से म्रागे चतुर्थी-विधान-प्रकरण में जितने सूत्र वार्तिक लिखेंगे, उनमें संप्रदान संज्ञा के न होने से चतुर्थी प्राप्त नहीं, क्योंकि यहां कमें से किसी का म्राभिप्राय सिद्ध नहीं किया जाता, इसीलिये यह सब प्रकरण है। जहां किया के लिये किया हो, वहां अप्रयुज्यमान धातु के अनिभिद्दित कर्मकारक में चतुर्थी विभक्ति हो।

जैसे — वृकेभ्यो वजित (वृकान् हन्तुं वजित ) इत्यादि — भेड़ियों को मारने जाता है। यहां जो वृकों को मारना किया है, सो हन धातु अप्रयुज्यमान है।

यहां 'कर्म' ग्रहण इसिलये है कि — वृकेम्यो व्रजत्यश्वेन, श्रश्च शब्द में चतुर्थी न हो। श्रीर 'स्थानि' ग्रहण इसिलये है कि — वृकान् इन्तुं वजित, यहां प्रयुज्यमान के होने से चतुर्थी विभक्ति नहीं हुई॥ ६०॥

## ६८६-तुमर्थाच भाववचनात् ॥ ६१ ॥ अ०२ । ३ । १५ ॥

जहां श्रप्रयुज्यमान कियाथोंपपद धातु के कर्म का वाची तुमर्थभाववचन प्रातिपदिक हो, वहां उससे चतुर्थी विभक्ति हो।

जैसे—इष्टये वजित (इष्टिं कर्तुं वजित ), इत्यादि—पौर्णमासी आदि में होम करने को जाता है।

यहां 'तुमर्थ' प्रहण इसलिये है कि-पाकं करोति, यहां चतुर्थी न हो ॥ ६१ ॥

६६०-नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषडयोगाच्च ॥ ६२ ॥ अ०२।३।१६॥

नमस्, खस्ति, खाहा, खधा, श्रतम् श्रौर वषट् इन शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होवे।

नमस्ते रुद्ध मन्यवे। स्वस्ति शिष्याय। श्रम्नये स्वाहा। स्वधा पितृभ्यः । श्रतं । मल्लो मल्लाय। वर्षा डन्द्राय, इत्यादि ।। ६२॥

६६१-वा॰-अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणं कर्त्तव्यस् ॥६३॥ अ०२।३।१६॥

#### त्रलं शब्द से सामर्थ्यवाचक का प्रहण होना चाहिये।

- 1, यहां इष्टि शब्द कियार्थोपपद करोति धातु का भाववचन कर्म है, श्रौर व्रजन क्रिया इष्टि-संपादन के लिये है, इसी से इसको क्रियार्थाकिया कहते हैं।। विभक्ति होवे।
- २. प्राया के लिये नमः=श्रन्न । श्रिप्ति में स्वाहा=संस्कृत हिवे । पितरों श्रर्थात् पिता श्रादि ज्ञानियों से स्वधा श्रर्थात् श्रपने योग्य सुशिचा । मन्न को जीतने में मन्न ही समर्थ । इन्द्र=विजली की विद्या ग्रह्या करने के लिये उत्तम क्रिया श्रच्छी होती है ॥
- ३. पूर्व सूत्र में जो 'श्रलं' शब्द पढ़ा है, उसी का शेप यह वार्तिक है। 'श्रलं' शब्द के चार श्रश्ं हैं भूषण; पर्व्याप्ति श्रशंत् सामर्थ्य; समाप्ति श्रीर निषेध। इन सब श्रथों में इसके योग में चतुर्थी प्राप्त थी, सो नियम हो गया कि पर्व्याप्ति श्रथं में हो तो श्रीर सामर्थ्यवाची शब्दों के योग में भी हो जावे।।

क्योंकि — त्रलं कुरुते कम्याम्, यहां भूषण त्रर्थं में चतुर्थी विभक्ति न हो। त्रीर — प्रभुमें स्नो मङ्गाय। प्रभवति मङ्गो मङ्गाय, यहां त्रलं के पर्य्यायवाची प्रभु त्रीर प्रभवति शब्द के योग में भी चतुर्थी विभक्ति हो जावे ॥ ६३॥

43 ६६२-मन्यकर्मस्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ।।६४॥ अ० २।३।१७॥

इस सूत्र में मन्य निर्देश दिवादि गण के 'मन' धातु का किया है।

जहां मन्य धातु के अप्राणिवाची अनिभहित कर्म में तिरस्कार अर्थ विदित होता हो, तो वहां विकल्प करके चतुर्थी विभक्ति हो, पद्म में द्वितीया।

त्वां तृ एं मन्ये। त्वां तृ णाय मन्ये, इत्यादि—मैं तुभ को तृ ए के तुल्य मानता

हूं, यह तिरस्कार है।

यहां दिवादि विकरण के प्रहण से—त्वां तृणं मन्ये, यहां चतुर्थी नहीं होती।
यहां 'मन्य कर्म' प्रहण इसिलये हैं कि—त्वां तृणं जानामि, यहां चतुर्थी नहो।
'श्रनाद्र' प्रहण इसिलये हैं कि—वाचं मन्ये सरस्वतीम्, यहां चतुर्थी नहो।
श्रीर 'श्रप्राणि' प्रहण इसिलये हैं कि—काकं मन्ये त्वाम्, इत्यादि में चतुर्थी विभक्ति
नहो॥ ६४॥

६६३-वा०-त्रमावादिष्विति वक्तव्यम्॥६४॥ अ० २ । ३ । १७॥

जो इस सूत्र में अप्राणी का प्रहण किया है, उसके स्थान में वार्तिकरूप 'श्रनावा-दिखु' ऐसा न्यास करना चाहिये। क्योंकि कहीं २ प्राणीवाची मन्य धातु के कर्मा में भी चतुर्थी होती है।

जैसे-न त्वा श्वानं मन्ये। न त्वा श्रुने मन्ये, इत्यादि-मैं तुभे कुत्ते के समान

भी नहीं मानता ॥ ६४ ॥

सम्प्रदान संज्ञा में कर्म प्रहण इसिलये है कि—स्गतकाय कन्यां द्दाति, इत्यादि—ब्रह्मचर्यव्रत से पूर्णविद्या पढ़े हुए सुशील पुरुष को कन्या देता है। यहां कन्या की संप्रदान संज्ञा न हो जावे। 'यं और स' इन दो शब्दों का प्रहण इसिलये है कि—अप्राप्त की संप्रदान संज्ञा न हो जावे। तथा 'श्रमि श्रोर प्र' श्रहण इसिलये है कि—सब काल में संप्रदान संज्ञा हो जावे, श्रर्थात् दिया था, देता है और देगा। श्रन्यथा श्रमि प्र न हों तो वर्तमान काल ही में संप्रदान संज्ञा होती, श्रन्यत्र नहीं।

६६४-वा॰-कर्मणः करणसंज्ञा वक्तव्या संप्रदानस्य च कर्मसंज्ञा॥६६॥ अ०१।४।३२॥

इस वार्तिक से कम्मी की तो करण और संप्रदान की कमी संज्ञा होती है।

१, यहां मन्य धातु से अनिसिहत कर्म में केवल द्वितीया विभक्ति ही पार्ती है, उसी का बाधक यह सूत्र है। और इसीलिये यह अप्राप्त विभाषा कहाती है॥

जैसे—पंश्रना रुद्दं यजते (पशुं रुद्राय द्दातीत्यर्थः), इत्यादि—रुद्ध अर्थात् मध्य विद्वान् को पशु देता है। यहां पशु तो कर्म है, उसकी करण संज्ञा हो के तृतीया विभक्ति। हो गई। रुद्र नाम किसी मध्यम विद्वान् को पशु देता है।। ६६।।

## ६६५-रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ॥ ६७ ॥ अ० १ । ४ । ३३ ॥

जो रुच्यर्थक धातुत्रों के प्रयोग में तृप्त होनेवाला कारक है, वह संप्रदानसंज्ञक हो। जैसे — प्रह्मचारियों रोचते विद्या, इत्यादि — प्रह्मचारी अर्थात् नियमपूर्वक विद्या पढ़नेवाला मनुष्य विद्या से प्रसन्न और तृप्त होता है।

यहां 'प्रीयमाण' प्रहण इसिलये हैं कि—विद्या शब्द की संप्रदान संद्वा न हो॥ ६७॥

#### ६६६-श्राघन्हुङ्स्थादापां ज्ञीप्स्यमानः॥ ६८॥ अ०१।४। ३४॥

श्लाघ, न्हुङ्, स्था श्रीर शप, इन धातुश्रों के प्रयोग में जिस को जानने की इच्छा की जावे, वह कारक संप्रदानसंज्ञक होवे।

जैसे—पुत्राय श्लाघते। जाराय न्हुते। विद्यायै तिष्ठते। दुष्टाय शपते', इत्यादि—यह स्त्री पुत्र की प्रशंसा, व्यभिचारी को दूर करती, विद्या के लिये खड़ी, और दुष्ट को शाप देती है।

यहां 'ज्ञीप्स्यमान' ब्रह्ण इसलिये है कि जिस को जनावे उसी की संप्रदान संज्ञा होवे, धर्म की न हो जाय। जैसे पिता पुत्राय धर्म श्लाघते, इत्यादि ॥ ६८॥

### ६६७-धारेरुत्तमणीः ॥ ६६ ॥ अ०१ । ४ । ३४ ॥

जो किसी को ऋगु देवे वह 'उत्तमर्गं' कहाता है। जो एयन्त घृ धातु के प्रयोग में उत्तमर्ग् कारक है, वह संप्रदानसंज्ञक हो।

जैसे—देवदत्ताय शतं सहस्रं वा धारयित, इत्यादि—देवदत्त के सी वा हजार रूपेये ऋण यज्ञदत्त धराता है। यहां देवदत्त ऋण का देनेवाला होने से उत्तमर्ण और यज्ञदत्त लेनेवाला होने से अधमर्ण कहाता है। यहां शेष कारक के होने से षष्ठी विभक्ति पाती थी, उस का अपवाद संप्रदान संज्ञा हो के चतुर्थी विभक्ति हो जाती है।

'उत्तमर्गं' प्रहण इसिलये है कि उस सो वा हजार की संप्रदान संज्ञा न हो जाय ॥ ६६ ॥

### ६६८-स्पृहेरीप्सितः ॥ ७० ॥ अ० १ । ४ । ३६ ॥

जो स्पृह धातु के प्रयोग में ईप्सित ऋर्थात् जिस पदार्थ के प्रहण की इच्छा होती है, वह संप्रदानसंज्ञक हो।

१. यहां दुष्ट को पुकारना है, वह उसी को जनाया जाता है, इसकिये वह संप्रदान है ॥

जैसे—धनाय स्पृह्यति, इत्यादि—भोगी मतुष्य धन मिलने की इच्छा करता है। यहां धन उस को इष्ट है, इस से धन की संप्रदान संज्ञा हो के चतुर्थी विभक्ति हो गई। 'ईस्सित' ग्रहण इसिलये है कि—भोग के कर्त्ता की संप्रदान संज्ञान हो जाय॥ ७०॥

६६६ - कुधदुहेर्ड्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः ।। ७१॥ अ० १।४।३७॥ कुध, द्रह, ईर्च्य, अस्य इन के तुल्यार्थ धातुओं के प्रयोग में जिस के प्रति कोप किया जाय, वह कारक संप्रदानसंज्ञक हो।

जैसे —क्रुध — दुएाय क्रुध्यति । दुइ —शत्रवे दुह्यति । ईर्ध्य —सपत्न्या ईर्ध्यति । अस्य –िबदुषेऽस्यति —राजा दुए पर क्रोध, शत्रु से द्रोह, खपति की दूसरी स्त्री से अप्रीति, श्रीर मूर्ख जन विद्वान् की निन्दा करता है ।

यहां 'जिस के प्रति कोप हो' इसका ग्रहण इसिलये हैं कि — भिजुको भिजुक-मीर्धित, इत्यादि में सम्प्रदान संज्ञा न हो ॥ ७१ ॥

७००-कुधद्वहोरूपमृष्ट्योः कर्म ॥ ७२॥ अ०१।४।३८॥

पूर्व से सम्प्रदान संज्ञा प्राप्त थी, उसका बाधक यह सूत्र है।

उपसर्गयुक्त कुध और दुइ धातु के प्रयोग में जिस के प्रति कोप हो, वह कारक

जैसे —दुप्रमिकुध्यत्यभिद्रुह्यति वा, इत्यादि ।

यहां—'उपसर्गयुक्त' का प्रहण इसिवये है कि—दुष्टाय कुध्यति दुह्यति वा, इत्यादि में कर्म संज्ञा न हो जाय ॥ ७२ ॥

७०१-राधीच्यार्यस्य विप्रश्नः ॥ ७३ ॥ अ० १ । ४ । ३६ ॥

राध ग्रौर ईन्न धातु के प्रयोग में जिस का विविध प्रकार का प्रश्न हो, वह कारक संप्रदानसंज्ञक हो।

जैसे-शिष्याय विद्यां राध्नोति ईत्तते वा गुरुः, इत्यादि-श्राचार्य विद्यार्थी के विद्या को सिद्ध श्रीर प्रत्यत्त कराता है।

यहां 'राध स्रीर ईत्त' धातु का प्रहेण इसिलये है कि — इनके योग से स्रम्यत्र संप्रदान संज्ञा न हो। 'यस्य' प्रहेण इसिलये है कि — विप्रश्न की संप्रदान संज्ञा न हो जावे॥ ७३॥

७०२-प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता ॥ ७४ ॥ ऋ० १ । ४ । ४० ॥ जो प्रति झौर आङ्पूर्वक श्रु धातु के प्रयोग में पूर्व का कर्त्ता कारक हो, वह संप्रदानसंग्रक होवे ।

१. यह सूत्र कर्मसंज्ञा का अपवाद है।।

जैसे—पूर्वं देवद्त्तो विद्यां याचते । देवद्त्ताय विद्यां प्रतिश्रृणोत्याश्रृणोति वा विद्यान्, इत्यादि - प्रथम देवद्त्त विद्या को चाहता है, उसको विद्यान् सुनाता है ।

'पूर्वस्य' ग्रहण इसिलये हैं कि —िवद्वान् की संप्रदान संज्ञा न हो जाते। यहां 'प्रति और आङ्' का ग्रहण इसिलये हैं कि — ब्रह्मचर्य की प्रतिक्वा और आरम्भ से अन्त तक पढ़ना और पढ़ाना चाहिये।। ७४।।

७०३-अनुप्रतिगृणश्च ॥ ७५ ॥ अ०१ । ४ । ४१ ॥

जो अनु और प्रतिपूर्वक गृ धातु के प्रयोग में पूर्व का कर्त्ता कारक हो, तो यह संप्रदानसंज्ञक हो।

जैसे —शान्ताय विद्यामनुगृणाति प्रतिगृणाति वा, इत्यादि —शान्तिमान् विद्यार्थी के लिये विद्या का उपदेश करता है।

इस सूत्र में चकार पूर्व के कर्त्ता की अनुवृत्ति के लिये है ॥ ७४॥ यह संप्रदानकारक पूरा हुआ॥

# ( ५) अपादानकारक

७०४-ध्रुवमपायेऽपादानम् ॥ ७६ ॥ ऋ० १। ४। २४॥

'ध्रुव' उस को कहते हैं कि जो पदार्थों के पृथक् होने में निश्चल रहे। वह कारक अपादानसंज्ञक हो॥ ७६॥

इस का फल-

७०५-अपादाने पश्चमी ॥ ७० ॥ अ० २ । ३ । २८ ॥

श्रपादान कारक में पश्चमी विभक्ति हो।

जैसे — प्रामादागच्छति । वृद्धात्पर्यां पतित, इत्यादि — प्राम से मनुष्य आता है । वृद्ध से पत्ते गिरते हैं । यहां प्राम श्रीर वृद्ध निश्चल हैं, उनमें पश्चमी होजाती है ।

(प्रश्न) जहां वियोग के बीच में दोनों चलायमान हों वहां किसकी अपादान संज्ञा समभानी चाहिये। जैसे – रथात्प्रवीतात्पिततः। धावतस्त्रस्ताद्वाऽश्वात्पिततः—भागते हुए रथ से गिरा; भागते वा डरते हुए घोड़े से गिरा। यहां रथ और घोड़े की अपादान संज्ञा नहीं होनी चाहिये, क्योंकि वे तो चलायमान हैं, श्रीर गिरा हुआ मनुष्य निश्चल होता है।

(उत्तर) जिस रथ वा घोड़े के स्थल पीठ से गिरता है वह निश्चल है, उसकी स्थापदान संज्ञा की है ॥ ७३॥

७०६-वा०-पश्चमीविधाने ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम् ॥ ७८ ॥ अ०२।३। २८॥

जहां ल्यबन्त क्रिया का लोप हो, वहां उस के कर्म में पश्चमी विमक्ति हो। जैसे—प्रासाद्दियं ततें (प्रासादमारुख प्रेत्तते), यहां ल्यबन्त आरुख क्रिया का लोप हुआ है, उस के प्रासाद कर्म में पश्चमी विभक्ति होती है।। ७८॥

७०७-वा०-अधिकरणे च ॥ ७६ ॥ अ० २ | ३ | २८ ॥ जो ल्यवन्त किया का लोप हो, तो उसके अधिकरण में पश्चमी विभक्ति हो । जैसे-आसनात्प्रेचते, (आसन उपविश्य प्रेचते)। शयनात्प्रेचते, इत्यादि-आसन और शय्या पर बैठके देखता है । यहां शयन और आसन उपविश्य किया के अधिकरण हैं। उन में सप्तमी की प्राप्ति होने से उसी का यह अपवाद है ॥ ७६ ॥

७०८-वा॰-प्रश्नाख्यानयोश्चे।। ८०॥ अ०२।३। २८॥ प्रश्न और ब्राख्यानवाची शब्द से पञ्चमी विभक्ति हो।

जैसे—कुतो भवान्। पाटिलपुत्राद्धसिति, यहां कुतः शब्द में प्रश्नवाची के होने से खौर पाटिलपुत्र शब्द में आख्यान के होने से पञ्चमी विभक्ति हुई है ॥ ८०॥

७०६-वा०-यतश्चाध्वकालिमीणम् ॥ ८१ ॥ अ०२ । ३ । २८ ॥ जहां से मार्ग श्रोर काल का परिमाण किया जाय, वहां पञ्चमी विभक्ति हो । मार्गनिर्माण—जैसे—गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि यं।जनानि—गवीधुमान् नगर से सांकाश्य नगर चार योजन सोलह कोश दूर है । यहां गवीधुमान् से मार्ग का परिमाण होने से वहां पंचमी विभक्ति हो गई। कालनिर्माण - कार्त्तिक्या श्राग्रहायणी-

9१०-वा०-तद्युक्तात्काले सप्तमी ॥ ८२॥ अ०२।२।२८॥ जो काल के निर्माण में पंचमी विभक्ति की है, उस से उत्तर कालवाची शब्द से सप्तमी विभक्ति हो।

मासे। यहां कार्त्तिकी शब्द में पंचमी विभक्ति हो गई ॥ ८१।।

जैसे—कार्त्तिक्या त्राग्रहायणीमासे । यहां मास शब्द में सप्तमी हुई है ॥ ८२॥ ७११-वा०-अध्वनः प्रथमा च ॥ ८३॥ अ० २ । ३ । २८ ॥

<sup>9.</sup> यहां चपादान संज्ञा के न होने से पद्ममी किसी सूत्र से प्राप्त नहीं थी, किन्तु कर्म में द्वितीया प्राप्त थी, उसका यह चपवाद है ॥

र. यहां से ले के आगे इस पद्ममी विधान प्रकरण में जितने सूत्र वार्त्तिक लिले हैं, वे सब अपूर्वविधायक समक्तने चाहियें, क्योंकि वहां किसी से कोई विभक्ति का विधान नहीं किया है ॥

मार्ग के निर्माण में जो पञ्चमी विभक्ति की है, उस से उत्तर मार्गवाची शृन्द से प्रथमा श्रीर सप्तमी दोनों विभक्ति हों।

जैसे —गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि । गवीधुमतः सांकाश्यं चतुर्षु योजनेषु । यहां मार्गवाची योजन शब्द से प्रथमा स्रोर सप्तमी विमक्ति हुई हैं ॥ ८३ ॥

७१२-अन्यार।दितरत्तेदिक्छव्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ॥ ८४ ॥ अ०२।३।२६॥

श्रन्य, श्रारात्, इतर, ऋते, दिशावाची शब्द, श्रञ्चूत्तरपद, श्राच् श्रीर श्राहि प्रत्ययान्त श्रव्यय, इन शब्दों के योग में पंचभी विभक्ति होवे।

जैसे — अन्य - अन्यो देवद्त्ताद्यञ्चद्तः। आरात् — आराच्छूद्राद्रजकः। इतर — स्माद्तिरं न गृह्णीयात्। ऋते — ऋते झानां मुक्तिः। दिग्वाचीशब्द — पूर्वो आमात्कूपः। अञ्चूत्तरपद — प्राग्यामात् तडागम् । आच् — दिच्छा कूपाद् वृत्तः। आहि — दिच्छाहि आमान्नदी, इत्यादि।

यहां दिक्' शब्द के ब्रह्ण से ब्रब्ज्यूत्तरपद के उदाहरण भी सिद्ध हो जाते, फिर 'ब्रब्ज्यूत्तरपद' ब्रह्ण इसलिये हैं कि ब्रागे के सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त है, उस को बाध कर पंचमी ही हो जावे॥ ८४॥

७१३-षष्ठचतसर्थप्रत्ययेन ॥ ८४ ॥ अ० २ । ३ । ३० ॥

श्रतसुच्प्रत्ययान्त शब्दों के श्रथों में वर्त्तमान जो श्रव्यय शब्द है, उस के योग में पष्टी विभक्ति हो।

जैसे <u>दिचि गतो प्राप्तस्य वाटिका</u>। उपरि ग्रामस्य गोशाला, इत्यादि। यहां ग्राम शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई है ॥ ८४॥

७१४-एनपा द्वितीया ॥ ८६ ॥ अ० २ । ३ । ३१ ॥

अतसर्थ प्रत्ययों में एनए प्रत्यय के योग में पूर्व सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी, उस का अपवाद यह सूत्र है।

एनप्प्रत्ययान्त अञ्यय के योग में द्वितीया हो।

जैसे-दिश्वान प्रामं मुंजाः, इत्यादि-प्राम से दाहिनी त्रोर मूंज का वन हैं ॥ ८६॥

७१४-पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥ ८७ ॥ अ०२।३।३२॥

पृथक्, विना, नाना, इन तीन अञ्यय शब्दों के योग में विकल्प करके तृतीया विभक्ति हो, पच्च में पंचमी।

जैसे-पृथक् स्थानेन । पृथक् स्थानात् । विना घृतेन । विना घृतात् । नाना पदा-र्थेन । नाना पदार्थात् । यं जो 'सिद्धान्तकौमुदी' में द्वितीया विभक्ति की अनुवृत्ति कर के उदाहरण दिये हैं, वे इसी सूत्र के महाभाष्य से विरुद्ध होने से अग्रुद्ध हैं ॥ ८७॥

७१६-करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्कतिपयस्यासत्ववचनस्य ॥ ८८ ॥ अ०२।३।३३॥

करण कारक में वर्त्तमान जो अद्रव्यवाची स्तोक, अल्प, कुच्छु और कतिपय शब्द, उन से तृतीया और पंचमी विभक्ति हों।

जैसे—स्तोकेन स्तोकाद्वा मुक्तः। अल्पेनाल्पाद्वा मुक्तः। कुच्छ्रोण कुच्छ्राद्वा मुक्तः। कित्येन कितप्याद्वा मुक्तः, इत्यादि—थोडे किचित् कप्ट और कुछ दिनों में छूट गया।

यहां 'असत्व वचन' का ग्रहण इसिलये हैं कि—अहपेन जलेनं तृत: अधे हैं जल तृप्त हुआ, इत्यादि में पंचमी विमिक्त न हो। यहां 'करण' ग्रहण इसिलये हैं कि—अहपं त्यजित -थोड़े को छोड़ता है, इत्यादि में तृतीया पंचमी विभक्ति न हों॥ ८८॥

७१७-दूरान्तिकार्थैः षष्ठयन्यतरस्याम् ।। ८६ ।। अ०२। ३। ३४ ।।
दूर और समीपवात्री और इन के पर्यायवाची शब्दों के योग में विकल्प कर

के पष्टी, और पत्त में पश्चमी हों।

जैसे - दूरं विष्रकृषं वा ग्रामस्य, दूरं विष्रकृषं वा ग्रामाद् वनम् । श्रन्तिकं समीपं वा ग्रामस्य, ग्रामाद्वाऽऽरामाः, इत्यादि ग्राम के दूर जंगल श्रौर समीप बाग हैं। यहां 'विकल्प की श्रमुवृत्ति' इसलिये है कि पत्त में पंचमी विभक्ति होजावे ॥ ८॥

७१८- दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च ॥ ६०॥ अ०२।३।३५॥ दूर श्रोर समीपवाची तथा इन के पर्याय शब्दों से द्वितीया विभक्ति हो, चकार से विकल्प करके पछी श्रोर पत्त में पंचमी भी हो।

दूरं दूरस्य दूराद्वा ग्रामस्य । विश्वकृष्टं विश्वकृष्टस्य विश्वकृष्टाद्वा ग्रामस्य पर्वताः । श्रान्तिकमन्तिकस्यान्तिकाद्वा ग्रामस्य शिरीषाः । समीपं समीपस्य समीपाद्वा ग्रामस्य वाटिकाः, इत्यादि ॥ ६० ॥

श्रव श्रपादान संज्ञा में जो विशेष सूत्र हैं, उन्हें लिखते हैं—

७१६-भीत्रार्थानां भयहेतुः ॥ ६१ ॥ अ० १ । ४ । २५ ॥

जो भयार्थ त्रीर रत्तार्थ धातुत्रों के प्रयोग में भय का हेतु कारक है, उस की अपादान संज्ञा हो।

जैसे-वृक्तेभ्यो विभेति। वृक्तेभ्य उद्घिजते। चोरेभ्यस्रायते। चोरेभ्यो रक्तर्ति, इत्यादि-भेड़ियों से डरता और चोरों से रक्ता करता है।

१. यहां वृक और चोर भय के हेतु हैं, इस कारण उनकी श्रपादान संज्ञा होकर पंचमी विभक्ति होती है।।

यहां 'भय हेतु' का प्रहण इसिलये है कि—गृहे बिभेति। गृहे त्रायते, इत्यादि में पंचमी विभक्ति न हो॥ ६१॥

७२०-पराजेरसोढः ॥ ६२ ॥ अ० १ । ४ । २६ ॥

परापूर्वक जिथातु के प्रयोग में श्रसोढ श्रर्थात् जिसको न सह सके, वह कारक श्रपादानसंज्ञक हो।

जैसे - अध्ययनात् पराजयते । वलवतो धर्मात्मनो निर्वलोऽधर्मी पराजयते, इत्यादि । यहां 'असोढ' प्रहण इसिलये हैं कि-शत्रून् पराजयते, इत्यादि में अपादान संक्षा होकर पंचमी न हो ॥ १२ ॥

७२१-वारणार्थानामीप्सितः ॥ ६३ ॥ अ० १ । ४ । २७ ॥

'वारण' उसको कहते हैं कि कुछ काम करते हुए को वहां से हटा देना। वारणार्थक धातुत्रों के प्रयोग में जो श्रत्यन्त इप्ट कारक है उसकी श्रपादान संज्ञा हो।

जैसे--सस्येभ्यो गां वारयित निवर्त्तयित निषेधित वा, इत्यादि-धान्य के खेतों से गौत्रों को हटाता है। इस काग्ण खेत ऋत्यन्त इष्ट हुए।

यहां 'ईप्सित' ब्रह्म इसिलये हैं कि—गोष्ठे गां वारयति, इत्यादि में अपादान संज्ञा न हो ॥ ६३ ।

% ७२२-अन्तर्द्धी येनादर्शनमिच्छति ॥ ६४ ॥ अ०१ । ४ । २८ ॥

त्रन्ति द्रिश्यात् छिप जाने त्रर्थं में, जिस से ऐसी इच्छा करे कि मुक्तको वह न देखे, वह कारक त्रपादानसंज्ञक हो।

जैसे—उपाध्यायादु बालोऽन्तर्द्धत्ते, इत्यादि—पढ़नेहारे से लड़का छिपता है।

यहां 'श्रन्तिर्छि' ग्रहण इसिलिये हैं कि - दुष्टान्न दिहत्तते, इत्यादि में श्रपादान संज्ञा न हो। 'इच्छ्रित' ग्रहण इसिलिये हैं कि देखने की इच्छा न हो श्रोर सामने से दिखाता हो तो भी श्रपादान संज्ञा न हो॥ ६४॥

वु ३ ७२३ - आख्यातोपयोगे ।। ६४ ॥ अ०१ । ४ । २६ ॥

जो उपयोग अर्थात् नियमपूर्वक पढ़ने में पढ़ानेवाला कारक है, उस की अपादान संज्ञा हो।

जैसे-उपाध्यायाद्धीते, इत्यादि-वेतन लेनेवाले से पढ़ता है।

यहां 'उपयोग' ग्रहण इसिलये है कि—नटस्य वच: श्रुणोति, इत्यादि में नियम-पूर्वक विधान के न होने से अपादान कारक संज्ञा न हो ॥ ६४ ॥

७२४-जानिकर्त्तुः प्रकृतिः ॥ ६६ ॥ अ०१ । ४ । ३० ॥ जन धातुकाजो कर्त्ता उसकी प्रकृति स्रर्थात् जो कारण है,वह स्रपादानसंद्रक हो।

जैसे — अनेवें घूमो जायते । अव्यक्तात्कारणाद्व यक्तं कार्यं जायते — अग्नि से घुंआ, श्रीर सूच्म श्रदृश्य नित्यखरूप कारण से स्थूल, दृश्य, श्रनित्य रूप कार्य उत्पन्न होता है। यहां 'प्रकृति' ब्रह्ण इसलिये है कि-पुत्रों में गौरो जायेत. इत्यादि में कारण की

श्रपेत्ता न होने से श्रपादान संज्ञा नहीं होती ॥ ६६॥

७२५-सुवः प्रभवः॥६७॥ अ०१।४।३१॥

'प्रभव' उस को कहते हैं कि जहां से कोई पदार्थ उत्पन्न हुन्ना हो। जो भू धातु के कत्तां का प्रभव कारक है, वह अपादानसंज्ञक हो।

हिमवतो गङ्गा प्रभवति — हिमवान् पर्वतं से गङ्गा उत्पन्न होती है। इसिबये हिमवान् शब्द की ऋपादान संज्ञा हो के पंचमी विभक्ति हुई है।। ६७॥

यह ऋपादानकारक पूरा हुआ।

माइन्य निर्देश हैं के स्वापित के

जिया प्राप्त के आगे बछी कारक लिखेंगे, इस में संज्ञाप्रकरण नहीं है—

७२६-षष्टी दोषे ॥ ६८ ॥ अ०२ । ३ । ४०॥

भा०-कम्मारीनामविवक्ता शेषः-जहां कम्मे आदि कारक संज्ञा की विवक्ता न हो वह 'शेष' कहलाता है, उसमें षष्ठी विभक्ति हो।

जैसे – राह्य: पुरुष: । वृत्तस्य शाखा: । मृत्तिकाया घट:, इत्यादि ॥ ६८ ॥

७२७-ज्ञांऽविदर्थस्य करणे ॥ ६६ ॥ अ० २ । ३ । ५१ ॥

जो अविदर्थ अर्थात् अज्ञानार्थ ज्ञा धातु, उसके कर्ण कारक में षष्ठी विभक्ति होने। जैसे-श्राप्तः सर्पिषो जानीते, मधुनो जानीते -श्रीप्त घी श्रीर शहद से प्रज्वित होता है।

यहां 'ऋविदर्थ' प्रहण इसिंबये है कि-गी: खरेण वत्सं जानाति, इत्यादि में षष्टी न हो ॥ ६६ ॥

१, यहां जन धातु का कत्तां धूम है, उसकी प्रकृति=कारण श्रप्ति है, इससे उस की श्रपादान संज्ञा होकर पंचमी होती है।।

२. यहां सिप:=घी श्रीर मधु=शहद ज्ञा धातु के प्रयोग में साधकतम होने से करण हैं, वहां तृतीया विभक्ति प्राप्त थी; उसका अपवाद यह पष्टी का विधान किया है। परन्तु अर्थ तृतीया का ही बना रहता है। जैसे - वी और मधु से अमि बढता है॥

## ७२८-अधीगर्थदयेशां कर्मणि ॥ १०० ॥ अ० २ । ३ । ५२ ॥

जो अधिपूर्वक स्मरण अर्थवाला इक, इस के अर्थ के अन्य धातु, द्य और ईश हैं, इन के अनिमहित कर्म में पष्टी विभक्ति हो।

जैसे — त्रधीगर्थ — मातुरध्येति वालः । पितुः स्मरित वालः । दय — दुः खितस्य दयते । ईश — ग्रामस्येष्टे । यहां सर्वत्र द्वितीया प्राप्त थी, उसकी वाधक पष्टी है ।

श्रीर 'कर्म' ग्रहण इसलिये है कि—मातृगुणै: स्मरति वाल:, यहां करणवाची गुण शब्द के होने से षष्टी विभक्ति नहीं हुई ॥ १०० ॥

७२६-क्रुञः प्रतियत्ने ॥ १०१ ॥ अ० २ । ३ । ५३ ॥

जो प्रतियत अर्थ में वर्तमान कुञ् धातु हो, तो उसके शेष कर्स में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे—एधोदकस्योपस्कुरुते —पाककर्ता इन्धन जल तथा अन्य सब भोजन की सामग्री समीप धर के पाक बनावे ॥ १०१॥

७३०-इजार्थानां भाववचनानामज्वरेः॥ १०२॥अ०२।३। ५४%

जिन धातुत्रों के कर्ता में धातु का अर्थ रहता है, ऐसे रुजार्यक धातुत्रों में से ज्वर धातु को छोड़ के उन के शेष कर्मी में पष्टी हो।

जैसे-चोरस्य रुजति । चोरस्यामयति, इत्यादि ।

यहां 'रुजार्थ' ग्रहण इसिलये हैं कि—ग्रामं गच्छित, इत्यादि में पष्टी न हो। ग्रीर 'भाववचन' ग्रहण इसिलये हैं कि—नदी कूलानि रुजित, यहां कर्मस्थमातक रुज धातु के कर्मा में पष्टी न हो। ग्रीर 'ज्वर धातु का निषेध' इसिलये हैं कि—बाल ज्वरयित ज्वरः, यहां कर्म में षष्टी न हो॥ १०२॥

७३१-वा०-अज्वारिसंताप्ये।रिति वस्तव्यम् ॥१०३॥ अ०२।३।५४॥ जहां ज्वर धातु के कर्म्म में षष्ठी का निषेध किया है, वहां संपूर्वक तापि धातु का भी समभना चाहिये।

जैसे - चोरं सन्तापयित दुष्कर्म, यहां इस वार्त्तिक से पष्ठी का निषेश्व हो के ब्रितीया हुई ॥ १०३ ॥

७३२-आदिाषि नाथः ॥ १०४ ॥ अ०२ । ३ । ५५ ॥ जिल्हा को आशीर्वचन अर्थ में वर्त्तमान नाथ धातु हो, तो उसके शेष कर्म, कारक में पष्टी विभक्ति होवे।

२. शोष कर्म के कहने से प्रयोजन यह है कि जिस कर्म में द्वितीया की विवेत्ता ने हो है।

१. यहां प्रतियत अर्थ में ही कृष् धातु को सुद् का आगम कहा है। प्रधादक शब्द कृष् धातु का कर्म है, उस में द्वितीया प्राप्त है, सो न हो।।

जैसे—सर्पिषो नाथते। मधुनो नाथते<sup>?</sup>। यहां आशिष् शब्द से इच्छा ली जाती है। इस्रतिये कर्मवाची सर्पि शब्द में षष्टी विभक्ति हुई।

'आशिषि' प्रहणु इसिलये है कि—श्रन्नं नाथते, यहां षष्ठी न हो ॥ १०४॥

७३३-जासिनिप्रहणनाटकाथापिषां हिंसायाम् ॥ १०५॥ अ०२।३॥ ५६॥

आसि धातु चुरादि गण का, नि श्रौर प्र ये उपसर्ग साथ वा पृथक् पृथक् पूर्व हों ऐसा हन, नाट, क्राथ श्रौर पिष इन हिंसार्थक धातुश्रों के शेष कर्म में षष्ठी विभक्तिहोते।

जैसे—चोरस्योजासयित, यहां जासि धातु के चोर कर्म में षष्ठी। निप्रहण्— चोरस्य निप्रहन्ति। चोरस्य निहन्ति। चोरस्य प्रहन्ति। नाट—ग्रसुरस्योन्नाटयित। काय —दुष्टस्य काथयित। पिष—दस्योः पिनष्टि, इत्यादि।

यहां 'जासि आदि धातुओं' का परिगण्न इसिलये है कि—दुष्टं हिनस्ति, इत्यादि में षष्टी न हो। और 'हिंसा' ग्रहण इसिलये है कि—ग्रीषधं पिनष्टि, यहां हिंसा के त होने से षष्टी न हुई ॥ १०४॥

७३४-व्यवहृपणोः समर्थयोः ॥ १०६ ॥ अ०२ । ३ । ५७ ॥ समानार्थक जो वि अव पूर्वक ह और पण धातु, इन के शेष कर्मा में षष्ठी

जैसे -शतस्य व्यवहरति । शतस्य पणायति, इत्यादि ।

यहां 'समर्थ' प्रहण इसिवये है कि — विद्वांसम्पणायित, यहां पण धातु स्तुति अर्थ में है, इस कारण से इस के कर्म में षधी नहीं होती ॥ १०६॥

७३४-दिवस्तदर्थस्य ॥ १०७॥ अ०२॥ ३॥ ४८॥ व्यवद्दारार्थक द्रिब्रु धातु के शेष कर्मा में षष्ठी विभक्ति हो। कैसे-शतस्य दीव्यति, इत्यादि-सौ रुपये का व्यवद्दार करता है॥ १०७॥

७३६-विभाषोपसर्गे ॥ १०८॥ अ०२।३। ५६॥

उपसर्गेपूर्वक व्यवहारार्थक दिवु धातु के शेष कर्म में विकल्पकर के षष्ठी विभक्ति हो। जैसे शतस्य प्रदीव्यति। शतं प्रदीव्यति। यहां षष्ठी के विकल्प से पत्त में द्वितीया विभक्ति भी होती है ॥ १०८॥

७३७-द्वितीया ब्राह्मणे ॥ १०६॥ अ०२॥३।६०॥ ब्राह्मण प्रन्थों में ध्यवहारार्थ दिवु धातु के कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति हो।

१. घी चाहता है। मीठा चाहता है। यहां घी और मीठा नाथ धातु के कर्म हैं, यहां भी पढ़ी द्वितीया की बाधक है।।

जैसे—गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः। यहां गौ शब्द कर्म्मवाची है, उस में द्वितीया होती है।

अनुपसर्ग दिवु धातु के कर्मी कारक में नित्य षष्ठी विमक्ति प्राप्त है, सो द्वितीया ही हो, इसलिये यह सूत्र है ॥ १०६॥

७३८-प्रेष्यब्रुवोहिविषे। देवतासंप्रदाने ॥११०॥ अ० २।३। ६१॥

जो वह हविष् कर्म देवता अर्थात् दिव्यगुण होने के लिये दिया जाता हो, तो प्रपूर्वक दिवादिगण्याला इप धातु और व्र्धातु इनके ह्विष् कर्म में ब्राह्मण्यन्थ विषय में पष्टी विभक्ति हो।

जैसे — इन्द्रां क्रिभ्यां छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य। इन्द्राक्रिभ्यां छागस्य हविषो वपाया मेदसोऽ जुबूहि । यहां हविष् कर्म है, श्रन्य षष्ठश्चन्त पद उस के विशेषण हैं। यहां — छागं हविवेषां मेदः प्रेष्य, ऐसा प्राप्त है। सो इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति हों गई।

यहां 'प्र पूर्वक इव श्रोर ब्रू धातु' का प्रहण इसिलये हैं कि श्रामये खाग हिवर्वणां मेदो जुहुधि, इत्यादि के कर्म में बष्ठी न हो। 'हविष्' प्रहण इसिलये हैं कि स्थान समिधः प्रेच्य, यहां सिमध कर्म में बष्ठी न हो। श्रोर देवतासंप्रदान' प्रहण इसिलये हैं कि बालाय पुरोडाश प्रेच्य, यहां देवता के न होने से बष्ठी न हुई॥ ११०॥

७३६-वा॰ - हविषे।ऽप्रस्थितस्येति वक्तव्यम् ॥१११॥ अ० २।३।६१॥

सूत्र से जो हविष् कर्म में षष्ठी कही है, सो प्रिश्यत विशेषण हो तो न हो, किन्तु द्वितीया ही हो।

जैसे—इन्द्राऽग्निभ्यां छागं हविर्वयां मेदः प्रस्थितं प्रेच्य । यहां प्रस्थित विशेषणा के होने से षष्ठी न हुई ॥ १११ ॥

७४०-चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दिस ॥ ११२॥ अ० २। ३। ६२॥

पूर्वसूत्रों में ब्राह्मण शब्द से पैतरेय आदि वेद व्याख्यानों का ग्रहण होता है, और यहां छन्दः शब्द से वेदों का ग्रहण होता है, इसिलये इस सूत्र में छन्द ग्रहण किया है।

वेद विषय में चतुर्थी के अर्थ में षष्ठी विमक्ति बहुत करके हो।

जैसे - दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम् । यहां—वनस्पतिभ्यः, ऐसा प्राप्त था ॥ ११२ ॥

७४१-वा॰-षष्टचर्थे चतुर्थी वसव्या ॥ ११३॥ अ०२ । ३। ६२॥

षष्ठों के ऋर्थ में चतुर्थी विभक्ति कहना चाहिये।

जैसे —या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वो जायते। तस्याः खर्वो जायत इति प्राप्ते, इत्यादि। यहां 'तस्यै' शब्द में षष्ठी के स्थान में चतुर्थी हुई है। ११३॥

१, ६जा के अर्थ खाने पीने की वस्तु के योग से विजुली और अप्नि को उपयुक्त कर और सुनकर उपदेश भी कर ॥

# ः ७ ७१२-यजेश्च करणे ॥ ११४ ॥ अ० २ । ३ । ६३ ॥

वेद्विषयक यज धातु के करण कारक में बहुत करके षष्ठी विमक्ति हो। जैसे— घृतस्य घृतेन वा यजते। यहां करण कारक में तृतीया विमक्ति प्राप्त थी, सो उस का अपवाद होने से घृत शब्द में तृतीया श्रीर षष्ठी दोनों होती हैं ॥ ११४॥

७४३-कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे ॥ ११४ ॥ अ०२।३।६४॥

कृत्वसुच् श्रौर इसके समानार्थ प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों के प्रयोग में जो कालवाची श्रिकरणवाचक शब्द हो, तो उससे श्रधिकरण कारक में पष्टी विभक्ति हो।

ग्रेंचिक्त प्राप्त के प्राप्त है, उसका अपवाद यह सूत्र है। जैसे—दिवसस्य पंचकृत्वो मुङ्के बाल:—एक दिन में यह बालक पांच बार खाता है। दिवसस्य द्विरधीते, इत्यादि— एक दिन भर में दो बार पढ़ता है।

यहां 'कृत्वोऽर्थप्रयोग' ब्रह्ण इसिलये हैं कि—दिनमधीते। ब्रयसः पात्रे मुङ्के, इत्यादि में पष्ठी न हो। 'काल ब्रधिकरण' ब्रह्ण इसिलये हैं कि —काष्ठं द्वि:करोति, इत्यादि में पष्ठी न हो॥ ११४॥

क्रिं / ७४४ - कर्तृकर्मणोः कृति ॥ ११६ ॥ अ० २ । ३ । ६४ ॥

ि क्रिदेन्तसंबन्धी कर्ता श्रीर कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति हो। क्रिक्ति देवदत्तस्य प्रज्ञा दिवदत्तस्येज्या। पुरां भेता। क्रूपस्य खनिता।

'कर्तु कर्म' प्रहण इसिलये है कि—दात्रेण छेता, इत्यादि में षष्ठी विभक्ति न हो। श्रीर 'छत्' प्रहण इसिलये है किं— छतपूर्वी कटम्, इत्यादि तिद्धत के प्रयोग में षष्ठी न हो॥ ११६॥

. ७४५-उभग्रमासी कर्मणि ॥ ११७ ॥ अ० २ । ३ । ६६ ॥

पूर्वसूत्र से कृत्युक्त कर्ता तथा कर्म में सर्वत्र पष्टी प्राप्त है, उसका नियम करने के लिये यह सूत्र है।

जिस कृद्न्त के योग में कर्ता श्रीर कर्म दोनों में एक साथ बछी प्राप्त हो, वहां कर्म में बछी श्रीर कर्त्ता में तृतीया हो।

जैसे—ग्रोदनस्य पाको देवद्त्तेन । यहां श्रोदन कर्म में षष्ठी श्रौर श्रनभिहित के होने से देवद्त्त कर्ता में तृतीया हो गई ॥ ११७॥

७४६-वा॰-अकाकारयोः स्त्रीप्रत्यययोः प्रयोगे प्रातिषेधो न'॥११८॥ अ॰ २ । ३ । ६६ ॥

<sup>9.</sup> यह वात्तिक ( उमयप्राप्ती॰ ) इसी सूत्र का अपवाद है, क्योंकि कृद्योग में सामान्य कर के जो पष्टी का विधान है, उस को नियत विषय में इद करता है ।।

जो एडुल, और अ ये स्त्रीप्रत्यय जिन के अन्त में हों, उन शब्दों के प्रयोग में कत्ती में भी षष्ठी विभक्ति अर्थात् दोनों में एक साथ हो जावे।

जैसे — भेदिका देवदत्तस्य काष्टानाम् । चिकीर्षा विष्णुमित्रस्य कटस्य ॥ ११८ ॥ ७४७ – व । २ । ६६ ॥

शेष कृद्न्त स्त्रीप्रत्यय के योग में कर्ता में विकल्प करके षष्ठी विभक्ति हो। ग्रीर कर्म में तो सूत्र ही से नित्य विधान है। जैसे - शोभना खलु पाणिने: सूत्रस्य कृति:। शोभना खलु पाणिनिना सूत्रस्य कृति:, इत्यादि॥ ११६॥

७४८-क्तस्य च वर्त्तमाने ॥ १२०॥ अ०२। ३।६७॥ जो वर्त्तमान काल में कप्रत्ययान्त शब्द है, उसके संबन्ध में वष्ठी विमक्ति हो। जैसे—राक्षां मतः। राक्षां बुद्धः। राक्षां पूजितः—यह विद्वान् राजाग्रों का मान्य,

जाना श्रीर सत्कृत है।

यहां 'क' ग्रहण इसिलये हैं कि -गुरुं भजमानः, यहां कर्म में बष्टी न हो। श्रीर 'वर्त्तमान' ग्रहण इसिलये हैं कि -ग्रामं गतः, यहां भूतकाल के होने से षष्टी न हो।। १२० ।

७४६-वा॰-क्तस्य च वर्तमाने नपुंसके माच उपसख्यानम् ॥१२१॥ अ० २ । ३ । ६७ ॥

जो नपुंसक भाव में कप्रत्ययान्त है, उसके कर्त्ता में षष्ठी विमक्ति हो। जैसे—छात्रस्य हसितम्। नटस्य भुक्तम्। मयूरस्य नृत्तम्, इत्यादि—विद्यार्थी का इसना। नट का भोजन। मोर का नाचना देखो॥ १२१॥

७५०-अधिकरणवाचिनश्च । १२२॥ अ०२।३।६८॥ अधिकरणवाची कप्रत्ययान्त के योग में कर्त्ता में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे इदमेषामासितम्। इदमेषां यातम् । १२२॥

१. यह 'श्रप्राप्त विभाषा' यों समक्तनी चाहिये कि शेष खीप्रत्ययं के योग में कर्तृ वाची शब्द से किसी सूत्र कर के पष्टी प्राप्त नहीं, प्रत्युत (उभयप्राप्ती॰) इससे कर्म का नियम होने से कर्त्ता का नियेष तो है।।

२. क्त प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा होने से आगे (न लोका०।। अ०२।३। ६६) इस (१२३)

सूत्र करके पष्टी का निषेध प्राप्त है, इसिवये यह सूत्र उसका पुरस्तात् अपवाद है ॥

३. पूर्वसूत्र में वर्तमान के कहने से नपुंसक भाव में प्राप्ति नहीं, इसिलये यह भी वार्तिक (न लोका ।। अ २ । ३ । ६६ ) इसी वच्यमाण (१२३ ) सूत्र का अपवाद समक्तना ठीक है ॥ ः अप्राप्तितम्=बैठने का स्थान, और यातम्=चलने का मार्ग है । 'एपां' यह कत्तों में पष्टी है । और सूत्र भी (न लोका ।। अ ० २ । ३ । ६६) इसी अगले (१२३ ) सूत्र का अपवाद है ॥ ७५१-न लोकाच्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ॥ १२३ ॥ अ०२।३। ६६ ॥

जो रुदन्त के योग में कर्म में षष्ठी प्राप्त है, उसी विषय का यह सूत्र निषेध करता है। इसलिये उसी का श्रपवाद है।

ल, उ, उक, श्रव्यय, निष्ठा, खलर्थ श्रीर तृन्, इन कृत्प्रत्ययान्त शब्दों के योग में कर्म में बढ़ी विभक्ति न हो।

ल, श्रर्थात् जो लकार के स्थान में तिङ्, शतु, शानच्, कानच् क्यसु, कि, किन्
श्रादि श्रारेश होते हैं। जैसे -तिङ् —देवदत्त स्रोदनं पचित । देवदत्तेनीदनः पच्यते प्रामं
गच्छिति। प्रामो गम्यते, इत्यादि। शतु—स्रोदनं पचन्। शानच्—स्रोदनं पचमानः।
कानच्—स्र्थमुभयतो ददशानः। क्यसु—सोमं पिवान्। कि; किन्—देदिगीः इत्यादि।

उ—कटं चिकीर्षु: । ग्रामं जिगमिषु: । विद्यां पिपिटिषु:, इत्यादि । उक्त म् सत्यं प्रतिपादुकः । अवयय—ग्रामं गत्या । श्रोदनं भुक्त्वा । निष्ठा—क श्रोरं कवतु प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी न हो । देवदत्तेन कृतं पयः । कटं कृतवान् । खलर्थं —ईषद्भोज श्रोदनो भवता । ईषत्पानं पयो भवता ।

तृत् प्रत्याहार से शानन्, चानश्, शतः, तृन् इन चार प्रत्ययान्तों का प्रहण् होता है। शानन्—सोमं पवमानः। चानश्—पतङ्गान्निञ्चानः। शतः—विद्यां धारयन्। त्वविता यवान्। पठिता वेदान्, इत्यादि॥ १२३॥

७४२-चा॰-उक्तप्रतिषेषे कमे भीषायामप्रतिषेषः ॥ १२४ ॥ अ॰ २ । ३ । ६६ ॥

वेद से अन्य आर्ष वेदानुकूल प्रन्थों को 'भाषा' कहते हैं। जो उकपत्ययान्त के योग में पछी का निषेध किया है, वहां उकप्रत्ययान्त भाषाविषयक कम धातु के प्रयोग में निषेध न हो, किन्तु पष्टी विभक्ति हो जावे।

जैसे—दास्याः कामुकः । वृषल्याः कामुकः—दासी श्रौर वृषत्नी वेश्या से भोग की इच्छावाता, इत्यादि ॥ १२४॥

७५२-चा०-अव्ययप्रतिषेषे तोसुन्कसुनोरप्रतिषेषः ॥ १२५ ॥ अ०२ । ३ । ६६ ॥

जो श्रव्यय के योग में षष्ठी का निषेध किया है, वहां तोसुन श्रीर कसुन् प्रत्य यान्त के योग में षष्ठी का निषेध न हो।

जैसे—तोसुन्—पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः। कसुन्—पुरा क्रूग्स्य विस्पो विस्प्-शिन्, इत्यादि ॥ १२४ ॥

१. ये दोनों वार्त्तिक इसी सूत्र के विषय में निषेध का निषेध करके पष्टी के विधायक हैं। इसिवये (न कोका ।। अ०२। ३ । ६३) इस के अपन्नाद हैं।।

७५४-वा०-द्विषः शतुर्वावचनम् ॥ १२६॥ अ०२॥३। ६६॥ द्विष धातु से शतुप्रत्ययान्त के योग में षष्ठी विभक्ति विकल्प करके हो। जैसे—चोरस्य द्विषन्; चोरं द्विषन्। तृन् प्रत्याहार में शतु प्रत्यय के होने से निषेध प्राप्त था, उसका विकल्प करने के लिये यह तीसरा वार्त्तिक है॥ १२६॥

७४५-अकेनोभविष्यदाधमण्ययेः ॥ १२७ ॥ अ०२।३।७०॥ अक और इन्प्रत्ययान्त के कर्म में षष्ठी विभक्ति हो।

७५६-वा॰-अकस्य भविष्यतीन आधमण्ये च ॥ १२८ ॥ अ॰ २।३।७०॥

, त्रकन्त के योग में भविष्यत् काल और इन के योग में आधमर्थ तथा भविष्यत् काल अर्थ लगते हैं।

जैसे—यवान् लावको व्रजति, यहां श्रक के योग्र में केवल भविष्यत् ही है, श्रीर—ग्रामं गमी, यहां इन्नन्त के योग में भविष्यत्काल में, श्रीर—शतं दायी; सहस्रं दायी, यहां श्राधमग्र्य है, इत्यादि।

यहां 'भविष्यत् त्रौर त्राधमएर्य में निषेध' इसिलये है कि —यवानां लावकः, यहां षष्ठी का निषेध नहो, किन्तु षष्ठी हो जावे ॥ १२७—१२८ ॥

७५७-कृत्यानां कर्त्तरि वा॥ १२६॥ अ०२। ३। ७१॥ कृत्यप्रत्ययान्त के कर्त्ता में विकल्प करके षष्ठी स्रोर पत्त में तृतीया होवे। जैसे—ब्राह्मणेन ब्राह्मणस्य वा पठितव्यम्। देवदत्तेन देवदत्तस्य वा स्रासितव्यम्, इत्यादि।

यहां 'कर्त्तरि' प्रहण इसिलये हैं कि वक्तव्यः श्लोकः, यहां कर्म में पष्ठी न हो।
इस सूत्र में महाभाष्यकार ने योग विभाग करके दो अर्थ किये हैं। एक उभयप्राप्त
कृत्यप्रत्ययान्त के योग में पष्ठी न हो। जैसे प्राममाकष्टव्या शासा देवदत्तेन, इत्यादि।
दूसरा कृत्य प्रत्यय के योग में कर्त्ता में पष्ठी विकल्प करके हो। इसके उदाहरण सूत्र
की व्याख्या में लिख चुके हैं।। १२६॥

७४८-तुल्यार्थेरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥ १३० ॥ अ०.२॥३। ७२॥

इस वार्तिक में अप्राप्तविभाषा इसिलये है कि ( न लोका ।। अ २ । ३ । ६६ ) इससे
 सर्वथा षष्ठी का निषेध हो चुका है, उस को यह विकल्प से विधान किया है ॥

२. यह भी वार्तिक (कर्तृकर्मं ।। अ०२।३।६४) इसी (११६) का अपवाद है। क्योंकि कर्म में पद्यी इसी से प्राप्त है।

पूर्वसूत्र में विकल्प प्रहण था, फिर दूसरी बार करने का प्रयोजन यह है कि यहां कर्त्ता की अनुवृत्ति न आवे।

तुल्य और इसके पर्यायवाची शब्दों के योग में कर्म में विकल्प करके तृतीया, श्रीर पक्ष में षष्ठी विभक्ति हो, तुला श्रीर उपमा शब्द को छोड़ के।

जैसे - तुल्यः सदृशो वा देवद्त्तेन देवद्त्तस्य वा विष्णुमित्रः, इत्यादि ।

यहां 'तुला श्रोर उपमा शब्द का निषेध' इसलिये हैं कि — तुलोपमा वा परमात्मनो नास्ति, यहां परमात्मा शब्द से तृतीया न हुई, शेष के होने से षष्ठी हो गई।। १३०।।

७४६-चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकशालसुखार्थहितैः॥१३१॥ अ०२।३।७३॥

जो त्राशिवचन त्रर्थ में वर्तमान त्रायुष्य, मद्र, मद्र, कुशल, सुख, त्रर्थ त्रीर हित हैं। इन शब्दों के योग में विकल्प करके चतुर्थी त्रीर पदा में षष्ठी विमक्ति होवे।

जैसे—श्रायुष्य - श्रायुष्यं शिष्याय शिष्यस्य वा । मद्र—मद्रं बालाय वालस्य वा । भद्र—मद्रं पुत्राय पुत्रस्य वा । कुशल—कुशलं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । सुख—सुखं पिंडताय पिंडतस्य वा । श्रर्थ—श्रथों देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । हित —हितं माणवकाय माणवकस्य वा, इत्यादि ।

यहां 'ब्राशीर्वचन' प्रहण इसलिये है कि न्य्रायुष्यमस्य ब्रह्मचर्यम्, इत्यादि में चतुर्थी विभक्ति न हो ॥ १३१ ॥

यह शेषकारक पूरा हुआ।।

# (७) अधिकरणकारक

७६०-आधारोऽधिकरणम् ॥ १३२ ॥ अ० १ । ४ । ४४ ॥

जिस में पदार्थ धरे जाते हैं वह 'श्राधार' कहाता है। सो एक की श्रपेचा में दूसरा श्राधार बनता जाता है। परिपूर्ण परमेश्वर में पहुँच के समाप्ति हो जाती है।

जो आधार कारक है, वह अधिकरणसंज्ञक हो ॥१३२॥

७६१-सप्तम्याधिकरणे च ॥ १३३ ॥ अ० २ । ३ । ३६ ॥

अधिकरण तीन प्रकार का होता है, इसको प्रमाणसहित पूर्व लिख चुके हैं। अधिकरण में और चकार से दूरवाची तथा समीपवाची शब्दों से भी सप्तमी विभक्ति होवे।

जैसे—व्यापक न दिन घृतम् । तिलेषु तैलम् इत्यादि । श्रीपश्लेषिक — कटे शेते । खट्वायां शेते । पीठ श्रास्ते , इत्यादि । वैषयिक — खे शकुनयः । श्रोत्रे शब्दो विषध्यते , इत्यादि । श्राकाश के विषय यहां ख शब्द में सप्तमी विमक्ति हुई है ॥ १३३ ॥

अब आगे वार्त्तिक लिखेंगे—

७६२-वा०-सप्तमीविधाने क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युप-

क्रमत्ययान्त शब्द से जहां इन् प्रत्यय होता है, वहां कर्म कारक में सप्तमी विभक्ति हो।

जैसे—श्रसावधीती व्याकरणे । परिगणिती याज्ञिके, इत्यादि ॥ १३४॥

७६३-वा॰-साध्वसाधुप्रयोगे चं ॥ १३५ ॥ अ०२।३।३६॥ साधु और असाधु शब्द के प्रयोग में भी सप्तमी विभक्ति हो। जैसे-साधुर्देवदत्तो मातरि। असाधव आर्येषु दस्यवः, इत्यादि॥१३४॥

७६४-वा०-कारकाहाणां च कारकत्वे ॥ १३६ ॥ अ० २ | ३ | ३६ ॥ जहां कारक अपने कृत्य को ठीक २ प्राप्त हों, वहां उनसे सप्तमी विभक्ति हो । जैसे — ऋ छेषु भुआनेषु दरिहा आसते, इत्यादि — संपन्न पुरुष अच्छे अच्छे पदार्थ भोगते और दरिह वैठे देखते हैं ॥ १३६ ॥

७६५-चा॰-अकारकाहाणां चाकारकत्वे ॥ १३७ ॥ अ० २।३।३६॥ जहां अयोग्य कारक अपनी श्रयोग्यता को ठीक ठीक प्राप्त हों, वहां सप्तमी विसक्ति हो।

जैसे—मूर्खेष्वासीनेषु ऋदा भुक्षते। वृषलेष्वासीनेषु ब्राह्मणास्तरिन्त, इत्यादि। यहां मूर्ख श्रौर वृषल श्रपनी श्रयोग्यता को प्राप्त होते हैं, उन्हों में सप्तमी हुई ॥ १३७॥

१. दही और तिलों के सब श्रवयवों में घी श्रौर तेल च्यास रहता है, इस कारण इस को 'च्यापक' कहते हैं ॥

२, चटाई, खटिया श्रीर श्रासन पर बैठनेवाले का उससे श्रति निकट सम्बन्ध होता है, इसलिये इस श्रधिकरण को 'श्रीपश्लेषिक' कहते हैं।।

३. पित्तयों के उड़ने का विषय आकाश श्रीर कान का विषय शब्द है, इस कारण यह 'वैषयिक' अधिकरण कहाता है ॥

४. यहां श्रधीत शब्द क्तप्रत्ययान्त इन्विषयक है, उस के कर्म न्याकरण शब्द में सप्तमी होती है ॥ १. यहां से जो वार्त्तिक हैं वे किसी के श्रपवाद नहीं, किन्तु श्रप्तविधायक हैं। क्योंकि वहां किसी सूत्र वा वार्त्तिक से सप्तमी प्राप्त नहीं है ॥

E

७६६-वा॰-तद्विपर्व्यासे च ॥ १३८ ॥ अ॰ २ । ३ । ३६ ॥

श्रीर जहां इन कर्मों के बदलने में श्रर्थात् श्रच्छों को बुरों की योग्यता श्रीर बुरों को श्रच्छों की योग्यता हो, वहां पूर्व प्रयुक्त शब्दों में सप्तमी हो।

जैसे - ऋदं व्यासीनेषु मूर्का मुक्त । ब्राह्मणेष्वासीनेषु वृषतास्तरन्ति, इत्यादि ॥१३८॥

७६७-वा॰-निमित्तात्कर्मसंयोगे ॥ १३६ ॥ अ० २ । ३ । ३६ ॥

कर्मसंयोग में जिस निमित्त के लिये वह कर्म किया जाता है, उन निमित्तवाची शब्दों से सप्तमी विभक्ति हो।

जैसे चर्माण द्वीपिनं हन्ति दन्तयोहिन्त कुञ्जरम्। केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः॥

चर्मणि॰ चर्म के लिये गैंडे को मारता है। दन्त॰ वांतों के लिये हाथी को मारता है। केशेषु॰ केशों के लिये चमरी अर्थात् जङ्गली सुरा गौ को मारता है। अर्थेर सिम्न पुष्कलको॰ कस्तूरी की चाइना करके कस्तूरिया मृग को मारता है। इस कारण चर्म आदि शब्दों से सप्तमी विभक्ति हो जाती हैं। १३६॥

७ (७६८-यस्य च भावेन भावलक्षणम् ॥ १४०॥ अ०२।३।३७॥ जिस क्रिया से क्रिया का तत्त्वण किया जाय, उस में सप्तमी विभक्ति हो। जैसे—गोषु दुद्यमानासु गतो दुग्धास्तागतः ।

यहां 'भावेन' प्रहण इसिलये हैं कि—यो जटिलः स भुङ्के, इत्यादि में सप्तमी न हो॥ १४०॥

७६६-षष्ठी चानादरे ॥ १४१ ॥ अ० २ । ३ । ३८ ॥

अनाद्र अर्थ में जिस किया से किया का लच्चण किया जाय, वहां षष्टी विभक्ति और चकार से सप्तमी भी हो।

जैसे — श्राह्यमानस्याह्यमाने वा गतः। श्राह्यमान श्रर्थात् बुलाते हुए का तिरस्कार करके चला गया। यहां श्राह्यमान शब्द में षष्टी श्रीर सप्तमी विभक्ति हुई हैं॥ १४१॥

७७०-स्वामीर्वराधिपतिदायादसान्तिप्रतिभूपसूतैश्च<sup>3</sup>॥ १४२॥ अ०२।३॥ ३६॥

- 9. गैंडे आदि को मारे विना चाम आदि की प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर ढाल आदि वस्तु कैसे बनें, इस कारण चाम आदि उन के मारने में निमित्त हैं।।
- २. यहां दोहनरूप क्रिया से गमन क्रिया का लज्ञ्या किया जाता है, इस से दोहन क्रिया में सप्तमी हुई।
  - ३, यह चकार षष्टी और ससमी दोनों विमक्तियों का ब्राकर्षण होने के बिये है ॥

स्वामिन, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साम्चिन, प्रतिभू और प्रस्त इन शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हों।

जैसे—स्वामिन्--गवां स्वामी; गोषु स्वामी। ईश्वर—पृथिव्या ईश्वरः; पृथिव्या-मीश्वरः । म्रिधिपति—प्रामस्याधिपतिः; म्रामेऽधिपतिः । दायाद्—द्वेत्रस्य द्वेत्रे वा दायादः । साद्विन्—देवद्त्तस्य देवद्त्ते वा साद्वी । प्रतिभूः—धनस्य धने वा प्रतिभूः । प्रसुत—गवां प्रसुतः; गोषु प्रसुतः ।

इस सूत्र में खामिन् आदि शब्दों के योग में शेष कारक के होने से सर्वत्र षष्ठी प्राप्त थी, सो सप्तमी भी हो जावे, इसिलये यह सूत्र है ॥ १४२ ॥

७७१-आयुक्तकुकालाभ्यां चासेवायाम् ॥१४३॥ अ०२।३।४०॥

जो श्रासेवा श्रर्थ में वर्त्तमान श्रायुक्त श्रौर कुशल शब्द हैं, उनके योग में पष्ठी श्रौर सप्तमी विभक्ति हों।

जैसे - त्रायुक्तः पठनस्य पठने वा । कुशलो लेखनस्य लेखने वा ।

यहां 'आसेवा' प्रहण इसिलये है कि — आयुक्तो वृषभः शकटे, इत्यादि में षष्ठी के हो। अधिकरण में सप्तमी तो प्राप्त ही थी, षष्ठी होने के लिये यह सूत्र है ॥ १४३॥

७७२-यतंश्च निर्द्धारणम् ॥ १४४ ॥ अ० २ । ३ । ४१ ॥

जो समुदायवाची जाति श्रादि शब्दों से एक का पृथक करना है, उसको 'निर्दारण' कहते हैं। जिससे निर्दारण श्रर्थात् किसी को पृथक् किया जावे, उस से षष्ठी सप्तमी विभक्ति हों।

जैसे—ब्राह्मणानां ब्राह्मणेषु वा देवदत्तः श्रेष्ठतमः । इससे यहां ब्राह्मण शब्द में पष्ठी सप्तमी विभक्ति हो गई ॥ १४४ ॥

७७३-पंचमी विभक्ते॥ १४४॥ अ०२।३। ४२॥

पूर्व से निर्दारण अर्थ में षष्टी सप्तमी विभक्ति प्राप्त है, उसका अपवाद यह सूत्र है।

निर्द्धारण में जिसका विभाग किया जाय, उसमें पंचमी विभक्ति हो।

जैसे—पाटिलपुत्रेभ्यः सांकाश्या ब्राटश्वतराः, इत्यादि । जो पूर्वस्त्र से निर्द्धारण होता है वह समुदाय से एक ही का पृथक् भाव समसना । श्रोर इस सूत्र से एक ही से दूसरे का विभाग होता है ॥ १४४ ॥

७७४-साधुनिपुणाभ्यामचीयां सप्तम्यप्रतः ॥१४६॥ अ०२।३।४३॥

जो पूजा अर्थात् सत्कारपूर्वक सेवा करने अर्थ में वर्त्तमान साधु और निपुण शब्द हों, तो इन के प्रयोग में सप्तमी विभक्ति होवे, परन्तु प्रति के योग में इस अर्थ में भी न हो।

जैसे—मातरि साभुः। पितरि साभुः। मातरि निपुणः। पितरि निपुणः, इत्यादि।

यहां 'त्रचीं' प्रहण इसिलये है कि—साधुर्देवदत्तस्य पुत्रः, इत्यादि में न हो जाय। 'प्रति का निषेध' इसिलये है कि—साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति, यहां प्रति के योग में सप्तमी न हो।। १४६॥

७७५-वा॰-अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् ॥ १४७॥ अ०२।३।४३॥ जो प्रति के योग में सप्तमी का निषेध किया है, सो प्रति आदि अन्य शब्दों के योग में भी समभा जावे।

जैसे--साधुरेंवदत्तो मातरं परि । मातरमनु, इत्यादि के योग में भी सप्तमी विभक्ति न हो ॥ १४७॥

७७६-प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ॥ १४८॥ अ०२।३।४४॥ जो अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति प्राप्त है, उस का अपवाद यह सूत्र है। प्रसित और उत्सुक शब्दों के योग में तृतीया और सप्तमी विभक्ति हों।

जैसे—केशै: केशेषु वा प्रसितः । मात्रा मातरि वा प्रसितः । सत्येन सत्ये वा प्रसितः । 'प्रसितं कहते हैं जो उस में श्रतिप्रसक्त हो । गानेन गाने दोत्सुकः । 'उत्सुकः' कहते हैं जो किसी को मिलने की इच्छा कर रहा हो ॥ १४८॥

७७७-नक्षत्रे च तुपि ॥ १४६ ॥ अ० २ । ३ । ४५ ॥

यहां उस नचत्रवाची शब्द का ग्रहण है कि जहां काल श्रर्थ में प्रत्यय का लुप् हो जाता है।

जुबन्त नज्ञत्र से तृतीया श्रीर सप्तमी विभक्ति हों।

जैसे - पुष्येण पुष्ये वा कार्यमारभेत, इत्यादि - पुष्य नत्तत्र जिस दिन हो उस दिन कार्य्य का आरम्भ करे ॥ १४६॥

अब जो अधिकरण संज्ञा के विशेष वार्त्तिक सूत्र हैं, सो लिखते हैं—

७७८-अधिकीङ्स्यासां कर्म ॥ १४०॥ अ०१॥ ४६॥ अधिकरण संज्ञा का अपवाद यह सूत्र है।

जो अधिपूर्वक शीङ्, स्था और आस धातु का आधार कारक है, वह

कर्मकारक में द्वितीया कह चुके हैं। जैसे —खद्वामधिशेते। भूमिमधिशेते— खाट श्रोर भूमि में सोते हैं। समामधितिष्ठति। सभामध्यास्ते—सभा में बैठा है।

यहां 'श्रधि' उपसर्ग का श्रहण इसिलये है कि—खट्वायां शेते। सभायामास्ते, इत्यादि में न हो।। १४०॥

७७६-अभिनिविद्याश्च ॥ १५१ ॥ अ॰ १ । ४ । ४७ ॥

यहां मराडूक सुतराति मान के (परिक्रयरो०॥ अ०१।४।४४) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति आती है।

जो अभि और नि पूर्वक विश धातु का आधार कारक है, वह विकल्प करके कर्मसंबक हो, पन्न में अधिकरण संबा हो जावे।

यह कर्मप्रवचनीय गति और उपसर्ग संज्ञा का अपवाद है। जैसे—नह्यपवाद्विषयमुत्सर्गोऽभिनिविशते। नह्यपवाद्विषय उत्सर्गोऽभिनिविशते। यहां अपवाद्विषय शब्द से कर्मसंज्ञा पत्त में द्वितीया और अधिकर गुसंज्ञा पत्त में सप्तमी विभक्ति हो जाती है। तथा—सन्मार्गमभिनिविशते। सन्मार्गेऽभिनिविशते, इत्यादि॥ १४१॥

% ७८०-उपान्वध्याङ्वसः ॥ १४२ ॥ अ० १ । ४ । ४८ ॥

यह सूत्र भी अधिकरण संज्ञा का अपवाद है।

जो उप, अनु, अधि और श्राङ् उपसर्गपूर्वक वस धातु का श्राधार कारक है, वह कर्मसंज्ञक हो।

जैसे —पर्वतमुपवसत्यनुवसत्यधिवसत्यावसित वा। प्राममुपवसत्यनुवसत्यधिव-सत्यावसित वा, इत्यादि—पर्वत श्रोर्ग्राम के समीप वा उन के बीच में वास करता है ॥ १४२ ॥

यह अधिकरणकारक का प्रकरण और ये सातों कारक पूरे हुए ॥

## कर्भप्रवचनीय-प्रकरणम्

अब इसके आगे कर्मप्रवचनीय का प्रकरण लिखेंगे, क्योंकि यह भी कारक से ही संबन्ध रखता है—

७८१-कर्मप्रवचनीयाः ॥ १५३ ॥ अ० १ । ४ । ८३ ॥

यहां से आगे कर्मप्रवचनीय का अधिकार है। संज्ञा करने का प्रयोजन यही है कि थोड़े अज्ञरों के कहने से बहुत अर्थ समक्ता जावे। जैसे—हाथी पर्वत सूर्य चन्द्र पृथिवी आदि के कहने से बड़े बड़े अर्थ समक्ते जाते हैं।

(प्रश्न) कर्मप्रवचनीय इतनी बड़ी संज्ञा क्यों की ?

(उत्तर) आ॰—अन्वर्या संज्ञा यथा विज्ञायते। कर्म प्रोक्तवन्तः कर्मप्रवचनीयाः—जिस से यौगिक संज्ञा समभी जावे। जो शब्द क्रिया को कह चुका हो, उस को 'कर्मप्रवचनीय' कहते हैं ॥ १४३॥

अटर-कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया ॥ १५४ ॥ अ०२ | २ | ८ ॥ जहां जहां कर्मप्रवचनीय शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति कहें, वहां वहां इसी सूत्र से होवे। बन्ने अदि द्विद्धाराने विश्वत् । कृत्विनि अति

जैसे—शाकर्यस्य संहितामनु प्रावर्षत्, इत्यादि। यहां संहिता शब्द से द्वितीया

विभक्ति हुई है।। १४४॥

थ ७८३-अनुरुचिमे ॥ १४४॥ अ०१।४। ८४॥

इस सूत्र में बच्च शब्द हेतु का वाची है। उस हेतु अर्थ में तृतीया विमिक्ति प्राप्त थी, उसका अपवाद होने के लिये इस सूत्र का आरम्भ है। नहीं तो (बच्चणेत्थं०॥ अ०१।४।६०) इस आगे के (१६३) सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा सिद्ध ही थी।

जो बच्चण अर्थ में वर्त्तमान अनु शब्द हो, तो वह कर्मप्रवचनीसंक्षक हो।

जैसे—शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत्, इत्यादि । यहां संहिता शब्द में द्वितीया विभक्ति हुई है ॥ १४४ ॥

७८४ तृतीयार्थे ॥ १५६ ॥ अ० १ । ४ । ८४ ॥

जो तृतीया विसक्ति के अर्थ में वर्त्तमान अनु शब्द है, उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो। जैसे—नदीमनुगच्छन्ति तृणानि—नदी के जल के साथ तृण चलते हैं, इत्यादि। यहां भी नदी शब्द से द्वितीया विभक्ति हुई॥ १४६॥

७८५-हीने ॥ १५७ ॥ अ० १ । ४ । ८६ ॥

इस सूत्र में हीन शब्द छोटे का वाची है। सो एक की अपेता में एक छोटा आरे बड़ा होता ही है।

जो हीन अर्थ में वर्तमान अनु हो, तो उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो।
जैसे—अनु यास्कं नैरुक्ताः। अनु गोतमं नैयायिकाः। अनु शाकटायनं
वैयाकरणाः। यहां यास्क आदि शब्दों की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उन शब्दों से
क्रितीया विभक्ति होती है॥ १४७॥

१ ७८६ – उपोऽधिके च ॥ १४८॥ अ०१।४।८७॥
९०० जो अधिक और चकार से हीन अर्थ में भी वर्त्तमान उप शब्द हो, तो उस की

इस का फल-

७८७-यस्मादिधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ॥ १५६॥ अ०२।३।६॥

ब्रितीया विभक्ति का अपवाद यह सूत्र है।

जिससे अधिक और जिसका ईश्वरवचन अर्थात् बहुतों के बीच में अधिक सामर्थ्य कहना हो, वहां कर्मप्रवचनीय शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति हो।

जैसे-प्रजायामुपराजः'।

'श्रधिक' ग्रहण इसिबये है कि—उपशाकटायनं वैयाकरणाः , यहां न हो, इत्यादि ॥ १४६ ।।

७८८-अपपरी वर्जने ॥ १६० ॥ अ० १ । ४ । ८८ ॥

, वर्जन कहते हैं निषेध को, जो वर्जन अर्थ में वर्जमान अप और परि शब्द हैं, वे कर्मप्रवचनीयसंज्ञक हों ॥ १६०॥

७८६-आङ् मर्य्यादावचने ॥ १६१ ॥ अ० १ । ४ । ८६ ॥

'मर्यादा' उस को कहते हैं कि यहां तक यह वस्तु है, उस का कहना 'मर्यादा-वचन' कहाता है। जो मर्यादावचन अर्थ में वर्त्तमान आङ् शब्द है, उस की कर्मप्रव-चनीय संज्ञा हो।। १६१॥

इन दोनों का फल-

७६०-पश्चम्यपाङ्परिभिः ॥ १६२ ॥ अ० २ । ३ । १० ॥

कर्मप्रवचनीयसंक्षक अप, आङ् और परिशब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे — अप प्रामाद् वृष्टो मेघ:। परि प्रामाद्वा—प्राम को छोड़ के मेघ वर्षा अर्थात् प्राम पर नहीं वर्षा। मर्थ्यादावचन में आङ्—आसमुद्रादार्थ्यावर्त्तः—समुद्रपर्यन्त आर्थ्यावर्त्त की अवधि है।

यहां 'वर्जन' प्रहण इसिलये हैं कि—पिएडतमप वदति । 'मय्यदा' प्रहण इसिलये हैं कि—ग्रागच्छन्ति वैयाकरणाः । यहां मर्य्यादा श्रर्थ के न होने से कर्म-प्रवचनीय संज्ञा न हुई।

तथा 'वचन' प्रहण इसिलये है कि—श्रमिविधि श्रथं में भी कर्मप्रवचनीय संझा होवे—श्राकुमारमाकुमारेभ्यो यशः पाणिनेः। यहां श्रमिविधि श्रथं में कर्मप्रवचनीय संझा हो के दो प्रयोग बनते हैं। कारण यह है कि कर्मप्रवचनीयसंझक श्राकार का पश्चमी विभक्ति के साथ विकल्प करके श्रव्ययीभाव समास होता है। जिस पद्म में समास होजाता है वहां पश्चमी विभक्ति के स्थान में श्रम् श्रादेश होता है, श्रोर जहां श्रव्ययीभाव समास नहीं होता वहां पश्चमी विभक्ति बनी रहती है। १६२॥

यहां प्रजा के बीच राजा का अधिक सामर्थ्य है, इसिबये उप की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होकर उस के योग में प्रजा शब्द से सप्तमी विमक्ति हुई है।।

२. शाक्टायन से अन्य वैयाकरण न्यून हैं। यहां अधिक अर्थ केन होने से द्वितीया ही होती है ॥

३. श्रव्ययीमाव समास विकल्प—( श्राङ्मर्यादाऽसिविध्योः ॥ श्र० २ । १ । १३ ) ॥

४. पञ्चमी के स्थान में अम्—(नाऽब्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः ॥ ५० २ । ४ । ५३ ) ॥

# ७६१-लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः ॥ १६३॥ अ०१।४। ६०॥

जिससे अर्थ जाना जाय वह तत्त्वण, उस को इस प्रकार का कहना इत्थंभूताख्यान, भाग=श्रंश, वीप्सा=ज्याप्ति इन अर्थों के जनानेवाले जो प्रति, परि और अनु शब्द हैं, वे कर्मप्रवचनीयसंज्ञक हों।

जैसे—लज्ञ्य —वृज्ञं प्रति वृज्ञं परि वृज्ञमनु विद्योतते विद्युत् —वृज्ञं के सामने, कपर और पश्चात् बिज्जली चमकती है। इत्यंभूताख्यान—परमात्मानं धर्मं च प्रति परमात्मानं परि परमात्मानमनु साधुरयं मनुष्यो वर्त्तते—सत्यप्रेम भिक्त से युक्त हो के यह मनुष्य परमात्मा और धर्म का उपासक है। भाग—यदत्र मां प्रति स्यात् मां परि स्यात् मामनु स्यात्—यहां जो कुछ मेरा भाग हो वह मुक्तको भी मिले, इत्यादि।

यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के दो प्रयोजन हैं—एक तो द्वितीया का होना; दूसरा पत्य का निषेध। जैसे—वीप्सा—वृद्धं वृद्धं प्रति सिञ्चति। परि सिञ्चति। श्रतु सिञ्चति।

( प्रश्न ) परि शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति प्राप्त है, सो क्यों नहीं होती ?

(उत्तर) जहां पश्चमी का विधान है, वहां जो वर्जन अर्थवाले अप आर परि एकत्र पढ़े हैं, उन्हीं का प्रहण होता है, अन्य का नहीं ॥ १६३॥

७६२-अभिरभागे ॥ १६४ ॥ अ० १ । ४ । ६१ ॥

जो भाग को छोड़ के पूर्वसूत्र में कहे हुए अन्य लच्चण आदि तीन अर्थों में वर्त्तमान अभि शब्द हो, तो वह कर्मप्रवचनीयसंज्ञक हो।

जैसे—बद्माण—वृद्ममिम विद्योतते । इत्थंभूताख्यान—साधुर्बालो मातरमि । वीप्सा—वृद्धं वृद्धमिमिश्चिति, इत्यादि ।

यहां 'त्रभाग' प्रहण इसलिये है कि—यद्यत्रास्माकमभिष्यात, इत्यादि। यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के न होने से पत्व हो जाता है ॥ १६४ ॥

७६३-प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयेः ॥ १६५ ॥ अ० १ । ४ । ६२ ॥

प्रतिनिधि कहते हैं किसी की अनुपिश्यित में दूसरे तुल्य खभाव गुण कर्म वा आकृतिवाले का स्थापन करना, और प्रतिदान अर्थात् एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु देना, जो इन दो अर्थों में वर्तमान प्रति शब्द हो, तो उस की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो॥ १६४॥

इसका फल-

७६४-प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ॥ १६६॥ अ०२।३।११॥ जिस से प्रतिनिधि ग्रीर प्रतिदान हों, वहां कर्मप्रवचनीय के योग में पंचमी विमक्ति हो।

जैसे—श्रिभमन्युरर्जु नात्प्रति—श्रिभमन्यु को श्रर्जुन के स्थान में रखा, यह प्रति-निधि कहाता है। प्रतिदान—तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्—तिलों के बदले उद्द नेता है, यह प्रतिदान कहाता है।

यद्दां इन 'दोनों अर्थ' का प्रहण इसिलये है कि—शास्त्राणि प्रत्येति, इत्यादि में प्रति शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा न हो॥ १६६॥

७६५-अधिपरी अनर्थको ॥ १६७ ॥ अ० १ । ४ । ६३ ॥

धातु का जो अर्थ है उस से पृथक् अर्थ के कहनेवाले न हों, पैसे जो अधि और परि शब्द हैं, उनकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो।

जैसे—कुतोऽध्यागम्यते। कुतः पर्य्यागम्यते। यद्दां पश्चमी विभक्ति तो श्रपादान संझा के द्दोने से सिद्ध द्दी द्दे, फिर कर्मप्रवचनीय संङ्गा करने का प्रयोजन यद्द द्दे कि गति श्रीर उपसर्ग संज्ञा न हों।

यहां 'श्रनर्थक' प्रहण इसितये हैं कि—संज्ञामधिकुरुते, इत्यादि में कर्म-प्रवचनीय संज्ञा न होके द्वितीया विभक्ति हो ॥ १६७॥

७६६-सुः पूजायाम् ॥ १६८ ॥ अ०१ । ४ । ६४ ॥

जो पूजा अर्थात् सत्कार अर्थ में वर्त्तमान सु शब्द है, उसकी कर्मप्रवचनीय संझा हो।

जैसे — सुस्तुतम् । सुस्मृतम् — अच्छी स्तुति और स्मरण आपने किया। यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्गकार्य्य पत्व नहीं हुआ।

'पूजा' ग्रहण इसिलये हैं कि — सुषिक्तं कि त्वया — क्या तूने अञ्जा सींचा, इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं होती ॥ १६८॥

७६७-अतिरतिक्रमणे च ॥ १६६ ॥ अ० १ । ४ । ६५ ॥

जो त्रतिक्रमण त्रर्थात् उज्ञङ्घन, च=ग्रौर पूजा त्रर्थं में वर्त्तमान श्रति शष्द हो, तो वह कर्म्मप्रवचनीयसंक्षक होवे।

जैसे—ग्रतिक्रमण्—ग्रतिसिक्तमेव भवता—ठीक ठीक नहीं सींचा, किन्तु कीच कर दी। पूजा—ग्रतिसेवितो गुरुस्त्वया—तू ने गुरु की ग्रति सेवा की। यह पूजा कहाती है। इसका फल यह है कि पत्व का निषेध हो जाता है।

यहां इन 'दो अर्थों' का प्रहण इसिलये है कि—सुष्ठतं मया—कोई अभिमान करता है कि मैंने बड़ी अञ्जी स्तुति की, इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा के न होने से षत्र्य का निषेध न हुआ।। १६६॥

७६८-ग्रपिः पदार्थसंभावनान्ववसर्गगर्हासमुचयेषु ॥ १७० ॥ अ०१ । ४ । ६६ ॥

जो पदार्थ, संभावना, अन्ववसर्ग, गर्हा और समुख्य इन पांच अर्थी में वर्तमान पद, उसके योग में अपि शब्द की कर्मप्रवचनीय संक्षा हो। जैसे—पदार्थ — सर्पिषोऽपि स्यात् — कुळ घृत भी होना चाहिये। संभावना = संभव होना-श्रापिसंचेद्वृत्त्रशतम् — संभव है कि यह मनुष्य सौ वृत्त तक सींच सके। अन्ववसर्गः श्राह्मा करना — श्रापिसंच — तू सींच। गर्हा = निन्दाकरना — धिक् ते जन्म यत्पाषाण्मपिस्ती वि — तेरे मनुष्यजन्म को धिक्कार है, जो तू पत्थरों की भी स्तुति करता है। समुच्चय= कियाओं का इकट्टा होना — श्रापिसंवस्व। श्रापिस्तुहि — सेवन भी कर, स्तुति भी कर।

इन सब अर्थों में अपि शब्द की उपसर्ग संज्ञा न होने के लिये कर्मप्रवेचनीय संज्ञा की है, कि जिससे उक्त प्रयोगों में मूर्द्धन्य पकार न हो जावे।

यहां 'पदार्थादि अर्थों' का प्रहण इसलिये हैं कि —अपिकृत्य, इत्यादि में कर्मप्रव-चनीय संज्ञा होके ल्यप् का निषेध न हो ॥ १७०॥

### उहह-अधिरीश्वरे ॥ १७१ ॥ अ० १ । ४ । ६७ ॥

इस सूत्र में ईश्वर शब्द से समर्थ मनुष्य का ग्रहण समक्ता चाहिये। जो ईश्वर अर्थ में वर्त्तमान श्रिप शब्द है, उसकी कर्म अवचनीय संज्ञा हो।

जैसे—अधिमामे चित्रयः—यह चित्रय माम में समर्थ अर्थात् उसका अधिष्ठाता है। यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के होने से सप्तमी विभक्ति हो जाती है।

यहां 'ईश्वर' प्रहण इसिलये है कि - खट्वामधिशेते । यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के नहीं होने से द्वितीया विभक्ति हुई है ॥ १७१ ॥

# ८००-विभाषा कुञि॥ १७२॥ अ०१ । ४ । ६८॥

जो कुञ् धातु के प्रयोग में युक्त अधि शब्द हो, तो वह विकल्प करके कर्मप्रव-

जैसे—अधिकृत्वा। अधिकृत्य। यहां जिस पत्त<sup>3</sup> में कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है वहां समास के न होने से त्त्वा के स्थान में ल्यप् नहीं होता। और जिस पत्त में कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं होती, उसमें समास हो के क्वा के स्थान में ल्यप् आदेश होजाता है। इसके अन्य भी बहुत प्रयोजन हैं ॥ १७२॥

इति श्रीमत्स्वामिद्यानन्द्सरस्वतीव्याख्याकृतोऽष्टाध्याय्यां कारकीयोऽयं ग्रन्थः समाप्तः॥ ससुरामाङ्कचन्द्रेऽच्दे नभस्यस्यासिते दले। श्रष्टम्यां बुधवारेऽयं ग्रन्थः पूर्तिं गतः शुभः॥

संवत् १६३८ भाद्र वदी बुधवार के दिन यह कारकीय प्रन्थ श्रीयुत स्वामी द्यानन्द सरस्वतीजी ने पूरा किया।।

१ सप्तमी विभक्ति—( यस्माद्धिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ॥ श्र० २ । ३ । ६ ) यह स्त्र पूर्व (११६) ब्राये हैं ॥

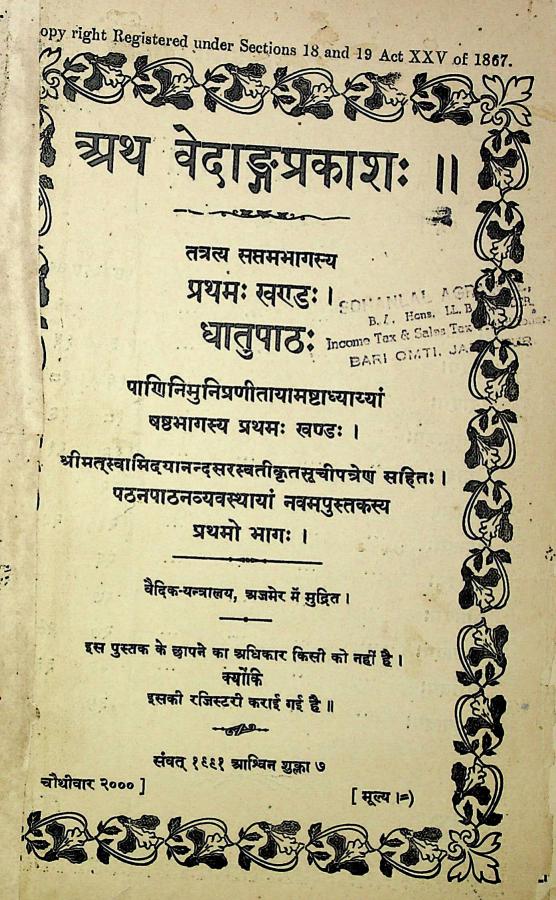
र जहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है, वहां गति संज्ञा नहीं होने पाती । उसके न होने से (गतिश्व ॥ घ० १ । ४ । ६० ) इससे समास भी नहीं होता । समास के न होने से (समासे अनजपूर्वे क्यप् ॥ घ० ७ । १ । ६७ ) इससे स्यप् भी नहीं होता ॥

# वैदिक-पुस्तकालय में मिलनेवाली पुस्तकों की सूची

ऋग्वेदभाष्य ६ भाग मुल्य	र ४२)		मृल्य ॥)
यज्ञर्वेदभाष्य सम्पूर्ण "	२०)	शास्त्रार्थ फीरोजाबाद	1=)
ऋग्वेदादिमाष्यभूमिका ,,	3)	शास्त्रार्थ काशी	-)11
,, केवल संस्कृत	111)	वेदविरुद्धमतखएडन	1-)
	(0=)	वेदान्तिध्वान्तनिवारण नागरी	=)
श्रष्टाध्यायी मृत्त	11=)	,, ग्रंग्रेज़ी	-)11
श्रष्टाध्यायी भाष्य पहिला खएड	३॥)	भ्रान्तिनिवारण	1-)
,, दूसरा खपड	311)	स्वमन्तच्यामन्तच्यप्रकाश नागर्	
पंचमहाय इविषि	=)11	,, अंग्रेज़	The same of the sa
निरुक्त	111=)		
		ऋग्वेद संहिता सजिल्द	8)
संस्कृतवाक्यप्रबोध	=)	अथर्ववेद संहिता सजिल्द	3)
<b>ब्यवहारभा</b> नु	=)	यजुर्वेद संहिता सजिल्द	र)
अमोच्छेदन	=)11	सामवेद संहिता सजिल्द	(11)
<b>अ</b> तुअमोच्छेदन	-)	चारों वेदों की अनुक्रमाणिका	<b>?</b> ()
सत्यधर्मविचार (मेला चांदापुर)	=)	ईशादिदशोपनिषद् मृत्त	111)
आर्योद्देश्यरत्नमाला नागरी	)11	छान्दोग्योपनिषद् भाष्य	8)
,, मरहठी	-)		
,, अंग्रेज़ी	-)	बृहदारएयकोपनिषद् भाष्य	8)
गोकरुणानिधि		यज्ञर्वेदभाषाभाष्य	치)
	=)	नित्यकर्मविधि <b>।</b>	)111
स्वामीनारायग्रमतखयडन	1)	इवनमन्त्र	)111
सत्यार्थप्रकाश	(11)	Life of Swami Daysnand S.	moawati
आर्याभिविनय गुटका	=)	Life of Swami Dayanand Saraswati (English) by Har Bilas Sarda 12/-/-	
" मोटे अ <b>व</b> रों की	11=)		
संस्कारविधि	111)	Dayanand Commemoration	
		Volume (English)	rs. 10

नोटः-डाकमइस्त सब का मूल्य से अलग होगा।

प्रबन्धकत्तां, वैदिक पुस्तकालय, श्रजमेर.



# विषयस्चीपत्रम्।।

		पृष्ठ से	पृष्ठ तक
भूमिका		8	, 2
भुवाद्यः		३	१५
श्रदाद्य:	of the ignition of the	१६	१८
्रज् <u>ज</u> होत्यादयः	···· i sensi : ··· Ib. in	१८	38
दिबाद्यः -		28	38
स्वाद्याः	h-maretin	२२	
तुद्दाद्य:	भू . Tsl , अपने पर	२३	२५
क्घाद्यः		२६	
तनाद्यः'		२७	
क्रचाद्यः	3.5.	२७	२⊏
चुराद्यः		28	33
कंड्वाद्यः		38	





# भृमिका

यह प्रन्थ यथार्थ व्याख्यान और भूमिका के सहित आख्यातिक में छप चुका है परन्तु उसमें धातु अर्थों के सहित व्याख्यान के बीच २ में पढ़े हैं। इस कारण उस प्रन्थ में मूल का पाठ करना तथा घोष के कण्ठस्थ करना अध्येताओं को कठिन पड़ता इसलिये यह मूल पुस्तक सूचीपत्र के सहित पृथक् छपवाते हैं । इसमें एक प्रकार के जितने धातु हैं उनके आदि में उनकी संख्या, आत्मनेपद, परस्मैपद तथा उदात्त और अनुदात्त भी रख दिया है। उदात्त से सेट्र और अनुदात्त से अनिद् समभना चाहिये । उदात्तेत् से पर-स्मैपद् और अनुदात्तेत् से आत्मनेपद तो समभा जाता है तथापि अति सुगमता के लिये आत्मनेपद् परस्मैपद् शब्द भी रख दिये हैं। इससे पढ़ने पढ़ाने हारे लोगों को बड़ी सु-गमता होगी। परन्तु धातुओं के रूप मूल पुस्तक पर लेना सेट् अनिट् आदि प्रकरणों के उपयुक्त सूत्रों को देख समभ के ही कर सकेंगे। क्योंकि कोई अनिद् धातु किसी विशेष प्रत्यय में सेट् और कोई सेट् धातु कहीं अनिट् भी हो जाता है। इस का सूचीपत्र भी साथ ही छपता है इसमें तीन संकेत हैं पहिला, भ्वादिगणका (भ्वा०) अदादिका (अ०) जुहोत्यादि का ( जु॰ ) दिवादि का ( दि॰ ) स्वादि का ( स्वा॰ ) तुदादि का (तु०) रुधादि का (रु०) तनादि का (त०) क्यादिक (कथा०) चुरादि का ( चु॰ ) और कण्डादि का (कं॰) लिखा है। दूसरा, आत्मनेपद् का ( आ॰ ) परस्मपद् का ( प॰ ) और उभयपद् का ( उ॰ ) लिखा है। तीसरा, सेट् का ( से॰ ) वा अनिट् का (अ०) लिखा है। श्रीर नीचे के धातुओं में जहां पूर्व का ही संकेत है। वहां उसके बराबर नीचे विन्दु दिये हैं। सूची में मूल धातुओं के आदि अनुबन्ध इसलिये छोड़ दिये हैं कि उन धातुआं के आद्यचर में संदेह न पड़े । और जो धातु उपदेश में षकारादि और प्रयोगकाल में सकारादि होजाते हैं। उन सब को सकारादि में लिखा है। क्योंकि वे सूत्रों से विशेष कार्य होने के लिये घोपदेश हैं। दशों गण के अन्त में कगड्वा-दिगण इसलिये छपवाया है कि यह बहुधा धातुओं से अर्थ-विधान के सहित सम्बन्ध रखता है। धातुपाठविषयक विशेष व्याख्यान आख्यातिक की भूमिका श्रीर उस पुस्तक को देखने से विदित होजावेगा ॥

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ।

इति भूमिका।

स्थान महाराखाजी का उदयपुर,

दयानन्दसरस्वती.

# अथ पाणिनिमुनिकृतधातुपाठाऽऽर्मभः

श्रुसत्तायाम् । उदात्त उदात्तेत् परस्मैभाषः ॥ अथ तवर्गीयान्ता एधाद्यः कथ्यन्ताः षट्त्रिंशदात्मनेभाषाः ॥

एध, वृद्धौ । स्पर्द्ध, सङ्घर्षे । गाध, प्रतिष्ठालिप्सयोर्प्रन्थे च । बाध, विलोड़ने । नाथ, नाध, याव्चोपतापैश्वर्याऽऽशीःषु । दध, धारणे । स्कुदि, आप्रवर्णे । श्विदि, श्वैत्ये । विदि, अभिवादनस्तुत्योः । भिद्दे, कल्याणे सुखे च । मिद्दे, स्तुतिमोदमदस्वमकान्तिगतिषु । स्पिदे, किव्चिचलने । क्किदि, परिदेवने । सुद, हर्षे । दद, दाने । ध्वद, स्वर्दे, आस्वादने । उर्दे, माने कीडायाञ्च । कुर्दे, खुर्दे, गुर्दे, गुर्दे, कीडायामेव । पूद, चरणे । दूदि, अव्यक्ते शब्दे । द्वादे, सुखे च । स्वाद, आस्वादने । पर्दे, कुत्सिते शब्दे । यती, प्रयत्ने । युर्दे, जुर्दे, गुर्दे, वेथू, याचने । अथि, शैथिल्ये । प्रथि, कौटिल्ये । कत्थ, श्लाघायाम् । इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ।।

अथाऽताद्यः शुन्द्रयन्ता अष्टत्रिंशत्परस्मैभाषाः ॥

श्रत, सातत्यगमने । चिती संज्ञाने । च्युतिर, श्रासेचने । श्च्युतिरच्चरगो । मन्य, विलोडने । क्रिथि, पुथि, ज्ञिथे, मिथ, हिंसासंक्रेशनयोः । विधु, गत्याम् । विधु शास्त्रे माङ्गरुये च । खाद, भच्चगो । खद, स्थैर्ये हिंसायाञ्च । बद, स्थैर्ये । गद, व्यक्तायां वाचि । रद, विलेखने । गद, श्रव्यक्ते शब्दे । श्रर्द, गतौ याचने च ।

नर्द, गर्द, शब्दे। तर्द, हिंसायाम्। कर्द, कुत्सिते शब्दे। खर्द, दन्तश्र्के। अति, अदि, बन्धने। इदि, परमैश्वरें। विदि, भिदि, अवयवे। गडि, बदनैकदेशे। गिदि, कुत्सायाम्। इनदि, समुद्धौ। चिदि, आह्वादने दीप्तौ च। त्रदि, चेष्टायाम्। कदि, कदि, क्रदि, क्रदि, आह्वाने रोदने च। क्रिदि, परिदेवने। शुन्ध, शुद्धौ। इत्युदात्ता उदात्तेतः।।

## अथ कवर्गीयान्ताः ॥

शोकाद्यः रलाघ्यन्ता द्विचःवारिंशदातमनेभाषाः ॥

शोक, सेचने। लोक, दर्शने। श्लोक, संघाते। द्रेक, ध्रेक, शब्दोत्साहयोः। रेक, शंकायाम्। सेक, सेक, स्रिक, श्रिक, श्रिक, गत्यर्थाः। शिक, शंकायाम्। श्रिक, लेक, स्रिक, कौटिल्ये। मिक, मएडने। किक, लेल्ये। कुक, वृक, श्रादाने। चक, तृप्तौ प्रतिघाते च। किक, चिक, मिक, श्रिक, श्रिक, श्रिक, बिक, सेक, बस्क, मस्क, टिक, टीक, तिक, तीक, रिघ, लिघ, गत्यर्थाः। लिघ, भोजनिनवृत्तायि। श्रिघ, विघ, मिघ, गत्याचेपे। मिघ, कैतवे च। राघृ, लाघृ, द्राघृ, श्राघृ, सामर्थ्ये। द्राघृ, श्रायामे च। श्रायु, कत्थने। इत्युदात्ता श्रजुदात्तेतः।।

अथ फक्काद्यः शिघ्यन्ता द्विपंचाशत् परस्मभाषाः ॥

फर्क, नीचैर्गतौ। तिक, इसने। तिक, क्रच्छ्रजीवने। बुक्क, भष्णे। कख, इसने।

श्रोख, राख, लाख, द्राख, श्राख, श्राख, शोषणाऽलमर्थयोः। शाख, श्राख, व्याप्ताः।

उख, उखि, वख, विख, मख, मिल, ग्राख, ग्राख, रख, रिल, ल्राख, लिख, इख, इखि, ईख, वल्गु, राग, लिग, श्राग, विग, मिग, तिग, त्याग, शिकि, श्राम, श्राम, श्राम, इति, रिग, रिग, लिग, गत्यर्थाः। रिख, त्रख, त्राख, शिकि, इत्यिप केचित्। त्वाग, कंप्रने च। युगि, जुगि, बुगि, वर्जने। घघ, इसने।

मिष, मण्डने। लिघ शोषणे। शिघि, श्राद्राणे। इत्युदात्ता उदात्तेतः।।

15

#### अथ चवर्गीयान्ताः॥

# वर्चाद्य ईजन्ता एकविंशतिरात्मनेभाषाः ॥

वर्च, दीप्तौ । षच, सेचने सेवने च । लोचू, दर्शने । शच, व्यक्तायां वाचि । श्वच, श्वचि, गतौ । कच, वन्धने । कचि, काचि, दीप्तिवन्धनयोः । धुच, धुचि, कल्कने । मचि, धारणोच्छ्रायपूजनेषु । पचि, व्यक्तीकरणे । धुच, प्रसादे । ऋज, गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु । ऋजि, धुजी, भर्जने । एजू, भ्रेजू, भ्राजू, दीप्तौ । ईज, गतिकुत्सनयोः । इत्युदात्ता श्रनुदात्तेतः ॥

## अथ शुचादयो व्रज्यन्ता द्विसप्ततिः प्रस्मैभाषाः ॥

शुच, शोके । कुच, शब्दे तारे । कुच, कुञ्च, गितकौटिल्याल्पीभावयोः । लुञ्च, श्रपनयने । श्रञ्चु, गितपूजनयोः । वञ्चु, चञ्चु, तञ्चु, त्वञ्चु, ग्रुञ्चु, म्लुञ्चु, मुचु, म्लुञ्चु, गर्यथोः । श्रुचु, ग्लुचु, कुञ्ज, लुजु, स्तेयकरणे । ग्लुञ्चु, पर्ज, गतौ । गुज, गुजि, श्रञ्यके शब्दे । श्रची, पूजायाम् । म्लेच्छ, श्रञ्यके शब्दे । लच्छ, लाच्छि, लच्चे । वाच्छि, इच्छायाम् । श्राच्छि, श्रायामे । द्रीच्छ, लज्जायाम् । हुच्छी, कौटिल्ये । ग्रुच्छी, मोहसग्रुच्छ्राययोः । स्पुच्छी, विस्तृतौ । युच्छ, प्रमादे । उच्छि, उञ्छे । उच्छी, विवासे । धज, ध्रजि, धज, ध्रजि, ध्रज, ध्वज, ध्वजि, गतौ । कुज, श्रव्यके शब्दे । श्रजी, वर्ज, गतिपूजनयोः । तेज, पालने । स्वज, मन्ये । स्वजि, गतिवैकल्ये । एजु, कंपने । दुश्रोस्फुजी, वजनिर्घोषे । चि, च्लो । च्लीज, श्रव्यके शब्दे । लज, लिज, भर्जने । लाज, लाजि, मर्त्सने च । जज, जिज, गुद्धे । तुज, हिसायाम् । तुजि, पालने च । गज, गाजि, ग्रुज, ग्रुजि, ग्रुज, ग्रुजि, शब्दार्थाः । गज, मदे च । वज, त्रज, गतौ । इति चिवर्जग्रुदात्ता । ख्रानेतः ॥

## अथ टवर्गीयान्ताः॥

# अद्टाद्यः शाड्यन्ताः षट्त्रिंशदात्मनेभाषाः ॥

श्रद्र, श्रितिक्रमणिहिंसनयोः । वेष्ट, वेष्टने । चेष्ट, चेष्टायाम् । गोष्ट, लोष्ट, संघाते । घट्ट, चलने । स्फुट, विकसने । श्रिट गतौ । बिट एकचर्यायाम् । मिट, किट, शोके । म्रिट, पालने । हेट, विवाधायाम् । एठ, च । हिंडि, गत्यनाद्रयोः । हुंडि, संघाते । कुंडि, दाहे । बांडे विभाजने । मिहि, च । भिंडि, परिभाषणे । पिंडि, संघाते । मुंडि, मार्जने । तुंडि, तोंडने । हुंडि, वरणे । चिंडि, कोपे । शांडि, रुजायां संघाते च । तिडि, तांडने । पिंडि, गता । किंडि, मदे । खांडि, मन्थे । हेडु, होडु, श्रनादरे । वाडु, श्राप्लाच्ये । द्राडु, श्राडु, विशरणे । शांडु श्लाधायाम् । इत्युदात्ता श्रादुदात्तेतः ।।

## अथ शौडादयो गडचन्ता द्वाशीतिः परस्मैभाषाः ॥

शौह, गर्वे। पौह, वन्धने। म्लेह, मेह, भ्रेह, जन्मादे। कटे, वर्षावर्णयोः। चटे, इत्येके। अट, पट, गतौ। रट, परिभाषणे। लट, बाल्ये। शट, रुजाविशरणगत्यवसादनेषु। वट, वेष्टने। किट, खिट, त्रासे। शिट, षिट, अनादरे। जट, कट, संघाते। भट, भृतौ। तट, उच्छ्र्ये। खट, कांच्याम्। णट, नृतौ। पिट, शब्दसंघातयोः। इट, दिप्तौ च। षट, अवयवे। छुट, विलोडने। चिट, परप्रैष्ये। विट, शब्दे। विट, आकोशे। हिट, इत्येके। इट, किट, कटी, गतौ। मिड, भूषायाम्। कुडि वैकल्ये। सुट, पुट, मर्दने। चुडि, अल्पीमावे। सुडि, खंडने। पुडि, चेत्येके। रुटि, छुटि, स्तेये। रुटि, छुटि, इत्येके। सुटिर, विशरणे। पट, व्यक्तायां वाचि। वठ, स्थौटेये। मिठ, मदनिवासयोः। कठ, कुच्छ्रजीवने। रठ, परिमाषणे। इट, प्छुतिशठत्वयोः। बलात्कारे चेत्येके।

रुठ, खुठ, उठ, उपघाते। ऊठ इत्येके। पिठ, हिंसासंक्लेशनयोः। शठ, कैतवे च। शुठ, प्रतिघाते। शुठीत्येके। कुठि, च। खुठि, अपलस्ये प्रतीघाते च। शुठि, शोषणे। रुठि, खुठि, गतौ। चुडु, भावकरणे। अहड, अभियोगे। कडु, कार्करये। जीडु, विहारे। तुडु, तोड़ने। तुडु, इत्येके। हुडु, हुडु, होडु, गतौ। रौडु, अनादरे। रोडु, लोडु, उन्मादे। अडु, उद्यमने। लड, विलासे। कड, मदे। कडि, इत्येके। गडि, वदक्षैकदेशे। इत्युदात्ता उदात्तेतः।।

# श्रथ पवर्गीयान्तास्तिपाद्यः ष्टुभ्यन्ताञ्चत्वारिंशदात्मनेभाषाः ॥

तिपृ, तेपृ, ष्टिपृ, ष्टेपृ, च्तरणार्थाः । थिपृ, थेपृ, इत्यन्ये । तेपृ, कम्पने । ग्लेपृ, दैन्ये । दुवेपृ, कम्पने । केपृ, गेपृ, म्लेपृ, च । मेपृ, रेपृ, लेपृ, गतौ । देपृ, धेपृ, च । त्रपृष्, लाजायाम् । किपि, चलने । रिव, अवि, लिब, शब्दे । लिब, अवस्रंसने च । कवृ, वर्णे । क्लीवृ, अधार्ष्ये । च्लीवृ, मदे । शोभृ, कत्थने । चीसृ च । रेमृ, शब्दे । अभि, रिम, शब्द । प्टिम, स्किम, प्रतिबन्धे । जभी, जृभि, गात्रविनामे । शल्भ, कत्थने । बल्भ, भोजने । गल्भ धर्ष्ये । अम्भु, प्रमादे । ष्टुभु, स्तम्भे । इति तिपिवर्जमुदात्ता अनुदात्तेतः ॥

## त्रथ गुपाद्यः शुंभ्यन्ता एकचत्वारिंशत्परस्मैभाषाः ॥

गुपू, रच्चणे । धूप, संतापे । जप, जरुप, व्यक्तायां वाचि । जप, मानसे
च । चप, सांत्वने । षप, समवाये । रप, लप, व्यक्तायां वाचि । चुप,
मन्दायां गतौ । तुप, तुम्प, तुप, तुप, तुफ, तुम्फ, तुफ, तुम्फ, हिंसाथीः ।
पप, रफ, रिफ, अर्व, पर्व, लर्व, वर्व, मर्व, कर्व, यर्व, गर्व, धर्व, पर्व, चर्व,
गतौ । चर्व, अदने च । कुवि, आच्छादने । लुवि, तुवि, अर्दने । चुवि,
वक्रसंयोगे । षृग्र, षृम्ग्र, हिंसाथीं । षिग्र, षिम्ग्र, इत्येके । ग्रुम, श्रुम्म,
भाषणे । हिंसायामित्यन्ये । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

# अथाऽनुनासिकांता विग्याद्यो दशात्मनेभाषाः ॥

विश्वि, घुश्वि, घृश्वि, ग्रह्णे । घुण, घूर्षा, अमणे । पण, व्यवहारे स्तुतौ च । पन, च । भाम, क्रोधे । च्यमूष्, सहने । कम्रु, कान्तौ । इति विषयादयः, उदात्ता अनुदात्तेतः ॥

# श्रथागाद्यः क्रम्यंतास्त्रिंशत्पर्स्मैभाषाः ॥

त्रण, रण, वण, भण, मण, कण, कण, व्रण, अण, ध्वण, शब्दार्थाः। त्राण, अपनयने। शोण, वर्णगत्योः। ओण, संघाते। श्लोण च। पैण, गातिप्रेरणश्लेषणेषु। ध्रण, वण, शब्दे। कनी, दीप्तिकान्तिगतिषु। ष्टन, वन, शब्दे। वन, पन, संभक्तौ। अम, गत्यादिषु। द्रम, इम्म, मीप, गतौ। मीस, शब्दे च। चम्र, छम्र, जम्र, कम्र, अदने। जिम्र, इत्येके। ऋम्र, पादविक्तेपे। इत्युदात्ता उदात्तेतः।।

## अथायादयो रेवत्यन्ता सप्तत्रिंशदात्मनेभाषाः ॥

अय, वय, पय, मय, चय, तय, णय, गतौ। णय, रचणे च। दय, दानगतिरच्चणिहंसादानेषु। रय, गतौ। ऊयी तन्तुसन्ताने। पूयी विशरणे दुर्गन्धे च। क्नूयी, शब्दे उन्दे च। च्वमायी, विधूनने। स्फायी, अोप्यायी, वृद्धौ। तायृ, सन्तानपालनयोः। शल, चलनसंवरणयोः। वल, वल्ल, संवरणे संचलने च। मल, मल्ल, धारणे। भल, भल्ल, पिरभाषणिहंसादानेषु। कल, शब्दसंख्यानयोः। कल्ल, अव्यक्ते शब्दे। तेवृ, देवृ, देवने। षेष्ट, गेष्ट, ग्लेवृ, पेष्ट, मेष्ट, म्लेवृ, सेवने। शेवृ, खेवृ, केवृ, इत्येके। रेवृ, प्लवगतौ। इत्युदात्ता अनुदात्तेतः॥

## अथ मव्यादयोऽवत्यन्ताः सप्तनवतिः परस्मैभाषाः ॥

सूर्त्य, ईन्प्रं, इर्ब्य, इर्ब्यार्थाः । इय, गतौ । शुन्य, चुन्य, अभिषवे । इर्व्य, गतिकान्त्योः । अल, भूषणपर्याप्तिवारणेषु । विफला, विशरणे । मील, श्मील, स्मील, नमेल, निमेषणे । पील, प्रतिष्टम्मे । णील, वर्णे । शील, समाधौ । कील, बन्धने । कूल, आवरणे । शूल, रुजायाम् संघाते च । तूल, निष्कर्षे ।

श्रव रच्चणगतिकान्तिप्रीतितृष्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनिक्रयेच्छादीष्त्य-वाप्ष्त्यार्लिगनहिंसादानमागवृद्धिषु । इति जयतिवर्जमुदात्ता उदात्तेतः ॥ धावु गतिशुद्धचोः । उदात्तः स्वारितेदुमयतोभाषः ॥

#### श्रथोष्मान्ताः ॥

तत्र धुचादयो वुष्यन्ता द्विपञ्चाशदात्मनेभाषाः ॥

धुच धिच सन्दीपनक्लेशनजीवनेषु । वृच्च वरणे । शिच्च विद्योपादाने ।

भिच्च भिच्चायामलाभे लाभे च । क्लेश अध्यक्तायां वाचि बाधने च । दच्च दृद्धौ
शीघार्थे च । दीच्च मौंड्येज्योपनयननियमत्रतादेशेषु । ईच्च दर्शने । ईप गतिहिंसादर्शनेषु । भाष व्यक्तायां वाचि । वर्ष स्नेहने । गेषृ अन्विच्छायाम् । ग्लेषृ

# अथ घुविराद्योऽईत्यन्ता एकनवतिः परस्मैभाषाः ॥

घुषिर् श्रविशब्दने । श्रद्ध व्याप्ती । तद्ध त्वद्ध तन्करणे । उन्च सेचने । रच्च पालने । णिच्च चुंबने । दच्च पृच्च णच्च गतौ । वच्च रोषे, संघात इत्येके । सृच्च संघाते । श्रच्च इत्येके । तच्च त्वचने । पच्च परिश्रह इत्येके । सर्च्च श्रादरानादरयोः। कान्चि वान्चि मान्चि काङ्चायाम् । द्रान्चि श्रान्चि घ्वाचि घोरवासिते च । चूष पाने । तृष तृष्टौ । पूष वृद्धौ । मूष स्तेये । लूष रूप भूषायाम् । शूष प्रसवे । यूष हिंसायाम् । जूष च । भूष श्रवंकारे । ऊष रुजायाम् । ईष उंछे । कष रुष शिष जम कष शाप वप मप रुष रिष हिंसार्थाः । भप भत्सेने । उप दाहे । जिषु विषु मिषु सेचने । पुष पुष्टौ । श्रिषु रिल्चु पुषु प्लुषु दाहे । पृषु पृष्टे मृषु सेचने । मृषु सहने च । इतरौ हिंसासंक्लेशनयोश्च । घृषु संघर्षणे । हृषु श्रव्यक्ति । तुस हस हस रस शब्दे । लष श्लेषणकीडनयोः । घस्लृ श्रद ने । जर्ज चर्च क्रक्के परिभाषणहिंसातर्जनेषु । पिष्टु पेष्टु गतौ । इसे इसने । णिश समाधौ । मिश मश शब्दे रोषकृते च । शव गतौ । शश प्लुतगतौ । शसु हिंसायाम् । शंसु स्तुतौ । चह परिकल्कने । मह पूजायाम् । रह त्यागे ।

रिह गतौ । दह दृहि वृह वृहि वृद्धौ । वृहि शब्दे च । वृहिर् इत्येके । तुहिर् दुहिर् जिहर् अर्दने । अर्ह पूजायाम् ॥ इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ युताद्यः क्रपूपर्यन्ताः पञ्चविंशतिरात्मनेभाषाः ॥

द्युत दीप्तौ । श्विता वर्णे । किमिदा स्नेहने । किष्विदा स्नेहनमोचनयोः । विक्विदा चेत्येके । रुच दीप्ताविभिन्नीतौ च । घुट परिवर्त्तने । रुट खुट खुट खुट खप्याते । शुभ दीप्तौ । खुभ संचलने । ग्राभ तुभ हिंसायास । संसु ध्वंसु अंसु अवसंसने । ध्वंसु गतौ च । अशु अंशु अधःपतने । संशु विश्वासे । वृत्तु वर्त्तने । वृधु वृद्धौ । शृधु शब्दकुत्सायास । स्यन्द् प्रस्रवणे । रुपू सामध्ये (वृत् ) \* इति द्युतादय उदात्ता अनुदात्तेतः ॥

श्रथ घटाद्यस्त्वरत्यन्ताः षोडशात्मनेभाषाः ॥

घट चेष्टायाम् । व्यथ अयसंचलनयोः । प्रथ प्रख्याने । प्रस विस्तारे । म्रद मर्दने । स्वद स्वदने । च्विज गतिदानयोः । दच गतिहिंसनयोः । ऋप कृपायां गतौ च । किद ऋदि ऋदि वैक्लव्ये । वैकस्य इत्येके । कद ऋद क्लद इत्यन्ये । वित्वरा संभ्रमे ॥ इति घटादय उदात्ता श्रमुदात्तेतः ॥

अथ ज्वराद्यः फगाऽन्ताः सप्तपंचाशत् परस्मैभाषाः ॥

ज्वर रोगे। गड सेचने। हेड वेष्टने। वट भट परिभाषणे। णट नृतौ।

एक प्रतीघाते। चक तृतौ। करवे इसने। रगे शंकायाम्। लगे संगे। इगे

इलगे षगे छगे संवरणे। कगे नोच्यते। कियासामान्यर्थत्वात् अनेकार्थत्वादित्यन्ये। अक अग काटिलायां गतौ। कण रण गतौ। चण शण अण दाने

च। शण गतावित्यन्ये। अथ क्रथ कथ कथ हिंसार्थाः। वन च। वतु च

# संपूर्णी द्युतादिर्वृतादिश्चेत्यर्थः ॥

नोच्यते। ज्यल दीप्तौ। हल हाल संचलने। स्मृ आध्याने। दृभये। दृनये। श्री पाके। मारणतोषणानिशामनेषु ज्ञा। कंपने चिलः। छि रूर्जने। जिह्नोन्मथने लिडः। मदी हर्षग्लेपनयोः। ध्यन शब्दे। दिले बिल स्विल रिण ध्यनि त्रिप च्यापि स्वत्यथ्य। स्वन अवतंसने। घटादयो मितः। जनी हृष्क्रसुरं जोऽमन्ताश्च। ज्वलहलहालनमामनुपसर्गाद्वा। ग्लास्ना वनुवमां च। न कम्यमिचमाम्। शमो दर्शने। यमो परिवेषणे। स्विदिखपरिम्यां च। फण गतौ। वृत् \*। इति ज्वरादय उदात्ता उदात्तेतः।।

राजृ दीप्तौ । जदात्तः स्वरितेदुभयतोभाषाः ॥

दुआजृ दुआशृ दुम्लागृ दीप्तौ । उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः ॥

अथ स्यमाद्यः चुरत्यन्ताः सप्तविंशतिः परस्मैभाषाः ॥

स्यमु स्वन ध्वन शब्दे । पम ष्टम श्रवैक्लब्ये । ज्वल दीप्ती । चल कंपने । जल घातने । टल द्वल वैक्लब्ये । ष्टल स्थाने । इल विलेखने । णल गन्धे । बन्धन इत्येके पल गती । बल प्राणने धान्यावरोधे च । पुल महत्वे । कुल संस्त्याने बन्धुषु च । शल हुल पत्लृ गती । क्रथे निष्पाके । पथे गती । मथे विलोडने । दुवम उद्गिरणे । अम्र चलने । च्हर संचलने । च्हर संचये । इति स्थमाद्य उदात्ता उदात्तेतः ।।

श्रथ द्वावनुदात्तेतौ ॥

पह मर्पणे । उदात्तोऽनुदात्तेत् ॥ रम्रु क्रीडायाम् । अनुदात्तोऽनुदात्तेत् ॥

श्रथ षदाद्यः कसंताः सप्त परस्मैभाषाः ॥

पद्छ विशरणगत्यवसादनेषु । शद्छ शातने । कुश आह्वाने रोद्ने च । कुच संपर्चनकौटिल्यप्रतिष्टम्भविलेखनेषु । बुध अवगमने । रुइ वीजजन्मनि

**\* घटादिर्गणः समाप्तः ।।** 

प्रादुर्भावे च । कस गतौ । कुचादय उदात्ता उदात्तेतो रुहिस्त्वनुदात्तः ॥ वृत् ॥ इति ज्वलादिर्गगः ॥

# श्रथ हिकाद्यो गूहत्यन्ताः पंचचत्वारिंश्दुभयतोभाषाः ॥

हिक अन्यक्ते शब्दे । अंचु गतौ याचने च । अचु इत्येके । अचि इत्य-परे । दुयाचृ याञ्चायाम् । रेट्ट परिभाषणे । चते चदे याचने । प्रोष्ट पर्यातौ । मिद्द मेद्द मेधाहिंसनयोः । मेष्ट संगमे च । मिथु मेथु मेधाहिंसयोरित्येके । मिष्ट मेधृ इत्यन्ये । णिद्द णेद्द कुत्सासन्निकर्षयोः । शृधु मृधु उन्दने । बुधिर् बोधने । उचुंदिर निशामने । वेणु गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु । वेतृ इत्येके । खजु अवदारणे । चीवृ आदानसंवरणयोः । चायृ पूजानिशामनयोः । व्यय गतौ । दाशृ दाने । भेषृ भये । गतावित्येके । भ्रेषृ भ्लेषृ गतौ । अस गतिदीप्त्यादानेषु । अषेत्येके । स्पश वाधनस्पर्शयोः । लप कान्तौ । चप मच्चणे । छप हिंसायाम् । भप आदानसंवरणयोः । अच्च भ्लच्च अदने । प्लच्च च । दासृ दाने । माह्द माने । गुहू संवरणे ।। इति हिकादय उदात्ताः खरितेतः।।

## अथाऽजन्ताः श्रिञाद्यो नयत्यन्ताः पंचोभयतोभाषाः ॥

श्रिव् सेवायाम् । उदात्ताः खरितेत् । भृव् भरणे । हृव् इरणे । धृव् धारणे। णीव् प्रापणे । इति भरत्यादयोऽनुदात्ताः खरितेतः ॥

# अथ घेटादयो जयत्यन्ताः षट्चत्वारिंशत्परस्मैभाषाः ॥

धेद् पाने । ग्लै म्लै हर्षच्तये । दै न्यक्करणे । द्वे स्वप्ने । ध्रै तृप्तौ । ध्यै चिन्तायाम् । रै शब्दे । स्त्यै च्छ्यै शब्दसंघातयोः । स्वै स्वदने । च्वै जै पै च्लये । कै गै शब्दे । शै श्रे पाके । पै श्रोवै शोषणे । ष्टै वेष्टने । ज्णौ वेष्टने शोभायां वेत्येके । दैप् शोधने । पा पाने । घा गन्धोपादाने । ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः । ष्टा गतिनिवृतौ । म्ना श्रम्यासे । दाण् दाने । ह्वृ कौटिल्ये । स्वृ शब्दोपतापयोः ।

स्मृ चिन्तायाम् । हृ संवर्षो । सृ गतौ । ऋ गतिप्रापणयोः । यृ घृ सेचने । ध्वृ हूर्छने । स्नु गतौ । षु प्रसवैश्वर्ययोः । श्रु श्रवणे । ध्वु स्थैर्यो । दु द्वु गतौ । जि जि श्रि श्रिभिये ॥ इति धेटादयोऽनुदात्ताः ॥

अथ सिङ्ङादयो डीङंता ङितः सप्तविंशतिरात्मनेभाषाः ॥

िमङ् ईषद्वसने । गुङ् अन्यक्के शब्दे । गाङ् गतौ । कुङ् घुङ् उङ् छुङ् शब्दे । कुङ् ख्रुङ् गुङ् छुङ् चेत्याहुरन्ये । च्युङ् ज्युङ् छुङ् पुङ् प्लुङ् गतौ । क्लुङ् इत्येके । रुङ् गतिरेषण्योः । धृङ् अवध्वंसने । मेङ् प्रणिदाने । देङ् रच्चणे । श्यैङ् गतौ । प्यैङ् वृद्धौ । त्रैङ् पालने ।। इति विमङ्प्रभृतयोऽनुदः नाः ।।

पूङ् पवने । मूङ् वन्धने । डीङ् विहायसागतौ ।। इति पूङादय उदात्ताः ॥
तृ प्लवनसंतरणयोः । उदात्तः परस्मैमाषः ॥

श्रथ गुपादयो दहत्यन्ता अष्टावात्मनेभाषाः ॥

गुप गोपने । तिज निशाने । मान पूजायाम् । वध बन्धने । गुपादयश्रत्वार खदात्ता अनुदात्तेतः ॥

रम राभस्ये । दुल्यस् प्राप्तौ । ष्वन्ज परिष्वके । इद पुरीषोत्सर्गे । रमादयश्रत्वारोऽनुदात्ता श्रनुदात्तेतः ॥

श्रथ ष्विदादयो मेहत्यन्ताः पञ्चद्श परस्मैभाषाः ॥

विश्विदा अन्यक्ते शब्दे । उदात्तः । स्कन्दिर् गतिशोषण्योः । यभ मैथुने । णम् प्रह्वत्वे शब्दे च । गम्लृ सृष्लृ गतौ । यम उपरमे । तप सन्तापे। त्यज हानौ । पंज संगे । दृशिर् प्रेच्चणे । दृश दशने । कृष विलेखने । दृह भस्मीकरणे । मिह सेचने । स्कन्दादयोऽनुदात्ताः ॥ इति । स्विदादय उदात्तेतः ॥ अथैकः परस्मैभाषः ॥

कित निवासे रोगापनयने च । जदात्तेत् ॥

अथ द्वावुभयतोभ।षौ ॥

दान खंडने । शान तेजने । खरितेतौ ॥

अथ पचाद्यो वहत्यन्ता नवोभयतोभाषाः ॥

डुपचष् पाके । षच समवाये । भज सेवायाम् । रंज रागे । शप ध्राक्रोशे । त्विष दीप्तौ । यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु । डुवप वीजसन्ताने छेदने च ॥ वह प्रापणे ॥ इति पचादयोऽनुदात्ताः स्वरितेतः सचितस्तूदात्तः ॥

अथैकः परस्मैभाषः ॥

वस निवासे । उदात्तेदनुदात्तः ॥

अथ व्येञादयस्त्रय उभयतोभाषाः ॥

वेञ् तन्तुसन्ताने । ध्येञ् संवर्षो । ह्वेञ् स्पर्द्वायां शब्दे च । व्येञादयोऽ-तुदात्ताः ॥

#### अथ द्वौ परस्मैभाषौ ॥

वद व्यक्नायां वाचि । दुत्रोश्वि गतिवृद्धयोः इत्युदात्तौ । वृत् । इति यजादिर्गणः समाप्तः ॥

इति शब्विकरणा भ्वादयः समाप्ताः ॥

----

# अथाऽदादिर्गणः ॥

## अथ द्वी परस्मैभाषी ॥

अद् भच्यो । इन हिंसागत्योः । अनुदात्तावुदात्तेतौ ॥

श्रथ चत्वार उभयतोभाषाः ॥

द्विष अप्रीतौ । दुइ प्रपूर्णे । दिइ उपचये । लिइ आस्वादने । द्विषादयोऽ-जुदात्ताः स्वरितेतः ।

अथैक आत्मनेभाषः॥

चित्रङ् व्यक्तायां वाचि । अयं दर्शनेऽपि । अनुदात्तेतौऽनुदात्तेत् ॥

अथ पृच्यंन्ताः षोडशात्मनेभाषाः ॥

ईर गतौ कंपने च । ईड स्तुतौ । ईश ऐश्वरों । आस उपवेशने । आङः शासु इच्छायाम् । वस आच्छादने । किस गतिशासनयोः । कस इत्येके । कश इत्यन्ये । शिसि चुंबने । शिजि शुद्धौ । शिजि अव्यक्ते शब्दे । पिजि वरशे । पृजीत्येके । वृजी वर्जने । पृची संपर्चने । इतीरादय उदात्ता अनुदात्तेतः ।।

### अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

षूङ् प्राणिगर्भविमोचने । शीङ् स्वप्ने । उदात्तौ ॥

अथ पञ्च परस्मैभाषाः ॥

यु मिश्रणे श्रमिश्रणे च । णु स्तुतौ । रु शब्दे । दुच्च शब्दे । अ्णु तेजने । इत्युदाचा उदाचेतः ॥

#### अथैक उभयतोभाषः ॥

🛌 प्रर्शुञ् श्राच्छादने । उदात्तः ॥

श्रथ पञ्च परस्मैभाषाः ॥

ब्णु प्रस्नवर्षो । द्यु ग्राभिगमने । षु प्रसर्वैश्वर्ययोः । कु शब्दे । तु गतिवृ-द्विहिंसासु । इत्यनुदात्ता बदात्तेतः ॥

श्रथ द्वावुभयतोभाषौ ॥

ष्टुञ् स्तुतौ । ब्रूञ् व्यक्षायां वाचि । इत्यनुदात्तौ ॥

अथैकोनविंशतिः परस्मैभाषा इङ्खात्मनेभाषः ॥

इण् गतौ । इङ् अध्ययने । इक् स्मरणे । वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यस-नखादनेषु । या प्रापणे । वा गतिगन्धनयोः । भा दीप्तौ । प्णा शौचे । श्रा पाके । द्रा कुत्सायां गतौ च। प्सा भच्चणे । पा रच्चणे । रा दाने । ला श्रादाने । दाप् लवने । ख्या प्रकथने । प्रा पूरणे । मा माने । वच परिभाषणे । इत्यजु-दात्ता उदात्तेतः ॥

अथ चत्वारः परस्मैभाषाः ॥

विद ज्ञाने । अस भ्रुवि । मृजूष् शुद्धौ । रुदिर् अश्रुविमोचने । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथैकः परस्मैभाषाः॥

त्रिष्यप् शये । उदात्तेदनुदात्तः ॥

श्रथ सप्त परस्मेभाषाः ॥

रवस प्राण्ने । अन च । जच भच्चइसनयोः । जाग्र निद्राच्चये । दरिद्रा दुर्गतौ । चकामृ दीप्तौ । शासु अतुशिष्टौ । इत्युद्दाचा उदाचेतः ॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

दीधीक् दीप्तिदेवनयोः । वेबीक् वेतिना तुल्ये । इत्युदात्तौ ॥

### जुहोत्यादिगणः॥

## अथ त्रयः परस्मैभाषाः ॥

पस पस्ति स्वप्ने । वश कान्तौ । इत्युदात्ता जदात्तेतः । चर्करीतव्य । तं च ॥

अथैक आत्मनेभाषः ॥

इ्तुङ अपनयने । इत्यतुदात्तः ॥ इति लुग्विकरणा अदाद्यः ॥

# अथ जुहोत्यादिर्गणः ॥

;-o-;---

अथ त्रयः परस्मैभाषाः ॥

हु दानादनयोः । ब्रादाने चेत्येके । त्रिमी मये । हृ लज्जायाम् । जुहोत्यादयोऽनुदात्ताः ॥

अथैकः परस्मेभाषः॥

पृ पालनपूर्णयोः । उदात्तः । इस्वान्तोयमित्येके ॥

अथैक उभयतोभाषः ॥

ञ्चभृव् धारणपोषणयोः । अनुदात्तः ॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

भारू माने शब्दे च । श्रोहारू गतौ ॥

अथैकः परस्मैभाषः ॥

श्रोहाक् त्यागे । श्रमुदात्तः ॥

अथ द्वावुभयतोभाषौ ॥

हुदान् दाते । हुआन् अप्राम्मोषम्मोः dol अतुदान् दिवी Jotri Initiative

#### अथ त्रय उभयतोभाषाः ॥

णिजिर् शौचपोषणयोः । विजिर् पृथग्मावे । विष्टु व्याप्तौ । इति णिजादयोऽजुदात्ताः खरितेतः ॥

अथ गणान्ताः परस्मैभाषाइं अन्द्साश्चेकाद्श ॥

घृ च्वरणदीप्त्योः । हृ प्रसह्यक्तरणे । ऋ मृ गतौ । इति घादयश्रत्वारोऽ-जुदात्ताः ॥

भस भर्त्सनदीप्त्योः । उदात्त उदात्तेत् । कि ज्ञाने । श्रतुदात्तः । तुर त्वरगो । धिष शब्दे । धन धान्ये । जन जनने । तुरादय उदात्ता उदात्तेतः । गा स्तुतौ । श्रतुदात्तः । छन्दसि । वृत् । इति रद्धविकरणा जुहोत्यादयः ॥

## अथ दिवादिर्गणः ॥

---:o:---

# अय दिवादयः षड्विंशतिः परस्मैभाषाः ॥

दिवु क्रीडाविजिगीपान्यवहारचुतिस्तुतिमोदमदस्यप्नकान्तिगतिषु । पिवु तन्तुसन्ताने । स्निवु गतिशोषण्योः । ष्टिवु निरसने । स्नुसु अदने । आदान इत्येके । अदर्शन इत्यपरे । स्नसु निरसने । क्नसु हरण्यदीप्त्योः । न्युप दाने । प्लुप च । नृती गात्रविच्तेपे । त्रसी उद्वेगे । कुथ पूतीमावे । पुथ हिंसायाम् । गुघ परिवेष्टने । च्लिप प्रेरणे । अनुदात्तः । पुष्प विकसने । तिम तीम ष्टिम ष्टीम आर्द्रीमावे । ब्रीड चोदने लज्जायाञ्च । इप गतो । षुइ पुइ चक्यर्थे । जूप श्रृप वयोहानो । इति दिवादय उदाचा उदाचेतः ॥

# अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥ पूर् प्राणिप्रसवे । दृह परितापे । इत्युदात्तौ ॥ अथ दीङादय एकादश आत्मनेभाषाः ॥

दीङ् चये । डीङ् विहायसा गतौ । घीङ् आघारे । मीङ् हिंसायाम् । रीङ् अवगो । लीङ् रलेषगो । त्रीङ् वृगीत्यर्थे । (वृत् ) स्वादय ओदितः । पीङ् पाने । माङ् माने । इङ् गतौ । त्रीङ् त्रीणने । इति दीङादय अनुदात्ता डीङ् तूदात्तः ॥

अथ चत्वारः परस्मैभाषाः ॥

शो तन्करणे । छो छेदने । षो अन्तकर्मणि । दो अवखंडने । श्यतिप्रभुतयोऽनुदात्ताः ॥

## अय पंचद्शात्मनेभाषाः ॥

जनी प्रादुर्भावे । दीपी दीप्तौ । पूरी आप्यायने । तूरी गतित्वरणहिंसनयोः । धूरी गूरी हिंसागत्योः । घूरी र्ज्री हिंसावयोहान्योः । शूरी हिंसास्तंभनयोः । चूरी दाहे । तप ऐश्वर्यो । वाष्ट्रतु वरणे । क्लिश उपतापे । काशृ दीप्तौ । वाशृ शब्दे । इति तपिवर्जग्रदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ द्वानुभयतोभाषौ ॥

मृष तितित्वायाम् । ईश्चिर् पूर्तीभावे । उदाचौ खरितेतौ ॥

अथ त्रय उभयतोभाषाः ॥

मह बन्धने । रंज रागे । शप श्चाक्रोशे । इत्यनुदात्ताः खरितेतः ॥

अधैकाद्शात्मनेभाषाः ॥

पद् गतौ । स्विद् दैन्ये । विद् सत्तायाम् । बुध श्रवगमने । युध संप्रहारे । श्रनोरुध कामे । श्रम् प्रामने । उदात्तः । मन ज्ञाने । युज समाधौ । सृज विसर्गे । लिश श्रन्थीमावे । इत्यनदात्ता श्रनदात्तेतः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

## अथ गणांता एकसप्ततिः परस्मैभाषाः ॥

राधाऽकर्मकाद् वृद्धावेव । व्यध ताइने । पुष पुष्टौ । शुष शोषणे । तुष श्रीतौ । दुष वैकृत्ये । श्लिष आर्त्तिगने । शक विभाषितो मर्पणे । त्रिष्विदा गात्रश्रच्तरणे । कुध कोधे । चुध बुश्चचायाम् । शुध शौचे । पिधु संराद्धौ । इत्यनुदाचा जदाचेतः । रध हिंसासंराध्योः । णश अदर्शने । तृप श्रीणने । दप हर्षणमोहनयोः । दुह जिघांसायाम् । श्रुह वैचित्ये । सनुह जदिरणे । निणह श्रीतौ । वृत् । रधादयः । इत्युदाचा जदाचेतस्तृपिद्दपीत्वनुदाचौ ॥

#### अथ शमाद्यः ॥

शह उपशमे । तह कांचायाम् । दृष्ठ उपशमे । श्रष्ठ तपित खेदे च । श्रम्र अनवस्थाने । च्लम्प् सहने । क्लम्र ग्लानो । मदी हर्षे । इत्यष्टौ शमादयः । श्रम्र च्लेप्यो । यस प्रयत्ने । जस मोच्ल्यो । तस उपच्चे । दस च । वस स्तंभे । वशादिरित्येके । श्रोष्ट्रयादिर्दन्त्यांतो ब्युम् इत्यन्ये । श्रयकारं चुम् इत्यपरे । व्युष्ठ विभागे । प्जुष दाहे । विस प्रेर्यो । कुस संश्लेपयो । चुस उत्सर्गे । मसी परियामे । समी इत्येके । जुठ विलोडने । उच समवाये । भृष्ठ श्रंशु श्रधः पतने । वृश वर्यो । कृश तन्कर्यो । कितृप पिपासायाम् । हृष् तृष्टौ । रूप तिष्ठ हिंसायाम् । डिप् च्लेपे । कुप क्रोधे । गुप व्याकुलत्वे । युपु रुपु जुपु विमोहने । जुभ गार्थे । जुम संचलने । युभ तुम हिंसायाम् । क्लिद् श्रम्पे । विचिवदा स्नेहनमोचनयोः । श्रम् वृद्धौ । युपु श्रमिकांचायाम् । वृत् । इत्युदाचा उदाचेतः ॥

# ्रइति श्यन्विकरणा दिवाद्यः ॥

## अथ स्वादिर्गणः ॥

\_\_\_;o;\_\_\_

## अथ स्वाद्या दशोभयतोभाषाः ॥

षुत्र त्राभिषवे । षित्र बन्धने । शित्र निशाने । दुमित्र प्रचेपणे । चित्र चयने । स्तृत्र त्राच्छादने । कृत्र हिंसायाम् । वृत्र वरणे । धुत्र कंपने । दीर्घान्तोऽपीत्येके । इति हुत्र वर्षमजुदात्ताः ॥

## अथ नव परस्मैभाषाः ॥

दुदु उपतापे । हि गतौ वृद्धौ च । पृ प्रीतौ । स्पृ प्रीतिसेवनयोः । प्रीतिचलनयोरित्यन्ये । स्मृ इत्येके । आप्लृ व्याप्तौ । शक्लृ शक्नौ । राध साध संसिद्धौ । इत्यदुदात्ताः ॥

### अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

अशूङ् न्याप्तौ संघाते च । ष्टिघ आस्कन्दने । इत्युदात्तावनुदात्तेतौ ॥

अथागणांताः षोडश परस्मैभाषाः ॥

तिक तिग गतौ च । षघ हिंसायाम् । त्रिधृषा प्रागल्स्ये । दंशु दम्भने । त्रिधु वृद्धौ । छन्दासे । तृप प्रीयान इत्येके । अह व्याप्तौ । दघ घातने पालने च । चग्रु भच्चयो । रि च्चि चिरि जिरि दाशृ दृ हिंसायाम् । इत्युदाचा उदाचेतः ॥

## वृत् । इति इनुविकरणाः स्वाद्यः ॥

CO. O. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, An eGangotri Initiative

#### अथ तुदादिर्गणः॥

--:o:---

## अथ षडुभयतोभाषाः ॥

तुद व्यथने । गुद प्रेरणे । दिश त्रितिसर्जने । अस्ज पाके । च्चिप प्रेरणे । कृष विलेखने । इत्यनुदात्ताः खरितेतः ।

अथैकः परस्मैभाषः ॥

ऋषी गतौ । उदात्त उदात्तेत् ॥

#### अथ चत्वार आत्मनेभाषाः ॥

जुपी प्रीतिसेवनयोः । श्रोविजी भयचलनयोः । श्रोलजी श्रोलस्जी वीडा-याम् । इत्युदात्ता श्रनुदात्तेतः ॥

## अथ ब्रश्चाद्यश्चतुर्दशोत्तरशतं परस्मैभाषाः ॥

त्रोत्रश्रू छेदने । व्यच व्याजीकरणे । उच्छ उच्छे । उच्छी विवासे । त्राच्छ गतीिन्द्रयप्रलयम् क्षिमावेषु । मिच्छ उत्वलेशे । जर्ज वर्च सर्म परिमान्यणमर्सनयोः । त्वच संवरणे । ऋच स्तुतौ । उब्ज आर्जवे । उब्भ उत्सर्गे । जुभ विमोहने । रिफ कत्थनयुद्धनिन्दाहिंसादानेषु । रिह इत्येके । तृप तृंप तृप्तौ । तृफ तृंफेत्येके । तुप तुंप तुफ तुंफ हिंसायाम् । इफ इंफ उत्वलेशे । इफ इत्यन्ये । ऋफ ऋंफ हिंसायाम् । गुफ गुंफ प्रन्थे । उम उंभ पूरणे । शुभ शुंभ शोमार्थे । हमी प्रन्थे । हिंसाग्रन्थनयोः । विध विधाने । छुड गतौ । छुन इत्येके । सृड सुखने । एड

CC-0. Panini Kanya Maha Vidvalava Collection. An eGangotti Initiati

च। पृषा प्रीणाने। वृषा-च। मृड हिंसायाम्। तुषा कौटिल्ये। पुषा कर्माण शुमे।

मुषा प्रतिज्ञाने। कुषा शब्दोपकरण्योः। शुन गतौ। द्रुणा हिंसागितकौटिल्येषु।

पुषा भूषी भ्रमणे। पुर ऐश्वर्य्यदीप्त्योः। कुर शब्दे। खुर छेदने। मुर संचेष्टने।

खुर विलेखने। पुर भीमार्थशब्द्योः। पुर गमने। वृह ज्यमने। वृह इत्येके।

तृह पृहु तृंह हिंसार्थाः। इषु इच्छायाम्। मिष स्पर्द्वायाम्। किल श्वेत्यकीडनयोः। तिल स्नेहे। चिल वसने। चल विलसने। इल खमच्चेपण्योः।

विल संवरणे। विल भेदने। णिल गहने। हिल भावकरणे। शिल पिल

जब्छे। मिल श्लेपणे। लिख अन्तरविन्यासे। कुट कौटिल्ये। पुट संश्लेपणे।

कुच संकोचने। गुज शब्दे। गुड रचायाम्। हिप चेपे। कुर छेदने। स्पुट

विकसने। मुट आच्चेपप्रमर्दनयोः। तृट हेदने। तुट कलहकर्मणि। चुट छुट

छेदने। जुड वन्धने। कड मदे। जुट संश्लेपणे। जुट इत्येके। कुड धनत्वे।

कुड बाल्ये। पुड उत्सर्गे। पुट प्रतिधाते। तुड तोडने। युड स्पुड संवरणे।

खुड छुड इत्येके। स्पुर स्पुरणे। स्पर इत्येके। स्पुल संचलने। स्पुड चुड

हुड संवरणे। कुड भुड निमज्जने। इत्युदात्ता उदात्तेतः॥

अथैक आत्मनेभाषः ॥

गुरी उद्यमने । इत्युदाचोऽनुदाचेत् ॥

अथ पंच परस्मैभाषाः॥

राष्ट्र स्तवने । धू विधूनने । गु पुरीषोत्सर्गे । धु गतिस्थैर्ययोः । ध्रुव इत्येके

अथ द्वावात्मनेभाषौः॥

कुङ शब्दे । कुङ शब्द इत्येके । इत्युदानी ॥ (वृत् ) इति कुटादिगणः समाप्ताः ॥

अथ द्वावात्मनेभाषी ॥

पृङ् व्यायामे । मुङ् प्राण्त्यागे । इत्यनुदात्तौ ॥

CC-U Fanini Nauva Maha Vidvalovo Collection, An eGangofri Initiative

#### अथ सप्त परस्मैभाषाः ॥

रि पि गतौ । घि घारणे । चि निवासगत्योः । इत्यनुदात्ताः ॥ षु प्रेरणे । कु विच्लेपे । गृ निगरणे । इत्युदात्ताः ॥

#### अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

हङ् आदरे । धृङ् अनवस्थाने । इत्यनुदात्तौ ॥

## अथ षोडश परस्मैभाषाः॥

प्रच्छ ब्रीप्सायाम् । वृत् । किरादयो वृतः ॥

सृज विसर्गे । दुमस्जो शुद्धौ । रूजो भङ्गे । शुजो कौटिल्ये । छुप स्पर्शे । रुश रिश हिंसायाम् । लिश गतौ । स्पृश संस्पर्शने । विच्छ गतौ । विश प्रवेशने । सुश आमर्शने । खुद प्रेरणे । पद्छु विशरंगात्यवसादनेषु । शद्ख शातने । इत्यनुदात्ता उदात्तेतो विच्छिस्तूदात्तः ॥

## अथ षडुभयतोभाषाः ॥

मिल संगमे । मुच्ल मोचने । लुप्ल छेदने । विद्ल लामे । लिप उपदेहे । षिच चर्यो । इत्यनुदात्ताः खरितेतो मिलिस्तृदात्तः ॥

## अथ त्रयः परस्मेभाषाः ॥

कृती छेदने । खिद् परिघातने । पिश अवयवे । इत्युदात्ता उदात्तेतः खिदिस्त्वनुदात्तः। वृत् ॥

इति शविकरणास्तुदाद्यः ॥

## स्रय रुधादिर्गणः ॥

#### अथ नवोभयतोभाषाः ॥

रुघिर आवरणे । मिदिर विदारणे । छिदिर द्वैधीकरणे । रिचिर विरेचने । विचिर पृथग्मावे । चुदिर संप्रेषणे । युजिर योगे । उच्छृदिर दीप्तिदेवनयोः । उत्तदिर हिंसानादरयोः । इत्यनुदात्ताः खरितेतः छदितृदी तृदात्तौ ।

अथैकः परस्मैभाषः ॥

कृती छेदने । इत्युदात्त उदात्तेत् ॥

अथैक आत्मनेभाषः॥

विइन्धी दीप्तौ । उदात्तोऽनुदात्तेत् ॥

श्रथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

सिद दैन्ये । विद विचारणे । इत्यनुदात्तावनुदात्तेतौ ॥

#### अथ द्वाद्श परस्मैभाषाः ॥

शिष्तः विशेषणे । पिष्तः संचूर्णने । मंजो आमर्दने । भ्रुज पालनाम्यव-हारयोः । तृह हिसि हिंसायाम् । उन्दी क्लेदने । अञ्जू व्यक्तिम्रच्चणकान्तिगतिषु । तंचू संकोचने । भ्रोविजी भयचलनयोः । हृजी वर्जने । पृची संपर्के । इत्युदात्ता उदात्तेतः । श्राद्याश्रत्वारस्त्वनुदात्ताः । वृत् ।।

इति इनम्विकरणा रुधाद्यः ॥

### अथ तनादिर्गणः ॥

-----

#### अथ सप्तोभयतोभाषाः ॥

तज्ञ विस्तारे । पणु दाने । च्हणु हिंसायाम् । च्हिणु च । ऋणु गतौ । हुणु अदने । घृणु दीप्तौ । इत्युदात्ताः खरितेतः ॥

#### अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

वतु याचने । मतु अवबोधने । इत्युदात्तावतुदात्तेतौ ।।

अथैक उभयतोभाषः ॥

डुकुञ् करणे । अनुदात्तः । वृत् ॥

इत्युविकरणास्तनाद्यः ॥

अथ ऋचादिर्गणः॥

#### श्रथ सप्तोभयतोभाषाः ॥

हुक्रीञ् द्रव्यावीनिमये । प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च । श्रीञ् पाके । मीञ् हिंसायाम् । पिञ् वन्धने । स्कुञ् आप्रवर्णे । युज् वन्धने । इत्यनुदात्ताः ॥

#### अथ नवोभयतोभाषाः॥

क्तूञ् शब्दे। द्र्ञ् हिंसायाम् । पूज् पवने । मूज् वन्धने । लूज् छेदने । स्तृत्र् श्राच्छादने । कृञ् हिंसायाम् । वृत्र् वरखे । धृञ् कम्पने । इत्युदात्ताः ॥

# श्रथ श्राद्यो ग्रंणात्यन्तास्त्रयोद्श परस्मैभाषाः ॥

श्रृ हिंसायाम् । प्रृ पालनपूरणयोः । व्रृ वरणे । स्त्रृ हिंसायाम् । श्रृ भरणे ।
भ्रृ भर्तिने । ज्रृ वयोहानौ । श्रृ इत्येके । द्रृ विदारणे । ध्रृ इत्यन्ये । नृ नये । प्रृ हिंसायाम् । ऋ गतौ । ग्रृ शब्दे । इति श्रादय उदात्ताः ॥

#### श्रथ द्श परस्मैभाषाः ॥

ज्या वयौद्दानौ । त्री वरणे । री गतिरेषणयोः । ली श्लेषणे । ब्ली वरणे । प्ली गतौ । वृत् । इति प्वादयः ॥

चीष् हिंसायाम् । श्री भये । ज्ञा श्रवबोधने । वन्ध वन्धने । इति ज्यादयोऽनुदात्ताः ॥

अथैक आत्मनेभाषः॥

वृद् संभक्तौ । इत्युदात्तः । इति ल्वादयः ॥

श्रथ पञ्चविंशतिः परस्मैभाषाः ॥

अन्य विमोचनप्रतिहर्षयोः। मन्य विलोडने। अन्य ग्रन्थ संदर्भे। कुन्य संरलेषणे। सुद चोदे। मृड च। मृड सुलेच। गुध रोषे। कुष निष्कर्षे। चुम सञ्चलने। णम तुम हिंसायास्। क्रिश्र विषाधने। श्रश्र भोजने। उध्रस उब्छे। ईष श्राभीच्यये। विष विप्रयोगे। प्रुष प्लुष स्नेहनसेचनपूर्णोषु। पुष पुष्टो। सुष स्तेये। सच स्त्याद्य वदात्ता उदात्तेतः।।

अथैक उभयतोभाषः ॥

ग्रह जपादाने । इत्युदात्तः खरितेत् । वृत् ।।

इति श्नाविकरणः क्रधाद्यः॥

## अथ चुरादिगगः ॥

----

# अथ चुराद्यस्तुप्यन्तास्त्रिषष्ट्युत्तरमेकशतमुद्गत्तेतः

## परस्मैभाषाः ॥

चुर स्तेये । चिति स्मृत्याम् । यात्रे सङ्कोचने । स्फुडि परिहासे । लच दर्शनांकनयोः । कुद्रि श्रनृतभाषणे । लड उपसेवायाम् । मिदि स्नेहने । श्रोलांड उरचेपणे । जल श्रपवारणे लजीत्येके । पीड श्रवगाइने । नट अवस्पन्दने । अथ प्रयत्ने प्रस्थान इत्येके । वध संयमने । ऊर्ज्ज बलप्राणनयोः। पच्च परिग्रहे । वर्षा वर्षाने । वर्षा चूर्ण प्रेरे । प्रथ प्रख्याने । पृथ प्रच्तेपे । प्रथ इत्येके। पम्ब संवन्धने। शम्ब च। साम्ब इत्येके। भच्च अदने। कुट छेदनभत्सनयोः । पूरण इत्येके । शुट्ट चुट्ट अरुपीभावे अष्ट पुट्ट अनादरे । ज्जुएठ स्तेये । शठ श्वठ असंस्कारगत्योः । श्वठि इत्येके । पिज वुजि तुजि पिजि लाजि द्धाजि हिंसाबलादानानिकेतनेषु । पिस गतौ । पान्त्व सामप्रयोगे । श्वल्क वल्क परिभाषणे । ब्यिइ स्नेइने । स्फिट इत्येके । स्मिट अनादरे । ब्मिङ् अनादर इत्येक । श्लिष श्लेषयो । पथि गतौ । पिच्छ कुट्टने । छदि संवरयो । अया दाने । तिड श्राघाते । खड खिंड किंड भेदने । कुंडि रच्चे । गुंडि वेष्टने च । कुठि गुठि चेत्यन्ये । खुडि खएडने । वटि विभाजने । वडि इत्येके । चाडि कोपे । मडि भूषायाम् इर्षे च । भडि कल्याणे । छर्द वमने । पुस्त बुस्त आदरानाद्रयोः । चुद संचोदने । नक धक नाशने । चक चुक व्यथने । चल शौचकर्मिशा । तल प्रतिष्ठायाम् । तुल जन्माने । दुल जन्त्रेपे । पुल महत्त्वे । समुच्छ्राये । मुल रोह्यो । युल निमज्जने । कल विल च्वेपे । विल मेदने ।

तिल स्नेहने । चल भृतौ । पाल रच्चणे । तूष हिंसायाम् । शुल्व माने । शूर्प च। चुट छेदने । मुट संचूर्णने । पिश नाशने । पिड पिस नाशने । वज मार्गसंस्कारगत्योः । शुल्क अतिस्पर्शने । चिप गत्याम् । चिप चान्त्याम् । चिषि कुच्छ्रजीवने । श्वर्त्त गत्याम् । श्वभ्र च । इप मिच । इप मारणतोषणिनशामनेषु । यम च परिवेषणे । चह परिकल्कने । वल प्राण्ने । चित्र् चयने । रह त्यागे । घट्ट चलने । ग्रुस्त संघाते । खट्ट संवरणे । खट्ट स्फिट्ट चुवि हिंसायाम् । पूल सङ्घाते । पूर्ण इत्येके । पुंस अभिवर्द्धने । टिक वन्धने । धूस् कान्तिकरणे । कीट वरणे। चूर्ण संकोचने। पूज पूजायाम्। अर्क स्तवने। शुठ आलस्ये। शुठि शोषसे । जुड प्रेरसे । गज मार्ज शब्दार्थी । मर्च च । धृ प्रस्नवसे । पचि विस्ताखचने । तिज निशाने । कृत संशब्दे । ऊर्द्ध वर्द्ध छेदनपूरणयोः । कृवि अाच्छादने । कुमि इत्येके । लुबि तुबि अदर्शने । अईन इत्यन्ये । इलप व्यक्तायां वाचि । क्लपु इत्येके । चुठि छेदने । इल प्रेरणे । प्रच्छ म्लेच्छने । म्लेच्छ प्रच्न छेदने । म्लेच्छ अन्यक्तायां वाचि । ब्रूस वई हिंसायाम् । गर्द गर्ज शब्दे । गर्ध अभिकांचायाम् । गुर्द पूर्वनिकेतने । जास रच्यो । ईड स्तुतौ । जसु हिंसायाम् । पिडि संघाते । रुप रोषे । रुड इत्येके । डिप च्वेपे । ष्टुप समुच्छाये । इत्यदाचा उदाचेतः ॥

# अथ आक्रस्माद् द्विचत्वारिंशदात्मनेभाषाः ॥

चित संचेतने । दाश दंशदर्शनयोः । दसि दस इत्येके । उप डिप संघाते । ति कुडुम्बधारणे । मात्रि गुप्तपारिभाषणे । स्पृश ग्रहणसंश्लेषणयोः । तर्ज मर्त्स तर्जने । वस्त गन्ध ब्रार्दने । विष्क हिंसायाम् । हिष्क इत्येके । विष्क परिमाणे । लल ईप्सायाम् । कूण संकोचने । तूण पूरणे । श्रूण ब्राशाविशंकयोः । शुठ क्लाघायाम् । यद्ध पूजायाम् । स्यम वितर्के । गूर उद्यमने ।

शम लच्च त्रालोचने । त्रुट छेदने । क्रुट इत्येके । क्रुत्स त्रवच्चेपणे । गल श्रवणे । मल त्रामण्डने । क्रुट त्राप्रदाने । त्रवसादन इत्येके । क्रुट प्रतापने । वञ्च प्रलंभने । वृष शक्तिवन्धने । मद तृप्तयोगे । दिवु परिकृजने । गृ विज्ञाने । विद चेतनाख्यानिवासेषु । मन स्तम्भे । यु जुगुप्सायाम् । क्रुस्म नाम्नोवा । इत्युदात्ता श्रनुदात्तेतः ॥

### अथोभयतोभाषाः ॥

चर्च अध्ययने । बुक भाषणे । शब्द उपसर्गादाविष्कारे च । कण निमीलने । जिम नाशने । पूद च्हरणे । जसु ताडने । पश बन्धने । अम रोगे। चट स्फुट भेदने । घट संघाते । इन्त्यथि । दिवु मर्दने । अर्ज प्रतियत्ने । घुषिर् विशब्दने । आङः ऋन्दसातत्ये । लस शिल्पयोगे । तिस भूष अलङ्कारे । आई पूजायाम् । ज्ञा नियोगे । भज विश्राणने । शृधु प्रसहने । यत निकारोप-स्कार्योः । कल गल आस्तादने । रघ इत्येके । रगेत्यन्ये । अञ्च विशेषणे । लिगि चित्रीकरणे । सुद संसर्गे । त्रस धारणग्रहणवारणेषु । उधस उञ्छे । सुच प्रमोचनमोदनयोः । वस स्नेहच्छेदापहरणेषु । चर संशये । च्यु इसनसहनयोः । सुवो अवकल्कने । मिश्रीकरण इत्येके । चिन्तन इत्यन्ये । कृपेश्व ॥

# आखदः सकर्मकात्॥

ग्रस ग्रहणे। पुष धारणे। दल विदारणे। पट पुट छुट तुनि मिनि पिनि मिन लिघ त्रिस पिसि कुसि दिस कुशि घट घटि वृहि वह वल्ह गुप धूप विच्छ चीव पुथ लोकु लोचृ णद कुप तर्क वृतु वृधु भाषार्थाः। रुट लिन अनि दिस भृति रुषि शीक नट पुटि निवि रिघ लिघ अहि रहि मिह च। लिड तड नल च। पूरी आप्यायने। रुज हिंसायाम्। ज्वद आश्वादने।।

#### आधृषाद्वा ॥

युज पृच संयमने । अर्च पूजायाम् । षद्द मर्षणे । ईर च्ये । ली द्रवीकरणे । वृजी वर्जने । वृज् आवरणे । जृ वयोद्वानो । जिच रिच वियोजनसंपर्चनयोः । शिष असर्वोपयोगे । तप दाहे । तप तृप्तो । छ्दी सन्दीपने । चृप छ्प दप सन्दीपने । द्यमी भये । दम सन्दर्भे । छद संवरणे । अथ मोच्चणे । मी गतौ । प्रन्थ बन्धने । ऋथ हिंसायाम् । खरितेदित्येके । शीक आमर्षणे । चीक च । अर्द हिंसायाम् । आर्द पूजायाम् । आङः षद पद्यर्थे । शून्ध शौचकर्मणि । छद अपवारणे । खरितेत् । जुष परितर्कणे । धूज् कंपने । प्रीञ् तपेणे । अन्थ प्रन्थ सन्दर्भे । आप्त लंभने । तनु अद्वोपकरण्योः । जपसर्गाचादैर्घ्ये । वद सन्देशवचने । खरितेत् । वच परिभाषणे । मान पूजायाम् । भू प्राप्तावात्मने-पदी । गई विनिन्दने । मार्ग अन्वेषणे । कठि शोके । मृज् शौचालंकरण्योः । मृष तितिच्वायाम् । धृष प्रसहने । इत्याधृषीयाः ॥

#### अथाद्न्ताः ॥

कथ वाक्यप्रवन्धे । वर ईप्सायाम् । गण संख्याने । श्राठ श्राठ सम्यगवभाषणे । पट वट प्रन्थे । रह त्यागे । रङ्ग गतौ । स्तन गदी देवशब्दे । पत गतौ । पष अनुपसर्गात् । खर आच्चेपे । रच प्रतियत्ने । कल गतौ संख्याने च । चह परिकल्कने । मह पूजायाम् । सार कृप श्रथ दौर्बल्ये । स्पृह ईप्सायाम् । भाम क्रोधे । स्वच पैशुन्थे । खेट मच्चणे । खोट इत्येके । च्चोट च्चेपे । गोम उपलेपने । कुमार क्रीडायाम् । शील उपधारणे । साम सान्त्वप्रयोगे । वेल कालोपदेशे । काल च । पल्पूल लवनपवनयोः । वात सुखसेवनयोः । गवेष मार्गणे । वास उपसेवायाम् । निवास आच्छादने । भाज पृथक्कर्मणि । समाज

प्रीतिदर्शनयोः । ऊन परिहाने । ध्यन शब्दे । क्रूट परितापे । क्रूट परिदाह इत्येके । संकेत ग्राम कुण गुण चामन्त्रणे । क्रूण संकोचने । स्तेन चौर्यो ।।

## आगर्वाद्वात्मनेभाषाः ॥

पद गतौ। यह ग्रह्मो। युग श्रन्वेषमे। क्रुह विस्मापने। शूर वीर विकान्तौ। स्थूल परिवृंहमो। श्रर्थ उपयांचायाम्। सत्र सन्तानिकयायाम्। गर्व माने। इत्यागर्वीयाः। सत्र वेष्टने। विमोचन इत्यन्ये। मृत्र प्रस्रवमो। रूच्च पारु-ष्ये। पार तीर कर्मसमाप्तौ। पुट संसर्गे। धेकु दर्शन इत्येके। कत्र शैथिल्थे कर्तित्यप्येके।

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलिमिष्ठवच ।। तत्करोति तदाचष्टे ।। तेनातिकामति ।। धातुरूपं च ॥ कर्तृ करणाद्धात्वर्थे ॥

वष्क दर्शने । चित्र चित्रीकरणे । कदाचिद्दर्शने । अस समाघाते । वट विभाजने । वटि लिज इत्येके । लज प्रकाशे । मिश्र सम्पर्के । सङ्ग्रामणुद्धे । अयमजुदात्तेत् । स्तोम श्लाघायाम् । छिद्र कर्णभेदने । अन्ध दृष्ट्युपघाते । उपसंद्दार इत्यन्ये । दण्ड दण्डनिपातने । अङ्क पदे लच्चणे च । अङ्क च । सुख दुःख तत्कियायाम् । रस आखादनस्नेद्दनयोः । व्यय वित्तसद्वत्सर्गे । रूप रूपकियायाम् । छेद द्वैधीकरणे । छद्र अपवारणे । लाभ प्रेरणे । व्रण गात्राविचूर्णने । वर्ण वर्णिकियाविस्तारगुणवचनेषु । वद्वलमेतिश्वदर्शनम् । णिङङ्कािकरसने । श्वेता श्वाश्वतरगालोडिताद्वर काणामश्वतरे तकलोपश्च । पुच्छािदेषु धात्वर्थ इत्येव सिद्धम् ॥

## इति चुराद्यः ॥

# अथ कंड्वाद्यः ॥

करहू गात्रविधर्षे । मन्तु अपराधे । वस्गु पूजामाधुर्ययोः । असु असु उपतापे । असु असू इत्येके । लेद लोद धौत्ये पूर्वभावे सप्ने च । लेला दीप्तौ । इरम् इरज् इत्य् ईर्यायाम् । उपम् प्रभातभावे । वेद धैत्ये स्वप्ने च । मेधा आशुप्रहृषे । कुषुभ च्ये । मगध परिवेष्टने नीचदास्य इत्यन्ये । तन्तम् पम्पम् दुःले । सुल दुःल तत्रियायाम् । सपर पूजायाम् । अरर आराकर्माणि । भिष्ण् चिकित्सायाम् । भिष्ण् उपसेवायाम् । इषुध शरधारणे । चरण वरण् गतौ । चुरण चौर्य्ये । तुरण त्वरायाम् । धुरण धारणपोषण्योः । गद्गद वाक्स्ललने । एला केला खेला विलासे । वेला शेला इलेत्यन्ये । खेला स्वलने च । अदन्तोयमित्येके । लिट अल्पकुत्सनयोः । लाद् जीवने । हृणीङ् रोषणे लज्जायाञ्च । महीङ् पूजायाम् । रेखा रलाघासादनयोः । दुवम् परितापपरिचरण्योः । तिरम् अन्तद्धौ । अगद् नीरोगत्वे । उरम् वलार्थे । तरण् गतौ । पयम् प्रमृतौ । संसूयम् प्रभृतभावे । अम्वर संवर सँभरणे । आकृतिगणोऽयम् ॥

इति धातुपाठे कंड्वादिगणः समाप्तः ॥ इति श्रीयुतद्यानन्द्सरस्वतीस्वामिनाऽकारादिक्रम सूचीपत्रेण सह धातुपाठो यंत्रयितः । पौषवदि १० गुरुवारे संवत् १६३६.

# सुचीपत्रम्॥

श्रकारा	द्य:	गखाद्य:	पृ०	ψ̈́ο	श्रकाराद्य:	गणाद्यः	वि०	ψ̈́ο
अक	<b></b>	स्वा० प० से०	११	२२	श्रग्	दि० ग्रा० से०	२०	२३
अकि	•••	,, স্থাত ,,	8	१०	श्रत	भ्वा० प० "	3	१७
श्रन्त		" qo "	१०	88	त्र्रात :	" " "	8	२
ऋग	•••	", ",	११	२२	<b>अद</b>	刻0 ,, ,,	१६	3
श्रगद	•••	कं० ,, ,,	३४	१४	ऋदि	भ्वा० ,, ,,	8	२
आग	•••	<b>३वा०</b> ,, ,,	8	२१	श्रन	अ० ,, ,,	१७	20
अधि	•••	,, স্থাত ,,	8	. 83	श्रन्ध	चु० उ० ,,	33	१६
श्रङ्ग		चु० उ०,,	33	१७	अवि	भ्वा० आं० ,,	9	१२
স্থান্থ	•••	" " "	33	१७	श्रभ्र	,, Yo ,,	3	5
ऋचि		भ्वा० उ० ,,	१३	8	अभि	,, স্থাত ,,	9	१३
त्रबु	•••	,, 30 ,,	१३	8	अम √	,, qo ,,	5	3
श्रज	•••	" чо "	×	२०	अम	चु० ड० "	38	200
श्रजि	•••	चु० उ०,,	38	२३	श्रम्बर	कं प्र,	३४	१६
श्रद्ध	•••	भ्वा० प० ,,	¥	28	त्र्रय	भ्वा० आ० ,,	5	१३
ग्रञ्च	•••	,, उ० ,,	१३	8	श्रर्क	चु० प०,,	३०१	UPE
श्रञ्चु	•••	चु॰ ""	38	१४	त्रर्घ	भ्वा॰ ,, ,,	×	१४
अञ्जू	•••	£0 Ч0 "	<b>ब्</b> ष	१४	श्रर्च	चु० उ० "	३२	8
श्रट	•••	भ्वा० ,, ,,	Ę	१४	श्रजं	भ्वा० प० ,,	×	१८
ग्रह	•••	,, স্থাত ,,	Ę	३	श्रर्ज	चु० उ० ,,	38	28
ऋह	***	चु० ५०,,	38	१२	श्रर्थ	" " "	33	×
ऋटि	•••	भ्वा० ग्रा० ,,	Ę	R	श्रर्द	भ्वा० प० ,,	3	२१
ऋडु	•••	" чо "	9	8	ऋदं	चु० उ० ,,	32	
ग्रडृ	•••	" " "	9	Ę	श्ररर	कं० प०,,	इप्ष	.0
त्रण	•••	भ्वा० प० "	5	६	श्रर्व	भ्वा० ,, ,,	3	१३

३६ सूचीपत्रम् ॥												
अकाराद्यः	गशाद्य:	Ã٥	ψ̈́ο	इकाराद्यः	गणादयः	ão	ψ̈́ο					
अर्थ	भ्वा० प० से०	G	<b>~~?</b>	₹ <b>ट</b>	. भ्वा० प॰ से०	8	२०					
अर्ह	n 11 11	११	3	इस्	. য়০ ,, য়০	and the second	-3					
अर्ड	चु० उ०,,	38	१२	इदि	भ्वा॰ ,, से॰	8	२					
अर्ह	11 11 11	३२	4	इन्धी	. হ০ স্থা০ ,,	The second	१०					
श्रल	भ्वा० प० ,,	5	२४	इरज्	. कं० ,, ,,		8					
अव	33 33 33	3	१६	इरञ्	. 97 37 33		ક					
अशु	ऋ्या॰ " "	२८	१६	इरस्	. 11 11 11		ક					
अग्रङ्	स्वा०द्या० "	*2	१२	इस	. दु॰ ,, ,,	२४	8					
ऋष	भ्वा० ड० ,,	१३	१२	इल		The second second	47					
अस	)) )) ))	१३	१२	इला	. किं० ,, ,,	The state of the s	११					
श्रस	श्र० प० ,,	१७	- १४	इवि		A CONTRACTOR OF THE PARTY OF TH	१३					
ग्रंस	चु० उ० "	33	१३	इष	. दि॰ ,, ,	S. Santa	२०					
असु	दि० प०,,	२१	१२	इषु	वु॰ प॰ ,		2					
श्रसु	कं 0 ,, ,,	38	3	The state of the s	किं ,, ,	, ३४	4					
श्रस्	कं० प०,	38	3		। अ० ,, अ०	१७	3					
			3	2	भ्वा०आ०से	3 0	२४					
श्रस्त्र्	)) )) ))	38		ईख .	,, чо	, 8	२०					
अह	स्वा० ""	२२	१६	इंङ् .	दि० आ० अ	20	E					
श्राहि	भ्वा० आ० "	१०	8	_2	भ्वा० ,, से	×	9					
अहि	चु० उ० "	38	२४	_2_	স্থত স্থাত ,	90	१०					
आञ्जि	भ्वा० प० ,,	×	१४	S-	चु० प० ,	30	१८					
श्राप्त	स्वा० ,, श्र०	<b>स्</b> र	3	ईर .	স্থত স্থাত ,	20	१०					
आस्	चु० उ० अ०	३२	88	\$_	<b>30 30</b>	22						
श्रास	अ० आ० ,,	१६	१०	2_2	भ्वा० प० ,		२३					
इक्	अ० प० अ०	१७	3	2.2	३वा० ,, ,		२३					
इस	भ्वार , से०	8	२०	S	সত স্থাত ,	96	१०					
इंबि	27 75 53	8	२०	S	भ्वा० प० ,		24					
इगि	31 33 33	8	. २२	<u>\$</u>	,, ,,	90						
<b>155</b>	স্ত সাত সত	१७	3	2	क्या० प० ,	2-	१६					

	स्चीपत्रम्।। ३७											
<b>उकाराद्</b> यः	गणाद्य:	कु०	ψ̈́o	<b>ऊकाराद्यः</b>	ंगणाद्यः	бо	ψ̈́ο					
र्षेष्ठ	भ्वा० स्रा० से०	१०	8	ऊर्युञ्	श्र० उ० से०	१७	વ					
उच्	" чо "	१०	१२	ऊर्च	चु० प०स०	30	१३					
<b>उख</b>	,, ,, ,,	પ્ર	38	ऊष	भ्वा० ,, ,,	20	१८					
उखि	" " "	8	38	जह	,, স্থাত ,,	१०	9					
<b>बङ्</b>	,, স্থা০ স্থ০	18	8	親	भ्वा०आ०ञ्र०	१४	2					
उच	दि० प० से०	२१	१७	雅 :	70 70	38	×					
बच्छि	भ्वा॰ " "	×	१७	ऋच	70	28	१३					
उच्छि	तु० ,, ,,	२३	११	ऋच्छ	LI STATE	२३	१२					
उच्छी	भ्वा० ,, ,,	×	१७	ऋज	भवा० आ० ,,	×	G					
उच्छी	तु० ,, ,,	२३	११	ऋजि	17, 17 17	×	E					
उच्छिदिर्	ह० उ० "	२६	×	ऋख	त० उ० ,,	२७	૪					
उज्भा	तु० प० से०	२३	१४	ऋधु	दि० प० ,,	२१	२२					
<b>उठ</b>	भ्वा० ,, ,,	9	8	ऋधु	स्वा० ,, ,,	22	१६					
उत्रदिर्	रु० उ० ,,	२६	×	ऋफ	70	२३	१७					
उन्दी	€0 do "	२६	१४			23	१७					
उच्च	तु॰ ""	च३	१४	ऋम्फ	15 51 33							
डभ		२३	१८	ऋषी	11 11 11	२३	Ę					
		२३	१८	ऋं	স্থাণ স্থাণ,,	5	२४					
	1) 1) 1)			एजृ	¥ৰা <b>০ স্থা</b> ০ ,,	×	9					
उद्दें	भ्वा० ग्रा० ,,	3	१०			No.	२१					
उर्वी	" <b>प</b> o "	3	१०	पजृ	" . do "	×						
उरस्	कं 0 ,, ,,	इध	१४	एउ	:, <b>স্থা</b> ০ ,,	æ	Ę					
उष	भ्वा० ,, ,,	१०	२०	एध	31 53 33	3	X					
उषस्	कं ,, ,,	३४	×	पला	कं० प० "	३४	१०					
	70.5	११	, व	पषृ	भ्वा० आ० "	१०	3					
				3		8						
<b>फठ</b>	भ्वा० ,, "	9	8		" do "		१८					
ऊन	चु० उ० "	३३	. 6	ऋोयु	भ्वा <b>०</b> ,, ,,	5	9					
ऊयी	भ्वा० आ० ,,	7	१४	किक	भ्वा० आ० "	8	१०					
ऊर्ज	चु० प० ,,	२६	<b>5</b>	किक	.,, ,, ,,	8	22					
	9 ' "				" ""							

३८ सूचीपत्रम् ॥											
ककाराद्यः	गणाद्य:	Ão	ψ̈́o	ककाराद्य:	ग्याद्य:	фo	ψ̈́o				
कख	भ्वा० प० से०	8	१८	कर्ज	भ्वा० प० से०	×	3.9				
कखे	33 33 33	88	२०	कर्त	चु० उ० "	३३	5				
कगे	)) )) ))	११	२१	कदं	भ्वा०प० ,,	8	8				
कच	্য, স্থাত ,,	×	8	कर्व	" ""	3	१३				
कचि	11 11 11	¥	8	कर्व	,, ,, ,,	9	<b>२२</b>				
कटी	" чо "	E	२१	कल	भ्वा० आ० ,,	5	१८				
कटे	11 11 11	६	१४	कल	चु॰ ,, ,,	२६	२४				
कठ	33 33 33	<b>E</b> .	२४	कल	,, ड० ,,	38	. १४				
कठि	,, आ॰ ,,	Ę	X	कल	)) I) ))	३२	२०				
किंठ	चु॰ उ० "	३२	१३	कल्ल	भ्वा० आ० "	5	38				
कड	भ्वा०प० ,,	9	-66	कवृ	11 11 11	9	१२				
कड	तु॰ ,, ,,	२४	१०	कश	স্থত স্থাত ,,	१६	१२				
कडु	भ्वा॰ ,, ,,	U	8	कष	भ्वा०प० "	१०	१८				
कडि	,, স্থাত ,,		१०	कस	)) )) ))	१३	8				
कडि	" чо "	9	६	कस	अ० आ० "	१६	१२				
कडि	चु॰ ,, ,,		१८	कसि	. 22 22 23	१६	११				
कण	भ्वा० ,, ,,	88	२३	काचि	भ्वा०प० ,,	१०	१४				
कण	" " "	<b>_</b> _	६	काचि	" স্থাত "	×	8				
कर्ण	चु० उ० ,,	38	3	काल	चु० उ० "	३२	२४				
कंडूञ्	कं० प० "	<b>38</b>	२	कास	भ्वा० स्रा० ,,	१०	२				
कत्थ	भ्वा० ग्रा० ,,		प्र	काश्य	22 22 23	१०	9				
कत्र	चु० उ० "	33	=	काश्य	दि० आ० ,,	२०	१४				
कथ	चु० प० "	३२ १	0	कि	जु० प० अ०	38	9				
कद	भ्वा० आ० ,,	28 8	६	किट	भ्वा॰ ,, से॰	Ę	810				
कदि	" чо "	8	8	किट	भ्वा <b>०</b> ,, ,,	ę.	28				
कदि	,, স্থা০ ,,	११ १	×	कित	" " "	१४	2				
कनी	" чо "	5	5	किल	तु॰ ', ,,	२४	ą				
कपि	,, आँ० ,,	७ १	8	कीट	चु॰ " "	३०	3				
कम	" <b>刻</b> 0 "	<b>E</b> 100	3	कील	भ्वा॰ ,, ,,	5	२६				

स्चीपत्रम् ॥										
ककाराद्य	गगाद्य:	पृ० पं०	ककाराद्य:	गग्राद्य:	पृ०	ψo				
<u>.</u>	. अ० प० अ०	१७ ४	कुवि	चु० प० से०	30	१३				
कुकं .	. भ्वा०ग्रा०से०	8 66	कुभि	" " "	20	१३				
कुङ् .	. ,, ,, 刻。	१४ ४	कुमार	चु० उ० ,,	32	२३				
कुङ् .	तु॰ ""	२४ २०	कुर	तु० प० "	२३	२३				
कुच .	भ्वा० प० से०	प्र १०	कुर	17 77 33	२४	4				
कुच	77 77 77	१२ २४	कुर्द .	भ्वा० ग्रा० ,,	3	8.8				
कुच	तु॰ ,, ,,	२४ ७	कुल	,, ए० ,,	१२	१६				
कुञ्च	, <b>३वा०</b> ,, ,,	X io	कुशि	चु० उ० ,,	3?	२१				
কুলু	11 11 11	- ४ १२	कुष	ऋ्या०प० "	२८	१५				
कुट	तु॰ ,, ,,	२४ ६	कुषुम	कं० ,, ,	३४	×				
कुष्ट	चु॰ " "	SE 88	कुस	दि॰ " "	२१	१४				
कुष्ट	,, স্থাত ,,	38 , 3	कुसि	चु० उ० "	38	28				
कुठ	19 33 31	38 8	कुस्म	,, স্থাত ,,	38	६				
कुछि	भ्वा० प० "	७ २	कुह	चु० उ० "	३३	8				
कुठि .	. चु॰ " "	२६ १८	कृङ्	तु० ग्रा० ,,	२४	२०				
कुड .	. तु॰ " "	२४ १०	कूज	भ्वा०प० ,,	×	१८				
कुडि .	. भ्वा० ग्रा० ,,	६ ७	क्ट	चु० ग्रा० ,,	३१	२				
कुडि .	,, qo ,,	६ २१	क्ट	., 30 ,,	३३	8				
कुडि .	ETO	२६ १८	कृण	चु० ग्रा० ,,	३०	२४				
E.711	70 70	२३ २१	कृ्ण	,, 30 ,,	३३	વ				
	=T0 70	33 2	acar	Natio IIIo	3	2				
कुण .						8				
कुत्स .		३१ २	कुञ्	स्वा० उ० ग्र०	22					
क्थ .	. दि० प० "	88 89	कृञ्	त० उ० "	२७	7				
कुन्थ	क्याण्,, ,,	२८ १४	कुड	तु० प० सं०	२४	१०				
कुथि .	. भ्वा० प० ,,	३ १८	कृती	25 37 33	२४	१८				
कुद्रि .		२६ ४	कृती	₹0 ,, ,,	२६	5				
कुप .	2	२१ १६	रुप	चु० उ० "	32	२१				
					११					
कुप .			रुपू		and the second	१०				
कुवि	भ्वा० प० "	७ २३	कृपेश्च	चु० उ० "	38	१८				

४० सूचीपत्रम् ॥											
ककाराद्यः	गणाद्यः	Ã٥	पं०	ककाराद्यः	ग्गाद्यः	र्व.	पं०				
कृवि	भ्वा०प० से०	8	१४	क्लमु	दि० प० से०	२१	22				
कृश	दि॰ ,, ,,	२१	१७	च	भवा॰ ,, - ,,	5	8				
क्रव	भ्वा० ,, ऋ०	१४	२३	कथे	',, ,, ,,	१२	१७ '				
कृष	तु० उ० भ्र०	२३	8	च्चिज	,, স্থাত ,,	११	१४				
<b>野 …</b>	,, प० से०	२४	३	चाजि	चु० प० ,,	30	8				
कृञ्	क्या॰उ॰ से॰	२७	१७	त्त्यु	त० उ० ,,	२७	३				
कृत	चु० प० "	30	१२	च्चिः	भ्ञा०प० "	१२	8				
केपू	भ्वा० आ० "	9	१०	च्चिप	चु०। " "	30	8				
केवृ	भ्वा <b>० ,, ,</b> ,	5	२०	त्तमूष्	भ्वा० ग्रा० "	<b>5</b>	3				
केला	कं पण ,,	38	१०	च्चर	" чо "	१२	१८				
केल	भ्वा० ,, ,,	3	8	च्रल	चु॰ " "	38	२२				
के	12 33 33	१३	२३	इमायी	भ्वा०प० ,,	2	१४				
क्रथ	11 11 11	११	२४	क्लिदि	্য, স্থাত ,,	3	3				
क्रसु	y' 11 11	१२	×	क्लिदि	" чо "	8	X				
क्रसु	दि॰ " "	38	१६	क्लिंदू	दि० " "	२१	२१				
क्भर	म्ब(० ,, ,,	3	- 5	क्लिश	,, সাত <u>,</u> ,	२०	१४				
ऋय	yy yy yy	88	२४	क्लिशू	ऋ्या० प० ,,	२८	१६				
क्रथ	चु० उ० "	३२	9	चि	भ्वा० ,, ऋ०	×	२२				
ऋद्	३वा० <b>आ</b> ं० "	११	१६	चि	स्वा०,, ग्र०	२२	१७				
क्रादि	., чо "	8	8	चि	तु० ,, भ्र०	२४	2				
क्रदि	,, আ০ ,,	११	१४	चियु	त० उ० से०	२७	3				
ऋन्द	चु० उ० ,,	38	११	चिप	दि० प० अ०	38	१८				
ऋप	भ्वा० ग्रा॰ं,,	११	१४	चिप	तु॰ उ० ,,	२३	.8.				
<b>新</b> 班 …	" чо "	4	28	दिवदा	भ्वा०म्रा०स०	88	8				
क्लथ	1) 1) 1)	88	२४	दिवदा	दि० प० "	28	28				
क्लद	,, স্থাত ,,	११	१६	चिवु	) Terro	3	. 80				
क्लिदि	भ्वा० प० ,,	8	8	क्रीञ्		२७	१२				
क्लदि	,, आ० ,,	११	१४	The second secon	2500 00	9	8				
क्लप	चु० प० "	30	१४	क्लीचृ	A SUP AND A	9					

			सूचापः	त्रप्रा।		.84		
कंकाराद्य:	गगाद्य:	Ão	ψo	ंखकाराद	(य:	गुणाद्य:	वि०	ψ̈́o
चीज	भ्वा० प० से०	×	38	खट		<b>३वा० प० से०</b>	. &	१४
दमील	,, 0 ,, - ,,	5	28	बट	•••		30	16
चीचु	,, স্থাত ,,	. 9	28	खड			28	१४
च्चीव्	ऋचा०प० ,,	२८	TOTA	खडि	•••	" " " " " "	&	- 5
कृङ्	भ्वा॰ ञा॰ ,,	१४	æ	खांड		चु० प०,	38	१४
कुञ्च	" чо "	×	3	खद		भ्वा॰ ,, ,,	3	१६
कुड	,, तु॰ ,,	२४	१४	खतु		" go "	१३	3
क्रुध	दि० ,, ञ्रा०	28	8	खर्ज ा	•••	,, qo ,,	×	१८
ऋश	भ्वा० प० से०	१२	28	खर्द	•••	:1 2) ))	8	
क्लुङ्	भ्वा०ग्रा०ग्र०	१४		खर्व	•••	11 11 11	. 9	35
ਭ	ञ्च० प० से०	१६	१७	खर्व	•••	27 1 11 1 27	&	20
हर्यु	11 11 17	१६	\$0	खव 🥝	•••	ऋषा० ,, ,,	२८	20
चुदिर्	रू० उ० अ०	२६	8	खल 🦠	•••	भ्वा० ,, ,,	3	18
चुध	दि० प० ,,	२१	8	खब	•••	11 11 11	१०	18
चुभ	भ्वा० ग्र० से०	११	E	बाह	•••	11 27 11	- <b>3</b> .	18
चुभ	दि० प० "	२१	१७	खिट	••• 1	11 11 11	. 8	18
चुभ	ऋथा॰ ,, ,,	रंप	१४	खिद	•••	दि० ग्रा० ग्र०	२०	28
चुर	भ्वा० ,, ,,	१२	१४	बिद	•••	तु० प० से०	२४	१६
चुर	तु॰ ,, ,,	२४	8	खिद	•••	হ০ স্থা০ স্থ০	२६	११
क्र्ञ्	ऋचा०ड० ,,	२७	१४	खुजु	•••	भ्वा० पृ० से०	×	११
क्रेश	भ्वा० द्या० "	3	38	खुड	•••	तु॰ ,, ,,	२४	2.3
त्तेवु	" чо "	3	4	खुडि	•••	चु∙ " "	38	१६
च्चेल	77 11 11	3	123	खुर	•••	.রু০ ,, ,,	२४	3
चै	33 33 31	१३	38	खुर्द	•••	भ्वा० ग्रा० ,,	3	8
ज्ञाम	,, স্থা০ ,,	ч	3	खंट	•••	चु० उ० : ,,	३२	१=
चोट	चु० ड० ,,	32	१८	खेला	•••	कं० प० "	38	1.
खच	ऋथा०प० "	२८	: १७	बेल	•••	भ् <b>वा</b> ० ,, ,,	3	3
बज	भ्वा <b>॰</b> ,, ,,	×	१८	खेल	•••	n n n	3	8.
ब्रजि	21 22 23	×	१८	खबु	•••	,, <b>%(0</b> ,,	ج	3.8
		La Calenda						117

पृत्रीपत्रम् ॥												
गकाराद्य'	्गुगुाद्द्यः	पृ० ः पं०	गकाराद्यः	गणादयः	पृ० . पं०							
<b>a</b>	भ्वा० प• अ०	१३ १६	गल	चु॰ ग्रा॰ से॰	३१ २							
बोट	चु० उ०से०	.३२ १८	गल	" 4 40 1 11	३१ : १२							
बोऋ	भ्वा० प०.,,	£ : X	गल्ह	भ्वा० ग्रा० ,,	. 20 . 8							
बोल	33 33 37	. E . X	गल्भ	27 23 27	७ १३							
ख्या	श्रo "श्रo.	.१७ : १२	गवेष	चु० उ० "	३२ २०							
खुङ् ः	भ्वाण्डाण्डा	.१४ ६	गा	जु० प० श्र०	3 39.							
गुजे	,, प॰ सं॰	५ २१	गाङ्क	भ्वा०ग्रा०ग्र०	१४ . ४							
गज	चु० प०. "	3 05.	गाधृ	,, ,, सं०	इ . ४							
गाजी	<b>भ्वा०</b> ,, . ,,	. ४ .२०	.गाह्र	" "	. 20 %							
.गड ः	11 ct 11 : n	.११ .१६	गु	तु० प० ग्र०	२४ १८							
गाड़ि 🤇	22 - 22 - 12	. ४ ः २	गुङ्	भ्वा० आ० ,,	१४ ४							
गाड़ि ःह	ท - รัท ิท	.७ ः ६	गुङ्	11 11 11	१४ ६							
ग्या 🥬	चु० उ० ,,	. ३२ १४	गुज	,, प० से०	. ४ १२							
गद् ः	भ्वां० प० ,,	. ३ १६	गुज	तु॰ ,,, ,,	३४ ६							
गद्गद् :	<b>新0</b> 33 ·· 33	.३४ ः =	गुजि	भ्वा० ,, ,,	४ १२							
गदी ः	चु० उ० ,,	३२ १४	गुडि	चु॰ " "	२६ १४							
गत्भ ्रा	्रा <sup>9</sup> आ( <sup>9</sup> ,,	३० २०	गुड :	द्र॰ " "	38 8							
गम्ल	भ्वा० प० ग्र०	१४ १०	गुडि ,	चु॰ ,, ,,	२६ १४							
गर्ज	" , सं०	४१६	गुण	,, उ० ,,	.33 :2							
गर्ज	夏。,,, ,,	३० १३	गुद	भ्वाण्याण्,	3 8.							
गर्द ,	भ्वा० ,, ,,	8 8	गुध	दि० प० ,,	.१६ १६							
गर्द	570	३० १३	2137	ऋचा०,, ,,,	. २८ १४							
2-		३० १४										
	)) )) ))		गुप	भ्वा० ग्रा० ,,	१४ १२							
गर्व	भ्वा० ,, ,,	38 0	गुप	दि० प० ,,	. २१ १६							
गर्व	p com n	. 8 80	गुप	चु० उ० ः,,	38 88							
गर्व :	चु० उ० "	३३ -४	गुपू	भ्वा०प० "	७ १६							
गई :	भ्वा० आ० ,,	8. 03	गुफ	तु॰ ,, ,,	२३ १६							
गर्ह	चु० उ० ा	32 . 60	गुम्फ	The same of the sa	२३ १६							
गल् ;ः	भ्वा०प०से०	8 3.	उपनी									
			30	तुवः आ० .,,	२४ १६							

४४ सूचीपत्रम् ॥											
चकाराद्यः	गणाद्यः	Ã٥	ψ̈́o	चकाराद्य:	गणाद्यः	. do	ψo				
<b></b>	चु० उ०से०	38	180	चमु	स्वा० प० से०	. २२	84				
घुषिर्		- 5	2	चय '…	भ्वाण्याण ,,	- 5	१३				
घूर्ण	70 70	२४	3	चर	" чо "	3°	9				
घूरी	दि॰ आ॰ ,,	२०	१३	चर	चु० ड० "	38	१४				
घृ	भ्वा० ,, अ०	१४	2	चर्करीतंच	श्र० प० "	१८	. 3				
च <u>्</u>	जु० प० से०	38	×	चर्च	भ्वा० ,, ,,	.१०	3.8				
घृिषा	भ्वा० आ० ,,			चर्च	चु॰ ,, ,,	38	9				
वृषु	त० उ० "	२७	8	चर्च	तु॰ " "	२३	१२				
चृषु	भ्वा० प० "	. 20	१७	चरण	कं ; ,,	३४	. 19				
ब्रा	,, ,, 刻0	१३	. २१	चर्ष	भ्वा० ,, ,,	9	२०				
<b>कुक</b>	,, आ्रा० ,,	१४	×	चर्व	33 33 33	3	3				
चक	,, सं०	. 8	११	चल	12 21 31	१२	55				
चक	" qo "	88	१७	चल	तु॰ ,, ,	२४	É				
चकाषृ	अ॰ ;, ,,	१७	२१	चल	चु॰ " "	३०	8				
चित्रङ्	" 刻",	१६		चिलिः	भ्वा० " "	१२	- 3				
चक्क	चु० प० "	२६	१८	चष	" 3º "	१३	88				
चंचु	भ्वा० ,, ,,	· · ×	१०	चह	" do "	१०	२१				
चट	चु० उ० "	38	3	चह	चु॰ " "	30	X				
चटे	भ्वा० प० ,,	Ę	. १३	चह	" .go "	३२	१७				
चडि	,, <b>S</b> (0 ,,	. 8	9	चायृ	भ्वा <b>०</b> ,, ,,	१३	8				
चडि	<b>30 70</b>	28	१६	चिञ्	चु० प० "	30	×				
	and ''		38	चित्र्	स्वा॰ड॰ श्र॰	22	3				
चण ं	+4(0 ), ,,	88			441-0-310						
चते	10' 11 11	१३	X	चिट	भ्वा० प० से०	E	80)				
चिदि	" do "	8	1	चित	चु॰ ग्रा॰ "	30	१८				
चदे	,, 30 ,,	१३		चिति	-37 33 33	२६	8				
चन	,, do ''	११	२०	चिती	भ्वा० प० "	. 3	१४				
चप		. 0	१७	चित्र	चु० उ० ,,	33	११				
चिप ः			3	20							
	<b>3</b> 0 " "	३०			स्वा०प० "	२२	१४				
चसु	14 10 11 11	5	१०	चिल	तु॰ " "	२४	्६				

स्चीपत्रम् ॥ ४४											
चकाराद्यः	ग्ग्याद्य:	पृ० पं०	<b>ञ्जकारादयः</b>	ग्गाद्यं:	पृ०	фo					
चिस्र	भ्वा० प० से०	£ 2	चेल	भ्वा० प० से०	3	ą					
चीक	चु० उ० ,,	३२ ६	चेष्ट	,, স্থা০ ,,	६	3					
चीव	17 17 17	३१ २०	च्यु	चु० उ० ,,	38.	१४					
चीवृ	भ्वा० प० "	3 89	.च्युङ्	भ्वा० ग्रा० ,,	१४	8					
चीभृ	,, आ० ,,	७ १२	च्युतिर्	" чо "	३	१४					
चुका	चु० प० "	२६ १८	छद .	चु० उ० "	३२	X					
चुच्य	भ्वा० ,, "	द र्श	छ्द	37 31 37	32	9					
चुट	चु॰ ,, ,,	३० २	छ्द	,, ,, ,,	३३	E					
चुट	go ""	२४ १०	छ्दिः	भ्वा०प० "	१२	2					
चुट	चु॰ " "	२६ १०	छुदि	चु॰ " "	38	१४					
चुिं	11 11 11	३० १२	छुमु	भ्वा॰ ,, ,,	4	१०					
चुड	तु॰ " "	२४ १३	छुर्द	चु॰ ,, ,,	38	१७					
चुडि	भ्वा० ,, ,,	६ १८	छुष	भ्वा० उ० "	१३	१२					
चुडु	19 31 33	७ ३	छिदिर्	ह० उ० अ०	२६	. 3					
=72	==0	२६ १८	faxer .	चु॰ सं॰ ग	33	१३					
	2500	७ १७			२४	10					
चुप	स्वा॰ ,, ,,		बुट		२४	१३					
चुवि	33 : 33 "33	. ७ . २०	बुड	21 31 21	२४						
चुर	चु०. " "	28 8	छुप	77 - 77 77		5					
चुरण	कं० ,, ,,	३४ ८	छृदिर्	ह० उ० स०	२६	8					
चुवि	चु॰ " "	३० ६	ऋदी	बु॰ " "	३२	8					
चुल	33 33 33	38 38	कृप	17 71 11	. ३२	8					
चुन्न	भ्वा॰ ,, "	8 2	छद	22 21 22	३३	१६					
	۵	२० १४		दि० प॰ ऋ॰	२०	3					
चूरी			तन्त	अर् ,, से०	१७	२०					
चूर्ण	चु० प० "	२६ =			×	२०					
चूर्ण	77 77 71	३० ८	<b>जज</b>	भ्वा० ,, ,,							
चूष	भ्वा॰ ,, ,,	१० १३	जजि	29 23 33	×	२०					
चृती	तु॰ " "	२३ १७	जट	11 11 11	६	१४					
चृप	.चु०. ,, ,,	३२ ४	जन	बु॰. " "	38	<b>E</b>					

४६ सुचीपत्रम् ॥										
जकाराद्य	: गणादयः	åо	ψ̈́o	जकाराव	(य:	गगाद्य:	वृ०	ψo		
जनी	. भ्वा०प० से०	१२	8	जुड	•••	चु० प० से०	३०	8		
जनी	. दि॰ आ॰ ,,	२०	१२	जुरु	•••	भ्वा॰ ग्रा॰ "	3	११		
जप	. भ्वा० प० "	9	१६	जुन	•••	तु० प० "	२३	१७		
जप	, , , ,,	9	१६	जुष	•••	चु०ः उ० "	३२	- 4		
जिम	चु० उ० "	.38	, 5	जुषी	•••	तु० ग्रा० "	२३	. 도		
जभी	भ्वा॰ श्रा॰ "	9	१३	जूरी	•••	दि॰ ""	.२०	१३		
जमु	n do n	~	१०	जूष	•••	भ्वा०प० ,	१०	.१४		
जर्ज	" " "	१०	38	जृमि	•••	,, স্থাত ,,	9	१३		
जर्ज	9 " "	२३	१२	অূ	•••	क्रया० प० "	२८	३		
जल	9 " "	28	Ę	জ্	•••	चु० उ०. ,,	३२	3		
जल	भ्वा॰ ,, ,,	१२	१२	जॄष्	•••	भ्वा०प० "	.१२	X		
जल्प	n n n	9	१६	जॄष	•••	दि० ""	38	१८		
जष्	23 2 33 37	80	१४	जेह	•••	भ्वा० आ० "	१०	× 20		
जिस	चु॰ ,, ,,	30	१४	जेषृ जै	•••	33 33 33 31 32 33	१०	The second second		
जसु	1) 21 ))	३०	१४		•••	,, प० अ०	१३	3.8		
जसु		38	3	ज्ञप ज्वर	•••	चु० प० से०	30	36		
जसु	Bo 70	28	११		•••	भ्वां० प्रः	११	१६		
<b>9</b> 77			Market B.	.ज्वल	•••	nan	१२	. १		
	<b>刻</b> 0 ""	थ	२०	ज्वल 🙏	•••	נו ַלו וו נוּ	. १२	¥		
जि	स्वा० ,, ऋ०	3	9	ज्वल .	•••	n (, n n	.१२	. 88		
রি	ं, अ० ,,	१४	2	श्वा .		" " " 刻0	१२	२		
जिबि	" qo "	3	88	ज्ञा .		क्रया० प० ,,	२८	5		
ज़िरि	स्वा० ,, ,,	२२	१४	ज्ञा		चु० ड०. ,,		28		
जिषु	भ्वा० ,, ,,	१०	१६	ज्या ः			. 38	-		
जीव ,		. 3 .				क्रचा० प० ,,	२८	. &		
	ווי ווי ווי		0		•••	भ्वा० आ० ,,	१४	्व		
	" " 》 370	१४	६	जि ः	•••	चु० उ० से०	३२	:3		
जुगि —	" "सं०	8	. २२	ज्यु ः	•••	भ्वा०प० श्र०	१४	६		
<b>जुड</b> ं	तु॰ ,, ,,	२३	१७	भट		,, प० से०	६	१४		
जुड ,	27 27 25 23	२४	- 5	भमु ः	•••	n to n on	_ <b>_</b> _ <b>_</b>	१०		

			सुचीप'	त्रम् ॥				89
अकाराद्य	ग्याद्यः	do	ψ̈́ο	<b>गुकाराद्</b>	(य:	गणाद्यः	٩	ψ̈́ο
कर्म	भ्वा०प०से०	20	१६	गुभ	•••	दि० प०से०	<b>२</b> १	१७
मर्भ .	दु॰ ,, ,,	२३	१२	गम		भ्वा०प० म्र०	१४	१८
अव .	३वा० ,, ,,	10	१४	<b>ग्</b> य	•••	,, ऋा॰ से॰	5	१३
अव .	,, उ०,,	१३	१२	<b>ग्</b> य		77 27 27	5	१३
क्	क्रिया०प० ,,	२५	3	गुल	•••	)) )) ))	१२	१३
सृष् .	दि॰ ,, ,,	38	१८	ग्रश		दि० प० "	२१	×
टाकी .	चु॰ ""	30	9	गुस	•••	भ्वा० ग्रा० ,,	१०	२
रत .	भ्वा० ,, ,,	१२	१२		•••	दि० उ० अ०	२०	38
टिक .	',, স্থা০ ,,	8	१२	and the same of th	•••	भ्वा०ग्रा०स०	. 80	२
टीक	. 77 39 37	8	१२	गिच .	•••	" do "	१०	१०
द्वल	. भ्वा० प० ,,	१२	१२	and the same of th	•••	अ० आ० ,,	१६	१२
डप	. चु॰ म्रा॰ ,,	३०	१८	No. of Street, Street, St.	•••	जु० उ० म्र०	38	२
डिप	. ,, ,, ,,	. 30	१८		•••	भ्वा० प० से०	8	. T
डिप	. " чо "	30	१८		•••	,, go ,,	१३	
डिप	70	२४	3	The second secon	•••	,, qo ,,	. २४	११
<del>G</del> r	<del>D</del> o	<b>२१</b>	१६	<b>गिल</b> गिश	•••	तु॰ ""	20	१६
		400	4		•••			
ভীজু		१४	3		•••	স্ত্রত ,,	१६	१२
डीङ्	. दि॰ ,, ,,	२०	8	गीञ्	•••	भ्वा०उ०म्र०	. १३	१६
ढीकृ	. भ्वा॰ ,, ,,	8	१२	गीव .	•••	भ्वा०प० से०	3	5
णच्	. ,, чо,,	१०	१२	णील .	•••	11 11 11	_ <b>G</b>	२४
गुख	. 11 11 11	8	38	ख .		अ० ,, ,,	१६	१७
यंखि		8	38	गान	••	तु० उ० ग्र०	२३	3
गान		Ę	१६				२५	१०
		1 1 2 2 3 3			••		२४	
णट	33 31 31 31	११	१६		••	,, ,, सं॰		१५
ग्रद	" " "	3	१७		••	भ्ञा० उ० ,,	१३	9
णद	. चु० उ० ,,	38	२०	येषृ .	••	" 刻。"	१०	- 8-
णुभ	ऋचा०प०,,	२८	१४	7X	••	" qo-"	8	१७
ग्रम ़…	भ्वा० ग्रा०.,,	. 88.	Ę	तिक .	••	" ""	R	१७

४८ सूचीपत्रम् ॥											
तकाराद्य:	गखादय:	पृ० पं०	तकाराद्यः	ं गखादयः	्पृ० पं०						
तच्च	भ्वा० प० से०	१० ११	तिगं	स्वा० प० से०	. २२ १३						
तन्त्	77 17 17	3 09	तिज	भ्वा० श्रा० ,,	१४ १२						
तिग	" " "	४ २०	तिंज	चु० प० ,,	.३० १०						
तञ्चु	11: 11: 11	× 80	तिपृ	भ्वा०म्रा०म्र०	. 9 . 5						
तञ्चू	ह0 ,, ,,	दह १४	तिम	दि० प० से०	38 38						
तर	भ्वा० ,, ,,	६ १४	तिरस्	कं० ,, ,,	इप्ठ १२						
तड	चु॰ उ० "	३१ २१	तिल	भ्वा० ,, "	8 3						
तड	" чо "	२६ १४	तिल	तु॰ ,, ,,	२४ ६						
तडि	भ्वा० ग्रा० ,,	६ =	तिल	चु॰ " "	३० १						
तत्रि	चु॰ ,, ,,	39 08	तिह्न	भ्वा० ,, ,,	8 3						
तनु	तु० उ० "	२७ ३	तीक	,, आ० ,,	. ४ १२						
तनु	चु॰ ""	३२ ह	तीम	दि० प० ,,	१६ १६						
तन्तस्	कं० प०,,	38 X	तीर	चु॰ उ० ,,	33 @						
तप	दि० आ० अ०	२० १४	तीव	भ्वा०प० ,,	2 3						
तप	भ्वा० प० ,,	१४ १८	ਰ	अ० ,, ,,	१७ ४						
तप	चु० उ० से०	३२ ४	तुज	भ्वा० " "	. ५ २०						
तमु	दि० प० "	२१ ६	तुजि हिंकी व	198° 1, 11	४ २०						
तय	भ्वा० ग्रा० "	. द १३	तुजि	चु॰ ""	२६ ११						
तर्क	चु० उ० "	३१ २०	तुजि	,, 30 ,,	३१ १८						
तर्ज	भ्वा० प० ,,	39 %	ar	To To							
तर्ज		३० १६		तु० प० "							
			तुड	27 37 27	२४ १२						
तदं	भ्वा०प० ,,	.8 8	तुडि	भ्वा० ग्रा० ,,	६७						
तरण	के० ,, ,,	इप्त १३	तुड्ड	" чо "	0 -8						
तल	चु॰ ""	38 38	तुष	तु॰ ,, ,,	२४ १						
तसि	,, उ० ,,	३१ १०	तुद	,, ব০ স্থ০	२४ ३						
तसु	दि० प० ,,	२१ ११	70	भ्वा० प० से०							
तायृ	भ्वाण्ड्याण् ,,	= १६	तरा		७ १८						
A-			तुम्प	37 31 32	. ७ १८						
	स्वा० प० "	२२ १३	तुप	तु॰ ,, ,,	२३ १४						
तिक	<del>?</del> বা০ স্থা০ ,,	४ १२	तुम्प	2) )) ))	२३ १४						
The second second second	CONTRACTOR OF THE PARTY OF THE				4						

तकाराद्य	गणाद्यः	Ão	पं०	तकार	<b>ाद्यः</b>	गगाद्य:	पृ०	ψ̈́ο		
तुक	. भ्वा०प० से०	. 9	१८	तुम्प		तु॰ प॰सं०	२३	१४		
तुस्फ	. ,, ,, ,,	9	१८	<b>त्</b> फ			23	१४		
तुफ		२३	१४	त्रफ	v 5	;; ;; ;;	२३	१४		
तुम्फ	, ,, ,, ,,	२३	१४	तृष		दि॰ ,, ,,	२१	१४		
तुवि	. चु॰ " "	३०	88	तृह	•••	至,""	२६	१४		
तुबि	. ३वा० ,, ,,	9	२०	तृह	•••	तु॰ ,, ,,	२४	¥		
तुर्वी	. , ,, ,,	3	5	<b>रे</b> ड्ड	•••	77 77 79	२४	¥		
तुभ		88	E	त्र तेज	•••	भ्वा <b>०</b> ,, ,,	१४	१०		
तुम		२८	१४		•••	:1 11 11	×	१७		
तुभ		२१	१७	तेपृ	•••	,, স্থা০ ,,	9	5		
तुर	जु॰ ,, ,,	38	9	तेपृ	•••.	37 33 33	0	5		
तुल	"	38	38	तेवृ	•••	25 22 23	5	१८		
तुष	दि० ,, ,,	२१	२	त्रौक	•••	1) 11 11	8	१२		
तुस	) <b>३वा०</b> ,, ,,	१०	१८	त्यज	•••	,, प० श्र०	१४	१८		
तुरण	50	38	5	त्रकि	•••	,, आ०से०	8	११		
जानेप	) DETTO			त्रख	•••	,, प० ,,	8	२१		
	#4(0 )) ))	११	8	त्रिख	•••	21 21 21	8	२१		
त्डु	" " "	9	8	त्रदि		27 27 33	8	3		
त्य	चु०त्रा० "	30	२१	त्रिप		n n n	१२	ą		
त्री	दि॰ ,, ,,	२०	१२	त्रपृष्	• • • •	,, স্থাত ,,	9	80		
त्ल	भ्वा०प० ,,	3	2	त्रस	•••	चु० उ० "	38	१३		
तूष	111 ' 21 21	१०	१३	त्रसि	•••	NO THE RESERVE	38	3.8		
वच		१०	१०	त्रसी		" " " दि॰ प॰ "	38	- 200		
<b>त्यु</b>	तु० उ० ,,				•••			१४		
		२७	8	त्वन्त	•••	भ्वा० ,, ,,	१०	3		
तृदिर्	ह० ,, ,,	२६	¥	त्वगि	7	22 22 22	8	२०		
त्प	दि० प० "	२१	T X	त्वगि	•••	11 11 11	8	२२		
तृप	स्वा॰ ,, ,,	२२	१४	त्वच	•••	तु॰ " "	२३	१३		
तृप	चुं० उ० "	३२	8	त्वंचु		भ्वा० ,, ,,	×	१०		
चप	तु० प० "	२३	१४	त्वरा	•••		११	१४		
	9 , "					,, आरु ,,	11	10		

५० सूचीपत्रम् ॥										
थकाराद्	ाः गगाद्यः	पृष्	ψ̈́ο	दकारा	द्य:	गगाद्यः	Ão	ψo		
तुरण .	कं० प०से०	३४	Z.	दसि	•••	चु० ग्रा० से०	३०	१५		
	भ्वा० प० ,,	3	ę	दसि	•••	,, उ० ,,	38	२०		
Parer	,, 30 ,,	१४	9	दसि	•••	15 77 77	38	38		
त्रुट .	चु॰ ग्रा॰ "	38	8	दसु	10.	दि॰ प॰ "	२१	88		
त्रुप .	भ्वा० प० ,,	9	१८	दह	•••	भ्वा० ,, श्र०	१४	38		
त्रुम्प .	. ,, ,, ,,	9	१८	दाञ्	•••	जु० उ० ,,	१८	२०		
त्रुफ	. , ,, ,,	200	१८	दाय्	••• (	भ्वा० प० ग्र०	१३	२२		
त्रुम्फ			१८	दान	•••	,, उ०स०	१४	8		
त्रैङ्		१४	5	दापृ	•••	ग्र० प० ग्र०	१७	१२		
थिप्ट	TO TO		2	दाश्य दाश्य	•••	स्वा० ,, सं०	१३	१०		
थुड	) DETTO	3	5	दास्	•••		१३	१३		
थुवीं	PITO	9	5	दिबु		" '' " चु <b>०</b> স্থা০ "	38	3		
थेपृ दच्च			22	दिवि	•	भ्वा० प० "	3	११		
दत्त		A STATE OF THE PARTY OF THE PAR	35	दिबु		दि॰ ,, ,,	38	१२		
द्घ	स्वा० प० अ०	२२	१४	दिवु		चु० उ० "	38	3		
द्र्यंड	चु० उ० से०	33	१४	दिश	•••	तु० ,, अ०	२३	3		
दद	भ्वा० ग्रा० ,,	3	5	दिह		ञ्च० ,, ,,	१६	×		
द्ध	" " "	3	x	दीच	•••	भ्वाण्ड्याण्से०	3	२०		
दम्भु	THE TO		१३	री-		दि० ग्रा० ग्र०	२०	પ્ર		
दमु	Do.	<b>२१</b>	3	दीधीङ्	380	ग्र० ,, स०	१७	२३		
द्य	भ्वाण् श्राण् ,,		3	दीपी .		<b>8</b> -	20			
ਕਰਿਕਾ	SIO TO		20					१२		
						भ्वा० प० ग्र०	१४	3		
द्ल	चु० उ० ,,		5			स्वा॰ ,, "	२२	9		
दल	भ्वा०प० ,,					चु० उ० से०	३३	१४		
द्वि	59 29 59			MINE TO SERVICE		कं० प० "	38	६		
दंश	भ्वा० प० अ०	<b>58</b> 5	3	दुर्वी .	:	भ्वां ,, ,,	3	<b>E</b> ,		
दशि	चु॰ ग्रा॰ से॰	३० १	5	दुल .		चु० ,, ,,	35	38		
द्स	" " "	३० १		7577		<b>前</b> 0 ,, ,,	38	११		

<b>५२ सूचीपत्रम्</b> ॥											
धकाराद्य	: गणाद्यः	бо	ψ̈́ο	नकाराद्य	: गणाद्यः	वि०	фo				
धूञ् .	. चु० उ० से	० ३२	л	ध्वन	चु० ड० से०	इ३	8				
धूझ	TATIONO	, २७	३३	ध्वनि	भ्वा०प० ,,	१२	३				
घूप	. भ्वा॰ ,,	, 9	१६	ध्वंसु	. ,, স্থা০ ,,	.88	9				
धूप	. चु॰ "	, 38	38	ध्वंसु	. , ,, ,,	११	9				
धूरी	दि० आ० ,	, २०	१३		. ,, प० अ०	१३	२१				
घूस	चु० प० ,	, ३०	9	ध्राचि	. " "से०	१०	१२				
घृंङ्	भ्वा०श्रा०श्र	१४	9	भ्राखृ	- 11 71 11	8	१८				
धृङ्	9		X	भ्राडु	. ,, স্থাত ,,	E	3				
घृज	,, प॰ से		१४	भ्राष्ट्र	. 11 11 11	8	१४				
घृति			१४	ध्वादि		१०	१२				
धृञ्			१४	ষ্ট্ৰ		१४	२				
घृष	0		१२	धु	. तु० प० "	२४	१८				
घृषा	The state of the s		१३	भ्रुव	. ,, ,, सं०	२४	१८				
逗	The second second	, २८	3	ध्वृ .	भ्वा० ,, अ०	१४	8				
घृ धेक	9	, 30	3	भेक	,, आ० से०	8	5				
धेट्		, ३३	9	42	We stre	१३	१८				
भेग		,, १३	र्देष		,, 40 %0						
			१०		,, ,, ,,	१३	१८				
धोर्ऋ	" do	, &	६	नक्क.	चु॰ "से॰	38	१५				
ध्रज	)) )) ;	,, ×	१४	नट .	), ,, ,,	38	२१				
ध्रजि	, ,, ,, ,	, ×	१४	नट .	,, 30 ,,	28	Ę				
भ्रण	, ,, ,,	,	5	नदि	ээто по	8	3				
घ्रस	T-FT-	, 2=	१४	===			-				
VIII.	70 70				" " "	8	8				
		, ३१	१३	नल		38	28				
ध्वज	भ्वा० प० ,	, ×	१४	नाधृ	ইবা০ স্থা০ ,,	₹	×				
ध्वाजि	)	, ×	१६	नाधृ .	. ,, ,, ,,	३	×				
ध्वण	. , ,, ,, ,	, =	६	निवास	चु० ड० ,,	३२	२१				
ध्वन	, ,, ,,	, १२	च	<del>G</del> ree	Sille	30					
ध्वन		0.5	११				२०				
	, , , ,	1 54	,,	જુતા	दि० प० "	38	१४				

		•		सूचीप	त्रम् ॥				भृष्
पका	राद्य:	गसाद्य:	Ão	ψ̈́ο	पकार	ाद्यः	गखाद्य:	पृ०	ψo
नू- नू- पत्त्		भ्वा० प० से०	१२	१	पत्न	•••	भ्वा० प० से०	१२	13
च्	•••	ऋचा०,, ,,	२८	3	पल्पूल		ETO 20	32	<b>१३</b>
	•••	<b>३वा० ,, ,,</b>	१०	??	पश			38	<u>ح</u>
पदा	•••	चु॰ ,, ,,	38	ά,	पष		)) )) )) ))	32	१६
पच	•••	भ्या० उ० अ०	१४	६	पसि	•••	" . чо "	30	२
पचि		,, आ० से०	×	×	पा	•••	भ्वा॰ " श्र॰	१३	२१
पचि	•••	चु० प० "	३०	3	पा	•••	য়ে০ ,, ,,	१७	११
पट	•••	भ्वा० ,, ,,	६	१३	पार		चु० उ० से०	३३	9
पट	•••	चु० उ० ,,	३१	१८	पाल	•••	" чо "	३०	8
पट	•••	" ""	३२	१४	वि	•••	तु० " श्र०	२४	2
पठ	•••	भ्वा०प० "	Ę	२०	पिच्छ	•••	चु॰ "से॰	28	१४
पृडि पडि	•••	,, স্থাত ,,	દ	3 51	विज	•••	3 <sup>7</sup> 33 33	२६	११
पग	•	चु० प० "	30	2 0	पिजि	•••	अ० आ० ,,	१६	१२
पत	•••	হয়০স্থা০ ,,	72	२	पिजि	•••	चु० प० "	२६	११
प्रत्त्व	•••	चु० उ० ,, भ्वा०प० ,,	इ२ १२	१६ १४	पिजि	•••	" go "	38	१८
					पिट	•••	भ्वा० प० ,,	É	१६
पथ	•••	चु॰ " "	38	7	पिठ	•••	27 17 77	9	१
पाथि	•••	33 33 33	38	१४	पिडि	•••	্য স্থা <b>০</b> ,,	E	६
पथे	•••	स्वा <b>०</b> ,, ,,	१२	१४	पिडि	•••	चु० प० "	३०	१४
पद	•••	दि० आ० अ०	२०	२१	पिवि	•••	भ्वा <b>०</b> " "	3	28
पद्	•••	चु० उ० से०	३३	8	पिश		तु॰ ""	२४	१६
पन्	•••	भ्वाण्त्राण् ,,	4	3	पिश		चु॰ " "	३०	2
पस्पस		कं पण ,,	३४	Ę	पिष्ऌ	•••	70	२६	११
पय		THIOPITO	, 5						
	•••	÷		१३	विस	•••	चु॰ " "	28	१२
पयस	•••	कं० प० ,,	38	१३	पिसि	•••	,, उ० ,,	38	१६
पर्द	•••	भ्वाण्याण ,,	3	१०	पिसृ	•••	भ्वा०प० "	१०	38
.पर्प	•••	" чо "	9	38	पीङ्	•••	दि॰ आ॰ अ॰	२०	×
पर्व	•••	" " "	G	38	पीड	•••	चु० प० से०	२६	E
पर्व		11 11 17	3	3	पीव	•••	भ्वा० ,, ,,	3	9

५४ सूचीपत्रम् ॥										
पकाराद्य:	गणाद्यः	पृ०	ΰo	पकाराव	्य:	गखादयः	Ãо	фo		
पील	भ्वा० प० से०	4	२४	पूरी		चु० उ० से०	38	23		
पुट	27 17 17	६	१५	पूर्ण	•••	चु० प० "	30	9		
पुट	तु॰ " "	२४	- 4	पूल	•••	भ्वा॰ ,, ,,	3	8		
पुट	चु० उं० "	३१	१८	पूल	•••	चु॰ " "	त्र	E		
पुट	))	३३	9	पूष	•••	भ्वा॰ ,, ,,	१०	१३		
पुटि	)) )' ))	३१	२१	पृ	•,•	स्वा० " श्र०	२२	G		
पुष्ट	" чо "	38	्१०	पृङ्	•••	तु० आ० ् ;;	२४	२४		
पुड	तु॰ ,, ,,	२४	१२	पृच	•••	चु० उ० सं०	३२	२		
पुडि	भ्वा॰ ,, ,,	187	38	पृची	•••	স্থাত স্থাত "	१६	१३		
पुरा	तु॰ ,, ,,	२४	8	पृची	•••	ह० प० ,,	२६	१४		
पुथ	दि॰ ,, ,,	38	१४	पृजि	•••	अ०आ० "	१६	१३		
पुथ	चु० उ० "	38	२०	पृड	•••	तु० प० "	२३	219		
पुधि	भ्वा० प० ,,	3	१४	पृया	•••	33 33 33	२४			
पुर	तु॰ " "	२४	8	पृथ	•••	चु॰ " "	38	4		
पुर्व	भ्वा॰ ,, ,,	3	3	पृषु		भ्वा॰ ,, ,,	१०	१६		
पुल	33 33 37	१२	१३	Į	•••	जु॰ ,, ,,	१८	१२		
पुल	चु॰ " "	२६	38	पॄ	•••	क्रचा० ,, ,,	रद	२		
पुष	भ्वा॰ " "	१०	१६	पेवृ	•••	भ्वा० आ० "	- 5	38		
युष	दि॰ " श्र॰	२१	2	पेल	•••	" чо "	3	8		
पुष	क्रचा० ,, से०	रद	१६	पेषृ	•••	,, স্থাত ,,	१०	8		
पुष	चु० उ० "	38	१=	पेखृ	•••	" чо "	१०	38		
पुष्प	दि० प० "	38	१६	पै	•••	,, ,, आ	१३	२०		
पुंस	चु॰ ,, ,,	30	9	पेणु	•••	,, सं०	٦́	O		
पुस्त	21 22 22	35	१७	पौडृ	•••	22 27 22	Ę	१२		
पूङ्	भ्वा॰ ""	१४	3	प्रच्छ		तु॰ ,, श्र॰	२४			
पूज	चु॰ ""	३०	4	प्रथ		भ्वा॰्रा॰से॰	22	११		
	ऋचा०उ० "	२७	१४	प्रथ		то по	28	5		
पूर्यी	भ्वा० आ० "	<b>E</b>	१४	प्रस		N=10 ===0	28	११		
पूरी	दि॰ " "	२०	१२	प्रचं	•••		१३	१२		
	CC-0, Panini Kan		Section 1		•••		14	1,		

प्रद सूचीपत्रम् ॥ <u> </u>											
भकाराद्य:	गणाद्यः	бo	ůο	भकाराद्य:	गणाद्यः	वि०	фo				
बुस्	दि० प० से०	२१	१२	भन्न	भ्वा०ग्रा० से०	<b>5</b>	20				
बुस	11 11 11	२१	१३	भष	" qo "	१०	१४'				
वुस्त	चु॰ ""	२६	१७	<b>मस</b>	जु॰ ,, ,,	38	9				
बृषु	भ्वा० ,, ,,	१०	१६	भा	য়ে০ ,, য়ে০	१७	१०				
बृह	1) )) ))	११	8	भाज	चु० उ० से०	३२	२१				
बृहि	11 11 11	88	8	भाम	भ्वा० ग्रा० ,,	5	व				
बृहि	चु० उ० "	.38	38	भाम	चु० उ० "	३२	१८				
बृहिर्	भ्वा०प० "	8.8	8	भाष	भ्वा० आ० "	3	२१				
बृह्	तु॰ " "	२४	8	भाख	27 27 37	१०	२				
बेह्य	भ्वाण्याण्,	१०	X	भिच्च	37 33 37	3	38.				
व्रज	" do "	×	28	मिदि	" do "	8	२				
व्रण	17 17 17	5	6	भिदिर्	रु० उ० ग्र०	२६	3				
	दि० ,, ,,	38	<b>१७</b>	भिषज्	कं० प० से०	38	è				
ब्र्ज् भत्त	<b>刻</b> 0 ,, ,,	१७	3	भिष्णुज्			9				
भज	चु॰ " "	१४	Ę	भी	" ""	38					
773				2002	जु॰ ,, ऋ॰	१८	3				
	<b>3°</b> ,, ,,	38	88	मुज	रु० "से०	२६	१३				
भजि	11 11 11	38	38	भुरण	कं० प० "	38	5				
भंजो	€0 do "	२६	१३	भुव:	चु० उ० ,,	38	१४				
भट	भ्वा <b>०</b> ;, ,,	Ę	१४	भू	THE TO	3	२				
भट	), ,, ,,	88	१६	27	च्या च	32					
भडि	,, आ्रा॰ ,,	Ę	Ę				१०				
भानि		28	१७	भूष	भ्वा० प० ,,	१०	88				
				भूष	चु० उ० ,,	38	20				
भण	भ्वा <b>०</b> ,, ,,	4	Ę	मृजी	भ्वा० ग्रा० "	×	६				
भादि	भ्वाण्याण् ,,	3	É	भृञ्	भ्वा० उ० ग्र०	१३	१४				
भर्त्स	चु॰ ,, ,,	३०	२०	<b>भृञ्</b>	जु॰ ,, ,,	१८	१४				
भर्व	भ्वा०प० "	3	१०	मृड	तु० प०से०	२४	१४				
भल	भ्वाण्डाण्,	4	१७	भाग	Do.						
भल	ন্তুত স্থাত "	38	२	<b>च्छ</b> मृसि	दि॰ ",	२१	१४				
				हाल	चु० उ० "	38	२१				

_	स्चापत्रम् ॥											
*	कार	ाद्य:	गखाद	(य:	ão	. <b>ប៉</b> o	मकार	पद्यः	गखाद्य:	वि०	ůо	
भॄ		•••	ऋ० प्र	सं०	२८	2	मधि	2	भ्वाण्ड्याण्सेण	8	१३	
भू		•••	,, ,	, ,,	२८	3	माघ			8	१३	
भे	Ę.	•••	भ्वा० उ		१३	१०	माधि		21 35 35	8	23	
3:5	स		,, স্থা	, ,,	२०	२	मचि		,, স্থা <b>০</b> ,,	×	×	
भ्र	ण	***	,, <b>प</b>	,,,	=	e	मठ		,, do ,,	8	20	
भ्र	मु	•••	भ्वा० ,	, ,,	१२	१४	मांडे	•••	Mite	8	8	
भ्र	मु	•••	दि० ,	, ,,	२१	3	माडि		Contractor 1	E	E	
भ		***	,, স্থা	0 ,,	88	. 9	माडि		" " " "	8	१८	
भ्रं		•••	भ्वा० ,	77	88	9	माडि		= 0	28	१६	
भ्रं		•••	दि० प	, ,,	२१	१४	मण	•••	भ्वा॰ ,, ,;	5	Ę	
भ्रं	<b>स</b>	•••	भ्वा०त्रा	o ,,	88	E	मत्रि		चु॰ " "	30	38	
भ्र	स्ज	•••	तु० उ०	अ०	२३	3	मथि		भ्वा० ,, ,,	३	84	
भ		•••	भ्वा० ,,	सं०	१३	१२	मथे		" " "	१२	24	
2100	व	•••	57 33	17	१३	१२	मद्	•••	चु॰ ग्रा॰ ,,	38	3	
भ्रा		•••	,, आव	77	×	9	मदि	•••	भ्वा० ,, ,,	3	9	
भ्रा		•••	33 33	"	१२	3	मदी	•••	" чо "	१२	3	
भ्रा	शृ	•••	33 33	33	१२	3	मदी		दि० ,, ,,	२१	१०	
भ्र	ताशृ	•••	" "	"	१२	3	मन		,, স্থা০ স্থ	२०	22	
स्री		•••	ऋया०प	ग्र	२८	, 5	मन			38	8	
भूर	17	•••	चु॰ म्रा॰	संव	30	२१						
भ्रेज	,		YETTO				मनु	•••	त॰ ,, ,,	२७	Ę	
240		•••	भ्वा० ,,	"	×	६	मन्तु	•••	कं० ए० . "	इप्त	२	
भ्रेष्		•••	" <u>30</u>	. "	१३	१०	मन्थ	•••	भ्वा० ,, "	3	१४	
स्ल	ाषृ	•••	(1) ))	"	१३	१०	मन्थ	•••	ऋथा॰ ,, "	२८	१३	
मां	के	•••	" স্থা০	"	8	१०	मञ्य	•••	भ्वा॰ ,, "	5	२४	
मिवि	7		" "	27	8	११	मभ्र			3	E	
मख			" чо	"	8	38	मय	•••	71 11 11			
2000		•••						•••	,, স্থাত ,,	5	१३	
मि		•••	77 77	31	8	38	मर्च	•••	चु० प० . "	३०	3	
मग		•••	कं० "	57	इप्त	Ę	मर्व	•••	भ्वा० " "	0	38	
मगि		•••	भ्वा० "	"	8	२०	मर्व	•••	22 22 23	3	. 3	
1	- Indian						100 m				and the state of	

सक्ष , प० ,, १० १२ सिंह , प० ,, १४ ८१ स्माय ,, ,, ,, १० १२ सिंह ,, ,, ,, १० १२ सिंह ,, ,, ,, २४ १३ सिंह ,, ,, ,, ,, ,, ३० ,, ३३ १२ सिंह ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	44	भूद सूचीपत्रम् ॥										
मल मिल पुरु हिंदी पुरु है	मकाराद्य:	ग्याद्यः	वि०	ψ̈́ο	मकार	((द्य:	गणाद्यः	Ãо	ψo			
महा , , , , , , , , , , , , , , , , ,	ਸਕ	भ्याण्याण्सेण	E	१७	मिद्य	-	भ्वा० उ० से०	१३	६			
मव , प० ,, ६ १२			5.	The state of the s	मिधृ	•••	,, ,, ,,	१३	E.			
मश , , , , , , , , , , , , , , , , ,			3	१२	The second second		" qo "	3	१०			
मसी दि० ,, ,, , , , , , , , , , , , , , , , ,	मश		१०	१२	मिल	•••	तु॰ ,, ,,					
सस्को       स्वा० आ० , विश्व कि के का	मष	11 11 11	१०	१४	मिल	•••	,, उ० ,,					
मस्जो तु० प० अ० स० स्वा० ,, से० १० ११ मिष्र नु० प० से० १० १६ मिष्र म्वा० ,, , , , , , , , , , , , , , , , , ,	मसी	दि॰ ""	२१	18		•••	भ्वा०प० ,,					
मह स्वा० ,, से० १० २१ मिष्ठ स्वा० ,, ,, प्र० १६ ए० मिह मुल्ल उ० ,, ३१ ११ मीह स्वा० प० से० १२ मह माङ दि० ,, , , , , , , , , , , , , , , , , ,				१२	The same of the sa							
मह चु० उ० ,, ३२ १७ मिह ,, ,, अ० १४ १६ मिह मिह चु० उ०से० ३२ ४ मिह मिह चु० उ०से० ३२ ४ मिह मिह चु० उ०से० ३२ ४ मिह मिह दि० आ० ४० १८ मि मेह मिह मिह दि० आ० ४० १८ १२ मि मेह मा अ० प० अ० १७ १२ मि मा आ० प० अ० १७ १२ मि मा मा मा प० १८ मि मा मा मा चा० प० से० १८ १८ मी मा मा मा चु० आ० अ० १८ १६ मेह मा आ० ,, ३१ १८ मा चु० उ० ,, ३१ १८ मा चु० उ० ,, ३१ १८ मा चु० उ० ,, ३१ १८ मा मा मा प० ,, ३२ १० मुच चु० उ० ,, ३१ १८ मा मा प० ,, ३२ ११ मुच चु० उ० अ० २४ १३ मा मा मा प० ,, ३२ ११ मुच चु० उ० अ० २४ १३ मा	मस्जो					•••						
महि म्वा॰ आ० ,, १० ३ मी चु० उ० से० ३२ ४ मिह चु० उ० ,, ३१ २१ मिह दि० आ० आ० २० १२ मा अ० प० अ० १७ १२ मिह मा अ० प० अ० १७ १२ मिह मा अ० प० अ० १७ १२ मिह मा चा० प० से० १० १२ मिह मा चा० प० से० १० १२ मिह मा चा० प० से० १० १२ मिह मा चा० प० से० १८ १८ मह मा आ० ,, ४ ४ मा च चु० आ० अ० १८ १६ मह चु० उ० ,, ३१ १८ मा चु० ,, ३० २ १८ मा चु० ,, ३० २ चु० ,, ३० २ मा चु० ,, ३० २ चु० ,, ३० चु०	मह	The second secon	a South		The second second second	•••	the state of the s					
महि चु० उ० ,, ३१ २१ मीड् दि० आ० ४० १२ मिछ् कं० आ० ,, ३४ ११ मीछ् माज अ० प० अ० १७ १२ मीछ् माण माण माण १७ १२ मीछ् माण माण च० ४० १२ मीछ् माण माण च० आ० अ० १८ १६ मीछ आ० ,, ४ ४ माण च० आ० अ० १८ १६ मीछ आ० ,, ४ ४ माण च० आ० ,, ४० ६ मुच च० उ० ,, ३१ १४ माण च० उ० ,, ३२ १० मुच च० उ० आ० २४ १३ माण		A STATE OF THE PARTY OF THE PAR			Section 1	•••			Marin Marine			
महीह कं॰ आ॰ ,, ३४ ११ मीज़ का॰ उ० आ० २७ १२ मी ज़ का॰ उ० आ० का॰ दि० १२ मी जा मार्च जु॰ आ॰ अ० १८ १८ मी जा मार्च दि० ,, ,, २० ६ मुच चु० उ० ,, ३१ १४ मार्च चु० उ० ,, ३१ १४ मुच् चु० उ० ,, ३१ १४ मार्च मार्च मार्च मार्च मार्च मार्च मार्च मार्च मार्च मुच् चु० उ० ,, ३१ १४ मुच् चु० उ० ,, ३१ १४ मुच चु० उ० ,, ३१ १३ मुच मुच मुच मुच मुच मुच चु० ,, ,, २४ १० मुच मुच चु० ,, ,, २४ १० मुच मुच चु० ,, ,, ३० २ मुच मुच चु० ,, ,, ३० २ मुच						•••						
मा प्रा० प० प्रा० १७ १२ मीमु स्वा० प० से० द ह मास्ति प्रा० प० से० १० १२ मीस प्रा० प० से० १८ १६ मीस प्रा० प० से० १८ १६ मीस प्रा० प० से० १८ १८ मुच प्रा० प०				The state of the s		•••						
माचि म्वा॰ प० से॰ १० १२ मील , , , , , , , , , , , , , , , , ,				700		•••						
माङ् जु॰ आ० अ० १८ १६ मीव पुजा					TANKS OF THE PARTY	***	भ्वा० प० स०					
मार्च दि० ,, ,, २० ६ मुच ,, आ० ,, ४ ४ मान च्वा० ,, चे० १४ १२ मुच चु० उ० ,, ३१ १४ मान चु० उ० ,, ३२ १० मुच चु० उ० ,, ४ १३ मार्ग ,, प० ,, ३२ ११ मुचल तु० उ० आ० २४ १३ मार्ज ,, प० ,, ३० ६ मुज ,, भ्वा०प० से० ४ २१ माह स्वा०उ० ,, १३ १३ मुज ,, भ्वा०प० से० ४ २१ माह ,, प० ,, २३ १२ मुट ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,			The same of the sa		A Comment	•••	" ""	2000				
मान झा० ,, से० १४ १२ मुच चु० उ० ,, ३१ १४ मान चु० उ० ,, ३२ १० मुच चु० उ० ,, ४ १३ मान गु० उ० आ० २४ १३ मान गु० ज० , ३२ ११ मुच चु० उ० आ० २४ १३ मान मान मान भूज म्या०प० से० ४ २१ मुज म्या०प० से० ४ २१ मुज मान मान १३ १३ मुज मान १३ १२ मुट जु० , , ३४ १० मुट जु० , , , ३४ १० मुट जु० , , , ३४ १० मुट चु० , , , ३४ १० मुट चु० , , , ३० २ मुट चु० , , , ३० २ मुठ मान									-			
मान चु॰ ड॰ ,, ३२ १० मुचि भ्वा॰ग्रा॰ ,, ४ ४ १३ मार्ज , प० ,, ३२ ११ मुच्छ तु॰ ड॰ ग्र० ४ १३ मार्ज भ्वा॰ड॰ ,, १३ १३ मुज भ्वा॰प॰ से॰ ४ २१ मुट तु॰ प॰ ,, २३ १२ मुट तु॰ ,, ३० २ मुट तु॰ ,, ३० २ मुट चु॰ ,, ३० २ मुट मुड भुडि भुडे भुडि भुडे	The same of the sa			21.0		•••						
मार्ग , , , , , , , , , , , , , , , , ,					Company of the last	•••	चु० उ० "	३१	१४			
मार्ज , प० ,, ३० ६ मुज भ्वा०प० से० ४ २१ माह भ्वा०उ० ,, १३ १३ मुज , , , , , , , , १६ १८ मुट , , , , , , , , , , , , , , , , ,		चु॰ उ॰ ",,	३२	१०	मुचि	***	भ्वा०ग्रा० ,,	×	X			
मार्ज ,, प० ,, ३० ६ मुज भ्वा०प० से० ४ २१  माह भ्वा०उ० ,, १३ १३ मुज ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	CONTRACTOR OF THE PARTY OF THE	.,, ,, ,,	३२	. ११	मुच्ल	1	तु० उ० अ०	२४	83.			
माह भ्या॰ उ० ,, १३ १३ मुजि ,, ,, ,, ,, , ४ २१ मिळ्छ जु॰ प॰ ,, २३ १२ मुट जु॰ ,, ,, ६ १८ मुट जु॰ ,, ,, २४ १० मिज् स्वा॰ ,, आ॰ २२ ३ मुट जु॰ ,, ,, ३० २ मिख् भ्या॰ ,, से॰ १३ ६ मुठि भ्या॰ आ० ,, ६ ४ मिदा ,, ,, ,, ,, ,, ६ १६ मुढि ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	मार्ज	" чо "	३०	3	मुज		भ्वा०प० से०	×	28			
मिच्छ् तु॰ प॰ " २३ १२ मुट " " " " ६ १८ मुट तु॰ " " २४ १० मुट तु॰ " " २४ १० मुट चु॰ " " २४ १० मुट चु॰ " " ३० २ मुट चु॰ " " ३० २ मुढ " प॰ " ६ १६ मुढ " प॰ " ६ १६ मुढ " प॰ " ६ १६	माह	भ्वा० उ० ,,	१३	ः १३		44.16	Marie Control					
मिजि चु॰ ड॰ ,, ३१ १८ मुट तु॰ ,, ,, २४ १० मुट चु॰ ,, ,, ३० २ मुट चु॰ ,, ,, ३० २ मुट मुठ मुठ मुठ मुठ मुठ मुठ मुठ मुठ मुठ मुढ मुढ मुढ मुढ मुढ मुढ मुढ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	मिञ्छ											
सिञ्      स्वा० ,, आ०     २२     ३०     २२     मुट      चु० ,, ,, , ३०     २०	THE PARTY OF THE P					•••						
सिंधु स्वा॰ ,, से॰ १३ ६ मुडि स्वा॰ आ॰ ,, ६ ४ सिदा दि॰ प॰ ,, २१ १८ मुडि ,, ,, ,, ६ ७ सिदा दि॰ प॰ ,, २१ १८ मुड ,, प॰ ,, ६ १६							तु॰ " "	२४	80			
मिदा ॥ आ० ॥ ११ ४ मुडि ॥ ५० ॥ ६ ७ मिदि मुडि ॥ ५० ॥ ६ १६						•••	चु॰ ,, ,,	३०	. २			
मिदा दि॰ प॰ ,, २१ १८ मुडि ,, ,, ,, ६ ९६ मिदि च॰ ३६ १८ मुड ,, प॰ ,, ६ १६	The state of the s	स्वा० ,, सं०	१३ .	E	मुडि	•••	भ्वाण्याण ,,	ह	×-			
सिंदा दि० प० ,, २१ १८ मुड ,, प० ,, ६ १६		,, आ० ,,	88	8	मुडि	•••						
सिदि : च० । २६ । " " " " "	THE PARTY OF THE P	दि० प० ,,	28.	१८		•••						
अः "" र र मुख तु० " " २४ २	मिदि 🧷		38	×	मुण		_		-			

रद्वारअस् ॥											
मकाराद्यः	गणाद्य:	бо	ψ̈́o	मकार	ाद्य:	गखाद्य:	бо	ψ̈́ο			
सुद	भ्वा०ग्रा०से०	ą	, L	मृष	•••	चु॰ ड॰ से॰	३२	१२			
<b>मुद</b>	चु॰ उ० "	38	१३	मृषु	•••	भ्वा०प० "	१०	१७			
मुर	तु० प० "	२४	. 3	and the second second	•••	ऋया०,, ,,	2=	8			
मुच्छी	स्वा० ,, ,,	×	<b>१</b> ८	मॄ मेङ्	•••	भ्वाण्याण् ,,	१४	. 19.			
मुर्वी	n · n · n	3	3	मेड्ड	•••	" чо "	8	12			
मुष	कचा०,, ,,	२८	१७	मेथृ	•••	,, 30 ,,	१३	Ę.,			
मुस	दि॰ ,, ,,	२१	१४	मेद		21 23 23	१३	8			
मुस्त	चु॰ " "	30	Ę	मेधा	•••	कं० प० "	38	K			
मुह	दि॰ ""	२१	६	मेघृ	•••	भ्वा०ड० "	१३	Ę:			
मूङ्	भ्वा० ग्रा० ,,	१४	3	मेघू	•••	33 33 33	१३	६			
मूञ्	ऋचा०ड० "	२७	१४	मेपृ		,, आ० ,,	9	3			
.मूत्र	चु॰ ""	३३	६	मेचृ	•••	,, স্থা <b>০</b> ,,	- =	38			
मूल	भ्वा० प० ,,	3	8	म्रत्	•••	" чо "	१०	28			
मल	बु॰ ,, ,,	38	२०	म्रच	•••	ਚੁ <b>਼</b> ,, ,,	30	१३.			
मूष	भ्वा० ,, ,,	१०	१३	म्रच्छ	•••	22 23 23	३०	१२			
मृत्त	77 . 77 77	१०	११	म्रद्	•••	भ्वाण्याण् "	११	१२			
मृग	चु॰ ग्रा॰ "	33	8	स्ना	•••	,, प० अ०	१३	२२			
मृङ्	तु॰ ,, श्र॰	२४	२४	म्रुचु	• • • •	,, भु	×	११			
मृजू	चु॰ " से॰	३२	११	मुञ्चु	•••	n n n	×	१०			
मृजूष्	ञ्च० प० ञ्च०	१७	94	म्रेडृ	•••		Ę	१२			
मृड	तु॰ " से॰	२३	१७	म्लुचु		11 11 11	×	28			
मृड	ऋवा॰ ,, ,,	२८	१४	म्लुञ्चु		77 21 27	×				
मुड		_	१४			33 33 33		११			
मुण	तु॰ ,, ,,	२४		म्लच्छ		77 77 77	×	१२			
			२	म्लेच्छ	•••	चु॰ ,, ,,	३०	१२			
मृद	V=10 =0	२८	१४	म्लेच्छ	•••	" " "	३०	.43			
मृघु	भ्वा०ड० "	१३	0	म्लेड्ट	•••	भ्वाण् ,, ,,	६	१२			
मृश	तु० प० ग्र०	२४	१०	म्लेपृ		" স্থাত "	9	3			
मृष	भ्वा० ,, से०	१०	१७	म्लेवृ	•••	n n n	5	3.8			
मृष	दि० उ० "	२०	१७	म्लै	•••	27 27 33	१३	१८			
	Control of the second	with the second		Stage Lab	1000		San Francisco				

६० सूचीपत्रम् ॥											
यकाराद्य:	र्गग्राद्यः	бо	ψ̈́o	रेफा	द्यः	गणाद्यः	पृ०	ψ̈́ο			
यच्	चु० आ० से०	३०	<b>३</b> २	रांग	•••	भ्वा० प० से०	8	२०			
यज	भ्वा० ड० अ०	१४	Ø	रघ	•••	चु० उ० "	38	१२			
यत	चु० ,, से०	38	88	रिघ	•••	भ्वाण्ड्या॰ ,,	8	१२			
यती	भ्वा० आ० ,,	3	१०	रिघ	•••	चु० प० "	38	२१			
यम	,, प० अ०	१४	१७	- でい	•••	,, 30 ,,	३२	१४			
यम	n n	18	१८	रच	•••	n n n	. ३२	१६			
यम	,, ,, से०	१२	દ્	रञ्ज	•••	दि० उ० अ०	२०	38			
यम	चु॰ " "	३०	. x	रञ्ज	* ***	भ्वा० ,, ,,	१४	E			
यसु	दि० ,, ,,	२१	88	रट	•••	,, प० से०	દ	१३			
यत्रि	चु॰ " "	२६	8	रठ	•••	" ""	દ્	२१			
या	अ॰ ,, ,,	१७	१०	रण	•••	22 22 22	5	e			
याचृ	भ्वा०ड० ,,	१३	×	रण	•••	27 27 27	88	38			
यु	ञ्च० प० ,,	१६	१७	राग	•••	22 22 22	१२	3			
यु	चु० आ० "	38	8	रद	•••	" ""	3	१७			
युगि	भ्वा०प० ,,	8	. 22	रध	•••	दि० " "	२१	×			
युच्छ	" ""	×	१४	रप	•••	भ्वा॰ ,, ,,	'9	१७			
युज	दि० आ० अ०	20	२२	रफ	•••	""""	9	38			
युज	चु० उ० से०	32	२	रिफ	•••	27 23 23	'9	38			
युजिर्	रु० ,, अ०	२६	8	रिब	•••	,, স্থাত ,,	9	80.			
युञ्	ऋया॰ ,, ,,	२७	१३	रवि		" чо "	3	१२			
युष्ट	चु॰ प॰ से॰	28	१०	रभ	•••	,, স্থাত ,,	१४	१४			
युव	भ्वाण्ड्याण् ,,	3	22	रभि			10				
युध		२०	28			" " "		१२			
				रमु	•••	" " " 30	१२	88			
युप्र	" प॰ से॰	28.	१६	रय	***	,, सं०	5	१४			
यूष	भ्वा० आ० ,,	80.	१४	रस	•••	" qo "	१०	१८			
रच्	" <b>qo</b> "	१०	१०	रस	•••	चु० ड० "	33	१४			
रख,	17 -27 . 27	8	35	रह		भ्वा०प० "	१०	28			
राखि	27 22, 23	8	28	रह							
ख		38	. १२	रह			३०	X			
	चु॰ ", "		7,7		2 •••	22 22 22	३२	१४			

9

X

24

5

×

रेवृ

रेष्ट

रोड्ड

रौड़

रै

58

8

38

K

X

5

to

१३

9

9

77 17

सं०

भ्वा०प० अ०

27 - 27

33

7

रुङ्

रुच

হর

रुजो

रुट

भ्वाण्याण्य

चु० उ० ,,

तु० प०

भवाण्या०

,, से०

१४

११

38

२४

११

६२ सूचीपत्रम् ॥										
लकाराद्यः	गणाद्यः	पृ० पं०	त्नकाराद्य:	गगाद्य:	पृ॰ पं॰					
वच्	चु॰ आ॰ से॰	३१ १	लर्व	भ्वा० प० से०	3.5 0					
तच	" . qo "	<b>3.8</b> 8	त्तत	चु० ग्रा॰ "	३० दश					
तब	भ्वा॰ " "	38 8	लष	भ्वा० उ० से०	१३ ११					
लिख ं	n n	3	लष	27 27 27	१० १८					
त्ताग	25 27 25	४ २०	लस	चु० उ० "	३१ १०					
लगे	23 27 33	११ १७	लस्जी	तु० आ० "	२३ ८					
लिघ	,, आ० ,,	४ १२	ला	अ० प० अ०	१७ ११					
लिघ	" " "	8 63	लाखृ	भ्वा० ,, से०	४ १८					
लिध	" чо "	४ २३	ताचृ	,, आ० ,,	8 88					
लिघ	चु० उ० "	3,9 88	लाञ्छि	" чо "	४ १३					
लिघ	33 33 .33	३१ २१	लाज	n 11 11	अ १६					
लच्छ	भ्वा०प० "	४ १३	लाजि	n n	X 88					
लज	22 23 23	39 %	लाट	के० ,, ,,	<b>38</b> 80					
लज · लजि	चु० उ० "	३३ १२	लाभ	चु० उ० "	३३ १६					
मनि		x 88	लिख	तु० प० "	२४ ८					
सचि	चु॰ " "	२६ १२	लिगि	भ्वा <b>०</b> ,, ,,	४ २१					
	" <u>30</u> "	३१ २०	लिगि	चु० ड० ,,	\$6 .63					
लजी	तु० आ० "	२३ =	लिट	कं० प० "	38 80					
खजी	चु० प० "	₹ ₹	लिप	तु० उ० ग्र०	२४ १३					
लंट	भ्वा० "	६ १३	लिश	दि० आ० "	२० २३					
लंड	27 27 27	9 4	लिश	तु० प० ,,	२४ ६					
लंड	चु॰ " "	<b>26</b> 4	लिह	70 70						
लडि "	भ्वा॰ ,, ,,	१२ ३	ली		१६ अ					
<b>=</b> G	=-		No.	ऋचा०प० ्,,	रद है					
लाड	<b>ड</b> ॰ ,, ,,	२६ ६	ली ं	चु० उ० से०	३२ २					
	", go <sub>""</sub>	३१ २१	लीङ्	दिञ्जा० ज्ञ०	२० ४					
त्तप	स्वा०प० "	७ १७	नुजि :	चु० प० से०	२६ १२					
लवि	,, স্থাত ,,	a so.	ं लुञ्च	भ्वा <b>०</b> ,, ,,	× 80					
लवि	n n n	.७ '११	लब ।							
लभस्	" " " <b>ஆ</b> o	१४ १४	बुट	" " " "	६ १६ ११ ४					

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Ir

		सूचीपत्रम् ॥									
	लकाराद्य:		गगाद्य:	Ãо	ψ̈́o	वक	ारादयः	गगाद्य:	पृ०	ψ̈́ο	
	नुस	•••	तु० प० से	२४	११			. कं० प० से०	38	ą	
	खुट	•••	चु० उ० ,	38	१८	लोड्ड	••	2	9		
	<b>बुं</b> टि	•••	अवा०प० ,,	६	38	लोप्ट	•••	5770	६		
	लुड	•••	" "	THE RESERVE	8				10	20	
	लुड	• •••	,, স্থাত ,,	ALL SUMMER COL	×			-	8	१०	
	<b>लु</b> ड	•••	तु० प० "	The same of the sa	88	The second secon		77 27 27	8	28	
	<b>लु</b> ड	•••	दि॰ ,, ,,	२१	१६			" чо "	8	38	
	नुदि	•••	भ्वा० ,, ,,	8	38	विख	•••	" " "	8	38	
	नुद्धि	•••	" "	9	२	विग	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	21 21 21	8	२०	
	नुहि	***	3) )) ))	9	३	वधि	•••	,, স্থা০ ,,	8	१३	
	<b>खाँ</b> डे	•••	चु॰ ""	२६	88	वच	•••	अ० प० अ०.	१७	१२	
	लुथि	•••	भ्वा० ,, ,,	3	१४	वच	•••	चु० उ० से०	३२	१०	
	<b>खं</b> प	•••	दि० ,, ,,	२१	१७	वज	•••	" чо "	३०	2	
	खु <sup>द</sup> त्तृ	•••	तु० उ० अ०	२४	१३	वञ्च	•••	भ्वा० ,, ,,	×	१०	
1	जुबि		भ्वा०प० से०	9	२०	वञ्च	•••	चु० ग्रा० ,,	38	3	
40	जु <b>वि</b>			30		वर	•••	भ्वा०प० "	É	१४	
		•••	चु॰ ,, ,,		88	वर	***	चु० उ० ,,	३२	१४	
	<b>जु</b> भ	•••	दि० ""	२१	१७	वट	. •••	17 27 17	३३	88	
2	<b>नुभ</b>	•••	वु॰ " "	२३	१४	विट	•••	" .To "	२६	१६	
9	तूञ्	•••	क्रया०उ० "	२७	१४	वटि	•••	,, 30 ,,	३३	१२	
7	रूव		भ्वा०प० "	१०	१३	वडि	•••	" чо "	28	१६	
7	तूष		चु॰ ""	30	8	वण		<b>२वा०</b> ,, ,,	<b>E</b>	٤.	
1120	ोड	•••	कं० ,, ,,	38	. 3	वद	•••		१४	१४	
1-0	पृ		भ्वाण्ड्याण् ,,	G	3	वद				LITER I	
1000	ाला वि		÷		4		111		३२	3	
100		•••		38	3	वदि	•••	भ्वाण्याण् ,,	3	3	
	ोक्ट	•••	भ्वाण्ड्याण् ,,	8	5	वध	•••	चु० प० "	38	9	
	ोक	, •••	चु० उ० ,,	38	२०	वन	•••	भ्वा <b>०</b> ,, ,,	5	5	
	ोचृ	•••	भ्वाण्याण् ,,	X.	3	वन	•••	" чо "	5	3	
ल	ोचृ	•••	चु० उ० ,,	३१ .	20	वनु	•••	" ""	११	१४	
-	myxi o to the				A STATE OF THE PARTY OF	The second					

६४ सूचीपत्रम् ॥										
वकाराद्यः	गणाद्य:	पृ०	ψ̈́ο	वकाराद्यः	गगाद्य:	ão	पुं०			
वनु	भ्वा०प० से०	१२	×	वसु	. दि० प० से०	२१	११			
वतु	तु० ग्रा॰ ,,	२७	Ę	वह		१४	4			
वप	भ्वा०ड० ,,	१४	9	वह	. चु॰ ,, से॰	38	38			
वम	" чо "	१२	X	वा		१७	१०			
वम	11 27 77	१२	१४	वािंच	. भ्वा० ,, से०	8-0	१२			
वय	,, आ० ,,	5	१३	वाञ्छि		X	१३			
वर	चु॰ उ॰ "	३२	१४	वाङ्गु	The state of the s	६	3			
वर्च	भ्वाण्याण् ,,	×	3	वात		32	20			
वर्ण	चु० प० "	38	5	वावृतु		२०	\$8			
वर्ण	)) )) ))	35	٦ 910	वाश्य		२०	१४			
वर्षं	" <b>3</b> ° "	33	७	वास		३२	२१			
वर्ण	कं० ,, ,,	38	१०	विच्छ विच्छ		२४	3			
वर्ष	NETTO ETTO	8	28	20-	To STO	38	800			
वर्ष		१०	8	22-	50	२६	8			
वर्द	चु० उ० ,,	30	१३	विजी		33	3			
ST. E.	70	28	१३	2-2	To To	२३	ح • <i>د</i>			
		200				२६	१४			
विलि	भ्वा० " "	१२	3	विट .	भ्वा० ,, ,,	É	१७			
वल्गु	" """	१२	8	विथृ	. ,, স্থাত ,,	3	११			
वल्गु	कं० ,, ,,	38	२	विद	. अ० प० "	93	१४			
वल्ह्	भ्वा० ग्रा० ,,	१०	8	विद	. বি০ স্থা০ স্থ০	२०	२१			
वल्ह	चु० ड० "	38	38	विद		२६	88			
वश	भ्र <b>० प०</b> ,,	१८	२	िन			-			
वष्क	चु० उ० ,,	33	११				and the state of the same			
	भ्वा०प० अ०			विद्तृ		२४	१३			
		१४	१०	विध	· " प० से०	२३	१७			
वस	্সত স্থাত ,,	१६	88	विल	" " · " "	२४	8			
वस	चु० ड० से०	38	१४	विल	चु॰ ""	28	२०			
वस्क	भ्वाण्ड्याण् ,,	8	१२	विल	the State Autor	38	२०			
वस्त	₹° ""	<b>३</b> 0	२०	विशु		२४	3			

वंकारा	द्यः	गखाद्य:	वि०	पं०	वकारा	द्य:	गणाद्यः	Дo	ψ̈́ο
विष	•••	ऋवा०प०से०	२८	१६	वेथु	7	32102110 20		
विष्तु	•••	जु॰ उ० ग्र०	38	2	वेद	•••	भ्वाण्झा॰से॰	3	88
विष्क	• • • •	चु॰ ग्रा॰ से॰	30	20	वेन्र	•••	West area	३४	
विस	•••	दि० प० "	२१	१३	वेषृ	•••	Site	14	3
वी	••• ;	ञ्र० ,, ञ्र०	१७	8	वेल	•••	E 70	32	38
वीर	•••	चु॰ ड॰ सं॰	३३	8	वेझ	•••	) TRIOTTO	3	3
बुजि	•••	" qo "	38	११	वेला		*a	38	3
<b>बुल</b>	•••	23 37 33	38	२०.	वेत्र		भ्वार्थः ,, ,,	3	3
<b>बुक</b>	••• 1	भ्वा० ग्रा० "	8	११	वेबीङ्	••••	ञ्च० ,, ,,	१७	२३.
वृत्त	•••	» » »	3 .	१८	वेष्ट	•••	भ्वा० ग्रा० "	·Ę	3
वृङ्	•••	সন্থাত্য়াত "	२=	88	वै		,, प० अ०	१३	20
वृजी	•••	अ॰ ,, ,,	. १६	१३	व्यच		तु॰ "सं॰	२३	28
वृजी	•••	ह० प० "	२६	१४	व्यथ		भ्वा० ग्रा० ,,	28:	28
वृजी	•••	चु० उ० ,,	३२	3	व्यध	•••	दि० प० "	28	2
<b>बृ</b> ञ्	•••	स्वा० ,, ,,	२२	. 4	व्यय .	•••	भ्वा०उ० "	१३	3 :
<b>बृ</b> ञ्	•••.	चु॰ ,, ,,	३२	7	व्यय	•••	चु॰ " "	33	१४
वृग	•••	तु० प० "	२४	?	वर्ग	•••	2) 22 15	३३	१६
चृतु ।	•••	भ्वा० ग्रा० ,,	55	v	वश्चू		" do "	२३	88
<b>चृतु</b>	•••	चु॰ उ० "	38	२०	वी		স্ব্যা০,, শ্ব০	२८	Ę
वृधु .		भ्वा० ग्रा० "	. 88	5	ब्रीङ्	•••	A	२०	×
चुंधु -		चु० उ० "	38	. 20	व्ली				
<u>वृश</u>		Bo 70	28				ऋवा०प० "	२८	Ę
14.	•••			१४	ब्युष	•••	दि॰ "से॰	38	\$8:
बुष .	•••	चु०त्रा० "	38	3	व्युष	***	27 27 25	२१	१३
वृहि	•••	" 30 "	38	38	ब्युस्	•••	J) - J) I)	28.	१२
बृह	•••	तु० प० "	२४	8	बुड		तु॰ ""	२४	18.
वृ	•••	ऋया॰ "	२८	2	वृस	•••	चु <b>०</b> ,, ,,	30	१३
	•••	,, 30 ,,	20	१७	ब्येञ्				
वृज् वेज्			१४	- 11 - 2 - 1			भ्वा०उ० ग्र०	१४	१२
नन् वेगा	•••			१२	शक	***	दि॰ प॰ श्र०	२१	<b>(</b> 3')
वेणु	•••	" "सं०	१३		श्रकि		भ्वाण्ड्या०से०	. 8	3

६६ सूचीपत्रम् ॥								
शकाराद्	य:	गखाद्यः	पृ०	ψo	शकारादय:	गखाद्य:	Ãо	ůо
		स्वा० प० अ०	२२	3	शंसु	भ्वा० प० से०	१०	38
शक्लृ शगि	•••	म्बा॰ ,, से॰	8 -	२०	शाखृ	33 33· 37	8	.१५
श्च	•••	STITO	×	3	शाड़	" श्रा॰ "	इ	3
शट	•••	,, qo ,,	Ę	१३	शान	,, i i, ,,	१४	.8
शड	•••	" " "	E	१६	शासु	श्र॰ ;, ,,	१६	88
शड	•••	" " "	9	. 8	शासु	27 27. 27	.१७	२१
शठ	•••	चु॰ ,, ,,	38	११	शिच	भ्वा० ,, ,,,	3	१८
शठ	•••	,, স্থাত ,,	३०	. २२	शिखि	" чо "	४	२१
<b>શ</b> ठ	•••	,, 30 ,,	३२	१४	शिवि	,, ,, ,,	8	२३
शिंड	•••	भ्वा० आ० "	. &	9	शिजि	স্থাত ,,	१६	१२
शण	•••	" чо ".	११	38	शिज्	स्वा० उ० श्र०	२२	३
श्य	•••	n. n n	88 .	२०	शिट	भ्वा०प० से०	६	१४
शद्ख	•••	,, आ० ,,	१२	- २१	शिल	तु॰ " "	२४	
शद्ख	•••	तु० प० "	२४	१०	शिष	भ्वा० ,, ,,	१०	१४
	•••	भ्वा० उ० अ०	१४	. &	शिष	चु० उ० "	32	8.
	•••	दि० ,, ,,	20	38	शिष्तः	रु० ए० अ०	२६	23
The Party of the San	•••	चु० प० "	28	8	शीक	चु० उ० से०	38	२१
	•••	,, आ० से०	38	. 8	शीक	ול נו יו	३२	ફ
शब्द	•••	,, उ० ,,	38	9	शीक	भ्वा० आ० "	8	5
शमु	•••	दि० प० ,,	२१	3	शीङ्	স্থ০ ,, ,,	१६	१४
शर्व	•••	भ्वा० " "	9	38	शीभृ	¥वा <b>०</b> ,, ,,	9	88
शर्व	•••	)) 1)· 1)	3	१०	शील	" чо "	5	२४
पाल		,, হ্লা০ ,,	१२	१४	शील		23	23
W-227				१३	W-	Vitto To		1
	•••	" " "	9				×	-3
	•••	" чо "	१०	२०	ग्रुचिर्	दि० उ० "	२०	80-
	•••	1) 2) 1).	१०	२०	ग्रुच्य	भ्वां० उ० "	7	<b>६२</b>
A STATE OF S	•••	11 - 11 11	१०	१४	युठ	17 17 17.	. 0	2
शसि .		,, স্থা০ ,,	१०	\$	शुठ	चु॰ ""	३०	5
शसुं.	•••	" प० से०	१०	२०	शुढि	)ETTO	0	2
		Security Vol.				Adla 11 11		

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection

शकाराद्यः	गणादयः	Ãо	Ůο	शकाराद्यः	गणाद्यः	do	ġο
शुद्धि	भ्वा०प० से०	. 6	2	शौड़	भ्वा० प० से०	<b>E</b> 8	१२
श्रुठि	चु॰ " "	30	5	थिक	,, স্থাত ,,	8	3
ग्रुध	दि० ,, ग्र०	२१	8	श्रागि	" чо "	४ २	28
ग्रुन्ध	भ्वा० ,, सं०	8	8	थ्रग्	, ,, ,,	११ १	39
शुन्ध	चु० उ० "	३२	9	थ्रम्	चु॰ " "	₹ १	१४
शुन	तु० प० "	२४	२	श्रथ	ऋथा॰ ,, ,,	११ व	२०
ग्रुम	भ्वा० आ० ,,	88	CO.	अथ	चु॰ " "	₹€ .	9
शुभ	" do "	9	२१	थ्रथ	" 3º "	३२	×
ग्रुम	त॰ ग्र	२३	१६	थथ	m: 11 11		१७
ग्रुस्म	भ्वा० ,, ,,	9	28	थ्रिय	भ्वा० ग्रा० ,,		११
गुस्भ	त० ,, ,,	२३	१६	श्रन्थ	ऋया० प० ,,		१३
ग्रुएक	चु॰ " "	30	2	श्रन्य	चु० उ० "	३२	5
शुल्व	11 11 11	30	8	थ्रमु	दि० प० ,,	28	3
शुव	द्वि० ,, अ०	<b>२१</b>	२	अम्भु	भ्वा०आ० "		18
सूर		20	१३	श्लाक	79 31 31	8.	3
शूरी	दि॰ ,, ,,			ऋगि	,, qo ,,		28
सूर्व ,		३०	8	ऋथ			<b>२</b> ४
शूल	स्वा० ,, ,,	3	8	श्विक	,, आ० ,,	8	28
शूष	33 33 33	१०	१३	श्र्वच	" " "	×	. 8
श्यु	भ्वा० आ० "	38	4	श्वचि	" " "	×	8
श्घु	,, 30 ,,	१३	9	<b>श्वर</b>	चु॰ " "	28	2.8
श्यु	चु॰ ", ",	38	22	श्वठ	. ita	इर	१ध
	ऋचा० प० ,,	२८	ર	श्विठ	То	22	8.8
			. &				6
शेला		38		श्वभ्र	11 11 27		
शेल	स्वा० ,,, ,,	3	8	श्वर्त	11 12 13		119
शेवृ	". आ० "	5	38	श्वल	भ्वा० ,, ,,	3	3
्रेश	,, प० अ०	१३	२०	श्वलक	चु॰ " "	₹ :	?:
्रो·	दि॰ ग़, ग़	२०	3	श्वज्ञ	. <b>३वा०</b> ,, ,		
शोगृ	भ्वा० ,, से०	5	9	श्वस	अ० ,, ,	2.230	3

६८ सूचीपत्रम् ॥							
पकाराद्य:	गगाद्यः	पृ० पं०	षकाराद्यः	गर्गाद्यः	go to		
	भ्या० प० श्र०	१२ १	षच	भ्वा०ग्रा०से०	y a		
थ्रा थ्रा	ETO.	१७ १०	पच	,, 30 ,,	१४ ६		
77777	भवा० ,, सं०	ध १८	षञ्ज	,, স্থা০ স্থ০	39 89		
PITT	SITO	8 58	षट	" प० से०	६ १६		
श्चित्र	,, 30 ,,	१३ १४	षसु	त० उ० "	२७ ३		
श्रिषु	,, qo ,,	१० १६	सत्र	चु० ग्रा० "	<b>३३ : ४</b> :		
श्चिष	दि॰ ,, श्र॰	२१ ३	षद	,, 30 ,,	३२ . ७		
श्चिष	चु॰ "से॰	२६ १४	षद्त्य	भ्वा० प० श्र०	१२ २१		
श्लिषु	भ्वा <b>॰ ,,</b> ,,	१० १६	षद्त्र	go ""	२४ १०		
श्चि	)) <sup>))</sup> ))	१४ १४	षन	भ्वा० "से०	٠ ټ . ٤		
श्विता	77 27 17	88 8	षप	n n n	७, १७		
श्विदि	,, স্থা০ ,,	् ३ ६	सपर	क्ं , ,,	₹8 €		
श्मील	2) 2) 1)	द २३	समाज	चु० उ० ः,	३२ २१		
श्रीञ्	ক্ষথা•ড•ৠ৹	- 20 . 82	षम	भ्वा०प० ,,	१२ :११		
श्च्युतिर्	भ्वा०प० से०	3 88	समी	दि॰ ""	२१ १४		
			षम्ब 👑	चु॰ ',, ,,	₹ ₹		
প্ত	","",对0		सम्भूयस्	कं० ,, ,,	इप्त १३		
श्येङ्	,, স্থাত ,,	१४ ८	षर्ज	भ्वा० "	४ १६		
श्रे	,, qo ,,	१३ . २०	षर्व	75 35- 22.	39 0		
स्रोक्त	,, आ० स०	8 =	षर्व	33 31 31	8 80		
शोणु	" чо "	₹ 9	संवर	कं0 ,, ,,	३४ १३		
शोणु		E 9	षत्त	) भूगाव			
ज्वस्क	,, आo ,,	४ १२		V4(10 31 33			
				33 33 33	,		
ष्ठिबु	" do "	8 . 0		37 33 33	प्र ११		
ष्टिंचु	दि० ""	88 83		22. 1. 127 . 27	१८ २		
षगे	भ्वा० ", "	११ १८	षस्ति	55 35 33	१८ २		
षघ	स्या॰ " "	२२ १३	षह	,, স্থাত "	१२ १=		
सङ्केत	चु० उ० ,,	33. 2	षद्ध	B	१६ १७		
सङ्ग्राम	n n	३३ १२		चु॰ ड॰ से॰			

षकाराद्यः	गणादय:	Ão	ψ̈́ο	षकाराद्य:	गगाद्य:	Ãò	фo
साध	स्वा० प० अ०	२२	3	षूद	चु० उ० से०	38	5
षान्त्व	चु० ,, से०	35	१२	सूर्च	भ्वा० ग्रा० "	20	११
साम	,, उ० ,,	३२	35	सूदर्य	" чо "	- 5	22
साम्य	,, प्र,	38	3	स	,, ,, স্থত	१४	8
सार	,, 3º ,,	३२	१७	च	जु॰ ,, ,,	38	¥.
विच	तु॰ ,, ,,	२४	. १४	सुज	दि० छा० ,,	२०	२२
विञ्	स्वा० " अ०	२२	3	सृज	तु० प० से०	२४.	2
षिञ्	ऋया॰ ,, ं,,	२७	१३	स्प्ल	भ्वा॰ ,, ,,	६८ .	१८
षिट	भ्वा०प० सं०	६	१६	षृभु	23 23 27	9	२१
विधु	11 11- 11	3	१४	षृम्भु	25 27 25	9	२१
षिघु	दि॰ ""	२१	8	सेक	্য, স্থাত - ;,	. 8 :	3.
षिधू	श्वा० ,, ,,	3	१४	षेत्र	" qo "	. &	8
विसु	22 23 23	9	२१	षेवृ	,, স্থাত ,,	=	१८
विस्सु	25 27 25	9	२१	षे	,, प० अ०	१३ .	38
विल	तु॰ ,, ,,	२४	9	षो	दि॰ ,, ,,	२०	3
बिद्ध	दि॰ ", "	38	१२	स्कान्दिर	भ्वा० प० ,,	१४	१७
<b>a</b>	भ्वा० ,, ग्र०	१४	२	स्कमि	,, ग्रा० से०	१४	१२
षु	ञ्च० ,, ,,	१७	8	स्खद	)) 1) 27	११	१२.
पुञ्	भ्वा०ड० "	२२	3	स्खल	", чо ".	3	8
TIM	चु० "सं०	22	१४	स्खलिः		१२	. 2
						११	१७
सुख	कं प प,	38	E	एक	27 37 33		
षुर	तु॰ " ;"	२४	३	एगे	22 22 22	88	<b>१</b> ⊏
利	दि॰ ,, ,,	38	१७	एन	33 33 33	ς,	=
ঘু	ਰੁ• ,, ,,	२४	3	एमि	,, आ॰ ,,	9	१२
षूङ्	স্থাত সাত ,,	१६	१४	<b>एम</b>	" чо "	१२	88
		२०	2	T. T.		१२	१२
षूड्							१४
सूच	चु० ड० "	३२	१८	रतन,	चु० ड० "	३२	A
सूत्र	27 27 27	33	E	स्तसु	दि० प० ,,	38	१४
बूद	भ्वा०ग्रा० ,,	W	3	स्पर्छ	भ्वा० ग्रं० "	. 3	8
AND ADDRESS OF THE PARTY OF THE			San and Personal Property				Call and property

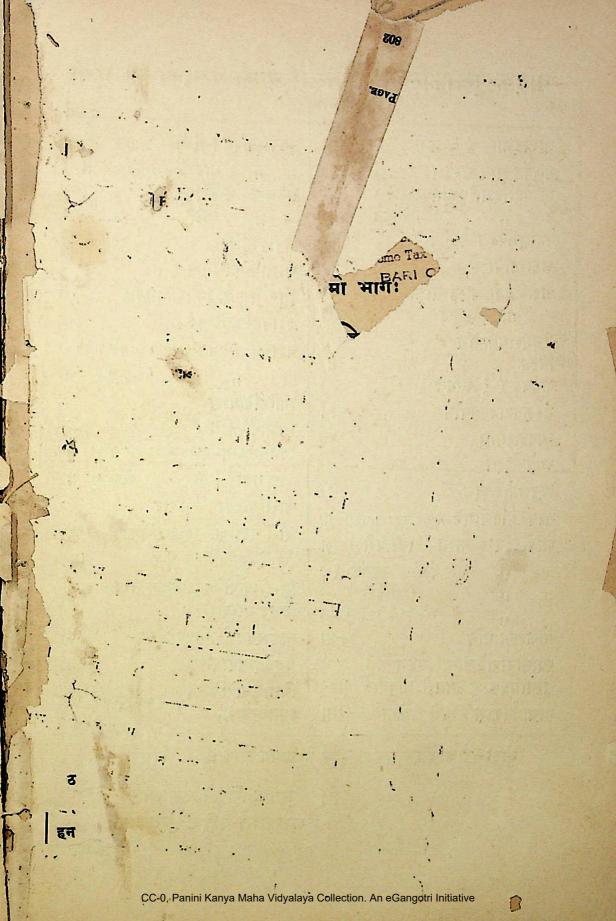
७० सूचीपत्रम् ॥							
सकाराद्य:	गगादयः	્યૃ૦ પં૦	सकाराद्य:	गणाद्यः	पृश्ःपंश		
<del></del>	भ्वा०ग्रा०स०	3 0	स्फिष्ट	चु० ग्रा० से०	30 8		
स्पदि		१३ ११	स्मिङ्	भ्वा॰ " अ॰	<b>58</b> 8,		
स्पश	,, उठ ,, तु० प० ,,	२४ १३	स्मिङ्	चु० प० ्,	२६ १३		
स्यन्द्	भ्वा० ग्रा० ,,	22 =	स्मिट …	" "सं०	२६ १३		
स्यम	<b>ਭੂ</b> ο " "	३० २२	लियु	दि॰ " "	१६ १३		
स्यमु	भ्वा० प० "	१२ ११	ष्विदा	भ्वा०ग्रा० "			
स्रकि	্,, স্থাত ,,	8 . 8	ष्विदा	" do "	१४ १७		
स्रम्भु	27 -37 27	6, 68	विवदा	दि॰ , ,	१६ १७		
स्रम्भु	71 21 . 27	88 . 0		17 17 27	- 28		
स्रंसु	. 22 1 22 22			শ্বা০ ,, ,, স্বা০ভ০স্ক			
ष्ट्रज	,, , ,, 对0	१४ ः १४	THE STATE OF THE PARTY OF THE P	भ्याण्डण्य			
ष्वद्	भ्वा० ,, से०	20 . 22			V 9		
ष्यद्	चु० उ० ,	09 0		স্থাত তত স্থাত			
स्वन	अवा०प० ,	, १२ <b>४</b> , १२ ११	31	TO TO HE	The second second		
स्वन	. )) )) )) )			VETTO SUITO			
स्वय्	ञु० उ० से			अ० प० अ			
2				0 4			
			99		20 . 5		
ष्ठा	,, ` प॰ अ		9-				
च्या	. : अ० <sub>''</sub>	, 80 . 8		. भ्वा० ग्रा०			
<b>स्ता</b>	. भ्वा० ,,	, १२	४ स्क्रटः	्. तु० प०	,, २४ ६		
स्कायी	,, आ० से	0 = . 8	४ स्क्रुट	चु० उ०	,, 38 8		
स्वादः	. ,,,,	,, 3 . 8	ः स्कुटिर्	भ्वा० प०	" & Les		
ष्टिय ः	THE	,, 22 - 38		तु० ,,	,, २४ १२		
ष्टिष्ट	2000	"	_	चु॰ ,,,			
प्टिम	. दि० प०		6.				
				Name			
िणह	. 9 9				" X SE		
पिग्रह	डि॰ ग			<b>30</b> 11.	,, २४ .१		
स्फिट .	35 35	,, 38	३ स्र	, भवा० ,, इ	य० १४ :		

	सूचीपत्रम् ॥ ७१								
हकाराद्य: गणाद्य: पृ० पं० हकाराद्य: गणाद्य:	पृ०	ψo							
स्यूल चु० उ० से० ३३ ४ ह्य भ्वा०प०से	0 5	२२							
	,, 5	22							
ग्रह है । उप क	,, १२	१२							
EES CECEDICES TEES	and the second second	\$ 8.							
£1 10 55 0 EIE		१८							
स्राय त० २४ ६ हि	,, १८ ,, २२	१६							
स्पृश चु०न्ना० से० ३० १६ हिक भ्वा०उ०से		છ							
स्पृद्ध ।, उ० ३२ १७ हिन	,, '&	१७							
स्मृ स्वा०प० अ० १२ १ हिउ ऋवा० ,,	,, , , , , ,	१७							
्रिंग । १४ १ हिटि अभावसार	, 8	×							
	, २४	9							
स्तृ भ्वा० ,, , १३ २२ हिवि भ्वा० ,,	3 .	११							
1 15 10 10 10 10	, 30	२०							
स्त्रज्ञ ड० २७ १५ ।हास ६० प०		१४							
Z 30 "31		3							
	० ६	Ę							
	, &	. 0							
स्रोक भ्वा॰ग्रा॰ ,, ४ ६ हुडू ,, प० ,	, 0	8							
स्त्ये ,, प०ग्र० १३ १६ हुङ् प्र०ग्रा० ग्र	१८	×							
ष्टे " " " १३ २० हुच्छी भ्वा०प० सेव	×	१४							
एये ,, ,, १३ १६ हुल ,, ,,	१२	१४							
प्यो ,, ,, १३ २० इ.स	10	8							
स्तोम चु० उ० से० ३३ १३ होत									
<b>E7</b>		5							
		8							
3 11 11	38	X							
हद ,, आ०अ० १४ १४ हज् भ्वा०उ० ,,	१३	१४							
हन अ० प० ,, १६ ३ हणीङ् कं०आ० से०	३४	१०							
हरम   स्वा० ,, से०   द ६   हृष   दि० प० ,,	२१	१४							

७२ सूचीपत्रम् ॥							
ह्काराद्य:	ग्णाद्यः	Ão	ψ̈́ο	हकाराद्यः	ंगगादयः	ão	фo
हणु हेड हेड्ड होड्ड होड्ड होड्ड हाल हलप हमे	स्वा०प०से० ,, आ० ,, ,, प० ,, ,, प० ,, ,, प० ,, ,, प० ,, ,, ,, ,,	2 4 2 4 9 0 9 7 7 9 8 9 9 9	? X & E ? ? ? ? X ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ?	हुगे हुस इस इस इस हाद हाद ही ही हि छु हुर हुर हुर हुर हुर हुर हुर हुर हुर हु	30	さるなな 田田 田 女 日 田 の 女	\$

॥ इति ॥

१३

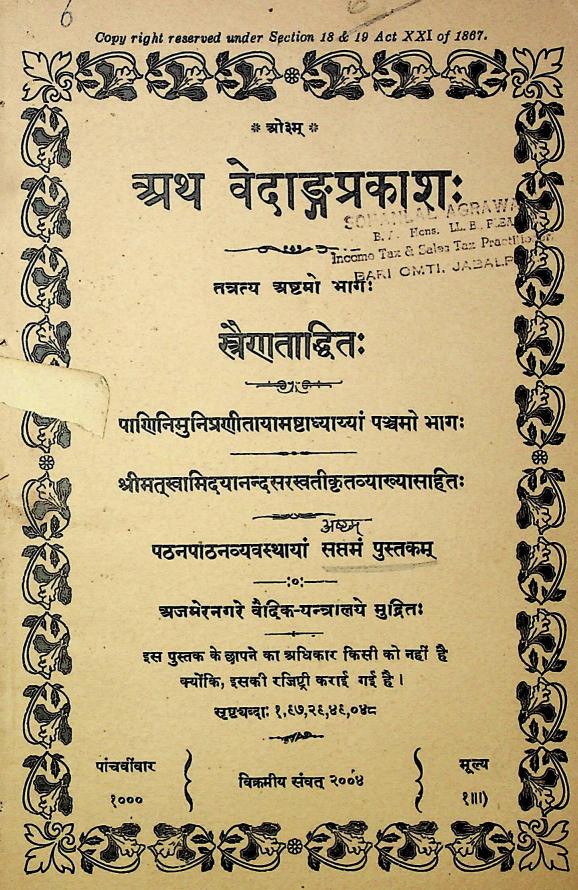


वैदिक-पुस्तकालय में मिलने वाली पुस्तकों की सूची					
	सृत्य				
म्बन्द्रमाध्य (६ माग ) ३२)	श्रायीभिविनय गुटका				
28.44.11.4 1 - 11.1	मोटे अनुरों की ।।=)				
पश्चपद्माञ्च ता द्व	संस्कारविधि वहिया				
Seddildates deser	,, घटिया =)।				
,, केवल संस्कृत ।।।) वेदाङ्गप्रकाश १४ भागु, ४॥८)	विवाइपद्धति ।)				
44144411111	शास्त्रार्थ फीरोज़ावाद				
111 61 14 11	आ॰ स॰ के नियमोपनियम				
	आ॰ वि वा विवयताता				
	441468111111				
	वेदान्तिध्वान्तनिवारण (नागरी) -)।				
	,, (अंग्रेज़ी) /)।।				
	भ्रान्तिनिवारण 💮 "				
संस्कृतवाक्यप्रवोध =)।।	शास्त्रार्थ काशी				
व्यवहारभातु =)	स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश (नागरी)				
भ्रमोच्छेदन -)	तथा (श्रंग्रेज़ी) )।।				
अनुध्रमोच्छेदन -)	चारों मूलवेद साधारण ६)				
सत्यधमीविचार(मेलाचांदापुर नागरी) /)।।					
श्रायोंदेश्यरत्नमाला (नागरी) )।					
,, १०० पुस्तक १।)	ईशादिदशोपनिषद् मूल ॥।)				
,, ( मरहठी ) -)	छान्दोग्योपनिषद् संस्कृत तथा				
,, ( ग्रंग्रेज़ी ) -)	ाहन्दा भाष्य				
गोकरुणानिधि -)॥	बृहदारएयकोपनिषद् भाष्य ४)				
स्वामीनारायणमतखरडन =)	यजुर्वेदभाषाभाष्य २॥)				
सत्यार्थप्रकाश नागरी बढ़िया ।।=)	ि-मक्सीनिधि ।				
सत्यार्थप्रकाश नागरी घटिया ।)।।	इवनमन्त्र )।,				

नोट:-डाकमइस्रल सबका मृत्य से अलग होगा ॥

पुस्तक मिलने का पता— प्रबन्धकर्त्ता वैदिक पुस्तकालय,

श्रजमेर.



# भामका १-१-१-४-१५

यह अप्राध्यायी का पांचवां भाग, और पठन पाठन में आठवां पुस्तक है। मैंने इसको वनाना आवश्यक इसिलये समक्षा है कि पढ़ने पढ़ानेवालों को 'स्त्री' और 'तिद्धत' प्रत्ययों का भी बोध होना अवश्य उचित है। इसके जाने विना अन्य शास्त्रों का पढ़ना भी सुगम नहीं हो सकता। विशेष तो यह है कि संस्कृत में जैसा तिद्धत प्रत्ययों से अधिक बोध होता है, वैसा अन्य से नहीं हो सकता। इसमें थोड़ा सा तो स्त्रीप्रत्यय का प्रकरण है, वाकी दोनों अध्याय तिद्धत के ही हैं। इन में से मुख्य २ सूत्र, जो कि विशेष कर के वेदादि शास्त्रों और संस्कृत में उपयुक्त हैं, उन को लिख कर, भाष्य के वार्तिक, कारिका, उदाहरण, प्रत्युदाहरण भी लिखे हैं, जिस से 'स्त्री-प्रत्यय' और 'तिद्धत' का भी यथावत् बोध हो।

इस में बहुत कर के 'उत्सर्ग' और 'अपवाद' के सूत्र हैं। जैसे—शैषिक के अपवाद सब तिहत सूत्र, और अग् का अपवाद इज्, और इज् के अपवाद यज् आदि प्रत्यय हैं। जो अपवाद सूत्र हैं, वे उत्सर्ग के विषय ही में प्रवृत्त होते हैं, उन से जो बाकी विषय रहता है, सो उत्सर्ग का होता है। परन्तु अपवाद सूत्र के विषय में उत्सर्ग सूत्र कभी प्रवृत्त नहीं होते। जैसे—चक्रवर्ता राजा के राज्य में माग्डलिक राजा, और माग्डलिक के राज्य में कुछ थोड़े ग्रामवाले, उनके विषय में कुछ थोड़ी भूमि बाले अपवादवत्, और बड़े राज्यवाले उत्सर्गवत् होते हैं, वैसे ही सूत्रों में भी समस्तना चाहिये।

कोटि २ धन्यवाद परमात्मा को देना चाहिये कि जिसने अपनी वेद्विद्या को प्रसिद्ध कर के मनुष्यों का परमहित किया है, कि जिस को पढ़ के महामुनि पाणिनि सहश पुरुष हो गये। जिन्हों ने हज़ार रुठोक युक्त छोटे ही ग्रंथ अधाष्यायी, और कुछ कम चौबीस हज़ार रुठोकों के बीच महाभाष्य ग्रंथ में समग्र वेद और लौकिक संस्कृत शब्द कपी महासमुद्र को भी यथायोग्य सिद्ध करके विदित करा दिया है, कि जिस से एक शब्द भी बाकी नहीं रह गया। उन को भी अनेक धन्यवाद देना चाहिये, कि जो हम लोगों पर बड़ा उपकार कर गये हैं। वैसे उनको भी धन्यवाद देना चाहिये कि जो इन्हीं ग्रन्थों के पढ़ने पढ़ाने और प्रसिद्ध करके निष्क्रपट होकर तन मन धन से प्रवृत्त रहते हैं।

क्योंकि 'तद्धीतं तद्देद्व' जो विद्वान् व्याकरण को पढ़ें और पढ़ावें उन्हीं को 'वैयाकरण' कहते हैं। और जो महायोगीप्रणीत संपूर्ण गुण्युक्त निर्दोष शास्त्र को छोड़ कर अपनी जुद्र बुद्धि से प्रतिष्ठा के लिये अर्किचित्कर वेद्विद्यारिहत 'सारस्वत-चित्रका' 'मुग्धबोध' 'कातन्त्र' और 'सिद्धान्तकौमुदी' आदि अयुक्त प्रन्थ रच के परमपुनीत प्रन्थों की प्रवृत्ति के प्रतिबन्धक हो गये हैं, उन को न वैयाकरण और न हितकारी समभना चाहिये, प्रत्युत अहितकारी हैं। क्योंकि जो व्याकरण का संपूर्ण बोध तीन वर्षों में यथार्थ हो सकता है, उस को ऐसा कठिन और अव्यवस्थित किया है कि जिसको प्रचास वर्ष तक पढ़ के भी व्याकरण के पूर्ण विषय को यथार्थ नहीं जान सकते। उन के लिये धन्यवाद का विरुद्धार्थी शब्द देना ठीक है।

जो इस प्रन्थ में सूत्र के आगे श्रद्ध है, सो इस की स्त्रसंख्या; और श्र० संकेत से श्रष्टाऽध्यायी; एक (१) से श्रध्याय; दो (२) से पाद; तीन (३) से स्त्रसंख्या समस्तनी चाहिये॥

इति भूमिका ।।



# श्रथ स्रेग्तादितः

~~ 第1十五十八十

### स्त्रियाम् ॥ १ ॥ अ० ४ । १ । ३ ॥

4.9.27 76

यह श्रधिकार सूत्र है। इस से श्रागे जो प्रत्यय विधान करेंगे, 'सो सब स्त्रीप्रकरण में जानना चाहिये॥ १॥

#### अजाद्यतष्टाप् ॥ २ ॥ अ० ४ । १ । ४ ॥

जो स्त्री अभिभ्रेय हो, तो अजादि गणपठित और अकारान्त प्रातिपदिकों से टाप् प्रत्यय हो।

जैसे—श्रजादि—श्रजा; पंडका; कोकिला; चटका इत्यादि। श्रद्नत—खट्वा; देवदत्ता; शाला; माला इत्यादि।

अकारान्त शब्द जब स्त्रीलिङ्ग के वाचक होते हैं, तब सब से टाप् ही हो जाता है। अर्थात् स्त्रीलिङ्ग में अदन्त कोई शब्द नहीं रहता॥२॥

### प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्याऽत इदाप्यसुपः ॥ ३ ॥ अ० ७ । ३ । ४४ ॥

श्राप् परे हो, तो प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व जो श्रत् उस को इकार श्रादेश हो, परन्तु जो वह श्राप् सुप् से परे न हो तो।

जैसे-जटिविका; मुग्डिका; कारिका; द्वारिका; पाचिका; पाठिका इत्यादि ।

'प्रत्यय' प्रहण इसिलये हैं कि —शक्तोतीति शका। 'ककार से पूर्व' इसिलये कहा है कि — नन्दना; रमणा। 'पूर्व को इत्त्व' इसिलये कहा है कि — कटुका, यहां पर को न हुआ। 'श्रकार को इत्त्व' इसिलये कहा है कि —गोका, यहां न हो। 'तपरकरण' इसिलये हैं कि — राका; धाका, यहां इत्त्व न हो। 'आपू के परे' इसिलये कहा है कि — कारकः; धारकः, यहां न हो। 'श्रसुप्' इसिलये हैं कि — बहवः परिव्राजका श्रस्मामिति बहुपरिव्राजका वाराणसी॥ ३॥

### वा०-मामकनरकयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यमप्रत्ययस्थत्वात् ॥ ४ ॥

सुप्रहित आप् के परे मामक और नरक शब्द के अत् को भी इकार आदेश हो। जैसे—ममेयं मामिका; नरान् कायतीति नरिका ॥ ४॥

#### वा०-प्रत्ययप्रतिषेधे त्यक्त्यपोश्चोपसंख्यानम् +॥ ४॥

सुप्रहित त्राप् परे हो तो त्यक् त्रीर त्यप् प्रत्ययान्त को इत् आदेश हो। जैसे -दािच्चाित्यकाः, इहत्यिका × इत्यादि॥ ४॥

न यासयोः ॥ ६ ॥ अ० ७ । ३ । ४५ ॥

स्त्रीविषय में या और सा इनके ककार से पूर्व अत् को इत् आदेश न हो। जैसे—यका; सका। यहां 'यत्; तत्' शब्दों से 'अकच्' प्रत्यय हुआ है। ॥ ६॥

वा०-यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम् ॥ ७ ॥

यत् श्रीर तत् शब्दों को जो इत्त्व का निषेध किया है, वहां त्यकन् प्रत्ययान्त को भी इत्त्व न हो।

. जैसे-उपत्यकाः अधित्यका \* ॥ ७ ॥

### वा०-पावकादीनां छन्द्स्युपसङ्ख्यानम् ॥ ८ ॥

पावका आदि वैदिक शब्दों में इत्त्व न हो।

जैसे-हिरएयवर्णाः शुचयः पावकाः; यासु श्रलोमकाः ।

'छन्द' प्रहण इसिलये है कि — पाविका; अलोमिका, यहां लोक में निपेध न

### वा॰-आशिषि चोपसङ्ख्यानम् ॥ ६ ॥

स्राशीर्वाद स्रर्थ में वर्त्तमान शब्दों को इत्त्व न हो। जैसे—जीवतात्=जीवका; नन्दतात्=नन्दका; भवतात्=भवका इत्यादि॥ ६॥

### वा०-उत्तरपदलोपे चोपसङ्ख्यानम् ॥ १०॥

उत्तरपद का जहां लोप हो वहां इत्य न हो।

जैसे --देवदत्तिका=देवका; यज्ञदत्तिका=यञ्जका इत्यादि ॥ १० ॥

<sup>+</sup> यह वार्तिक इसलिये कहा है कि (उदीचा॰) इस अगले सूत्र से य पूर्व होने से विकल्प करके इस्व प्राप्त है, सो नित्य ही हो जावे ॥

<sup>×</sup> यहां दिच्या। शब्द से (दिचयापश्चात्पुरसस्यक्) इस स्त्र से 'त्यक्' प्रत्यय, श्रीर इह

<sup>\*</sup> यहां भी य पूर्व के होने से (उदीचा॰) इसी अगले सूत्र से विकल्प प्राप्त है, सो निषेध

# वा०-क्षिपकादीनां चोपसङ्ख्यानम् ॥ ११ ॥

चिपका आदि शब्दों में इत्त्व न हो।

जैसे—िच्चपकाः भ्रुवका इत्यादि ॥ ११ ॥

### वा०-तारका ज्योतिष्युपसङ्ख्यानम् ॥ १२॥

तारका शब्द जहां नत्तत्र का नाम हो, वहां उसको इकारादेश न हो। जैसे—तारका।

'ज्योति' ब्रह्ण इसिलिये हैं कि-तारिका दासी, यहां निषेध न हो ॥ १२॥

### वा०-वर्णका तान्तव उपसङ्ख्यानम् ॥ १३ ॥

तन्तुश्रों के समुदाय में वर्तमान वर्णका शब्द को इत्त्व न हो। जैसे-वर्णका भावरणभेट:।

'तान्तव' इसिलये कहा है कि --विश्विका भागुरी लोकायते, यहां न हो ॥ १३ ॥ वा॰-वर्त्तका शकुनौ प्राचामुपसङ्ख्यानम् ॥ १४ ॥

पत्ती का वाची जहां वर्त्तका शब्द हो, वहां उस को इकार ऋदेश न हो, प्राचीन आचार्यों के मत में।

जैसे-वर्त्तका शकुनि:। अन्यत्र वर्त्तिका।

'शकुनि' ग्रह्य इसलिये है कि — वर्त्तिका भागुरी लोकायतस्य, यहां न हो ॥ १४ ॥

### वा०-अष्टका पितृदैवत्ये ॥ १५॥

पित श्रीर देवताकर्म में वर्त्तमान श्रष्टका शब्द को इकार न हो। जैसे—श्रष्टका।

'पितृदैवत्य' इसलिये है कि—श्रष्टिका खारी, यहां हो जावे ॥ १४ ॥

### वा०-वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणामुपसङ्ख्यानम् ॥ १६ ॥

सृतका आदि शब्दों को विकल्प करके इकार हो।

जैसे—स्तिका, स्तका; पुत्रिका, पुत्रका; वृन्दारिका, वृन्द।रका ॥ १६ ॥

### उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ॥ १७ ॥ अ०७ । ३ । ४६ ॥

उत्तरदेशीय त्राचार्यों के मत में जो स्त्रीविषयक यकार श्रोर ककार से पूर्व श्राकार के स्थान में श्रकार उस को इत् श्रादेश हो।

जैसे-यकारपूर्व-इभ्यका, इभ्यिका; चत्रियका, चत्रियका। ककारपूर्व-चटकका, चटकिका; मूषकका, मूषकिका। 'श्रात्' प्रहण इसिलये हैं कि—साङ्काश्ये भवा साङ्काश्यिका, यहां न हो। 'यकपूर्व' ग्रहण इसिलिये हैं कि—ग्रश्विका, यहां विकल्प न हो॥ १७॥

### वा०-यकपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

धातु के अन्त के यकार ककार जिस से पूर्व हों, ऐसे अकार को इकार हो। सूत्र से जो विकल्प प्राप्त है, उस का निषेध कर के निस्य विधान किया है। जैसे—सुनियका; सुशयिका; सुपाकिका; अशोकिका इत्यादि॥ १८॥

# भस्नेषाजाज्ञाद्वास्वानञ्जूर्वाणामपि ॥ १६ ॥ अ०७ । ३ । ४७ ॥

स्त्रीविषय में जो भस्त्रा, एषा, जा, ज्ञा, द्वा, स्वा, ये शब्द नज्पूर्वक हों, तो भी आकार के अकार को इत् आदेश न हो, उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में।

जैसे—मस्रका, मस्रिका; एषका, एषिका; जका, जिका; इका, क्षिका; द्वके, द्विके; स्वका, स्विका। नञ्जूर्वक—अमस्रिका, अमस्रका; अजका, अजिका; अञ्चका, अश्विका; अस्वका, अस्विका इत्यदि \*॥ १६॥

### अभाषितपुंस्का ॥ २०॥ अ०७। ३ । ४०॥

जो अभाषितपुर्क्षिंग से परे, श्रात् के स्थान में श्रकार, उस को उत्तरदेशीय श्राचार्यों के मत में इत् श्रादेश न हो।

जैसे — खट्वका, खट्विका; ग्रखट्वका, ग्रखट्विका; परमखट्वका, परमखट्विका इत्यादि ॥ २०॥

00

#### आदाचार्थ्यागाम् + ॥ २१ ॥ अ० ७ । ३ । ४६ ॥

श्राचार्यों के मत में, स्त्री विषय में श्रभाषितपुंस्क प्रातिपदिकों से परे जो श्रात् के स्थान में श्रकार, उस को श्रात् श्रादेश हो।

जैसे - खट्वाका, अखट्वाका; परमखट्वाका इत्यादि ॥ २१ ॥

### ऋन्नेभ्यो जीप् ॥ २२ ॥ अ० ४ । १ । ५ ॥

स्वीविषय में ऋकारान्त श्रीर नकारान्त प्रातिपदिकों से ङीए प्रत्यय हो।

जैसे—ऋकारान्त—कर्जी; हर्जी; पक्ती इत्यादि । नकारान्त—हस्तिनी; मालिनी; दिखडिनी; स्त्रिणी इत्यादि ॥ २२ ॥

\* यहां एषा और द्वा इन दो नञ्जूर्वंक शब्दों को इकारादेश इसिक्विये नहीं होता, कि जो समास की प्रातिपदिक संज्ञा होके निमक्ति आती है, उसी से परे टाप् होता है, इस कार्या सुप्रहित आप् के न होने से प्राप्ति ही नहीं है ॥

+ यहां भाचारयं शब्द के बहुवचन निर्देश से पाणिनि भ्राचारयं का मत समक्तना चाहिये॥

### उगितश्च ॥ २३ ॥ अ० ४ । १ । ६ ॥

स्त्रीविषय में जो उगित् शब्द रूप है, उस से श्रौर तद्न्त प्रातिपदिकों से भी ङीप् प्रत्यय हो।

जैसे—भवतीः श्रतिभवतीः पचन्तीः यजन्ती इत्यादि ॥ २३॥

### वा०-धातोरुगितः प्रतिषेधः ॥ २४ ॥

उक् जिस का इत् गया हो, ऐसे किए आदि अविद्यमान प्रत्ययान्त धातु प्राति-पदिक से ङीए प्रत्यय न हो।

जैसे—उखास्रत्; पर्याध्वत् + ब्राह्मग्री ॥ २४ ॥

### वा०-ग्रञ्जतेश्चोपसङ्ख्यानम् ॥ २५ ॥

उगित् धातु से जो ङीप् का निषेध किया है, वहां श्रञ्च का उपसङ्ख्यान, श्रथात् उससे ङीप् का निषेध न हो।

जैसे—प्राची; प्रतीची; उदीची ॥ २४ ॥

#### वनो र च ॥ २६ ॥ अ० ४ । १ । ७ ॥

स्त्रीलिंग में वन्नन्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो, श्रौर उस वन्नन्त को रेफ श्रादेश हो जावे।

जैसे - भीवरी; पीवरी; शर्वरी इत्यादि ॥ २६ ॥

#### वा०-वनो न हशः ॥ २७ ॥

हश् प्रत्याहार से परे जो वन्, तदन्त से ङीप् न हो। जैसे—सहयुध्वा \* ब्राह्मणी॥ २७॥

#### पादोऽन्यतरस्याम् ॥ २८ ॥ अ० ४ । १ । ८ ॥

स्त्री अर्थ में पादशब्दान्त प्रातिपदिकों से विकल्प करके जीप् प्रत्यय हो। जैसे—द्विपदी, द्विपादः, त्रिपदी, त्रिपादः, चतुष्पदी, चतुष्पादः इत्यादि ॥ २८ ॥

### टाबृचि ॥ २६ ॥ अ० ९ । १ । ६ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान ऋग्वेदविषयक पादशब्दान्त प्रातिपदिकों से टाप् प्रत्यय हो।

+ यहां संसु श्रौर ध्वंसु धातु से किए प्रत्यय के परे सकार को पदान्त में दकार (वसुस्नं-सुध्वंस्व॰ ) इससे दकारावेश हो गया है ॥

\* यहां सह उपपद युघ् थातु से क्रनिप् प्रत्यय (सहे च) इस स्त्र से हुआ है, और इश्

जैसे — द्विपदा ऋक्; त्रिपदा ऋक्; चतुष्पदा ऋक्।
'ऋक्' प्रह्रण इसिलये हैं कि — द्विपदी वृषत्ती, यहां टाप् न हो ॥ २६॥

### न षट्स्वस्त्रादिभ्यः ॥ ३० ॥ अ० ४ । १ । १० ॥

षट्संइक स्रोर खस् स्रादि गण्पठित प्रातिपदिकों से स्नीप्रत्यय न हो।

जैसे—पञ्च ब्राह्मएयः, सप्त नव दश वा। स्त्रसाः, दुहिताः, ननान्दाः, याताः, माताः, तिस्रः, चतस्रः इत्यादि।

यहां ऋकारान्त शब्दों से ङीप्, श्रीर पश्च श्रादि षट्संज्ञकों के श्रन्त्य नकार का लोप होके श्रद्न्तों से टाप् प्रत्यय प्राप्त है, सो दोनों का निषेध समसना चाहिये ॥३०॥

#### मनः ॥ ३१ ॥ अ० ४ । १ । ११ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान मन्प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो।

जैसे—दामा, दामानी, दामानः; पामा, पामानी, पामानः; सीमा, सीमानी, सीमानः; अतिमहिमा; अतिमहिमानी, अतिमहिमानः इत्यादि ॥ ३१ ॥

#### अनो बहुत्रीहेः ॥ ३२ ॥ अ० ४ । १ । १२ ॥

स्त्रीलिंग में वर्चमान अन्नन्त बहुवीहि समास से ङीप् प्रत्यय न हो ।

जैसे—सुपर्वा, सुपर्वाणी, सुपर्वाणः, सुश्चम्मा, सुश्माणी, सुश्ममाणः इत्यादि ।

'बहुवीहि' प्रहण इसिलये है कि—अतिकान्ता राजानमितराज्ञी, यहां एकविभिक्ति-समास में निषेध न लगे ॥ ३२ ॥

#### डाबुमाभ्यामन्यतरस्याम् ॥ ३३ ॥ अ० ४ । १ । १३ ॥

जो मन्नन्त प्रातिपदिक और श्रन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकान्त बहुवीहिसमास हो, तो उनसे स्त्रीलिंग में विकल्प करके डाप् प्रत्यय होजाय।

जैसे—मन्नन्त—पामा, पामे, पामाः, सीमा, सीमा, सीमाः । पद्म मं—पामा, पामानौ, पामानः; सीमा, सीमानौ, सीमानः । श्रन्नन्त बहुवीहिसमास—बहुवो राजानोऽस्यां नगर्यो सा बहुराजा नगरी, बहुराजे नगर्यों, बहुराजा नगर्यः; बहुतद्याः, बहुतद्याः, बहुतद्याः। । पद्म मं—बहुराजा, बहुराजानो, बहुराजानाः; बहुतद्याः, बहुतद्याः। ।

यहां 'अन्तरस्याम्' प्रहण इसलिये हैं कि—(वनो र च) इस सूत्र के विषय में भी विकल्प हो जावे। जैसे—बहुधीवा, बहुधीवरी; बहुधीवा, बहुधीवरी इत्यादि॥ ३३॥

### श्रनुपसर्जनात् ॥ ३४ ॥ अ० ४ । १ । १४ ॥

यहां से आगे जिस २ प्रत्यय का विधान करेंगे, सो २ अनुपसर्जन अर्थात् खार्थ में, मुख्य प्रातिपदिकों ही से होंगे। इसिलये यह अधिकार सूत्र है ॥ ३४ ॥

# टिड्ढा ग्राञ्द्रयसञ्द्र हनञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्करपः ॥ ३५॥ अ० ४ । १ । १५॥

यहां श्रदन्त की श्रनुवृत्ति सर्वत्र चली श्राती है। परन्तु जहां संभव होता है वहां विशेषण किया जाता है।

ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और करप् ये प्रत्यय जिनके अन्त में हों उन, और अदन्त अनुपसर्जन टित् प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो !

जैसे—दित्—कुरुवरी; मद्रचरी । ढ—श्राग्नेयी; सौपर्गियी; वैनतेयी । श्रण्— श्रौपगवी; कुम्भकारी; नगरकारी । श्रञ्—श्रौत्सी; श्रौद्पानी । द्वयसच् —उरुद्वयसी; जानुद्वयसी । द्व्वच्—ऊरुद्व्नी; जानुद्व्नी । मात्रच् —ऊरुमाश्री; जानुमाश्री । तयप्— द्वितयी; चतुष्ट्यी; पंचतयी । ठक् - श्राचिकी; शालाकिकी । ठञ्— लाविणिकी । कञ्—यादशी; तादशी । कर्प्—इत्वरी; नश्वरी ।

यहां 'श्रजुपसर्जन' ग्रहण इसलिये हैं कि—बहुकुरुचरा; बहुमद्रचरा मथुरा इत्यादि खे डीप् न हो। यहां टित् श्रादि श्रदन्त शब्दों से टाप् प्राप्त हैं, इसलिये उसका श्रपवाद यह सूत्र समभना चाहिये॥ ३४॥

#### वा०-नञ्स्नञीकक्रुंस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम् ॥ ३६॥

नञ् स्रञ् ईकक् ख्युन् इन प्रत्ययान्त शब्दों, श्रौर तरुण तलुन शब्दों से स्नीविषय में ङीप् प्रत्यय द्वोवे । जैसे नञ् स्त्रैणीः स्रञ् पौंस्तीः ईकक् शक्तिकी, याष्टिकीः ख्युन् शादि चङ्करणी, सुभगङ्करणीः तरुणीः तलुनी दत्यादि ।

यहां भी तदंत प्रातिपद्कों से टाप् ही प्राप्त है, उसका अपवाद यह भी वार्तिक है ॥३६॥

#### यञश्च ॥ ३७ ॥ अ० ४ । १ । १६ ॥

स्त्रीतिङ्ग में वर्त्तमान यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—गार्गी; बात्सी इत्यादि। यहां गर्ग श्रीर वत्स शब्दों से यञ् प्रत्यय हुश्रा है॥ ३७॥

### वा०-अपत्यप्रहणं कर्त्तव्यम् ॥ ३८ ॥

जिस यञ् प्रत्यय का पूर्व सूत्र में प्रद्या है, वह श्रपत्याधिकार का यञ् समक्षता। क्योंकि द्वैप्याः सिकताः \* इत्यादि, यहां ङीप् न हो जावे ॥ ३८॥

<sup>#</sup> यहां शैविक यम् प्रत्यय (द्वीपादनुसमुद्रं यम्) इससे हुआ है, इसिविये छीप् न हुआ, उत्सर्ग टाप् हो गया॥

### प्राचां ब्फस्तद्धितः ॥ ३६ ॥ अ० ४ । १ । १७ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से प्रान्तीन त्र्याचार्यों के मत में तिस्त्रतसंज्ञक का प्रत्यय हो। जैसे—गार्ग्यायणी; वात्स्यायनी ‡। श्रोरों के मत में—गार्गी; वात्सी ॥ ३६॥

#### सर्वत्र लाहितादिकतन्तेभ्यः ॥ ४० ॥ अ० ४ । १ । १८ ॥

जो लोहित त्रादि कत पर्यन्त गर्गादिगण्पठित श्रकारान्त शब्द हैं, उन से तद्धित-संक्षक क्ष प्रत्यय होता है। जैसे—लोहितादि—लोहित्यायनी; शांशित्यायनी; वास्रव्या-यणी। कतन्त—कात्यायनी इत्यादि॥ ४०॥

### कौरव्यमाण्डूकाभ्याश्च ॥ ४१ ॥ अ० ४ । १ । १६ ॥

कौरव्य श्रोर मार्ग्ड्क प्रातिपदिकों से तद्धितसंक्षक ष्प प्रत्यय हो। जैसे—कौर-व्यायगी; मार्ग्ड्कायनी इत्यादि ॥ ४१ ॥

#### वा०-आसुरेहपसङ्ख्यानम् ॥ ४२ ॥

आसुरि शब्द से भी तिद्धतसंज्ञक ष्फ प्रत्यय हो । जैसे — आसुरायगी।

यहां आसुरि शब्द में अपत्यसंज्ञक इञ् प्रत्यय हुआ है। पूर्व (प्राचां ब्क०) इस सूत्र में 'तद्धित' प्रहण का प्रयोजन भी यही है कि आसुरि शब्द के इकार का लोप होजावे॥४२॥

#### वयसि प्रथमे ॥ ४३ ॥ अ० ४ । १ । २० ॥

जो प्रथम श्रवस्था विदित होती हो, तो श्रकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—कुमारी; किशोरी; कलभी; वर्करी।

यहां 'प्रथम अवस्था' प्रहण इसलिये है कि—स्थिवरा; वृद्धा इत्यादि से ङीप् न हो। 'अकारान्त' से इसलिये कहा है कि—शिशुः, यहां ङीप् प्रत्यय न हो॥ ४३॥

#### वा०-वयस्यचरम इति वक्तव्यम् ॥ ४४ ॥

सूत्र से प्रथमावस्था में जो ङीप् कहा है, वहां चरम अर्थात् वृद्धाऽवस्था को छोड़ के कहना चाहिये। जैसे—बधूटी; चिरएटी। ये प्राप्तयोवन द्वितीय अवस्था के नाम हैं। प्रथमाऽवस्था के कहने से यहां प्राप्ति नहीं थी॥ ४४॥

<sup>‡</sup> यहां ष्फ प्रत्यय के चित् होने से तदन्त से कीप् प्रत्यय हो जाता है ॥

### द्विगोः ॥ ४५ ॥ अ० ४ । १ । २१ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान द्विगुसंज्ञक श्रद्दन्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्ययः हो। जैसे-पश्चमूली; दशमूली; श्रष्टाध्यायी इत्यादि।

यहां 'ऋत्' ग्रहण इसिलये है कि —पञ्चबिलः, यहां ङीप् न हो ॥ ४४ ॥

### अपरिमाणविस्ताचितकम्बस्येभ्यो न तिद्धति छिक ॥ ४६ ॥

अ० ४। १। २२॥

जहां तद्धित का लुक् हुआ हो, वहां स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अपरिमाणान्त विस्तान्त आचितान्त और कम्बल्यान्त द्विगु प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो। जैसे—पञ्चिमरश्चै: क्रीता पञ्चाक्षा, दशाश्वा, द्विवर्षा, त्रिवर्षा, द्विशता, त्रिशता, द्विविस्ता, त्रिविस्ता; द्व्याचिता, ज्याचिता, द्विकम्बल्या, त्रिकम्बल्या।

यहां 'श्रपरिमाण' ग्रहण इसलिये है कि — द्याढकी, ज्याढकी, यहां निषेध न हो। 'तद्धितलुक्' इसलिये है कि — पञ्चाश्वी, यहां भी होजावे॥ ४६॥

#### काण्डान्तारक्षेत्रे ॥ ४७ ॥ अ० ४ । १ । २३ ॥

तद्धित का लुक् हुआ हो, तो च्रेत्रवाची स्त्रीलंग में वर्त्तमान काएड शब्दान्त द्विगु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न हो। जैसे द्वे काएडे प्रमाणमस्याः सा द्विकाएडा।

'त्रेत्र' इसिलये कहा है कि—द्विकाएडी रज्जु:, यहां निषेध न हो। 'काएड' शब्द के अपरिमाणवाची होने से पूर्वसूत्र से ही निषेध हो जाता, फिर त्रेत्रप्रहण नियमार्थ है॥ ४७॥

### पुरुषात् प्रमागोऽन्यतरस्याम् ॥ ४८ ॥ अ० ४ । १ । २४ ॥

जो तिक्कित का लुक् हुआ हो, तो प्रमाण अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पुरुषान्त द्विगु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे—द्वौ पुरुषो प्रमाणमस्याः परिखायाः सा द्विपुरुषा, द्विपुरुषी, त्रिपुरुषा, त्रिपुरुषी \*।

यहां 'प्रमाण' ग्रहण इसिलये है कि — द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रीता द्विपुरुषा; त्रिपुरुषा, यहां विकल्प करके ङीप न हो। ग्रीर 'तिद्धतलुक्' इसिलये है कि — द्विपुरुषी; त्रिपुरुषी, यहां समाहार में निषेध न होवे॥ ४८॥

\* यहां श्रपरिमाणान्त पुरुष शब्द से नित्य ही निषेध प्राप्त है, इसिलये यह श्रप्राप्त विमाषा समम्मनी चाहिये॥

### बहुव्रीहेरू धसो डीष्।। ४६॥ अ० ४। १। २५॥

स्त्रीतिङ्ग में वर्त्तमान ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—घट इव ऊधो यस्याः सा घटोध्री; कुएडोध्री †।

यहां 'ब्रहुवीहि' ब्रह्ण इसलिये है कि-प्राप्ता ऊधः प्राप्तोधाः, यहां न हुआ ॥ ४६॥

### सङ्ख्याऽव्ययादेर्ङीप् ॥ ५०॥ अ०४।१। २६॥

संख्या और अव्यय जिस के आदि में हों, ऐसा जो स्नीलिङ्ग में वर्तमान ऊधस् शब्दान्त बहुवीहि प्रातिपदिक है, उस से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—संख्या—द्र्यूधी; इयूधी। अव्यय—अत्यूधी; निरूधी।

यहां 'म्रादि' महगा से द्विविधोशी; त्रिविधोशी इत्यादि से भी ङीप होजाता है।।४०॥

#### दामहायनान्ताच ॥ ५१॥ अ०४।१।२७॥

संख्या जिस के आदि में, दामन तथा द्वायन अन्त में हों, ऐसे स्नीलिङ्ग में वर्त्तमान बहुवीहि प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होवे। जैसे—द्वेदाम्नी यस्याः सा द्विदाम्नी बंड्वाः, त्रिदाम्नी। द्विहायनी, त्रिहायणी, चतुर्हायणी ‡ इत्यादि।

(कचिदेकदेशो०) इस परिभाषा के प्रमाण से यहां अव्यय की अनुवृत्ति नहीं आती ॥ ४१ ॥

#### अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ॥ ५२ ॥ अ० ४ । १ । २८ ॥

जो श्रमन्त उपधालोपी बहुवीहि प्रातिपदिक है, उससे स्त्रीलिक में विकल्प करके कीए प्रत्यय हो। जैसे —बहुराजा, बहुराक्षी, बहुराजे, बहुतक्ता, बहुतक्ती, बहुतक्ती, बहुतक्ती, बहुतक्ती,

'अन्नन्त' ग्रहण इसिनये है कि—बहुमत्स्या, यहां कीप् न हो। ग्रौर 'उपश्वानोपी' इसिनये है कि—सुपर्वा, सुपर्वाणो, सुपर्वाणः इत्यादि में न हो॥ ४२॥

† ऊषस् गाय श्रादि के ऐन को कहते हैं, कि जो दृध का स्थान है। इस ऊषस् शब्द से जब समासान्त 'नक्' प्रत्यय होने से श्रन्नन्त हो जाता है, तब (श्रनो बहु॰) इस पूर्विजिखित सूत्र से डाप् और निषेध प्राप्त होता है, उसका यह श्रपवाद है॥

‡ यहां हायन शब्द श्रवस्था अर्थ में समक्तना चाहिये, सो चेतन के साथ सम्बन्ध रखती है, इसीबिये द्विहायना शाला हत्यादि में लीप नहीं होता ॥

+ यहां अञ्चन्त बहुवीहि प्रातिपदिकों से पच में ( डाबुभाभ्या० ) इस उक्त सूत्र से बाप् प्रत्यय विकल्प करके हो जाता है। इन दो विकल्पों के होने से तीन प्रयोग हो जाते हैं॥

### नित्यं संज्ञाळन्द्सोः ॥ ५३ ॥ अ० ४ । १ । २६ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तामान अन्तन्त उपधालोपी बहुवीहि प्रातिपदिक से संज्ञा श्रोर वेद-विषय में ङीप् प्रत्यय नित्य ही होते। जैसे—संज्ञा में—सुराज्ञी; श्रतिराज्ञी नाम ग्रामः। छन्द में —गो: पञ्चदास्रो; द्विदास्रो; एकदास्री; एकमूर्श्री; समानमूर्श्री।

पूर्वसूत्र में जो विकल्प है, उसके नित्यविधान के लिये यह अपवाद सूत्र है। जहां संज्ञा और वैदिकप्रयोग न होवें, वहां ङीप् न होगा। जैसे —सुराजा इत्यादि॥ ४२॥

# केवलमामकभागधेयवावापरसमानार्थकृतसुमङ्गलभेषजाच ॥५४॥

अ० ४।१।३०॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान केवल मामक भागधेय पाप अपर समान आर्यकृत सुमङ्गल और भेषज शब्द हों, तो इन प्रातिपदिकों से संज्ञा और वेद्विषय में जीप प्रत्यय हो। जैसे—केवली; मामकी; मित्रावहणयोभीगधेयी; पापी; उताऽपरीभ्यो मघवा विजिग्ये; समानी; आर्यकृती; सुमङ्गली; भेषजी।

जहां संज्ञा और वेदविषय न हों, वहां टाप् होकर केवला इत्यादि प्रयोग होंगे ॥४४॥

#### रात्रेश्चाजसी ॥ ५५ ॥ अ० ४ । १ । ३१ ॥

जस् विभक्ति से अन्यत्र स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान रात्रि शब्द से संज्ञा और वेद्विषय में ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—या रात्री सृद्याः रात्रीभिः।

'जस् में निषेध' इसलिये हैं कि — यास्ता रात्रयः, यहां ङीप् न होवे ॥ ४४ ॥

### वा०-अजसादिष्विति वक्तव्यम् ॥ ५६॥

केवल जस् के परे जो ङीप् का निषेध किया है, सो जस् आदि के परे निषेध करना चाहिये। जैसे — रात्रिं सहोषित्वा इत्यादि से भी ङीप् न होवे॥ ४६॥

### अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ॥ ५७ ॥ अ० ४ । १ । ३२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान वैदिक प्रयोगों में श्रन्तर्वत् श्रौर पतिवत् शब्द से ङीप् श्रौर चुक् का श्रागम भी हो ॥ ४७॥

### का०-अन्तर्वरपतिवतोस्तु मतुब्दत्वे निपातनात्। गर्भिग्यां जीवरपत्यां च वा छन्द्सि तु नुग्भवेत्।।५८॥

अन्तर्वत् शब्द में मतुप् और पितवत् शब्द में मतुप् के मकार को वकारादेश निपातन किया है। तथा अन्तर्वत् शब्द से गिर्मणी अर्थ में, श्रीर पितवत् शब्द से जिस का पित जीता हो, वहां वैदिक प्रयोग विषय में विकल्प करके जुक् श्रीर ङीप् नित्य ही होवे। जैसे—सान्तर्वती देवानुपैत्, सान्तर्वती देवानुपैत्, पितवत्नी तक्णवत्सा, पितवती तक्णवत्सा ॥ ४८॥

### पत्युनों यज्ञसंयोगे ॥ ५६ ॥ अ० ४ । १ । ३३ ॥

जो यह का संयोग हो, तो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पति शब्द को नकारादेश स्त्रीर ङीप् प्रत्यय हो । जैसे—यजमानस्य पत्नीः, पित वाचं यच्छ ।

यहां 'यझसंयोग' इसलिये कहा है कि-प्रामस्य पतिरियं ब्राह्मणी, यहां न हो ॥४६॥

### विभाषा सपूर्वस्य 🛞 ॥ ६० ॥ अ० ४ । १ । ३४ ॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान् पूर्वपद सिंहत पित शब्द हो, तो उस को नकारादेश विकल्प करके हो। ङीप् तो नकारान्त के होने से सिद्ध ही है। जैसे—वृद्धपितः, वृद्धपत्ती; स्यूलपितः, स्यूलपतः, जीवपत्ती।

यहां 'सपूर्व' ग्रहण इसिक्विये है कि — पितिरियं ब्राह्मणी ग्रामस्य, यहां ङीप् न हुन्रा ॥ ६० ॥

#### नित्यं सपत्न्यादिषु ॥ ६१ ॥ अ० ४ । १ । ३५ ॥

स्रीलिङ्ग में वर्त्तमान सपत्नी आदि प्रातिपदिकों में पति शब्द को नकारादेश नित्य ही निपातन किया है। जैसे—समानः पतिरस्याः सा सपत्नीः, एकपत्नीः, वीरपत्नी इत्यादि ॥ ६१ ॥

### पूतकतोरीच् ॥ ६२ ॥ अ० ४ । १ । ३६ ॥

स्त्रीतिङ्ग में वर्त्तमान पूतकतु शब्द से ङीप् ग्रौर उस को ऐकारादेश भी होवे। जैसे—पूतकतो: स्त्री पूतकतायी।

यहाँ से लेके तीन सुत्रों में जो प्रत्ययविधान है, सो पुंयोग श्रर्थात् उस स्त्री के साथ पुरुषसंबन्ध की विवज्ञा हो तो होवे। जैसे—यया हि पूता: क्रतव: पूतक्रतु: सा भवति, यहां पुंयोग की विवज्ञा नहीं, इस से ङीप्न हुआ ॥ ६२ ॥

<sup>\*</sup> यह अग्रासविभाषा इसिकाये समकती चाहिये कि यज्ञसंयोग की अनुवृत्ति इस सूत्र में नहीं श्राती, अन्य किसी से नुक् पाता नहीं॥

# वृषाकप्यमिकुसितकुसीद्वामुद्वात्तः ॥ ६३॥ अ० ४ । १ । ३७॥

स्त्रीलिङ श्रौर पुरुष के योग में वृषाकिष श्रिश्न कुसित श्रौर कुसीद शब्दों को ऐकारादेश, श्रौर इन से ङीप् प्रत्यय हो, श्रौर वह ङीप् प्रत्यय उदात्त भी होते। जैसे—वृषाकिप: स्त्री वृषाकिपायी; श्रश्ने: स्त्री श्रिश्नायी; कुसितस्य स्त्री कुसीदायी।

यहां 'पुंयोग' इसिलये है कि - वृषाकिपः स्त्री इत्यादि में ङीप् न हो ॥ ६३॥

### मनोरों वा अ। ६४ ॥ अ० ४। १।३८ ॥

पुंयोग में श्रीर स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मनु प्रातिपदिक से विकल्प करके ङीप् प्रत्यय होवे, श्रीर मनु शब्द को श्रीकार, श्रीर पत्त में ऐकारादेश हो, श्रीर वह उदात्त भी हो जावे। जैसे—मनो: स्त्री मनायी, मनावी, मनु:, ये तीन प्रयोग होते हैं॥ ६४॥

### वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ॥ ६५ ॥ अ० ४ । १ । ३६ ॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान वर्णवाची श्रमुदात्त तकारोपध प्रातिपदिक हैं, उन से विकल्प करके ङीप्, श्रोर उन के तकार को नकारादेश भी होवे। जैसे—एता, एनी; श्रयेता, श्रयेनी; हरिता, हरिणी।

यहां 'वर्णवाची से' इसिलये कहा है कि—प्रहता, यहां ङीप् श्रोर नकार न होवे। 'श्रवुदात्त' इसिलये है कि—श्रोता, यहां न हो। 'तोपध' इसिलये है कि—श्रान्य प्राति-पिदक से ङीप् न हो। श्रदन्त की श्रवुवृत्ति इसिलये श्राती है कि—श्रितिब्राह्मणी, यहां न हो॥ ६४॥

#### वा०-पिशङ्गादुपसङ्ख्यानम् ॥ ६६ ॥

पिशङ्ग शब्द तोपध नहीं है, इस कारण ङीप् नहीं पाता था, इसिलये इसका उप-सङ्ख्यान है। पिशङ्ग शब्द से भी स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होवे। जैसे—पिशङ्गी ॥ ६६॥

#### वा०-असितपि्छतयोः प्रतिषेधः ॥ ६७ ॥

असित श्रोर पितत प्रातिपिद्कों से ङीप् श्रोर इनके तकार को नकारादेश न होते। सूत्र से पाया था, उस का निषेधकप यह अपवाद है। जैसे—असिता; पितता ॥ ६७॥

\* यह अशासविभाषा इस प्रकार है कि जो कार्य इस सूत्र से होते हैं, वे किसी से प्राप्त नहीं ॥

### वा०-छन्दिस क्रमेके ॥ ६८ ॥

वेद में श्रसित और पितत शब्द के तकार के स्थान में क्रम् आदेश और ङीप् प्रत्यय हो, ऐसी इच्छा कोई आचार्य करते हैं। जैसे—श्रसिकी; पितकी ॥ ६=॥

### अन्यतो ङीष् ॥ ६६ ॥ अ० ४ । १ । ४० ॥

तोपध से भिन्न श्रद्धात्त वर्णवाची श्रद्दत प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—सारङ्गी; कल्माषी; शवली इत्यादि।

यहां 'अनुदात्त' महण इसिलये है कि-कृष्णाः, किपला इत्यादि से न हो ॥ ६६ ॥

### षिद्गौरादिभ्यश्च ॥ ७० ॥ अ० ४ । १ । ४१ ॥

स्त्रीतिक्त में वर्त्तमान अकागन्त षित् श्रीर गौर श्रादि प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—नर्तकी; खनकी; रजकी। गौरी; मत्सी; श्रङ्की इत्यादि॥ ७०॥

### जानपद्कुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्य-मत्राऽऽवपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णाताच्छाद्नाऽयोधिकारमेथु-नेच्छाकेशवेशेषु ॥ ७१ ॥ अ० ४ । १ । ४२ ॥

स्त्रीतिक में वर्त्तमान अकारान्त जानपद आदि ११ ग्यारह शब्दों से वृत्ति आदि ग्यारह (११) अर्थों में यथासंख्य करके डीष् प्रत्यय होवे।

जैसे—जानपदी वृत्तिः, जानपदी शितः (यहां ङीष् होने से खर में भेद् हो जाता है)।
कुराडी (अमत्रपात्रम्) अन्यत्र कुराडा। गोणी (आवपन अर्थात् माप हो तो) अन्यत्र
गोणा। स्थली (अकृत्रिमा भूमिः) अन्यत्र स्थला। भाजी (आणा=पकाने के योग्य शाक)
अन्यत्र भाजा। नागी (स्थोल्यम्=अति मोटी हो तो) अन्यत्र नागा। काली (जो वर्ण हो) अन्यत्र काला। नीली (जो वस्त्र हो) नहीं तो नीला शाटी। कुशी (जो लोहे का कुछ विकार हो) नहीं तो कुशा। कामुकी (जो मैथुन की इच्छा रखती हो) नहीं तो कामुका। कबरी (जो बालों का समहालना हो) नहीं तो कबरा॥ ७१॥

### वा०-नीलादोषधी ॥ ७२ ॥

नील शब्द से श्रोषधि श्रर्थ में भी ङीष् प्रत्यय होने। जैसे—नीली श्रोपधि:॥७२॥ वा०-प्राणिनि च ॥ ७३॥

#### प्राणी अर्थ में भी नील शब्द से ङीप् प्रत्यय होवे। जैसे—नीली गौ:; नीली बडवा; नीली गवयी इत्यादि॥ ७३॥

#### वा०-वा संज्ञायाम् ॥ ७४ ॥

संज्ञा अर्थ में विकल्प करके ङीष् प्रत्यय हो । जैसे -- नीली, नीला इत्यादि ॥ ७४ ॥

#### शोणात्त्राचाम् ॥ ७५ ॥ अ० ४ । १ । ४३ ॥

प्राचीन श्राचार्यों के मत में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान शोख प्रातिपदिक से इनेष् प्रस्थय होवे, श्रन्य श्राचार्यों के मत में नहीं। जैसे—शोखी, शोखा वडवा ॥ ७४ ॥

### वोतो ग्रणवचनात् ॥ ७६ ॥ अ० ४ । १ । ४४ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान गुण्वचन उकारान्त प्रातिपदिकों से डीव् प्रत्यय विकल्प करके हो जावे। जैसे—पद्वी, पटुः; मृद्दी, मृदुः इत्यादि।

'उत्' ग्रहण इसलिये है कि—शुचिः, यहां ङीष् न हो। 'गुणवचन' ग्रहण इसलिये है कि—श्राखुः, यहां न हो॥ ७६॥

### वा०-गुणवचनान्डीबाद्युदात्तार्थम् ॥ ७७॥

गुण्यचन प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय कहना चाहिये, क्योंकि ङीष्के होने से अन्तोदात्त खर प्राप्त है, सो आद्युदात्त होने। जैसे—वस्ती; तन्त्री इत्यादि।

यह विधान सर्वत्र नहीं, किन्तु जहां श्राद्युदात्त प्रयोग श्रावे वहीं ॥ ७७ ॥

#### वा०-खरुसंयोगोपधानां प्रतिषेधः ॥ ७८ ॥

खरु त्रोर संयोग जिस की उपधा में हो, ऐसे गुणुवचन उकारान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीं किंग में डीप् प्रत्यय न हो। जैसे—खरुरियं ब्राह्मणी; पागडुरियं ब्राह्मणी इत्यादि ॥७०॥

#### बह्वादिभ्यश्च ॥ ७६ ॥ अ० ४ । १ । ४५ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान बहु आदि प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय विकल्प करके हो। जैसे—बही, बहु:, पद्धती, पद्धतिः, श्रङ्कती, श्रङ्कतिः इत्यादि ॥ ७६ ॥

#### नित्यं छन्द्सि ॥ ८० ॥ अ० ४ । १ । ४६ ॥

वेद में बहु आदि शब्दों से ङीष् प्रत्यय नित्य ही हो। जैसे—बह्कीषु हित्वा प्रियंबन्। बह्की नाम ओषधी भवति ॥ ८०॥

3

### भुवश्च ॥ ८१ ॥ अ० ४ । १ । ४७ ॥

वेद में भू प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—विभ्वी चः प्रभ्वी चः सुभ्वी च इत्यादि ॥ ८१ ॥

### पुंयोगादाख्यायाम् ॥ ८२ ॥ अ० ४ । १ । ४८ ॥

पुंसा योगः पुंयोगः । स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पुरुष के योग के कहने में प्रातिपदिकों से कीय् प्रत्यय हो । जैसे—गणुकस्य स्त्री गणुकीः, महामात्रीः, प्रष्ठीः, प्रचरी इत्यादि ।

यहां 'पुंचोग' प्रहण इसितये है कि-देवदत्ता, यहां ङीष् न हो ॥ ८२ ॥

### बा०-गोपालिकादीनां प्रतिषेधः ॥ ८३ ॥

पुंयोग के कथन में गोपालिका आदि शब्दों से ङीष् प्रत्यय न हो । जैसे —गोपाल-कस्य स्री गोपालिका; पशुपालिका इत्यादि ॥ ८३ ॥

### वा०-सूर्यादेवतायां चाब वक्तव्यः ॥ ८४ ॥

सूर्य शब्द से देवता अर्थ में चाप् प्रत्यय हो । जैसे—सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या । यहां 'देवता' प्रहण इसलिये हैं कि—सूरी, यहां न हो ॥ ८४ ॥

### इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडिहिमारग्ययवयवनमातुलाऽऽचाय्योणामा-नुक् ॥ ८४ ॥ अ० ४ । १ । ४६ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान इन्द्रादि बारह (१२) प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय, श्रौर इन्द्र श्रादि शब्दों को श्रानुक् का श्रागम भो हो। 'जैसे—इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राखी; वर्ष्णानी; भवानी; शर्वाणी; रुद्राखी; मृडानी + ॥ ८४॥

#### वा०-हिमारएययोर्महत्त्वे ॥ ८६ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान द्विम श्रोर श्ररएय प्रातिपदिकों से महत्त्व श्रर्थ में ङीष् प्रत्यय श्रोर श्रानुक् का श्रागम हो। जैसे—महद्धिमं द्विमानी; महद्रएयमरएयानी ॥ ८६॥

+ यहां इन्द्रादि शब्दों से पुंचोग में कीच् प्रत्यय तो पूर्व सूत्र से प्राप्त ही है, केवल आतुक् का आगम होने के लिये यह सूत्र है। सो सूत्र से सामान्य अर्थ में कार्य्य विधान है, इसिक्विये हिम आदि इ: शब्दों से विशेष अर्थों में वार्तिकों से विधान किया है॥

#### वा०-यवादोषे ॥ ८७॥

स्त्रीतिङ्ग में वर्तमान यव प्रातिपदिक से दुष्टता श्रर्थ में ङीष् प्रत्यय श्रीर श्रामुक् का आगम हो। जैसे—दुष्टो यवो यवानी ॥ ८७॥

### वा०-यवनाह्मिप्याम् ॥ ८८ ॥

स्त्री विक्त में वर्त्तमान यवन प्रातिपदिक से लिपि अर्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम होवे। जैसे—यवनानी लिपि: ॥ দদ ॥

#### वा०-उपाध्यायमातुलाभ्यां वा 😻 🛭 💵 💵

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान उपाध्याय श्रीर मातुल प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय श्रीर श्रानुक् का श्रागम विकल्प करके होवे। जैसे—उपाध्यायानी, उपाध्यायी; मातुलानी, मातुली॥८६॥

#### वा०-आचार्याद्णत्वं च ॥ ६०॥

यहां पूर्व वार्त्तिक से विकल्प की श्रमुवृत्ति चली श्राती है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान श्राचार्य्य प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय श्रोर श्रामुक् का श्रागम भी विकल्प करके होते, श्रोर श्रामुक् के नकार को ग्रत्य प्राप्त है सो न हो। जैसे—श्राचार्य्यानी, श्राचार्य्या। यहां पत्त में टाप् प्रत्यय हो जाता है॥ ६०॥

#### वा०-ग्रर्यक्षत्रियाभ्यां वा : ॥ ६१ ॥

यहां फिर विकल्प ग्रहण इसलिये है कि गुत्व की अनुवृत्ति न आवे।

स्त्रीलिङ्ग में वर्रामान अर्थ्य और चित्रिय प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम विकल्प करके होते। जैसे — अर्थ्यागी, अर्थ्या; चित्रयागी, चित्रया॥ ११॥

#### वा०-मुद्रबाच्छन्दिस लिच ॥ ६२ ॥

स्त्रीतिङ्ग में वर्जमान मुद्रत प्रातिपदिक से वैदिक प्रयोग विषय में ङीष् प्रत्यय स्त्रीर स्त्रानुक् का स्नागम हो, स्रोर ङीष् प्रत्यय तित् भी हो जावे। जैसे—रथीरभूनमुद्गगतानी गविष्ठी ॥ ६२ ॥

### कीतात् करगापूर्वात् ॥ ६३ ॥ अ० ४ । १ । ५० ॥

स्त्रीतिङ्ग में वर्त्तमान करणकारकवाची पूर्वपदयुक्त कीत शब्दान्त प्रातिपदिकों से डीब् प्रत्यय हो। जैसे —वस्त्रेण कीता सा वस्त्रकीती; वसनकीती; रथकीती इत्यादि।

इस वार्तिक में उपाध्याय शब्द से अपूर्व विधान और मातुल शब्द तो सूत्र में पड़ा ही है ॥

‡ यहां से लेके दोनों वार्तिक अपूर्व विधायक इसलिये हैं कि अर्थादि शब्द सूत्र में नहीं पड़े हैं ॥

यहां 'करण'कारक का प्रहण इसलिये हैं कि-देवदत्तकीता, इत्यादि से ङीष् न हो॥ ६३॥

# काद्र्पाख्यायाम् ॥ ६४॥ अ०४। १। ५१॥

स्रीतिङ्ग में वर्ष मान अल्पाच्या अर्थ में करणकारक जिस के पूर्व हो ऐसे कान्त प्रातिपदिक से जीव् प्रत्यय हो। जैसे—अभ्रवितिसी चौ:, स्पवितिसी स्थाती इत्यादि।

यहां 'ग्रल्पाक्या' ग्रह्ण इसिवये है कि — चन्दनाऽनुविप्ता ब्राह्मणी, इत्यादि से ङीष् न होवे॥ १४॥

### बहुवीहेश्चान्तोदात्तात्।। ६५ ॥ अ० ४ । १ । ४२ ॥

स्रीलिक में वर्त्त मान बहुवीहि समास में अन्तोदात्त कान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे —शंखो भिन्नो यया सा शंखभिन्नी; ऊरुभिन्नी; गलोत्कृत्ती; केशलूनी इत्यादि।

यहां 'बहुव्रोहि' ग्रहण इसिलये है कि — पद्भ्यां पतिता पादपतिता, यहां ङीष् प्रत्यय न होते ॥ ६४ ॥

### वां०-अन्तोदात्ताजातप्रतिषेधः॥ ६६॥

अन्तोदात्त बहुवीहि प्रातिपदिकों से जो ङीष कहा है, सो जात शब्द जिस के अन्त में उस प्रातिपदिक से न हो। यह वार्त्तिक सुत्र का निषेधरूप अपवाद है। जैसे—दन्तजाता; स्तनजाता इत्यादि॥ ६६॥

### वा०-पाणिग्रहीत्यादीनामर्थविशेषे ॥ ६७ ॥

विशेष अर्थात् जहां वेदोक्तरीति से पाणिप्रहण अर्थात् विवाह किया जावे, वहां पाणिगृहीती आदि शब्दों में ङीष् प्रत्यय होवे । जैसे—पाणिगृहीती भार्य्या ।

**ख्रोर जहां किसी प्रकार पाणिप्रहण कर लेवे वहां पाणिगृहीता टावन्त ही प्रयोग होवे ॥ ६८॥** 

### वा०-अबहुनञ्सुकालसुखादिपूर्वादिति वक्तव्यम् ॥ ६८ ॥

सूत्र ६५ में जो अन्तोदात्त बहुवीहि प्रातिपदिक से ङीष् कहा है, सो यदि वहु नञ् सुकाल और सुखादि शब्द पूर्व हों तो न हो। जैसे—बहु—बहुकृता। नञ्—अकृता। सु—सुकृता। काल-मासजाता; संवत्सरजाता। सुखादि—सुखजाता; दु:खजाता इत्यादि॥६८॥

### अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा ॥ ६६ ॥ अ० ४ । १ । ५३ ॥

स्नितिङ्गे में वर्ष मान खांग पूर्वपद से भिन्न अन्तोदात्त कान्त बहुवीहि समासयुक्त प्रातिपितिक से विकल्प करके जीव् प्रत्यय होवे । जैसे—शार्ङ्गजग्धी, शार्ङ्गजग्धा, पत्नाग्डु-अन्ति, प्रकाग्डुभन्निता, सुरापीती, सुरापीता ।

यहां 'श्रस्तांग' पूर्वपद' इसिंतये हैं कि—दन्तभिन्नी, यहां विकल्प न हो। श्रीर 'श्रन्तोदात्त' इसिंतये हैं कि—वस्रब्रुन्ना, यहां ङीष् न हो॥ १६॥

### वा०-बहुलं संज्ञाछन्दसोः॥ १००॥

संज्ञा श्रीर वैदिकप्रयोग विषय में वर्त्त मान क्तप्रत्ययान्त प्रातिपदिक से बहुल करके कीष् प्रत्यय होवे। जैसे — प्रवृद्धविल्नी, प्रवृद्धविल्ना। प्रवृद्धा चासी विल्ना चेति नायं बहुवीहि:। यहां बहुवीहि समास नहीं किन्तु कर्मधारय है। १००॥

### स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ॥ १०१ ॥ अ०४ । १ । ५४ ॥

यहां बहुवीहि अन्तोदात्त कान्त ये तीन पद तो छूट गये, परन्तु एक विकल्प की अनुवृत्ति आती है।

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तभान जिस के स्वांगवाची उपसर्जन संयोगोपध से भिन्न प्रातिपदिक श्रान्त में हो उस से जीव प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे—चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा; श्रातिकान्ता केशानितकेशी, श्रातिकेशा माला।

यहां 'खांग' ग्रहण इसिलये है कि - बहुयवा \* । 'उपसर्जन' इसिलये है कि - ग्रिशिखा । ग्रीर 'ग्रसंयोगोपध' ग्रहण इसिलये है कि - सुगुरुका; सुपार्का, यहां ङीष् न हुआ ॥ १०१॥

#### वां०-श्रङ्गगात्रकग्ठेभ्य इति वक्तव्यम् ॥ १०२ ॥

पूर्व सूत्र से संयोगोपध के निषेध से अङ्ग आदि का निषेध प्राप्त है, उस का अपवादविधायक यह वार्त्तिक है।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जो स्वांगवाची उपसर्जन ग्रंग गात्र ग्रोर कर्ठ प्रातिपदिक हैं, उनसे स्त्रीव प्रत्यय हो। जैसे—मृद्रंगी, मृद्रंगा; सुगात्री, सुगात्रा; स्निग्धकर्ठी, स्निग्ध-कर्ठा इत्यादि॥ १०२॥

### नासिकोदरोष्ठजङ्घादन्तकर्ग्रश्चन्च ।।१०३॥ अ० ४।१।५५॥

विकल्प की अनुवृत्ति यहां भी आती है। स्त्रीलिंग में वर्त्त मान बहुवीहि समास में जिस के अन्त में स्वांगसंद्यक उपसर्जन अर्थात् अपधानार्थवाची नासिका, उदर, ओष्ठ, जंघा, दन्त, कर्ण वा श्रङ्ग शब्द हो, उस प्राठिपदिक से ङीव् प्रत्यय विकल्प करके होते।

\* यहां स्वांग उस को कहते हैं कि जिस समासान्त समुदाय प्रातिपदिक से प्रत्ययविधान हो उस के वाच्य प्रर्थ का जो शरीरावयव होवे। जैसे—विम्बोधी, विम्ब के समान जिस के श्रोष्ठ हों। यहां श्रोष्ठ स्वांग है, इसका विशेष व्याख्यान महामाष्य में है॥

‡ इस सूत्र में नासिका और उदर दो शब्दों से तो बहुच् के होने से अगते सूत्र से छीप् का निषेध प्राप्त और ओष्ठ आदि शब्दों से संयोगपध के होने से छीप् का निषेध पाता है, उन दोनों का विधायक यह अपवाद सूत्र है ॥ जैसे—तुंगनासिकी, तुंगनासिका; कृशोद्री, कृशोद्रा; बिम्बोष्ठी, बिम्बोष्ठा; दीर्घ-जंघी, दीर्घजंघा; समदन्ती, समदन्ता; चारुकर्णी, चारुकर्णी; तीद्याश्टङ्गी, तीद्याश्टङ्गी इत्यादि ॥ १०३ ॥

#### वा०-पुच्छाच्च ॥ १०४ ॥

पुच्छ शब्द भी संयोगोपध खांगवाची है, इस कारण निषेध का बाधक यह बार्त्तिक है। पुच्छान्त खांगवाची प्रातिपदिक से विकल्प करके छीष प्रत्यय होवे। जैसे—कल्याणपुच्छी, कल्याणपुच्छा॥ १०४॥

### वा०-कबरमणिविषश्रेभ्यो नित्यम् ॥ १०५ ॥

कबर मिण विष श्रीर शर शब्दों से परे जो खांगवाची पुच्छ प्रातिपदिक उस से स्त्रीलिक में नित्य ही डीष प्रत्यय हो। जैसे — कबरपुच्छी; मिण्पुच्छी; विषपुच्छी; शरपुच्छी इत्यादि॥ १०४॥

#### म०-उपमानात्पचाच्च पुच्छाच्च ॥ १०६॥

उपमानवाची शन्दों से परे जो खांगवाची पत्त और पुच्छ प्रातिपदिक उन से नित्य ही क्षीय प्रत्यय हो। जैसे — उल्कपत्ती सेना; उल्कपुच्छी शाला इत्यादि॥ १०६॥

#### न क्रोडादिबह्रचः ॥ १०७ ॥ अ० ४ । १ । ५६ ॥

कोड श्रादि प्रातिपदिक श्रोर बहुत श्रच् जिस में हों, ऐसे प्रातिपदिक से ङीष् प्रायय न होवे। जैसे—कल्याणकोडाः, कल्याणखुराः, कल्याणवालाः, कल्याणशुफा। बहुच् पृथुज्ञचनाः, महाललाटा इत्यादि ॥ १०७ ॥

### सहन्ञविद्यमानपूर्वाच्च ॥ १०८ ॥ अ० ४ । १ । ५७ ॥

सह नञ् विद्यमान ये हों पूर्व जिसके, उस खांगवाची स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान प्राति-पदिक से ङीष् प्रत्यय न हो ।। जैसे—सकेशाः, श्रकेशाः, विद्यमानकेशाः, सनासिकाः, श्रनासिकाः, विद्यमाननासिका इत्यादि ॥ १०००॥

#### नखमुखारसंज्ञायाम् ॥ १०६ ॥ अ० ४ । १ । ५८ ॥

स्त्रीतिंग में वर्त्तमान नखान्त श्रीर मुखान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय न हो। जैसे-श्रूप्रीयका; वंज्रयका; गौरमुका; कालमुखा।

'संझा' प्रदेश इसकिये है कि —ताम्रमुखी कन्या, यहां ङीष् हो ॥ १०६ ॥

### दीर्घजिह्वी च छन्दिस ॥ ११० ॥ अ० ४ । १ । ५६ ॥

वेद में 'दीर्घजिद्धी' निपातन किया है। जैसे — दीर्घजिद्धी वै देवानां इव्यमलेट्। 'दीर्घजिद्धी' शब्द नित्य ङीष् होने के लिये निपातन किया है॥ ११०॥

### दिकपूर्वपदान्डोप् ॥ १११ ॥ अ० ४ । १ । ६० ॥

दिक् पूर्वपद हो जिस के उस खांगवाची स्त्रीलिंग में वर्त्त मान प्रातिपदिक से सीप् प्रत्यय हो। जैसे—प्राङ्मुखी; प्रत्यङ्मुखी; प्राङ्नासिकी इत्यादि॥ १११॥

#### वाहः ॥ ११२ ॥ अ० ४ । १ । ६१ ॥

वाहन्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे—दित्योही; प्रष्ठोही; विश्वोही इत्यादि॥ ११२॥

### सख्याशश्वोति भाषायाम् ॥ ११३ ॥ अ० ४ । १ । ६२ ॥

भाषा अर्थात् लौकिक। प्रयोग विषय में सखी श्रोर श्रशिश्वी ये दोनों ङीष् प्रत्य-यान्त निपातन किये हैं। जैसे—सखीयं मे ब्राह्मणीः, नास्याः शिशुरस्तीति अशिश्वी। यहां 'भाषा' प्रहण इसलिये हैं कि—सखे सप्तपदी भव, यहां न हो॥ ११३॥

### जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ॥ ११४ ॥ अ० ४ । १ । ६३ ॥

स्त्रीतिंग में वर्त्त मान जो यकारोपधवर्जित जातिवाची श्रकारान्त श्रोर नियत स्त्रीतिंग न हो, ऐसे प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होवे । जैसे—कुक्कुटी; स्करी; ब्राह्मणी; वृषती; नाडायनी; चारायणी; बहुवृची ।

यहां 'जाति' ग्रहण इसिलये है कि—मुएडा। 'ग्रस्त्रीविषय' इसिलये है कि—मित्तका। 'ग्रयोपध' इसिलये है कि—क्षिया; वैश्या। 'ग्रयुपसर्जन' ग्रहण इसिलये है कि—बहुकुकुटा; वहुस्करा, इससे ङीष्न हुआ॥ ११४॥

### वा०-यापधप्रतिषेधे ह्यगवयमुकयमत्स्यमनुष्याणामप्रतिषेधः॥११५

यकारोपध का निषेध जो सूत्र से किया है, वहां हय गवय मुक्तय मत्स्य ऋौर मनुष्य प्रातिपदिकों का निषेध न होने, ऋर्थात् इनसे ङीष् प्रत्यय हो। जैसे—हयी; गवयी; मुक्तयी; मत्सी; मनुषी ॥ ११४॥

### पाककर्णपर्णपुष्पफळमूलबाछोत्तरपदाच्च ॥११६॥ अ० ४।१।६४॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तभान जिस प्रातिपदिक के उत्तरपद पाक श्रादि शब्द हो, उससे डीप प्रत्यय हो । जैसे—श्रोदनपाकी; मुद्गपर्णी; षट्पर्णी; शङ्कपुष्पी; बहुफली; दर्भमूली; गोबाली ॥ ११६॥

# वा०-सद्चकाग्डप्रान्तश्तेकेभ्यः पुष्पात्प्रतिषधः ॥ ११७ ॥

सत् श्रंचु काएड प्रान्त शत एक इन प्रातिपदिकों से परे जो स्त्रीलिंग में वर्त्त मान पुष्प प्रातिपदिक उस से डीष् प्रत्यय न हो।

सुत्र ११६ से प्राप्त है, उसका विशेष शब्दों के योग में निषेध किया है। जैसे— सत्पुष्पा; प्राक्पुष्पा; प्रत्यक्पुष्पा; काग्डपुष्पा; प्रान्तपुष्पा; शतपुष्पा; एकपुष्पा ॥११७॥

#### वा०-सम्भन्नाजिनश्णिपग्डेभ्यः फलात् ॥ ११८॥

सम् भस्र श्रजिन शण श्रोर पिएड शब्दों से परे जो फल प्रातिपदिक उस से ङीष् प्रत्यय न हो। यहां सर्वत्र ङीष् का निषेध होने से टाप् हो जाता है।

जैसे—सम्फला; भस्रफला; श्रजनफला; श्रगुफला; पिराडफला ॥ ११८॥

#### वा०-श्वेताच्च ॥ ११९॥

श्चेत शब्द से परे जो फल उससे भी ङीष्न हो। जैसे-श्वेतफला॥ ११६॥

#### वा०-त्रेश्च ॥ १२० ॥

त्रि शब्द से परे जो फल उससे भी ङीव् न हो। जैसे-त्रिफला ॥ १२०॥

#### वा०-मूलान्नञः ॥ १२१ ॥

नञ् से परे जो मूल प्रातिपदिक उससे भी ङीष् प्रत्यय न होवे। जैसे—न मूल-मस्याः सा श्रमूला इत्यादि ॥ १२१ ॥

### इतो मनुष्यजातेः ॥ १२२ ॥ अ० ४ । १ । ६४ ॥

स्त्रीतिङ्ग में वर्त्तमान मनुष्यजातिवाची इकारान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे — श्रवन्ती; कुन्ती; दाची; साची इत्यादि।

यहां 'इकारान्त' प्रहण इसिलये है कि—विदः, दरत्, यहां छीष् न होवे। 'मनुष्य' प्रहण इसिलये है कि—तित्तिरिः, यहां न हो। श्रीर पूर्वसूत्र से जाति की श्रनुवृत्ति चली श्राती, फिर 'जाति' प्रहण का प्रयोजन यह है कि—यकारोपध से भी छीष् प्रत्यय हो जावे, जैसे—श्रोदमेयी इत्यादि॥ १२२॥

### वा०-इञ उपसङ्ख्यानमजात्यर्थम् ॥ १२३ ॥

जाति के न होने से स्नीलिंग में वर्त्तमान इञ्परायान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—स्रोतङ्गमी; मीनचित्ती \* इत्यादि ॥ १२३॥

# मुतङ्गम आदि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक प्रकरण का इस् प्रत्यय है, इस कारण जाति नहीं ॥

#### ऊङ्कतः ॥ १२४ ॥ अ० ४ । १ । ६६ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान मनुष्यजातिवाची उकारान्त प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे —कुरूः; ब्रह्मबन्धृः; वीरवन्धृः।

यकारोपध के निषेध की अनुवृत्ति यहां आती है, इसी कारण अध्वय्युंब्राह्मणी, इत्यादि में ऊङ्प्रत्यय नहीं होता ॥ १२४॥

### वा०-श्रप्राणिजातेश्वारच्वादीनाम् ॥ १२५ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान श्रप्राणिजातिवाची [उकारान्त] प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे, परन्तु रज्जु श्रादि प्रातिपदिकों से न हो। जैसे—श्रलाबू:, कर्कन्यू:।

यद्दां 'श्रप्राणि' प्रदृण इसिलये है कि — कुकबाकुः, यद्दां न हो। श्रीर 'श्ररज्वादि' श्रद्धण इसिलये है कि — रज्जुः, हृतुः, इत्यादि से ऊङ् न हो ॥ १२४ ॥

### बाह्वन्तात्संज्ञायाम् ॥ १२६ ॥ अ० ४ । १ । ६७ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान बाहु शन्दान्त प्रातिपदिक से संज्ञाविषय में ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—अद्रबाहू:; जालबाहू:।

यहां 'संज्ञा' ग्रहण इसिलये है कि—वृत्तवाहुः, सुवाहुः, इत्यादि से न होवे ॥ १२६ ॥ पङ्गोश्च ॥ १२७ ॥ अ० ४ । १ । ६८ ॥

स्रीतिङ्ग में वर्त्तमान पंगु प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे-पंगु: ॥ १२७॥

# वा०-श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च वक्तव्यः ॥ १२८ ॥

स्त्रीतिङ्ग में वर्त्तमान ऋग्रुर शब्द से ऊङ् प्रत्यय श्रीर उस के उकार श्रकार का लोप हो जावे। जैसे-श्वश्रु:।

यहां किसी से ऊङ्प्राप्त नहीं, इसिलये यह वार्त्तिक अपूर्वविधायक है ॥ १२८ ॥ ऊरूत्तरपदादौपम्ये ॥ १२६ ॥ अ० ४ । १ । ६६ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान ऊठ उत्तरपद में है जिस के, उस प्रातिपदिक से उपमान अर्थ में ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—कद्लीस्तम्म इवोक्त अस्याः स्त्रियाः सा कद्लीस्तम्मोकः; नागनासोकः।

यहां 'श्रोपम्य' ग्रहण इसिकये है कि चृत्तोरुः स्त्री, यहां न होवे ॥ १२६ ॥ संहितराफलक्ष्मण्यामादेश्च ॥ १३० ॥ अ० ४ । १ । ७० ॥

स्त्रीज़िंग में वर्शमान संहित शफ तज्ञण वा वाम शब्द जिस के श्रादि में हो, ऐसे ऊरू-चर प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे —संहितोरू:; शफोरू:; तज्ञणोरू:; वामोरू:। यहां उपमान अर्थ नहीं है, इसिलये इस सूत्र का पृथक् आरम्भ है, नहीं तो पूर्व सूत्र से ही हो जाता ॥ १३० ॥

## वा०-सहितसहाभ्यां च ॥ १३१ ॥

स्त्रीतिंग में वर्रामान सहित श्रीर सह शब्द से परे जो ऊरु प्रातिपदिक उस से ऊर्ज् प्रत्यय होवे। जैसे—सहितोद्धः; सहोद्धः इत्यादि॥ १३१॥

# कद्रुकमग्रह्लवोश्छन्द्सि ॥ १३२ ॥ अ० ४ । १ । ७१ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान कद्र श्रीर कमएडलु प्रातिपदिकों से वैदिक प्रयोग विषय में ऊड् प्रत्यय होवे। जैसे—कद्रश्र्य वै सुपर्णी च; मा स्म कमएडलुं ग्रद्राय दद्यात्। यहां 'स्नुन्दो' प्रहण इसिलये है कि—कद्रुः; कमएडलुः, यहां न हो ॥ १३२॥

## वा०-गुग्गुलुमधुजतुपतयालूनामुपसङ्ख्यानम् ॥ १३३ ॥

स्त्रीतिंग में वर्रामान वैदिक प्रयोगविषय में गुग्गुलु मधु जतु स्त्रौर पतयालु प्राति-पदिकों से ऊङ् प्रत्यय होवे। जैसे—गुग्गुलू:, मधू:, जतू:, पतयालू: ॥ १३३॥

## संज्ञायाम् ॥ १३४ ॥ अ० ४ । १ । ७२ ॥

स्रीतिंग में वर्त्तमान संज्ञाविषय में कद्रु भ्रौर कमग्रडलु प्रातिपदिकों से ऊङ् प्रत्यय-होवे। जैसे-कद्र:, कमग्रडलू:।

यहां 'संज्ञा' इसिबये है कि -- कद्ः, कमएडलुः, यहां ऊङ् न होते ॥ १३४ ॥

## शार्करवाद्यजो डीन् ॥ १३५ ॥ अ० ४ । १ । ७३ ॥

स्त्रीतिंग में वर्त्तमान जाति अर्थ में शार्क्षरव श्रादि श्रीर श्रञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकां से ङीन् प्रत्यय होवे। जैसे—शार्क्षरवी; कापटवी। श्रञन्त—वैदी; श्रीर्वी।

यहां जाति की श्रजुवृत्ति श्राने से पुंयोग में प्राप्त ङीष् का बाधक यह सूत्र नहीं होता। जैसे—वैदस्य स्त्री वैदी, यहां ङीष् होता ही है ॥ १३४ ॥

#### यङश्चाप् ॥ १३६ ॥ अ० ४ । १ । ७४ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जातिवाची यङ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से चाप् प्रत्यय होवे । जैसे—आम्बष्ट्याः, सोवीर्याः, कारीषगुन्ध्याः, वाराह्या इत्यादि ॥ १३६॥

#### वा०-षाच्च यञः ॥ १३७॥

स्त्रीतिंग में वर्त्तमान जो षकार से परे यञ् तदन्त प्रातिपदिक से चाप् प्रत्यय होते। जैसे—शार्कराच्याः पौतिमाच्याः गौकच्या इत्यादि ॥ १३७ ॥

#### आवट्याच्च 🛊 ॥ १३८ ॥ अ० ४ । १ । ७५ ॥

स्त्रीलिंग में वर्जमान जातिवाची आवट्य शब्द से चाए प्रत्यय होवे। जैसे— आवट्या ॥ १३८ ॥

### तिद्धिताः ॥ १३६ ॥ अ० ४ । १ । ७६ ॥

यह श्रिष्ठकार सूत्र है। पञ्चमाऽध्याय पर्यन्त इसका श्रिष्ठकार जायगा। इससे श्रागे जो २ प्रत्यय विधान करें, सो २ तद्धितसंज्ञक जानने चाहियें॥ १३६॥

## यूनिस्तः ॥ १४० ॥ अ० ४ । १ । ७७ ॥

जो स्नीतिंग में वर्तमान युवन् शब्द से ति प्रत्यय होता है, वह तद्धितसंद्यक भी हो जावे। जैसे—युवति: ॥ १४० ॥

# अग्विजोरनार्षयोर्ध्रूषोत्तमयोः व्यङ्गोत्रे ॥१४१॥ अ०४।१।७८॥

जो स्त्रीलिंग में वर्तमान गोत्र अर्थ में विहित ऋषिभिन्न अण् और इज् हैं, ये जिनके अन्त में हों, ऐसे गुरूपोत्तम अर्थात् जो तृतीय आदि अन्त्यवर्ण के पूर्व गुरुसंझक वर्ण हों, उन प्रातिपदिकों के स्थान में ष्यङ् आदेश हो, वह तिहतसंझक भी हो जावे।

जैसे—ग्रण्—करीषस्येव गन्धोऽस्य स करीषगन्धिः; कुमुदगन्धः । तस्य [ श्रपत्यं ] स्त्री कारीषगन्ध्या; कौमुदगन्ध्या । इञ् —वाराह्या; बालाक्या ‡ ।

यहां 'श्रण् श्रोर इज्' इसिलये हैं कि स्वतभागस्यापत्यं स्त्री श्रार्तभागी, यहां विदादिकों से श्रश् हुश्रा है, इस कारण ष्यङ् नहीं होता। 'श्रनार्ष' इसिलये कहा है कि वाशिष्ठी; वैश्वामित्री, यहां न हो। 'गुरूपोत्तम' ग्रहण इसिलये है कि श्रोपगवी; कापटवी, यहां न हो। श्रोर 'गोत्र' इसिलये हैं कि श्राहिच्छत्री, यहां न हो। १४१॥

# गोत्रावयवात् ॥ १४२ ॥ अ० ४ । १ । ७९ ॥

इस सूत्र का आरम्भ गुरूपोत्तम विशेषण न घटने के लिये हैं।

श्रीलिंग में वर्त्तमान गोत्र का अवयव अर्थात् गोत्राभिमतकुल में मुख्य पुणिक भुणिक श्रोर मुखर आदि प्रातिपदिक से विहित जो गोत्र अर्थ में अण् श्रोर इञ् हैं,

\* यह अवट शब्द गर्गादिकों में पढ़ा है, इसिलये यन् प्रत्ययान्त से कीच् प्रत्यय (यनश्च) इस उक्त स्त्र से प्राप्त है उसका अपवाद है। परन्तु प्राचीन आचारयों के मत में तो क्य होता ही है। जैसे-आवट्पायनी ॥

‡ यहां करीवगन्धि और कुमुदगन्धि शब्दों से (तस्यापत्यम्) इस से श्रया श्रौर वराह तथा बजाका शब्दों से (श्रतह्रज् ) इस श्रागामी सूत्र से इज् हुआ है ।। उनके स्थान में प्यङ् श्रादेश हो, वह तद्धितसंज्ञक भी होवे। जैसे—पौशिक्या; भौशिक्या; मौज्ञर्या इत्यादि ॥ १४२ ॥

# क्रोड्यादिभ्यश्च ॥ १४३ ॥ अ० ४ । १ । ८० ॥

स्रीतिंग में वर्त्त मान क्रोडि श्रादि प्रातिपदिकों से ध्यङ् ग्रत्यय, श्रोर उसकी ति वित-संज्ञा भी हो। जैसे—क्रोड्या; लाड्या; व्याड्या इत्यादि॥ १४३॥

# देवयित्रशौचिवृक्षिसात्यमुप्रिकाण्ठेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम्॥१४४॥ अ० ४ । १ । ८१ ॥

गोत्र अर्थ में वर्त्तमान दैवयि शौचिवृत्ति सात्यमुग्नि और काएठेविद्धि प्रातिपदिकों से स्नीलिंग में ष्यङ् प्रत्यय हो, उसकी तद्धितसंज्ञा भी हो।

जैसे—दैवयस्याः शौचिवृत्त्याः सात्यसुध्याः काएठेविद्ध्या।

श्रीर पद्म में (इतो मनुष्यजाते:) इस उक्तं सूत्र से ङीव् होता है। जैसे—दैवयङ्गी; श्रीचिवृत्ती; सात्यमुत्री; काएठेविद्धी इत्यादि॥ १४४॥

#### इति स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् ॥

~本は十十五十十八十十

### समर्थानां प्रथमाद्वा ॥ १४५ ॥ अ० ४ । १ । ८२ ॥

समर्थानाम् प्रथमात् वा इन तीन पदों का अधिकार करते हैं। इससे आगे जो २ प्रत्यय कहे हैं, वे समर्थों की प्रथम प्रकृति से विकल्प करके होंगे, पद्म में वाक्य भी बना रहे। यह अधिकार छु: पाद अर्थात् पञ्चमाध्याय के द्वितीय पाद के अन्तपर्य्यन्त जावेगा। जैसे—उपगोरपत्यम् औपगवः।

यहां 'समर्थानाम्' इसिलये है कि — कम्बल उपगोरपत्थं देवदत्तस्य, यहां उपगु शब्द से प्रत्यय नहीं होता। 'प्रथमात्' इसिलये है कि — षष्ट्रयन्त ही से होवे प्रथमान्त से नहीं हो। 'वा' इसिलये है कि वाक्स्य भी बना रहे। जैसे — उपगोरपत्यम् ॥ १४४॥

### प्राग्दीव्यतोऽस् ॥ १४६ ॥ अ० ४ । १ । =३ ॥

(तेन दीव्यति॰) इस सूत्र पर्य्यन्त 'त्रण्' प्रत्यय का श्रधिकार करते हैं। यहां से श्रागे जो २ विधान करेंगे, वहां २ श्रपवाद विषयों को छोड़ के श्रण् ही प्रवृत्त होगा। जैसे—(तस्यापत्यम्) यहां प्रत्यय विधान किया है, सो श्रधिकार के होने से श्रण् ही होता है। जैसे—उपगोरपत्यम् श्रोपगवः; कापटवः इत्यादि॥ १४६॥

### अरवपत्यादिभ्यश्च \* ॥ १४७ ॥ अ० ४ । १ । ८४ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों, अर्थात् 'तेन दीव्यतिं' इस सूत्र से पूर्व २ जो २ अर्थ विधान किये हैं, उन २ में अञ्चपति आदि प्रातिपदिकों से अण् ही होने। जैसे—आश्चपतम्। शातपतम्; धानपतम्, गाणपतम् इत्यादि ॥ १४७॥

# दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाग्ग्यः ॥१४८॥ अ०४।१।८५॥

यहां भी प्राग्दीव्यतीय की अनुवृत्ति आती है। और यह सूत्र अण् का अपवाद है।

दिति श्रदिति श्रादित्य श्रोर पत्युत्तरपद प्रातिपदिक से प्राग्दीन्यतीय श्रर्थों में तिद्धतसंज्ञक एय प्रत्यय होवे। जैसे—देत्यः, श्रादित्यः, श्रादित्यम्। पत्युत्तरपद—प्राजा-पत्यम्, सैनापत्यम् इत्यदि ॥ १४८॥

#### वा०-यसाच्च ॥ १४६ ॥

प्राग्दीव्यतीय श्रथौं में यम प्रातिपदिक से भी तिद्धतसंज्ञक एय प्रत्यय होवे। जैसे—याम्यम् ॥ १४६॥

## वा०-वाङ्मतिपितृमर्ता छन्दस्युषसङ्ख्यानम् ॥ १५० ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में वाक् मित और पितृमत् प्रातिपदिकों से [वैदिक प्रयोग विषय में ] तिद्धतसंक्षक एय प्रत्यय हो । जैसे—वाच्यम्; मात्यम्; पैतृमत्यम् ॥ १४० ॥

### वा०-पृथिव्या जाजी ॥ १५१ ॥

प्राग्दीव्यतीय ऋथौं में पृथिवी प्रातिपदिक से अ श्रीर श्रञ् प्रत्यय होवें। जैसे— पार्थिवा; पार्थिवी ‡ ॥ १४१ ॥

### वा०-देवाद्यञञ्जो ॥ १५२ ॥

प्राग्दीव्यतीय त्रधों में देव प्रातिपदिक से यज् श्रोर श्रज् प्रत्यय होवें। जैसे—
देव्यम्: देवम् ॥ १४२ ॥

\* पति जिनके उत्तरपद में हो उन प्रातिपदिकों से अगते सूत्र में यय प्रत्यय कहा है, उस का पुरस्तात् अपवाद यह सूत्र है ॥

‡ यहां ज द्यौर द्यज् प्रत्ययों में इतना ही भेद है कि जान्त से छीप् प्राप्त नहीं, द्यौर श्रजन्त से डीप् हो जाता है ॥

# ्वा०-बहिषष्टिलोपश्च ॥ १५३॥

प्राग्दीव्यतीय श्रर्थों में बहिष् प्रातिपदिक से एय प्रत्यय श्रीर उस के टि का लोप भी होवे। जैसे—बहिर्भवो बाह्य: ॥ १४३॥

# वा०-ईकक् च ॥ १५१॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में बहिष् प्रातिपदिक से ईकक् प्रत्यय और उसके टिका लोप भी होते । जैसे—बाहीक: ॥ १४४ ॥

# वा०-ईकञ् छन्दिस ॥ १५५॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में वैदिक प्रयोगविषयक वहिष् प्रातिपदिक से ईकञ् प्रत्यय और उसके टिका लोप भी होवे। जैसे—बाहीक: \* ॥ १४४॥

#### वा०-स्थाम्नोऽकारः ॥ १५६॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में स्थामन् शब्दान्त प्रातिपदिक से अकार प्रत्यय होवे। जैसे—अश्वत्थामः ॥ १४६ ॥

# वा०-लोम्नोऽपत्येषु बहुषु ॥ १५७॥

बहुत श्रपस्य वाच्य हों, तो लोमन् शब्दान्त प्रातिपदिक से श्रकार प्रत्यय हो जावे। जैसे—उडुलोस्रोऽपत्यानि उडुलोमाः; शरलोमाः इत्यादि।

यहां 'बहुत अपत्य' प्रहण् इसलिये है कि — उडुलोस्रोऽपत्यम् औडुलोभिः; शारलोभिः, यहां अकार प्रत्यय न होवे ॥ १४७ ॥

# वा०-सर्वत्र गोरजादित्रसङ्गे यत् ॥ १५८॥

सर्वत्र अर्थात् प्राग्दीव्यतीय अर्थों में गो प्रातिपदिक से अर्ण् आदि अजादि प्रत्ययों की प्राप्ति में यत् प्रत्यय ही होवे । जैसे—गव्यम् ।

यहां 'अजादिप्रसंग' इसिंबिये कहा है कि - गोरूप्यम्; गोमयम्, इत्यादि में यत् न होवे ॥ १४८॥

### उत्सादिभ्योऽञ् ॥ १५६ ॥ अ० ४ । १ । ८६ ॥

प्राग्दी ज्यतीय श्रर्थों में उत्स श्रादि प्रातिपदिकों से तिद्धितसंज्ञक श्रञ् प्रत्यय होवे। जैसे—श्रोत्सः, श्रोदपानः, त्रैकरः इत्यादि।

\* पूर्व वार्तिक में ईकक् और यहां ईकज् इन दो प्रत्ययों में केवल स्वर का ही भेद है। अर्थात् बोक में अन्तोदात्त और वेद में आधुदात्त स्वर होता है॥ अण् और उस के अपवादों का भी यह सूत्र अपवाद है ॥ १४६॥

# स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्रञो भवनात् ॥ १६० ॥ अ० ४ । १ । ८७ ॥

(धान्यानां भवने०) इस सूत्र से पूर्व २ सब अर्थों में स्त्री और पुंस् प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके नज् और स्नज् प्रत्यय हों।

जैसे — स्त्रीषु भवम् स्त्रैणम्; पौँस्नम्। स्त्रीभ्य ग्रागतम् स्त्रैणम्; पौँस्नम्। स्त्रिया प्रोक्तम् स्त्रैणम्; पौँस्नम्। स्त्रीभ्यो द्वितम् स्त्रैणम्; पौँस्नम् इत्यादि ॥ १६० ॥

# द्विगोर्जुगनपत्ये ॥ १६१ ॥ अ० ४ । १ । ८८ ॥

द्विगु का सम्बन्धी निमित्त, श्रर्थात् जिसको मानके द्विगु किया हो, उस श्रपत्य-वर्जित प्राग्दीन्यतीय तद्धितसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होवे। जैसे—पञ्चसु कपालेषु संस्कृत: पुरोडाश: पञ्चकपाल:, दशकपाल:, द्वी वेदावधीते द्विवेद:, त्रिवेद:।

[यहां 'अनपत्य' प्रहण इसलिये है कि — द्वैदेवदत्तिः,] इत्यादि में लुक् न हो ॥१६१॥

## गोत्रेऽलुगचि ॥ १६२ ॥ अ० ४ । १ । ८६ ॥

जो (यस्कादिभ्यो गोत्रे) इत्यादि सूत्रों से जिन गोत्र प्रत्ययों का लुक् कह चुके हैं सो न हो, प्राग्दीन्यतीय अजादिप्रत्यय परे हों तो। जैसे—गर्गाणां छात्राः गार्गीयाः; वात्सीयाः; आत्रेथीयाः; खारपायणीयाः।

यहां 'गोत्र' [ब्रह्ण] इसिलये है कि—कौबलम्; बाद्रम्, यहां निषेध न हो। स्रोर 'श्रच्' ब्रह्ण इसिलये है कि—गर्गेभ्य स्नागतं गर्गरूप्यम्; गर्गमयम्, यहां हलादि प्रत्ययों के परे लुक् होजावे॥ १६२॥

## यूनि छुक् ॥ १६३ ॥ अ० ४ । १ । ६० ॥

जब प्राग्दीव्यतीय श्रजादि प्रत्यय की विवद्मा होवे, तब युवापत्य श्रर्थ में विहित जो तद्भितसंज्ञक प्रत्यय उसका लुक् हो, फिर जिस प्रकृति से जो प्रत्यय प्राप्त हो सो होवे।

जैसे—फाएटाहृतस्यापत्यं फाएटाहृति: । तस्य युवापत्यम्, यहां (फाएटाहृतिमिम०) इससे युवापत्य में ण होकर=फाएटाहृत: । फाएटाहृतस्य यूनश्कात्राः इस अर्थ की विवज्ञा होते ही युवापत्य का लुक् होके उस इज् प्रत्ययान्त फाएटाहृति प्रातिपदिक से (इजश्च) इस सूत्र से शैषिक अण् प्रत्यय हो जाता है=जैसे—फाएटाहृताः ।

तथा भगवित्तस्यापत्यं भागवित्तिः, यहां प्रथम गोत्र में इञ । तस्य भागवित्तेरपत्यं माणवको भागवित्तिकः, यहां युवापत्य में उक् हुआ है। भागवित्तिकस्य यूनश्कात्राः, इस अर्थ की अपेन्ना में यहां भी पूर्व के समान युव प्रत्यय उक् की निवृत्ति होकर इअन्त

से श्रण् हो जाता है=जैसे—भागवित्ताः । [तिकस्यापत्यं तैकायितः । तस्य] तैकायनेरपत्यं माणवकः तैकायनीयः । तैकायनीयस्य यूनश्छात्राः तैकायनीयाः, यहां युव प्रत्यय छ की निवृत्ति में फिज् प्रत्ययान्त तैकायित वृद्ध प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हुश्रा है, इत्यादि ।

यहां 'श्रजादि के परे लोप' इसलिये कहा है कि—फाएटाहतरूप्यम्; फाएटाहतमयम्, यहां लुक् न हो। प्राग्दीव्यतीय श्रथों में लोप होता है, श्रन्यत्र नहीं—भागवित्तिकाय हितं भागवित्तिकीयम्, यहां न हो॥ १६३॥

# फक्फिञोरन्यतरस्याम् ॥ १६४ ॥ अ० ४ । १ । ६१ ॥

जो प्राग्दीन्यतीय श्रर्थवाची श्रजादि प्रत्यय परे हों, तो फक् श्रीर फिञ् युवप्रत्ययों का लुक् विकल्प करके होवे।

जैसे—गर्गस्यापत्यं गार्ग्यः (गर्ग शब्द से यज् ), तस्य युवापत्यम् (तद्दन्त से फक् )= गार्ग्यायगः, तस्य छात्राः, इस विवद्धा में फक् का लुक्≕गार्गायाः। ऋौर-जिस पद्ध में लुक् न हुआ वहां गार्ग्यायग्रीयाः, वात्सीयाः, वात्स्यायनीयाः इत्यादि। फिञ्—यस्क-स्यापत्यम् (शिवादिकों से अण् ) यास्कः, तस्य युवापत्यम् (ऋगुन्त द्व्यच् प्रातिपदिक से फिञ्) यास्कायनिस्तस्य छात्राः, इस विवद्धा में फिञ् का विकल्प से लुक्= यास्कीयाः, यास्कायनीयाः इत्यादि ॥ १६४ ॥

## तस्यापत्यम् ॥ १६५ ॥ अ० ४ । १ । ६२ ॥

समर्थों में प्रथम षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में अर्थ आदि प्रत्यय विकल्प करके होवें। जैसे— उपगोरपत्यम् ग्रोपगवः; आखपतः; दैत्यः; ग्रोत्सः; स्त्रेणः; पौस्नः इत्यादि ॥ १६४ ॥

# ओर्गुणः ॥ १६६ ॥ अ०६ । ४ । १४६ ॥

जो तद्धितसंद्यक प्रत्यय परे हो, तो उवर्णान्त भसंद्यक श्रङ्ग को गुण हो। जैसे— उपगोरपत्यम् श्रोपगवः इत्यादि ॥ १६६॥

# तिद्धतेष्वचामादेः ॥ १६७ ॥ अ० ७ । २ । ११७ ॥

जो जित् िषत् श्रीर कित् तिद्धतसंद्धक प्रत्यय परे हों, तो श्रचों के बीच में जो श्रादि श्रच् उसके स्थान में वृद्धि हो। जैसे—श्रीपगवः, वाभ्रव्यः, माग्डव्यः इत्यादि॥ १६७॥

### यस्येति च ॥ १६८ ॥ अ० ६ । ४ । १४८ ॥

जो ति तिस्तिसंद्यक प्रत्यय श्रीर ईकार परे हों, तो भसंद्यक इवर्ण श्रीर श्रवर्ण का लोप होवे। जैसे -ईकार -दाची; साची। तिस्ति में इवर्ण का लोप -दोलेय; वालेय; श्रात्रेय:

इत्यादि । अवर्ण का लोप-कुमारी; किशोरी; दैत्य:, आश्वपत:; श्रोत्स:, स्त्रेण:; पौस्त: इत्यादि ॥ १६८ ॥

# एको गोत्रे ॥ १६६ । अ० ४ । १। ६३ ॥

गोत्र अर्थ में एक ही प्रत्यय होते, अर्थात् द्वितीय प्रत्यय न हो। अथवा प्रकृति का नियम करना चाहिये कि जहां गोत्रापत्य की विवद्मा हो, वहां एक ही प्रथम मुख्य जिससे अपत्याधिकार में कोई प्रत्यय न हुआ हो, उससे प्रत्यय की उत्पत्ति हो। जैसे—गार्थ:, नाडायन: इत्यादि ॥ १६६ ॥

## गोत्राचून्यस्त्रियाम् ॥ १७० ॥ अ० ४ । १ । ९४ ॥

श्रीर जब युवापत्य की विवद्धा हो, तो गोत्रप्रत्ययान्त प्रकृति ही से दूसरा प्रत्यय होने। जैसे—गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः; वात्स्यायनः; दाद्धायणः; प्राद्धायणः, यहां युवापत्य में 'फक्' श्रीर श्रीपगविः; नाडायनिः, यहां युवापत्य में 'इज्' हुश्रा है।

यहां 'स्त्री का निषेध' इसिलये है कि - दान्ती, प्रान्ती, यहां गोत्रप्रत्ययान्त से स्त्रीप्रत्यय हुन्ना है ॥ १७० ॥

### अत इज् ॥ १७१ ॥ अ० ४ । १ । ९५ ॥

जो समर्थों का प्रथम पछीसमर्थ श्रकारान्त प्रातिपदिक है, उससे श्रपत्य श्रथ मैं इज्पत्य विकल्प करके होवे। जैसे—दत्तस्यापत्यं माग्रवको दात्तिः, दाशरिथः।

यह सूत्र अण् का अपवाद है। यहां 'तपरकरण' इसिलये है कि अप्रमंगां। की बालपा:, इत्यादि से 'इज्' न हो, अर्थात् आकारान्त से निषेध हो जाय ॥ १७१॥

#### बाह्वादिभ्यश्च ॥ १७२ ॥ अ० ४ । १ । ९६ ॥

समर्थों के प्रथम षष्ठी समर्थ बाहु आदि प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में इस प्रत्यव विकल्प करके होते। जैसे—बाहिवः, श्रीपबाहिवः इत्यादि॥ १७२॥

### सुधातुरकङ् च ॥ १७३ ॥ अ० ४ । १ । ९७ ॥

समर्थों के प्रथम पष्टीसमर्थ सुधातु प्रातिपदिक से इज् प्रत्यय विकल्प करके स्रोर उसको स्रकङ् स्रादेश भी हो। जैसे सुधातुरपत्पं सौधातिकः ॥ १७३॥

# वा०-व्यासवरुडनिषाद्चण्डालबिम्बानामिति वक्तव्यम् ॥१७४॥

ब्यास, वरुड, निषाद, चएडाल श्रीर बिम्ब प्रांतिपदिकों से इज् प्रत्यय होते । जैसे

व्यासस्यापृत्यं माण्यको वैयासिकः; वारुडिकः; नैषादिकः; नाग्डालिकः; वैम्बिकः \*

# गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफ्रज् †ा। १७५ ॥ अ० ४ । १ । ६८ ॥

यह सूत्र इञ्का अपवाद है। गोत्रसंज्ञक अपत्य अर्थ में ! प्रथम प्रकृति कुञ्ज आदि प्रातिपदिकों से च्फञ् प्रत्यय हो। जैसे — कुञ्जस्य गोत्रापत्यं कोञ्जायन्यः, कोञ्जा-यन्यो, कोञ्जायनाः, ब्राध्नायन्यः, ब्राध्नायन्यो, ब्राध्नायनाः इत्यादि।

यहां 'गोत्र' इसलिये कहा है कि - कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौञ्जिः, यहां श्रनन्तरापत्य में उफज् न हो। गोत्रं का अधिकार (शिवादि०) इस सूत्रपर्यन्त जानना चाहिये ॥१७४॥

## नडादिभ्यः फक् ॥ १७६॥ अ० ४। १। ६६॥

यह सूत्र भी इञ् का अपवाद है। नड आदि प्रातिपदिकों से गोत्राऽपत्य अर्थ में फ्रक् प्रत्यय होवे। जैसे—नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः, चारायणः इत्यादि।

यहां भी गोत्र की अनुवृत्ति आने से अनन्तरापत्य में नाडि:, [यहां] फक् नहीं होता, किन्तु इज् हो जाता है ॥ १७६ ॥

### हरितादिभ्योऽञः + ॥ १७७ ॥ अ० ४ । १ । १०० ॥

यह भी सूत्र इञ्का ही अपवाद है, और जो शब्द हरितादिकों में अदन्त न हों उनसे आण् का अपवाद समक्षना चाहिये।

जो विदाद्यन्तर्गत अञन्त हरितादि प्रातिपदिक हैं, उनसे युवापत्य अर्थ में फक् प्रत्यय हो। जैसे—हरितस्य युवापत्यं हारितायनः, कैदासायनः इत्यादि॥ १७७॥

# इत आस आदि प्रातिपदिकों से अदस्तों के होने से इज् तो हो जाता, पर अकङ् आदेश होने के जिये यह वार्तिक पढ़ा है ॥

ं यहां च्फ्रज् प्रत्यय में चकार का अनुबन्ध (ब्रातच्फ्रजो०) इस सूत्र में सम्बन्ध होने के झौर अकार वृद्धि के जिये हैं। श्रीर इन च्फ्रज् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ज्य प्रत्यय हो जाता है। उस ज्य प्रत्यय की तद्राजसंज्ञा होने से बहुवचन में जुक् हो जाता है॥

्रै विकरप, समर्थों का प्रथम इन दो का अधिकार छ। पाद में, और तिख्तसंज्ञा का अधिकार पंचमाध्याय प्रथमित तथा षष्ठीसमर्थ का अधिकार इसी पाद में जाता है। सो इन सब का प्रतिसूत्र में सम्बन्ध समम्ना चाहिये, अब बार २ नहीं खिखेंगे॥

+ इस स्त्र में गोत्राऽपत्य की विवचा यों नहीं है कि हरितादिकों से प्रथम गोत्रापत्य में अञ् विधान है, किर दूसरा प्रत्यय गोत्रापत्य में नहीं हो सकता, किन्तु युवापत्य में ही होगा ॥

#### यजिञोश्च ॥ १७८ ॥ अ० ४ । १ । १०१ ॥

युवापत्य त्रर्थ में यजन्त और इजन्त प्रातिपदिकों से फक् प्रत्यय हो । जैसे-यजन्त-गार्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायण्:;वात्स्यायनः । इजन्त से-दाचायणः; प्लाचायणः इत्यादि ।

यह सूत्र यञन्त से इञ् का और इञन्त से अण् का बाधक समभना चाहिये ॥१७८॥

# शरद्वच्छ्रनकदर्भाद् भृगुवत्साम्रायगोषु ॥१७६॥ अ० ४।१।१०२॥

जो गोत्रापत्य अर्थ में मृगु, वत्स, आप्रायण ये अपत्य विशेष अर्थ वाच्य हों, तो यथा-संख्य करके शरहत् शुनक और दर्भ शतिपदिक से फंक् प्रत्यय हो।

जैसे—शारद्वतायनः, जो भृगु का गोत्र हो, नहीं तो शारद्वतः। शौनकायनः, जो वस्स का गोत्र हो, नहीं तो शौनकः। दार्भायणः, जो आग्रायण का गोत्र हो, नहीं तो दार्भिः।

यह भी सूत्र ऋण् और इज दोनों का अपवाद है ॥ १७६॥

## द्रोगापर्वतजीवन्ताद्रन्यतरस्याम् ॥ १८०॥ अ० ४ । १ । १०३॥

ं द्रोग पर्वत ग्रीर जीवन्त प्रातिपदिक से फक् प्रत्यय विकल्प करके होते।

यह सूत्र इञ् का ही अपवाद है। और एक विकल्प चला ही आता है, दूसरा प्रहण इसलिये है कि—पद्म में इञ् प्रत्यय भी हो जावे। और यह अप्राप्त विभाषा समक्षती चाहिये। जैसे—द्रोणस्य गोत्रापत्यं द्रोणायनः, द्रोणिः, पार्वतायनः, पार्वतिः, जैवन्तायनः, जैवन्तः॥ १८०॥

# अनुष्यानन्तर्ये विदादिभ्यो ऽञ् #॥ १८१॥ अ० ४। १। १०४॥

गोत्राऽपत्य अर्थ में विद् आदि प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय होवे। जैसे विदस्य गोत्रापत्यं वैदः; श्रोवेः इत्यादि।

परन्तु विदादिगण में जो ऋषिवाची से भिन्न पुत्र आदि शब्द पढ़े हैं, उनसे अनस्त-रापत्य अर्थ ही में अञ् प्रत्यय होवे। जैसे—पौत्रः, दौहित्रः, नानान्द्रः इत्यादि।

# यह सूत्र भी इंज् आदि प्रत्ययों का अपवाद हैं ॥ १८१॥ गर्गादिभ्यो यञ् ॥ १८२॥ अ० ४ । १ । १०५॥

यह सूत्र भी ऋण् आदि प्रत्ययों का ही अपनाद है।

\* इस प्रकरण में अपत्य तीन प्रकार के समक्तने चाहियें—अर्थात् गोत्रापत्य, युवापत्य और अनेन्त-रापत्य। इनमें से गोत्रापत्य और युवापत्य का आगे इसी प्रकरण में व्याख्यान किया है। अनेन्तरापत्य पिता की अपेक्ष में पुत्र को कहते हैं कि जिसमें कुछ अन्तर नहीं होता। सो इस विदादिगण में जो ऋषिवाची प्रातिपदिक हैं, उन्हीं से गोत्रापत्य में हो, अन्य प्रातिपदिकों से अनेन्तरापत्य में अन् होता है। गोत्रापत्य अर्थ में गर्ग आदि प्रातिपदिकों से यञ् प्रत्यय होवे। जैसे—गार्ग्यः; बात्स्यः; वैयाञ्रपद्यः इत्यादि ॥ १८२॥

मधुबभ्नोर्नाह्मण्कोशिकयोः \* ॥ १८३॥ अ० ४ । १ । १०६॥

ब्राह्मण और कौशिक गोत्रापत्य अर्थ वाच्य हों, तो मधु और बश्च प्रातिपदिकों से पत्र प्रत्यय होवे। जैसे—मधोगींत्रापत्यं माधन्यः, जो ब्राह्मण होवे, नहीं तो माधवः। ब्राश्चन्यः, जो कौशिक होवे, नहीं तो बाश्चवः॥ १८३॥

### कपिबोधादाङ्गिरसे ॥ १८४ ॥ अ० ४ । १ । १०७ ॥

आङ्गिरस गोत्रापत्य विशेष अर्थ में कपि और बोध प्रातिपदिक से यज् प्रत्यय होवे। जैसे—कपेगोंत्रापत्यं काप्यः, बौध्यः, जो अङ्गिरा का गोत्र होवे। नहीं तो कापेयः, बौधिः, यहां ढक् और इज् प्रत्यय हो जाते हैं।

श्रोर इन्हीं दोनों का यह श्रपवाद भी है ॥ १८४॥

#### वतण्डाच ॥ १८५ ॥ अ० ४ । १ । १०८ ॥

ब्राङ्गिरस गोत्रापत्य विशेष श्रर्थ में वतग्रह प्रातिपदिक से यञ् प्रत्यय होवे। जैसे— सतग्रहस्य गोत्रापत्यं वातग्रह्यः, यहां भी जो श्रङ्गिरा का गोत्र होवे। नहीं तो वातग्रहः, यहां श्रणु हो जाता है।

्र और अण् का ही अपवाद यह सूत्र भी है।। १८४॥

# लुक् स्त्रियाम् ॥ १८६ ॥ अ० ४ । १ । १०६ ॥

जहां ब्राङ्गिरसी स्त्रीवाच्य रहे, वहां वतगड शब्द से विहित यञ् प्रत्यय का लुक् होवे।

जब लुक हो जाता है, तब शार्क्तरवादि गए में पढ़ने से छीन प्रत्यय हो जाता है। जैसे—वतएडी, जो अक्तिरा के गोत्र की स्त्री होवे। नहीं तो वातएड्यायनी × यहां फर प्रत्यय हो जाता है। १८६॥

# श्रश्वादिभ्यः फञ् ॥ १८७ ॥ अ० ४ । १ । ११० ॥

यह सूत्र अण् और इञ्का ही बाधक है।

# यह सूत्र त्रया का अपवाद है। और वश्रु शब्द गर्गादि के अन्तर्गत लोहितादिकों में पढ़ा है, वहां पढ़ने से इससे स्नीलिङ्ग में एक प्रत्यय हो जाता है। जैसे—वाअन्यायया। और इस सूत्र में इस बश्रु शब्द का पाठ नियमार्थ है कि कौशिक गोत्र में ही यम् प्रत्यय हो, अन्यत्र नहीं।।

अबह वतपद शब्द गर्गादि के अन्तर्गत लोहितादिकों में पढ़ा है, इस कारण इससे खीगोत्र में क्या प्रसम होके यह प्रयोग होता है। और वतपढ शब्द शिवादिगण में भी पढ़ा है, इससे खीलिङ्ग में वातपढ़ी भी प्रमोग होता है।।

गोत्राऽपत्य अर्थ में अस्व आदि प्रातिपदिकों से फञ् प्रत्यय होवे। जैसे अस्वस्य गोत्रापत्यम् आश्वायनः; आश्मायनः; शांखायनः इत्यादि ॥ १८७॥

# अर्गात् त्रेगर्ते ॥ १८८ ॥ अ० ४ । १ । १११ ॥

यह केवल इज् का ही अपवाद है। भर्ग प्रातिपदिक से गोत्रापत्य त्रेगर्स अर्थ में फज् प्रत्यय होने। जैसे—भर्गस्य गोत्रापत्यं भार्गायणः, जो त्रिगर्स का गोत्र हो। नहीं तो भार्गः, [यहां] इज् प्रत्यय हो जाने ॥ १८८॥

## शिवादिभ्योऽण् ॥ १८६॥ अ० ४। १। ११२॥

यहां से गोत्र की निवृत्ति होगई। श्रव सामान्याऽपत्य में प्रत्यविधान करेंगे। यह सूत्र इज् श्रादि का अपवाद यथायोग्य समभाना चाहिये।

श्रपत्य श्रर्थ में शिव श्रादि प्रातिपदिकों से श्रण् प्रत्यय होवे। जैसे-शिवस्य गोत्रा-पत्यं शैवः, प्रोष्ठः, प्रोष्ठिकः » इत्यादि ॥ १८६॥

### श्रवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ॥१६०॥ अ० ४।१।११३॥

यह सूत्र ढक् प्रत्यय का अपवाद है। अपत्य अर्थ में अवृद्ध नदी मानुषीवाचक तज्ञामक प्रातिपदिकों से अग् प्रत्यय होवे। जैसे—यमुनाया अपत्यं यामुनः; इरावत्या अपत्यम् ऐरावतः; वैतस्तः; नार्मदः इत्यादि।

यहां 'वृद्ध से निषेध' इसिलिये हैं कि — चान्द्रभाग्याया अपत्यं चान्द्रभागेय:; वासव-दत्तेय:, इत्यादि में अण् न हुआ। 'नदी मानुषी' इसिलिये कहा है कि —सीपर्णेय:; वैनतेय:, यहां अण् न होवे। और 'तन्नामिका' ग्रहण इसिलिये हैं कि - श्रोमनाया अपत्यं श्रोभनेय:, यहां भी न हो॥ १६०॥

### च्छुच्यन्धकवृष्टिण्कुरुभ्यश्च ॥ १६१ ॥ अ० ४ । १ । ११४ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में ऋषिवाची वसिष्ठ आदि तथा अन्धक वृष्णि कुरुवंशवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो।

\* तत्तन् शब्द शिवादिगया में पढ़ा है, उससे (उदीचामिल्) इस आगामी सूत्र से उत्तरदेशीय याचार्यों के मत में इज् प्राप्त है, उसका वाधक होने के लिये। प्रत्तु चय प्रत्य का वाधक नहीं होता। जैसे — ताच्याः; ताच्ययः। और गङ्गा शब्द इस गया में पढ़ा है, यहां उससे अया, तिकादि होने से फिल् और शुश्रादिगया में पढ़ने से ढक् प्रत्य हो जाते हैं। इस प्रकार तीन प्रयोग होते हैं। जैसे—गाङ्गः; गाङ्गायनिः; गाङ्गेयः। तथा विपाशा शब्द यहां और कुन्जादिगया में भी पढ़ा है, इससे उसके हो प्रयोग होते हैं। जैसे—विपाशः; विपाशायन्यः।।

्रजैसे—[ ऋषि:— ] वसिष्ठस्याऽपत्यं वासिष्ठः; वैश्वामित्रः। अन्धकः—श्वाफल्कः; रान्धसः। वृष्णि:—वासुदेवः; आनिरुद्धः। कुरुः—नाकुलः; साहदेवः \* इत्यादि ॥१६१॥

# मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः ॥ १६२ ॥ अ० ४ । १ । ११५ ॥

इस मातृ प्रानिपदिक से अर्ग् तो प्राप्त ही है, उकारादेश होने के लिये यह सूत्र है। अपत्य अर्थ में संख्या, सम् और भद्रपूर्वक मातृशब्द को उत् आदेश और अर्ग् प्रत्यय भी हो। जैसे—द्वयोमात्रोरपत्यं द्वैमातुरः, त्रमातुरः, वाग्मातुरः, साम्मातुरः, भाद्रमातुरः ॥।

यहां 'संख्या म्रादि' का ग्रहण इसलिये है कि—सीमात्रः, यहां केवल ऋण् ही हुआ है ॥ १६२ ॥

#### कन्यायाः कनीन च ॥ १६३ ॥ अ० ४ । १ । ११६ ॥

यह सूत्र ढक् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में कन्या शब्द से अर्ण् प्रत्ययं और उसको कनीन आदेश भी होवे। जैसे — कन्याया अपत्यं कानीनः ‡॥ १६३॥

# विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजाऽत्रिषु ॥१६४॥ अ०४ । १ । ११७॥

ा यह सूत्र इञ्का अपवाद है। यथासंख्य करके बत्स भरद्वाज और अति अपत्य बाच्य हो, तो विकर्ण शुक्त और छुगल प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय हो।

जैसे—विकर्णस्थापत्यं वै कर्णः, जो वत्स का गोत्र हो, नहीं तो वैकर्णिः। शोङ्गः, जो मरद्वाज का गोत्र हो, नहीं तो शोङ्गः। छागलः, जो आत्रेय गोत्र हो, नहीं तो छागिलः। यहां सर्वत्र पद्म में इस् प्रत्यय होता है॥ १६४॥

#### पीलाया वा ॥ १६५ ॥ अ० ४ । १ । ११८ ॥

ह्याच् पीला प्रातिपदिक से ढक् प्राप्त है, उसका यह अपवाद है। और पत्त में ढक् भी होता है। और इसको अप्राप्त विभाषा समभना चाहिये, क्योंकि अण् किसी से प्राप्त नहीं है। अपत्य अर्थ में पीला प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होते। जैसे - पीलाया अपत्यं पैला, पत्त में ढक्=पैलेयः॥ १६४॥

\* यहां संशय होता है कि शब्द तो सब नित्य हैं, फिर अन्धक आदि वंशों के आश्रय से इनका व्याख्यान कैसे बन सकता है, क्योंकि वंश तो अनित्य है। (उत्तर ) प्रवाहरूप से कल्पकल्पान्त सृष्टि भी नित्य है, और अन्धक आदि अधिकारी शब्द हैं कि इ.र प्रकार के कुल का नाम अन्धक होना व्याहिये, सो अन्धक आदि वंश प्रतिकल्प में अनादि चले आते हैं। इस प्रकार इन अन्धक आदि शब्दों के साथ अनादि सम्बन्ध बना हुआ है, कभी नवीन नहीं हुआ।

🕯 🌬 विमातृ शब्द शुआदिगण में पढ़ा है, उससे वैमान्नेयः, यह भी प्रयोग होता है ॥

्री विचार यह है कि कन्या जिसका विवाह न हो उसको कहते हैं, उसका अपत्य कैसे हो सकता है। अहामाध्य में इसका समाधान किया है कि जो विवाह होने से प्रथम ही प्रमत्त होकर किसी पुरुष के साथ व्यभिचार से गर्भवती हो जावे, उसका जो पुत्र हो उसको 'कानीन' कहना चाहिये॥

#### ढक् च मग्हूकात् ॥ १६६ ॥ अ० ४ । १ । ११६ ॥

यह सूत्र इञ्का अपवाद है। अपत्य अर्थ में मग्रूक प्रातिपादिक से ढक् प्रत्यय हो, और चकार से अण् विकत्प करके होवे, पक्ष में इञ्भी हो जावे। जैसे —मग्रूक-स्याऽपत्यं माग्रूकेयः, माग्रूकः, माग्रूकिः॥ १६६॥

# स्त्रीभ्यो ढक् ॥ १६७ ॥ अ० ४ । १ । १२० ॥

यह सूत्र त्राण् श्रोर उसके अपवादों का भी अपवाद है। अपत्य श्रर्थ में टाकादि स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय विकल्प करके होवे॥ १६७॥

# आयनेथीनीयियः फढखळघां प्रत्ययादीनाम् ॥११९॥ अ० ७। १ । २॥

जो प्रत्यय के द्यादि फ ढ ख छ छोर घ हैं, उनके स्थान में यथासंस्य करके आयन, एय्, ईन्, ईय् श्रोर इय् त्रादेश हों। जैसे -फ—नाडायन:, ढ—सीपर्णेय:, वैनतेय:, स—कुलीन:, छ—शालीय:, पैतृष्वस्रीय:, म— शुक्रियम् इत्यादि ॥ १६८॥

### वा०-वडवाया वृषे 🏶 वाच्ये ॥ १६६ ॥

वडवा प्रातिपदिक से वैत्त त्रपत्य वाच्य हो, तो ढक् प्रत्यय होवे। जैसे —वडवाया त्रपत्यं वृषो वाडवेय: ॥ १६६ ॥

## वा॰-अण् कुञ्चाकोकिलात्स्मृतः ॥ २०० ॥

सामान्यापत्य में कुञ्चा ग्रीर कोकिला शब्द से ढक् का वाधक त्राण प्रत्यय होते। जैसे—कुञ्चाया ग्रपत्यं कोञ्चः, कोकिलाया ग्रपत्यं कोकिलः ॥ २००॥

#### द्रचचः ॥ २०१ ॥ अ० ४ । १ । १२१ ॥

नदी त्रौर मानुषीवाची जो से त्रण् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह ऋपवाद है। ऋपत्यार्थ में टावादि स्त्रीप्रत्ययान्त द्वश्चच् प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय होवे। जैसे— दत्ताया ऋपत्यं दात्तेयः, गौपेयः इत्यादि।

यहां 'द्वचच्' प्रहण इसलिये है कि — यमुनाया ऋपत्यं यामुनः, यहां ढक् न होवे ॥२०१॥

\* यद्यपि वहवा शब्द घोड़ी का भी वाचक है, तथापि यहां वहवा शब्द से बिख हो का प्रह्या होता है, क्योंकि वहवा शब्द केवल घोड़ी का ही वाचक नहीं, किन्तु ब्राह्मणी प्रश्ना कुंमदासी तथा प्रत्य भी खीजाति का नाम है। तथाया—

रौरवो नरके घोरे चढ़वा द्विजयोषिति।

श्रश्वायां कुम्भदास्यां च नारीजात्मन्तरेपि च ॥ इति भाष्यप्रदीपकार कैच्यटः ॥

वृप शब्द से वीर्यवान् प्रश्व का प्रहण भी करते हैं । जैसे—वृषो वीजाश्वाः । तेन चार्येनःविहेषः विहितेनापत्यलचणोऽथों ढको बाध्यते । तेनापत्ये वाडव इति भवति । उस पच में वदवा शब्द से बोदी का प्रहण कर वृष शब्द से पूर्वोक्त प्रकार प्रश्व प्रपत्य समसना चाहिये ॥

## इतश्चानिञः ॥ २०२ ॥ अ० ४ । १ । १२२ ॥

्यह सूत्र सामान्य अर्था का अपवाद है। अपत्यार्थ में इज् प्रत्ययान्तभिन्न इकारान्त प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय होवे। जैसे—अत्रेरपत्यं आत्रेयः, नैधेयः, वार्ष्णेयः, कापेयः इत्यादि।

यहां 'इकारान्त' इसिलये कहा है कि—दािचः, प्राचिः। 'इज्भिन्न' इसिलये कहा है कि—दाचायणः, प्राचायणः, यहां इजन्त से ढक् न होवे। श्रीर 'दृब्यच्' की श्रमुवृत्ति इसिलये है कि—मरीचेरपत्यं मारीचः, यहां ढक् को बाध के श्रण् हो जावे॥ २०२॥

# शुस्राद्भियश्च \* ॥ २०३ ॥ अ० ४ । १ । १२३ ॥

यह सूत्र इज् आदि का यथायोग्य अपवाद समभना चाहिये। अपत्यार्थ में शुभ्र आदि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होवे। जैसे—शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः; वैष्टपुरेयः इत्यादि॥ २०३॥

# विकर्णकुषीतकात् काश्यपे ॥ २०४ ॥ अ० ४ । १ । १२४ ॥

यह सूत्र इञ्का अपवाद है। [काश्यप] अपत्य अर्थ में विकर्ण और कुषीतक प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय हो। जैसे-विकर्णस्यापत्यं वैकर्णेयः; कोषीतकेयः।

यहां 'काश्यप' प्रह्रण इसलिये है कि -वैकिण:, कोबीतिक:, यहां ढक् न होवे ॥२०४॥

# भुवी वुक् च ॥ २०५ ॥ अ० ४ । १ । १२५ ॥

यह अण् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में भ्रूपातिपदिक से ढक् प्रत्यय और इस को बुक् का आगम भी हो। जैसे — भ्रुवोऽपत्यं भ्रोवेय: ॥ २०४॥

# कल्याण्यादीनामिनङ् च ॥ २०६ ॥ अ० ४ । १ । १२६ ॥

अपत्यार्थं में कल्याणी आदि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय और इनको इनक् आदेश भी होते। जैसे -- कल्याण्या अपत्यं काल्याणिनेयः, ज्यैष्ठिनेयः, कानिष्ठिनेयः × इत्यादि ॥२०६॥

# हृद्भगसिंध्वनते पूर्वपदस्य च ॥ २०७ ॥ अ० ७ । ३ । १६ ॥

जो जित् ि होर कित् तद्धित प्रत्य परे हों, तो हृद् भग और सिन्धु जिनके अन्त हों, उन प्रातिपदिकों के पूर्व और उत्तरपदों में अचों के आदि अच् को वृद्धि होवे।

#इस चकार से इस शुश्रादिगया को आकृतिगया समयाना चाहिये, कि जिससे [गाङ्गेयः] पायदवेयः, इत्यादि अपटित शब्दों में भी उक् प्रत्यय हो जावे॥

अ यहां स्नीलिक प्रांतिपदिकों से दक् प्रत्यय तो हो ही जाता, फिर यह सूत्र इनक् आदेश होने हैं सिये हैं।

जैसे—सुभगाया त्रपत्यं सोमागिनेयः, दोर्भागिनेयः, सोहार्दम्, दोर्हार्दम्, साकुसैन्धवः इत्यादि ॥ २०७ ॥

#### कुलटाया वा ॥ २०८ ॥ अ० ४ । १ । १२७ ॥

यहां इनङ् आदेश की अनुवृत्ति चली आती है।

अपत्यार्थ में कुलटा प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय और इसको [विकल्प से ] इनङ् श्रादेश होने । जैसे—कुलटाया अपत्यं कौलटिनेयः, कौलटेयः ॥ २० ॥

## चटकाया ऐरक् ॥ २०६ ॥ अ० ४ । १ । १२८ ॥

यह सूत्र ढक् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में चटका शब्द से पेरक् प्रत्यय हो। अजैसे—चटकाया अपत्यं चाटकैर:॥ २०६॥

#### वा०-चटकाञ्च ॥ २१० ॥

यह वार्त्तिक इञ्का अपवाद है। चटक प्रातिपदिक से ऐरक् प्रत्यय होवे। जैसे—चटकस्याऽपत्यं चाटकैर:॥ २१०॥

# वा०-स्त्रियामपत्ये छुक् ॥ २११ ॥

स्त्री अपत्य होने तो पेरक् प्रत्यय का लुक् हो जाने। जैसे — चटकाया अपत्यं स्त्री चटका॥ २११॥

## गोधाया दुक् ॥ २१२ ॥ अ० ४ । १ । १२६ ॥

यह भी ढक्का अपवाद है। अपत्य अर्थ में गोधा प्रातिपदिक से ढूक् प्रत्यय होते। जैसे—गोधाया अपत्यं गौधेर:।

शुआदिग में गोधा शब्द पढ़ा है, इस कारण गोधेय:, यह भी प्रयोग होजाता ॥२१२॥

### आरगुदीचाम् ॥ २१३ ॥ अ० ४ । १ । १३० ॥

गोधा की अनुवृत्ति आती है। अपत्य अर्थ में गोधा प्रातिपदिक से आरक् प्रत्यय होने, उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में। जैसे—गोधाया अपत्यं गोधार: \* ॥ २१३॥

### श्चद्राभ्यो वा + ॥ २१४ ॥ अ० ४ । १ । १३१ ॥

यह भी ढक् का अपवाद है। श्रीर पूर्वसूत्र से ढूक् की अनुवृत्ति आती है। अपत्य अर्थ में चुद्रा आदि प्रातिपदिकों से ढ्क् प्रत्यय होवे, पद्म में ढक् हो। जैसे —काणेरः, काणेयः, दासेरः, दासेयः इत्यादि ॥ २१४॥

\* रक् प्रत्यय के कहने से गीधारः प्रयोग वन ही जाता, फिर प्राकारप्रह्या से यह ज्ञापक होता है कि ग्रन्य प्रातिपदिकों से भी 'श्रारक्' प्रत्यय होता है । जैसे —जाडारः; पायडारः इत्यादि ।।

+ चुद्रा उन कियों को कहते हैं जो छड़ों से, धर्म से और अच्छे स्वभाव से रहित होवें ॥

### पितृष्वसुरु अग्।। २१५॥ अ०४।१।१३२॥

यह सूत्र श्रण् प्रत्यय का वाधक है। श्रपत्य अर्थ में पितृष्वस् प्रातिपदिक से छुण् प्रत्यय होवे। जैसे — पितृष्वसुरपत्यं पैतृष्वस्रीय: ॥ २१४॥

### ढिक लोपः ॥ २१६ ॥ अ० ४ । १ । १३३ ॥

अपत्य अर्थ में जो ढक प्रत्यय परे हो, तो पितृष्वस् शृद्द के अन्त का लोप होते। जैसे-पैतृष्वसेय: \* ॥ २१६ ॥

#### मातृष्त्रसुश्च ॥ २१७ ॥ अ० ४ । १ ! १३४ ॥

यह भी ऋण् का अपवाद है।

अपत्य अर्थ में मातृष्वस् शब्द से छुण् प्रत्यय श्रीर ढक् के परे मातृष्यस् शब्द के अन्त का लोप भी होवे। जैसे—मातृष्यसुरपत्यं मातृष्यस्रीयः, मातृष्यसेयः॥ २१७॥

### चतुष्पाद्भ्यो ढञ् ॥ २१८ ॥ अ० ४ । १ । १३५ ॥

यह अग् आदि का अपवाद है।

अपत्यार्थ में चतुष्पाद्वाची प्रातिपदिकों से ढञ्प्रत्यय होवे। जैसे-कामएडलेयः, शीन्तिवाहेयः, यामेयः, माहिषेयः, शौरभेयः इत्यादि ॥ २१८॥

### गुष्ट्यादिभ्यश्च ॥ २१६ ॥ अ० ४ । १ । १३६ ॥

यह सूत्र केवल अग् का ही अपवाद है।

अपत्य अर्थ में गृष्टि आदि प्रातिपदिकों से ढज् प्रत्यय होवे। जैसे—गृष्ट्या अपत्यं गार्धेयः, हार्थेयः, हालेयः, वालेयः, वैश्रेयः इत्यादि ॥ २१६ ॥

### राजश्वशुराद्यत् ॥ २२० ॥ अ० ४ । १ । १३७ ॥

यह त्रण् श्रोर इञ्दोनों का बाधक है। श्रपत्यार्थ में राजन् श्रौर ख़शुर प्राति-पदिकों से यत् प्रत्यय हो। जैसे—राजोऽपत्यं राजन्यः; श्वशुर्यः॥ २२०॥

### वा०-राज्ञोऽपत्ये जातिप्रहणम् ॥ २२१ ॥

सूत्र में जो राजन् शब्द से यत् कहा है, सो जातिवाची राजन् शब्द का प्रहण् सममता चाहिये। जैसे—राजन्यः, जो चत्रिय होवे, नहीं तो राजनः॥ २२१॥

# यहां डक् प्रत्यय के परे जो जोप कहा है, सो इसी ज्ञापक से पितृष्वस शब्द से डक प्रत्यय होता है।।

#### क्षत्राद् घः ॥ २२२ ॥ अ० ४ । १ । १३८ ॥

यह सूत्र इञ्का बाधक है। अपत्यार्थ में चत्र प्रातिपदिक से घ प्रत्यय होवे। जैसे—चित्रयः, यहां भी जाति ही सममानी चाहिये, क्योंकि जहां जाति न हो वहां चात्रिः, इञन्त प्रयोग होवे॥ २२२॥

#### कुलात् खः ॥ २२३ ॥ अ० ४ । १ । १३६ ॥

यह भी इञ्का ही अपवाद है। अपत्य अर्थ में कुल शब्द से ख प्रत्यय हो। उत्तर-सूत्र में अपूर्वपद प्रहण करने से इस सूत्र में पूर्वपदसहित और केवल का भी प्रहण होता है। जैसे—श्रोत्रियकुलीन:; आढ चकुलीन:; कुलीन: इत्यादि ॥ २२३॥

# अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ 🕸 ॥२२४॥ अ० ४ । १ । १४० ॥

श्रापत्यार्थ में पूर्वपदरहित कुल शब्द से यत् श्रीर ढकञ्प्रत्यय विकल्प करके होवें। जैसे—कुल्य:, कौलेयक:, कुलीन:।

यहां 'पद' ब्रह्मण इसिलये हैं कि बहुच् पूर्वपद हो तो भी ख प्रत्यय होजावे। जैसे— बहुकुल्य:; बहुकौलेयक:; बहुकुलीन: ॥ २२४ ॥

## महाकुलादञ्खञी ॥ २२५ ॥ अ० ४ । १ । १४१ ॥

यहां विकल्प की श्रमुवृत्ति श्राती है।

अपत्यार्थ में महाकुल प्रातिपदिक से अञ् और खञ् प्रत्यय विकरण करके होतें, पद्म में ख होते। जैसे—माद्दाकुलः, माहाकुलीनः, महाकुलीनः ॥ २२४॥

### दुष्कुलाड् ढक् ॥ २२६ ॥ अ० ४ । १ । १४२ ॥

अपत्यार्थ में दुष्कुल शब्द से ढक प्रत्यय विकल्प करके हो, पन्न में ख हो जावे। जैसे—दोष्कुलेय:; दुष्कुलीन: ॥ २२६ ॥

### स्वसुरुद्धः ॥ २२७ ॥ अ० ४ । १ । १४३ ॥

अपत्य अर्थ में खसु प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हो। जैसे—खसुरपत्यं खस्त्रीयः। यह अर्थ का वाधक है ॥ २२७॥

## भ्रातुर्व्यच ॥ २२८ ॥ अ० ४ । १ । १४४ ॥

यह सूत्र भी ग्रग् का श्रपवाद है। श्रपत्यार्थ में आतृ शब्द से व्यत्, ग्रोर चकार से स्त्र प्रत्यय भी होवे। जैसे—आतृब्यः, आत्रीयः ॥ २२८॥

\* यह अप्राप्तविभाषा इपिलिये है कि कुल शब्द से यत् और उक्त प्रत्य किसी से प्राप्त नहीं है।

#### व्यन् सपते \* ॥ २२६ ॥ अ० ४ । १ । १४५ ॥

ः सपत्न त्रर्थात् शत्रु वाच्य हो, तो भ्रात प्रातिपदिक से व्यन् प्रत्यय हो। जैसे— पाप्मना भ्रातृब्येणुः भ्रातृब्यः कर्एटकः ॥ २२६॥

## रेवत्यादिभ्यष्टक् ॥ २३० ॥ अ० ४ । १ । १४६ ॥

यह सूत्र ढक् स्रादि का स्रपन्धः है। स्रपत्यार्थं में रेवती स्रादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—रेवत्या स्रपत्यं रैवतिकः; स्राश्वपातिकः; माणिपातिकः इत्यादि ॥२३०॥

### गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च ॥ २३१ ॥ अ० ४ । १ । १४७ ॥

यह उक् का अपवाद है। निन्दित युवापत्य अर्थ में गोत्रसंद्यक स्त्रीवाची प्राति-पदिक से ए, और चकार से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—गार्ग्या अपत्यं जात्मो गार्ग्यः, गार्गिकः, ग्लुचुकायन्या अपत्यं ग्लोचुकायनः, ग्लोचुकायनिकः।

यहां 'गोत्र' प्रह्म इसिलये है कि — कारिकेयो जाल्म:, यहां कारिका शब्द गोत्र-प्रत्ययान्त नहीं है। 'स्त्रीवाची' इसिलये है कि — श्रोपगिवर्जाल्म:, यहां न होवे। 'कुत्सन' इसिलये है कि — गार्गेयो माण्यक:, यहां निन्दा के न होने से उत्सर्ग ढक हो गया, किन्तु म श्रोर ठक नहीं हुए॥ २३१॥

# वृद्धाटुक् सोवीरेषु बहुलम् ॥ २३२ ॥ अ० ४ । १ । १४८ ॥

यहां कुत्सन पद की अनुवृत्ति आती है। अपत्य और कुत्सन अर्थ में वृद्धसंज्ञक सौवीर गोत्रवाची मातिपदिक से ठक् मत्यय बहुल करके हो। जैसे—भागवित्तेर्युवापत्यं भागवित्तिकः; तार्णविन्द्वस्य युवापत्यं तार्णविन्द्विकः। पद्म में फक् और इज् हो आते हैं भागवित्तायनः; तार्णविन्द्विः।

यहां 'वृद्ध' प्रहण स्त्री की निवृत्ति के लिये हैं। 'सौबीर' प्रहण इसिक्तये हैं कि— श्रोपगवि:, यहां न होवे। श्रोर 'कुत्सन' की श्रमुवृत्ति इसिक्तये हैं कि—भागवित्तायनो माणवकः, यहां भी ठक्न होवे॥ २३२॥

#### फेर्छ च ॥ २३३ ॥ अ० ४ । १ । १४६ ॥

कुत्सन ग्रोर सोवीर पदों की श्रजुवृत्ति श्राती है। श्रपत्यार्थ में किञन्त सोवीर गोत्रवाची प्रातिपदिक से छ श्रोर चकार से ठक् प्रत्यय भी होवे। जैसे—यामुन्दायनीय:, यामुन्दायनिक:।

\* यहां अपत्यार्थ की विवचा नहीं है, क्योंकि आता का पुत्र शत्रु नहीं हो सकता, और इसी कारण आए राज्य का प्रकृत्यर्थ यहां प्रधान नहीं रहता है; किन्तु प्रत्ययार्थ जो शत्रु है, वहीं प्रधान रहता है ॥ यहां 'कुत्सन' ग्रहण इसिलये है कि —यामुन्दायिन:, यहां ग्रण् का लुक् हो गया है। 'सोबीर' इसिलये है कि —तैकायिन:, यहां छ न होवे॥ २३३॥

# फागटाहृतिमिसताभ्यां गाफिजौ ॥२३४॥ अ० ४ । १ । १५०॥

सौबीर पद की अनुवृत्ति यहां आती है, और कुत्सन पद की निवृत्ति हुई। और यह सूत्र फक् प्रत्यय का अपवाद है।

अपत्य अर्थ में सौवीर गोत्रवाची फाएटाहृति और मिमत प्रातिपदिकों से ए औरफिञ् प्रत्यय होवे। जैसे-फाएटाहृतेरपत्यं फाएटाहृत:, फाएटाहृतायनि:, मैमत:, मैमतायनि:।

यहां 'सोवीर' का प्रहण इसिलये है कि—फाएटाहतायनः; मैमतायनः, यहां ए स्रोर फिञ्न हुए ॥ २३४ ॥

# कुर्वादिभ्या गयः ॥ २३५ ॥ अ० ४ । १ । १५१ ॥

यह भी इञ् आदि का बाधक यथायोग्य समस्तना चाहिये।

अपत्यार्थ में कुरु आदि प्रातिपदिकों से एय प्रत्यय हो। जैसे —कुरोरपत्यं कौरव्यः, गार्ग्यः, माङ्गुष्यः, आजमारक्यः इत्यादि ॥ २३४ ॥

## सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च ॥ २३६ ॥ ऋ० ४ । १ । १५२ ॥

यह सूत्र इज् का अपवाद है। अपत्यार्थ में सेनान्त लच्चण और कारि अर्थात् कुंभार आदि कारीगरवाची प्रातिपदिकों से एय प्रत्यय होवे। जैसे—सेनान्त—भीमसेन-स्यापत्यं भैमसेन्य: क्षारिणेएय:; हारिणेएय:; वैष्वक्सेन्य: अोप्रसेन्य: इत्यादि। लच्चण—लाच्चएय:। कारि—तान्तुवाय्य:; कोम्भकार्थ: इत्यादि॥ २३६॥

## उदीचामिञ् ॥ २३७ ॥ अ० ४ । १ । १५३ ॥

यहां सेनान्त आदि की अनुवृत्ति आती है।

अपत्यार्थ में उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में सेनान्त लज्ञण और कारिवाची प्राति-पिद्कों से इञ्प्रत्यय होवे। जैसे—भीमसेनस्यापत्यं भैमसेनिः; हारिषेणिः; लाज्ञिणः; तान्तुवायिः; कौम्भकारिः; नापितिः इत्यादि ॥ २३७ ॥

## तिकादिभ्यः फिञ् ॥ २३८ ॥ अ० ४ । १ । १५४ ॥

यह भी यथायोग्य इञ् आदि का वाधक है।

श्रपत्यार्थ में तिक श्रादि प्रातिपदिकों से फिज् प्रत्यय होते। जैसे—तिकस्यापत्यं तैकायनिः, कैतवायनिः, सांश्रायनिः, इत्यादि ॥ २३८॥

अध्यापि कुरुवाची होने से भीमसेन शब्द से श्रम् प्राप्त है, तो भी परविप्रतिषेध से एय ही होता है ॥

# कौसल्यकार्मार्याभ्यां च ॥ २३६ ॥ अ० ४ । १ । १५५ ॥

यह यज् प्रत्यय का वाधक है। श्रपत्यार्थ में कौसल्य श्रीर कार्मार्य शब्दों से फिज् प्रत्यय हो। जैसे—कौसल्यस्यापत्यं कौसल्यायनिः, कार्मार्थ्यायणिः ॥ २३६ ॥

# वा०-फिञ्पकरणे दग्रकोसलकर्मारच्छागवृषाणां युट् च ॥२४०॥

फिञ् प्रकरण में द्रगु कोसल कर्मार छाग श्रोर वृष प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय श्रोर प्रत्यय को युट् का श्रागम होवे। जैसे—दागव्यायिनः; कांसल्यायिनः; कार्मार्थ्यायिणः; छाग्यायिनः; वाष्यीयिणः॥ २४०॥

### श्राणो द्व्यचः ॥ २४१ ॥ अ० ४ । १ । १५६ ॥

यह सूत्र इञ् प्रत्यय का ऋपवाद है। ऋपत्यार्थ में ऋगुन्त दुव्यच् प्रातिपदिक से किञ् प्रत्यय हो। जैसे—कार्त्रस्यापत्यं कार्त्रायिण्:; हार्त्रायिण्:; यास्कायिन: इत्यादि।

यहां 'अगुन्न' इसिलये है कि—दात्तायगः', यहां न हो । श्रीर 'द्व्यच्' इसिलये कहा है कि—श्रीपगवि:, यहां भी फिल्लान होते॥ २४१॥

### वा०-त्यदादीनां वा फिञ् वक्तव्यः \* ॥ २४२ ॥

अपत्य अर्थं में त्यदादि प्रातिपदिकों से फिज् प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे— त्यादायनिः, त्यादः, यादायनिः, यादः, तादायनिः, तादः इत्यादि ॥ २४२ ॥

# उदीचां वृद्धादगोत्रात् ॥ २४३ ॥ अ० ४ । १ । १५७ ॥

यह भी इञ् आदि का वाधक है। अपत्यार्थ में गोश्रभिन्न बृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में फिञ् प्रत्यय होवे। जैसे--आस्रगुप्तस्यापत्यं आस्र-गुप्तायनि:; शावगुप्तायनि:; प्रामग्नायणि:; नापितायनि: इत्यादि।

यहां 'उत्तरदेशीय त्राचार्यों का मत' इसिलये कहा है कि — त्राम्रगुप्तिः, यहां फिञ् न होवे। 'वृद्ध संक्षक' इसिलये है कि — याक्षदित्तः, यहां भी न हो। श्रीर 'गोत्र का निषेध' इसिलये है कि — श्रीपगविः, यहां भी न होवे॥ २४३।

# वाकिनादीनां कुक् च ॥ २४४ ॥ अ० ४ । १ । १५८ ॥

उत्तरदेशीय आचाय्यों के मत में अपत्य अर्थ में वाकिन आदि प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय, और इनको कुक् का आगम भी होवे। जैसे—वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायिन:, पक्त में वाकिनि:, गारेधकायिन:, गारेधि: इत्यादि।

यह अग् और इञ्दोनों का अपवाद है ॥ २४४ ॥

\* यह वार्त्तिक ग्रंग् प्रत्यय का बाधक है। ग्रौर इसमें ग्रप्राप्तविभाषा है, क्योंकि फिल् किसी सूत्र वार्त्तिक से प्राप्त नहीं। फिल् के विकल्प से पत्त में ग्रंग्यू भी हो जाता है॥

#### पुत्रान्ताद्न्यतरस्याम् ॥ २४५ ॥ अ० ४ । १ । १५६ ॥

यह अग् का अपवाद और इसमें अप्राप्तविभाषा है।

उत्तरदेशीय आचारयों के मत में पुत्रान्त प्रातिपदिक से फिअ प्रत्यय और इनको कुक् का आगम विकल्प करके होने । जैसे — गार्गीपुत्रस्यापत्यं गार्गीपुत्रकायिः, गार्गी-पुत्रायिः, गार्गीपुत्रिः, चारसीपुत्रकायिः, वारसीपुत्रायिः, वारसीपुत्रिः इत्यादि ॥२४४॥

# प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम् ॥ २४६ ॥ अ० ४ । १ । १६० ॥

अपत्यार्थं ग्रोर प्राचीन श्राचार्यों के मत में वृद्धसंद्वारहित प्रातिपदिक से फिन्
प्रत्यय वहुत करके हो जावे। जैसे—ग्लुचुकस्यापत्यं ग्लुचुकायनिः; श्रहिचुम्बकायनिः।

यहां 'प्राचीनों का' ग्रहण इसलिये है कि—ग्लीचुकि:, श्राहिचुम्बिक:, यहां इञ् हो जाता है। श्रीर 'वृद्ध का निषेध' इसलिये किया है कि—राजदन्ति:, यहां फिन् न होवे॥ २४६॥

# मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च ॥ २४७ ॥ अ० ४ । १ । १६१ ॥

जाति श्रर्थ हो, तो मनु शन्द से श्रञ् श्रीर यत् प्रत्यय श्रीर मनु शन्द को षुक् का श्रागम हो आवे। जैसे—मानुषः, मनुष्यः।

यहां प्रकृति श्रीर प्रत्यय के समुदाय से जाति का वोध होता है। यहां श्रपत्य श्रर्थं की विवद्या नहीं है। श्रीर जहां श्रपत्य श्रर्थं विवद्यित होता है, वहां श्रण् ही हो जाता है। जैसे—मनोरपत्यं मानवी प्रजा ॥ २४७ ॥

# का०-श्रपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरोत्सर्गिकः स्मृतः। नकारस्य च मूर्द्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः॥ २४८॥

मूढ निन्दित अपत्य अर्थ में मनु प्रातिपदिक से श्रोत्सर्गिक अर्ण् प्रत्यय का स्मरण् करमा चाहिये। अर्थात् अर्ण् प्रत्यय हो जावे श्रोर मनु शब्द के नकार को स्वच्य होवे। जैसे—मनोरपत्यं कुत्सितो मूढो मासवः॥ २४ =॥

# अपत्यं पौत्रप्रसृति गोत्रम् ॥ २४६ ॥ अ० ४ । १ । १६२ ॥

जो यौत्रप्रभृति अर्थात् नाती से आदि लेकर अपत्य नाम सन्तान होता है, वह गोत्रसंज्ञक होवे। जैसे—गर्गस्याऽपत्यं पौत्रप्रभृति गार्ग्यः, वात्स्यः।

अ यहां ( उदीचां बृद्धा॰ ) इससे फिन् प्रत्यय तो हो ही जाता, फिर 'कुक्' का प्रागम विकल्प से होने के लिये यह सूत्र है । एक कुक् के आगम का विकल्प, और उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में फिल् का विकल्प इन दो विकल्पों से तीन प्रयोग होते हैं ॥ यहां 'पौत्रप्रभृति' इसिलये कहा है कि — ग्रनन्तरापत्य ग्रर्थात् पुत्र श्रर्थ हैं गोत्र का प्रत्यय न होवे। जैसे — कौक्षि:, गार्गि: क इत्यादि ॥ २४६ ॥

# जीवति तु वंश्ये युवा ॥ २५० ॥ अ० ४ । १ । १६३ ॥

को उत्पत्ति का प्रबन्ध है सो वंश, श्रीर जो उस वंश में होवे वह वंश्य कहाता है।

जब तक पिता आदि कुदुम्य के वृद्ध पुरुष जीवते हों, तव तक जो पीत्र आदि सन्तानों के अपत्य हैं, वे युवसंशक होवें।

यहां तु शब्द निश्चयार्थ है कि उस समय युवसंज्ञा ही हो, गोत्रसंज्ञा न हो। जैसे— गार्ग्याय्याः; वात्स्यायनः इत्यादि॥ २४०॥

### भ्रातरि च ज्यायसि ॥ २५१ ॥ अ० ४ । १ । १६४ ॥

जो वड़ा भाई जीता हो श्रीर पिता श्रादि मर भी गये हों, तो छोटे भाई की युवसंक्षा जाननी चाहिये। जैसे—गार्ग्यायणः, वात्स्यायनः, दाचायणः, प्लाचायणः इत्यादि ॥२४१॥

### वाउन्यस्मिन् सिप्रिडे स्थविरतरे जीवति + ॥ २५२ ॥

जो भ्राता से अन्य सात पीढ़ी में चाचा दादा आदि अधिक अवस्थावाले पुरुष जीते हों, तो भी पौत्रप्रभृति के अपत्यों की विकल्प करके युवसंज्ञा होवे। जैसे—गर्गस्यापत्यं गाग्यों वा गार्ग्यायणः; वात्स्यो वा वात्स्यायनः; दान्निर्वा दान्नायणः इत्यादि ॥ २४२॥

#### वा०-वृद्धस्य च पूजायाम् ‡ ॥ २५३ ॥

वृद्ध अर्थात् जिस प्रशंसित की वृद्ध संज्ञा विधान की है, सो भी पूजा अर्थ में विकल्प करके युवसंज्ञक होने हे जैसे — तत्रभवान् गार्ग्यायणः, गार्ग्यो वाः, तत्रभवान् वात्स्यायनः, वात्स्यो वाः, तत्रभवान् वात्स्यायनः, वात्स्यो वाः, तत्रभवान् वात्स्यायनः,

#### यहां पूजाप्रहण इसलिये हैं कि - गार्ग्यः, यहां युवसंज्ञा न हो ॥ २४३॥

- \* यहां गोत्र में कुन्ज शब्द से च्फल, ग्रौर गर्ग शब्द से यम् विहित हैं, सो नहीं हाते । ग्रमन्त-रापत्य में इम् होजाता है-॥
- + यहां जीवित शब्द की अनुवृत्ति (जीवित तु०) इस पूर्व सूत्र से चली आती, फिर जीवित शब्द का अह्या इसिलये हैं कि संज्ञी का विशेषण यह जीवित होवे। और पूर्व का जो जीवित है, वह सिपिय का विशेषण समक्ता चाहिये॥
- ‡ (बृदस्य च॰) श्रौर (यूनश्र॰) •ये दोनों काशिका श्रादि पुस्तकों में सूत्र करके लिखे श्रौर व्याख्यात भी हैं, परन्तु महामाध्य में वार्तिकरूप से इनका व्याख्यान किया है, इसलिये यहां वार्तिक ही लिखे हैं॥

#### वा०-यूनश्च कुरतायाम् ॥ २५४ ॥

कुत्सा नाम निन्दा अर्थ में युवा की युवसंद्वा विकल्प करके होने। जैसे—गाम्यों जालमः, गाम्यायणो वाः, वात्स्यो जालमः, वात्स्यायनो वाः दाक्तिर्जालमः, दान्नायणो वा इत्यादि ॥ २४४ ॥

# जनपद्शब्दात् क्षत्रियादञ् \* ॥ २५५॥ अ० ४ । १ । १६८॥

जो स्वियवाची जनपद शब्द हो, तो उससे अपत्यार्थ में अञ् प्रत्यय होवे। जैसे— पाञ्चालः, पेस्वाकः, वदेहः इत्यादि।

यहां 'जनपद शब्द से' इसिलये कहा है कि—दुद्योरपत्यं द्रौद्यवः, पौरवः, यहां स्रञ् त होवे। 'क्षात्रयवाची' का ग्रहण इसिलये है कि—ग्राह्मणस्य पाश्चासस्यापत्यं पाश्चासिः; वैदेश्विः, इत्यादि में भी अञ्घलय न हावे॥ २४४॥

## वा०-क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदशब्दात् तस्य राजन्यापत्यवत् × ॥२५६

जो ज्ञतिय के तुरुय जनपद्वाची शब्द है, उससे राजा के सम्बन्ध में श्रपत्य के तुरुय प्रत्यय होत । जैसे—पञ्चालानां राजा पाञ्चालः; वैदेहः; मागधः + इत्यादि ॥ २४६ ॥

### साहवेयगान्धारिभ्यां च ॥ २५७ ॥ अ० ४ । १ । १६६ ॥

यह बदयमाण ज्यङ् प्रत्यय का अपवाद है।

अपत्य और तद्राज अर्थ में साख्वेय और गान्धारि इन शब्दों से अञ् प्रत्यय होते। जैसे—साख्वेयानामपत्य तेषां राजा वा साख्वेय:; गान्धार: ॥ २४७॥

# द्वयञ्मगधकिकिस्रस्रमसाद्या ॥ २५८ ॥ अ०४ । १ । १७० ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में चित्रयवाची दो खर वाले शब्द मगध कलिङ्ग और सूरमस प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे। जैसे—ग्रङ्गानामपत्यं तेषां राजा वा ग्राङ्गः; वाङ्गः; मागधः; कालिङ्गः; सोरमसः इत्यादि ॥ २४८॥

# यह जनपद शब्द मुख्य देश का पर्यायवाची है, सो इससे देशविशेष पञ्चाल प्रादि का प्रह्र्या होता है। वे पञ्चाल आदि शब्द चित्रयों श्रीर देशविशेष के नाम एक ही से बने रहते हैं॥

× यहां तक अपत्याधिकार देवल चला आता है। श्रव जो देशविशेष श्रीर चन्नियविशेष के नाम पद्माल आदि शब्द हैं, उन देश के नामों से तद्राज अर्थात् उन देशों का राजा इस अर्थ में, और चन्नियवाची शब्दों से अपत्य अर्थ में यहां से पाद के अन्त-पर्यन्त प्रत्यविधान समस्ता चाहिये॥

+ इन पद्माल छ।दि शब्दों से तद्राज धर्थ में ( प्रवृद्धादपि॰ ) इस स्त्र से शैषिक बुज प्रत्यप्र प्राप्त है, उसका अपवाद यहां अज् विधान है ॥

# वृद्धत्कोसलाजादाञ्ज्यङ् ॥ २५६ ॥ अ० ४ । १ । १७१ ॥

अपत्य और तद्राज ग्रर्थ में जनपद चित्रयवाची वृद्ध संज्ञक इकारान्त कोसल श्रीर अजाद प्रातिपदिक से ज्याङ् प्रत्यय होते।

यह सूत्र श्रज् का अपवाद है। जैसे-वृद्ध-श्राम्बद्धानामपत्यं तेषां राजा वा श्राम्बद्ध्यः, सोवीर्यः । इकारान्त-श्रावन्त्यः, कोव्ह्यः । कीसत्यः, श्राजाद्यः ॥ २४६॥ वा०-पाग्डोजनषद्शब्दात् क्षत्रियशब्दाद् ख्यण् वक्तव्यः ॥ २६०॥

को जनपदवाची पाराडु स्विय शब्द है, उससे अपत्य और तद्वाज श्रर्थ में स्वरा अस्पय होवे। जैसे — पाराडुनामपत्य तेषां राजा वा पाराड्य: ॥ २६०॥

# कुरुनादिभ्यो एयः ॥ २६१ ॥ अ० ४ । १ । १७२ ॥

अपत्य स्रोर तद्राज श्रर्थ में जनपद चित्रयवाची कुरु स्रोर नकागदि प्रातिपदिकों से ः एय प्रत्यय होते। यह स्रण् स्रोर स्रञ् का अपवाद है। जैसे—कुरूणामपत्यं तेषां राजा वा कौरव्य:। नकारादि—नैषध्यः; नैषध्यः इत्यादि ॥ २६१॥

# साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् ॥२६२॥ अ० ४।१।१७३॥

#### ते तद्राजाः ॥ २६३ ॥ अ० ४ । १ । १७४ ॥

(जनपद्शन्दात्०) इस सूत्र से लेके यहां तक जो २ प्रत्यय कहे हैं, वे तद्राजमंद्रक होते हैं। इस का यह प्रयोजन है कि बहुवचन में लुक् होजांधे। जैसे—पाञ्चालः, पाञ्चालो, पञ्चालाः इत्यादि॥ २६३॥

### कम्बोजाल्लुक् ॥ २६४ ॥ अ० ४ । १ । १७५ ॥

अपत्य और तदाज अर्थ में कम्बोज शब्द से विद्वित जो अञ् प्रत्यय उसका लुक् हो। जैसे कम्बोजस्यापत्यं तेषां राजा वा कम्बोज: ॥ २६४ ॥

# वा०-कम्बोजादिभ्यो छुग्वचनं चोलाद्यर्थम् ॥ २६५ ॥

कम्बोज शब्द से जो लुक् कहा है, सो कम्बोज श्रादि से कहना चाहिये। जैसे-कम्बोज; चोलः; केरलः; शकः; यवनः॥ २६४॥

अ यहां इकार में 'तपरकरण' इसकिये है कि जो कुमारी जनपद शब्द दीर्घ ईकारान्त है, उस से ज्यक् प्रत्यप न होये, किन्तु अस् प्रत्यप हो जाये। जैसे —कीमार:॥

## स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ॥ २६६ ॥ अ० ४ । १ । १७६ ॥ उ

जो स्त्री अपन्य वा राज्ञी अभिधेय हो, तो अवन्ति कुन्ति और कुरु शब्द से जो उत्पन्न तद्राजसंज्ञक प्रत्यय उस का लुक् हो। जैसे—अवन्तीनामपत्यं तेषां राज्ञी वा अवन्ती; कुन्ती; कुरू:।

यहां कीं ग्रहण इसिलये हैं कि—ग्रावन्त्यः, कौन्त्यः, कौन्त्यः +, यहां लुक न होते ॥ २६६ ॥

# त्रतश्च \* ॥ २६७ ॥ अ० ४ । १ । १७७ ॥

जो स्त्रीवाच्य हो, तो तद्राजसंज्ञक श्रकार प्रत्यप्र का लुक् होवे। जैसे — मद्रागामपुरमं तद्राज्ञी वा मद्री; श्ररसेनी इत्यादि।

यहां जातिवाची से (जातेरस्त्री०) इस करके ङीप् प्रत्यय हो जाता है ॥ २६७ ॥

# न प्राच्यभगीदियोधेयादिभ्यः ॥ २६८ ॥ अ० ४ । १ । १७८ ॥

प्राच्य पूर्वदेशों के विशेषनाम भर्गादि श्रीर योधेयादि प्रातिपदिकों से विदित तद्वाज-संद्यक श्रम्यय का लुक न होते। जैसे—प्राच्य—श्रङ्गानायप्रत्यं तद्वाज्ञी वा श्राङ्गी, वाङ्गी, प्राश्चित्री इत्यादि। भर्गादि—सार्गी; काळ्बी; कैश्यी इत्यादि। योधेयादि—योधेयी; शोश्चयी; शोक्नेयी इत्यादि॥ २६८॥

श्रथ दितीयः पादः—् । १ ६ ० व १ ५,५५० १ १८ । । । । । ।

# तेन रक्तं रागात् ॥ २६६ ॥ अ० ४ । २ । १ ॥

तियासमर्थ रङ्गवाची प्रातिपदिक से रंगा है, इस अर्थ में जिस से जो प्रत्येष प्राप्त हो वह हो जाने । जैसे—कुसुम्भेन रक्षं वहां कोसुम्सम्, काषायम्, मासिप्रम् इत्यादि ।

यहां 'रंग वाची' का ग्रहण इसलिये हैं कि देवदत्तेन रक्त वेस्त्रम्, यहां प्रत्यय की

+ यहां धर्जन्ति श्रीर कुन्ति शहर से इकारान्त के होने से ( बृद्धेको॰ ) इस से ज्यह, श्रीर कुर्हें शब्द से यय प्रत्यय ( कुरुना० ) इय उक्त सूत्र से होजाते हैं।

अ इस सूत्र में तदन्त प्रधि अर्थात् अकारान्त प्रत्यय का लुक् इसलिये नहीं होता कि पूर्व सूत्र में अव्यक्ति शाहि शब्दों से लुक् कहा है, वही ज्ञापक है। जो यहां अवन्त का लुक् होवे, तो पूर्व सूत्र में लुक् व्यर्थ होतावे !!

# छाचारोचनाटुक् ॥ २७० ॥ अ० ४ । २ । २ ॥

यहां पूर्वसूत्र के सब परों की अनुवृत्ति चली आती है। लाह्मादि और रोखन प्राति-पदिकों से उक् प्रत्यय होवे। जैसे—लाह्मया रक्तं वस्रं लाह्मिकम्; रोचिनिकम्।

अधिकार होने से अण् प्रत्यय पाता है, उस का बाधक यह सूत्र है ॥ २७० ॥

# वा०-ठक्पकरणे शकलकईम भ्यामुपसंख्यानम् ॥ २७१ ॥

अस् का ही अपवाद यह भी वार्तिक है। शकन और कईम प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—शकतेन रक्तं शाकितकम्, काईमिकम् ॥ २७१ ॥

### वा॰-नील्या अन् ॥ २७२ ॥

नीली प्रातिपदिक से अन् प्रत्यय होवे । जैसे—नीह्या रक्तं नीखम् ॥ २७२ ॥

#### वा०-पीतात्कन् ॥ २७३ ॥

पीत प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होवे। जैसे-पीतेन रक्तं पीतकम् ॥ २७३ ॥

## वा०-हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् ॥ २७४ ॥

हरिद्रा ग्रीर महारजना प्रातिपदिकों से श्रश् प्रत्यय होते। जैसे—हरिद्रया रक्त हारिद्रम् \*; माहारजनम् ॥ २७४ ॥

## नक्षत्रेग् युक्तः कालः ॥ २७५ ॥ अ० ४ । २ । ३ ॥ 😁 🗥

युक्त काल अर्थं जो अभिधेय हो, तो तृतीयासमर्थं नस्त्रविशेषवाची प्रातिपदिक् से अस् प्रत्यय होने। जैसे—पुष्येस युक्तः कालः=पौषी राजिः, पौषमहः, माघी राजिः, माघमहः इत्यादि।

्यहां 'नज्ञवाची' का ब्रह्ण इसिंविये हैं कि चन्द्रमसा युक्ता राजिः, यहां ब्रत्यय न होवे॥ २७४॥

### हुबविशेषे ॥ २७६ ॥ अ० ४ । २ । ४ ॥

जहां काल का अवयवरूप कोई विशेष अर्थ विहित न हो, वहां पूर्व सुत्र से जो बिहित प्रत्यय उसका लुप् हो जावे। जैसे—पुष्येण युक्तः कालोऽस पुष्यः, अस स्रतिकाः, अस रोहिशो।

्यहां 'ऋषिशेष' इसिकाये कहा है कि—्दौषी रात्रिः; पौषमहः, यहां लुप् न होवे ॥२७६॥

ं क्र 'हारिड़ी कुकुटस्य पादी' ह रहा से रक्षे हुए के समाज सुर्ग के पग हैं। इस प्रयोजन में उपमानवाची मान के अन मस्यय हो जाता है ॥

### दष्टं स.म ॥ २७७ ॥ अ० ४ । २ । ७ ॥

सामवेद का देखना अर्थात् पढ़ना पढ़ाना विचारना अर्थ हो, तो स्तीयासमर्थ पाति-पिरिक से अण् आदि यथापात प्रत्यय होते। जैसे —वसिष्ठेन दृष्टं साम वासिष्ठम्। वैश्वामित्रम्: रेवेन दृष्टं साम दैव्यं दैवं वा; प्रजापितना दृष्टं साम प्राजापत्यम् इत्यादि ॥२७०॥

# वा०-सर्वत्राधिकलिभ्यां ढक् 🛊 ॥ २७८ ॥

यहां से आगे जितने प्राग्दीव्यतीय अर्थ हैं, वे इस वार्त्तिक में सर्वत्र शब्द से विविद्यति हैं।

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अग्नि और किल प्रातिपदिकों से ढक प्रत्यय होवे। जैसे—अग्निना हुएं सामाञ्चेयम्; अग्नेगगतमाञ्चेयम्; अग्नेगगतमाञ्चेयम्, अग्नेगगतमाञ्चेयम्, अग्नेगगतमाञ्चेयम्, इत्यादि । इसी प्रकार किलना हुएं साम कालेयम्, इत्यादि भी समस्रो॥ २७८॥

# का०-दृष्टे सामनि जाते च दिरग् डिद्वा विधीयते । र्त.यादीक्ड न विद्याया गोत्रादङ्कविद्वित्यते ॥ २७६ ॥

सामवेद के देखने अर्थ में अण् प्रत्यय विकल्प करके डित्संइक होये। जैसे— उशनसा दृष्टं साम औरानसम्, स्रोशनम्। यहां डित् पत्तं में टि का नोप हो जाता है।

तथा (तत्र जातः) इस आगामी प्रकरण में अपने अपवाद का अपवाद होके फिर विधान किया अस् प्रत्यय विकल्प करके डित् होचे। जैसे—शतभिषित्र जातः शात-भिषजः, शातभिषः। डित् का प्रयोजन यहां भी पत्त में दि लोप है। यहां शतभिषज्ञ नक्षत्रवाची प्रातिपद्दिक से युक्त काल अर्थ में अस् प्रत्यय होकर उसका अविशेष अर्थ में लुए हो जाता है, पीछे शैषिक जात अर्थ में अस् का बाधक कालवाची से ठा प्राप्त होता है, फिर ठा का बाधक (सन्धिवेला) इससे अस् विधान किया है।

तीयप्रन्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ईकक् प्रन्यय होवें। जैसे—द्वैतीयीकम् तार्तीयीकम् । श्रीर विद्यादाची तीयप्रत्यवान्त प्रातिपदिकों से ईकक न होवे। जैसे— द्वितीया विद्याः, तृतीया विद्याः।

श्रीर गोत्रवाची प्रातिपदिकों ने सामवेर के देखने अर्थ में श्रद्ध आदि अर्थों में जो प्रत्यय होते हैं, वे यहां भी हावें। जैसे—(गोत्रचग्णा०) इस सूत्र से गोत्रवाबी शब्दों से श्रद्ध अर्थ में बुज् प्रत्यय होता है, वैसे ही यहां भी होवे। जैसे—गार्गेण हुएं साम गार्थकम्; वात्स्यकम्; श्रीपगवेन हुएं साम श्रीपगवकम्; कापटवकम् इत्यादि॥ २७६॥

अ इस वार्तिक को काशिका आदि पुस्तकों में ( अग्रेर्डक् ) इतना चुत्र किसा है । फिर वार्तिक श्री ऐता ही सिसा है, सो महाभाष्य से विरुद्ध होने के कारण अवस जानना बाहिये। अस्ति किसा परिवृतो रथः ॥ २८० ॥ अ० ४ । २ । ६ ।

जो परिवृत अर्थात् किसी चाम आदि से मढ़ा रथ आदि यान अर्थ वाच्य हो, तो तियासमर्थ प्रातिपदिकों से अर्ग् प्रत्यय होवे। जैसे—चर्मणा परिवृतो रथआर्मणः काम्यतः; बाह्यः इत्यादि।

यहां 'रथ' का प्रहण इसिलये किया है कि - वस्त्रेण परिवृतं शरीरम्, यहां प्रत्यय

न होवे ॥ २८० ॥

कामाराऽपूर्ववचने ॥ २८१ ॥ अ० ४ । २ । १२ ॥

पूर्व जिसका किसी के साथ विवाहविषयक कथन भी न हुआ हो, उस अपूर्ववचन अर्थ में कुमारी शब्द से अण्पत्ययान्त कोमार निपातन किया है ॥ २८१ ॥

वा०-कौमारापूर्ववचन इत्युभयतः स्त्रिया अपूर्वत्वे ॥ २८२ ॥

स्त्री का अपूर्ववचन अर्थ हो तो स्त्री श्रोर पुत्तिङ्ग में कोमार शब्द निपातन किया है। जैसे—अपूर्वपति कुमारीमुपपन्न: कीमारो मर्चा; अपूर्वपति: कुमारी पतिमुपपन्ना कौमारी भार्या कृ॥ २८२॥

तत्रोदृधृतममत्रेभ्यः ॥ २८३ ॥ अ० ४ । २ । १३ ॥

उद्दुधृत श्रथीत् रखने श्रथीमें सप्तमीसमर्थ पात्रवाची प्रातिपदिकों से श्रग् प्रस्थय होने। जैसे—पञ्जकपालेषूद्धृत श्रोदनः पञ्जकपालः 🔀 श्रगवेषुदुधृतः शारावः इस्यादि ।

यहां 'पात्रवाची' का प्रहण इसलिये हैं कि-पाणा बुद्धत श्रोदनः, यहां प्रत्यय न होवे ॥ २=३ ॥

साहिमन् पौर्णमासीति ॥ २८४ ॥ अ० ४ । २ । २० ॥

अधिकरण अर्थ बाच्य होचे, तो पौर्णमासी विशेषवार्थी प्रतिपदिकों से यथाप्राप्त प्रस्यय होचें। जैसे—पुष्येण युक्ता पौर्णमासी पौषी, पौषी पौर्णमासी प्रस्मिन मासे स पौषी मासः, पौषोऽधंमासः, पौषः संवत्सरः। इसी प्रकार मचानत्त्रत्रेण युक्ता पौर्णमासी माधी, साऽस्मिन्वर्तत इति माघो मासः, फाल्गुनः, चैत्राः वैशाखः, ज्येष्टः, आवाहः, आवणः, माद्रादः, आधिनः, कार्तिकः, मार्गशीर्षः।

इस सूत्र में 'इनिकरण' से संज्ञाब्रहण का वयोजन सूत्रकार का है ॥ २०४॥

ं इस वार्तिक का प्रयोजन यह है कि प्रत्य विधान तो कुमारी शब्द से ही होते, पश्नु प्रत्ययार्थ होनी कि में रहे। अपूर्ववचन अर्थ का सम्बन्ध कुमारी के साथ ही रहे। जैसे—पूर्व जिस का कोई पनि कहने मात्र भी न हुंबा हो, ऐसी कुमारी को प्राप्त हुआ पुरुष कीमार, आर वसी ही कुमारी पति को प्राप्त हुई कीमारी ॥

अस्य का तुक् द्वित संज्ञा के हाने से हो जाता है।

## वा०-साऽहिमन् पौर्णमासीति संज्ञायहणम् ।। २८५॥

(माऽस्मिन्०) इस सुत्र में संज्ञाग्रहण करना चाहिये। अर्थात् अहां प्रकृति प्रत्यय के समुदाय से महीनों की संज्ञा प्रकट हो, वहीं प्रत्यय हावे। श्रीर—पार्वा पौर्णमास्यस्मिन् पञ्चद्वरात्रे, यहां प्रत्यय न हो ॥ २८४॥

#### आग्रहायण्यश्वत्थाद्वक् ॥ २८६ ॥ अ० ४ । २ । २१ ॥

यह सुत्र पूर्वसूत्र से प्राप्त अग् का अपवाद है ॥

ं ्पीर्णमाक्षी समानाधिकरण आग्रहायणी और अश्वन्थ प्रातिपदिकों से अधिकरण अर्थ में ठ म् प्रत्यय होत्रे। जैसे—आग्रहायणी पीर्णमास्यस्मिन् मासे स आग्रहायिको मासः अर्द्धमासो वाः आश्वित्यकः ॥ २८६॥

## विभाषा फाल्गुनी अवगाकार्तिकीचैत्रीभ्यः ।।२८७॥ अ० ४।२।२२॥

पौर्णमासी समानाधिकरण फालगुनी अवणा × कार्तिकी स्रोर चैत्री प्रांतिपदिकीं से अधिकरण स्रर्थ में विकल्प करके उक् प्रत्यय हो, स्रोर पक्ष में श्रण् हो जावे। जैसे—फालगुनी पौर्णमास्यस्मित् मासे स फाल्गुनिको मासः, फाल्गुनो मासः, श्राविको मासः, श्रावणो मासः, कार्तिकको मासः, कार्तिको मासः, चैत्रिको मासः, चैत्रीको मासः, चैत्रीको मासः। ॥२०॥

### साऽस्य देवता ॥ २८८ ॥ अ० ४ । २ । २३ ॥

शेषकारक वाच्य हो, तो प्रथमासमर्थ देवताविशेषवाची प्रातिपदिकों से यथायोग्य प्रत्यय हो। जैसे —प्रजापतिर्देशताऽस्य प्राजापत्यम्: +; इन्द्रो देवताऽस्य पेन्द्र हवि:, पेन्द्रो मन्त्र:, पेन्द्री ऋक् इत्यादि ॥ २८८॥

### कस्येत् ॥ २८६ ॥ अ० ४ । २ । २४ ॥

यहां पूर्वसूत्र से त्राण् प्रत्यय हो ही जाता, फिर इकारादेश होने के लिये यह सूत्र है।

देवता समानाधिकरण क प्रातिपदिक से श्रण् प्रत्यय श्रीर प्रकृति को इकारादेश भी होते । जैसे—को देवताऽस्य कार्य इवि:, कार्यो मन्त्र:, कार्यो श्रृक् ।

ं काशिका ग्रादि पुस्तकों में संज्ञाग्रहण सूत्र में ही मिला दिया है, सो ठीक नहीं है, क्योंकि वार्तिक पढ़ने से । ग्रीर यहां कैयट ने भी लिला है कि — ''संज्ञाग्रहणं सुग्नेऽनापैमिति वार्तिकमारस्थम्''॥

ः इस सूत्र में श्रप्राप्तविभाषा इसालयें है कि ठक् किसी से प्राप्त नहीं, श्रया प्राप्त है, उसी का यह अपवाद है ॥

× जन्नज्ञवाची अवणा शब्द से युक्त काल अर्थ में (संज्ञापां अवणा० ४। २। ४) इस सूत्र से प्रत्यय का जुप् हो जाता है, पौर्णमासी का विशेषण प्रत्यमार्थ बना रहता है ॥

+ यहां श्रया का अधिकार भी है, तथाऽपि उसको वाध कर (दिलादित्या०) इस स्था से प्रयुक्तर-पद प्रातिपदिक से यय प्रत्यम हो जाता है।। यहां 'इत् में तपरकरण' तत्काल का बोध होने के लिये है ॥ २८६॥

# वाय्वृतुषित्रुषसो यत् ॥ २६० ॥ अ० ४ । २ । ३० ॥

प्रथम।समर्थ देवता समानाधिकरण बायु ऋनु ितः श्रीर उषस् प्रानिपदिकों से, बग्नी के अर्थ में श्रण् का बाधक यत् प्रत्यय होवे। जेसे—बायुर्देवताऽस्य बायव्यम्ः ऋतव्यम्, पित्र्यम्, उषस्यम् ॥ २६०॥

यात्रापृथिर्वाशुनासीरमहत्वद्ग्नीषोमवास्तोष्पतिग्रहमेधाच्छ च॥२६१॥ अ० ४। २।३१॥

# यहां यत् की अनुवृत्ति पूर्वसूत्र से चकी आती है।

प्रधमासमर्थं देवता समाना शिकरण द्यावापृथिवी स्नादि प्रातिपदिकों से, षष्टी के अर्थ में स्नु स्नीर यत् प्रत्यय होवें । जैसे—द्यावापृथिवणी देवते अन्य द्यावापृथिकीयम्, द्यावा-पृथिन्यम्, श्रुनासीरीयम्, श्रुनासीर्थम्, महत्वतायम्, महत्वत्यम्, स्रुप्तीवोमीयम्, स्रुप्ती-षोभ्यम्, वान्ताष्पतीयम्, वान्तोष्पत्यम्, गृह्षमेश्रीयम्, गृह्षमेष्यम् ॥ २६१ ॥

# कालेभ्यो भववत् ॥ २६२ ॥ अ० ४ । २ । ३३ ॥

(तम्र भवः) इस अधिकार में जिल काल नाची प्रातिपदिक से जो प्रत्यय प्राप्त है, वही यहां देवता समानाधिकरण काल विशेषवाची प्रातिपदिक से होने। जैसे—संवत्सरो देवताऽस्य सांवत्सरिकः, यहां सामान्य काल वाची से ठम्र है, प्रावृद् देवताऽस्य प्रावृषेग्यः, यहां ग्यः, ग्रीष्मो देवताऽस्य ग्रैष्मम्, ग्रीष्म शब्द का उत्सादिकों में पाठ होने से अम् होता है। इत्यादि प्रकरण की योजना करलेनी चाहिये॥ २६२॥

# महाराजश्रोष्ठपदाटुञ् ॥ २६३ ॥ अ० ४ । २ । ३४ ॥

देवता समानाधिकरण महाराज श्रीर प्रोष्ट्रपद शब्दों से पष्टी के श्रर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे---महाराजो देवताऽस्य माहाराजिकम्; प्रोष्ट्रपदिकम् ॥ २१३॥

# बा०-ठञ् प्रकरणे तदस्मिन् वर्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानस् २९४

काल अधिकरण अभिधेय होवे, तो नवयद्वादि प्रातिपदिकों से ठञ प्रत्यय होवे। जैसे नवयद्वीऽस्मिन् काले वर्त्ततं नावयिक्षकः, पाकयिक्षकः इत्यादि ॥ २६४॥

# वा०-पूर्णमासादण् ॥ २६५ ॥

पूर्व वार्तिक से कालाधिकरण की अनुवृत्ति आती है। कालाधिकरण अर्थ में पूर्णमास प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय हो। जैसे — पूर्णमासोऽस्मिन् काले वर्तते इति पौर्णमासी तिथिः, यहां अपने अपवाद ठा को बाध के अण् है।। २६४।।

# पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ॥२६६॥ अ० ४। २। ३५॥

आता अर्थ वाच्य हो, तो पितृ और मातृ शब्दों से व्यत् तथा डुलच् प्रत्यय यथासंख्य करके निपातन किये हैं। जैसे—पितुर्भाता पितृव्यः, मातुर्भाता मातुलः। पिता का भाई 'पितृव्य' और माता का भाई 'मातुल' कहाता है।

श्रौर मातृ तथा पितृ प्रातिपदिकों से पिता श्रर्थ में डामहच् प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—मातुः पिता मातामहः, पितुः पिता पितामहः। माता का पिता मातामह=नाना, श्रौर पिता का पिता पितामह=दादा कहाते हैं॥ २६६॥

#### वा०-मातरि षिच्च ॥ २६७ ॥

मातृ ऋषे ऋभिधेय होवे, तो पूर्व प्रातिपदिकों से कहा डामहच् प्रत्यय षित् हो जावे। जैसे —मातुर्माता मातामही; पितुर्माता पितामही। माता की माता नानी ऋौर पिता की माता दादी।

यहां 'षित्' करने का प्रयोजन यह है कि - स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय होजावे ॥२६७॥

# वा०-अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचः ॥ २६८ ॥

श्रवि प्रातिपदिक से दुग्ध श्रर्थ में सोढ दूस श्रोर मरीसच् प्रत्यय होवें। जैसे— श्रवेर्दुग्धमविसोढम्; श्रविदूसम्; श्रविमरीसम्॥ २६८॥

## वा०-तिलाक्निष्फलात् पिञ्जपेजौ ॥ २६६ ॥

निष्फल समानाधिकरण तिल प्रातिपदिक से पिञ्ज श्रीर पेज प्रत्यय होतें। जैसे— निष्फलं तिलं तिलपिञ्जम्; तिलपेजम् ॥ २६६ ॥

# वा०-पिञ्जरछन्द्सि डिच्च ॥ ३०० ॥

पूर्वोक्त पिञ्ज प्रत्यय वैदिकप्रयोग विषय में डित् होवे। जैसे—तिलिपञ्जं दएडानतम्, यहां डित् होने से टिसंज्ञक श्रकार का लोप हो जाता है ॥ २००॥

### तस्य समूहः ॥ ३०१ ॥ अ० ४ । २ । ३६ ॥

यह अधिकार सूत्र है। षष्टीसमर्थ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में यथाप्राप्त प्रत्यय होवें। जैसे—वनस्पतीनां समूहो वानस्पत्यम्; स्रीणां समूह: स्रेणम्; पौंस्नम् इत्यादि ॥३०१॥

# गोत्रोक्षोष्ट्रोरश्चराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् बुञ् ॥३०२॥ अ०४ । २ । ३८ ॥

षष्ठीसमर्थ जो गोत्रवाची उत्त उष्ट्र उरभ्र राज राजन्य राजपुत्र वत्स मनुष्य और अज ब्रातिपदिक हैं, उन से समूह अर्थ में ऋण् का वाधक बुञ् प्रत्यय होने।

जैसे-ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लोचुकायनकम्; गार्ग्यकम्; वात्स्यकम्;गार्ग्यायणकम् इत्यादि । उद्यां समूह त्रौद्धकम् श्रोद्धकम्; त्रौरश्चकम्; राजकम्; राजन्यकम्; राज-पुत्रकम्, वात्सकम्; मानुष्यकम् +; त्राजकम् ॥ ३०२ ॥

### वा०-वृद्धाच्च ॥ ३०३ ॥

वृद्ध शब्द से भी समृह अर्थ में बुञ् प्रत्यय हो। जैसे - वृद्धानां समृहो वार्द्धवःम् ॥३०३॥

## ब्राह्मणमाणवबाडवाचन् ॥ ३०४ ॥ अ० ४ । २ । ४१ ॥

ब्राह्मण माण्व श्रोर बाडव प्रातिपदिकों से समृह श्रर्थ में यन् प्रत्यय होवे। जैसे— ब्राह्मणानां समृहो ब्राह्मण्यम्ः माण्य्यम्ः वाडव्यम् ॥ ३०४॥

# वा०-यन्प्रकरगो पृष्ठादुपसङ्ख्यानम् ॥ ३०५ ॥

पृष्ठ शब्द से भी यन् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-पृष्ठानां समूहः पृष्ठचम्॥ ३०४॥

# ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ॥ ३०६ ॥ अ० ४ । २ । ४२ ॥

समूह ऋर्थ में प्राम जन ऋोर वन्धु प्रातिपदिकों से तल् प्रत्यय होने । जैसे-प्रामाणां समूहो ग्रामताः जनताः बन्धुता ॥ ३०६॥

### वा०-गजसहायाभ्यां च ॥ ३०७ ॥

गज श्रोर सहाय प्रातिपदिकों से समूह श्रर्थ में तल् प्रत्यय होवे। जैसे—गजानां समूहो गजता; सहायता।

इस वार्तिक का सहाय शब्द काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र में मिला दिया है ॥३०७॥

### वा०-अहः खः ऋतौ ॥ ३०८ ॥

यश्च अर्थ में श्रहन् प्रतिपदिक से खप्रत्यय हो। जैसे—श्रह्मां समृहोऽहीन:कृतु:॥३०८॥ वा०-पश्वी सास् ॥ ३०६॥

पर्धा प्रातिपदिक से समृद्ध अर्थ में गुस् प्रत्यय होवे। जैसे-पर्धानां समृद्धः पार्छम्।

\* यहां महाभाष्य के प्रमाय से लोक में युवा को भी गोत्र कहते हैं। इसिलये युव प्रत्ययान्त को गोत्र मान के गार्थायया श्रादि शब्दों से बुक् प्रत्यय होता है॥

+ यहां राजन्य श्रीर मनुष्य शब्द के यकार का लोप प्राप्त है, सो (प्रकृत्या के॰ ) इस व्यक्तिक से प्रकृतिशाव हो जाने से लोप नहीं होता ॥

णुस् प्रत्यय में सित्करण के होने से पदसंज्ञा होकर भसंज्ञा का कार्य्य उवर्णान्त श्रङ्ग को गुण नहीं होता ॥ ३०६॥

# अनुदात्तादेरज् ॥ ३१० ॥ अ० ४ । २ । ४३ ॥

अनुदात्तादि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में अञ् प्रत्यय हो । जैसे —कुमारीणां समूहः कौमारम्;केशोरम्;बाधूटम्;चैरएटम्;कपोतानां समूहः कापोतम्,मायूरम् इत्यादि ॥३१०॥

# खरिडकादिभ्यश्च ॥ ३११ ॥ अ० ४ । २ । ४४ ॥

खिएडका त्रादि प्रातिपदिकों से समूह ऋथे में त्राज् प्रत्यय हो। जैसे खिएडकानां समूह: खाएडकम्; वाडवम् इत्यादि। यह सूत्र ठक् का बाधक है ॥ ३११॥

## वा०-अञ्प्रकरणे चुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायाम् ।। ३१२ ॥

चुद्रक और मालव ये दोनों शब्द जनपद च्रियवाची हैं। उनसे उत्पन्न हुए तद्राज-संश्वक प्रत्यय का लुक् हो जाता है। फिर दोनों का समाहारद्वन्द्व समास होके अन्तो-दात्तस्वर हो जाता है। फिर अनुदात्तादि के होने से अञ्ज्ञरस्यय हो ही जाता, फिर गोत्रवाची से (गोत्रोच्चो०) इस से बुज् प्रत्यय प्राप्त है, उस का अपवाद अञ्विधान किया है।

श्रीर यह वार्त्तिक नियमार्थ भी है कि जुद्रकमालव प्रातिपदिक से सेना की संज्ञा श्रर्थ ही में श्रज् प्रत्यय होवे, श्रन्यत्र नहीं। जैसे — ज्ञोद्रकमालवी सेना। श्रीर जहां सेना-संज्ञा न हो, वहां ज्ञोद्रकमालवकम्; गोत्रवाची से बुज् प्रत्यय हो जावे॥ ३१२॥

### अचित्तहस्तिधेनोष्टक् ॥ ३१३ ॥ ऋ० ४ । २ । ४६ ॥

समूह अर्थ में चित्तवर्जित इस्ति और घेनु प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होने। जैसे—अपूपानां समूहः आपूपिकम्; शाष्कुत्तिकम्, साक्तुकम् इत्यादि। हास्तिकम् \*; घेनुकम् ॥ ३१३॥

## विषयो देशे ॥ ३१४ ॥ अ० ४ । २ । ५१ ॥

जो वह विषय देश होवे, तो षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से ऋण् प्रत्यय हो। जैसे---शिवीनां विषयो देश: शैव:, ऋष्ट्र:, पाशव: इत्यादि।

यहां 'देश' ब्रह्ण इसलिये है कि --देवदत्तस्य विषयोऽ जुवाकः, यहां प्रत्यय न हो ॥३१४॥

\* यहां (प्रातिपदिकप्रहर्णे लिङ्गवि०) इस परिभाषा से खीलिङ्ग हास्तिनी शब्द से भी प्रत्यय होजाता है। जैसे--हिस्तिनीनां समृहो हास्तिकम्। ग्रीर ( भस्यादे तिद्धते ) इस वार्त्तिक से पुंवद्गाव होता है॥

## सङ्ग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः ॥ ३१५ ॥ अ० ४ । २ । ५५ ॥

संग्राम ऋथं में प्रथमासमर्थ प्रयोजनवाची श्रौर योद्घृवाची प्रातिपदिकों से श्रण् प्रत्यय हो। जैसे—भद्रा प्रयोजनमस्य संग्रामस्य भाद्रः संग्रामः; सोभद्रः; गौरिमित्रः। योद्घृभ्यः—श्रहिमाता योद्धारोऽस्य संग्रामस्य स श्राहिमाताः; स्यान्दनाऽश्वः; भारतः । इत्यादि।

यहां 'संग्राम' का श्रहण इसिलये है कि सुभद्रा प्रयोजनमस्य दानस्य, यहां श्रत्यय न होवे। श्रोर 'प्रयोजनयोद्धृ' ग्रहण इसिलये है कि सुभद्रा प्रेचिकाऽस्य संग्रामस्य, यहां भी न हो॥ ३१४॥

### तद्धीते तद्देद \* ॥ ३१६ ॥ अ० ४ । २ । ५८ ॥

द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से अधीत और वेद अर्थात् पढ़ने और जानने अर्थों में अण् प्रत्यय हो। जैसे—यश्छन्दोऽधीते वेद वा स छान्दसः; व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः; नैरुक्तः; निमित्तानि वेद नैमित्तः; मौहूर्त्तः इत्यादि ॥ ३१६ ॥

# कत्वथादिसूत्रान्ताटुक् ॥ ३१७ ॥ अ० ४ । २ । ५६ ॥

यह सूत्र अर्ग् का बाधक है। क्रतुविशेषवाची उक्थ आदि और सूत्रान्त प्राति-पदिकों से अधीत और वेद अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे।

ST.

जैसे—क्रतुवाची—श्रग्निष्टोममधीते वेद वा श्राग्निष्टोमिकः; श्रश्लमेधमधीते वेद वा श्राश्र्वमेधिकः; वाजपेयिकः; राजसूयिकः। उक्थादि—उक्थं सामगानमधीते वेद वा श्रोक्थिकः; लौकायतिकः इत्यादि। सूत्रान्त—योगसूत्रमधीते वेद वा यौगसूत्रिकः; गौभिलीयसूत्रिकः; श्रोतसूत्रिकः; पाराश्ररसूत्रिकः इत्यादि॥ ३१७॥

## वा०-विद्यालक्षणकल्पसूत्रान्तादकल्पादेरिकक् स्मृतः ॥ ३१८॥

विद्या लज्ज् करूप और सूत्र ये चार शब्द जिनके अन्त में हों, और करूप शब्द आदि में न होने, ऐसे प्रातिपदिकों से पढ़ने और जानने अर्थ में ठक् प्रत्यय होने।

जैसे - विद्या-वायसविद्यामधीते वेत्ति वा वायसविद्यिकः; सार्पविद्यिकः । लक्षण-गोलक्षणमधीते वेद वा गौलक्षणिकः; ग्राञ्चलक्षणिकः । कल्प-पराशरकल्पमधीते वेत्ति वा पाराशरकल्पिकः; मातृकल्पिकः । सूत्र-वार्त्तिकसूत्रमधीते वेद वा वार्त्तिकसृत्रिकः; साङ्ग्रहसृत्रिकः इत्यादि ।

यहां 'अकल्पादि का निषेध' इसलिये हैं कि—कल्पसूत्रमधीते वेद वा काल्पसूत्रः, यहां ठक् न हो, किन्तु ऋण् प्रत्यय ही हो जावे ॥ ३१८॥

\* इस स्त्र में दो वार तृत् शब्द का पाठ इसिलये है कि एक शास्त्र को पढ़ रहा और दूसरा पढ़ा हुआ शास्त्र का वेता, ये।दोनों पृथक् २ सममें जावें ॥

### वा०-विद्या चानङ्गचत्रधर्मत्रिपूर्वा ॥ ३१६ ॥

अङ्ग चत्र धर्म और त्रि ये चार शब्द जिसके पूर्व हों, ऐसे विद्या प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय न होवे, किन्तु अण् ही हो जावे। अन्य कोई शब्द पूर्व हो तो विद्या शब्द से ठक् ही हो, यह नियम इस वार्त्तिक से समभो। जैसे—अङ्गविद्यामधीते वेत्ति वा आङ्गविद्यः; चात्रविद्यः; धार्मविद्यः; त्रैविद्यः॥ ३१६॥

#### वा०-त्र्राख्यानाख्यायिकेतिहासपुराग्रेभ्यश्च ॥ ३२० ॥

त्राख्यान त्राख्यायिका इतिहास स्रोर पुराण इन चार के विशेषवाची प्रातिपदिकों से पढ़ने स्रोर जानने स्रर्थ में ठक् प्रत्यय हो।

जैसे—ग्राख्यान—यवक्रीतमधीते वेत्ति वा यावक्रीतिकः; प्रैयङ्गविकः; यायातिकः। ग्राख्यायिका—वासवदत्तामधीते वेद वा वासवदत्तिकः; सौमनोत्तरिकः। इतिहासमधीते वेद वा ऐतिहासिकः; पौराणिकः इत्यादि ॥ ३२०॥

### का०-अनुसूर्लच्यलक्षणे सर्वसादेर्द्विगोश्च लः। इकन् पदोत्तरपदात् शतषष्टेः षिकन् पथः॥ ३२१॥

श्रनुस् लस्य भौर लत्त्रण्ये तीनों ग्रन्थविशेषों के नाम हैं। इनसे ठक् प्रत्यय हो। जैसे—श्रनुस्वमधीते श्रानुसुकः, यहां (इसुसु०) इस स्त्र से प्रत्यय को ककारादेश हो जाता है। लत्त्यमधीते वेद वा लास्यिकः, लात्त्राणिकः।

सर्व और स शब्द जिसके आदि में हों पसे द्विगु संज्ञक प्रातिपदिक से विहित प्रत्यय का लुक हो जावे। जैसे—सर्ववेदमधीते वेत्ति वा सर्ववेदः; सर्वतन्त्रः। सवार्त्तिकमधीते वेद वा सवार्त्तिकः; ससङ्ग्रहः।

पद शब्द जिसके झन्त में हो ऐसे प्रातिपदिक से इकन् प्रत्यय होते। जैसे-पूर्वपद-मधीते वेद वा पूर्वपदिक:; उत्तरपदिक:।

पथ शब्द जिनके अन्त में हो, ऐसे शत और षष्टि प्रातिपदिकों से षिकन् प्रस्यय हो। प्रस्यय में षित्करण स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होने के लिये है। जैसे—शतपथमधीते वेसि वाश्रतपथिकः, शतपथिकी; षष्टिपथिकः, षष्टिपथिकी इत्यादि॥ ३२१॥

#### प्रोक्ताल्लुक् ॥ ३२२ ॥ अ० ४ । २ । ६३ ॥

अध्येत वेदित अर्थ में प्रोक्त प्रत्ययान्त से विहित ति ति ति स्वयं का लुक् हो जावे। जैसे — पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयमधीते वेद वा पाणिनीयः, पाणिनीया ब्राह्मणीः, काशकृत्स्नेन प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी, काशकृत्स्नों मीमांसामधीते ब्राह्मणी काशकृत्स्ना, यहां ब्रानुपसर्जन के नहोंने से फिर ङीप् नहीं होता॥ ३२२॥

### न्नन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ॥ ३२३॥ अ०४। २। ६५॥

छुन्द श्रोर ब्राह्मण ये दोनों प्रोक्तप्रत्ययान्त अध्येत वेदित प्रत्ययार्थविषयक हों, श्राय्यात् पढ़ने श्रोर जानने अर्थों के विना प्रोक्तप्रत्ययान्त छुन्द श्रोर ब्राह्मणों का पृथक् प्रयोग न होवे। जैसे — कठेन प्रोक्तं छुन्दोऽधीयते ते कठाः; मोदाः; पैप्पलादाः; श्राचार्यिनः; वाजसनेयिनः। ब्राह्मण्—ताण्डिनः; भाह्मविनः; शाट्यायनिनः; पेतरेयिणः।

यहां 'छन्दोब्राह्मण्' ग्रहण इसिलये है कि—पाणिनीयं व्याकरणम्; पैक्नी कल्पः, यहां तद्विषयता न होवे ॥ ३२३ ॥

### तद्स्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥ ३२४ ॥ अ० ४ । २ । ६६ ॥

यह सूत्र मत्वर्थ प्रत्ययों का अपवाद है। जो देश का नाम होवे, तो श्रस्ति समान् नाऽधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें। जैसे—उदुम्वरा श्रस्मिन् देशे सन्ति श्रोदुम्बरो देश:, बाल्वज:, पार्वत:।

यहां 'तन्नाम' प्रहण इसलिये है कि-गोधूमा: सन्त्यस्मिन् देशे, यहां प्रत्यय न होवे ॥ ३२४॥

### तेन निर्वृत्तम् ॥ ३२५ ॥ अ० ४ । २ । ६७ ॥

निर्वृत्त अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें । जैसे—सहस्रोण निर्वृत्ता साहस्री परिखाः, कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी ॥ ३२५ ॥

#### तस्य निवासः ॥ ३२६ ॥ अ० ४।२।६८॥

जहां निवास देश अर्थ वाच्य हो, वहां षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें। जैसे — ऋजुनावान्निवासो देश आर्जुनावो देश:; शैव:; श्रीदेष्ट:; उत्सस्य निवासो देश श्रीत्स:; कौरव: इत्यादि ॥ ३२६ ॥

#### अदूरभवश्च ॥ ३२७ ॥ अ० ४ । २ । ६६ ॥

त्रदूरभव त्रर्थात् समीप त्रर्थं में षष्टीसमर्थं प्रातिपदिकों से त्रण् प्रत्यय हो। जैसे— विदिशाया त्रदूरभवं वैदिशं नगरम्; हिमवतोऽदूरभवं हैमवतम्; हिमालयस्यादूरभवो देशो हैमालयः इत्यादि।

इस सूत्र से आगे चारों अर्थों की अनुवृत्ति चलती है, इसी से यह प्रकरण चातु-रिथक कहाता है ॥ ३२७ ॥

#### त्रोरञ् ॥ ३२८ ॥ अ० ४ । २ । ७० ॥

उक्त चारों श्रथों में पष्टीसमर्थ उवर्णान्त प्रातिपिदकों से श्रम् प्रत्यय हो। जैसे— श्ररहु—श्रारडवम्; कत्ततु—कात्ततवम्: कर्कटेलु —कार्कटेलवम्; रुरवः सन्त्यस्मिन् देशे, रुक्तणां निवासो देशोऽदूरभवो वा रौरवः; परश्रना निर्वृत्तं पारशवम् इत्यादि ॥ ३२८॥

### वुञ्छएकठजिलसेनिरहञ्गययफिक्फिञिञ्ज्यककठकोऽरीहणकृशा-श्वर्थकुमुदकाशतृणप्रेचारमसिक्सङ्काशवलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रग-दिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥ ३२६ ॥ श्र० ४ । २ । ८० ॥

यह सूत्र अर्ण् का अपवाद है। अरीहणादि सत्रह गणस्थ प्रातिपदिकों से पूर्वोक्त चार अर्थों में यथासंख्य करके युज् आदि सत्रह (१७) प्रत्यय होते हैं। आदि शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ योग होता है।

जैसे—अरीहणादिकों से बुज्—आरीहणकम्; द्रोबणकम्; खद्राणामद्रभवं नगरम् खाद्रिकम्। कृशाश्व आदि से छण् —कार्शाखीयम्; आरिष्टीयः। ऋश्य आदि से क—ऋश्यकः; न्यग्रोधकः; शिरकः। कुमुद आदि से ठच्—कुमुदिकम्; शक्करिकम्; न्यग्रोधकम्। काश् आदि से इल —काशिलम्। वाशिलम्। तृण् आदि से स—तृण्यः; नडसः; वुससः। प्रेच्च आदि से इनि—प्रेचीः; हलकीः, बन्धुकी। अश्म आदि से र—अश्मरः; यूषरः; कषरः; मीनरः। सखि आदि से ढज्—साखेयम्; साखिदचेयम्। सङ्काश्य आदि से एय—साङ्काश्यम्; काम्पिस्यम्; सामीर्थम्। वल आदि से य — बल्यः; कुल्यम्। पच्च आदि से एक्—पाचायणः, तौषायणः, आण्डायनः। कर्ण् आदि से फिज्—कार्णायनः, वासिष्ठायनिः। सुतङ्गम् आदि से इज्—स्रोतङ्गमः, मौनचित्तः, वैप्रवित्तः। प्रगदिन् आदि से ज्य—प्रागद्यम्; मागद्यम्; शारद्यम्। वराह् आदि से कक्—वागहकम्; पालाशकम्। और कुमुदादिकों से उक् प्रत्यय होवे। जैसे—कौमुदिकम्; गौमथिकम् इत्यादि॥ ३२६॥

#### जनपदे छुप् ॥ ३३०॥ अ० ४। २। ८१ ॥

जहां जनपद अर्थात् देश अभिश्रेय रहे, वहां उक्त चार अर्थों में जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय होता है, उस का लुप् हो। जैसे—पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः; कुरवः; मत्स्याः; अङ्गाः; वङ्गाः; मगधाः; पुराड्गः + इत्यादि ॥ ३३०॥

#### शेषे ॥ ३३१ ॥ अ० ४ । २ । ६२ ॥

यह अधिकार सूत्र है, इस का अधिकार (तस्येदम्) इस आगामी सूत्रपर्यन्त जाता है। अपत्य आदि और उक्त चार अर्थों से जो भिन्न अर्थ हैं, सो शेष कहाते हैं।

इस सूत्र से आगे जो २ प्रत्यय विधान करें सो २ शेष अर्थों में जानो। और यह विधिस्त्र भी है। जैसे—चजुषा गृह्यते चाजुषं रूपम्; आवणः शब्दः दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः वितंडया प्रवर्त्तते वैतंडिकः; उल्लाले जुएणः श्रीलुखलो यावकः; श्रासैरुह्यते आस्त्रो रथः; चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटम् इत्यादि। यहां सर्वत्र यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं ॥३३१॥

<sup>+</sup> यहां ( लुपि युक्तव॰ ) इस सूत्र से व्यक्तिवचन प्रयात् लिङ्ग ग्रीर संख्या प्रत्यय होने से पूर्व के समान प्रत्यय लुप के प्रश्रात् भी रहते हैं ॥

#### राष्ट्रावारपारादु घखौ ॥ ३३२ ॥ अ० ४ । २ । ६३ ॥

राष्ट्र और अवारपार प्रातिपदिकों से यथा संख्य करके घ और ख प्रत्यय होवें। जात आदि शेष अर्थों में और उन २ अर्थों में जो २ समर्थिवभक्ति हों सो २ सर्वत्र जाननी चाहिये। जैसे—राष्ट्रे भवो जातो वा राष्ट्रियः, अवारपारीणः ॥ ३३२॥

### वा०-विग्रहीतादपि ॥ ३३३॥

विगृहीत कहते हैं भिन्न २ को, अर्थात् अवारपार शब्दों से अलग २ भी ख प्रत्यय हो । जैसे—अवारीणुः; पारीणः ॥ ३३३ ॥

#### वा०-विपरीताच्च ॥ ३३४॥

पार पूर्व और अवार पर हो तो भी समस्त प्रातिपदिक से ख होवे। जैसे— पारावारीण: ॥ ३३४ ॥

#### यामायल्जी ॥ ३३५॥ अ०४ । २ । ६४॥

जात त्रादि ऋथौं में ग्राम प्रातिपदिक से यू और खज् प्रत्यय होवें। जैसे-ग्रामे जातो भवः क्रीतो लब्धः कुशलो वा ग्राम्यः; ग्रामीणः ॥ ३३४ ॥

#### दक्षिणापश्चारपुरसस्त्यक् ॥ ३३६ ॥ अ० ४ । २ । ६७ ॥

यह सूत्र द्विणा ग्रादि ग्रव्यय शब्दों से त्यप् प्राप्त है, उसका वाधक है।

द्त्तिणा त्रादि तीन श्रव्यय शब्दों से शैषिक श्रर्थों में त्यक् प्रत्यय होवे। जैसे— दाक्तिणात्यः, पोश्चात्यः, पौरस्त्यः ॥ ३३६ ॥

### द्युप्रागपागुद्कप्रतीचो यत् ॥ ३३७ ॥ अ० ४ । २ । १०० ॥

दिव् प्राच् अपाच् उदच् श्रीर प्रत्यच् प्रातिपदिकों से शेष श्रथों में यत् प्रत्यय हो। जैसे—दिवि भवो दिव्यः; प्राग्भवं प्राच्यम्; श्रपाच्यम्; उदीच्यम्; प्रतीच्यम्।

यह सूत्र अग प्रत्यय का अपवाद है। और यहां प्राच् आदि अव्यय शब्दों का प्रहण् नहीं है, किन्तु यौगिकों का है। और जहां इनका अव्यय में प्रहण् होता है, वहां आगामी सूत्र से ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं। जैसे—प्राक्तनम्; प्रत्यक्तनम् इत्यादि॥ ३६७॥

#### अञ्चयात्यप् ॥ ३३८ ॥ ऋ० ४ । २ । १०३ ॥

अन्यय प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में त्यप् प्रत्यय होते। यह भी सूत्र अर्ण् आदि अनेक प्रत्ययों का अपवाद है।

यहां महाभाष्यकार ने परिगणन किया है कि ग्रमा रह क तथा तसिल् ग्रीर त्रल् प्रत्ययान्त इतने ही श्रव्ययों से त्यप् होवे। जैसे—श्रमात्यः; इहत्यः; कत्यः; ततस्त्यः; यतस्त्यः; तत्रत्यः; श्रत्रत्यः; कुत्रत्यः इत्यादि। यहां परिगणन का प्रयोजन यह है कि - श्रोपरिष्टः; पौरस्तः; पारस्तः इत्यादि प्रयोगों में त्यप् न होवे ॥ ३३८॥

### वा०-त्यब्नेर्ध्ववे ॥ ३३६ ॥

नि श्रव्यय प्रातिपदिक से ध्रुव श्रर्थ में त्यप् प्रत्यय होने। जैसे—निरन्तरं भवं नित्रं ब्रह्म ॥ ३३६ ॥ नित्यं हफा सित्त ऽति च | शास्त्रते विशेषे वा०-निसो गते ॥ ३४० ॥

निस् शब्द से गत अर्थ में त्यप् प्रत्यय होवे। जैसे—निर्गतो निष्ट्यः॥ ३४०॥ वा०-ग्ररण्याग्गाः॥ ३४९॥

श्ररएय शब्द से शेष श्रर्थों में ए प्रत्यय होते। जैसे—श्ररएये भवा श्रारएयाः सुमनसः॥ ३४१॥

वा०-दूरादेत्यः । ३४२ ॥

हूर प्रातिपदिक से शेष अर्थों में पत्य प्रत्यय हो। जैसे-दूरे जन्धो दूरेत्य:॥ ३४२॥

वा०-उत्तरादाहञ् ॥ ३४३ ॥

उत्तर प्रातिपदिक से शेष अर्थी में आहुज् प्रत्यय हो । जैसे — उत्तरे जात स्रोत्तराह: ॥ ३४३॥

वा०-अञ्ययात्त्यप्याविष्ट्यस्योपसंख्यानं छन्दसि ॥ ३४४॥

श्राविस् अन्यय प्रातिपदिक से शेष अर्थों में वेदविषय में त्यप् प्रत्यय हो। जैसे— श्राविष्ट्यो वर्धते चारुराश्च ॥ ३४४ ॥

वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् ॥ ३४५ ॥ अ० १ । १ । ७३ ॥

जिस समुदाय के अचों के बीच में आदि अच् वृद्धिसंक्षक हो, अर्थात् आकार ऐकार और ओकार होनें, तो वह समुदाय वृद्धसंक्षक होवे॥ ३४४॥

वृद्धाच्छः ॥ ३४६ ॥ अ० ४ । २ । ११४ ॥

यह सूत्र अण् का बाधक है। शेष अर्थी में वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से यशाप्राप्त अण् आदि प्रत्यय हों। जैसे-शालीयः, मालीयः, श्रीपगवीयः, कापटवीयः इत्यादि।

( भ्रव्ययात्त्यप्; तीररूप्योत्तरपद्ा०; उदीच्यग्रामाद्य०; प्रस्थोत्तरपद्० ) जहां इन सूत्रों से ये प्रत्यय श्रोर वृद्धसंश्चक से छ प्रत्यय दोनों की प्राप्ति है, वहां परविप्रतिषेध मान के छ प्रत्यय ही होता है।

जैसे—ग्रारात् ग्रव्यय शब्द है, उससे छ हुग्रा तो=ग्रारातीय: । वायसतीर शब्द से ग्रज्ञ ग्रोर ज्ञ्य भी पाते हैं, फिर छ ही होतां है। जैसे—वायसतीरीय:। इसी प्रकार रूप्योत्तरपद माणिरूप्य वृद्ध प्रातिपदिक से परत्व से छ प्राप्त है, उसका भी अपवाद यकारोपध होते से (धन्वयोपधा०) इससे बुज्ञ होता है। जैसे—माणिरूप्यक:। वाडवकर्ष उदीच्यप्राम श्रन्तोदात्त प्रातिपदिक से छ प्रत्यय परत्व से होता है। जैसे—वाडवकर्षाय:। ग्रोलूक कोपध वृद्ध प्रातिपदिक से प्रविप्रतिषेध करके छ होता है। जैसे—ग्रोलुकीयम्॥ ३४६॥

श्रव इसके आगे वृद्धसंज्ञा में जो विशेष वार्त्तिक सूत्र हैं, सो लिखते हैं—

## वा०-वा नामधेयस्य वृद्धतंज्ञा वक्तव्या ॥ ३४७ ॥

जो किसी मनुष्य ग्रादि के नाम हैं, उनकी विकल्प करके वृद्धसंश्वा होवे। जैसे— देवदत्तीयाः, दैवदत्ताः, यञ्चदत्तीयाः, याञ्चदत्ताः इत्यादि ॥ ३४७ ॥

#### वा०-गोत्रोत्तरपदस्य च ॥ ३४८॥

गोत्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिक जिनके उत्तरपद में हों, उनकी बृद्धसंक्षा हो। जैसे— घृतप्रधानो रौढि: घृतरौढि:, तस्य छात्रा: घृतरौढीया:, ग्रोदनप्रधान: पाणिनिरोदनपाणि-निस्तस्य छात्रा त्रोदनपाणिनीया:, बृद्धाम्भीया:, बृद्धकाश्यपीया: इत्यादि ॥ ३४८॥

## वा०-जिह्वाकात्यहरितकात्यवर्जम् ॥ ३४६ ॥

जिह्नाकात्य ग्रोर हरितकात्य शब्दों की वृद्धसंज्ञा न हो। गोत्र उत्तरपद होने से पूर्ववार्त्तिक से प्राप्त है, उसका निषेध है। जैसे—जैह्नाकाताः; हारितकाताः॥ ३४६॥

### त्यदादीनि च॥ ३५०॥ अ०१।१। ७४॥

श्रीर त्यद् श्रादि प्रातिपदिक भी वृद्धसंश्वक होते हैं । जैसे—त्यदीयम्; यदीयम्; तदी-यम्; एतदीयम्; इदमीयम्; श्रद्सीयम्; त्वदीयम्; ५दीयम्; त्वादायनिः; मादायनिः इत्यादि ।

यहां सर्वत्र वृद्धसंज्ञा के होने से छ प्रत्यय हो जाता है ॥ ३४० ॥

### भवतष्टक्छसौ ॥ ३५१ ॥ अ० ४ । २ । ११५ ॥

शेष अर्थों में वृद्धसंज्ञक भवत् प्रातिपदिक से ठक् चौर छुस् प्रत्यय हों। जैसे— भवत इदं भावत्कम्, छुस् प्रत्यय में सित्करण प्दसंज्ञा के लिये है=भवदीयम्।

इस भवत् शब्द की त्यदादिकों से वृद्धसंद्वा होके खु प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह

### रोपधेतोः प्राचाम् ॥ ३५२ ॥ अ० ४ । २ । १२३ ॥

शेष श्रर्थों में प्राग्देशवाची रेफोपध श्रोर ईकारान्त प्रातिपदिकों से बुज् प्रत्यय हो। जैसे -पाटलिपुत्रकाः; पेकचककाः । ईकारान्त-काकन्दी=काकन्दकाः; माकन्दी= माकन्दकाः।

यद्यां 'प्राचां' प्रहण इसलिये है कि-दात्तामित्रीयः, यहां बुज् प्रत्यय न हो ॥३४२॥

### अवृद्धादिष बहुवचनविषयात् ॥ ३५३ ॥ अ० ४ । २ । १२५ ॥

शेष त्रर्थों में बहुवचनविषयक वृद्धसंज्ञारहित जो जनपद्वाची श्रोर जनपद् के श्रव-धिवाची प्रातिपदिकों से बुज् प्रत्यय हो।

[जैसे—] » वृद्ध जनपद से — श्रङ्गाः, वङ्गाः, किलङ्गाः=श्राङ्गकः; वाङ्गकः; कालिङ्गकः। श्रवृद्ध जनपदावधि — श्रजमीढाः, श्रजकन्दाः=श्राजमीढकः; श्राजकन्दकः। वृद्ध जनपद— दार्वाः, जाम्बाः=दार्वकः; जाम्बकः। वृद्ध जनपदावधि — कालिङ्जराः, वैकुलिशाः=कालिङ्जरकः; वैकुलिशकः। ३४३॥

### नगरारकुत्सनप्रावीग्ययोः ॥ ३५४ ॥ अ० ४ । २ । १२८ ॥

कुत्सन श्रोर प्रावीएय श्रर्थात् निन्दा श्रोर प्रशंसारूप शेष श्रर्थों में नगर प्रातिपदिक से बुज् प्रत्यय हो। [ जैसे— ] नागरकश्चीर:, नागरक: प्रवीगु:।

'कुत्सन श्रौर प्रवीणता' प्रहण इसिलये है कि—नागरा ब्राह्मणाः, यहां बुञ् नहो॥३४४॥

#### मद्रवृज्योः कन् ॥ ३५५ ॥ अ० ४ । २ । १३१ ॥

शेष श्रर्थों में मद्र श्रौर वृजि प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो। [ जैसे-- ] मद्रेषु जातः मद्रकः; वृज्ञिकः।

यहां वहुवचनविषक अवृद्ध जनपद शब्दों से बुज् प्राप्त है, उस का यह अपवाद है ॥ ३४४ ॥ —[ इति द्वितीय: पाद: ॥ ]

[ अथ त्तीयः पादः — ]

#### युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ॥ ३५६ ॥ ऋ० ४ । ३ । १ ॥

शेष अर्थ में युष्मद् श्रोर श्रस्मद् प्रातिपदिकों से खञ्ज् श्रोर चकार से छ प्रत्यय हो, श्रोर श्रन्यतरस्यां प्रहण से पक्त में ययाप्राप्त प्रत्यय होवें। जैसे —युष्माकमयं योष्माकीणः; श्रास्माकीनः; युष्मदीयः; श्रस्मदीयः; योष्माकः; श्रास्माकः ॥ ३४६॥

## 🗼 तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ॥ ३५७॥ अ० ४। ३।२॥

शेष अर्थों में तस्मिन् नाम खज् और अण् प्रत्यय परे हो, तो युष्मद और अस्मद् शब्द के स्थान में यथासंख्य करके युष्माक और अस्माक आदेश हों। जैसे—योध्माकीणः; आस्माकीनः; यौष्माकः; आस्माकः।

यहां 'खञ् श्रौर त्रण् प्रत्यय के परे' इसितये कहा है कि — युष्मदीय:, श्रस्मदीय:, यहां छ के परे श्रादेश न हों।। ३४७॥

### तवकममका वेकवचने ॥ ३५८॥ अ०४ : ३।४॥

जो एकवचन अर्थात् एक अर्थ की वाचक विभक्ति तथा अर्ग् श्रीर खज्र प्रत्यय परे हों, तो युष्मद् श्रीर अस्मद् शब्द को तवक श्रीर ममक आदेश हों। जैसे—तावकीन:; मामकीन:; तावक:, मामक: ॥ ३४८॥

### कालाटुञ् ॥ ३५६ ॥ अ० ४। ३। ११ ॥

शेष अर्थों में कात्तविशेषवाची प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे-मासिकः; आर्द्धमासिकः; सांवत्सरिकः इत्यादि॥ ३४६॥

### श्राद्धे शरदः ॥ ३६० ॥ अ० ४ । ३ । १२ ॥

जो शेष अर्थों में आद अभिधेय रहे, तो शरद प्रातिपदिक से ठज् प्रत्यय हो। जैसे—शरिद भवं शारिदकम्, जो आद्ध हो। नहीं तो शारदम्, ऋतुवाची के होने से अर्थ हो जाता है। और यह सूत्र भी अर्थ का ही अपवाद है।। ३६०॥

## सन्धिवेळायृतुनक्षत्रभयोऽण् ॥ ३६१ ॥ अ० ४ । ३ । १६ ॥

शेष अर्थों में सन्धिवेला आदि गण, ऋतु और नत्तत्रवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो। जैसे — सन्धिवेलायां लब्धं सान्धिवेलम्, सान्ध्यम्। ऋतु — ग्रैष्मम्। ग्रैशिरम्। नत्तत्र — तैषम्। पौषम्।

यह सूत्र सामान्यकालवाची से ठञ् प्राप्त है, उसका अपवाद है ॥ ३६१ ॥

### सायंचिरंप्राह्मप्रगे ऽव्ययेभ्यष्ट्युटगुलौ तुट् च + ॥ ३६२ ॥ ऋ० ४ । ३ । २३ ॥

<sup>+</sup> यहां सायं तथा चिरं ये शब्द मकारान्त, श्रीर प्राह्यो तथा प्रगे ये प्कारान्त निपातन किये हैं। श्रीर जो ये श्रम्यय शब्द समके जावें, तो इनका पाठ सूत्र में व्यर्थ होवे, क्योंकि श्रव्यय के कहने से हो ही जाता ॥

शेष अर्थों में सायं चिरं प्राह्में प्रोर अवयय प्रातिपदिकों से ट्यु और ट्युल् प्रत्यय और प्रत्यय को तुर् का आगम भी हो।

दिन का जो अन्त है, उस अर्थ में सायं शब्द है। जैसे—साये भवं सायन्तनम्। चिरन्तनम्, प्राह्णेतनम्, प्रगेतनम्, दोषातनम्, दिवातनम्, इदानीन्तनम्, अद्यतनम् ॥३६२॥

#### वा०-चिरपरुत्परारिभ्यस्तनः # ॥ ३६३ ॥

चिर परुत् श्रौर परारि इन तीन श्रव्यय प्रातिपदिकों से स प्रत्यय होवे। जैसे— चिरत्नम्; परुत्नम्; परारित्नम् ॥ ३६३ ॥

#### वा०-प्रगस्य छन्दिस गलोश्च ॥ ३६४ ॥

प्रग प्रातिपदिक से वेद में ल प्रत्यय और गकार का लोप हो। जैसे-प्रगे भवं प्रसम् ॥३६४॥

### वा०-अग्रादिपश्चाड्डिमच् ॥ ३६५ ॥

अग्र आदि और पश्चात् इन प्रातिपदिकों से डिमच् प्रत्यय हो। डित्पकरण यहां टिलोप होने के लिये है।

जैसे—अम्रे जातोऽमिमः; श्रादौ जात श्रादिमः; पश्चात् जातः पश्चिमः ॥ ३६४ ॥

#### वा०-अन्ताच्च ॥ ३६६॥

अन्त शब्द से भी डिमच् प्रत्यय हो। जैसे—अन्ते भवोऽन्तिमः ॥ ३६६ ॥

#### तत्र जातः ॥ ३६७ ॥ अ० ४ । ३ । २५ ॥

घ आदि प्रत्यय जो सामान्य शेष अर्थों में विधान कर चुके हैं, उनके जात आदि अर्थ दिखाये जाते हैं। अ्रोर तत्र इत्यादि समर्थविभक्ति जाननी चाहिये।

समर्थों में प्रथम सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से जो २ प्रत्यय विधान कर चुके हैं, सो २ जात ग्रादि श्रथों में होनें। जैसे—सुझे जात: स्रोद्र:, माथुर:, स्रोत्स:, ग्रोद्यान:, राष्ट्रिय:, श्रवारपारीण:, श्राकत्विक:, प्राम्य:, ग्रामीण:, कात्रेयक:, श्रोम्भेयक: इत्यादि ॥ ३६७ ॥

### श्रविष्ठाफल्युन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाऽऽषःढाब-हुलाल्लुक् ॥ ३६⊏ ॥ अ० ४ । ३ । ३५ ॥

जात श्रादि सर्थों में अविष्ठा श्रादि नज्ञत्रवाची शब्दों से विहित तिस्तप्रत्ययों का लुक् हो। [जैसे—] अविष्ठायां जात: अविष्ठ:, फल्गुन:, श्रजुराध:, खाति:, तिष्य:, पुनर्वसु:, इस्त:, विशाख:, श्राषाढ:, बहुल: ‡॥ ३६८॥

\* यहां पूर्वसूत्र से ट्यु ट्युल् प्रत्यय प्राप्त हैं, उनके प्रपवाद ये वार्त्तिक समम्मने चाहियें ॥

‡ यहां श्रविष्ठा श्रादि शब्दों से तिबत प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक् तिबत्ति के १।२।४३) इस सूत्र से बीप्रत्यय का भी लुक् होजाता है । फिर जो ये शब्द कीलिङ्ग हों तो टाप् होगा । जैसे-अविष्ठा ॥

## वां०-छुक्प्रकरणे चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानम् ॥३६६॥

जात अर्थ स्त्री अभिधेय हो, तो चित्रा रेवती और रोहिशी शब्दों से विहित प्रत्यय का लुक् होवे। जैसे—चित्रायां जाता कन्या चित्रा; रेवती; रोहिशी \* ॥ ३६६॥

### वा०-फल्युन्यषाढाभ्यां टानी ॥ ३७०॥

पूर्व वार्तिक से स्त्रीलिङ्ग की अनुवृत्ति आती है।

फल्गुनी स्रोर स्रवाडा नम्भन्नवाची शब्दों से ट स्रोर स्रन् प्रत्यय यथासंख्य करके हों। जैसे—फल्गुन्यां जाता कन्या फल्गुनी; स्रवाडा † ॥ ३७० ॥

#### वा०-श्रविष्ठाषाढाभ्यां छग्।। ३७१॥

श्रविष्ठा श्रोर श्रवाढा प्रातिपदिकों से छुण् प्रत्यय हो। जैसे-श्रविष्ठायां जाताः श्राविष्ठीयाः; त्रावाढीयाः ॥ ३७१॥

### स्थानान्तगोशाळखरशाळाच्च ॥ ३७२ ॥ अ० ४ । ३ । ३५ ॥

जात अर्थ में स्थानान्त गोशाल और खरशाल प्रांतिपदिकों से विद्वित जो ति विद्वत प्रत्यय उसका लुक् हो। जैसे—गोस्थाने जातो गोस्थानः; हस्तिस्थानः; अश्वस्थानः इत्यादि; गोशालः; खरशालः।

यहां तद्धितलुक् होने के पश्चात् शाला शब्द के स्त्रीप्रत्यय का लुक् होता है ॥ ३७२॥

### वत्सशास्त्रास्त्रिदश्वयुक्छतभिषजो वा : ।।३७३॥ अ० ४।३।३६॥

जात अर्थ में वत्सगाला द्यादि प्रातिपदिकों से परे जो प्रत्यय, उसका लुक् विकरण करके होवे। जैसे — वत्सशालायां जातः वत्सशालः, वात्सशालः; श्रभिजित्, श्राभिजितः; अभ्वयुकः, श्राश्वयुकः; शतभिषकः, शातभिषजः॥ ३७३॥

### नक्षत्रेभ्यो बहुलम् ॥ ३७४ ॥ अ० ४ । ३ । ३७ ॥

अन्य नज्ञवाची प्रातिपदिकों से जो प्रत्यय हो, उसका बहुल करके लुक् होवे। जैसे- रोहिश:, रोहिश:, मृगशिरा:, मार्गशीर्थ:।

बहुत्तप्रहण से कहीं लुक् नहीं भी होता। जैसे—तैष:, पौष: इत्यादि॥ ३७४॥

\* यहां भी पूर्व के समान स्नीप्रत्यय का लुक् होके चित्रा शब्द से टाप् धौर रेवती तथा रोहिया। बाध्य का गौरादिगया में पाठ होने से कीप् प्रत्यय हो जाता है ॥

† यहां भी स्वीत्रत्यय का लुक् पूर्ववत् होके ट प्रत्यय के टित् होने से फल्गुनी शब्द से डीप् श्रीर अवाढा शब्द से टाप् होता है ॥

‡ इस सुन्न में प्राप्ताप्राप्तविभाषा है, क्योंकि वस्सशाला शब्द से किसी सुन्न करके लुक् नहीं पाता, और अभिजित् आदि नचन्नवाचियों से बहुल करके प्राप्त है, उसका विकल्प किया है ॥

#### कृतलब्धकीतकुशलाः ॥ ३७५ ॥ अ० ४ । ३ । ३८ ॥

कृत आदि अर्थों में सन प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—सुझे कृतो लब्ध: क्रीतो वा कुशल: स्रोद्र:; माथुर:; राष्ट्रिय: इत्यादि॥ ३७४॥

#### प्रायभावः \* ॥ ३७६ ॥ अ० ४ । ३ । ३६ ॥

बहुधा होने त्रर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे— स्त्रुझे प्रायेख भवः स्त्रीहनः, माथुरः, राष्ट्रियः हत्यादि ॥ ३७६ ॥

### सम्भूते ॥ ३७७ ॥ अ० ४ । ३ । ४१ ॥

सम्भव त्रर्थ में सप्तमीसमर्थ ङचाप् प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे— स्त्रुझे सम्भवति स्त्रीच्नः; माथुरः; राष्ट्रियः; प्राम्यः; प्रामीणः शालीयः; मालीयः इत्यादि॥३७७॥

#### कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु ॥ ३७८ ॥ अ० ४ । ३ । ४३ ॥

साधु पुष्यत् श्रीर पच्यमान श्रथौं में कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों ! जैसे —हेमन्ते साधुः हैमन्तं वस्त्रम्; श्रीशरमनुलेपनम्; वसन्ते पुष्प्यन्ति वासन्तः कुन्दलताः; श्रैष्मयः, पाटलाः; शरदि पच्यन्ते शारदाः शालयः; श्रेष्मा यवाः इत्यदि ॥ ३७८॥

#### उसे च ॥ ३७६ ॥ अ० ४ । ३ । ४४ ॥

उस कहते हैं बोने को, इस ऋथे में सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से यथा-विहित प्रत्यय होनें। जैसे – हेमन्ते उप्यन्ते हैमन्ता इत्तवः; ग्रीष्मे उप्यन्ते ग्रैष्माः शालयः; शारदा यवाः स्त्यादि ॥ ३७६॥

#### आइवयुज्या वुञ् ॥ ३८० ॥ अ० ४ । ३ । ४५ ॥

उत्त ऋर्थं में सप्तमीसमर्थं ऋ। ऋयुजी प्रातिपदिक से बुज् प्रत्यय हो।

त्रश्वयुक् शब्द त्रश्विनी नत्तत्र का पर्याय है। उससे युक्तकाल त्रर्थ में अण् हुआ है स्त्रीतिङ्ग तिथि का विशेषण् है। [जैसे—] आश्वयुज्यामुप्ता आश्वयुजका यवा:॥३८०॥

#### देयमृगो ॥ ३८१ ॥ अ० ४ । ३ । ४७ ॥

ऋण देने अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—प्रावृषि देयमुणं प्रावृषेग्यम्; वैशाखे देयमुणं वैशाखम्; मासे देयमुणं मासिकम्; आर्द्धमासिकम्; सांवरसरिकम् इत्यादि।

यहां 'ऋण' प्रहण इसिलिये है कि - मुहूर्ते देयं भोजनम्, यहां प्रत्यय न हो ॥ ३८१॥

# प्रायभव उसको कहते हैं कि जिसके होने का नियम न हो, बहुधा होता होवे ॥

#### व्याहरति मृगः ॥ ३८२ ॥ अ० ४ । ३ । ५१ ॥

व्याहरति किया का मृग कर्त्ता-वाच्य रहे, तो सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से जिस २ से जो २ प्रत्यय विधान किया हो वही २ होवे। जैसे—निशायां व्याहरति मृग: नैशिक:, नैश:, प्रादोषिक:, प्रादोष: \*; सायन्तन: इर्त्यादि ॥ ३८२ ॥

#### तदस्य सोढम् ‡ ॥ ३८३ ॥ अ० ४ । ३ । ५२ ॥

षष्ठी के अर्थ में सोढ समानाधिकरण प्रथमासमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे —िनशाऽध्ययनं सोढ मस्य छुष्त्रस्य नैशः, नैशिकः; प्रादोषः, । प्रादोषकः, हेमन्तसहचरितं शीतं सोढ मस्य हैमन्तः इत्यादि ॥ ३८३ ॥

#### तत्र भवः ॥ ३८४ ॥ अ० ४ । ३ । ५३ ॥

यहां पूर्वसूत्र से ही तत्र प्रहण की श्रानुवृत्ति चली श्राती, फिर तत्र प्रहण करने का प्रयोजन यह है कि कालाधिकार की निवृत्ति हो जावे।

तत्र त्रर्थात् वहां हुत्रा होता वा होगा, इस त्रर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—सुघ्ने भवः स्रोध्नः, श्रश्चपतो भव श्राश्वपतः, श्रोत्सः, देखः, श्रादित्यः, पृथिव्यां भवः पार्थिवः, वानस्पत्यः, स्रोणः, पौस्नः, माथुरः, राष्ट्रियः इत्यादि ॥ ३८४॥

#### दिगादिभ्यो यत् ॥ ३८५ ॥ अ० ४ । ३ । ५४ ॥

भवार्थ में सप्तमीसमर्थ दिश् श्रादि प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो । [ जैसे— ] दिशि भवं दिश्यम्; वर्ग्यम् इत्यादि । यह सूत्र श्रण् का बाधक है ॥ ३८४ ॥

#### शरीरावयवाच्च ॥ ३८६ ॥ अ० ४ । ३ । ५५ ॥

शरीर के अवयव इन्द्रिय आदि प्रातिपदिकों से भवार्थ में यत् प्रत्यय हो। जैसे— तालुनि भवं तालव्यम्; दन्त्यम्; श्रोष्ठ्यम्; हृद्यम्; नाभ्यम्; चत्तष्यम्; नासिक्यम्ः पायव्यम्; उपस्थ्यम् इत्यादि ॥ ३८६॥

#### श्रव्ययीभावाच्च ॥ ३८७ ॥ अ० ४ । ३ । ५६ ॥

सप्तमीसमर्थं अन्ययीभावसंज्ञक प्रातिपदिकों से भवार्थ में ज्य प्रत्यय हो ॥ ३८७॥

### वा०-ज्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ३८८ ॥

\* यहां (निशाप्रदोषाभ्यां च ॥ प्र०४।३।१४) इस पूर्वेजिखित सूत्र से ठन् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥

‡ इस सूत्र में सहचारोपाधि जीजाती है । क्योंकि काल का सहना क्या है, उस काल में जो विशेष

करके हो उसका सहना ठीक है, जैसे हेमन्त ऋतु में शीत विशेष को सह सके वह हैमन्त कहाये ॥

सूत्र में जो अव्ययीभाव प्रातिपित्कों का ग्रहण है, उसका नियम इस वार्त्तिक से किया है कि—परिमुखादि अव्ययीभाव प्रातिपिद्कों से ही ज्य प्रत्यय हो। जैसे — परिमुखं भवं पारिमुख्यम्; पार्योष्ट्यम्; पारिहनव्यम्।

यहां 'परिमुखादि का परिगणन' इसलिये है कि—उपकूलं भव श्रोपकूल:; श्रोप-शाल:, यहां ज्य प्रत्यय न होवे ॥ ३८८॥

### अन्तः पूर्वपदाट्ठञ् ॥ ३८६ ॥ अ० ४ । ३ । ६० ॥

पूर्ववार्त्तिक से परिमुखादि का नियम होने से अणु प्राप्त है, उसका वाधक यह सुत्र है। अन्तर् शब्द जिनके पूर्व हो ऐसे अन्ययीभाव प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय हो भव अर्थ रूँ। जैसे-अन्तर्वेशमिन भवमान्तर्वेशिमकम्; स्रान्तः सिक्ककम्; स्रान्तर्गेहिकम् इत्यादि॥३८॥॥

### का०-समानस्य तदादेश्च अध्यात्मादिषु चेष्यते । ऊर्ध्वं दमाच्च देहाच्च लोकोत्तरपदस्य च ॥ ३६०॥

समान शब्द से श्रीर समान शब्द जिनके श्रादि में हो उन प्रातिपदिकों से टब्स् प्रत्यय होवे। जैसे —समाने भवः सामानिकः। तदादि से —सामानग्रामिकः, सामानदेशिकः।

तथा श्रध्यातमादि प्रातिपदिकों से भी ठञ् प्रत्यय होना चाहिये। जैसे — श्रध्यातमिन भवमाध्यात्मिकम्; श्राधिदैविकम्; श्राधिमीतिकम्।

मकारान्त ऊर्ध्वम् शब्द जिनके पूर्व हो, ऐसे दम श्रीर देह प्रातिपदिकों से ढज् प्रत्यय हो। जैसे — ऊर्ध्वं दमे भवमौर्ध्वंदमिकम्, श्रीर्ध्वंदेहिकम्।

श्रीर लोक शब्द जिन के उत्तरपद में हो, उन प्रातिपदिकों से भी ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—इह लोके भवमेहलोकिकम्। पारलोकिकम्।

अधिदेव, अधिभूत, इहलोक और परलोक ये चार शब्द अनुशतिकादि गण में पढ़े हैं, इससे उभयपदवृद्धि होती है ॥ ३६० ॥

### का॰-मुखपार्श्वतसोरीयः कुग्जनस्य परस्य च । ईयः कार्थ्योऽथ मध्यस्य मण्मीयौ प्रत्ययौ तथा ॥३६१॥

तिस प्रत्ययानत मुख श्रीर पार्क्ष प्रातिपदिकों से ईय प्रत्यय होते। छ के स्थान में ईय श्रादेश हो जाता, किर ईय पाद पूर्ण होने के लिये कहा है। जैसे—मुखतो भगं मुख-तीयम् ।

जन श्रीर पर प्रातिपदिकों से ईय प्रत्यय श्रीर प्रातिपदिकों को कुक् का श्रागम भी होवे। जैसे-जने भवो जनकीयः, परकीयः।

<sup>\*</sup> यहां भसंज्ञा के होने से तसन्त अव्यय के टिभाग का लोप हुआ है ॥

मध्य प्रातिपदिक से ईय मण् श्रीर मीय प्रत्यय होवें। जैसे — मध्ये भवो मध्यीयः, माध्यमः, मध्यमीयः \* ॥ ३६१ ॥

### का०-मध्यो मध्यं दिनण् चास्मात्स्थाम्नो लुगजिनात्तथा। बाह्यो दैवयः पाञ्चजन्योऽथ गम्भीराञ्ज्य इष्यते ॥३६२॥

मध्य शब्द को ''मध्यम्'' ऐसा मकारान्त आदेश और उससे दिनण् प्रत्यय हो। जैसे—माध्यन्दिन उपगायति।

स्थामन् श्रीर श्रजिन शब्द जिनके श्रन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से विहित प्रत्यय का लुक् हो। जैसे—श्रश्चन्थामिन भवोऽश्वत्थामा। इस शब्द में पृषोद्रादि से सकार को तकार हो जाता है। श्रजिनान्त से—कृष्णाजिने भव: कृष्णाजिनः; उष्ट्राजिनः; सिंहाजिनः; व्याव्राजिनः इत्यादि।

जैसे—गम्भीर शब्द से ज्य प्रत्यय होता है, वैसे बाह्य, दैव्य स्रोर पाञ्चजन्य इन तीन शब्दों में भी ज्य जानो । बहिस शब्द के टिमाग का लोप हो जाता है ॥ ३६२॥

### जिह्वामूलाङ्गुलेश्ञः ॥ ३६३ ॥ अ० ४ । ३ । ६२ ॥

यह शरीरावयव से यत् प्राप्त है, उसका बाधक है।

भवार्थ में जिह्नामूल श्रीर श्रङ्गुलि प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय हो। जैसे—जिह्नामूले भवं जिह्नामूलीयं स्थानम्; श्रङ्गुलीय: ॥ ३६३॥

### वर्गान्ताच्च ॥ ३६४ ॥ अ० ४ । ३ । ६३ ॥

भवार्थ में वर्गान्त प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय हो। [जैसे—] कवर्गे भवो वर्णः कवर्गीयः; चवर्गीयः; पवर्गीयः इत्यादि॥ ३६४॥

### तस्य ठ्याख्यान इति च ठ्याख्यातव्यनाम्नः ॥३६५॥ अ० ४।३।६६॥

षष्ठी झोर सप्तमीसमर्थ व्याख्यातव्यनामवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हो। जैसे—तिङां व्याख्यानो प्रन्थस्तैङः, सुपां व्याख्यानो प्रन्थः सोपः, स्त्रेषः, ताद्धितः, सुप्तु भवं सोपम्, तैङम्, कार्त्तम्।

यहां 'व्याख्यातव्यनाम' प्रहण इसिलये है कि—पाटलिपुत्रस्य व्याख्यानम्, यहां प्रत्यय न होवे ॥ ३६५ ॥

#### प्रत्यं न हाय ॥ २२२ ॥

### बह्वचो उन्तोदात्ताट्ठञ् ॥ ३६६ ॥ अ० ४ । ३ । ६७ ॥

व्याख्यान श्रोर भव श्रर्थ में षष्ठी श्रोर सप्तमीसमर्थ बह्नच् श्रन्तोदात्त प्रातिपदिकों से ठञ्ज प्रत्यय हो । जैसे —बात्वयात्विकः; नातानितकम्; सामासिकः ।

\* गहादिगया में पृथवी मध्य शब्द के स्थान में मध्यम आदेश और छ प्रत्यव होके भी मध्यमीय शब्द साधा है, इससे अर्थभेद बानो शब्दभेद तो नहीं है ॥ यद्वां 'बह्रच्' प्रहण इसिलये है कि — सौपम्; तैङम्। श्रौर 'झन्तोदात्त' इसिलये कहा है कि — सांहित:। यहां संहिता शब्द गतिस्वर से श्राद्युदात्त है, इसिलये ठञ् न हुआ ॥ ३६६॥

# द्रच जृद् ना ह्य ग्राचित्र थमाध्वर पुरश्चर ग्रामारू याता ट्ठक् ॥ ३६७॥ अ० ४।३। ७२॥

भव और व्याख्यान अर्थी में द्यच् ऋवर्णान्त ब्राह्मण ऋक् प्रथम अध्वर पुरश्चरण नाम और आख्यात ये जो व्याख्यातव्यनाम प्रातिपदिक हैं, उनसे ठक् प्रत्यय हो।

जैसे—वेदस्य व्याख्यानो ग्रन्थो वैदिकः; इष्टेर्व्याख्यानः ऐष्टिकः; पाश्चकः। ऋत्— चातुर्होत्तकः, पाञ्चहोत्तकः; ब्राह्मणिकः; क्रार्चिकः; प्राथमिकः; श्राध्वरिकः; पौरश्च-रणिकः॥ ३६७॥

### वा०-नामाख्यातप्रहणं सङ्घातविग्रहीतार्थम् ॥ ३९८ ॥

इस सूत्र में नाम और श्राख्यात शब्दों का श्रह्या इसिलये हैं कि जिससे समस्त शब्द से भी ठक् होजावे। जैसे—नामिकः; श्राख्यातिकः ; नामाख्यातिकः ॥ ३६८॥

#### तत आगतः ॥ ३६६ ॥ ऋ० ४ । ३ । ७४ ॥

श्रागमन श्रर्थं में पञ्चमीसमर्थं ङचाप् प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे— स्रुष्नादागत: स्रोध्नः; माथुरः; राष्ट्रियः इत्यादि ॥ ३६६ ॥

### विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ॥ ४०० ॥ स्र० ४ । ३ । ७७ ॥

श्रागमन श्रर्थं में पञ्चमीसमर्थ विद्यासम्बन्ध श्रीर योनिसम्बन्धवाची प्रातिपदिकों से बुज् प्रत्यय हो।

जैसे—विद्यासम्बन्ध—उपाध्यायादागतं धनमौपाध्यायकम्, शैष्यकम्, श्राचार्यकम् । योनिसम्बन्ध—पैतामहकम्, मातामहकम्, मातुलकम्, श्वाशुरकम् इत्यादि ॥ ४०० ॥

#### मृतष्ठञ् ॥ ४०१ ॥ अ० ४ । ३ । ७८ ॥

पंचमीसमर्थं ऋकारान्त विद्यासम्बन्ध श्रोर योनिसम्बन्धवाची प्रातिपिवकों से आगत अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—विद्यासम्बन्ध—होतुरागतः पुरुषो होतृकः, पैतृकम्। योनिसम्बन्ध—भ्रातृकम्, स्रास्कम्, मातृकम्।

ऋकारान्त वृद्धप्रातिपिद्कों से भी परविप्रतिषेध मान के छ प्रत्यय को बाध के ठञ् ही होता है। जैसे-शास्तुरागतं शास्तुकम् इत्यादि ॥ ४०१॥

### पितुर्यच्च ॥ ४०२ ॥ अ० ४ । ३ । ७६ ॥

आगत अर्थ में पितृ प्रातिपदिक से यत् और ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—पितुरागतं पित्र्यम्, पैतृकम् ॥ ४०२'॥

### गोत्रादङ्गवत् ॥ ४०३ ॥ अ० ४ । ३ । ८० ॥

गोत्रप्रत्यान्त प्रातिपदिकों से अङ्कवत् अर्थात् जैसे—अङ्क अर्थ में श्रोपगवानामङ्कः अर्थपात् प्रतिपदिकों से अङ्कवत् अर्थात् जैसे—अङ्क अर्थ में श्रोपगवानामङ्कः अरोपगवकः, कापटवकः, नाडायनकः, वारायणकः इत्यादि में बुज् प्रत्यय होता है, ऐसे ही श्रोपगवेभ्य श्रागतम् श्रोपगवकम्, कापटवकम्, नाडायनकम्, चारायणकम् इत्यादि में भी बुज् होवे ॥ ४०३॥

## हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ॥४०४॥ अ० ४।३। ८१॥

श्रागत अर्थ में हेतु श्रोर मतुष्ववाची प्रातिपदिकों से विकल्प करके रूप्य प्रत्यय हो। जैसे—गोभ्यो हेतुभ्य श्रागतं गोरूप्यम्, पच्च में गव्यम्; समादागतं समरूप्यम्, समीयम्; विषमरूप्यम्, विषमीयम्। मतुष्य—देवदत्तरूष्यम्, देवदत्तीयम्, देवदत्तम्; यञ्चदत्तरूप्यम्, यञ्चदत्तीयम्, याञ्चदत्तम् ॥ ४०४॥

### मयट् च ॥ ४०५ ॥ अ० ४ । ३ । ८२ ॥

त्रागत अर्थ में हेतु श्रोर मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से मयट् प्रत्यय हो। जैसे— सममयम्, विषममयम्, देवदत्तमयम्, यज्ञदत्तमयम्।

टकार ङीप् होने के लिये है=सममयी ॥ ४०४ ॥

### प्रभवति ॥ ४०६ ॥ अ० ४ । ३ । ८३ ॥

उससे जो उत्पन्न होता है, इस ऋथं में पंचमीसमर्थ शब्दों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे हिमवत: प्रभवति हैमवती गङ्गा; दारदी सिन्धु: ॥ ४०६॥

### विदूराञ्ज्यः ॥ ४०७ ॥ अ० ४ । ३ । ८४ ॥

पूर्वोक्त ऋर्थ में विदूर प्रातिपदिक से ज्य प्रत्यय हो। जैसे—विदूरात्प्रभवित वैदूर्यो मणि: ॥ ४०७ ॥

### का०-वालवायो विदृरं वा प्रकृत्यन्तरमेव वा। न वै तत्रेति चेद् ब्रुयाजित्वरीवदुपाचरेत्॥ ४००॥

लोक में जिस मिण को वैदूर्य कहते हैं, वह वालवाय नामक पर्वत से उत्पन्न होता है। विदूर शब्द नगर और पर्वत दोनों का नाम है। परन्तु विदूर नगर में उस मिण का संस्कार किया जाता है। इसलिये यह विचार करना चाहिये कि विदूर शब्द से प्रभव अर्थ में प्रत्यय क्यों होता है ? वैदूर्यमिश तो वालवाय पर्वत से उत्पन्न होता है।

इसका समाधान यह है कि—वालवाय शब्द के स्थान में विदूर श्रादेश जानो, अथवा वालवाय का पर्यायवाची विदूर शब्द भी है।

श्रव सन्देह यह रहा कि वालवाय पर्वत के समीप रहनेवाले वालवाय को विदूर नहीं कहते, फिर पर्य्यायवाची क्यों कर हो सकता है ?

इसका समाधान यह है कि — जैसे वाराणसी को वैश्य लोग 'जिन्वरी' कहते हैं। वैसे ही वैयाकरण लोग परम्परा से वालवाय को विदूर कहते चले आये हैं॥ ४०००॥

#### तहच्छति पथिदृतयोः ॥ ४०६ ॥ ऋ० ४ । ३ । ८५ ॥

'उसको जाता है' इस ऋथं में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों, जो गच्छति किया के पन्था और दूत कत्ती वाच्य हों.तो।

जैसे — सुघं गच्छति स्रोधः पन्था दूतो वाः माथुरः पाठशालां गच्छति पन्था दूतो वा पाठशालीयः \* इत्यादि ॥ ४०६ ॥

### श्रिभिनिष्कामित द्वारम् ॥ ४१० ॥ अ० ४ । ३ । ८६ ॥

जो श्रमिनिष्क्रामित क्रिया का द्वार कर्त्ता वाच्य रहे, तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविद्वित प्रत्यय हों। जैसे—स्त्रुझमिनिष्कामित द्वारं स्त्रोझम्; माथुरम्; राष्ट्रियम्; वाराणसीमिनिष्कामित वाराणसेयम्; पेन्द्रप्रस्थम्; लावपुरम् इत्यादि।

यहां द्वार प्रहण इसलिये है कि-मथुरामिमनिष्कामित पुरुषः, यहां प्रत्यय न हो ॥४१०॥

#### अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ॥ ४११ ॥ अ० ४ । ३ । ८७ ॥

जिस विषय को लेके प्रन्थ रचा जावे, उस अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—सुभद्रामधिकृत्य कृतो प्रन्थ: सौभद्र:, गौरिमित्र:, यायात:, शरीरमित्रकृत्य कृतो प्रन्थ: शारीर:, वर्णाश्रममिकृत्य कृतो प्रन्थो वार्णाश्रम:, कारकमिकृत्य कृतो प्रन्थ: कारकीय: इत्यादि ॥ ४११ ॥

#### सोस्य निवासः ॥ ४१२ ॥ अ० ४ । ३ । ८६ ॥

'वह इसका निवासस्थान है,' इस ऋथं में प्रथमासमर्थ क्याप् प्रातिपदिकों से यथा-विहित प्रत्यय हों। जैसे—सुझो निवासोऽस्य पुरुषस्य स स्त्रोझः; माथुरः; राष्ट्रियः; वाराणुसी निवासोऽस्य वाराणुसेयः; ग्राम्यः; ग्रामीणुः॥ ४१२॥

\* वाराण्यसीं गच्छिति पन्था दूतो वा धाराण्यसेयः। वाराण्यसी शब्द का नवादिगण्य में पाठ होने से ढक् प्रत्यय हो जाता है ॥

### अभिजनश्च : ॥ ४१३ ॥ अ० ४ । ३ । ६० ॥

'वह इसका उत्पत्तिस्थान है,' इस अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। [ जैसे — ] सुझोऽभिजनोऽस्य स्रोझः; माथुरः; राष्ट्रियः; इन्द्रप्रस्थोऽभिजनोऽस्य ऐन्द्रप्रस्थः; प्राम्यः; प्रामीणः ॥ ४१३॥

### आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते ॥ ४१४ ॥ अ० ४ । ३ । ६१ ॥

आयुधजीव अर्थात् शस्त्रास्त्रविद्या से जीविका करनेहारे वाच्य रहें, तो प्रथमासमर्थ पर्वतवाची प्रातिपिदकों से अभिजन अर्थ में छ प्रत्यय होने। जैसे -हृद्गोल: पर्वतोऽभि-जन एषां ते हृद्गोलीया आयुधजीविन:; रैवतकीया:; वालवायीया: इत्यादि।

यहां 'त्रायुधजीवियों' का ग्रहण इसिलये है कि—ऋ तोदः पर्वतोऽभिजनमेषामा-त्त्रोंदा ब्राह्मणाः । त्र्रोर 'पर्वत' ग्रहण इसिलये है कि—साङ्काश्यमभिजनमेषां ते साङ्का-श्यका त्रायुधजीविनः, यहां छ प्रत्यय न होवे ॥ ४१४ ॥

#### भक्तिः ॥ ४१५ ॥ अ० ४ । ३ । ६५ ॥

भक्तिसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के श्रर्थ में यथाप्राप्त प्रत्यय हों । जैसे — प्रामो भक्तिरस्य प्रामेयकः; ग्राम्यः; ग्रामीणः; राष्ट्रियः; माथुरः इत्यादि ॥४१४॥

### अचित्ताददेशकालाट्ठक् ॥ ४१६ ॥ अ० ४ । ३ । ९६ ॥

'वह इसका सेवनीय है', इस अर्थ में प्रथमासमर्थ जो देश और काल को छोड़ के अचेतनवाची प्रातिपदिक हैं, उनसे ठक् प्रत्यय हो। जैसे—अपूपा भक्तिरस्य आपूपिकः; शाष्कुलिकः; पायसिकः; साकुकः।

यहां 'अचित्त' प्रहण इसिलये है कि—दैवदत्तः । 'अदेश' इसिलये है कि—स्नोग्नः। स्रोर 'अकाल' इसिलये है कि—प्रैक्सः, यहां भी ठक् न हो ॥ ४१६॥

### जनपदिनां जनपद्वत्सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने ॥४१७॥ अ० ४ । ३ । १०० ॥

बहुवचन में जनपद नाम देशवाची शब्दों के तुल्य जो जनपिंद अर्थात् देश के खामी जिल्लाची शब्द हैं, उनको जनपदवत् नाम (जनपदतदबध्योध्व) इस प्रकरण में जो प्रत्यय विधान कर चुके हैं, वे ही प्रत्यय भक्तिसमानाधिकरण उन ज्ञियवाची शब्दों से यहां होवें। जैने—ग्रङ्गा जनपदो भक्तिरस्य स श्राङ्गकः; वाङ्गकः; सोह्मकः इत्यादि।

<sup>‡</sup> निवास और अभिजन में इतना भेद है कि जहां वर्तमानकाल में रहते हों उसको निवास, और जहां पिता दादे आदि कुटुम्ब के पुरुष रहे हों उसको अभिजन कहते हैं।।

'जनपदी' त्वित्रयों का प्रहण इसिलिये है कि — पञ्जाला ब्राह्मणा भक्तिरस्य स पाञ्जालः, यहां बुज् न हो। 'सर्व' शब्द का प्रहण इसिलिये है कि — प्रकृति भी जनपद के समान हो जावे। जैसे — मद्राणां वृजीणां वा राजा माद्रः; वार्ज्यः, माद्रो भिक्तरस्य स मद्रकः; वृजिकः। (मद्रवृज्योःकन्) इससे कन् प्रत्यय प्रकृति को हस्व होने से होता है ॥४१०॥

### तेन प्रोक्तम् ॥ ४१८ ॥ अ० ४ । ३ । १०१ ॥

'उसने जो कहा' इस अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे — उत्सेन प्रोक्तमीत्सम्; दैत्यम्; आदित्यम्; प्रजापितना प्रोक्तं प्राजापत्यम्। स्त्रिया प्रोक्तं स्त्रैणम्; पौस्नम्; पाणिनिना प्रोक्तं व्याकरणं पाणिनीयम्; काशकृतस्नमः; काणादम्; गौतमम् इत्यादि ॥ ४१८॥

#### पुरागाप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ॥ ४१६ ॥ अ० ४ । ३ । १०५ ॥

प्रोक्त अर्थ में जो प्राचीन लोगों के कहे ब्राह्मण और करूप वाच्य हों, तो तृतीया-समर्थ प्रातिपदिकों से णिनि प्रत्यय हो।

जैसे—पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना भक्षत्रेन प्रोक्ता भाज्ञविनः; शाष्ट्रयायनिनः; ऐतरेयिणः। कल्पों में—पैङ्गी कल्पः; श्राह्यपराजी कल्पः इत्यादि ॥ ४१६ ॥

#### वा०-याज्ञवरुक्यादिभ्यः प्रतिषेधः ॥ ४२० ॥

याइवल्क्य त्रादि शब्दों से णिनि प्रत्यय न होवे, पुराणप्रोक्त हाने से प्राप्त है। [ जैसे— ] याइवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि याइवल्क्यानि; सौलभानि इत्यादि, यहां अण् प्रत्यय होता है।

काशिकाकार जयादित्य आदि लोग इसको नहीं समसे। इसीलिये यह लिखा है कि याझवरकादि आक्षण पुराण्योक्त नहीं, किन्तु पीछे बने हैं। सो महाभाष्य के विरुद्ध होने से मिथ्या समसना चाहिये॥ ४२०॥

### तेनैकदिक् ॥ ४२१ ॥ अ० ४ । ३ । ११२ ॥

एकदिक् नाम तुल्यदिक् अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों । जैसे-चृत्तेशैकदिक् वार्त्तः; वाराणस्या एकदिक् वाराणसेयो प्राप्तः; सुदासेकदिक् सौदामनी विद्युत्; हिमवतैकदिक् हैमवती इत्यादि ॥ ४२१ ॥

#### तितिश्च ॥ ४२२ ॥ अ० ४ । ३ । ११३ ॥

पकदिक् अर्थ में तृतीय।समर्थ प्रातिपदिकों से तसि प्रत्यय भी हो।

तिस प्रत्यय की अव्ययसंज्ञा जानती, खरादिगण में पाठ होने से। [जैसे—] नासिकया एकदिक् नासिकातः, सुदामतः, हिमवत्तः, पीलुमूलतः इत्यादि ॥ ४२२॥

### उरसो यच ॥ ४२३ ॥ अ० ४ । ३ । ११४ ॥

तेनैकिद्क् इस विषय में उरस् प्रातिपद्कि से यत् श्रोर चकार से तिस प्रत्यय भी हो। जैसे—उरसा एकदिक् उरस्यः, उरस्तः ॥ ४२३॥

#### उपज्ञाते ॥ ४२४ ॥ अ० ४ । ३ । ११५ ॥

उपज्ञात अर्थ में तृतीयासमंर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्य हों। जैसे — पाणिनिनोपज्ञातं पाणिनीयं व्याकरणम्ः पातञ्जलं योगशास्त्रम्; काराकृत्स्नम्; गुरु- लाघवम्; आःपशलम्।

जो अपने आप जाना जाय उसको 'उपझात' कहते हैं, श्रर्थात् विद्यमान वस्तु को जानना चाहिये॥ ४२४॥

#### कृते ग्रन्थे ॥ ४२५ ॥ अ० ४ । ३ । ११६ ॥

'जो किया जावे, सो प्रन्थ होवे तो', इस म्रर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथा-विहित प्रत्यय हो। जैसे—वरहचिना कृताः वारहचाः स्ठोकाः; मानवो प्रथः; धार्गवो प्रथः। यहां 'प्रन्थ' प्रहण् इसिलये हैं कि—कुलालकृतो घटः, यहां प्रत्यय न हो॥ ४२४॥

#### तस्येदम् ॥ ४२६ ॥ अ० ४ । ३ । १२० ॥

'उसका यह है', इस बर्थ में षष्टीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविद्दित प्रत्यय हों। जैसे—वनस्पतेरयं दगडो वानस्पत्यः, राज्ञः कुमारी राजकीया, राजकीयो सृत्यः, यहां (राज्ञः क च) इससे ककारादेश हो जाता है; उपगारिदम् श्रोपगदम् कापटवम्; राष्ट्रियम्; श्रवारपारीग्रम्; देवस्येदं दैवम्, दैव्यम् इत्यादि ॥ ४२६ ॥

#### वा०-वहेस्तुरणिट् च ॥ ४२७ ॥

तृच् प्रत्ययान्त वद धातु से अण् प्रत्यय श्रीर प्रत्यय को इट् का श्रागम भी हो। जैसे-संवोद्ध: स्वं सांविध्त्रम् ॥ ४२७॥

#### वा०-श्रमीधः शरणे रञ् भ च ॥ ४२८॥

शरण नाम घर ऋर्थ में, ऋग्नीध प्रातिपदिक से रञ् प्रत्यय ऋौर प्रत्यय के परे पूर्व की मसंद्रा भी जाननी चाहिये । जैसे—ऋाग्नीधं: शरणम् ऋाग्नीध्रम् ॥ ४२≈॥

#### वा०-समिधामाधाने षेग्यण् ॥ ४२६॥

समिध् प्रातिपदिक से आधान षष्ठी का अर्थ होवे, तो षेएयण् प्रत्यय होवे। षित्करण कीष् प्रत्यय होने के लिये है। [ जैसे — ] सामिधेन्यो मन्त्रः, सामिधेनी ऋक् ॥ ४२६॥

### द्रन्द्वाद् वुन् वैरमेथुनिकयोः ॥ ४३० ॥ अ० ४ । ३ । १२३ ॥

जिन २ का परस्पर वैर और योनिसम्बन्ध हो, उनके वाची द्वन्द्वसमास किये प्रातिपदिकों से बुन् प्रत्यय हो स्वार्थ में। [जैसे—] वैरद्वन्द्व से—श्रिहनकुलिका, वृद्ध प्रातिपदिकों से भी परत्व से बुन् होता है। जैस—काकोल्लिका; श्वावराहिका। मैथुनिकद्वन्द्व से—गर्गकुशिकिका; श्रित्रभरद्वाजिका इत्यादि।

यहां लिंगानुशासन की रीति से नित्य स्त्रीलिंग होता है ॥ ४३०॥

### वा०-वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः ॥ ४३१ ॥

वैर अर्थ में देवासुर आदि प्रातिपदकों से बुन् प्रत्यय न हो, किन्तु अण् ही होवे। जैसे—देवासुरम्; राज्ञोऽसुरम् इत्यादि ॥ ४३१॥

### गोत्रचरणाट् बुञ् ॥ ४३२ ॥ अ० ४ । ३ । १२४ ॥

गोत्रवाची श्रोर चरणवाची प्रातिपदिकों से बुज् प्रत्यय होवे ॥ ४३२ ॥

### वा०-चरणाद्धर्माम्नाययोः ॥ ४३३ ॥

गोत्रवाचियों से सामान्य षष्ठी के अर्थ में और चरणवाचियों से धर्म तथा आसाय विशेष अर्थों में बुज् प्रत्यय समस्तो । जैसे—गोत्र से—ग्लुचुकायनेरिदं ग्लोचुकायनकम्; वृद्धप्रातिपदिकों से भी परत्व से बुज् ही होता है । जैसे—गार्गकम्; वात्सकम् इत्यादि । चरणवाचियों से—कठानां धर्म आसायो वा काठकम्; मौद्कम्; पैप्पलादकम्; काला-पकम् इत्यादि ।

अधिकार होने से अण् पाता है, उसका यह बाधक है ॥ ४३३॥

### सङ्घाङ्कलक्षयोष्वञ्यञ्ज्ञामंग् ॥४३४॥ अ० ४ । ३ । १२५ ॥

पूर्व सूत्र से बुज् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है।

त्रजन्त यजन्त त्र्योर इजन्त षष्टीसमर्थ गोत्रवाची प्रातिपदिकों से सम्बन्ध सामान्य त्रर्थों में त्रण् प्रत्यय होवे । जैसे—विदानां सङ्घोऽङ्को तन्त्रणं वा वैदः; त्र्रोवंः । यजन्त से—गर्गाणां सङघोऽङ्को तन्त्रणं वा गार्गः; वात्सः । इजन्त से—दान्तः, स्नानः ॥ ४३४॥

#### वा०-सङ्घादिषु घोषग्रहण्यम् ॥ ४३५॥

सङ्घ श्रादि श्रथों में जो प्रत्यय कहे हैं, वे घोष श्रर्थ में भी उन्हीं प्रातिपदिकों से होवें। जैसे—गार्गो घोष:, वात्सो घोष:, दान्न: प्रान्नो वा इत्यादि ॥ ४३४ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

## शकलाद्वा ॥ ४३६ ॥ अ० ४ । ३ । १२८ ॥

इस सूत्र में प्राप्तविभाषा इसिलये समभाना चाहिये कि शकत शब्द गर्गादिगण में पढ़ा है, उसके यजन्त होने से पूर्व सूत्र से नित्य अण प्राप्त है, उसका विकल्प किया है।

षष्ठीसमर्थं गोत्रप्रत्ययान्त शकत प्रातिपदिक से विकल्प करके श्रण् प्रत्यय होवे, श्रीर पत्त में गोत्रवाची से बुञ् समभाना चाहिये। [जैसे—] शाकल्यस्य सङ्घोऽङ्को तत्त्वणं घोषो वेति शाकतः, शाकतकः।

इस सूत्र पर काशिका और सिद्धान्तकौ मुदी रचने और पढ़ने वाले लोग कहते हैं कि (शाकलाद्वा) ऐसा सूत्र होना चाहिये। वे लोग शकल शब्द से प्रोक्त अर्थ में अण् करके इस शकल शब्द को चरण्याची मानते और संघादि अर्थों में निर्वचन करके प्रत्यय करते हैं, सो यह उन लोगों का अर्थ मिथ्या है। क्योंकि जो (शाकलाद्वा) ऐसा सूत्र मानें तो शकल प्रातिपदिक चरण्याची हुआ, किर उससे संघादि अर्थों में कैसे प्रत्यय होगा, यह कथन पूर्वापर विरुद्ध है। क्योंकि चरण्याचियों से धर्म और आसाय अर्थ में प्रत्यय कहे हैं। और महाभाष्य से भी विरुद्ध है। महाभाष्यकार एतआले मुनि बहुत खलों में शाकल्य के सूत्र को शाकल लिखते हैं, किर चरण्याची होगा तो लक्षण अर्थ में शाकल्य शब्द से क्यों प्रत्यय हो सकेगा॥ ४३६॥

### रैवितिकादिभ्यश्छः ॥ ४३७ ॥ अ० ४ । ३ । १३१ ॥

यहां गोत्रवाचियों से बुज् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है। रैवितकादि प्रातिपदिकों से सम्बन्ध सामान्य अर्थ में छ प्रत्यय होवे। जैसे—रैवित-कानामयं संघो घोषो वा रैवितकीयः; सापिशीयः; त्रैमवृद्धीयः इत्यादि ॥ ४३७॥

#### वा०-कौपिञ्जलहाास्तपदादण् ॥ ४३८॥

यहां भी गोत्रप्रत्ययान्तों से बुज् प्राप्त है, उसका वाधक यह वार्तिक है। कौपिञ्जल ग्रीर हास्तिपद प्रातिपदिकों से सम्बन्ध सामान्य श्रर्थ में श्रण् प्रत्यय होवे। जैसे—कौपिञ्जलस्य संघ: कौपिञ्जलः; हास्तिपदः ॥ ४३८॥

### वा०-आधर्वणिकस्येकलोपश्च \* ॥ ४३६ ॥

\* अथर्वन् शब्द वसन्तादि गया में पढ़ा है, उससे अधीत वेद अर्थ में ठक् होता है। अथर्वायाम-धीते वेद वा आथर्वियाकः। और यह चरयावाची शब्द होने से बुज् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह वार्त्तिक अपवाद है। (कौपिन्जल॰) और (आथर्व॰) ये दोनों वार्त्तिक काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र करके तिखे और व्याख्यान भी किये हैं। सो जो ये सूत्र ही होते तो महाभाष्य में वार्त्तिक क्यों पढ़े जाते। और कैयट ने भी जिखा है कि सूत्रों में पाठ अपायिगनीय है। इससे निश्चय होता है कि कैयट के समय से पूर्व ही किसी ने मूर्खता से सूत्रों में जिखा दिये हैं॥ CC-0, Panini Kañya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative पूर्व वार्त्तिक से अस् प्रत्यय की अनुवृत्ति चली आती है।

आधर्वणिक शब्द से धर्म तथा आसाय अर्थ में अण् प्रत्यय और उसके इक भाग का लोप होते। जैसे—आधर्वणिकस्य धर्म आसायो वा आधर्वणः ॥ ४३६॥

### तस्य विकारः † ॥ ४४० ॥ अ० ४ । ३ । १३४ ॥

विकार अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय हों। जैसे—अश्मनो विकार आश्मनः, आश्मः, भस्मनो विकारो भस्मनः, भास्मः, मार्त्तिकः, वनस्पतेर्विकारो द्राडो वानस्पत्यः इत्यादि ॥ ४४० ॥

#### अवयवे च प्राग्योषधिवृत्तेभ्यः 🕆 ॥४४१॥ अ० ४ । ३ । १३५ ॥

विकार और अवयव अर्थ में प्राणी श्रोषिध और वृद्धवाची प्रातिपदिकों से यथा-विहित प्रत्यय हों, परन्तु प्राणिवाची शब्दों से इसी प्रकरण में आगे अञ्च कहेंगे।

जैसे [प्राणिवाची]—कपोतस्य विकारोऽवयवो वा कापोतः; मायूरः; तैत्तिरः। श्रोषधिवाची—लवङ्गस्य विकारोऽवयवो वा लावङ्गम्; दैवदारम्; निर्वश्या विकारोऽवयवो वा नैर्वश्यम्। वृत्तवाची—खदिरस्य विकारोऽवयवो वा खादिरम्; बार्बुरम्; कारीरं काग्रडम्, कारीरं अस्म इत्यादि॥ ४४१॥

### मयड् वैतयोर्भाषायामभच्याच्छाद्नयोः ॥४४२॥ अ० ४।३।१४३॥

विकार और अवयव अर्थ में लोकिकप्रयोगविषयक प्रकृतिमात्र से मयट् प्रत्यय विकल्प करके हो, भत्त्य और आच्छाद्न अर्थ को छोड़के। [ जैसे - ] अश्ममयम्, आश्मनः; मूर्वामयम्, मौर्वम्; वनस्पतेर्विकारो वनस्पतिमयम्, वानस्पत्यम्।

यहां 'भाषा' ग्रह्ण इसिक्तिये हैं कि—वैक्वः खादिरो वा यूपः स्यास्, यहां मयट् न हो। श्रोर 'श्रमच्याच्छादन' ग्रहण इसिक्तिये हैं कि—मौद्गः सूपः; कार्पासमाच्छादनम्, यहां भी मयट् न होवे॥ ४४२॥

#### नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ॥ ४४३ ॥ अ० ४ । ३ । १३६ ॥

यहां नित्यग्रहण विकल्प की निवृत्ति के लिये है।

ं इस सूत्र में तस्य प्रह्या की अनुवृत्ति (तस्येदम्) इस सूत्र से चली आती, फिर तस्य प्रह्या का प्रयोजन यह है कि यहां से पूर्व २ शेषाधिकार की समाप्ति समसी जावे, अर्थात् विकार अवयव आदि अर्थों में घ आदि प्रत्यय न होवें। और यह प्रकरण सामान्य पष्ट्यर्थ का बाधक है।

ं यह सूत्र नियमार्थ होने के लिये पृथक् किया है कि इस प्रकरण में प्राणी श्रोपिध श्रोर वृत्तवाची प्रातिपदिकों से विकारावयव दोनों श्रथों में, श्रोर श्रन्य शब्दों से केवल विकार श्रथे में ही प्रत्यय होवें। श्रीर ये दोनों सूत्र श्रधिकार के लिये हैं॥

भद्य श्रोर शाच्छादनरहित विकार श्रोर श्रवयव श्रर्थ हों, तो षष्ठीसमर्थ वृद्धसंश्रक श्रोर शरादिगण प्रातिपदिकों से लोकिक प्रयोगों में मयट् प्रत्यय नित्य ही होवे।

जैसे—श्राम्य विकारोऽवयवो वा श्राम्प्रमयम्; शालमयम्; शाकमयम्; तालमयम् इत्यादि, यद्दां वृद्धपातिपदिकों से छ प्रत्यय प्राप्त है, उसका बाधक मयट् है। शरादि—

शरमयम्; दर्भमयम् इत्यादि ॥ ४४३ ॥

### जातरूपेभ्यः परिमाणे ॥ ४४४ ॥ अ० ४ । ३ । १४६ ॥

जातरूप शब्द सुवर्ण का पर्यायवाची है। बहुवचन निर्देश से सुवर्णवाचकों का प्रहण होता है।

परिमाण विकार अर्थ होवे, तां सुवर्णवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे। जैसे - अष्टापदस्य विकार आष्टापदम्; जातरूपम्; सौवर्णम्; रौवमम् इत्यादि।

यहां 'परिमाण' ग्रहण इसिलये है कि सुवर्णमयः प्रासादः, यहां श्रण् प्रत्यय न हो । यह मयट् का श्रपवाद है ॥ ४४४ ॥

### प्राणिरजतादिभ्योऽञ्॥ ४४४ ॥ अ० ४ । ३ । १५० ॥

यह त्रण्का त्रपवाद है। षष्ठीसमर्थ प्राणिवाची त्रौर रजतादि प्रातिपदिकों से त्रज्ञ प्रत्यय हो, विकार त्रौर श्रवयव त्रश्रों में। [जैसे—]—प्राणी- कपोतस्य विकारः कापोतम्, मायूरम्, तैत्तिरम्। रजतादि—राजतम्, सैसम्, जोहम् इत्यादि ॥ ४४४॥

### क्रीतवत्परिमाणात् ॥ ४४६ ॥ अ० ४ । ३ । १५२ ॥

जिस २ परिमाणवाची प्रातिपदिक से कीत अर्थ में जो २ प्रत्यय होता है, उसी २ प्रातिपदिक से वही २ प्रत्यय यहां विकार अवयव अर्थ में होवे। जैसे—निष्केण कीतं नैष्किकम् होता है, वैसे ही—निष्कस्य विकारों नैष्किकः, शत्यः, शतिकः, द्विनिष्कः, द्विनिष्कः, द्विनिष्कः,

#### फले लुक् ॥ ४४७ ॥ अ० ४ । ३ । १५६ ॥

विकारावयव फल अर्थ अभिधेय हो, तो विहित प्रत्यय का लुक् होवे। जैसे — आम-लक्या: फलम् आमनकम्;वद्य्वी: फलानि बद्राणि; कुबलकम्; विम्धम् ॥ इत्यादि॥ ४४७॥

#### हुप् च + ॥ ४४८ ॥ अ० ४ । ३ । १६२ ॥

\* यहां सर्वत्र तिख्त प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् ( लुक् तिख्ति लुकि ) इस सूत्र से स्नीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है ॥

+ यहां पूर्व सूत्र से लुक् प्राप्त है, फिर लुक्विधान इसिलये है कि ( लुपि युक्तव ) इससे लिङ्ग स्रोर वचन भी युक्तवत् हो जावे , नहीं तो फल का विशेषण नपुंसकिलङ्ग होता ॥ जम्बू प्रातिपदिक से विद्वित विकारावयव प्रत्यय का विकल्प करके लुप होवे। जैसे—जम्ब्वा विकार: फलं जम्बू: फलम् ॥ ४४८॥

#### वा०-फलपाकशुषामुपसङ्ख्यानम् ॥ ४४६ ॥

जिन गेहूँ जो धान त्रादि फलों के पकने के समय में उनके वृत्त सूख जाते हैं, उनसे भी विद्वित विकारावयव प्रत्यय का नित्य लुप् होवे। जैसे—वीहीणां फलानि वीह्यः, गोधूमाः, यवाः, माषाः, तिलाः, मुद्राः, मसूराः इत्यादि ॥ ४४६॥

### वा०-पुष्पमूलेषु बहुलम् ॥ ४५० ॥

पुष्प श्रीर मूल विकारावयव श्रर्थ हों, तो यहुत करके प्रत्यय का लुप् हो। जैसे— मक्षिकायाः पुष्पं मूलं वा मिल्लकाः, करवीरम्ः, विसम्ः मृणातस्य पुष्पं मूलं वा मृणातम्।

यहुलप्रहण से कहीं नहीं भी होता । जैसे—पाटलानि पुष्पाणि मूलानि या; यैल्यानि फलानि ॥ ४४०॥ —[ इति तृतीयः पादः ॥ ]

#### [ त्र्रथ चतुर्थः पादः— ]

### प्राग्वहतेष्ठक् ॥ ४५१ ॥ अ० ४ । ४ । १ ॥

यह अधिकार सूत्र है। (तरहित॰) इस सूत्रपर्यन्त जो २ अर्थ कहे हैं, उन सबमें सामान्य से उक् प्रयय होगा। जैसे—असैर्दीव्यित आस्तिक: इत्यादि।

इस चतुर्थाध्याय के प्रथम पाद में (प्राग्दी ज्यतो ऽ ए) यह अधिकार कर चुके हैं। उसकी यहां से निवृत्ति समभो, क्यों कि अगले सूत्र में दी ज्यति शब्द पढ़ा है। अए के अधिकार की समाप्ति होने से प्रथम ही दूसरा उक् प्रत्यय का अधिकार कर दिया। इस विषय में लोकि क हथान्त यह है कि राजा जय बुद्ध होता है तो अपने जीवते ही पुत्र को गद्दी पर वैठा देता है ॥ ४५१॥

### वा०-ठक्प्रकरणे तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ४५२॥

ऐसा वह कहना है, इस अर्थ में माशः दादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे— माशःद इत्याह माशिदकः; नित्याः शब्दा इत्याह नैत्यशब्दिकः; कार्यशब्दिकः इत्यादि॥४४२॥

#### वा०-म्राहो प्रभृतादिभ्यः ॥ ४५३ ॥

द्वितीय।समर्थ प्रभूतादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होने कहने अर्थ में। जैसे— प्रभूतमाह प्राभूतिकः; पार्थाप्तिकः इत्यादि ॥ ४४३ ॥

#### वा०-पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः ॥ ४५४ ॥

द्वितोयासमर्थं सुज्ञु।तादि प्रांतिपदिकों से पूछने अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे — सुस्नातं पृच्छति सोस्नातिकः; सोस्नरात्रिकः; सुख्ययनं पृच्छति सोस्नशायनिकः इत्यादि ॥ ४४४॥

## वा०-गच्छती परदारादिभ्यः ॥ ४५५ ॥

द्वितीयासमर्थ परदारादि प्रातिपदिकों से गमन करने ऋथे में ठक प्रत्यय हो। जैसे—परदारान्, गच्छति पारदारिकः; गौहति हिप कः इत्यादि ॥ ४४४॥

## तेन दीव्यति खनति जयति जितम् \* ॥४५६॥ अ०४।४।२॥

दीव्यति आदि कियाओं के कर्ता वाच्य रहें, तो तृतीयासमर्थं प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होते। जैसे — अन्तर्देश्वयित आन्तिकः; कुदालेन खनित कौदालिकः; शलाकाभिर्जयित शालाकिकः, शलाकाभिर्जितं शालाकिकं धनम् इत्यादि ॥ ४४६॥

## संस्कृतम् ॥ ४५७ ॥ अ० ४ । ४ । ३ ॥

संस्कार करने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे — घृतेन संस्कृतं घार्तिकम्; तैलिकम्; द्रा संस्कृतं दाधिकम्; ताक्रिकम् इत्यादि ॥ ४५७॥

### तरति ॥ ४५८ ॥ अ० ४ । ४ । ५ ॥

तरने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से उक् प्रत्यय हो। जैसे—वृषभेगा तरित वार्षमिकः, माहिषिकः, श्रोडुपिकः इत्यादि॥ ४४८॥

### नौद्रयचष्ठन् ॥ ४५६ ॥ अ० ४ । ४ । ७ ॥

यहां पूर्व सूत्र से ठक् प्राप्त है, उसका अपवाद ठन् किया है।

तरने ऋथै.में तृनीयासमर्थ नो श्रोर द्वचच् प्रातिपदिकों से ठन् प्रत्यय होवे। जैसे— नावा तरित नाविकः; घटेन तरित घाटिकः; कोम्भिकः; वाहुकः इत्यादि॥ ४४६॥

### चरति ॥ ४६० ॥ अ० ४ । ४ । ८ ॥

चलने अर्थ में तृतीयासमर्थं प्रातिपदिकों से उक् प्रत्यय होवे। जैसे -शकटेन चरित शाकिट कः; राथिकः; हास्तिकः इत्यादि ॥ ४६०॥

### आकर्षात्वल् ॥ ४६१ ॥ अ० ४ । ४ । ६ ॥

यहां पूर्व सूत्र से ठक् पाता है, उसका अपवाद है।

चलने अर्थ में तृतीयासमर्थ आकर्ष प्रातिपदिक से छल् प्रत्यय होते। विन्करण स्त्रीलिङ्ग में डीव् होने के लिये है। [ तैसे— ] आकर्षेण चरति आकर्षिकः; आकर्षिकी ॥४६१॥

\* यहां जित शब्द का पृथक् प्रहण इसिलिये है कि जि घातु का कर्म ग्रिमियेय हो तो भी ठक् प्रत्यय हो जावे ॥

### का०-आकर्षात् पर्पादेर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच । आवसणात्किशरादेः षितः षडेते ठगधिकारे \* ॥ ४६२ ॥

यह त्रार्था छन्द है। त्राकर्ष शब्द से छल्, पर्पादिकों से छन्, भन्नादिकों से छन्, कुसीद त्रोर दशैकादश प्रातिपदिकों से छन् त्रीर छन्, त्रावसथ शब्द से छल्, त्रीर किशरादि प्रातिपदिकों से छन् ये छः प्रत्य इस त्रधिकार में वित् हैं ॥ ४६२ ॥

#### वेतनादिभ्यो जीवति ॥ ४६३ ॥ अ० ४ । ४ । १२ ॥

जीवने ऋषं में तृतीयासमर्थ वेतनादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—वेतनेन जीवित वैतनिकः; जालिकः; वेशेन जीवित वैशिकः; उपदेशेन जीवित ऋौपदेशिकः; उपस्थेन जीवित ऋौपस्थिकः, ऋौपस्थिकी गणिका ॥ ४६३॥

#### हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ॥ ४६४ ॥ अ० ४ । ४ । १५ ॥

हरने अर्थ में उत्संगादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—उत्सङ्गेन हरति श्रोत्सङ्गिकः; श्रोडुपिकः इत्यादि ॥ ४६४ ॥

#### विभाषा विवधात् ॥ ४६५ ॥ अ० ४ । ४ । १७ ॥

इस सूत्र में श्रप्राप्तविभाषा इसलिये हैं कि छन् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है। हरने श्रर्थ में तृतीयासमर्थ विवध प्रातिपदिक से छन् प्रत्यय विकल्प करके होवे, पन्त में ठक् हो। जैसे —विवधेन हरति विवधिक:,विवधिकी; वैवधिक:,वैवधिकी॥४६४॥

#### वा०-वीवधाच ॥ ४६६ ॥

वीवध प्रातिपदिक से भी हरने अर्थ में प्रन् प्रत्यय विकल्प करके होवे। जैसे—वीवधेन हरति वीवधिक:, वीवधिकी; वैवधिक:, वैवधिकी।

इस वीवध शब्द को काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र में ही मिला दिया है। सो वार्त्तिक होने से सूत्र में मिलाना ठीक नहीं है। और ये दोनों शब्द एकार्थ हैं। शब्द के सक्द का प्रहण होता है, इससे प्राप्त नहीं था॥ ४६६॥

### निर्वृत्तेऽक्षयूतादिभ्यः ॥ ४६७ ॥ अ० ४ । ४ । १६ ॥

निर्वृत्त अर्थात् सिद्ध होने अर्थ में तृतीयासमर्थ अत्तद्यूतादि प्रातिपदिकों से उक् प्रत्यय हो। जैसे—अत्तद्यूतेन निर्वृत्तमात्त्वद्यूतिकं वैरम्; जानुप्रहृतिकम्; काएटकमर्ह्-निकम् इत्यादि ॥ ४६७॥

अवहां ठक् प्रत्यय के श्रधिकार में किन्हीं प्रातिपिदकों में विभक्ति के सकार को संहिता में पत्य होजाता है, और किन्हीं प्रत्ययों में छीप् होने के लिये पित् किया है। इससे संदेह होता है कि किन प्रत्ययों में श्रीपदेशिक पत्य और किन में विभक्ति का है। इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह कारिका है॥

### क्त्रेर्मिन्यम् ॥ ४६८ ॥ अ० ४ । ४ । २० ॥

कित्र पत्ययान्त तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से निर्वृत्त अर्थ में मप् प्रत्यय नित्य ही होते। अर्थात् अधिकार के विकल्प से वाश्य प्राप्त है, सो भी न रहे। जैसे—पिकत्रमा यवागृः, उप्तिमं बीजम्, कृत्रिमः संसारः इत्यादि ॥ ४६८॥

#### वा०-भाव इति प्रकृत्य इमब्वक्तव्यः ॥ ४६६ ॥

भाववाची प्रातिपदिकों से इमप् प्रत्यय कहना चाहिये।

ऐसा वार्त्तिक करने से सूत्र का भी कुछ प्रयोजन नहीं है, क्योंकि कुट्टिमा भूमि:, सेकिमोऽसि:, इत्यादि उदाहरण सूत्र से सिद्ध नहीं हो सकते ॥ ४६६ ॥

#### संस्रष्टे ॥ ४७० ॥ अ० ४ । ४ । २२ ॥

मिलाने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—दथ्ना संसृष्टं दाधिकम्; ताक्रिकम्; मारिचिकम्; शार्क्गवेरिकम्; पैप्यलिकम्; दौग्धिकी यवागृः; गौडिका गोधूमाः इत्यादि ॥ ४७०॥

#### व्यञ्जनैरुपसिक्ते ॥ ४७१ ॥ अ० ४ । ४ । २६ ॥

उपिक्त अर्थात् सीचने अर्थ में व्यञ्जनवाची तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे-दभ्नोपिक्कं दाधिकम्; ताक्रिकम्;गौडिकम्; पायसिकम्;मारिचिकम् इत्यादि।

'व्यञ्जनवाचियों' का प्रहण इसलिये है कि - उदकेनोपसिक्तं शाकम्, यहां प्रत्यय न हो ॥ ४७१ ॥

### तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् ॥ ४७२ ॥ अ० ४ । ४ । २८ ॥

वर्त्तने अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रति तथा अनु ये जिनके पूर्व हों, ऐसे ईप लोम और कूल प्रातिपदिकों से ठक प्रत्यय हो। जैसे - प्रतीपं वर्त्तते प्रातीपिकः; श्रान्वीपिकः; प्रतिलोमं वर्त्तते प्रातिलोमिकः; आनुलोमिकः; प्रतिकूलं वर्त्तते प्रातिकृलिकः; श्रानुकृलिकः ॥४७२॥

#### प्रयच्छति गर्ह्यम् ॥ ४७३ ॥ अ० ४ । ४ । ३० ॥

प्रयच्छति म्रर्थात् देने म्रर्थ में, जो पदार्थ दिया जाय सो निन्दित हो, तो द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो ॥ ४७३ ॥

#### वा०-मेस्याह्वोपो वा ॥ ४७४ ॥

प्रत्यय उत्पन्न होते समय मे, स्यात् इन दो पदों का विकल्प करके लोप होजावे।

विकल्प'इसिलये हैं कि वाक्य भी बना रहे। जैसे—द्विगुएं में स्वादिति प्रवच्छति द्वैगुणिक:, त्रैगुणिक:॥ ४७४॥

### वा०-वृद्धेर्वधुषिभावः ॥ ४७५ ॥

यहां मे, स्यात् इन दो पदों की अनुवृत्ति चली आती है।

वृद्धि शब्द को वृधुषि त्रादेश स्रोर ठक् प्रत्यय होते। जैसे—वृद्धिमें स्यादिति धनं प्रयच्छति वार्धु षिक:॥ ४७४॥

### उच्छति ॥ ४७६ ॥ अ० ४ । ४ । ३२ ॥

उञ्जने अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होने। जैसे-बद्राग्यु-ञ्जति बाद्रिकः; श्यामाकिकः; गोधूमानुञ्जति गोधूमिकः; काणिकः इत्यादि॥ ४७६॥

### रक्षति ॥ ४७७ ॥ अ० ४ । ४ । ३३ ॥

रजा अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से उक् प्रत्यय होवे। जैसे प्रामं रक्ति यामिकः; समाजं रक्ति सामाजिकः; गोमगृडलं रक्ति गौमगृडलिकः; कुटुम्यं रक्ति कौटुम्विकः; नगरं रक्ति नागरिकः इत्यादि ॥ ४७७ ॥

### पक्षिमत्स्यसृगान् हन्ति ॥ ४७= ॥ अ० ४ । ४ । ३५ ॥

मारने अर्थ में द्वितीयासमर्थ पित्त मत्स्य और मृगवाची प्रातिपिद्कों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—[पित्त—] पित्तणो हन्ति पात्तिकः; त्वैचरिकः; शाकुनिकः; शुकान् हन्ति शोकिकः; वाकिकः; मायूरिकः; तैत्तिरिकः। मत्स्य—मात्तिस्यकः; मैनिकः; शाफरिकः; शाकुविकः। मृग—मार्गिकः; हारिणिकः; सोकरिकः; सारङ्गिकः ॥ ४७८॥

### परिपन्थञ्च तिष्ठति ॥ ४७६ ॥ अ० ४ । ४ । ३६ ॥

स्थिति श्रीर मारने श्रर्थ में द्वितीयासमर्थं परिपन्थ प्रातिपदिक से उक् प्रत्यय होवे। जैसे-परिपन्थं तिष्ठति पारिपन्थिको दस्युः, परिपन्थं हन्ति पारिपन्थिक उत्कोचकः ॥४७६॥

### माथोत्तरपद्पद्व्यनुपदं धावात ॥ ४८०॥ अ० ४ । ४ । ३७ ॥

इस सूत्र में माथ शब्द मार्ग का पर्यायवाची है।

शोधने श्रीर ज्ञान गमन प्राप्ति अर्थों में पदवी श्रजुपद श्रीर माथ शब्द जिनके उत्तरपद में हो, ऐसे प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होते। जैसे—विद्यामार्थ धावति वैद्यामाथिकः; धार्ममाथिकः; दाएडमाथिकः इत्यादि। पदवीं धावति पादावेकः; श्राजुपदिकः॥ ४८०॥

\* यहां शब्दों के स्वरूप का प्रहण इसिलये नहीं होता कि (स्वरूपं०) इस पर वार्तिक पढ़ा है कि ऐसा संकेत करना चाहिये कि जिससे पत्ती मृग और मत्स्य इनके पर्यायवाची ग्रौर विशेषवाचियों का भी प्रहण हो जावे॥

## पदोत्तरपदं रह्वाति ॥ ४८१ ॥ अ० ४ । ४ । ३६ ॥

ग्रह्ण करने अर्थ में पद शब्द जिनके उत्तरपद में हो, उन द्वितीयासमर्थं प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—पूर्वपदं गृह्णाति पौर्वपदिकः; श्रीत्तरपदिकः इत्यादि ॥४८१॥

### धर्मं चरति ॥ ४८२ ॥ अ० ४ । ४ । ४१ ॥

आचरण अर्थ में द्वितीयासमर्थ धर्म प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—धर्म चरति धार्मिकः ॥ ४८२॥

### वा०-अधमीच्च ॥ ४८३ ॥

श्राचरण अर्थ में अधर्म शब्द से भी ठक् हो। जैसे — अधर्म चरति आधर्मिक: ॥४८३॥

### समवायान्त्समवैति ॥ ४८४ ॥ अ० ४ । ४ । ४३ ॥

यहां बहुवचन निर्देश से समवायवाची शब्दों का ग्रहण होता है।

प्राप्त होने अर्थ में द्वितीयासमर्थ समवायवाची प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यव हो। जैसे समवायान् समवैति सामवायिकः; सामाजिकः; सामृहिकः; साङ्धिकः इत्यादि ॥ ४८४॥

## संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यो पश्यति ॥४८५॥ अ० ४ । ४ । ४६॥

देखने त्रर्थ में संझा वाच्य रहे, तो द्वितीयासमर्थ ललाट श्रीर कुकुटी प्रातिपदिकों से ठक प्रत्यय हो । जैसे -ललाटं पश्यित लालाटिको भृत्यः +; कुकुटीं पश्यित कौकुटिको भिजुक: ॥ ४८४॥

## तस्य धर्म्यम् ॥ ४८६ ॥ अ० २ । २ । २७ ॥

जो कार्य धर्म का विरोधी न हो उसको धर्म्य कहते हैं।

षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से धर्म्य अर्थ में ठक् प्रत्यय हो। जैसे—हाटकस्य धर्म्य हाटिककम्; स्राकरिकम्; स्रापिशकम् इत्यादि ॥ ४८६॥

### ऋतोऽञ् ॥ ४८७॥ अ० ४ । ४ । ४६॥

धर्म्य अर्थ में षष्ठीसमर्थ ऋकारान्त प्रातिपदिक से अञ् प्रत्यय होवे। जैसे— होतुर्धस्य होत्रम्; पोत्रम्; दोहित्रम्; खास्त्रम् इत्यादि ॥ ४८७ ॥

+ जाजाटिक उस सेवक को कहते हैं कि जो अच्छे प्रकार काम न करे, बैठा २ माजिक का मुख देखा करे ॥

#### वा०-तृनराभ्यामञ्वचनम् 🟶 ॥ ४८८ ॥

नृ श्रीर नर शब्द से भी श्रञ् प्रत्यय होने। जैसे—नुर्धर्म्या नारी। वनं नरस्यापि नारी॥ ४८६॥

### वा०-विशसितुरिड्लोपश्च ॥ ४८६॥

विशसित शब्द से अञ् प्रत्यय और प्रत्यय के परे इट् का लोप होवे। जैसे— विशसितुर्धर्म्यं वैशस्त्रम् ॥ ४८६॥

### वा०विभाजयितुर्गिलोपश्च ॥ ४९० ॥

विभाजियतः शब्द से अञ् प्रत्यय और उस प्रत्यय के परे णिच् का लोप भी होवे। जैसे—विभाजियतुर्धर्म्यं वैभाजित्रम् ॥ ४६० ॥

#### अवक्रयः ॥ ४६१ ॥ अ० ४ । ४ । ५० ।

अवक्रय अर्थात् खरीद्ने और बेचने अर्थ में बष्ठी समर्थ प्रातिपदिक सेटक् प्रत्यय होते। जैसे-गोशालाया अवक्रयो गौशालिकः; आकरिकः; आपणिकः; हाटकिकः इत्यादि ॥४६१॥

#### तदस्य पग्यम् ॥ ४६२ ॥ अ० ४ । ४ ५१ ॥

प्राथसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से पष्ठी के अर्थ में ठक प्रत्यय होवे। जैसे — सुवर्ण प्राथमस्य सौवर्णिकः, अपूपाः प्राथमस्य आपूपिकः, शास्त्र लिकः, ओषधयः प्राथमस्य औषधिकः, मुक्ताः प्राथमस्य मौक्तिकः इत्यादि ॥ ४६२ ॥

#### शिल्पम् ॥ ४६३ ॥ अ० ४ । ४ । ५५ ॥

शिल्प शब्द किया की कुशलता अर्थ में वर्त्तमान है। शिल्पसमानाधिकरण प्रथमान समर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः । प्रश्विकः; वीणावादनं शिल्पमस्य वैणिकः इत्यादि ॥ ४६३॥

#### प्रहरणम् । ४६४ ॥ अ० ४ । ४ । ५७ ॥

ें के नियं प्रहरा किया है, जैसे नृ शब्द से श्रम् होकर नारी बनता है, वैसे नर शब्द से भी जानो ॥

्र पहां वाक्य में महाभाष्यकार ने उत्तरपद का लोप इसलिये माना है कि मार्विङ्गक शब्द से सुदङ्ग बनाने वाले का ही प्रहण होवे। भीर सुदङ्ग रचने वाला कुम्हार तथा चाम भादि से मदने वाले की भी कारीगरी उसमें होती है, परन्तु लोक में मार्विङ्गक शब्द से उसका बनाने वाला ही लिया जाता है। भीर ऐसा ही वाक्यार्थ सब प्रयोगों में जानो ॥

प्रहरण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्टी के ऋर्थ में ठक् प्रत्यय हो। जैसे—आग्नेपास्त्रं प्रहरणमस्य आग्नेपास्त्रिकः; शतन्नी प्रहरणमस्य शातिन्नकः; भौशुणिडकः; असिः प्रहरणमस्य श्रासिकः; चाक्रिकः; धानुष्कः; दाणिडकः इत्यादि ॥ ४६४॥

### शक्तियष्ट्योरीकक् ॥ ४६५ ॥ अ० ४ । ४ । ५६ ॥

प्रहरण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ शक्ति और यष्टि प्रातिप देकों से षष्ठी के अर्थ में ईकक् प्रत्यय होवे। जैसे-शक्तिः प्रहरणमस्य शाक्तीकः, याष्टीकः॥ ४६४॥

### अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ॥ ४६६ ॥ ऋ० ४ । ४ । ६० ॥

श्रस्ति नास्ति श्रोर दिए इन मित समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के श्रर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—श्रस्तीति मितरस्य स श्रास्तिकः ∭; नास्तीति मितरस्य स नास्तिकः; दिष्टमिति मितरस्य स दैष्टिकः ॥ ४६६॥

### शीलम् ॥ ४६७ ॥ अ० ४ । ४ । ६१ ॥

शील समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठक प्रत्यथ हो। जैसे — अपूपा भंज्ञणं शीलमस्य स आपूपिकः; शाक्कुलिकः ×; दौरिधकः; मौदिकिकः; आदिनिकः; साक्तुकः इत्यादि ॥ ४६७॥

### छत्रादिभ्यो गाः ॥ ४६८ ॥ अ० ४ । ४ । ६२ ॥

शील समानाधिकरण प्रथमासमर्थ छत्र त्रादि गणपित प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ण प्रत्यय होते। ठक् प्राप्त है उसका बाधक है। छत्र शब्द मुख्य करके छाता का नाम है ॥ ४६८॥

सा०-किं यस्य छत्रधारणं शीलं स छात्रः ? किञ्चातः ? राजपुरुषे प्राप्तोति । एवं तर्द्धुत्तरपद्लोपो ५ द्रष्टव्यः । छत्र-मिवच्छत्रम्, गुरुष्ठत्रम्, गुरुणा शिष्यश्वत्रवच्छायः । शिष्येण गुरुर्छत्रवत्परिपाल्यः ॥ ४६६ ॥

यहां वाक्यार्थं में इति शब्द से उत्तरपद का लोप समक्ष्मना चाहिये। क्योंकि ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म स्रोर शुभाशुभ कर्मों का फल घादि है, ऐसी बुद्धि जिस पुरुप की हो वह स्रास्तिक, धौर इसके विरुद्ध नास्तिक समक्षा जावे। स्रोर जो इति शब्द का लोप न समके तो जिस चोर स्रादि में स्रधिक बुद्धि हो वह भी स्रास्तिक स्रोर बुद्धि से रहित जड़ पदार्थं भी नास्तिक कहावें॥

राष्कुलिक आदि न हो लावें । लोक में इन पदार्थों के खाने वाले ही इन नामों से समके जाते हैं ॥

लोक में परम्परा से छात्र शब्द विद्यार्थी का वाची है। इसलिये महाभाष्यकार ने इस विषय का स्पष्ट व्याख्यान कर दिया कि—छत्र शब्द से यहां गुरु उपमेय है। अर्थात् शिष्य के अज्ञानक्षपी अन्धकार को गुरु निवारण करता है, इसलिये छत्र है। जैसे घाम आदि से अपनी रक्षा करनेहारे छाता को यहा से रखते हैं, वैसे ही अपने सेवन से गुरु की रक्षा करनेवाला पुरुष छात्र कहाता है। और जैसे छाता घाम आदि से होनेवाले दु:खों का निवारण करता है, नेसे ही गुरु भी मूर्खता आदि से होनेवाले दु:खों को नए करता है। जिसे—] छत्रं गुरुस्तत्सेवनशीलमस्य स छात्र:, कन्या चेच्छात्रा; बुसुक्ता शीलमस्य स बोमुक्त: इत्यादि।

इस सूत्र पर जयादित्य भट्टोजिदीचितादि कहते हैं कि—गुरु के जो दुए कम्में हैं, उनके श्राच्छा रन करने का खभाववाला शिष्य छात्र कहाता है। इस क्यांख्यान को युद्धिमान् वैयाकरण विचारें कि महाभाष्य से कितना विरोध श्राता है। इस सूत्र के व्याख्यान से ऐसा अनुमान होता है कि जयादित्य भट्टोजिदीचितादि लोग महापातकी होंगे॥ ४६६॥

#### हितं भक्षाः ॥ ५०० ॥ अ० ४ । ४ । ६५ ॥

यहां भन्न शब्द में बहुवचननिर्देश से भन्नवाचियों का प्रहण होता है। हित शब्द के योग में-चतुर्थी विभक्ति होती, श्रोर पूर्व से यहां पष्टवर्थ की श्रनुवृत्ति श्राती है, इसिलये उस षष्ठी का विपरिणाम चतुर्थी समभनी चाहिये।

हित समानाधिकरण प्रथमासमर्थ भद्यवाची प्रातिपिदकों से चतुर्थी के अर्थ में ठक् प्रत्यय होते। जैसे—श्रोदना हितमस्मै श्रोदिनिकः, श्रपूपा हितमस्मै श्रापूपिकः, शास्कुलिकः, मौदिककः इत्यादि॥ ५००॥

#### तद्समै दीयते नियुक्तम् ॥ ५०१ ॥ अ० ४ । ४ । ६६ ॥

निरन्तर देने अर्थ में प्रथमःसमर्थ प्रातिपदिक से उक् प्रत्यय होवे। जैसे — अग्रासन-मस्मै दीयते आग्रासनिकः; आग्रभोजानकः; अपूपा अस्मै दीयन्त इत्यापूपिकः; मौदिकिकः इत्यादि॥ ४०१॥

#### तत्र नियुक्तः ॥ ५०२ ॥ अ० ४ । ४ । ६६ ॥

नियत करने त्रर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—पाक-शालायां नियुक्तः पाकशालिकः; श्रील्कशालिकः; हार्टाककः; त्रापिकः; धर्मोपदेशे नियुक्तो धार्मोपदेशिकः; वैद्याध्ययनिकः; शास्त्राध्यापनिकः; यन्त्रालये नियुक्तो यान्त्रा-लयिकः इत्यादि॥ ४०२॥

#### अगारान्ताहुन् ॥ ५०३ ॥ अ० ४ । ४ । ७० ॥

यहां पूर्वसूत्र से ठक् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है।
नियत करने अर्थ में सप्तमीसमर्थ अगारान्त प्रातिपदिक से ठन् प्रत्यय हो। जैसे—
धनागारे नियुक्तो धनागारिकः; श्रस्त्रागारिकः; अश्वागारिकः; पुस्तकागारिकः
इत्यादि ॥ ४०३ ॥

## अध्यायिन्यदेशकालात् ॥ ५०४ ॥ अ० ४ । ४ । ७१ ॥

जिन देश और कालों में पढ़ने का निषेध है, उन प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—श्मशानंऽधीते श्माशानिकः; शेंद्रसान्निधिकः; सन्धिवेलायामधीते सान्धिवेलिकः; अष्टम्यामधीते आएमिकः; चातुर्देशिकः; पौर्णमासिकः इत्यादि॥ ५०४॥

## कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति ॥५०५॥ अ० ४।४। ७२॥

व्यवद्वार करने श्रर्थ में कठिनान्त प्रस्तार श्रीर संस्थान प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—कुलकठिने व्यवहरति कौलकठिनिकः, कौटुम्यकठिनिकः, प्रस्तारे व्यव-हरति प्रास्तारिकः, सांस्थानिकः इत्यादि॥ ४०४॥

#### निकटे वसति ॥ ५०६ ॥ अ० ४ । ४ । ७३ ॥

वसने अर्थ में सप्तमीसमर्थ निकट प्रातिपदिक से ठक प्रत्यय हो। जैसे—निकटे वसति नैकटिक:॥ ४०६॥

#### प्राग्धिताचत् ॥ ५०७ ॥ अ० ४ । ४ । ७५ ॥

प्रथम ठक् प्रत्यय का अधिकार कर आये हैं, उसकी समाप्ति यहां से समभानी चाहिये। क्योंकि वहित शब्द अगले सुत्र में है, उस अधिकार के रहते ही दूसरा अधिकार यत् प्रत्यय का करते हैं, इसका दृष्टान्त भी पूर्व दे चुके हैं।

यहां से ले के (तस्मै हितम्) इस अधिकार के पूर्व २ जो २ अर्थ कहेंगे, उन २ में सामान्य करके यत् प्रत्यय का अधिकार सम्भना चाहिये। जैसे—रथं वहति रथ्यः युग्यः इत्यादि॥ ४०७॥

#### तद्वहति रथयुगवासङ्गम् ॥ ५०८ ॥ अ० ४ । ४ । ७६ ॥

ले चलने श्रर्थ में द्वितीयासमर्थ रथ युग श्रीर प्रासङ्ग प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होते । जैसे—रथं वहति रथ्यः; युग्यः; प्रासङ्ग्यः ।

रथ शब्द से सम्बन्धसामान्य शेष अर्थ में भी यत् प्रत्यय होता है। [जैसे — ] रथं वहित रथ्य:, रथस्य बोढा रथ्य:। यहां प्रयोग और अर्थ में कुछ भी भेद नहीं हैं, फिर होनों जगह करने का प्रयोजन यह है कि जब तदन्तिविध मान के द्विगुसंज्ञक रथ शब्द से प्रत्यय करेंगे, तब शेष अर्थ में प्राग्दीन्यतीय होने से (द्विगोर्जु॰) इससे प्रत्यय का

लुक् हो जावेगा। जैसे द्वयोर्थयोवोंढा द्विरणः। स्रोर जब द्वी रथी बहति, ऐसा विम्रह करें, तब द्विरथ्यः ऐसा प्रयोग होगा।

इसी प्रकार इल और सीर शब्दों से भी दोनों जगह एक ही प्रत्यय कहा है, उसका भी यही प्रयोजन है ॥ ४०८॥

#### संज्ञायां जन्याः ॥ ५०६ ॥ अ० ४ । ४ । ८२ ॥

ले जाने ऋर्थ में बधूवाची द्वितीयासमर्थ जनी प्रातिपदिक से संज्ञा बाच्य रहे, तो यत् प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—जनीं बधूं वहन्ति ते जन्याः। विवाह के समय जो बरात जाती है, उसको जन्या कहते हैं॥ ४०६॥

#### विध्यत्यधनुषा ॥ ५१० ॥ अ० ४ । ४ । ८३ ॥

वेधने अर्थ में धनुष् करण न हो, तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होते। जैसे—पादी विध्यति पद्या दूर्वा; कएठ विध्यति कएठ्यो रसः।

यहां 'श्रजुष् का निषेध' इस्रालिये हैं कि — श्रजुषा विश्यति; श्रजु विश्यति, यहां उभयत्र प्रत्यय न होवे ॥ ४१० ॥

#### धनगर्गा लब्धा ॥ ५११ ॥ अ० ४ । ४ । ८४ ॥

लाभ होने का कर्त्ता वाच्य रहे, तो द्वितीयासमर्थ धन श्रीर गण शब्दों से यत् प्रत्यय होने । जैसे—धनं लब्धा धन्यः, गणं लब्धा गण्यः ॥ ४११ ॥

#### गृहपातना संयुक्ते ज्यः ॥ ५१२ ॥ अ० ४ । ४ । ६० ॥

यहां पूर्वस्त्र से संज्ञा की अनुवृत्ति आती है। संयुक्त अर्थ में तृतीयासमर्थ गृहपति प्रातिपदिक से संज्ञा अभिधेय हो, तो ज्य प्रत्यय होवे। जैसे — गृहपतिना संयुक्तो गाईपत्य:। यहां 'संज्ञा' ग्रहण इसिलये है कि — 'गाईपत्य' दिज्ञणाञ्चि का नाम न होजावे॥ ४१२॥

### नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्य्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्य-समसमितसम्मितेषु ॥ ५१३ ॥ अ० ४ । ४ । ६१ ॥

तृतीयासमर्थ नौ आदि प्रातिपदिकों से तार्य आदि अर्थों में यथासंख्य करके यत् प्रत्यय होने । जैसे—नो शब्द से तैरने अर्थ में — नावा तार्य नाव्यम्; घयस शब्द से तुस्य अर्थ में — वयसा तुल्यं वयस्यं मित्रम्; धर्म्स शब्द से प्राप्त होने योग्य अर्थ में — धर्मेण प्राप्यो धर्म्योऽपवर्गः; विषशब्द से मारने योग्य अर्थ में – विषेण वध्यो विष्यः पापी; मूल शब्द से नाने अर्थ में — मूलेनानाम्यं मूल्यम्; दूसरे मूल शब्द से सम अर्थ में — मूलेन समो मूल्यो घटः; सीताशब्द से चौकस करने अर्थ में — सीतया समितं सीत्यं देत्रम्; तुला शब्द से तोलने अर्थ में — तुल्या सिमतं तुल्यं धान्यम् ॥ ४१३॥

## धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ॥ ५१४ ॥ अ० ४ । ४ । ६२ ॥

अन्येत अर्थात् युक्त अर्थ में पञ्चमीसमर्थ पथिन् अर्थ और न्याय प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होता है। जैसे—धर्मादनपेतं धर्म्यम्; पथोऽनपेतं पथ्यम्; अर्थ्यम्; न्याय्यम् ॥४१४॥

### छन्दसो निर्मिते ॥ ५१५ ॥ अ० ४ । ४ । ६३ ॥

निर्माण अर्थ में तृतीयासमर्थ छन्दस् प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो। जैसे — छन्दसा निर्मितः छन्दस्यः, यहां छन्दश्शव्द इच्छा का पर्यायवाची है ॥ ४१४॥

### उरसोऽण् च ॥ ५१६ ॥ अ० ४ । ४ । ९४ ॥

निर्मित अर्थ में तृतीयासमर्थ उरस् शब्द से अर्ग् और चकार से यत् प्रत्यय भी हो । जैसे -- उरसा निर्मित: औरस:; उरस्य: पुत्र: ॥ ४१६ ॥

#### हृदयस्य प्रियः ॥ ५१७ ॥ अ० ४ । ४ । ९५ ॥

प्रिय द्वार्थ में पष्टीसमर्थ हृद्य शब्द से यत् प्रत्यय हो। जैसे—हृद्यस्य प्रियो हृद्यो धर्मः; हृद्यो देशः; हृद्या कन्या; हृद्यां वनम् ॥ ५१७॥

### तत्र साधुः ॥ ५१८॥ अ०४।४। ६८॥

साधु अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो। जैसे—सामसु साधुः सामन्यः; नेमन्यः; कर्मग्यः; शरग्यः। साधु प्रवीण वा योग्य का नाम है ॥ ५१८॥

#### सभाया यः ॥ ५१९ ॥ अ० ४ । ४ । १०५ ॥

साधु अर्थ में सप्तमीसमर्थ सभा शब्द से य प्रत्यय हो। जैसे—सभायां साधुः सभ्यः, यहां य स्रोर यत् में स्वर का भेद है, उदाहरण का नहीं ॥ ४१६ ॥

#### ढश्छन्दिसि ॥ ५२० ॥ ऋ० ४ । ४ । १०६ ॥

साधु अर्थ में जो वेद्विषय हो, तो सभा शब्द से ढ प्रत्यय हो। जैसे—सभेयोऽस्य युवा यजमानस्य वीरो जायताम्॥ ४२०॥

#### समानतीर्थे वासी ॥ ४२१ ॥ ऋ० ४ । ४ । १०७ ॥

वसने ऋर्थ में सप्तमीसमर्थ समानतीर्थ शब्द से यत् प्रत्यय हो ॥ ४२१ ॥

#### तीर्थे ये ॥ ४२२ ॥ अ०६ । ३ । ८७ ॥

क्ष यहां सर्वत्र हृदय शब्द को ( हृदयस्य हृत्नेखं ) इस सूत्र से हृत् श्रादेश हो जाता है ॥

तीर्थं उत्तरपद परे हो, तो समान शब्द को सक्त्रादेश होवे। जैसे—समाने तीर्थे वसित सतीर्थों ब्रह्मचारी \* ॥ ४२२ ॥

# समानोदरे शयित ओ चोदात्तः ॥५२३॥ अ० ४ । ४ । १०८ ॥

सोने अर्थ में सप्तमीसमर्थ समानोदर शब्द से यत् प्रत्यय और समानोदर के ओकार को उदात्त हो ॥ [ जैसे— ] समान उदरे शयित: समानोदय्यों भ्राता ॥ ४२३॥

सोदराचः ॥ ५२४ ॥ अ० ४ । ४ । १०६ ॥

सोने ऋर्थ में सप्तमीसमर्थ सोदर शब्द से यत् प्रत्यय हो ॥ ४२४॥

# विभाषोदरे ॥ ५२५ ॥ अ० ६ । ३ । ८८ ॥

उदरे शब्द के परे यत् प्रत्यय हो, तो समान शब्द को विकल्प करके स आदेश होवे। जैसे-समानोदरे शयित: सोदर्यो आता !॥ ४२४॥

# भवे छन्द्सि ॥ ५२६ ॥ अ० ४ । ४ । ११० ॥

भव अर्थ और वैदिक प्रयोगों में सप्तमीसमर्थं प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो।
यहां छुन्द का अधिकार इस पाद की समाप्ति तक, और भवाधिकार (समुद्राभाद् घः) इससे पूर्व २ जानना चाहिये। यह अर्ण् और घ आदि प्रत्ययों का अपवाद है।
[ जैसे— ] मेध्याय च विद्युत्याय च नमः इत्यादि ॥ ४२६॥

# पूर्वैः कृतामनियो च ॥ ५२७ ॥ अ० ४ । ४ । १३३ ॥

कृत अर्थ में तृतीयासमर्थ पूर्व शब्द से इनि तथा य श्रोर चकार से ख प्रत्यय होतें। जैसे-पूर्वें: कृतं कर्म पूर्विः, पूर्विम्; पूर्वीण्म् ॥ ४२७॥

# अद्भिः संस्कृतम् ॥ ५२८ ॥ अ० ४ । ४ । १३४ ॥

संस्कृत ऋथी में तृतीय।समर्थ ऋप् शब्द से यत् प्रत्यय हो । जैसे — ऋद्भिः संस्कृतम् अप्यं हिवः ॥ ४२८॥

# सोममहिति यः ॥ ५२६ ॥ अ० ४ । ४ । १३७ ॥

योग्यता त्रार्थ में द्वितीयासमर्थ सोम शब्द से य प्रत्यय हो। [ जैसे— ] स्रोममईति सोम्य: ॥ ४२६ ॥

\* यहां तीर्थं उसको कहते हैं जो संसार के दुःखों से पार कर देवे। सो पढ़ानेवाला आचार्य और वेदविचा समक्ती चाहिये। जिनका एक गुरु पढ़ानेहारा और वेद का पाठ साथ हो, वे सतीर्थ्यं कहार्वे॥

‡ समानोदर्थ्य और सोदर्थ्य उन माइयों के नाम हैं कि जो एक माता के उदर से उत्पन्न हुए हों। और जिनकी माता दो और पिता एक होने उनके ये नाम नहीं हो सकते हैं॥ मये च ॥ ५३० ॥ अ० ४ । ४ । १३८ ॥

जिन २ त्रधों में मयट् प्रत्यय विधान किया है, उन २ त्रधों झोर उन्हीं समर्थ-विभक्तियों से सोम शब्द से य प्रत्यय हो। जैसे—सोमस्य विकारोऽवयवो वा सोम्यं मधु इत्यादि॥ ४३०॥

# शिवशमरिष्टस्य करे ॥ ५३१ ॥ अ० ४ । ४ । १४३ ॥

करने अर्थ में शिव शम् और अरिष्ट शब्दों से तातिल् प्रत्यय हो। जैसे-शिवस्य कर: शिवताति:, शन्ताति:, अरिष्टताति:॥ ४३१॥

#### भावे च ॥ ५३२ ॥ श्र० ४ । ४ । १४४ ॥

भावार्थ में भी शिव शम् श्रीर श्रिरिष्ट प्रातिपदिकों से तातिल् प्रत्यय हो । जैसे— शिवस्य भावः शिवतातिः, शन्तातिः, श्रिरिष्टतातिः ॥४३२॥—इति चतुर्थाच्यायः समाप्तः ॥

#### श्रय पञ्चमाध्याय श्रारम्यते—

#### प्राक्कीताच्छः ॥ ५३३ ॥ अ०५ । १ । १ ॥

कीताधिकार से पूर्व २ छ प्रत्यय का श्रिधकार किया जाता है। यहां से आगे सामान्य करके सब अर्थों में छ प्रत्यय होगा। जैसे—घटाय हिता घटीया मृत्तिका इत्यादि॥४३३॥

## उगवादिभ्यो यत्॥ ५३४॥ स्र०५।१।२॥

क्रीत से पूर्व २ जो अर्थ कहे हैं, उनमें उवर्णान्त और गवादि प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो। यह छ प्रत्यय का अपवाद है।

[जैसे—] शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु; पिचव्यः कार्पासः; कमएडलव्या मृत्तिका इत्यादि। शवादिकों से—गवे हितं गव्यम्; हविष्यम्; मेधायै हितं मेध्यम् इत्यादि॥ ४३४॥

#### तस्मै हितम् ॥ ५३४ ॥ अ० ५ । १ । ५ ॥

हित नाम उपकारी का है, उस हित अर्थ में चतुर्थीसमर्थ प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हो। जैसे—रोगिणे हितं रोगीयमोषधम्ः मात्रीयः पित्रीयो वा पुत्रः, वत्सेभ्यो हितो भीधुक् वत्सीयः, गर्गेभ्यो हितं गर्गीयं शास्त्रम् इत्यादि ॥ ४३४ ॥

#### बारीराऽवयवायत् ॥ ५३६ ॥ अ० ५ । १ । ६ ॥

हित अर्थ में प्राणियों के ऋवयववाची प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो। यह सूत्र छ प्राचन का अपवाद है। [जैसे—] दन्तेम्यो हितं दन्त्यं मञ्जनम्; कराठ्यो रसः; नाम्यम्; नस्यम्; पद्यम्; मूर्जन्यः इत्यादि ॥ १३६॥

# आत्मिन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्वः ॥ ५३७ ॥ अ० ५ । १ । १ ॥

हित अर्थं में चतुर्थीसमर्थं आत्मन् विश्वजन और भोगोत्तरपद प्रातिपदिक से स प्रत्यय हो । जैसे—आत्मने हितमात्मनीनम् \*; विश्वजनेभ्यो हितं विश्वजनीनम् । भोगोत्तरपदों से—मातुभोगाय हितो मातुभोगीणः इत्यादि ॥ ४३७ ॥

# वा०-पञ्चजनादुपसङ्ख्यानम् ॥ ५३८॥

पंचजन शब्द से भी ख प्रत्यय होवे। 'जैसे-पंचजनाय हितं पंचजनीनम्।। ४३८॥

# वा०-सर्वजनाटुञ् खश्च ॥ ५३६॥

हित अर्थ में सर्वजन शब्द से ठज् और ख प्रत्यय हो। जैसे—सर्वजनाय हितं सार्व-जनिकम्; सर्वजनीनम् ॥ ४३६॥

# वा॰-महाजनाडुञ् नित्यम् ॥ ५४० ॥

महाजन शब्द से ठञ् प्रत्यय नित्य हो। जैसे—महाजनाय हितं माहाजनिकम् ‡॥४४०॥

# वा०-राजाचार्याभ्यां तु नित्यम् ॥ ५४१ ॥

भोग शब्द जिनके उत्तरपद में हो, ऐसे राजन और आचार्य शब्दों से स प्रस्यय नित्य होते। जैसे—राजभोगाय हितो राजभोगीन: ॥ ४४१॥

# वा०-आचार्याद्णत्वञ्च ॥ ५४२ ॥

श्राचार्य्य श्रन्द से परे गुत्व न होते। जैसे—श्राचार्य्यभोगीमः। यहां केवल राजन् श्रोर श्राचार्य्य शब्दों से ख नहीं होता, किन्तु वाक्य ही बना रहता है ॥ ४४२ ॥

# सर्वपुरुषाभ्यां गाढञी ॥ ५४३॥ अ० ५ । १ । १०॥

हित अर्थ में चतुर्थीसमर्थ सर्व और पुरुष प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके ण और हुन् प्रत्यय हों। जैसे—सर्वस्मै हितं सार्वम्; पुरुषाय हितं पौरुषेयम्॥ ४४३॥

# वा०-सर्वाण्णस्य वा वचनम् ॥ ५४४ ॥

सर्व शब्द से ए प्रत्यय विकल्प करके हो। जैसे-सर्वाय हितः सर्वीयः॥ ४४४॥

\* यहां ( श्रारमाध्वानौ खे ) इस सूत्र से ख प्रत्यय के परे नकारान्त श्रारमन् शब्द को प्रकृतिमाव हो जाता है ॥

्रं यहां विश्वजन श्रादि शब्दों से कर्मधारय समास में श्रीर महाजन शब्द से तत्पुरुष समास में प्रत्ययविधान समकता चाहिये, श्रीर श्रन्य समास में झ प्रत्यय ही होगा। जैसे— विश्वजनीयम्, पञ्चजनीयम्, सर्वजनीयम्, महाजनीयम् ॥

# वाः-पुरुषाद्वधविकारसमूहतेनकृतेषु ॥ ५४५ ॥

षष्ठीसमर्थ पुरुष शब्द से वध विकार और समूह अर्थी में तथा तृतीयासमर्थ से कृत अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो। जैसे—पोरुषेयो वधः, पोरुषेयो विकारः, पौरुषेयः समूहः, पौरुषेयो प्रन्थः ॥ ४४४ ॥

#### तद्रथं विकृतेः प्रकृती ॥ ५४६॥ अ० ५ । १ । १२ ॥

प्रकृति अर्थात् कारण जहां अभिषेय रहे, वहां चतुर्थासमर्थ विकृतिवाची प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—अङ्गारेभ्यो हितानि काष्ठानि अङ्गारीयाणि काष्ठानि; प्राकारीया इष्टकाः, शङ्कव्यं दारु, पिचव्यः कार्पासः इत्यादि।

यहां 'तद्थे' ग्रह्ण इसिलये है कि—यवानां धानाः, धानानां सक्तवः, यहां प्रत्यय न हो। 'विकृति' ग्रहण इसिलये है कि—उदकार्थः कूपः। 'प्रकृति' ग्रहण इसिलये है कि—ग्रस्थर्धा कोशी \*, यहां छ प्रत्यय न हो॥ ४४६॥

#### तदस्य तदस्मिन् स्यादिति + ॥ ५४७ ॥ अ० ५ । १ । १६ ॥

षष्ठ्यर्थं ग्रौर सप्तम्यर्थं में स्यात् समानाधिकरण प्रथमासमर्थं प्रातिपदिक से यथा-विद्वित प्रत्यय हों। [जैसे—] प्राकारमासामिष्टकानां स्यादिति प्राकारीया इष्टकाः, प्रासा-दीयं दारु, प्राकारोऽसिन् देशे स्यात् प्राकारीयो देशः, प्रासादीया भूमिः इत्यादि।

पासादो देवदत्तस्य स्यात्, यहां प्रत्यय इसिलये नहीं होता कि यहां प्रकृति विकृति का प्रकरण है, देवदत्त प्रासाद का कारण नहीं है ॥ ५४७ ॥

# प्राग्वतेष्ठञ् ॥ ५४८ ॥ अ० ५ । १ । १८ ॥

यह श्रधिकार सूत्र है। (तेन तुल्यं क्रिया चेद्रतिः) इस सूत्र से पूर्व २ जो २ श्रर्थं कहें, उन २ में सामान्य से ठञ् प्रत्यय होगा। जैसे—चान्द्रायणं वर्त्तयति चान्द्रायणिकः इत्यादि ॥ ४४८॥

# त्राहादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमागाटुक् ॥ ५४६ ॥ अ० ५ । १ । १६॥

ठञ् श्रिधिकार के श्रन्तर्गत यह ठक् प्रत्यय का श्रिधिकार उसका बाधक किया है। (तदहंति) इस सूत्र में जो श्रर्ह शब्द है, वहां तक ठक् प्रत्यय का श्रिधिकार जानना चाहिये, परन्तु श्राङ् उपसर्ग यहां श्रिभिविधि श्रर्थ में है। इसी से श्रर्ह श्रिधिकार में भी ठक् होता है।

<sup>\*</sup> यहां प्रकृतिप्रह्या से उपादानकारया समक्ता चाहिये, क्योंकि विकृति शब्द इसीलिये पढ़ा है। तलवार का उपादानकारया लोहा है, श्रीर स्थान नहीं, इसी से यहां छ प्रत्य नहीं होता॥

<sup>+</sup> इस सूत्र में स्थात् क्रिया सम्भावना धर्यं में है कि उसका वा उसमें जो होने का सम्भव हो, स्रोर इति सब्द विवचा के जिये है, कि उससे प्रत्ययार्थं विवचित्र हो ॥

गोपुच्छ संख्या श्रीर परिमाणवाचियों से ठक् का निषेध होने से सब श्रथीं में ठञ् ही होता है। जैसे—गोपुच्छेन क्रीतं.गोपुच्छिकम्। संख्या—षाष्टिकम्। परिमाण— प्रास्थिकम्, कौडविकम् इत्यादि ॥ ४४६॥

#### संख्याया अतिशद्नतायाः कन् ॥ ५५० ॥ अ० ५ । १ । २२ ॥

जिस संख्या के अन्त में ति और शत् शब्द न हों, उससे आहींय अथीं में ठक् प्रत्यय हो। यह ठम् का अपवाद है। जैसे—पञ्चिमः क्रीतः घटः पञ्चकः; बहुकः; गण्कः।

यहां 'तिदन्त शद्त का निषेध' इसिलिये है कि—सा तिकः, चत्वारिशस्कः, यहां कन प्रत्यय न होवे ॥ ४४० ॥

# अद्भचर्द्वपूर्वद्विगोर्द्धगसंज्ञायाम् ॥ ५५१ ॥ अ० ५ । १ । २८ ॥

जिस प्रातिपदिक के पूर्व श्रद्धश्चर्द्ध हो, उस श्रीर द्विगुसमास प्रातिपदिक से श्राहीय श्रथों में संज्ञाविषय को छोढ़ के प्रत्यय का लुक हो। जैसे - श्रद्धश्चर्द्ध संसेन क्रीतमद्धश्चर्द्ध संसम्; द्विकंसम्; त्रिकंसम्; श्रद्धश्चर्द्ध प्र्मं, द्विश्चर्पम्; त्रिश्चर्पम्।

यहां 'संज्ञा का निषेध' इसलिये है कि — पाञ्चलोहितिकम्; पाञ्चकपालिकम्, यहां लुक् न होवे ॥ ४४१ ॥

#### तेन कीतम् ॥ ५५२॥ अ० ५ । १ । ३७ ॥

ठञ् से लेके तेरह (१३) प्रत्यय हैं, उनका अर्थ और समर्थविभक्ति इसी सूत्र से जानना चाहिये।

क्रीत अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविद्दित ठज् म्रादि प्रत्यय होवें। जैसे—सप्तत्या क्रीतं साप्ततिकम्; म्राशीतिकम्; नैष्किकम्; पाणिकम्; पादिकम्; माषिकम्; शत्यम्; शतिकम् इत्यादि ॥ ४१२॥

## तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ × ॥ ५५३ ॥ अ० ४ । १ । ३८ ॥

जो निमित्त द्वर्थ संयोग वा उत्पातसम्बन्धी होवे, तो षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—शतस्य निमित्तं संयोगः शत्यः, शतिकः, साहस्रः। शतस्य निमित्तमुत्पातः शत्यः, शतिकः, साहस्रः इत्यादि ॥ ४४३॥

\* देवदत्तेन क्रीतम् इत्यादि वाक्यों में प्रत्यय इसिवये नहीं होता कि लोक में दैवदित्तक आदि शब्दों से क्रीत श्रर्थं का बोध नहीं होता ॥

× श्रनुकूल वा प्रतिकृत प्राची तथा श्रप्राची के साथ सम्बन्ध होने की संयोग कहते हैं। श्रौर उत्पात उसको कहते हैं जो कोई श्रकस्मात् श्राश्चर्यरूप कार्य्य होने, उससे किसी दूसरे कार्य्य का होना समक्ता जावे। जैसे पीजी विजुली चमके तो वायु श्रधिक चले इत्यादि। यह एक पदार्थ-विद्या की वात है।

# वा०-तस्य निमित्तप्रकरणे वातिपत्तश्चेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुप-सङ्ख्यानम् ॥ ५५४॥

शांति श्रौर कुपित होने श्रर्थ में वात पित्त श्रौर श्लेष्म शब्दों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—वातस्य शमनं कोपनं वा वातिकम्; पैत्तिकम्; श्लैष्मिकम् ॥ ४४४ ॥

#### वा०-सन्निपाताच्च ॥ ५५५ ॥

सिव्रात शब्द से भी शान्ति श्रीर कोप श्रर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—सिब-पातस्य शमनं कोपनं वा सान्निपातिकम्।

ये दोनों वार्त्तिक अपूर्वविधायक हैं, क्योंकि इन शब्दों से ठक् प्रत्यय किसी सूज करके प्राप्त नहीं है ॥ ४४४ ॥

# सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञी ॥ ५५६ ॥ अ० ५ । १ । ४१ ॥

संयोग और उत्पातसम्बन्धी निमित्त अर्थ में षष्ठीसमर्थ सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिक से यथासंख्य करके अण् और अञ् प्रत्यय होवें। जैसे—सर्वभूमेनिमित्तं संयोग उत्पातो वा सार्वभोमः; पार्थिवो वा। यहां अजुशितकादिगण में होने से सर्वभूमि शब्द को उभयपद्वृद्धि होती है ॥ ४४६॥

# तस्येश्वरः ॥ ५५७ ॥ अ० ५ । १ । ४२ ॥

षष्टीसमर्थं सर्वभूमि स्रोर पृथिवी प्रातिपदिक से ईश्वर स्रर्थं में यथासंख्य करके स्रण् स्रोर स्रज्ञ प्रत्यय होवें। जैसे—सर्वभूमेरीश्वर: सार्वभौमः; पार्थिवो वा ॥ ४४७॥

# तत्र विदित इति च ॥ ४५८ ॥ अ० ५ । १ । ४३ ॥

सप्तमीसमर्थं सर्वभूमि त्रौर पृथिवी शब्द से विदित नाम प्रसिद्धि त्रर्थं में त्रण् तथा त्राम्य प्रत्ये हों। जैसे—सर्वभूमो विदितः सार्वभौमः; पार्थिवो वा ॥ ४४८॥

# तस्य वापः ॥ ५५६ ॥ अ० ५ । १ । ४५ ॥

षष्ठीसमर्थं प्रातिपदिक से खेत अर्थं वाच्य रहे, तो यथाविहित प्रत्यय हों। वाप कहते हैं खेत को, क्योंकि उसमें जो आदि अन्न बोये जाते हैं। [जैसे—] प्रस्य वाप: क्रेनं प्रास्थिकम्; द्रौणिकम्; खारिकम् इत्यादि ॥ ४४६॥

# तद्सिमन् बृद्धयायलाभशुरुकोपद्। दीयते ॥५६०॥ अ० ५।१।४७॥

सप्तम्यर्थं में प्रथमालमर्थं प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों, जो वृद्धि आय लाभ शुल्कं और उपदा ये अर्थं दीयते किया के कर्मवाच्य होवें तो। जो द्रव्य व्याज में देते हैं उसको वृद्धि कहते हैं। ग्राम आदि में जो जमीदार का भाग होता है वह आय। जो दुकानदारी के व्यवहार में मूल वस्तु से अधिक द्रव्य की प्राप्ति है, उसको लाम। राजा के भाग को शुल्क, और घूंस लेने को उपदा कहते हैं।

जैसे - पञ्चास्मिन् वृद्धिर्वा श्रायो वा लाभो वा उपदा वा दीयते पञ्चकः; सप्तकः; शत्यः; शतिकः; साहस्रः इत्यादि ॥ ४६० ॥

# वा०-चतुर्थ्यर्थ उपसङ्ख्यानम् ॥ ५६१ ॥

वृद्धि आदि दीयते किया के कर्मवाच्य हों, तो चतुर्थी के अर्थ में भी प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होवें। जैसे—पञ्चासमै वृद्धिर्वा आयो वा जामो वा उपदा वा दीयते पञ्चको देवदत्त: इत्यादि ॥ १६१ ॥

# तद्धरित वहत्यावहात भाराद्वंशादिभ्यः ॥५६२॥ अ० ५।१।५०॥

द्वितीयासमर्थ, वंश आदि गण्पिटत शब्दों से परे जो भार शब्द, तद्नत से हरित वहित और आवहित क्रियाओं के कर्त्ता अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—वंशभारं हरित वहित आवहित वा वांशभारिक:, कौटजभारिक:, वाल्वजभारिक: #।

यहां 'भार' श्रहण इसिलये हैं कि—भारवंशं हरति, यहां न हो। श्रीर 'वंशादि' इसिलये हैं कि—ब्रीहिभारं हरति, यहां भी प्रत्यय न हो ॥ ४६२॥

#### सम्भवत्यवहरति पचति ॥ ५६३ ॥ अ० ५ । १ । ५२ ॥

द्वितीयासमर्थं प्रातिपदिक से संभव समाप्ति श्रोर पकाने श्रथों में यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—प्रस्थं सम्भवित श्रवहरित पचित वा प्रास्थिकः; कोडविकः; सारीकः; प्रत्यक्षमनुमानं शब्दो वा यं व्यवहारं प्रति सम्भवित स प्रात्यिकः; श्रानुमानिकः; श्राब्दिको वा व्यवहारः इत्यादि ॥ ४६३॥

# वा०-तत्पचतीति द्रोगादग् च ॥ ५६४ ॥

द्वितीयासमर्थं द्रोण प्रातिपदिक से पकाने अर्थं में अण् और ठञ् प्रत्यय होतें। जैसे—द्रोणं पचित द्रोणी द्रोणिकी वा ब्राह्मणी।। ४६४।।

#### सोऽस्यांशवस्त्रभृतयः ॥ ५६५ ॥ अ० ५ । १ । ५६ ॥

श्रंश मूल्य श्रोर सेवन श्रर्थों में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के श्रर्थ में यथा-विद्वित प्रत्यय हों। जैसे—पञ्चांशा वस्नानि भृतयो वाऽस्य व्यापारस्य पञ्चकः; सप्तकः; साइस्रः इत्यादि ॥ ४६४ ॥

\* इस सूत्र का दूसरा अर्थ यह भी होता है कि जो भाररूप वंशादि प्रातिपदिक हैं, उनसे जे चलने आदि अर्थों में यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—भारभूतान् वंशान् वहति वांशिकः; वाल्वजिकः ध्रत्यादि॥

#### तदस्य परिमाग्रम् ॥ ५६६ ॥ अ० ५ । १ । ५७ ॥

षष्ट्रयर्थं में परिमाण्वाची प्रथमासमर्थं प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—प्रस्थः परिमाण्मस्य प्रास्थिको राशिः; खारीकः; श्रत्यः; श्रतिकः; साहस्रः; द्रौणिकः; कौडविकः; वर्षशतं परिमाण्मस्य वार्षशतिकः; वार्षसहिस्नकः; षष्टिजीवितं परिमाण्मस्य षाष्टिकः इत्यादि ॥ ४६६ ॥

# सङ्ख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राऽध्ययनेषु ।।५६७॥ अ०५।१।५८॥

संज्ञा सङ्घ सूत्र स्रोर अध्ययन अर्थी में परिमाणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में यथाप्राप्त प्रत्यय होनें ॥ ४६७ ॥

#### वा०-संज्ञायां खार्थे ॥ ५६८ ॥

संद्वा अर्थ में कहे प्रत्यय खार्थ की संद्वा में होवें। जैसे—पञ्चेव पञ्चकाः शकुनयः; अय एव त्रिकाः शालद्वायनाः। सङ्घ अर्थ में—पञ्च परिमाणमस्य पञ्चकः सङ्घः; पञ्चका वृद्धाः; त्रिकः; अष्टको वा। सूत्र अर्थ में—अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य सूत्रस्य अष्टकं पाणिनीयं सूत्रम्; पञ्चको गौतमो न्यायः; द्वाद्वशिका जैमिनीया मीमांसाः, चतुष्कं व्यासीयं सूत्रम्; दशकं वैयात्रपदीयम्; त्रिकं काशकुत्स्नम्।

अध्यायों का समुदाय भी सङ्घ अर्थ में आ जातां है, फिर सूत्रप्रहण पृथक् इसिंकिये है कि—सङ्घ शब्द बहुधा प्राणियों के समुदाय में आता है। अध्ययन अर्थ में—पञ्चकोऽधीत:, सप्तकोऽधीत:, अष्टक:, नवक: इत्यादि ॥ ४६ ॥

#### वा०-स्तोमे डविधिः पञ्चदशाद्यर्थः ॥ ५६६ ॥

स्तोमपरिमाण्समानाधिकरण प्रथमासमर्थ पश्चद्शादि प्रातिपदिक से पष्टी के अर्थ में ड प्रत्यय होवे। जैसे—पश्चदश मन्त्राः परिमाण्मस्य स्तोमस्य पश्चदशः स्तोमः; सप्तदशः, एकविंशः इत्यादि ॥ ४६६॥

# वा०-शन्शतोर्डिनिश्छन्दिस ॥ ५७०॥

शन श्रीर शत् जिनके श्रन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से वैदिकप्रयोग विषय में डिनि प्रत्यय हो । जैसे—पञ्चदश दिनानि परिमाणमेषां पञ्चदशिनोऽर्द्धमासाः; त्रिंशिनो मासाः ॥ ४७० ॥

#### वा॰-विंशतेश्च ॥ ५७१ ॥

विश्वतिशब्द से भी डिनि प्रत्य हो। जैसे-विश्वतिः परिमाणमेषां विश्विनोऽङ्गिरसः॥१७१॥

# पंक्तिविंशतित्रिंशच्चत्व।रिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् । ॥ ५७२ ॥ अ० ५ । १ । ५६ ॥

परिमाण अर्थ में पङ्क्ति आदि शब्द निपातन किये हैं। जो कुछ कार्य सूत्रों से सिद्ध नहीं होता, सो सब निपातन से सिद्ध जानना चाहिये। जैसे—पङ्क्ति शब्द में पञ्चन् शब्द के टि भाग का लोप और ति प्रत्यय किया है। पञ्च परिमाणमस्य तत् पंकिरछन्दः।

दो दशत् शब्द को विन् आदेश और शतिच् प्रत्यय हो। जैसे—हो दशती परिमाणमेषान्ते विंशति: पुरुषा:। तीन दशत् शब्दों को त्रिन् आदेश और शत् प्रत्यय। जैसे—
त्रयो दशतः परिमाणमेषान्ते त्रिंशत्। चार दशत् शब्दों को चत्वारिन् आदेश और शत्
प्रत्यय। जैसे—चत्वारो दशतः परिमाणमेषां ते चत्वारिशत्। पांच दशत् शब्दों को पञ्चा
आदेश और शत् प्रत्यय। जैसे—पञ्च दशतः परिमाणमेषां ते पञ्चाशत्। छः दशत् शब्दों
को षष आदेश और ति प्रत्यय। जैसे—षड् दशतः परिमाणमेषां ते षष्टि:।

सात दशत् शब्दों को सप्त आदेश और ति प्रत्यय। जैसे—सप्त दशतः परिमाणमेषां ते सप्तिः। आठ दशत् शब्दों को अशी आदेश और ति प्रत्यय। जैसे—अष्टो दशतः परिमाणमेषां ते अशीतिः। नव दशत् शब्दों को नव आदेश और ति प्रत्यय। जैसे—नव दशतः परिमाणमेषां ते नवतिः। और दश दशत् शब्दों को श आदेश और त प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—दश दशतः परिमाणमेषां ते शतम्॥ ४७२॥

#### पश्चहश्ती वर्गे वा ॥ ५७३ ॥ अ० ५ । १ । ६० ॥

यहां संख्यावाची पञ्च श्रोर दश शब्द से कन् प्राप्त है, उसका यह श्रपवाद है, श्रोर पज्ञ में कन् भी होजाता है।

पञ्चत् श्रौर दशत् ये डित प्रत्ययान्त वर्ग श्रौर परिमाण श्रर्थ में विकल्प करके निपातन किये हैं। जैसे—पञ्च परिमाणमस्य पञ्चद्दर्गः, दशद्दर्गः, पञ्चको वर्गः, दशको वर्गः ॥४७३॥

#### तद्हिति ॥ ५७४ ॥ अ० ५ । १ । ६३ ॥

योग्यता अर्थं में ब्रितीयासमर्थं प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे— स्रोतच्छत्रमहित स्रोतच्छत्रिकः; वास्त्रयुग्मिकः; श्रत्यः; श्रतिकः इत्यादि ॥ ५७४ ॥

# यज्ञत्विग्भ्यां घवञौ ॥ ५७५ ॥ अ० ५ । १ । ७१ ॥

यह सूत्र ठंक् प्रत्यय का बाधक है।

योग्यता अर्थ में द्वितीयासमर्थ यज्ञ और ऋत्विज् प्रातिपदिक से यथासंख्य करके घ और खज् प्रत्यय होनें। जैसे—यज्ञमहैति यक्तियः; ऋत्विजमहैति स आर्त्विजीनो ब्राह्मणुः ॥ ४७४ ॥

# वा॰-यज्ञास्विम्भ्यां तत्कर्माईतीत्युपसङ्ख्यानम् ॥ ५७६ ॥

यह और आहित शब्द से उन कर्मों के करने योग्य अर्थों में उक्त प्रत्यय हों। यह वार्तिक सूत्र का शेष है, क्योंकि यह विशेष अर्थ सूत्र से नहीं आता है। [ जैसे— ] यहकर्माहीत यहियो देश; ऋतिकर्माहीत आर्तिजीन ब्राह्मण्डलम्।

जानो । अब यहां से आगे देवल ठज् प्रत्यय का ही अधिकार चलेगा ॥ ४७६ ॥

# पारायगातुरायगाचान्द्रायगां वर्त्तयति ॥५७७॥ अ०५।१।७२॥

दितीयासमर्थं पारायण तुरायण श्रीर चान्द्रायण प्रातिपदिक से वर्जन क्रिया का कर्जा बाब्य रहे, तो ठब् अस्यय होवे। जैसे—पारायणं वर्ज्ञयति पारायणिकश्लात्रः, तुरायणं वर्ज्ञयति तौरायणिको यजमानः, चान्द्रायणं वर्ज्ञयति चान्द्रायणिको ब्राह्मणः॥ ४७७॥

#### संश्यमापनः ॥ ५७८ ॥ अ० ५ । १ । ७३ ॥

प्राप्त होने ऋषं में द्वितीयासमर्थं संशय प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होने। जैसे— संशयमापन्नः संशियकश्चीरः॥ ४७८॥

#### योजनं गच्छात ॥ ५७६ ॥ अ० ५ । १ । ७४ ॥

चलने अर्थ में द्वितीयासमर्थ योजन प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होते । जैसे-योजनं गच्छति योजनिक: ॥ ४७६ ॥

# वा०-क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम् ॥ ५८०॥

चलने अर्थ में द्वितीयासमर्थ कोशशत और योजनशत प्रातिपदिक से भी उञ्जयय हो। जैसे – कोशशतं गच्छति कोशशतिकः; योजनशतिकः॥ ४८०॥

#### वा०-ततोऽभिगमनमईतीति च ॥ ५८१ ॥

यहां सकार से पूर्व वार्तिक की अनुवृत्ति आती है।

निरन्तर चलते अर्थ में पञ्चमीसमर्थ कोशशत ग्रीर योजनशत शब्द से भी ठञ् प्रत्यय होवे । जैसे कोशशतादिभगमनमहंति क्रीशशतिको भिज्जकः; योजनशतिक भाचार्यः ॥ ४८१ ॥

# उत्तरप्रयेनाहृतं च ॥ ५८२ ॥ अ० ५ । १ । ७७ ॥

यहां चकार से गच्छति किया की अनुवृत्ति आती है।

प्रहणः करने और चलने अर्थ में तृतीयासमर्थः उत्तरपथः प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होने । जैसे—उत्तरपथेनाहतमौत्तरपथिकम्ः उत्तरपथेन गञ्छतिः स्रोत्तरपथिकः ॥४८२॥

# वा०-आहृतप्रकर्णे वारिजङ्गलस्थलकान्तारपूर्वपदादुप-

#### संख्यानम् ॥ ५८३ ॥

ले त्राने त्रीर चलने अर्थ में वारि जङ्गल खल त्रीर कान्तार शब्द जिसके पूर्व हों, ऐसे द्वितीयासमर्थ पथ प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—वारिपथेनाहतं वारिपथि-कम्; वारिपथेन गच्छति वारिपथिकः; जङ्गलपथेनाहतं जाङ्गलपथिकम्; जङ्गलपथेनः गच्छति जाङ्गलपथिकः; खलपथेनाहतं खालपथिकम्; खलपथेन गच्छति खालपथिकः; कान्तारपथेनाहतं कान्तारपथिकम्; कान्तारपथेन गच्छति कान्तारपथिकः॥ ४८३॥

## वा०-श्रजपथराङ्कुपथाभ्यां च ॥ ५८४ ॥

ग्रजपथ ग्रौर शङ्कुपथ शन्द से भी उक्त त्रथों में ठञ् प्रत्प्रय हो। जैसे — ग्रजपथे-नाहतं गच्छति वा ग्राजपथिकः; शङ्कुपथेनाहतं गच्छति वा शाङकुपथिकः ॥ ४८४॥

## वा०-मधुकमरिचयोरण् स्थलात् ॥ ५८५ ॥

मधुक और मरिच अभिधेय हों, तो खल्लान्द से परे जो पथ प्रातिपदिक उससे ले आने अर्थ में अण् प्रत्यय होवे। जैसे—खलपथेनाहतं खालपथं मधुकम्; खालपथं मरिचम् ॥ ४८४॥

#### कालात् ॥ ५८६ ॥ अ० ५ । १ । ७८ ॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे जो २ प्रत्यय विधान करें, सी २ सामान्य करके कालवाची प्रातिपदिक से जानो। जैसे—मासेन निर्कृत्तं कार्यं मासिकम् आर्द्ध-मासिकम् सांवरसरिकम् इत्यादि॥ ४८६॥

#### तेन निर्वृत्तम् ॥ ५८७ ॥ अ० ५ । १ । ७६ ॥

सिद्ध होने अर्थ में तृतीयासमर्थ कालवाची प्रातिपदिक से द्रञ्पत्यय होवे। जैसे—
मुद्दूर्चेन निर्वृचं भोजनं मोद्वर्चिकम्, प्राहरिकम्, सप्ताहेन निर्वृचो विवादः साप्ताहिकः,
पाज्ञिकः, स्रहा निर्वृचमाहिकम् इत्यादि ॥ ४८७॥

#### तमधीष्टो भृतो भृतो भावी ॥ ५८८ ॥ अ० ५ । १ । ८० ॥

अधीष्ट कहते हैं सत्कारपूर्वक टहरने को, जो धन देंकर खरीद लिया हो उस नौकर को भृत, भृत हो चुकने को, और भावी जो आगे होगा इसको समझना चाहिये। इन अधीष्ट आदि अर्थों में द्वितीयासमर्थ कालबाची प्रातिपदिकों से ठज् प्रत्यव हो। जैसे - मासमधीष्टो मासिक श्राचार्यः; पच्चम्भृतः पाचिकः कर्मकरः; सप्ताहभूतः साप्ताहिको व्याधिः; पौर्णमासीं भावी पौर्णमासिक उत्सवः इत्यादि ॥ ४८८॥

# मासाद्वयसि यत्त्वजी ॥ ५८६ ॥ स्र० ५ । १ । ८१ ॥

यह सूत्र ठञ् प्रत्यय का अपवाद है। यहां अधीष्ट आदि अर्थों का अधिकार तो है, परन्तु योग्यता के न होने से एक भूत अर्थ ही लिया जाता है।

द्वितीयासमर्थं मास शब्द से अवस्था गम्यमान होवे, तो यत् श्रीर खज् प्रत्यय हों। जैसे —मासं भूतो मास्यः, मासीनो वा शिश्रः॥ ४८६॥

# तेन परिजय्यलभ्यकार्च्यसुकरम् ॥ ५६० ॥ स्र० ५ । १ । ६३ ॥

जीत सकने, प्राप्त होने योग्य, श्रौर जो श्रच्छेप्रकार सिद्ध हो, इन श्रथों से तृतीया-समर्थ कालवाची प्रातिपदिक से ठज् प्रत्यय होवे।

जैसे पद्मेन परिजेतुं शक्यते पाद्मिकः सङ्ग्रामः, मासेन लभ्यं मासिकं धनम्; द्वादशाहेन कार्य्यं द्वादशाहिकं व्रतम्; वर्षेण सुकरो वार्षिकः प्रासादः ॥ ४६०॥

# तदस्य ब्रह्मचर्यम् ॥ ५६१॥ श्र० ५ । १ । ९४ ॥

प्रथमासमर्थं कालवाची प्रातिपदिक से षष्ठी के त्रार्थं में टब् प्रत्यय हो, ब्रह्मचर्यं वाच्य रहे तो। जैसे—षट्त्रिंशदब्दा अस्य ब्रह्मचर्यस्य षट्त्रिंशदब्दां ब्रह्मचर्यम्; अष्टादशाब्दिकम्, नवाब्दिकम्।

इस सूत्र में जयादित्य ने द्वितीया विभक्ति काल के अत्यन्त संयोग में मान के अर्थ किया है। सो सूत्र में तो काल के साथ अत्यन्त संयोग है ही नहीं, उदाहरण में हो सकता है। फिर सूत्र में द्वितीया फ्यों कर हो सकती है। और द्वितीयासमर्थ विभक्ति मानने से प्रत्ययार्थ का सम्बन्ध ब्रह्मचारी के साथ होता है। सो ऋषि लोगों के अभिप्राय से विरुद्ध है। क्योंकि मनुस्मृति में 'बर्जिश्रादाब्दिकम्' यह पद ब्रह्मचर्य्य का विशेषण रक्ला है। फिर इन लोगों का अर्थ आदर के योग्य नहीं है॥ ४६१॥

#### वा०-महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्य उपसंख्यानम् ॥ ५६२ ॥

षष्ठीसमर्थं महानाम्नी श्रादि प्रातिपदिकों से सामान्य श्रर्थं में ठञ् प्रत्यय हो । जैसे— महानाम्न्या इदम्पदं माहानामिकम्; गौदानिकम् इत्यादि ॥ ४६२ ॥

#### वा०-तच्चरतीति च ॥ ५९३ ॥

यहां चकार से पूर्व वार्तिक की अनुवृत्ति आती है। महानासी नाम ऋचाओं का है, उनके सहचारी अनुष्ठान का प्रहण तत् शब्द से समक्षना चाहिये। द्वितीयासमर्थं महानास्ती त्रादि प्रातिपदिकों से त्राचग्ण अर्थं में ठज् प्रत्यय होवे। जैसे — महानास्त्रीश्चरति माहानामिक: कः, त्रादित्यव्रतिक: इत्यादि ॥ ४६३॥

#### वा०-अवान्तरदीक्षादिभ्यो डिनिः ॥ ५६४ ॥

द्वितीयासमर्थं अवान्तरदीचा आदि प्रातिपदिकों से अचरण अर्थ में डिनि प्रत्यय होवे। जैसे—अवान्तरदीचामाचरति अवान्तरदीची; तिलवती इत्यादि ॥ ४६४॥

# वा०-अष्टाचत्वारिंशतो ड्वुँश्च ॥ ५६५ ॥

यहां चरति क्रिया और डिनि प्रत्यय की अनुवृत्ति पूर्व वार्तिकों से आती है।

द्वितीयासमर्थं अष्टाचत्वारिंशत् प्रातिपदिक से आचरण अर्थं में इबुन् और डिनि प्रत्यय हों । जैसे—अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि व्रतमाचरित अष्टाचत्वारिंशकः, अष्टा-चत्वारिंशी ॥ ४६४ ॥

#### वा०-चातुर्मास्यानां यलोपश्च ॥ ५६६ ॥

यहां भी पूर्व की सब अनुवृत्ति आती है।

द्वितीयासमर्थं चातुर्मास्य प्रातिपदिक से आचरण अर्थं में ड्वुन् और डिनि प्रत्यय होवें। जैसे—चातुर्मास्यानि व्रतान्याचरित चातुर्मासकः, चातुर्मासी ॥ ४६६॥

#### वा०-चतुर्मासाग्गयो यज्ञे तत्र भवे ॥ ५९७ ॥

सप्तमीसमर्थं चतुर्मास शब्द से भव ऋर्थं यह होने, तो एय प्रत्यय हो। जैसे—चतुर्षं मासेषु भवाश्चातुर्मास्या यहाः ॥ ४६७ ॥

#### वा०-संज्ञायामण् ॥ ५९८ ॥

भवार्थं संज्ञा अभिधेय हो, तो सप्तमीसमर्थं चतुर्मास आदि शब्दों से अण् प्रत्यय होवे। जैसे—चतुर्षुमासेषु भवा चातुर्मासी पौर्णमासी; आषाढी; कार्त्तिकी; फाल्गुनी; चैत्री इत्यादि॥ ४६८॥

#### तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः ॥ ५६६ ॥ अ० ५ । १ । ६५ ॥

षष्ठीसमर्थं यज्ञवाची प्रातिपदिकों से दिल्ला अर्थं में ठज् प्रत्यय हो। जैसे—अप्नि-ष्टोमस्य दिल्ला आग्निप्टोमिकी; आश्वमेधिकी; वाजपेयिकी; राजस्यिकी इत्यादि।

यहां 'त्राख्या' प्रहण इसिलये है कि—इस कालाधिकार में कालसमानाधिकरण यहां का ही प्रहण न हो जावे ॥ ४६६॥

# यहां नाम्नी शब्द में ( भस्याढे तिख्ते ) इस वार्तिक से पुंतन्ताव होकर नान्त श्रङ्ग के टिमाग का लोप हो जाता है ॥

# तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां गायतीं ॥६००॥ अ० ५ । १ । ६८ ॥

यथाकथाच यह अन्ययशन्द अनादर अर्थ में आता है। और पूर्व सुत्र से 'दीयते' और 'कार्यम्' इन दो पदों की अनुवृत्ति आती हैं।

तृतीयासमर्थं कथाकथाच श्रीर हस्त प्रातिपदिक से देने श्रीर करने श्रथों में ण श्रीर यत् प्रत्यय यथासंख्य करके हों। जैसे—यथाकथाच दीयते कार्यं वा याथाकथाचम्; हस्तेन दीयते कार्यं वा हस्त्यम् ॥ ६००॥

#### सम्पादिन ॥ ६०१ ॥ अ० ५ । १ । ९९ ॥

यहां पूर्व से तृतीयासमर्थ की अनुवृत्ति आती है।

अवश्य सिद्ध होनेवाला कर्चा वाच्य रहे, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे। जैसे — ब्रह्मचर्येण सम्पद्यते विद्या ब्राह्मचर्यिकी; उपकारेण सम्पद्यते श्रीप-कारिको धर्मीः; धर्मेण सम्पद्यते धार्मिकं सुखम् इत्यादि ॥ ६०१ ॥

# कर्मवेषाद्यत् ॥ ६०२ ॥ अ० ५ । १ । १०० ॥

सम्पन्न होने अर्थों में तृतीयासमर्थ कर्मा और वेष प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो। यह ठञ्का अपवाद है। [जैंसे—] कर्मणा सम्पद्यते कर्मण्यं शरीरम्; वेषेण सम्पद्यते वेष्यो नटः, वेष्या नटिनी।

यही वेष्या शब्द आज कल शकार से प्रवृत्त है, सो ठीक नहीं। क्योंकि जो अर्थ उनमें घट सकता है वह यही है। श्रोर विश प्रवेशने धातु से भी वन सकता है, परन्तु ठीक २ अर्थ गिषाकाओं में नहीं घटता॥ ६०२॥

#### तस्मै प्रभवाति सन्तापादिभ्यः ॥ ६०३ ॥ अ० ५ । १ । १०१ ॥

चतुर्थीसमर्थ सन्ताप मादि गण्पिठत प्रातिपदिकों से प्रभव ऋर्थात् सामर्थ्यवान् मर्थ में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—सन्तापाय प्रभवति सान्तापिकः, संग्रामाय प्रभवति सांग्रामिकः, प्रवासाय प्रभवति प्रावासिकः॥ ६०३॥

#### सम्यस्तदस्य प्राप्तम् ॥ ६०४ ॥ अ० ५ । १ । १०४ ॥

प्राप्तसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ समय प्रातिपदिक से षष्ठी के ऋर्थ में टञ् प्रत्यय हो। जैसे—समय: प्राप्तोऽस्य सामयिक उद्घाहः, सामयिकं वस्त्रम्, सामयिको योगाभ्यासः, सामयिकमौषधम् इत्यादि ॥ ६०४॥

# ब्रन्दिस घस् ॥ ६०५ ॥ अ० ५ । १ । १०६ ॥

यहां ऋतु शब्द से ऋण् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह ऋपवाद है।

प्राप्तसमानाधिकरणः प्रथमासमर्थ ऋतु प्रातिपदिक से षष्ठी के ऋथे हैं वैदिकप्रयोग-विषयक ठञ् प्रत्यय होते। जैसे — ऋतु: प्राप्तोऽस्य ऋत्विय: — अयन्ते योनिर्ऋत्विय: यहां अस् प्रत्यय के सित् होने से असंबा होकर पदसंबा का कार्य जश्त्व नहीं होता ॥६०४॥

#### प्रयोजनम् ॥ ६०६ ॥ अ० ५ । १ । १०६ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठज प्रत्यय हो। जैसे —उपदेश: प्रयोजनमस्य औपदेशिक:; आध्यायनिक:; स्त्री प्रयोजनमस्य स्त्रेण:; प्रौंस्त:; धर्म: प्रयोजनमस्य धार्मिक:;वित्र हा प्रयोजनमस्य वैतरिहक:; पारोच्चिक: इत्यादि ॥६०६॥

## अनुप्रवचनादिभ्यः ॥ ६०७ ॥ घ्र० ५ । १ । १११ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ अनुप्रवचनादि गण्पठित प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में छ प्रत्यय हो। ठञ्का अपवाद है। [जैसे—] अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य अनुप्रवचनीयम्; उत्थापनीयम्; अनुवासनीयम्; आरम्भणीयम् इत्यादि ॥ ६०७ ॥

# वा०-विशिष्वरिपोत्तरुहिपदिप्रकृतेरनात्सपूर्वपदादुपसंख्यानम्॥६०८॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ विशि पूरि पति रुद्दि पदि इन ल्युट् प्रत्ययान्त धातुओं के प्रयोग जिनके अन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय होते। जैसे—
गृहप्रवेशनं प्रयोजनमस्य गृहप्रवेशनीयम्; प्रपापूरणीयम्; अस्वप्रपतनीयम्, प्रासादारोहयीयम्; गोप्रपदनं प्रयोजनमस्य गोप्रपदनीयम् ॥ ६०८॥

# वा०-स्वर्गादिभ्यो यत् ॥ ६०६ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण स्वर्गादि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में यत् प्रत्यय हो। जैसे—सर्गः प्रयोजनमस्य सर्ग्यम्; यशस्यम्; आयुष्यम् इत्यादि ॥ ६०६ ॥

## वा०-पुण्याहवाचनादिभ्यो लुक् ॥ ६१० ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थं पुरायाहवाचन श्रादि प्रातिपदिकों से षष्टी के अर्थं में विहित प्रत्यय का लुक् होवे। जैसे —पुरायाहवाचनं प्रयोजनमस्य पुरायाहवाचनम्; स्वस्तिवाचनम्; शान्तिवाचनम् इत्यादि॥ ६१०॥

# समापनात्सपूर्वपदात् ॥ ६११ ॥ अ० ५ । १ । ११२ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण् प्रथमासमर्थं समापन शब्द जिनके अन्तं में हो, उन प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थं में छ प्रत्यय होवे। जैसे छन्दः समापनं प्रयोजनमस्य छन्दः समापनीयम्; न्यायसमापनीयम्; व्याकरण्समापनीयम् इत्यादि॥ ६११॥

# तेन तुल्यं किया चेद्वतिः ॥ ६१२ ॥ अ० ५ । १ १ १५ ५ ॥

तुल्य अर्थ क्रिया होवे, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से वित प्रत्यय होवे। जैसे — ब्राह्मग्रेन तुल्यं ब्राह्मग्रवत्; सिंहवत्; व्याघ्रवत् इत्यादि।

यहां 'क्रिया' प्रहण इसिलये है कि—जहां गुण और द्रव्य का साहश्य हो वहां प्रत्यय न होवे। जैसे—आत्रा तुल्यः स्थूलः; आत्रा तुल्यः पिङ्गलः, यहां वित प्रत्यय न होवे॥६१२॥

## तद्ईम् ॥ ६१३ ॥ अ० ५ । १ । ११७ ॥

अर्ह अर्थ में, द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से वित प्रत्यय होते। जैसे — राजानमहिति राजवत् पालनम्; ब्राह्मणविद्विद्याप्रचारः; ऋषिवत् इत्यादि ॥ ६१३॥

#### तस्य भावस्त्वतलौ ॥ ६१४ ॥ अ० ५ । १ । ११६ ॥

जिस गुण के होने से शब्द का अर्थ के साथ वाच्यवाचक सम्बन्ध समका जाता है, उस गुण की विवद्या में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकमात्र से त्व और तल् प्रत्यय हों।

जैसे-ब्राह्मण्स्य भावो ब्राह्मण्त्वम्, ब्राह्मण्ताः, तस्य भावस्तत्त्वम्, तत्ताः, स्त्रीत्वम्ः पुंस्त्वम् स्थूलत्वम्, स्थूलताः, कृश्त्वम्, कृश्ताः चेतनत्वम्, चेतनताः, जडत्वम्, जडता इत्यादि ।

यहां से ते के इस पाद की समाप्तिपर्यन्त त्व श्रीर तल् प्रत्यय का श्रधिकार समभ्रना चाहिये ॥ ६१४ ॥

# पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ॥ ६१५ ॥ अ० ५ । १ । १२२ ॥

षष्ठीसमर्थं पृथु आदि गणपठित प्रातिपदिकों से भाव अर्थं में इमनिच् प्रत्यय विकल्प करके होवे, पक्त में त्व और तल् अत्यय होवें ।

जैसे —पृथोर्मावः प्रथिमाः म्रदिमाः महिमाः लिधमाः गरिमाः पृथुत्वम्, पृथुताः मृदुत्वम्, मृदुताः महत्त्वम्, महत्ताः लघुताः, गुरुताः गुरुताः इत्यादि ॥ ६१४॥

#### वर्णहढादिभ्यः ष्यञ्च ॥ ६१६ ॥ अ० ५ । १ । १२३ ॥

यहां चकार से इमनिच् और विकल्प की भी अनुवृत्ति आती है।

षष्ठीसमर्थं वर्णवाची श्रीर दढादि प्रातिपदिकों से भाव अर्थ में ष्यञ् श्रीर इमिनच् प्रत्यय हो। जैसे—ग्रुक्स्य भावः शौक्ष्यम्, ग्रुक्क्रिमा, ग्रुक्क्रत्वम्, ग्रुक्क्रताः, काष्ण्यम्, कृष्णिमा, कृष्णत्वम्, कृष्णताः, नैस्यम्, नीतिमा, नीतित्वम्, नीत्तता इत्यादि। दढादिकों से—दाढर्थम्, द्रिवमा, दढत्वम्, दढताः, पाणिडत्यम्, पणिडतिमा, पणिडतत्वम्, पणिडतताः, मधुरस्य मावो माधुर्यम्, मधुरिमा, मधुरत्वम्, मधुरता इत्यादि॥ ६१६॥

# गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥६१७॥ अ०५।१।१२४॥

जिन शब्दों से शीत उष्ण आदि गुणों का वोध हो, उनको गुण्वचन कहते हैं। यहां चकार भाव अर्थ का समुख्य होने के लिये है।

षष्ठीसमर्थ गुणवाची श्रौर ब्राह्मणादि प्रातिपदिकों से भाव श्रौर कर्म श्रर्थ में प्यञ् प्रत्यय होवे। जैसे-शीतस्य भावः कर्म वा शैत्यम्; श्रीग्यम्। शीतत्वम्, शीतता; उष्णत्वम्, उष्णता । ब्राह्मणादिकों से — ब्राह्मणस्य भावः कम्मे वा ब्राह्मएयम्; चौर्य्यम् मोक्यम्; कोशल्यम्; चापल्यम्; नैपुर्यम् इत्यादि ।

श्रीर अधिकार से त्व श्रीर तल् भी होते हैं। [ जैसे— ] ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता इत्यादि । यहां से आगे भाव और कर्म दोनों अर्थों का अधिकार चलेगा ॥ ६१७॥

# वा०-चातुर्वण्यादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम् ॥ ६१८ ॥

चतुर्वर्षो आदि शब्दों से स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय हो। जैसे — चत्वार एव वर्णाश्चातु-र्वेग्र्यम्; चातुराश्रस्यम्; त्रैलोक्यम्; त्रैलर्य्यम्; ऐकखर्यम्; षाड्गुग्यम्; सैन्यम्; सान्नि-ध्यम्; सामीप्यम्; त्रीपम्यम्; सौख्यम् इत्यादि ॥ ६६८ ॥

# स्तेनाचन्नलोपश्च ॥ ६१६ ॥ अ० ५ । १ । १२५ ॥

आव और कर्स अर्थ में स्तेन शब्द से यत् प्रत्यय और नकार का लोप होवे। जैसे-स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयम् ॥ ६१६ ॥

# सच्युर्यः ॥ ६२० ॥ अ० ५ । १ । १२६ ॥

आव और कर्म अर्थ में सिख शब्द से य प्रत्यय होते। जैसे-सिख्युर्भाव: कर्म वा सख्यम् ॥ ६२०॥

# वा-द्रतवणिग्भ्यां च ॥ ६२१ ॥

वृत त्रौर विशिक् शन्दों से भी य प्रत्यय हो। जैसे-वृतस्य भावः कर्म वा दूत्यम्। विणिज्यम्। विणिक् शब्द का पाठ ब्राह्मणादिगण में होने से प्यञ् प्रत्ययं भी हो जाता है। जैसे-वाणिज्यम् ॥ ६२१।।

# पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो थक् ॥ ६२२ ॥ अ० ५ । १ । १२८ ॥

षष्ठीसमर्थ पति शब्द जिनके अन्त में हो, उन और पुरोहितादि प्रातिपदिकों से यक् प्रत्यय होते भाव और कर्म अर्थ वाच्य रहे तो। जैसे सेनापतेर्भाव: कर्म वा सैना-पत्यम्; वानस्पत्यम्; गाईपत्यम्; बाईस्पत्यम्; प्राजापत्यम् ।

अधिकार के होने से त्व तल् भी होते हैं। जैसे-सेनापतित्वम्, सेनापतिता इत्यादि। पुरोहितादिकों से-पौरोहित्यम्;राज्यम्;वाल्यम्;पुरोहितत्वम्,पुरोहितता इत्यादि ॥६२२॥

—यह पञ्चमाध्याय का प्रथमपाद पूरा हुआ।

अय द्वितीयः पादः-

# धान्यानां भवने चेत्रे खञ् ॥ ६२३॥ अ० ५।२।१॥

यहां बहुवचन का निर्देश होने से धान्य के विशेषवाची शब्दों का ग्रहण होता है। बहीसमर्थ धान्यविशेषवाची शब्दों से उत्पत्ति का स्थान खेत श्रर्थ वाच्य रहे, तो बज्ज प्रत्यय हो। जैसे—गोधूमानां भवनं दोत्रं गोधूमीनम्; मोद्गीनम्; कौलत्थीनम् इत्यादि।

यहां 'धान्यवाचियों का' ग्रहण इसिलये है कि — तृणानां भवनं चेत्रम्, यहां न' हो। श्रीर 'खेत का' ग्रहण इसिलये है कि — गोधूमानां भवनं कुशूलम्, यहां भी खञ् प्रत्यय न होवे।। ६२३॥

# तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्यामोति ॥६२४॥ अ० ५।२।७॥

सर्व शब्द जिनके आदि में हो, ऐसे पथिन अङ्ग कर्मन् पत्र और पात्र द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ज्याप्ति अर्थ में स्व प्रत्यय होते।

जैसे-सर्वपथं व्यामोति सर्वपथीनं शक्रम्; सर्वाग्यङ्गानि व्याप्नोति सर्वाङ्गीणमौषधम्; सर्वं कर्म व्याप्नोति सर्वकर्मीणः पुरुषः; सर्वपत्रीणः सार्थिः; सर्वपात्रीणः सूपः इत्यादि ॥६२४॥

# तस्य पाकमूलं पील्वादिकणादिभ्यः कुगाब्जाहचौ ॥ ६२५ ॥ अ० ५ । २ । २४ ॥

पाक झौर मुख अर्थों में वष्टीसमर्थ पील्वादि और कर्णादि गणपिठत प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके कुणप् और जाइच् प्रत्यय हों।

जैसे--पीलुनां पाकः पीलुकुणः; बदरकुणः; खदिरकुणः इत्यादि । कर्णादिकों से— कर्णस्य मूलं कर्णजाहम्; नखजाहम्; केशानां मूलं केशजाहम्; दन्तजाहम् इत्यादि ॥६२४॥ तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपो ॥ ६२६ ॥ अ० ५ । २ । २६ ॥

तृतीयासमर्थं प्रातिपदिकों से झात म्रर्थं में चुञ्चुप् श्रोर चण्प् प्रत्यय हों। जैसे— विद्यया वित्तो झातो विद्याचुञ्चुः, उपदेशेन वित्त उपदेशचणः इत्यादि ॥ ६२६ ॥

# विनक्रभ्यां नानाजी नसह 🕸 ॥ ६२७ ॥ अ० ५ । २ । २७ ॥

नसह म्रर्थात् पृथग्भाव म्रर्थं में वि म्रोर नञ् म्रज्यय प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके ना म्रोर नाञ् प्रत्यय हों। जैसे—विना; नाना। नञ् म्रज्यय के म्रजुबन्ध का लोप होकर मृद्धि हो जाती है ॥ ६२७॥

\* इत्यादि जिन २ सूत्र वार्तिकों में अव्ययों से प्रत्यय विधान किये हैं, वहां २ महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां॰) इस अधिकार सूत्र के विकरप की प्रवृत्ति न होने से वाक्य नहीं रहता। अर्थात् नित्य प्रत्य हो जाते हैं॥

# वेः शालच्छङ्कटचौ ॥ ६२८ ॥ अ० ५ । २ । २८ ॥

विश्वहरो वा पुरुष: \* ॥ ६२८॥

# सम्प्रोदश्च कटच् ॥ ६२६ ॥ अ० ५ । २ । २६ ॥

यहां चकार प्रहण से वि उपसर्ग की अनुवृत्ति आती है।

सम्, ४, उद् श्रौर वि इन उपसर्ग शब्दों से कटच् प्रत्यय हो। जैसे—सङ्कटम्; प्रकटम्; उत्कटम्; विकटम् ॥ ६२६॥

# वा०-कटच्प्रकरणेऽलाबृतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसंख्यानम् ‡।६३०।

अलावू तिल उमा और भङ्गा प्रातिपदिकों से रज अर्थ में कटच् प्रत्यय हो। जैसे— अलावूनां रंजोऽलाबूकटम्; तिलकटम्; उमाकटम्; भङ्गाकटम् ॥ ६३०॥

# वा०-गोष्ठाद्यः स्थानादिषु पशुनासादिभ्य उपसंख्यानम् ॥६३१॥

स्थान त्रादि त्रर्थों में पशु त्रादि के विशेषनामवाची शब्दों से गोष्ठ त्रादि प्रत्यय हों। जैसे—गवां स्थानं गोगोष्ठम्, महिषीगोष्ठम्, त्रज्ञागोष्ठम्, त्रविगोष्ठम् इत्यादि ॥ ६३१॥

#### वा०-संघाते कटच् ॥ ६३२ ॥

यहां पूर्व वार्त्तिक की अनुवृत्ति आती है।

संघात अर्थ में पशुत्रों के विशेष नामवाची प्रातिपदिकों से कटच् प्रत्यय हो। जैसे — अवीनां संघातोऽविकटम्; अजाकटम्; गोकटम् इत्यादि॥ ६३२॥

#### वा०-विस्तारे पटच् ॥ ६३३ ॥

60

विस्तार ऋथी में पश्च हों के विशेषनामवाची प्रातिपदिकों से पटच् प्रत्यय होते। जैसे —गवां विस्तारो गोपटमः, उष्ट्रपटम्ः वृक्षपटम् इत्यादि ॥ ६३३ ॥

# वा०-द्वित्वे गोयुगच् ॥ ६३४ ॥

पशुश्रों के द्वित्व श्रर्थ में उक्त शब्दों से गोयुगच् प्रत्यय होवे। जैसे—उष्ट्राणां द्वित्वम् उष्ट्रगोयुगम्; हस्तिगोयुगम्; व्याघ्रगोयुगम् इत्यादि ॥ ६३४ ॥

अ विशाल आदि शब्द कि जिनका निर्वचन कहने में नहीं आता वे अब्युख्य शब्द कहाते हैं। वस्तुतः ये शब्द अब्युख्य ही हैं, वर्गोकि प्रकृति और प्रत्ययों का भिन्न अर्थ कुछ विदित नहीं होता। फिर इनमें प्रत्यय विधान देवल स्वर आदि का बोध होने के लिये हैं॥

‡ इन सूत्र वार्तिकों से कटच् आदि प्रत्ययों के विधान में दूसरा पण यह भी है कि कट आदि शब्द रज आदि अर्थों के वाचक हैं, उनके साथ षष्टीतरपुरुष समास होकर ये शब्द बनते हैं। जैसे गोष्ठ नाम स्यान का है—गवां गोष्टं गोगोष्टम् इत्यादि। इस पच में इन वार्तिकों का कुछ प्रयोजन नहीं है॥

# वा०-प्रकृत्यर्थस्य षट्त्वे षड्गवच् ॥ ६३५ ॥

उक्त प्रातिपदिकों से छु: व्यक्तियों के बोध होने अर्थ में पड्गवच् प्रत्यय हो। जैसे— षट् हस्तिनो हस्तिषड्गवम्; श्रद्भषड्गवम् इत्यादि॥ ६३४॥

#### वा०-स्नेहे तैलच् ॥ ६३६ ॥

स्नेह अर्थात् घी तेल आदि अर्थी में सामान्य प्रातिपदिकों से तैलच् प्रत्यय हो। जैसे—परएडतैलम्; तिलतैलम्; सर्वपतैलम्, इङ्गुदीतैलम् इत्यादि ॥ ६३६॥

# वा०-भवने चेत्रे इच्वादिभ्यः शाकटशाकिनौ ॥ ६३७ ॥

उत्पत्ति का स्थान खेत वाच्य रहे, तो इचु आदि शब्दों से शाकट और शाकिन प्रत्यय हो। जैसे-इच्लां चेत्रमिचुशाकटम्;इचुशाकिनम्;यवशाकटम्;यवशाकिनम् इत्यादि ॥६३७॥

## नते नाासकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटच्भ्रटचः ॥६३८॥ अ० ५।२।३१॥

यहां पूर्व सूत्र से अब उपसर्ग की अनुवृत्ति आती है।

नासिका के टेढे होने अर्थ में संज्ञा अभिधेय रहे, तो अव शब्द से टीटच् नाटच् श्रोर भ्रटच् प्रत्यय हों। जैसे—नासिकाया नतम् अवटीटम्; श्रवनाटम्; श्रवभ्रटम्।

ऐसी नासिका से युक्त पुरुष के भी ये नाम पड़ जाते हैं। जैसे — अवटीट:; अवनाट:; अवस्रटो वा पुरुष: इत्यादि ॥ ६३८ ॥

## इनिष्यटिचिकचि च ॥ ६३६ ॥ अ० ५ । २ । ३३ ॥

यहां नि उपसर्ग ग्रौर नासिका के नत की अनुवृत्ति आती है।

नि शब्द से नासिका के नम जाने अर्थ में इनच् और पिटच् प्रत्ययों के परे नि शब्द को यथासंख्य करके चिक और चि आदेश होवें। जैसे—चिकिनः, चिपिटः ॥ ६३६॥

# वा०-ककारप्रत्ययो वक्तव्यश्चिकच प्रकृत्यादेशः ॥ ६४० ॥

नि शब्द को चिक् आदेश और उससे क प्रत्यय भी हो। जैसे-चिक्क: ॥ ६४० ॥

## वा०-क्रिन्नस्य चिल्पिल्चुल्लश्चास्य चत्तुषी ॥ ६४१ ॥

इसके नेत्र इस अर्थ में क्रिज़ शब्द को चिल् पिल् और चुल् आदेश और ल प्रत्यय होवे। जैसे—क्रिज़े अस्य चचुषी चिक्कः, पिक्कः, चुक्कः ॥ ६४१ ॥

## उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः ॥ ६४२ ॥ अ० ५ । २ । ३४ ॥ यहां (नते नासिका॰) इस स्त्र से संज्ञा की अनुवृत्ति चली आती है।

श्रासन्न श्रोर श्रारूढ़ श्रर्थ में वर्त्तमान उप श्रोर श्रधि उपसर्गों से संज्ञाविषयक स्वार्थ में त्यकन् प्रत्यय हो । जैसे—पर्वतस्यासन्न भुपत्यकाः, पर्वतस्यारूढ मधित्यका + ॥ ६४२ ॥

# तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ॥६४३॥ अ० ५ । २ । ३६ ॥

सञ्जात समानाधिकरण प्रथमासमर्थ तारक ऋादि गण्वित शृद्धों से षष्ठी के ऋर्थ में इतच् प्रत्यय होवे।

जैसे—तारकाः सञ्जाता अस्य तारिकतं नभः, पुष्पितो वृत्तः, पराडा सञ्जाता अस्य परिडतः, तन्द्रा सञ्जाताऽस्य तन्द्रितः, मुद्रा सञ्जाताऽस्य मुद्रितं पुस्तकम् इत्यादि । तारकादि आकृतिगण् समभना चाहिये ॥ ६४३॥

## प्रमाणे द्वयसन्द्रग्रन्मात्रचः ॥ ६४४ ॥ अ० ५ । २ । ३७ ॥

प्रमाण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में द्वयसच् द्वाच् और मात्रच् प्रत्यय हों ॥ ६४४ ॥

#### का०-प्रथमश्च द्वितीयश्च ऊर्ध्वमाने मतौ मम ॥ ६४५ ॥

द्धयसच् श्रौर दझच् ये दोनों प्रत्यय ऊर्ध्वमान श्रर्थात् ऊंचाई के इतने श्रर्थ में होते हैं, श्रोर मात्रच् सामान्य इयत्ता में जानो।

यद्द कारिका सूत्र का शेष है। जैसे—ऊरू प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसमुद्दकम्। ऊरुद्वयः मुद्दकम्; ऊरुद्वयः प्रदक्तम्; अरुमात्रम्; जानुद्वयम्; जानुद्वयम्; जानुमात्रम्; प्रस्थमात्रम् इत्यादि ॥ ६४४ ॥

#### वा०-प्रमाणे लः ॥ ६४६ ॥

691

प्रमाणवाची शब्दों से षष्टी के ऋर्थ में हुए प्रत्यय का लुक् हो। जैसे-शम: प्रमाण-मस्य शम:; दिष्टि:, वितस्ति: इत्यादि ।। ६४६ ॥

#### वा०-द्विगोर्नित्यम् ॥ ६४७ ॥

द्विगुसंञ्चक प्रमाणवाची शब्दों से नित्य ही उत्पन्न प्रत्यय का लुक् हो। जैसे—द्वी शमी प्रमाणमस्य द्विशमः; त्रिशमः; द्विवितस्तिः इत्यादि।

इस वार्त्तिक में 'नित्य' प्रहण इसितये है कि—श्रगते वार्त्तिक में संशय श्रर्थ में मात्रच् कहा है, वहां भी द्विगु से लुक् ही होजावे। जैसे-द्वे दिष्टी स्यातां वा न वा द्विदिष्टि:॥६४७॥

#### वा०-प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रच् ॥६४८॥

प्रमाणवाची परिमाणवाची श्रोर संख्यावाची प्रातिपदिकों से संशय श्रर्थ में मात्रच् प्रत्यय होते। जैसे—प्रमाणवाची—शममात्रम्; दिष्टिमात्रम्। परिमाणवाची—प्रस्थमात्रम्। संख्यावाची – पञ्चमात्रा वृत्ताः; दशमात्रा गावः इत्यादि ॥ ६४८॥

+ यहां प्रस्थयस्थ ककार से पूर्व इत्व प्राप्त है, सो इन राट्डों के संज्ञावाची होने से नहीं होता। अर्थात् ये शब्द इसी प्रकार के पर्वत के आसन्न आरूढ अर्थों में रूढ़ि हैं॥

# वा०-वत्वन्तात्स्वार्थे द्रयसज्मात्रचौ बहुलम् ॥ ६४६ ॥

वतुप् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से द्वयसच् श्रोर मात्रच् प्रत्यय सार्थ में बहुल करके हों। जैसे—तावदेव तावद्द्वयसम्; तावन्मात्रम्; एतावद्द्वयसम्; एतावन्मात्रम्; यावदु-द्वयसम्; यावन्मात्रम् ॥ ६४६ ॥

# यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुष् ॥ ६५० ॥ अ० ५ । २ । ३६ ॥

प्रथमासमर्थं परिमाणसमानाधिकरण यत् तत् और एतत् सर्वनामवाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में वतुप् प्रत्यय हो । जैसे—यत्परिमाणमस्य यावान्ः तावान्ः एतावान् ।

प्रमाण प्रहण की अनुवृत्ति पूर्व से चली आती, फिर परिमाणप्रहण से इन दोनों का भेद विदित होता है।। ६४०।।

# वा०-वतुप्प्रकरणे युष्मद्स्मद्भ्यां छन्द्सि सादृश्य उपसंख्या-नम् ॥ ६५१ ॥

युष्मद् श्रस्मद् शब्दों से सादृश्य श्रर्थ में वैदिकप्रयोगों में वतुप् प्रत्यय हो। जैसे— त्वत्सदृशस्त्वावान्; मत्सदृशो मावान्; त्वावतः पुरुवसो यज्ञं विप्रस्य मावतः ॥ ६४१ ॥

# किमिद्म्भ्यां वा घः ॥ ६५२॥ अ० ५ । २। ४०॥

परिमाणसमानाधिकः ण प्रथमासमर्थ किम् और इदम् शब्दों से वतुप् प्रत्यय और षतुप् के वकार को घकारादेश होवे। जैसे—किम्परिमाणमस्य कियान्। इदम्परिमाणमस्य इयान्।। ६४२॥

# संख्याया अवयवे तयए ॥ ६५३ ॥ अ० ५ । २ । ४२ ॥

श्रवयवों का श्रवयवी के साथ सम्बन्ध होने से प्रत्ययार्थ श्रवयवी समभा जाता है।

श्रवयवसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्याघाची प्रातिपदिकों से षष्टी के श्रर्थ में स्वयं प्रत्यय हो। जैसे—पञ्च श्रवयवा श्रस्य पञ्चतयम्; दशतयम्; चतुष्टयम्; चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः इत्यादि ॥ ६४३॥

# द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ॥ ६५४ ॥ अ० ५ । २ । ४३ ॥

पूर्व स्त्र से विहित जो द्वि त्रि शब्दों से तयप् प्रत्यय, उसके स्थान में श्रयच् आदेश विकल्प करके होते। जैसे—द्वाववयवावस्य द्वयम्; द्वितयम्; त्रयम्; त्रितयम्।

इस अयच् आदेश को जो प्रत्ययान्तर मानें, तो तथप ग्रह्ण न करना पड़े ! परन्तु खानिवद्भाव मान के जो अयी शब्द में ङीप् और जस् विभक्ति में सर्वनामसंद्वा का विकल्प होता है, सो नहीं पावे ॥ ६४४॥

# उभादुदात्तो नित्यम् ॥ ६५५ ॥ अ० ५ । २ । ४४ ॥ यहां पूर्व सत्र की अनुवृत्ति आती है।

उभ शब्द से परे जो तयप् उसके स्थान में श्रयच् श्रादेश उदात्त नित्य ही होवे। जैसे—उभावत्रयवावस्य उभयो मिशिः; उभये देवमनुष्याः।

यहां उदात्त के कहने से आधुदात्त होता है, क्योंकि अन्तोदात्त तो चित् होने से हो ही जाता ॥ ६४४ ॥

## तद्स्मिन्नधिकामृति द्शान्तादुदः ॥ ६५६ ॥ अ० ५ । २ । ४५ ॥

श्रधिक समानाधिकरण प्रथमासमर्थ दश जिनके श्रन्त में हो, ऐसे संख्यावाची प्रातिपदिक से ड प्रत्यय हो। जैसे—एकादश श्रधिका श्रस्मिन् शते एकादशं शतम्; एकादशं सहस्रम् इत्यादि।

यहां 'दशान्त' ग्रहण इसिलये है कि — पञ्चाधिका ग्रस्मिन् शते, यहां प्रत्यय न हो। श्रोर 'अन्त' ग्रहण इसिलये है कि — दशाधिका ग्रस्मिन् शते, यहां भी ड प्रत्यय न हो।

'इति' शन्द इसिलये पढ़ा है कि—ज़हां प्रत्ययार्थ की विवत्ता हो वहीं प्रत्यय हो, श्रोर—एकादश माषा अधिका श्रस्मिन् कार्षापणशते, यहां तथा—एकादशाधिका श्रस्यां त्रिंशतीति, यहां भी विवत्ता के न होने से प्रत्यय नहीं होता ॥ ६४६ ॥

#### तस्य पूरणे डट्ट ॥ ६५७ ॥ अ० ५ । २ । ४८ ॥

षष्ठीसमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय हो। जैसे—एका-दशानां पूरण एकादशः, द्वादशः, त्रयोदशः इत्यादि।

डट् प्रत्यय के डित् होने से टिलोप हो जाता है। दश व्यक्तियों में एक व्यक्ति ग्यारह को पूरण करती है ॥ ६४७ ॥

# नान्तादसङ्ख्यादेर्मट् ॥ ६५८ ॥ अ० ५ । २ । ४६ ॥

यहां पूर्व से डट् की अनुवृत्ति आती है।

संख्या जिनके आदि में न हो ऐसे नकारान्त संख्यावाची प्रातिपदिक से विहित पूरण अर्थ में जो डट् उसको मट् का आगम होवे। जैसे—पञ्चानां पूरणः पञ्चमः; सप्तमः, अष्टमः, नवमः इत्यादि।

यहां 'नान्त' ग्रहण इसिलिये है कि—विशते: पूरणो विश:, यहां न हो। ग्रोर श्रादि में 'संख्या का निषेध' इसिलिये है कि—पकादशानां पूरण एकादश:, यहां भी मद् का श्रागम न हो ॥ ६४८॥

# षट्कतिकतिपयचतुरान्थुक् ॥ ६५६ ॥ अ० ५ । २ । ५१ ॥

डट् की अनुवृत्ति यहां भी त्राती है।

षट् कित कितिपय श्रीर चतुर् ग्रन्दों को डट् प्रत्यय के परे थुक् का श्रागम हो। जैसे-षएणां पूरण: षष्ठ:, कितथ:, कितपयथ:, चतुर्थ: ॥ ६४६ ॥

#### वा०-चतुरर्छयतावाद्यचरलोपश्च ॥ ६६० ॥

षष्टीसमर्थं चतुर् प्रातिपदिक से डट् के अपवाद छ और यत् प्रत्यय हों, और चतुर् शब्द के चकार का लोप हो। जैसे—चतुर्णा पूरण: तुरीय:, तुर्ग्य: ॥ ६६०॥

# द्वेस्तीयः ॥ ६६१ ॥ अ० ५ । २ । ५४ ॥

यह भी डट् का अपवाद है।

ब्रि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय हो । जैसे - द्वयो: पूरणो द्वितीय: ॥ ६६१ ॥

# त्रेः सम्प्रसारगाञ्च ॥ ६६२ ॥ अ० ५ । २ । ५५ ॥

त्रि शब्द से तीय प्रत्यय श्रीर उसके परे उसको सम्प्रसारण भी हो जावे। जैसे— त्रयाणां पूरणस्तृतीय: +।। ६६२॥

# विंश्त्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ॥ ६६३ ॥ अ० ५ । २ । ५६ ॥

विश्वति श्रादि प्रातिपदिकों से परे डट् प्रत्यय को तमट् का श्रागम विकल्प करके हो। जैसे—विश्वते: पूरणो विश्वतितमः, विश्वः; एकविश्वतितमः, एकविशः; त्रिशक्तमः, विश्वः; एकविश्वतितमः, एकविशः; विश्वक्तमः,

# नित्यं शतादिमासार्द्धमाससंवत्सराच्च ॥६६४॥ अ० ५ । २ । ५७॥

पूरणार्थ में शत ग्रादि मास श्रर्जमास श्रोर संवत्सर शब्दों से परे डट् प्रत्यय को तमद् का श्रागम नित्य ही होवे। जैसे—शतस्य पूरणः शततमः; सहस्रतमः; लच्चतमः इत्यादि; मासतमो दिवसः; श्रर्जमासतमः; संवत्सरतमः॥ ६६४॥

# षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः ॥ ६६५ ॥ अ० ५ । २ । ५८ ॥

पूरणार्थ में संख्या जिनके आदि में न हो ऐसे जो षष्टि आदि शब्द हैं, उनसे परे इट् प्रत्यय को तमट् का आगम हो। जैसे—षष्टे: पूरणः षष्टितमः, सप्ततितमः, अशीति-तमः, नवतितमः।

<sup>+</sup> यहां हत् से परे ऋकार सम्प्रसारण को दीर्घ इसिलये नहीं होता कि (हलः) इस सूत्र में प्रण् की अनुवृत्ति आती, और अण् पूर्व सकार से लिया जाता है॥

यहां 'संख्यादि का निषेध' इसितये है कि-एकषष्टः, एकषष्टितमः, एकसप्ततः, एकसप्ततः, एकसप्ततितमः, यहां विशत्यादि सूत्र से विकल्प हो जाता है ॥ ६६४ ॥

# स एषां त्रामगीः ॥ ६६६ ॥ अ० ५ । २ । ७८ ॥

षष्ट्यर्थं वाच्य रहे, तो प्रामणी श्रर्थं में प्रथमासमर्थं प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो। प्रामणी सुख्य का नाम है। जैसे—देवदत्तो प्रामणीरेषां देवदत्तकाः; यहदत्तकाः।

यहां 'प्रामगी' प्रहण इसिवये है कि -- देवदत्तः शत्रुरेषाम्, इत्यादि में कन् प्रत्यय न हो ॥ ६६६ ॥

#### कालप्रयोजनाद्रोगे ॥ ६६७ ॥ अ० ५ । २ । ८१ ॥

रोग अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची श्रोर प्रयोजन नाम कारणवाची तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक सं कन् प्रत्यय हो। जैसे—[कालवाची] द्वितीयेऽिह भवो द्वितीयको जवरः; तृतीयको जवरः; चतुर्थकः। प्रयोजन से—विषपुष्पैजीनतो विषपुष्पको जवरः; काशपुष्पको जवरः; काशपुष्पको जवरः; इत्यादि॥ ६६७॥

# श्रोत्रियँश्छन्दोऽधीते ॥ ६६८ ॥ अ० ५ । २ । ८४ ॥

यश्कुन्दोऽधीते स श्रोत्रियः, यहां छुन्द के पढ़ने श्रर्थ में छुन्दस् शब्द को श्रोत्रभाव स्त्रीर घन् प्रत्यय निपातन किया है ॥ ५६८॥

# श्राद्धमनेन अक्तिमिठनौ ॥ ६६९ ॥ अ० ५ । २ । ८५ ॥

'अनेन मुक्तं' इस अर्थ में प्रथमासमर्थ आद्ध प्रातिपदिक से इनि और ठन् प्रत्यय हो। जैसे—आद्धं मुक्तमनेन आदी; आद्धिक: ॥ ६६६ ॥

# साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम् ॥ ६७० ॥ अ० ५ । २ । ६९ ॥

द्रष्टा की संज्ञा अर्थ में साज्ञात् अन्यय से इनि प्रत्यय हो। जैसे—साज्ञाद्रप्रष्टा साज्ञी ॥ ६७० ॥

# इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसुष्टमिन्द्रसुष्टमिन्द्रस्ति वा॥ ६७१॥ अ०५।२।६३॥

यहां इन्द्र जीवात्मा श्रीर लिङ्ग चिह्न का नाम है।

लिक्नादि अर्थों में इन्द्र शब्द से घच प्रत्यय निपातन करने से इन्द्रिय शब्द सिख होता है। जैसे—इन्द्रस्य लिक्निमिन्द्रियम्। इन्द्र नाम जीवातमा का लिक्न जो प्रकाशक चिक्न हो, उसको इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रेण दृष्टम् इन्द्रियम्। इन्द्रेण सृष्टम् इन्द्रियम्, यहां ईश्वर का प्रह्रण है। इन्द्रेण जुष्टम् इन्द्रियम्, यहां जीव का प्रह्रण है। इन्द्रेण दृत्तम् इन्द्रियम्, श्रोर यहां ईश्वर का प्रह्रण होता है॥ ६७१॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

# तदस्यास्त्यसिन्निति मतुप् ॥ ६७२ ॥ अ० ५ । २ । ६४ ॥

अस्ति और प्रथमासमानाधिकरण ङ्याप् प्रातिपदिकों से षष्ठी और सप्तमी के अर्थ मित्र में मतुप् प्रत्यय हो। जैसे—गावोऽस्य सन्ति गोमान् देवदत्तः; वृत्ताः सन्त्यस्मिन् स वृत्तवान् पर्वतः; यवा अस्य सन्ति यवमान्, प्रज्ञवान् इत्यादि ॥ ६७२ ॥

# मादुपधायाश्च मतोत्रीं ऽयवादिभ्यः ॥६७३॥ अ० ८ । २ । ६ ॥

मकारान्त मकारोपध अवर्णान्त और अवर्णोपध प्रातिपदिकों से परे मतुप् प्रत्यय के मकार को वकारादेश हो, परन्तु यवादि प्रातिपदिकों से परे न हो।

जैसे—मकारान्त—किंवान्; शंवान्। मकारोपभ—शमीवान्; दाडिमीवान्; लद्मी-वान्। श्रवणन्ति—वृद्धवान्; प्रद्धवान्; घटवान्; खट्वावान्; मालावान्। श्रवणीपभ— पयसान्; यशसान्; भासान्।

यहां 'मकारान्त त्रादि' का ग्रहण इसिलये है कि श्रीमानः वायुमानः वुद्धिमानः, यहां वकार न हो। श्रीर 'श्रयवादि' इसिलये कहा है कि यवमानः दिल्मानः अर्मिमान् इत्यादि, यहां भी मकार को वकार श्रादेश न होवे ॥ ६७३ ॥

#### भाषः ॥ ६७४ ॥ अ० ८ । २ । १० ॥

स्य प्रत्याहारान्त प्रातिपदिक से परे मतुप् के मकार को वकारादेश हो। जैसे— स्रक्षित्वान प्राप्तः, उद्श्वित्वान् घोषः, विद्युत्वान् बलाहकः, मरुत्वानिन्द्रः, वृषद्वान् देशः इत्यादि ॥ ६७४ ॥

#### संज्ञायाम् ॥ ६७५ ॥ अ० ८ । २ । ११ ॥

संद्वाविषय में मतुप् के मकार को वकारादेश हो। जैसे — अहीवती; कपीवती;. अरूबीवती; मुनीवती वा नगरी इत्यादि॥ ६७४॥

#### का॰-भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने । सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥ ६७६ ॥

बहुत्व निन्दा प्रशंसा नित्ययोग् अतिशय सम्बन्ध और अस्ति≔होने की विवद्मा अर्थों में मतुप्, और इस प्रकरण में जितने प्रत्यय हैं, वे सब होते हैं। यह कारिका इसी सूत्र पर महाभाष्य में है।

जैसे—भूम अर्थ में - गोमान्; यवमान् इत्यादि। निन्दा में — कुष्ठी; ककुरावित्ती इत्यादि। प्रशंसा में — रूपश्ती इत्यादि। नित्ययोग अर्थ में — स्वीरिणो वृत्ताः; कग्टिकिनो वृत्ताः इत्यादि। अतिशय में — उदिशी कन्या इत्यादि। सम्बन्ध में — द्र्यादि। सुत्री इत्यादि। होने की विवद्ता में — अस्तिमान् ॥ ६७६॥

# वा०-गुणवचनेभ्यो मतुपी छुक् ॥ ६७७ ॥ विकास

गुणवाची प्रातिपिद् कों से परे मतुप् प्रत्यय का लुक् हो। जैसे—गुक्को गुणोस्या-ऽस्तीति गुक्कः पटः; कृष्णः; स्रोतः इत्यादि ॥ ६७० ॥

#### रसादिभ्यश्च ॥ ६७८ ॥ अ० ५ । २ । ६५ ॥

रस म्रादि प्रातिपदिकों से षष्ठी सप्तमी के म्रार्थ में मतुप् प्रत्यय हो। जैसे—रसोऽस्या-स्तीति रसवान्; रूपवान्; गन्धवान्; शब्दवान् इत्यादि।

यहां रसादि शब्दों से प्रन्ययविधान इसिलये किया है कि इनके गुणवाची होने से मतुप् का लुक् पूर्व वार्त्तिक से पाया था, सो न हो ॥ ६७ ॥

#### प्रााणस्थादातो लजन्यतरस्याम् ॥ ६७६ ॥ अ० ५ । २ । ६६ ॥

मन्वर्थ में प्राणिस्थवाची आकारान्त शब्द से लच् प्रत्यय विकल्प करके हो। जैसे— चूडाल:, चूडावान्; कणिकाल: कणिकावान्; जिह्नाल:, जिह्नावान्; जंघाल:, जंघावान्। यहां 'प्राणिस्थ' ग्रहण इसलिये हैं कि—शिखावान् प्रदीप:, यहां न हो। श्रोर 'आका-रान्त' ग्रहण इसलिये हैं कि—इस्तवान्; पादवान् इत्यादि में भी लच् प्रत्यय न हो ॥६७६॥

#### वा०-प्रः गयङ्गादिति वक्तव्यम् ॥ ६८० ॥

प्राणिस्थ ग्राकारान्त शब्दों से जो लच् प्रत्यय कहा है, वह प्राणियों के श्रद्भवाचियों से हो। श्रर्थात् चिकीर्वास्यास्तीति, जिहीर्वास्यास्ति चिकीर्वावान्, जिहीर्वावान् इत्यादि में लच् प्रत्यय न हो॥ ६८०॥

#### सिध्मादिभ्यश्च ॥ ६८१ ॥ अ० ५ । २ । ६७ ॥

मत्वर्थ में सिध्म श्रादि प्रातिपितकों से लच् प्रत्यय विकल्प करके हो, पत्त में मृतुप् हो। जैसे—सिध्मोऽस्यास्तीति सिध्मलः, सिध्मवानः, गडुलः, गडुमानः, मिण्लः, मिण्मान् इस्यादि ॥ ६८१ ॥

# लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ॥६८२॥ अ० ५ । २। १००॥

मत्वर्थ में लोमादि पामादि श्रोर पिच्छादि गणपित प्रातिपदिकों से श न श्रोर इलच् प्रत्यय यथासंख्य करके हों, तथा मतुप् भी होवे।

जैसे — लोमान्यस्य सन्ति लोमशः, लोमवान्, पामनः, पामवान्, पिच्छलः, पिच्छवान्, उरस्तिलः, उरस्तान् इत्यादि ॥ ६८२ ॥

#### प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो गाः ॥ ६८३ ॥ अ० ५ । २ । १०१ ॥

मत्वर्थ में प्रक्षा श्रद्धा श्रीर श्रची प्रातिपदिकों से गु प्रत्यय हो । जैसे—प्रक्षाऽश्यास्ति प्राक्षः, प्रक्षावान्, श्राद्धः, श्रद्धावान्, श्राचीः, श्रचीवान् \* ॥ ६८३॥

# तपःसहस्राभ्यां विनीनी ॥ ६८४ ॥ अ० ५ । २ । १०२ ॥

मत्वर्थं में तपस् और सहस्र प्रातिपदिक से विनि और इनि प्रत्यय हों। जैसे— तपोऽसिन्नस्तीति तपस्वी; सहस्री ॥ ६८४ ॥

# अग् च ॥ ६८५ ॥ अ० ५ । २ । १०३ ॥

मत्वर्थं में तपस् और सहस्र प्रातिपदिक से श्रण् प्रत्यय भी हो। जैसे—तापसः; साहस्रः ॥ ६८१ ॥

# दन्त उन्नत उरच् ॥ ६८६ ॥ अ० ५ । २ । १०६ ॥

उन्नतसमानाधिकरण दन्त शब्द से मतुप् के अर्थ में उरच् प्रत्यय हो। जैसे—दन्ता

यहां 'उन्नत' विशेषण इसिलिये है कि—दन्तवान्, यहां निन्दा न्नादि न्नर्थों में उरच्

# जषसुषिमुष्कमधो रः ॥ ६८७ ॥ श्र० ५ । २ । १०७ ॥

• ऊष सुषि मुष्क और मघु प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में र प्रत्यय होवे। जैसे ऊष्णमस्सि-ष्रस्ति ऊषरा भूमिः; सुषिरं काष्ठम्; मुष्करः पश्चः; मधुरो गुडः ॥ ६८७ ॥

# वा०-रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम् ॥ ६८६ ॥

ख मुख श्रोर कुञ्ज शब्दों से भी मत्वर्थ में र प्रत्यय हो। जैसे—खमस्यास्तीति खरः; मुखमस्यास्तीति मुखरः; कुञ्जरः † ॥ ६८८॥

#### वा०-नगपांसुपाग्डुभ्यश्च ॥ ६८६ ॥

नग पांसु श्रोर पागडु शब्दों से भी मत्वर्थ में र प्रत्यय हो। जैसे—नगमस्मिन्नश्तीति नगरम् ‡; पांसुरम्; पागडुरम् ॥ ६८६॥

#### वा०-कच्छ्वा हुस्तत्वं च ॥ ६६० ॥

\* यहां प्रज्ञा चार्दि शब्दों से या और मतुप् प्रत्यय प्रशंसा अर्थ में समक्ता चाहिये। और यहां सामान्य वर्थ में चर्यात् बुद्धि जिसमें हो ऐसा समक्तने से साधारण प्राश्ययों के नाम प्राज्ञ और प्रज्ञावान् होंगे, इसिविये उसका विशेष अर्थ समको॥

† निसके कराठ में ख नाम विशेष अवकाश हो उसको खर । मुख का काम निरन्तर उचारण करना निसका हो उसको मुखर । और कुम्जर नदी ठोदी होने से हाथी को कहते हैं ॥

‡ नग अथोत् इच और पर्वत जिसमें हों उसको नगर कहते हैं ॥

कच्छ्रा शब्द से र प्रत्यय श्रोर उसको हस्वारंश भी हो। जैसे—कच्छ्रास्यामस्तीति कच्छुरा भूमि:॥ ६६०॥

# केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ॥ ६६१ ॥ अ० ५ । २ । १०६ ॥

इस सुत्र में अपाप्तविभाषा इसिंकिये समस्ता चाहिये कि केश शब्द से व प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है। केश प्रातिपदिक से व प्रत्यय विकल्प करके हो।

. यहां महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है, और दूसरे इस विकल्प के होने से चार प्रयोग होते हैं। जैसे—प्रशस्ताः केशा अस्य सन्तीति केशवः, केशी, केशिकः, केशवान्। केश शब्द ज्योति अर्थात् प्रकाश गुण का भी नाम है॥ ६६१॥

# वा०-वप्रकरणे मणिहिरग्याभ्यामुपसंख्यानम् ॥ ६९२ ॥

मिण और हिरएय प्रातिपदिक से भी व प्रत्यय हो । जैसे--मिण्रिस्त्रिक्ति मिण्वः सर्पः; हिरएयवः \* ॥ ६६२ ॥

#### वा०-छन्द्सीवनिपौ च ॥ ६६३ ॥

वैदिक प्रयोगों में सामान्य प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में ई श्रोर वनिए प्रस्यय हो।

जैसे—रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टो, यहां रथी: शब्द में ई प्रत्यय हुआ है; सुमक्तिती-रियं बधू: इत्यादि । ऋतावानम्; मघवानमीमहे, यहां ऋत और मघ शब्द से विनिप् होता है ॥ ६६३ ॥

#### वा०-मेधारथाभ्यामिरन्निरचौ वक्तव्यौ ॥ ६६४ ॥

मेथा श्रोर रथ शब्दों से मत्वर्थ में इरन् श्रोर इरच् प्रत्यय हों। जैसे—मेथिरः, रथिरः। ये भी मतुप् के वाधक हैं ॥ ६६४ ॥

# वा०-अपर आह-वप्रकरगोऽन्येभ्योपि दश्यत इति वक्तव्यम् ॥६६५॥

इस विषय में बहुतेरे ऋषि लोगों का ऐसा मत है कि श्रविहित सामान्य प्रातिपदिकों से व प्रत्यय देखने में श्राता है। जैसे—विम्बावम्, कुररावम्, इष्टकावम् इत्यादि।

प्रयोजन यह है कि — पूर्व वार्त्तिक में जो मिशा श्रीर हिरएय शब्दों से व प्रत्यय कहा है, उसका भी इस पत्त में कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ६६५॥

# रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् ॥ ६९६॥ अ० ५ । २ । ११२ ॥

रजस् कृषि श्रासुति श्रीर परिषत् प्रातिपदिकों से मत्वर्थं में वलच् प्रत्यय हो। जैसे—रजोऽस्याः प्रवर्त्तत इति रजखला स्त्री; कृषीवलो प्रामीणः; श्रासुतिवलः श्रीग्रहकः; परिषद्वलो राजा इत्यदि ॥ ६६६ ॥

<sup>\*</sup> मियाव किसी विशेष सर्प की और हिरययव धन विशेष की संज्ञा है।।

# वा०-वलच्यकरणेऽन्येभ्याऽपि दृश्यते ॥ ६६७ ॥

विहितों से पृथक् प्रातिपदिकों से भी वलच् प्रत्यय देखने में आता है। जैसे— आताऽस्यास्तीति आतृवलः; पुत्रवलः; उत्सङ्गवलः इत्यादि ॥ ६६७ ॥

## अत इनिठनी ॥ ६६८ ॥ श्र० ५ । २ । ११५ ॥

मत्वर्थ में अकारान्त प्रातिपदिक से इनि और उन् प्रत्यय हों। जैसे—दएडी, दिएडक:, सुत्री, सुत्रिक:।

यहां विकल्प की श्रमुवृत्ति श्राने से पत्त में मतुप् प्रत्यय भी होता है। जैसे— दएडवान्, द्रिडक:, छत्रवान्, छत्रिक: इत्यादि।

यहां 'तपरकरण' इसिवये है कि - खट्वावान्, यहां इनि ठन् न हों ॥ ६६८॥

# का०-एकाक्षरात्कृतो जातेः सप्तम्यां च न तौ स्मृनौ ॥६६६॥

एकाच्चर शब्द कृदन्त जातिवाची श्रीर सप्तमी के श्रर्थ में इनि श्रीर ठन् प्रत्यय न हों। सूत्र से जो प्राप्ति है, उसका विशेष विषय में निषेध किया है।

जैसे—एकाच्चर से—स्ववान्; खवान् इत्यादि । कृदन्त से—कारकवान्; हारकवान् । जातिवाचियों से—वृद्यवान्; सद्यवान्; व्याघ्रवान्; सिंहवान् इत्यादि । सप्तम्यर्थं में—द्या श्रस्यां शालायां सन्तीति दएडवती शाला इत्यादि ॥ ६६६ ॥

#### , ब्रीह्यादिभ्यश्च ॥ ७०० ॥ अ० ५ । २ । ११६ ॥

व्रीहि श्रादि गण्पिटत प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि श्रीर ठन् प्रत्यय हों। जैसे— ब्रीही, ब्रीहिकः, ब्रीहिमान्, मायी, मायिकः, मायावान् इत्यादि ॥ ७०० ॥

# का०-शिलादिभ्य इनिर्वाच्य इकन्यवलदादिषु ॥ ७०१ ॥

पूर्व सूत्र में ब्रीह्यादि शन्दों में शिखादिगण हैं, उनसे इनि, श्रौर यवखदादि प्रातिपदिकों से इकन् ( ठन् ) कहना चाहिये।

प्रयोजन यह है कि सब बीह्यादिकों से दोनों प्रत्यय प्राप्त हैं सो न हों, किन्तु शिखा-दिकों स इनि ही हो, उन् न हो, श्रोग यवखदादिकों से उन् ही हो, इनि नहीं, यह नियम समसना चाहिये। जैस-शिखी, मेखली इत्यादि। यवखदिक: इत्यादि॥ ७०१॥

#### अस्मायामेधास्त्रजो विनिः ॥ ७०२ ॥ ऋ० ५ । २ । १२१ ॥

असन्त माया मेधा और स्नज् प्रातिपदिकों से मतुप् के अर्थ में विनि प्रत्यय हो, और मतुप् तो सर्वत्र होता ही है। और माया शब्द बीह्यादिगण में पढ़ा है, उससे इनि उन् भी होते हैं। असन्तों से—पयस्वी; यशस्वी इत्यादि; मायावी, मायी, मायिकः, मायावान्, मेधावी, मेधावान्, स्रग्वी, स्रग्वान्॥ ७०२॥

# बहुलं छन्दिस ॥ ७०३ ॥ अ० ५ । २ । १२२ ॥

वैदिकप्रयोगविषय में सामान्य प्रातिपदिकों से मत्वर्थविषयक विनि प्रत्यय बहुत करके हो। जैसे — श्रुप्ते तेजस्विन, यहां हो गया। श्रीर सूर्य्यो वर्चसान्, यहां नहीं भी हुआ इत्यादि। बहुत से श्रीक प्रयोजन समभना चाहिये।। ७०३।।

# वा॰-छन्दोविन्त्रकरणेऽष्ट्रामेखलाद्योभयरुजाहृद्यानां दीर्घश्च ।७०४।

श्रष्ट्रा मेखला द्वय उभय रुजा श्रीर हृदय शब्दों से विनि प्रत्यय श्रीर इनको दीर्घादेश भी होवे। जैसे—श्रष्ट्रात्री; मेखलावी; द्वयावी; उभयावी; [ रुजावी; ] हृदयावी॥ ७०४॥

#### वा०-मर्मगश्च ॥ ७०५ ॥

मर्मन् शब्द से भी विनि प्रत्यय और उसको दीर्घादेश हो। जैसे-मर्भावी । ७०४॥

## वा०-सर्वत्रामयस्योपसङ्ख्यानम् ॥ ७०६ ॥

पूर्व के तीनों वार्त्तिकों से बेद में प्रत्ययिधान समस्ता चाहिये, इसीतिये इस वार्त्तिक में सर्वत्र शब्द पढ़ा है।

सर्वत्र—लोकिक वैदिक सब प्रयोगों में — आमय शब्द से विनि प्रत्यय और दीघांदेश भी होने। जैसे — आमयावी ॥ ७०६॥

#### वा०-श्रुङ्गचृन्दाभ्यामारकन् ॥ ७०७ ॥

पूर्व वार्त्तिक से अगले सब वार्त्तिकों में सर्वत्र शब्द की अनुवृत्ति समक्षती चाहिये। श्रृङ्ग अर वृन्द प्रातिपदिक से मत्वर्थ में आरकन् प्रत्यय हो। जैसे—शृङ्गाएयस्य सन्ति शृङ्गारकः; वृन्दारकः॥ ७०७॥

#### वा०-फलबर्हाभ्यामिनच् ॥ ७०८ ॥

फल स्रोर वर्ह शब्दों से इनच्हो । जैसे-फलान्यसिन्सन्ति फलिनः, बर्हिणः ॥७०८॥

#### वा०-हृदयाचालुग्न्यतरस्याम् ॥ ७०६ ॥

हृदय शब्द से चानु प्रत्यय विकल्प करके हो, श्रीर पक्ष में इनि ठन् तथा मतुप भी हो जावे। जैसे—हृदयानुः, हृदयी, हृदयिकः, हृदयवान् ॥ ७०६ ॥

# वा०-शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तन्न सहत इति चास्त्रर्वक्तव्यः ॥ ७१० ॥

शीत उच्य श्रीर तृप्त प्रातिपदिकों से प्रकृत्यर्थ के न सह सकने श्रर्थ में चालु प्रत्यय हो। जैसे-शीतं न सहतं स शीतालुः; उच्यालुः; तृप्रालुः ॥ ७१०॥

#### वा०-हिमाच्चेलुः ॥ ७११ ॥

हिम शब्द से उसके न सहने ऋर्थ में चेलु प्रत्यय हो। जैसे—हिमं न सहते स हिमेलु:॥ ७११॥

#### वा०-बलाच्चोलः ॥ ७१२ ॥

बल शब्द से उसके न सहने अर्थ में ऊल प्रत्यय हो। जैसे-बलं न सहत इति बल्लः ॥७१२॥

#### वा०-वातात्ममूहे च ॥ ७१३ ॥

वात शब्द से उसके न सहने स्रोर समूह ऋथे में ऊल प्रत्यय हो। जैसे — वातानां समूहो वातं न सहते वा स वात्तः॥ ७१३॥

#### वा०-पर्वमरुद्भयां तप् ॥ ७१४ ॥

पर्व स्रोर मरुत् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में तप् प्रत्यय हो। जैसे—पर्वमसिन्नस्ति स पर्वतः।

श्रीर यह महत्त शब्द 'महतों ने दिया' ऐसे भी श्रर्थ में क़दन्त प्रत्यय होने से धन जाता है ॥ ७१४ ॥

#### वाचो गिमनिः ॥ ७१५ ॥ अं० ५ । २ । १२४ ॥

वाक् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में ग्मिनि प्रत्यय हो। जैसे — प्रशस्ता वागस्य स वाग्मी, वाग्मिनी, वाग्मिन: ॥ ७१५ ॥

# श्रालजाटचौ बहुभाषिगि ॥ ७१६ ॥ अ० ५ । २ । १२५ ॥

यहां पूर्व सूत्र से वाक् शब्द की अनुवृत्ति आती है।

बहुत बोलने वाले के अर्थ में वाक् प्रातिपदिक से आलच् और आटच् प्रत्यय हों। जैसे-बहु भाषत इति वाचालः; वाचाटः। यह ग्मिनी प्रत्यय का अपवाद है।

स्रोर यह भी समम्भना चाहिये कि जो विद्या के स्रातुकूल विचारपूर्वक बहुत बोलता है, उसको वाचाल स्रोर वाचाट नहीं कहते हैं, किन्तु जो संड बंड बोले। यह बात महामान्य में है।। ७१६।।

## स्वामिन्नेश्वर्ये ॥ ७१७ ॥ अ० ५ । २ । १२६ ॥

यहां पेश्वर्यवाची ख शब्द से मत्वर्थ में श्रामिन् प्रत्यय करके खामिन् शब्द निपातन किया है। जैसे—खमैश्वर्यमस्यास्तीति खामी, खामिनौ, खामिनः।

पेश्वर्थ्य अर्थ इसिलये समभाना चाहिये कि —खवान्, यहां आमिन् न हो ॥ ७१७ ॥

#### वातातीसाराभ्यां कुक् च ॥ ७१८ ॥ अ० ५ । २ । १२६ ॥

वात और अतीसार प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय और कुक् का आगम भी हो। जैसे—वातकी; अतीसारकी।

यहां रोग अर्थ में प्रत्यय होना इष्ट है, इससे वातवती गुहा, यहां इनि और कुक् नहीं होते ॥ ७१८ ॥

#### वा०-पिशाचाच्च ॥ ७१६ ॥

पिशाच शब्द से भी इति श्रोर उसको कुक् का त्रागम होवे। जैसे-पिशाचकी वैश्रवणः॥ ७१६॥

# वयसि पूरणात्।। ७२०।। अ०५।२। १३०।।

वयस् नाम श्रवस्था अर्थं में पूरण प्रत्यवान्त प्रातिपदिक से इनि प्रत्यव हो। जैसे— पञ्चमोऽस्यास्ति मासः संवत्सरो वा पञ्चमी उष्ट्रः, नवमी; दशमी इत्यादि।

यहां 'श्रवस्था'प्रहण इसितये किया है कि पञ्चमवान् प्राम्रागः, यहां इनि न हुआ। १९२०॥

## सुलादिभ्यश्च ॥ ७२१ ॥ अ० ५ । २ । १३१ ॥

सुख त्रादि प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय हो। जैसे—सुखमस्यास्ति सुसी, दु:स्वी इत्यादि ॥ ७२१ ॥

# धर्मिशीलवर्णान्ताच्च ॥ ७२२ ॥ अ० ५ । २ । १३२ ॥

धर्म शील त्रोर वर्ण ये शब्द जिनके अन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से इनि प्रत्यय हो। जैसे—ब्राह्मण्ह्य धर्माः ब्राह्मण्धर्मः सोऽस्यास्तीति ब्राह्मण्धर्माः ब्राह्मण्याितीः ब्राह्मण्वर्णी इत्यादि॥ ७२२॥

# हस्ताजाती ॥ ७२३ ॥ अ० ५ । २ । १३३ ॥

हस्त शब्द से जाति अर्थ में इनि प्रत्यय हो। जैसे — हस्ती, हस्तिनी, हस्तिन:। यहां 'जाति' इसिलये है कि — हस्तवान् पुरुष:, यहां इनि न हो॥ ७२३॥

# पुष्करादिभ्यो देशे ॥ ७२४ ॥ अ० ५ । २ । १३५ ॥

देश अर्थ में पुष्कर आदि शब्दों से इनि प्रत्यय हो। जैसे -पुष्करी देश: पुष्करिणी पश्चिनी।

यहां 'देश'प्रहण इसिंतिये है कि - पुष्करवान् तडाग:+,यहां इनि प्रत्यय न हो ॥७२४॥

# वा०-इनिप्रकरणे बलाद्वाहुरुपूर्वपदादुपसंख्यानम् ॥ ७२५ ॥

बाहु श्रीर ऊरु जिसके पूर्व हों, ऐसे बल प्रातिपदिक से इति प्रत्यय हो। जैसे— बाहुबलमस्यास्ति स बाहुबली; ऊरुबली ॥ ७२४ ॥

#### वा०-सर्वादेश्च ॥ ७२६ ॥

<sup>+</sup> यहां (वातासीसाराभ्यां ) इस स्त्र से लेकर जो इनि प्रत्यय विभान किया है, सो ( अत इनिठनों ) इस लिखित स्त्र से ध्नि होजाता, फिर विधान नियमार्थ है। अर्थात् उन २ प्रातिपदिकों और उन २ विशेष अर्थों में इनि ही हो उन् न हो॥

सर्व शब्द जिसके आदि में हो, ऐसे प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय हो। जैसे सर्वधनमस्यास्ति स सर्वधनी, सर्वबीजी, सर्वकेशी नट: इत्यादि ॥ ७२६॥

#### वा०-अर्थाच्चासंनिहित ॥ ७२७ ॥

जिसके निकट पदार्थ न हों, और उनकी चाहना हो, ऐसे अर्थ में अर्थ शब्द से इनि प्रत्यय हो। जैसे —अर्थमभीप्सित अर्थी।

यहां 'असि जिहित' प्रहण इसिलिये हैं कि - अर्थवान्, यहां इनि प्रत्यय न हो ॥७२७॥

#### वा०-तद्नताच्च ॥ ७२८ ॥

अर्थ शब्द जिनके अन्त में हो, उनसे भी इति प्रत्यय हो। जैसे-धान्यार्थी; हिरग्यार्थी इत्यादि।

इन सब वार्त्तिकों में भी यही नियम समस्ता चाहिये कि इन विशेष अर्थों में और शब्दों से इनि ही हो, उन् न हो ॥ ७२८॥

#### बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ॥ ७२६ ॥ अ० ५ । २ । १३६ ॥

बलादि प्रातिपदिकों से मतुप् प्रत्यय विकल्प करके हो, पत्त में इनि समभो । जैसे— बलमस्यास्तीति बलवाम्, बली; उत्साहवान, उत्साही; उद्गाववान, उद्गावी इत्यादि॥ ७२६॥

#### संज्ञायां मन्माभ्याम् ॥ ७३० ॥ अ० ५ । २ । १३७ ॥

मत्वर्थ में मञ्जत श्रौर मान्त प्रातिपदिकों से संज्ञाविषय में इनि प्रत्यय हो। जैसे— प्रथिमिनी; दामिनी; होमिनी; सोमिनी।

यहां 'संज्ञा' प्रहण इसिलये है कि —सोमवान् ;तोमवान् इत्यादि में इनि न हो ॥७३०॥

# कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः ॥ ७३१ ॥ अ० ५ । २ । १३८ ॥

जल और सुस्न के वाची कम् और शम् मकारान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में व, भ, युस्, ति, तु, त और यस् प्रत्यय हों। जैसे—कम्थः; शम्बः; कम्भः; शम्भः; कंयुः; शंयः; कन्तिः; शन्तिः; कन्तुः; शन्तुः; कन्तः; शन्तः; शंयः।

यहां युस् श्रीर यस् प्रत्यय में सकार पदसंद्वा होने के लिये है। इससे मकार को अनुस्वार श्रीर परसवर्ण होते हैं, श्रीर जो भसंद्वा हो तो मकार ही बना रहे ॥ ७३१ ॥

# अहंशुभयोर्युस् ॥ ७३२ ॥ अ० ५ । २ । १४० ॥

अहं और शुभम् अन्ययसंद्यक शब्दों से मत्वर्थ में युस् प्रत्यय हो। जैसे — अहंयुः, यह अहंकारी का नाम है; शुभंयुः, यह कल्याणकारी की संद्या है।। ७३२॥

-यह द्वितीय पाद समाप्त हुआ।।

अथ तृतीयः पादः—

# प्राग्दिशो विभक्तिः ॥ ७३३ ॥ अ० ५ । ३ । १ ॥

यह अधिकार सुत्र है।

जो दिक् शब्द के उच्चारण से पूर्व २ प्रत्यय विधान करेंगे, उन २ की विभक्तिसंद्वा जाननी चाहिये॥ ७३३॥

# किंसर्वनामबहुभ्योऽद्वचादिभ्यः ॥ ७३४ ॥ अ० ५ । ३ । २ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है।

यहां से आगे किम् शब्द, ब्रि आदि से भिन्न सर्वनाम और बहु प्रातिपदिकों से प्रत्ययों का विधान जानना चाहिये॥ ७३४॥

#### इदम इश् ॥ ७३५ ॥ अ० ५ । ३ । ३ ॥

विमक्तिसंज्ञक प्रत्ययों के परे इदम् शब्द को इश् आदेश हो। जैसे—इतः; इह। यहां इश् आदेश में शकार सब के स्थान में आदेश होने के लिये हैं॥ ७३४॥

#### ष्तेती रथोः ॥ ७३६ ॥ अ० ५ । ३ । ४ ॥

जो शाग्दिशीय रेफादि श्रोर थकारादि विभक्ति परे हों, तो इदम् शब्द को पत् श्रोर इत् श्रादेश होनें। जैसे—एतर्हि; इत्थम् ॥ ७३६ ॥

#### सर्वस्य सो उन्यतरस्यां दि ॥ ७३७ ॥ अ० ५ । ३ । ६ ॥

जो दकारादि प्रत्यय परे हों, तो सर्व शब्द को स आदेश विकल्प करके हो। जैसे— सर्वदा; सदा॥ ७३७॥

#### पञ्चम्यास्तिसिल् ॥ ७३८ ॥ अ० ५ । ३ । ७ ॥

किम् सर्वनाम श्रीर बहु प्रातिपदिकों से पश्चमी विभक्ति के स्थान में तसिल् प्रत्यय हो। जैसे-कस्मादिति कुतः; यसादिति यतः; ततः; बहुतः इत्यादि॥ ७३८॥

#### पर्यमिभ्याञ्च॥ ७३६॥ अ० ५।३।६॥

परि श्रोर श्रभि शब्दों से तिसल् प्रत्यय हो। जैसे—परितः—चारों श्रोर से; श्रभितः—सन्मुख से॥ ७३६॥

#### सप्तम्यास्त्रल् ॥ ७४० ॥ अ० ५ । ३ । १० ॥

किम् सर्वनाम और बहु शब्दों से परे सप्तमी विभक्ति के स्थान में अन् प्रत्यय हो। जैसे—कस्मिन्निति कुत्र; सर्वस्मिन्निति सर्वत्र; यत्र; तत्र इत्यादि ॥ ७४०॥

# इदमो हः ॥ ७४१ ॥ श्र० ५ । ३ । ११ ॥

इदम् शब्द से सप्तमी के स्थान में ह प्रत्यय हो। जैसे — अस्मिन्निति इह ॥ ७४१॥

# किमोऽत्॥ ७४२॥ श्र० ५।३।१२॥

किम् शब्द से सप्तमी के स्थान में अत् प्रत्यय हो। जैसे - किमिश्निति क।। ७४२॥

#### इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ ७४३ ॥ ऋ० ५ । ३ । १४ ॥

इतर अर्थात् पञ्चमी सप्तमी से अन्य विभक्तियों के स्थान में भी उक्त प्रत्यय देखने में आते हैं॥ ७४३॥

इसमें विशेष यह है कि-

#### वा०-भवदादिभियोगे ॥ ७४४ ॥

भवान, दीर्घायुः, आयुष्मान्, देवानांप्रियः इन चार शब्दों के योग में पूर्व स्त्र से प्रत्ययविधान समस्ता चाहिये। अर्थात् स्त्र से जो सामान्य विधान था, उसको वार्त्तिक से विशेष जनाया है।

जैसे—स भवान्ः तत्र भवान्ः ततो भवान्ः तम्भवन्तम्ः तत्र भवन्तम्ः ततो भवन्तम्ः तेन भवताः तत्र भवताः ततो भवताः तस्मै भवतेः तत्र भवतेः ततो भवतेः तस्माद्भवतःः तत्र भवतः ततो भवतः तस्म भवतः तत्र भवतः ततो भवतः तस्म भवतः तत्र भवतः ततो भवतः भवतिः तत्र भवतः । स्वायुष्मान् तत्र भवतः तत्र भवतः तत्र भवतः । स्वायुष्मान् । स्वयुष्मान् । स्वयुष्युष्मान् । स्वयुष्मान् । स्वयुष्मान् । स्वयुष्मान् । स्वयुष्मान्युष्मान् । स्वयुष्मान् । स्वयुष्मान् । स्वयुष्मान् । स्वयुष्मान्युष्मान् । स्वयुष्मान् । स्वयुष्मान् । स्वयुष्मान् । स्वयुष्मान्य

## सर्वेकान्यिकंयत्तदः काले दा ॥ ७४५ ॥ अ० ५ । ३ । १४ ॥

सर्व एक अन्य किम् यद् और तद् प्रातिपदिकों से काल अर्थ में सप्तमी के स्थान में दा प्रत्यय हो।

यह सूत्र त्रल् प्रत्यय का बाधक है। जैसे—सर्वसिन् काले इति सर्वदाः एकसिन् काले एकदाः अन्यदाः कदाः यदाः तदा इत्यादि ।

यहां 'काल' इसिलये कहा है कि-सर्वत्र देशे, यहां दा प्रत्यय न हो ॥ ७४४ ॥

# इदमो हिंत्।। ७४६।। अ० ५।३।१६।।

काल अर्थ में इदम् शब्द से सप्तमी के स्थान में हिल् प्रत्यय हो। जैसे — श्रस्मिन् काले पतर्हि।

यहां काल की श्रञ्जबृत्ति आने से 'इह देशे' इस प्रयोग में हिंल् प्रत्यय नहीं होता ॥७४६॥ अधुना ॥ ७४७॥ अ० ५ | ३ | १७ ॥ कालाधिकरण अर्थ में इदम् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में धुना प्रत्यय और इदम् शब्द को अश् भाव निपातन करने से अधुना शब्द बनता है। जैसे—अस्मिन् काले इति अधुना ॥ ७४७ ॥

#### दानीं च ॥ ७४८ ॥ अ० ५ । ३ । १८ ॥

क। ल अर्थ में वर्त्तमान इदम् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में दानीं प्रत्यय हो। जैसे—अस्मिन् काले इदानीम् ॥ ७४८॥

#### तदो दा चै।। ७४६ ॥ अ० ५।३ । १६॥

ंकाल अर्थ में वर्त्तमान तद् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में दा, और चकार से दानों प्रत्यय हों। जैसे—तिसान् काले तदा; तदानीम्।। ७४६।।

### तयोदीहिं ही च छन्द्सि ॥ ७५० ॥ अ० ५ । ३ । २० ॥

इदम् श्रोर तद् दोनों शब्दों से वैदिकप्रयोगिवषय में सप्तमी विभक्ति के स्थान में यथा-संख्य करके दा श्रोर हिंल् प्रत्यय हों। जैसे—श्रिसन् काले इदा; तस्मिन् काले तिहं॥७४०॥

## सद्यःपरुत्परार्थेषमःपरेद्यवयद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्यारतरेद्युरपरेद्युर-धरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः ॥ ७५१ ॥ अ० ५ । ३ । २२ ॥

यहां सतमी विभक्ति और काल की अनुवृत्ति आती है।

इस सूत्र में काल अर्थ में सदाः आदि शब्द सप्तमी विभक्ति के स्थान में चस् आदि प्रत्ययान्त निपातन किये हैं।

जैसे—समाने अहिन सद्य:—समान शब्द को स आदेश और द्यस् प्रत्य दिवस् अर्थ में हुआ है। पूर्वसिन् सम्वत्सरे पठत्ः पूर्वतरे सम्वत्सरे परारि—पूर्व और पूर्वतर शब्दों को पर आदेश और उत् तथा आरीच् प्रत्य सम्वत्सर अर्थ में यथासंख्य करके होते हैं। असिन् सम्बत्सरे पेषम:—यहां इदम् शब्द से सम्वत्सर अर्थ में समसण् प्रत्यय हुआ है, उसके अण्माग का लोप होकर इदम् के इकार को वृद्धि होजाती है। परिस्मिन् सहिन परेद्यवि—यहां पर शब्द से दिन अर्थ में पद्यवि प्रत्यय होगया है। असिन्नहिन अद्य-यहां इदम् शब्द को अश्वभाव और द्य प्रत्यय दिन अर्थ में किया है।

श्रीर पूर्व श्रन्य श्रन्यतर इतर श्रपर श्रधर उभय श्रीर उत्तर शब्दों से दिन शर्थ श्रिभिधेय रहे, तो पद्मच् प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—पूर्वस्मिश्रहिन पूर्वेद्युः, श्रन्यस्मिन त्रहिन श्रन्येद्युः, श्रन्यतरस्मिन्नहिन श्रन्यतरेद्युः, इतरिस्मिन्नहिन इतरेद्युः, श्रपरस्मिन्नहिन श्रपरेद्युः, श्रधरिसन्नहिन श्रधरेद्युः, उत्तरिसन्नहिन उत्तरेद्युः, उभयोरह्नोः उभयेद्युः॥७४१॥

#### वा०-गुश्चोभयात् ॥ ७५२ ॥

उभय शब्द से द्यु प्रत्यय भी हो। जैसे—तस्मान्मजुष्येभ्य उभयद्युः॥ ७५२॥

## प्रकारवचने थाल् ॥ ७५३ ॥ अ० ५ । ३ । २३ ॥

यहां भी किम् सर्वनाम आदि शब्दों की अनुवृत्ति चली आती है। प्रकारसमानाधिकरण किम् सर्वनाम और बहु प्रातिपदिकों से खार्थ में थाल् प्रत्यय हो। जैसे—तेन प्रकारेण तथा; यथा; सर्वथा; इतरथा; अन्यथा; बहुथा इत्यादि॥ ७५३॥

## इद्मस्यमुः ॥ ७५४ ॥ अ०५ । ३ । २४ ॥

प्रकारसमानाधिक ग्ण इदम् शब्द से स्वार्थं में थाल् का अपवाद थेमु प्रत्यय हो। उकार की इत्संद्वा हो कर लोप होजाता है। [जैसे—] अनेन प्रकारेण इत्थम् ॥७४४॥

#### किमश्रा। ७५५॥ अ०५।३।२५॥

प्रकारसमानाधिकरण किम् शब्द से भी खार्थ में धमु प्रत्यय होवे। जैसे—केन प्रकारेण कथम् ॥ ७४४ ॥

### था हेती च छन्दिस ॥ ७५६ ॥ अ० ५ । ३ । २६ ॥

यहां पूर्व सूत्र से किम् झौर प्रकारवचन शब्द की अनुवृत्ति आती है।
वैदिक प्रयोगविषय में हेतुसमानाधिकरण किम् प्रातिपदिक से था प्रत्यय हो।
यह थमु प्रत्यय का बाधक है। [जैसे—] केन हेतुना इति कथा; केन प्रकारेण इति कथा। ७४६॥

## दिक्बब्देभ्यः सप्तमीपश्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्यस्तातिः ॥ ॥ ७५७ ॥ अ० ५ । ३ । २७ ॥

सप्तमी, पञ्चमी त्रीर प्रथमासमर्थ दिशा देश जीर काल अर्थी में दिशावाची पूर्वादि शब्दों से खार्थ में अस्ताति प्रत्यय होते। जैसे—[सप्तमीसमर्थ से—] पूर्वस्यां दिशि पूर्वसिन् देशे काले वा पुरस्तात्; अधस्तात्। पञ्चमीसमर्थ से—पुरस्तादागत:। प्रथमासमर्थ से—पुरस्ताद्मणीयम् इत्यादि।

यहां समर्थविमिक और दिशा आदि अर्थों का यथा संख्य अभीए नहीं है। यहां 'दिशावाचियों का' प्रहण इसिलये है कि—पेन्द्रचां दिशि वसित, यहां पेन्द्री शब्द दिशा का गोण नाम है। 'सितमी आदि समर्थविमिक्तयों का' प्रहण इसिलये है कि—पूर्व प्रामं गतः, यहां भी अस्ताति प्रत्यय नहीं होता। और 'दिग् देश काल अर्थों' का प्रहण इसिलये है कि—पूर्वसिन् गुरों वसित, यहां भी प्रत्यय न होते।

अस्ताति प्रत्यय में इकार तकार की रचा के लिये है ॥ ७५७ ॥

## दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ॥ ७५८ ॥ अ० ५ । ३ । २८ ॥

यह स्त्र, अस्ताति प्रत्यय पूर्वस्त्र से प्राप्त है, उसका अपवाद है।

दिशा देश श्रीर काल अर्थों में वर्त्तमान सप्तमी पश्चमी श्रीर प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से खार्थ में अतसुच् प्रत्यय होवे। जैसे—द्त्तिणतो वसति; द्त्तिणत श्रागतः; द्त्रिणतो रमणीयम्; उत्तरतो वसति; उत्तरत श्रागतः; उत्तरतो रमणीयम्।

अतसुच् प्रत्यय के उच्मात्र की इत्संद्धा हो कर लोप हो जाता है। और इस सूत्र में दिल्ल शब्द का सम्बन्ध काल के साथ असम्भव होने से नहीं होता, किन्तु दिशा और देश दो ही अर्थों के साथ होता है ॥ ७४८॥

## विभाषा परावराभ्याम् ॥ ७५६ ॥ अ० ५ । ३ । २६ ॥

यहां अप्राप्तविभाषा इसलिये समस्ता चाहिये कि अतसुच् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं। अतसुच् का विकल्प होने से पन्न में अस्ताति भी होजाता है।

अस्ताति प्रत्यय के अर्थों में पर और अवर शब्दों से अतसुच् प्रत्यय विकल्प करके हो, और पद्म में अस्ताति होजावे।

जैसे -- परतो वसितः, परत ग्रागतः, परतो रमणीयम्; परस्ताद्वसितः, परस्तादागतः, परस्ताद्रमणीयम्; श्रवरतो वसितः, श्रवरत श्रागतः, श्रवरतो रमणीयम्; श्रवस्ताद्वसितः, श्रवस्ताद्वापतः, श्रवस्ताद्वमणीयम् ॥ ७४६ ॥

## श्रञ्चेर्तुक् ॥ ७६० ॥ अ० ५ । ३ । ३० ॥

किबन्त अञ्चुधातु जिनके अन्त में हो, ऐसे दिशावाची शब्दों से परे अस्ताति प्रत्यय का लुक् हो जावे। जैसे—प्राच्यां दिशि वसति प्राग्वसति; प्रागागतः; प्राप्रमणीयम्।

यद्दां तिद्धतसंज्ञक अस्ताति प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक्तद्धित०) इस सूत्र से स्वीप्रत्यय का भी लुक् होजाता है ॥ ७६० ॥

## उपर्युपरिष्ठात् ॥ ७६१ ॥ अ० ५ । ३ । ३१ ॥

यहां ऊर्घ्व शब्द को उपभाव और रिल् तथा रिष्टातिल् प्रत्यय श्रस्ताति के अर्थ में निपातन किये हैं। जैसे—ऊर्घ्वायां दिशि वसति उपरि वसति; उपर्यागतः; उपरि रमणीयम्; उपरिष्टाद्वसित; उपरिष्टादागतः; उपरिष्टाद्वमणीयम् ॥ ७६१ ॥

#### पश्चात् ॥ ७६२ ॥ अ० ५ । ३ । ३२ ॥

यहां अपर शब्द को पश्च आदेश और आति अत्यय निपातन किया है। जैसे—अपरस्यां दिशि वसति पश्चाद्यसति; पश्चाद्यगतः; पश्चाद्रमगीयम् ॥ ७६२ ॥

## वा०-दिकपूर्वपदस्य च ॥ ७६३ ॥

दिशा जिसके पूर्वपद में हो, उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश और आति प्रत्यय हो। जैसे—दित्तिश्वपश्चात्; उत्तरपश्चात्॥ ७६३॥

## वा०-अद्धांत्तरपदस्य च समासे ॥ ७६४ ॥

दिशावाची शब्द जिसके पूर्वपद में हों, श्रीर समास में श्रर्क शब्द जिसके उत्तरपद में हो, ऐसे श्रपर शब्द को पश्च श्रादेश होवे। जैसे —विद्यापश्चार्द्धः, उत्तरपश्चार्द्धः ॥७६४॥

13

#### वा०-अर्दे च ॥ ७६५ ॥

पूर्व पद के विना भी अर्ड जिसके उत्तरपद में हो, उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश हो। जैसे - पश्चार्ड: ॥ ७६४ ॥

#### पश्च पश्चा च छन्द्सि ॥ ७६६ ॥ अ० ५ । ३ । ३३ ॥

यहां अपर शब्द को पश्च आदेश अ तथा आ प्रत्यय वैदिकप्रयोगविषय में होते हैं, और चकार से आति प्रत्यय भी हो। जैसे – पश्च सिंह:, पश्चा सिंह:, पश्चात् सिंह: ॥७६६॥

#### उत्तराधरदक्षिणादातिः ॥ ७६७ ॥ अ० ५ । ३ । ३४ ॥

उत्तर मधर मोर दित्तण शन्दों से मस्ताति प्रत्यय के मधी में आति प्रत्यय होवे। जैसे - उत्तरस्यां दिशि वसति उत्तराद्वसति; उत्तराद्दागतः; उत्तराद्रमणीयम्; मधराद्वसति; अधरादागतः; मधराद्रमणीयम्; दित्तणाद्वसति; दित्तणादागतः; दित्तणाद्रमणीयम् ॥७६७॥

#### एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ॥ ७६८ ॥ अ० ५ । ३ । ३५ ॥

यहां एनप् प्रत्यय में अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि एनप् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है। स्रोर पूर्व सूत्र से उत्तर स्रादि तीनों शब्दों की अनुवृत्ति स्राती है।

सप्तमी और प्रथमासमर्थ उत्तर अधर और द्त्तिण शब्दों से निकट अर्थ में आति प्रस्यय का वाधक पनप् प्रस्यय विकल्प करके हो, पत्त में आति भी हो जावे।

जैसे—उत्तरस्यां दिशि वसित उत्तरेण वसितः, उत्तराद्वसितः, उत्तरतो वसितः, उत्तरेण रमणीयम्ः उत्तराद्वसितः, अधराद्वसितः, विज्ञणान्वसितः, दिज्ञणान्वसितः, दिज्ञणान्वसित्तः, दिज्ञणान्वसितः, दिज्ञणान्वसितः

यहां 'अदूर' प्रहण इसिलिये है कि —उत्तराद्वसित, यहां एनप् न होते। और 'पश्चमी-समर्थ का निषेध' इसिलिये किया है कि —उत्तरादागतः, यहां भी एनप् प्रत्यय न होते।

ग्रोर यहां से आगे असि प्रत्यय के पूर्व २ सब सुत्रों में पञ्चमीसमर्थ का निषेध समक्रता चाहिये॥ ७६ ⊏॥

#### द्क्षिणादाचु ॥ ७६६ ॥ अ० ५ । ३ । ३६ ॥

सप्तमी और प्रथमासमर्थं दिचाण शब्द से अस्ताति के अर्थ में आच् प्रत्यय हो। जैसे—दिचणा वसति; दिचणा रमणीयम्। यहां 'पञ्चमी का निषेध' इसलिये है कि — द्विणत आगतः, यहां आच् प्रत्यय न हो ॥ ७६६ ॥

#### आहि च दूरे ॥ ७७० ॥ अ० ४ । ३ । ३७ ॥

यहां पूर्व सुत्र से दिन्नण शन्द की अनुवृत्ति आती है।

दिच्या प्रातिपदिक से अस्ताति के अर्थ में आहि, चकार से आच् प्रत्यय होते। जैसे—दिच्याहि वसति; दिच्या वसति; दिच्चणाहि रमणीयम्; दिच्चणा रमणीयम्।

यहां 'दूर' ग्रहण इसिलये हैं कि—द्विणतो वसित, यहां न हो। श्रोर 'पञ्चमीसमर्थ का निषेध' इसिलये हैं, कि—द्विणत श्रागतः, यहां भी श्राहि प्रत्यय न होवे॥ ७७०॥

#### उत्तराच्च ॥ ७७१ ॥ अ० ५ । ३ । ३८ ॥

उत्तर शब्द से अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में दूर अर्थ वाच्य रहे, तो आच् और आहि प्रत्यय हों। जैसे—उत्तरा वसति; उत्तराहि वसति; उत्तरा रमणीयम्; उत्तराहि रमणीयम्।

यहां 'दूर' ब्रह्ण इसलिये है कि—उत्तरेण प्रयाति, यहां न हो। श्रीर 'पश्चमीसमर्थ का निषेध' इसलिये है कि—उत्तरादागत:, यहां भी ब्राहि प्रत्यय न होवे ॥ ७७१ ॥

## पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चेषाम् ॥७७२॥ अ० ५ । ३ । ३६ ॥

सप्तमी पञ्चमी और प्रथमासमर्थ पूर्व अधर और अवर प्रातिपदिकों से अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में असि प्रत्यय, और पूर्व आदि शब्दों को क्रम से पुर् अध् और अव् आदेश भी होवें।

जैसे - पूर्वस्यां दिशि वसति पुरो वसतिः, पुर श्रागतः, पुरो रमणीयम्, श्रधो वसतिः, श्रध श्रागतः, श्रधो रमणीयम्, श्रवो वसतिः, श्रव श्रागतः, श्रवो रमणीयम् ॥ ७७२ ॥

#### अस्ताति च ॥७७३॥ अ० ५।३।४०॥

अस्ताति अत्यय परे हो, तो भी पूर्व आदि तीनों शब्दों को पुर् आदि आदेश कम से हो। और यहां अस्ताति अत्यय भी इस आदेश-विधानक्रप क्षापक से ही समम्भना चाहिये। जैसे — पुरस्ताद्वस्तिः, पुरस्ताद्वागतः, पुरस्ताद्वमणीयम्, अधस्ताद्वस्तिः, अधस्ताद्वागतः, अधस्ताद्वस्तिः, अधस्तिः, अ

#### विभाषाऽवरस्य ॥ ७७४ ॥ अ० ५ । ३ । ४१ ॥

यहां प्राप्तविभाषा है। पूर्व सूत्र से नित्य ही अव् आदेश प्राप्त है।

श्रवर शब्द को श्रस्ताति प्रत्यय के परे श्रव् श्रादेश विकल्प करके हो। जैसे— श्रवस्ताद्वस्ति; श्रवस्तादागतः; श्रवस्ताद्रमणीयम् ॥ ७७४ ॥

## संख्याया विधार्थे घा ॥ ७७५ ॥ अ०५ । ३ । ४२ ॥

क्रिया के प्रकार ऋर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची प्रातिपदिकों से खार्थ में था प्रत्यय हो। जैसे—एकथा भुङ्क्रे; द्विथा गच्छति; चतुर्था; पश्चथा इत्यादि ॥ ७७५॥

#### याच्ये पाशप् ॥ ७७६ ॥ अ० ५ । ३ । ४७ ॥

याप्य—निन्दित—श्रर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में पाशप् प्रत्यय हो। जैसे—कुत्सितो वैयाकरणो वैयाकरणपाशः; याज्ञिकपाशः इत्यादि।

जो पुरुष व्याकरण शास्त्र में प्रवीण श्रीर तुरे श्राचरण करता हो, उसकी 'वैयाकरणपाश' संज्ञा इसिलये नहीं होती कि जिस गुण के विद्यमान होने से वैयाकरण शब्द की प्रवृत्ति उस पुरुष में होती है, उसी गुण की निन्दा में प्रत्यय होता है ॥७७६॥

#### एकादाकिनिच्चासहाये ॥ ७७७ ॥ अ० ५ । ३ । ५२ ॥

श्रसहायवाची एक शब्द से खार्थ में श्राकिनिच् प्रत्यय हो, श्रीर चकार से कन् प्रत्यय श्रीर लुक् भी हों। जैसे—एकाकी, एककः, एकः।

यहां आकिनिच् और कन् दोनों का लुक् समझना चाहिये, परन्तु प्रत्यविधान व्यर्थ न हो इसिलिये पद्म में लुक् होता है ॥ ७७७ ॥

#### आतशायने तमबिष्ठनौ ॥ ७७८ ॥ अ० ५ । ३ । ५५ ॥

श्रतिशायन—प्रकृत्यर्थ की उन्नति—श्रर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्मर्थ में तमप् स्रोट इष्टन् प्रत्यय हों।

जैसे — झतिशयितः श्रेष्ठः श्रेष्ठतमः, वैयाकरणतमः, श्राढः धतमः, दर्शनीयतमः, सुकु-मारतमः इत्यादि । श्रयमेषामतिशयेन पटुः पटिष्ठः, त्रिष्ठः, गरिष्ठः इत्यादि ॥ ७७८ ॥

#### तिङश्च ॥ ७७६ ॥ ऋ० ५ । ३ । ५६ ॥

यहां तिद्धतप्रकरण में चतुर्थाध्याय के आदि में डीवन्त आवन्त और प्रातिपदिकों से प्रस्ययविधान का अधिकार कर चुके हैं। इस कारण तिङन्त शब्दों से प्रत्ययविधान नहीं प्राप्त है, इसी तिये यह सूत्र पढ़ा है।

तिङन्त शब्दों से अतिशय अर्थ में तमप् प्रत्यय हो। जैसे—अयमेषु भृशं पचित पचिततमाम्, जलपिततमाम् इत्यादि।

यहां पूर्वसूत्र से इष्ठन् प्रत्यय इस्तिये नहीं त्राता कि प्रत्ययान्त गुणवाची शब्दों से लोक में वाच्य अर्थों के साथ सम्बन्ध दीखता है, क्रिया शब्दों के साथ नहीं ॥ ७७६ ॥

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ॥ ७८० ॥ अ० ५ । ३ । ५७ ॥

यहां तिङन्त की अंजुवृत्ति पूर्व सूत्र से आती है।

अहां विभाग करने योग्य दो और व्यक्तियों का कहना उपपद हो, वहां सामान्य प्रातिपदिकों श्रोर तिङन्त शब्दों से श्रतिशय ऋथे में तरप् श्रोर ईयसुन् प्रत्यय हों।

जैसे — द्वाविमावादचौ अयमनयोरितशयेनादचः आद्यातरः, द्वाविमी विद्वांसी अयमनयोरितशयेन विद्वान् विद्वत्तरः, प्राइतरः, पचितितराम्, जलपितिराम् इत्यादि । ईयसुन् — द्वाविमौ सुरू, अयमनयोरितशयेन गरीयान्, पटीयान्, सघीयान् इत्यादि ।

विभज्योपपद से—माथुराः पाटिलपुत्रभय त्राढ घतराः; वाराणसेया इतरेभ्यो विद्वत्तराः; दर्शनीयतराः इत्यादि । ईयसुन्—गरीयांसः, पटीयांसः इत्यादि ॥ ७८० ॥

#### श्रजादी गुगावचनादेव ॥ ७८१ ॥ अ० ५ । ३ । ५८ ॥

पूर्व सूत्रों में जो अजादि—इष्ठन्, ईयसुन्—प्रत्यय सामान्य करके कहे हैं, उनका यहां विषयनियम करते हैं, कि वे दोनों प्रत्यय गुणवाची प्रातिपदिक से ही होवें, अन्य से नहीं। उदाहरण पूर्व दे चुके हैं।

नियम होने से पाचकतरः, पाचकतमः इत्यादि में इष्टन् श्रोर ईयसुन् प्रत्यय नहीं होते। श्रोर प्रत्यय का नियम समभना चाहिये, प्रकृति का नहीं। श्रर्थात् गुणवाची प्रातिपदिकों से तरप् तमप् प्रत्यय भी होते हैं, श्रोर द्रव्यवाचक शब्दों से तरप् तमप् ही होते हैं, इष्टन् श्रोर ईयसुन् नहीं होते॥ ७८१॥

#### ्तुश्छन्दिसि ॥ ७८२ ॥ अ० ५ । ३ । ५६ ॥

यहां पूर्व सूत्र से अजादि की अनुवृत्ति चली आती है। पूर्व सूत्र में गुग्रवाचियों से नियम किया है, इससे यहां प्राप्ति नहीं थी।

तृच् और तृन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से वेद्विषय में इष्टन् और ईयसुन् प्रत्यय होवें। जैसे — आसुति करिष्ठः, 'अतिशयेन कर्त्ता' ऐसा विष्रह होगा, अतिशयेन दोग्धी दोहीयसी धेनुः।

यहां सामान्य भसंज्ञा में (भस्याढे॰) इससे पुंवद्भाव होकर तृच् तृन् प्रत्ययों का लुक् हो जाता है ॥ १९६२ ॥

#### ्रप्रशस्यस्य श्रः ॥ ७८३ ॥ अ० ५ । ३ । ६० ॥

श्रजादि प्रत्ययों के परे प्रशस्य शब्द को अ आदेश होते। जैसे—सर्व इमें प्रशस्याः अयमतिश्येन प्रशस्यः अप्रः, द्वाविमौ प्रशस्यौ अयमनयोरितश्येन प्रशस्यः अयान्।

ति इतिप्रत्ययों के परे भसंज्ञक एकाच् शब्दों को प्रकृतिभाव होने से श्र शब्द के टिमाग का लोप नहीं होता ॥ उद्भ ॥

#### ज्य च ॥ ७८४ ॥ अ० ५ । ३ । ६१ ॥

प्रशस्य शब्द को अजादि प्रत्ययों के परे जय आदेश भी हो। जैसे सर्व इमे प्रशस्याः अयमनयोरतिश्येन प्रशस्यः ज्येष्ठः, द्वाविमौ प्रशस्यौ अयमतिश्येन प्रशस्यः ज्यायान्। यहां ईयसुन् के ईकार को आकारादेश (ज्यादादी०) इस वच्यमाण सूत्र से हो जाता है ॥ ७८४ ॥

#### वृद्धस्य च ॥ ७८५ ॥ अ० ५ । ३ । ६२ ॥

वृद्ध शन्द को भी अजादि प्रत्ययों के परे ज्य आदेश होवे। जैसे—सर्व इमे वृद्धाः अयमेषामतिशयेन वृद्धः ज्येष्ठः, उमाविमौ वृद्धौ अयमनयोरतिशयेन वृद्धः ज्यायान्।

श्रीर (प्रियस्थिर०) इस वदयमाण सूत्र से वृद्ध शब्द को वर्ष श्रादेश भी होता है, पर•तु वृद्ध श्रादेश कहना व्यर्थ न होजावे, इसिलये पद्म में समभना चाहिये। जैसे— वर्षिष्ठ:, वर्षीयान्॥ ७८४॥

## म्रान्तिकबाढयोर्नेद्साधौ ॥ ७८६ ॥ अ० ५ । ३ । ६३ ॥

श्रन्तिक श्रौर बाढ शब्दों को यथासंख्य करके श्रजादि प्रत्ययों के परे नेद् श्रौर साध श्रादेश होवें। जैसे— सर्वाणीमान्यन्तिकानि इदमेषामितश्येनान्तिकं नेदिष्ठम्; उभे इमे श्रन्तिके इदमनयोरितश्येनान्तिकं नेदीयः; सर्व इमे बाढमधीयते नेदिष्ठमधीयते; श्रयमसात् साधीयोऽधीते॥ ७८६॥

#### युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् ॥ ७८७ ॥ अ० ५ । ३ । ६४ ॥

इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा इसिकाये समभानी चाहिए, कि अजादि प्रत्ययों के परे कन् आदेश किसी सूत्र से प्राप्त नहीं।

युव और अल्प शब्दों के स्थान में अजादि प्रत्ययों के परे कन् आदेश विकल्प करके होते। जैसे—सर्व इमे युवान: अयमेषामितशयेन युवा किन्छः, यविष्ठः, द्वाविमो युवानी अयमनयोरितशयेन युवा कनीयान्, यवीयान्, सर्व इमेऽल्पाः अयमितशयेनाल्पः किन्छः, अलिप्छः, द्वाविमावल्पौ अयमितशयेनाल्पः कनीयान्, शल्पीयान् ॥ ८८७ ॥

## .विन्मतोर्जुक् ॥ ७८८ ॥ श्र० ४ । ३ । ६४ ॥ .

विन् और मतुप् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से अजादि प्रत्यय परे हों, तो विन् और मतुप् प्रत्यय का लुक् हो जावे।

जैसे—सर्व इमे स्रग्विणः अयमेषामितश्येन स्रग्वी स्रजिष्ठः; मायिष्ठः इत्यादिः, उभाविमौ स्रग्विणौ अयमनयोरितश्येन स्रग्वी स्रजीयानः, अयमसात् स्रजीयानः, सर्व इमे धनवन्तः अयमेषामितश्येन धनवान् धनिष्ठः, उभाविमौ धनवन्तौ अयमनयोरितश्येन धनवान् धनीयानः, अयमसात् धनीयानः इत्यादि ।

(प्रशस्यस्य थ्रः) इस सूत्र से ले के यहां तक सब सूत्रों में श्रादेश विधानरूप ज्ञापक से श्रजादि प्रत्ययों—इष्ठन्, ईयसुन्—की उत्पत्ति उन २ प्रशस्य श्रादि प्रातिपदिकों से सममनी चाहिये॥. ७८८॥

#### प्रशंसायां रूपपु ॥ ७८६ ॥ अ० ५ । ३ । ६६ ॥

प्रकृत्यर्थं की प्रशंसा अर्थं में वर्त्तमान प्रातिपदिक से खार्थं में कपप् प्रत्यय होवे। जैसे—प्रशस्तो वैयाकरणो वैयाकरणकपः, याश्चिककपः, पाचककपः, उपदेशककपः, प्राञ्चकपः इत्यदि।

यहां पूर्व से विङन्त की भी अनुवृत्ति चली आती है। जैसे-पचतिकपम्। पठति-कपम्। जल्पविक्रपम्।

तिखत प्रत्ययान्त आख्यात कियाओं से द्विवचन बहुवचन विभक्ति नहीं आती, और सब विभक्तियों के एकवचन भी नहीं होते, किन्तु अव्ययसंक्षा होजाने से सब विभक्तियों के स्थान में अम् आदेश हो जाता है। परन्तु द्विवचनान्त और बहुवचनान्त कियाओं से तो तिखत प्रत्यय हो जाते हैं। जैसे—पठतोक्तपम्; पठन्तिक्तपम् इत्यदि ॥ ७८६॥

## ईषद्समाप्ती करुपब्देश्यदेशीयरः ॥७६०॥ अ० ५ । ३ । ६७ ॥

समाप्ति होने में थोड़ी न्यूनता अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से खार्थ में करूपप् देशय और देशीयर् प्रत्यय होवें। जैसे— ईषदसमाप्ता विद्या विद्याकरूपः, विद्यादेशयः, विद्यादेशीयः, ईषरसमाप्तः पटः पटकरूपः, पटदेशयः, पटदेशीयः, मृतुकरूपः, मृतुदेशयः, मृतुदेशीयः इत्यादि।

तिङन्त की भी अनुवृत्ति चली आती है। जैसे—पचितकल्पम्; पटितकल्पम्; पटितिरेश्यम्; पटितरेशीयम्; पटितःकल्पम्; पटिन्तकल्पम् इत्यादि ॥ ७६० ॥

## विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तानु ॥ ७११ ॥ अ० ५ । ३ । ६८ ॥

यदां भी अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि सुवन्त से पूर्व बहुच् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं। श्रीर यहां पूर्वसूत्र से ईषदसमाप्ति श्रर्थ की श्रजुवृत्ति भी चली श्राती है। ईषदसमाप्ति श्रर्थ में वर्त्तमान सुवन्त से पूर्व बहुच् प्रत्यय विकल्प करके होवे।

तृतीयाध्याय के हारम्भ में प्रत्ययों के धातु प्रातिपदिकों से परे होने का अधिकार कर चुके हैं, इसलिये यहां पुरस्तात् शब्द पढ़ा है कि प्रातिपदिकों के स्रादि में प्रत्यय हों। जैसे—ईषदसमाप्तो लेख: बहुलेख:, बहुपदु:, बहुमृदु:, बहुगुडा द्रान्ता इत्यादि।

विकरण के कहने से 'करपप्' आदि प्रत्यय भी इन प्रातिपदिकों से होते हैं। श्रीर सुवन्तप्रहण तिङन्त की निवृत्ति के लिये हैं ॥ ७६१ ॥

### प्रकारवचने जातीयर् ॥ ७६२ ॥ अ० ५ । ३ । ६६ ॥

प्रकार के कहने श्रर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से खार्थ में जातीयर् प्रत्यय होने। जैसे—एवम्प्रकारः एवञ्जातीयः, मृदुप्रकारः मृदुजातीयः, प्रमाणजातीयः, प्रमेयजातीयः इत्यादि ॥ ७६२ ॥

## प्रागिवात्कः ॥ ७६३ ॥ अ० ५ । ३ । ७० ॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे (इवे प्रतिकृतों) इस सूत्रपर्यन्त सब सूत्रों तथा अर्थों में सामान्य करके क प्रत्यय होगा। जैसे—अध्वकः; वृषभकः; गोकः इत्यादि।

तिङन्त की अनुवृत्ति इस सूत्र में नहीं आती, किन्तु उत्तरसूत्र में तो आती है ॥७६३॥

## अञ्ययसर्वनाम्नामंकच् प्राक् टेः ॥ ७६४ ॥ अ० ५ । ३ । ७१ ॥

यहां तिङन्त की भी श्रानुवृत्ति त्राती है। त्रोर यह सूत्र क प्रत्यय का श्रपवाद है। श्रव्यय सर्वनामसंज्ञकः ग्रोर तिङन्त शब्दों के टि भाग से पूर्व श्रकच् प्रत्यय होवे।

यहां भी प्रत्ययों का पर होना अधिकार होने से टि से पूर्व नहीं प्राप्त है, इसिलये प्राक्त्यहण किया है। जैसे अव्ययों से—उचकै:, नीचकै:, शनकै: इत्यादि। सर्वनाम-संद्रकों से—सर्वके, सर्वे; विश्वके, विश्वे, उभयके, उभये, यका, सका, या, सा, यका; सका; या, सा, यक्का; सका; या, सा, यक्का; सका; या, सका; या, सका; या, सका; यक्का; सका; या, सका

यहां प्रातिपदिक और सुबन्त दोनों की अनुवृत्ति चली आती है, इस कारण कहीं प्रातिपदिक के टि से पूर्व. और कहीं सुबन्त के टि से पूर्व अकच् प्रत्यय होता है।

प्रातिपदिक के टि से पूर्व—जैसे – युष्मकाभि:, श्रस्मकाभि:, श्रुष्माभि:, श्रस्माभि:, श्रुष्मकासुः, श्रस्मकासुः, श्रस्मकासुः, श्रमकासुः, श्रमकासुः, श्रमकासुः, श्रमकासुः, श्रावकयो:, श्रावकयो:, श्रवयो:, श्रावयो: स्त्यादि । सुवन्त के टि से पूर्व—जैसे—त्वयकाः, मयकाः, त्वयाः, मयाः, त्वयकिः, मयिकः, त्वयिः, मयि इत्यादि । तिङ्गत से—भवतिकः, पचतिकः, पठतिकः, जल्पतिक इत्यादि ॥७६४॥

#### वा०-अकच्प्रकर्गो तुष्णीमः कास् ॥ ७६५ ॥

तृष्णीम् मकारान्त श्रव्यय शब्द के टि भाग से पूर्व श्रक्तच् प्रत्यय का बाधक काम् प्रत्यय होवे । जैसे — श्रासितव्यं किल तृष्णीकाम् ॥ ७६४ ॥

#### वा०-शीले को मलोपश्च ॥ ७६६॥

शील अर्थ में तूच्णीम् अध्यय शब्द से क प्रत्यय और तूच्णीम् शब्द के मकार का लोप हो जावे। ज़ैसे—तूच्णीशील: तूच्णीक: ॥ ७६६॥

#### कस्य च दः ॥ ७६७ ॥ अ० ५ । ३ । ७२ ॥

यहां अन्ययों के सम्बन्ध का सूत्रार्थ के साथ सम्भव होने से अन्यय की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से आती है, सर्वनाम की नहीं। क्योंकि सर्वनाम गुन्द कोई ककारान्त नहीं है।

ककारान्त अञ्चयों को अकच् प्रत्यय के संयोग में दकारान्त आदेश होते। जैसे-धिक्, धिक्त, हिरक्त, हिरकुत्, पृथक्, पृथकत् इत्यादि ॥ ७६७ ॥

#### अनुकम्पायाम् ॥ ७६८ ॥ अ० ५ । ३ । ७६ ॥

त्रुसरों के दु:स्रों को यथाशक्ति निवारण करने को 'श्रमुकम्पा' कहते हैं। श्रमुकम्पा श्रर्थ में वर्त्तमान सामान्य प्रातिपदिकों श्रोर तिङन्त शब्दों से यथाप्राप्त प्रत्यय हो।

जैसे - पुत्रकः; वत्सकः; दुर्वलकः; बुभुद्धितकः; ज्वरितकः इत्यादि । तिङन्तों से-शेतके; विश्वसितिकः; स्विपतिकः; प्राणितिकः इत्यादि ॥ ७६ ॥

## ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ॥ ७९९ ॥ अ० ५ । ३ । ८३ ॥

यहां पूर्व सूत्र से लोप की श्रनुवृत्ति श्राती है।

इस प्रकरण में जो ठ श्रजादि प्रत्यय हैं, उनके परे प्रकृति के द्वितीय श्रच्य से श्रन्य जो शब्दरूप है उसका लोप हो। ऊर्ध्व शब्द के प्रहण से सब का लोप होजाता है।

जैसे—अनुकम्पितो देवदत्तः देविकः, देवियः, देविलः, यक्किकः, यक्कियः, यक्कितः— यहां देवदत्त श्रोर यक्कदत्त शब्द से ठ, घ श्रोर इत्तच् प्रत्यय क्रम से हुए हैं। अनुकम्पित उपेन्द्रदत्तकः उपडः, उपकः, उपियः, उपितः, उपिकः—यहां उपेन्द्रदत्त शब्द से श्रडच्, युच, घ, इत्नच् तथा ठच् प्रत्यय होतं हैं।

इस सूत्र में ठ को भी इक आदेश हो जात। है। फिर अजाद के कहने से ठ प्रत्यय का भी प्रहण हो जाता, फिर 'ठ प्रत्यय का' प्रहण इसिनये है कि - जहां उक प्रत्याहार से परे ठ के स्थान में क आदेश होता है, वहां भी दो अच् से अन्य वर्णी का लोप हो जावे। जैसे - अनुकस्पितो वायुद्त: वायुक: पितृक: ॥ ७६६ ॥

## वा०-द्वितीयादचो होपे संध्यक्षरस्य द्वितीयत्वे तदादेहींपो

#### वक्तव्यः ॥ ८०० ॥

दो श्रद्धारों से श्रन्य वर्णों का जो लोप सूत्र से कहा है, सो जो द्वितीय श्रद्धार सन्ध्यद्धार—ए, ऐ, श्रो, श्रो—हों, तो वहां सन्ध्यद्धार का भी कोप हो जावे। जैसे— बहोड:, बहिक:, कहोड:, कहिक:।

यहां लहोड कहोड किसी मनुष्यविशेष की संद्वा है, उन में हकारविशिष्ट श्रोकार का भी लोप हो जाता है ॥ ८०० ॥

#### वा०-चतुर्थात् ॥ ८०१ ॥

द्वितीय श्रच् से परे श्रन्य माग का जो जोप कहा है, सो चतुर्थ श्रच् से परे भी हो जावे। जैसे—वृहस्पतिदत्तक: वृहस्पतिक:, वृहस्पतिय:, वृहस्पतिज्ञ: इत्थादि ॥ ८०१॥

#### वा०-अनजादौ च ॥ ८०२ ॥

अजादि प्रत्यय के परे लोप कहा है, सो हलादि प्रत्ययों के परे भी द्वितीय श्रच् से ऊर्ध्व का लोप हो। जैसे-देवद्त्तकः देवकः;यञ्जदत्तकः यञ्चकः—यहां कन् प्रत्यय हुआ है ॥६०२॥ वा०-लोपः पूर्वपद्स्य च ॥ ८०३ ॥

श्रजादि हलादि सामान्य प्रत्ययों के परे संज्ञावाची शब्दों के पूर्वपद का भी लोप हो जावे। जैसे-देवदत्तको दत्तक:, यज्ञदत्तको दत्तक:, दत्तिक:, दत्तिव:, दत्तिव: इत्यादि ॥८०३॥

वा०-अत्रत्यये तथैवेष्टः ॥ ८०४ ॥

कोई भी प्रत्यय न परे हो, तो भी पूर्वपद का लोप होवे। जैसे—देवदस्तो दस्तः इत्यादि॥ ८०४॥

वा०-उवर्णाञ्च इलस्य च ॥ ८०५॥

उवर्णान्त संज्ञा शब्द से परे जो इलच् प्रत्यय उसके इकार का लोप हो। जैसे— भाजुदत्तो भाजुल:, वसुदत्तो वसुल: इत्यादि॥ ८०४॥

वा०-एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपः ॥ ८०६ ॥

एकाच्चर जिनका पूर्वपद हो, उनके उत्तरपद का लोप हो, श्रजादि प्रत्ययों के परे। जैसे—वागाशी:, वाचिक:, स्रुचिक:, त्वचिक: इत्यादि ॥ ८०६ ॥

किंयत्तदो निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ॥८०७॥ अ०५ । ३ । ६२॥

दो में से एक का जहां निर्दारण—पृथक्—करना हो, वहां किम् यत् और तत् प्रातिपदिकों से डरतच् प्रत्यय होते।

जातिवाची क्रियावाची गुणवाची वा संज्ञा शब्दों के समुदाय से एकदेश का पृथक् करना होता है। जैसे—कतरो भवतो: कठः; कतरो भवतोः कारकः; कतरो भवतोः पदुः; कतरो भवतोर्देवदत्तः; यतरो भवतोः कठः; यतरो भवतोः कारकः; यतरो भवतोः पदुः; यतरो भवतोर्देवदत्तः ततर आगच्छतु इत्यादि।

यहां महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है। इससे को भवतोदेंवद्त्तः स आगच्छतु इत्यादि वाक्यों में इतरच् प्रत्यय नहीं होता ॥ ८०७॥

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ॥ ८०८ ॥ श्रं० ५ । ३ । ६३ ॥

पूर्व सूत्र से किम् आदि शब्दों और एक के निर्दारण की अनुवृत्ति आती है।

बहुतों में से एक का निर्दारण करना अर्थ हो, तो जाति के पूछने अर्थ में वर्तमान किम् आदि शब्दों से विकल्प करके डतरच् प्रत्यय होवे। जैसे—कतमो भवतां कठः। यतमो भवतां कठः ततम आगच्छतु इत्यादि।

यहां विकल्प के होने से पत्त में इसी अर्थ में अकच् भी होता है। जैसे—यको भवतां कट: सक आगच्छतु। और महाविभाषा के चले आने से वाक्य भी बना रहता है। जैसे—यो भवतां कट: स आगच्छतु।

यहां 'जातिपरिप्रश्न' का प्रहण इसिलिये हैं कि — को भवतां देवदत्तः, यहां निज की संज्ञा के प्रश्न में किम् शब्द से इतमच् प्रत्यय नहीं होता। और परिप्रश्न का सम्बन्ध एक किम् शब्द के साथ ही समसना चाहिये, क्योंकि यत् तत् के साथ वह आधी समसनित नहीं होता॥ ८०८॥

## इवे प्रतिक्रती ॥ ८०६ ॥ अ० ५ । ३ । ६६ ॥

यहां पूर्व से परिप्रश्न की अनुवृत्ति आती है।

उपमावाचक अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होवे। जैसे — अश्व इव प्रतिकृति: अञ्चक:, गर्दभक:, उपूक:।

यहां 'प्रतिकृति' प्रहण इसलिये है कि—गौरिव गवयः, यहां केवल उपमा ही है प्रतिकृति नहीं, इससे कन् प्रत्यय नहीं होता ॥ ८०६ ॥

### छुम्मनुष्ये ॥ ८१० ॥ अ० ५ । ३ । ६८ ॥

प्रतिकृति सादश्यार्थसंज्ञा हो, तो उस ग्रर्थ में विद्वित कन् प्रत्यय का लुप् होजावे। जैसे चञ्चेव मनुष्यः चञ्चाः, दासीः, खरकुटी इत्यादि, यहां तद्धित-प्रत्यय का लुप् होने से लिङ्ग ग्रोर वचन पूर्व के ही हो जाते हैं।

यहां 'मजुष्प' ब्रह्मण इसिवये है कि —ब्रश्यकः, ड्रष्ट्रकः इत्यादि में लुप् न होने ॥८१०॥

## जीविकार्थे चापराये + ॥ ८११ ॥ स्र० ५ । ३ । ६६ ॥

यहां मजुष्यप्रहण की अजुबुत्ति पूर्व सूत्र से समस्ति। चाहिये, क्योंकि उत्तर सूत्र में भी जाती है।

+ जीविका शब्द का अर्थ गुरुष करके जीवनोपाय करना है। इस प्रकरेश में सिधाय प्रतिकृति और मनुष्य के दूसरे की अनुवृत्ति नहीं आती। यहां प्रयोजन यह है कि जिन की पुत्र आदि सम्बन्धी वा मित्रादिकों के साथ अत्यन्त प्रेम होता है; उनके वियोग में उनकी प्रतिकृति देखते और गुया कर्म तथा उपकार आदि का स्मर्था करते हुए, अपने चित्त में सन्तोष करते हैं। परन्तु इस प्रक्राया में मह बात विचारना आहिये कि संसार में जितने दश्य पदार्थ हैं, उन सबकी प्रतिकृति होती है वा नहीं ? जो बहुतेरे घोड़े हाथी आदि जीवों की अतिदर्शनीय सुन्मयादि की प्रतिकृतिवां बना २ कर केवते हैं, वे जीविकार्थप्यय होते हैं। और जो बहुतेरे द्वीप द्वीपान्तर देश देशान्तरों में पश्च पच्यादि तथा प्रति खी पुत्रादि की प्रतिकृतियां रखते हैं, वे अपययजीविकार्थ अर्थात् बेचने के जिये न हों, किन्तु देख और दिखता के जीविका करते हों। परन्तु परमार्थ के साथ इस विषय का कुछ सम्बन्ध नहीं।

इस सूत्र से बहुतेरे वैयाकरणों का यह अभिशय है कि — जीविका के लिये जो पदार्थ हो और वह बेचा न जावे, तो उस अर्थ में कन् प्रत्यय का लुप् हो जावे, और (लुम्मनुष्ये) इस सूत्र से मनुष्य शब्द का भी सम्बन्ध न करके, ब्रह्मा आदि देवताओं की मूर्तियां, जो कि मन्दिरों में बना २ कर रखते हैं, उनसे जीविका — धन का आग्रम — तो है परन्तु ने प्रतिमा बेचने के लिये नहीं हैं, इसलिये उन्हीं का प्रह्मा होना चाहिये।

प्राप्य उसको कहते हैं कि जो बेचा जावे, जो पदार्थ बेचने के लिये न हो श्रोर उससे किसी प्रकार की जीविका होती होवे, वह पदार्थ वाच्य रहे, तो प्रतिकृति श्रर्थ में विहित प्रत्यय का लुप हो जावे। जैसे—वसिष्ठस्य प्रतिकृतिर्वसिष्ठः; विश्वामित्रः, श्रजु नस्य प्रतिकृतिरर्जु नः, युधिष्ठिरः, रामः, कृष्णः, श्रिवः, विष्णुः, स्कन्दः, श्रादित्यः इत्यादि। ये वसिष्ठ श्रादि मनुष्यों के विशेष नाम भूत भविष्यत् श्रोर वर्त्तमान तीनों काल में होते हैं।

यहां 'मनुष्य' प्रहण की अनुवृत्ति इसलिये है कि—अख़कं दर्शयति, यहां न हो। श्रौर 'अपग्य'प्रहण इसलिये है कि—हस्तिकान् विकीणीते,यहां भी कन् का लुप् न हो ॥८११॥

#### समासाच तद्विषयात् ॥ ८१२॥ अ० ५ । ३ । १०६॥

यहां तत् शब्द से पूर्वोक्त उपमावाचक शब्द लिया जाता है।

उपमार्थ में समास किये प्रातिपदिकों से दूसरे उपमार्थ में छ प्रत्यय होवे। जैसे— काकागमनिमव तालपतनिमव काकतालं काकतालिमव यत्कार्यं काकतालीयम्; अजा-रुपाणीयम्; अन्धकवर्तकीयम् इत्यादि।

और इस स्त्र पर महाभाष्यकार ने भी कि खा है कि—जो धनार्थी लोग शिव न्नादि की प्रतिमा वना २ कर बेचते हैं, वहां लुप् नहीं पावेगा। क्योंकि स्त्रकार ने अपयय शब्द पढ़ा है कि जो बेचने के लिये न हो। इस महाभाष्य से भी अपना ही अभिनाय सिद्ध करते हैं, सो ठीक नहीं, क्योंकि यहां प्रतिकृति और मनुष्य शब्द ही की अनुवृत्ति है, अन्य की नहीं। देवता शब्द भी जहां चेतन व्यक्तियों के साथ सम्बद्ध होता है, वहां मनुष्यों ही की संज्ञा होती है। और वैदिक शब्द सब यौगिक ही हैं, देवता शब्द भी वैदिक है। जो इस सून्न में मनुष्य शब्द की अनुवृत्ति जयादित्य आदि लोगों ने नहीं की, यह उनको अम है। क्योंकि वे लोग देवता शब्द को मनुष्य से व्यतिरिक्तार्थवाची समसते हैं, परन्तु सामान्य प्रह्या होने से जो २ प्रतिकृति जीविका के लिये हो और बेची न जावे, तो उस २ सबके अभिधेय में प्रत्यय का लुप होना चाहिये।

श्रीर जहां कोई मनुष्य किन्हीं जीवों की प्रतिकृतियों को दिखा के सर्वत्र श्रपनी जीविका करता हो, वहां भी छुप् होना चाहिये। श्रीर पूजा का श्रथं भी श्रादर सत्कार ही होता है, सो चेतन का होना चाहिये। फिर महाभाष्यकार ने जिखा है कि जो इस समय पूजा के जिये हैं, वहां छुप् होगा। इसका भी यही श्रमिप्राय है कि जो शिव श्रादि मनुष्य की प्रतिकृति पूजा सत्कार के जिये हैं, उनसे प्रत्यय का छुप् हो जावे। क्योंकि श्रच्छे पुरुषों की जो प्रतिकृति है उसके बेचने में सज्जन जोग बुराई समस्तते हैं।

देव और देवता शब्द से मनुष्यों के प्रहरण में प्रमाया-

'विश्वे देवास आगत शृणुतेम इवम् ।,' यह यजुर्वेद का प्रमाण है। 'विद्वाश्वेसो हि देवाः ।।' यह शातप्य श्राह्मण का वचन है। 'मातृदेवो मव । पितृदेवो मव । श्राचार्यदेवो मव । अतिथिदेवो मव ।।' यह तैत्तिरीय आरण्यक का वाक्य है ॥

इत्यादि सब प्रमाणवचनों से विद्वद् व्यक्ति आदि का ग्रहण देन और देवता शब्द से होता है। इसिवये पाणिनि आदि ऋषि कोगों का अभिप्राय भी वेदों से विरुद्ध कभी न होना चाहिये। इस प्रकरण को प्रचपात छोड़ के वेदानुकूलता से सब सज्जन लोग विचारें॥ यहां काँवे का वृद्ध के नीचे आना और ताल के फल का गिरना एक काल में होने से उस फल से दब के मरजाना अथवा उस फल को खा के तृप्त होना दोनों अथीं का सम्भव है। ऐसे ही संसार में जो कार्य हो, उस को 'काकतालीय न्याय' कहते हैं।

इस सूत्र में पहले उपमार्थ में समास और दूसरे में प्रत्यवकी उत्पत्ति होती है ॥ ८१२ ॥

## प्रतिपूर्वविश्वेमात्थाल् छन्दिस ॥ ८१३॥ अ० ५ । ३ । १११ ॥

प्रत पूर्व विश्व त्रौर इम शृद्दों से उपमार्थ में वेद्विषयक थाल् प्रत्यय होवे । जैसे— प्रत्नथा; पूर्वथा; विश्वथा; इमथा ॥ ८१३ ॥

## पूगाञ् ज्योऽयामगाीपूर्वात् ॥ ८१४ ॥ अ० ५ । ३ । ११२ ॥

यहां से उपमार्थ निवृत्त हुआ। अर्थ और कामों में आसक्त पुरुषों को 'पूग' कहते हैं।

ग्रामणी शब्द जिसके पूर्व न हो, ऐसे पूगवाची प्रातिपदिक से खार्थ में ज्य प्रत्यय हो। जैसे—लोहध्वज्यः, लोहध्वज्यो, लोहध्वजाः, शैक्यः, शैक्यो, शिवयः, चातक्यः, चातक्यः, चातक्यो, चातकाः।

यहां 'त्रामणी पूर्व का निषेध' इसिलये है कि —देवदत्तो प्रामणीरेषां त इमे देवदत्तकाः, यज्ञदत्तकाः इत्यादि से ज्य प्रत्यय न होवे॥ ८१४॥

## वातच्फञोरस्त्रियाम् ॥ ८१५ ॥ अ० ५ । ३ । ११३ ॥

जो पुरुष जीवों को मार २ के जीविका करें उनको 'वात' कहते हैं।

वातवाची श्रोर च्फञ् प्रत्ययान्त प्रातिपिद्कों से खार्थं में ज्य प्रत्यय हो, स्नितिक्रं को छोड़ के। जैसे—कापोतपाक्यः, कापोतपाक्यो, कपोतपाकाः इत्यादि। च्फ्जन्त से—कोज्जायन्यः, कोज्जायन्यो, कोज्जायनाः इत्यादि।

यहां 'स्त्रीलिङ्ग का निषेध' इसलिये है कि - कपोतपाकी; कौञ्जायनी, यहां इस न होते॥ ८१४॥

#### ज्याद्यस्तद्रांजाः ॥ ८१६ ॥ अ० ५ । ३ । ११६ ॥

(पूगाञ्ज्यो०) इस सूत्र में जो ज्य प्रत्यय पढ़ा है, वहां से यहां तक बीच में जितने प्रत्यय हैं, उन सब की 'तदाज' संज्ञा होती है।

उसका प्रयोजन यही है कि बहुवचन में प्रत्यय का लुक् हो जाता है ॥ ८१६ ॥

—इति पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः॥

#### अय चंतुर्यः पादः—

## पाद्शतस्य संख्यादेवींप्सायां वुन् लोपश्च ॥८१७॥ अ०५ । ४ । १ ॥

संख्या जिसके आदि में हो, ऐसे पाद और शतशब्दान्त प्रातिपदिक से वीष्सा अर्थ में बुन् प्रत्यय, और पाद शत शब्दों के अन्त का लोप होने। जैसे—हो हो पादी द्दाति द्विपदिकां द्दाति, हें हे शते द्दाति द्विशतिकां द्दाति इत्यादि।

यहां मसंद्वक प्रत्ययों के परे अन्त का लोप हो जाता, फिर 'लोप' प्रहण इसिलये है कि—उस लोप के परिनिमत्तक होने से स्थानिवद्भाव होकर पाद शब्द को पत् आदेश नहीं पावे। यह लोप परिनिमत्त नहीं है, इस कारण स्थानिवद्भाव का निषेध होकर पत् आदेश हो जाता है।

इस सूत्र में पाद और शत शब्दों का श्रहण किया है, परन्तु पाद शत शब्दों से अन्यत्र भी संख्यादि शब्दों से बीप्सा अर्थ में बुन् प्रत्यय होता है। जैसे—'द्विमोदिकका-माददादि' इत्यादि प्रयोगों का आश्रय लेकर महामायकार ने पाद शत शहण की उपेत्ता की है। पर्ण ॥

## श्रपडक्षाशितङ्कुग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदारखः ॥ ८१८॥

370 4 18 19 11

अवडत्त, आशितङ्गु, अलङ्कर्म, अलम्पुरुष और अधि जिनका उत्तरपद् हो, उन प्रातिपदिकों से खार्थ में ख प्रत्यय होवे। जैसे—अविद्यमानानि षट् अत्तीग्यस्य, इस प्रकार बहुवीहि समास किये पश्चात् अत्ति शब्द से समासान्त षच् प्रत्यय हो जाता है। उस अवडत्त शब्द से ख प्रत्यय हुआ है। अवडत्त्वीणो मन्त्रः।

आशिता गावोऽसिम्नरएये आशितङ्गवीनमरएयम्, यहां निपातन पूर्वपद को सुक् का आगम हुआ है। अलङ्गर्मीणम्; अलम्पुरुषीणम्; कार्याधीनः; राजाधीनः इत्यादि ॥८१८॥

## विभाषाऽश्वेरदिक्तियाम् ॥ ८१६ ॥ अ० ५ । ४ । ८ ॥

यहां अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि ख प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है।

किए प्रत्ययान्त अञ्चु जिसके अन्त में हो, उस प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग दिशा अर्थ को छोड़ के सार्थ में विकटप से सप्रत्यय होते। जैसे —प्राक्, प्राचीनम्; अर्वाक्, अर्वाचीनम्।

'दिशा स्त्रीलिङ्ग का निषेध' इसलिये हैं कि—प्राची दिक्; प्रतीची दिक्। 'दिशा' का प्रदेश इसलिये हैं कि—प्राचीना ब्राह्मणी; अर्वाचीना शिखा इत्यादि से छ प्रत्यय न इति ॥ दर्शः॥

## स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् ॥ ८२०॥ अ० ५।४।१०॥

तुल्यता ऋर्थ में स्थानान्त प्रातिपदिक से विकल्प करके छ प्रत्यय होवे सार्थ में। जैसे—पित्रा तुल्य: पित्रस्थानीय:, पितृस्थान:, मातृस्थानीय:, मातृस्थानी:, भ्रातृस्थानीय:, आतृस्थान:, राजस्थानीय:, राजस्थान: इत्यादि।

यहां 'स्थान' ग्रहण इसिलये है कि-गोस्थानम्; ग्रज्ञस्थानम्, यहां न हो ॥ ८२०॥

## किमेत्तिङ्ङव्ययघादाम्बद्रव्यप्रकर्षे ॥ ८२१ ॥ अ० ५ । ४ । ११ ॥

किम्, एकारान्त निपात, तिङन्त श्रोर श्रव्यय शब्दों से परे जो य प्रत्यय तदन्त प्रातिपदिकों से श्रद्रव्य—क्रिया श्रोर गुण्-की श्रधिकता में श्रामु प्रत्यय होवे।

यद्यपि गुण कर्मों के विना केवल द्रव्य की कुछ उन्नति नहीं होती, तथापि क्रिया छोर गुणों की उन्नति की जब द्रव्य में विवन्ना होती है, उस द्रव्यस्थ प्रकर्ष का निषेध यहां समक्षना चाहिये। जैसे—िक न्तराम्, किन्तमाम्; पूर्वाह्वेतराम्, पूर्वाह्वेतमाम्; पठिति-तराम्, पठितितमाम्; उच्चेस्तराम्, उच्चेस्तमाम् इत्यादि।

यहां श्रामु प्रत्यय में उकारानुबन्ध प्रकार की रच्चा के लिये है ॥ ८२१ ॥

## गाचः स्त्रियामञ् ॥ ८२२ ॥ अ० ५ । ४ । १४ ॥

स्त्रीलिङ्ग में जो कृद्नत गुच् प्रत्यय होता है, तद्नत प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गविषयक स्वार्थ में श्रञ् प्रत्यय होवे। जैसे—व्यावक्रोशी; व्यावहासी इत्यादि॥ ८२२॥

## संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्॥ ८२३ "अ०५।४।१७॥

एक ही जिनका कत्तां हो, ऐसी एक ही प्रकार की कियाओं के वार २ गणने सर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची शब्दों से खार्थ में कृत्वसुच् प्रत्यय होवे। जैसे—पञ्च वारान् भुङ्के पञ्चकृत्वो भुङ्के; सप्तकृत्वः, श्रष्टकृत्वः, दशकृत्वः हत्यादि।

यहां 'संख्या' प्रहण इसिलये हैं कि—भूरीन् वारान् सुक्के, यहां प्रत्यय न हो। श्रीर वार २ होना किया का ही हो सकता है, द्रव्य गुण का नहीं, फिर यहां 'किया' प्रहण इसिलये हैं कि—उत्तर सूत्रों में जहां किया ही गिनी जाती श्रीर श्रभ्यावृत्ति नहीं होती, वहां भी होजावे। श्रीर 'श्रभ्यावृत्ति' ग्रहण इसिलये हैं कि—क्रियामाश्र के गणने में न हो। जैसे—पश्च पाकाः; दश पाकाः॥ ८२३॥

### द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ॥ ८२४ ॥ अ० ५ । ४ । १८ ॥

क्रिया के बार २ गण्ने अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची द्वि त्रि श्रीर चतुर् शब्दों से कृत्व-सुच्का बाधक सुच्प्रत्यय होवे। जैसे—द्विः पठतिः त्रिः स्नातिः चतुः पिवति इत्यादि॥ ८२४॥

### एकस्य सकुच ॥ ८२५ ॥ अ० ५ । ४ । १६ ॥

क्रिया की संख्या में व भान एक शब्द से कृत्वसुच्का अपवाद सुच् प्रत्यय श्रीर एक शब्द को सकृत् श्रादेश होवे। जैसे—सकृद्धीते, सकृद्दाति; सकृत् कन्या प्रदीयते इत्यादि॥ ८२४॥

## तस्त्रकृतवचने मयट् ॥ ८२६॥ अ० ५ । ४ । २१ ॥

जिस शब्द से प्रत्ययार्थं की विवक्ता हो, उसी के निरन्तर कहने अर्थात् जात्यन्तर के मेल की निवृत्ति करने अर्थ में वर्त्तमान प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से खार्थ में मयट् प्रत्यय होवे। जैसे—आनन्दमयं ब्रह्म—अर्थात् ईखर में दुःख का लेश भी नहीं है; अन्नमयम्। प्राणमयम्, मनोमयम् रत्यादि ॥ ८२६॥

#### अनन्तावसथेतिह्रभेषजाञ्ज्यः ॥ ८२७ ॥ ऋ० ५ । ४ । २३ ॥

श्चनन्त, श्चावसथ, इतिह श्चीर भेषज शब्दों से खार्थ में ज्य प्रत्यय होते। जैसे—श्चनन्त एव श्चानन्त्यम्; श्चावसथ एव श्चावसथ्यम्; इतिह एव ऐतिह्यम्; भेषजमेव भेषज्यम् ॥८२७॥

#### देवतान्तात्तादर्थ्यं यत् ॥ ८२८ ॥ श्र० ५ । ४ । २४ ॥

देवता शब्द जिसके अन्त में हो, उस चतुर्थीसमर्थ प्रातिपदिक से, प्रत्ययार्थ प्रकृत्यर्थ के लिये होवे, तो यत् प्रत्यय होवे। जैसे – अग्निदेवतायै इदम् अग्निदेवत्यम्; पितृदेवत्यम्; मातृदेवत्यम्; वायुदेवत्यम् इत्यादि ॥ ८२८ ॥

### अतिथेर्ज्यः ॥ ८२६ ॥ ऋ० ५ । ४ । २६ ॥

तादर्थं त्रर्थं में, चतुर्थीसमर्थं त्रतिथि प्रातिपदिक से ज्य प्रत्यय हो। जैसे — त्रतिथये इदमातिथ्यम् ॥ ८१६॥

## देशत्तल् ॥ ८३० ॥ अ० ५ । ४ । २७ ॥

देव शब्द से खार्थ में तल् प्रत्यय होवे । जैसे —देव एव देवता ॥ ८३० ॥

## लोहितान्मणौ ॥ ८३१ ॥ ऋ० ५ । ४ । ३० ॥

मिणिवाची लोहित शब्द से स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो। जैसे — लोहितो मिणि: लोहितकः। 'मिणि' प्रहण इसलिये है कि — लोहितः, यहां प्रत्यय न हो॥ ८३१॥

#### वा०-लोहितालिङ्गबाधनं वा ॥ ८३२ ॥

लोहित शब्द से प्रतिपद्विधि में कन् प्रत्यथ के बलवान् होने से स्त्रीलिङ्ग में तकार को नकार आदेश नहीं प्राप्त है, इसलिये यह वार्तिक पढ़ा है कि—

लोहित शब्द से कन् प्रत्यय नकारादेश का बाधक विकल्प करके होय। इ.स.— लोहिनिका, लोहितिका॥ ८३२॥

## वा०-अक्षरसमृहे छन्दिस यत उपसंख्यानम् ॥ ८३३ ॥

अत्तरों के समूह अर्थ में वेदविषय में यत् प्रत्यय होते। जैसे—एष वे सप्तदशात्तर-रछन्दस्य: प्रजापति:, यहां छन्दस्य शब्द में यत् प्रत्यय हुआ है ॥ ८३३ ॥

## वा०-छन्दति बहुभिर्वसद्यैरुपसंख्यानम् ॥ ८३४ ॥

वेद में वसु शब्द से यत् प्रत्यय होवे। जैसे—हस्तैः पृण्ख बहुमिर्वसन्यैः, यहां वसव्य शब्द में यत् प्रत्यय हुन्ना है ॥ ८३४॥

## वा०-अपस्, ओक, कवि, उदक, वर्चस्, निष्केवल, उक्थ, जन इत्येतेभ्यश्च वा ॥ ८३५ ॥

यहां चकार से छन्दिस और यत् की अनुवृत्ति आती है।

इन अपस् आदि प्रातिपिद्कों से वेद में खार्थिक यत् प्रत्यय विकल्प करके होते। जैसे-अपस्योवसानाः, अपोवसानाः, ख ओक्ये, ख ओकः; कव्योऽसि, कविरसि;[उद्क्यम्, उदकम्;]वर्चस्यः, वर्चः; निष्केवल्यम्, निष्केवलम्; उक्थ्यम्, उक्थम्; जन्यम्; जनम्॥⊏३४॥

#### वा०-समाद्वतुः ॥ ८३६॥

सम शब्द से खार्थ में श्रावतु प्रत्यय होते। जैसे—समावद्वसितः समावद् गृह्णाति इत्यादि॥ ८३६॥

#### वा०-नवस्य नू त्रप्तनप्लाश्च ॥ ८३७॥

नव शब्द को नू श्रादेश श्रौर उससे खार्थ में लप्, तनप् तथा ख प्रत्यय होवें। जैसे — नूलम्; नूतनम्; नवीनम् ॥ ८३७ ॥

## वा०-नश्च पुराणे प्रात् ॥ ८३८ ॥

प्राचीन अर्थ में वर्त्तमान प्र शब्द से न प्रत्यय, और चकार से लप् तनप् और ख प्रत्यय भी हों। जैसे-प्रण्म्, प्रलम्, प्रतनम्, प्रीण्म् ॥ ८३८॥

## तयुक्तात्कर्भगोऽण् ॥ ८३६ ॥ अ० ५ । ४ । ३६ ॥

यहां पूर्व सूत्र से अन्याहतवाणी की अनुवृत्ति आती है।

व्याहृतवाणी के युक्त - योग्य-कर्म शब्द से खार्थ में श्रण् प्रत्यय होवे। जैसे-कर्मेंव कार्म्मणम्। वाणी को सुन के वैसे ही जो कर्म किया जावे उसको 'कार्मण' कहते हैं ॥८३६॥

## वा०-अग्प्रकरगो कुलालवरुडनिषादचग्डालामित्रेभ्यश्क्रस्ट्युप-

संख्यानम् ॥ ८४० ॥

कुलाज, वरुड, निषाद, चएडाल और अमित्र प्रातिपदिकों से भी वेद में श्रण् प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे-कौलाल:, वारुड:, नैषाद:, चाएडाल:, आमित्र: ॥ ८४० ॥

वा०-भागरूपनामभ्यो धेयः ॥ ८४१ ॥

भाग, रूप श्रीर नाम शब्दों से श्रेय प्रत्यय हो। जैसे-भागधेयम्; रूपधेयम्; नामधेयम् ॥ ८४१ ॥

वा०-मित्राच्छन्दास धेयः ॥ ८४२ ॥

मित्र शब्द से वेद्विषयक स्वार्थ में घेय प्रत्यय हो। जैसे—मित्रधेये यतस्व ॥ ८४२ ॥

वा०-म्रण् मित्राच ॥ ८४३ ॥

मित्र श्रीर श्रमित्र शब्दों से स्वार्थ में श्रम् प्रत्यय भी हो। जैसे—मित्रमेव मैत्रम्। श्रमित्र एव श्रामित्र: ॥ ८४३ ॥

वा०-साम्नाय्यानुजावरानुषूकचातुष्प्राश्यराक्षोघ्नवैयातवैकृतवारि-

वस्कृतात्रायगायहायगासान्तपनानि निपात्यन्ते ॥ ८४४॥

सान्नाय्य ग्रादि शब्द खार्थिक त्रण्प्रत्ययान्त लोक वेद में सर्वत्र निपातन किये हैं। जैसे—सान्नाय्य:, त्रानुजावर:, त्रानुष्कः, चातुष्प्राश्य:, रान्नोझ:, वैयात:, वैद्यतः, वारिवस्कृत:, त्राप्रायपा:, त्राप्रदायण:, सान्तपन: ॥ ८४४॥

वा०-आग्नीघ्रसाधारणाद्य ॥ ८४५ ॥

श्राक्षीघ्र श्रोर साधारण शब्दों से स्वार्थ में श्रञ् प्रत्यय हो। जैसे—श्राक्षीध्रम्; साधारणम् ॥ ८४४ ॥

वा०-अपवसमरुद्धयां छन्दस्यञ् ॥ ८४६॥

अपवस ग्रोर महत् शब्दों से खार्थ में श्रञ् प्रत्यय हो। जैसे—श्रापवसे वर्छन्तम्। माहतं शब्दः ॥ ८४६ ॥

वा०-नवसूरमर्त्तयविष्ठेभ्यो यत् ॥ ८४७ ॥

यहां भी पूर्व वार्तिक से छन्द की अनुवृत्ति समम्भनी चाहिये।

नव, सूर, मर्त्त, श्रीर यविष्ठ शब्दों से खार्थ में यत् प्रत्यय होते । जैसे—नव्यः, सूर्यः, मर्त्यः, यविष्ठयः ॥ ८४७ ॥

वा०-चेमाद्यः ॥ ८४८ ॥

द्त्रेम शब्द से खार्थ य में प्रत्यय हो। जैसे किम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुनीरः, यहां यत् और य प्रत्यय में केवल खर का भेद है, रूपभेद नहीं ॥ ८४८ ॥

ओवधेरजाती ॥ ८४६ ॥ अ० ५ । ४ । ३७ ॥

श्रोषधि शब्द से जाति श्रर्थ न होवे, तो खार्थ में श्रण् प्रत्यय हो। जैसे—श्रोषधं पिषति, श्रोषधं द्दाति इत्यादि ॥ ८४६॥

### मृद्स्तिकन् ॥ ८५० ॥ अ० ५ । ४ । ३६ ॥

स्त् शब्द से खार्थ में तिकन् प्रत्यय हो। जैसे—मृदेव मृत्तिका॥ ८४०॥ सस्त्री प्रशंसायाम् ॥ ८५१॥ अ०५। ४। ४०॥

प्रशंसा ऋथं में वर्त्तमान मृत् प्रातिपदिक से खार्थ में स ऋौर स्न प्रत्यय हों। जैसे— प्रशस्ता मृत् मृत्सा; मृत्स्ना ॥ ८४१॥

बह्वल्पार्थाच्छस्कारकाद्न्यतरस्याम् ॥ ८५२ ॥ अ०५ । ४ । ४२ ॥

यहां शस् प्रत्यय की किसी स्त्रंत्र से प्राप्ति न होने से यह अप्राप्तविभाषा समभनी चाहिये। कारकवाची वहु अल्प और इनके अर्थ के शब्दों से विकल्प करके शस् प्रत्यय होवे।

किसी कारक का यहां विशेष निर्देश नहीं किया, इससे कर्मादि सब कारकों का महण होता है। जैसे—बहुनि ददाति, बहुशो ददाति; अल्पं ददाति, अल्पशो ददाति; बहुभिर्ददाति, बहुशो ददाति; अल्पशो ददाति; बहुभ्यः, बहुशः; अल्पशः; बहुनां बहुणु वा बहुशः; अल्पस्य, अल्पे वा अल्पशः। इनके अर्थ के—भूरिशो ददाति; स्तोकशो ददाति इत्यादि।

यहां 'बहु तथा ऋल्पार्थों का' ब्रह्मण इसिलये है कि—गां ददाति; ऋशं ददाति इत्यादि से शस् प्रत्यय न होवे।। ८४२।।

## वा०-बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम् ॥ ८५३॥

बहु और ग्रहप शब्दों से जो प्रत्यय विधान किया है, वहां बहु से मङ्गल और ग्रहप शब्द से ग्रमङ्गल ग्रर्थ में होवे।

यह वार्त्तिक सूत्र का शेष है, इसिलये उक्त उदाहरण ही समभने चाहियें। ऋर्थात्— बहुशो ददाति,यह प्रयोग ऋनिए के बहुत देने में न होते। ऋौर—ऋल्पशो ददाति, वह भी इए के देने में प्रयोग न किया जावे॥ ८४३॥

### प्रतियोगे पञ्चम्यास्तिसिः ॥ ८५४ ॥ अ० ५ । ४ । ४४ ॥

कर्मप्रवचनीयसंज्ञक प्रति शब्द के योग में जहां पश्चमी विभक्ति की है, उस विभक्त्यंत प्रातिपदिक से तसि प्रत्यय होवे। जैसे — प्रद्युस्रो वासुदेवतः प्रति; श्रभिमन्युरर्जुनतः प्रति।

यहां पूर्व से विकल्प की अनुवृत्ति चली आने से वासुदेवात्; अर्जुनात् ऐसा भी प्रयोग होता है ॥ ८४४ ॥

## वा०-तिसप्रकरणे श्राद्यादीनामुपसंख्यानम् ॥ ८५५ ॥

इस प्रकरण में आद्यादि शब्दों से तिस प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—आदी आदितः; मध्यतः; अन्ततः; पार्श्वतः; पृष्ठतः इत्यादि ॥ ८४४॥

#### क्रभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि चिवः ॥ ८५६ ॥ अ०५ । ४ । ५०॥

संपूर्वक पद धातु के कर्ता श्रर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कु, भू श्रीर श्रस्ति धातुश्रों के योग में चिव प्रत्यय होवे॥ ८४६॥

#### वा०-चिवविधावभूततद्भावग्रहणम् ॥ ८५७ ॥

यह वार्त्तिक सूत्र का शेष समभाना चाहिये। जो पदार्थ प्रथम कारण रूप से अप्रसिद्ध हो, और पीछे कार्य्यरूप से प्रकट किया जावे, उसको 'अभूततद्भाव' कहते हैं।

इस अभूततद्भाव अर्थ में उक्त सूत्र से चित्र प्रत्यय कहा है, सो होते। जैसे—अशुक्रः शुक्कः सम्पद्यते तं करोति शुक्कीकरोति, अर्थात् जो पदार्थं प्रथम से मलीन है, उसको शुद्ध करता है; शुक्कीभवति; शुक्कीस्यात्; कठिनीकरोति; कठिनीभवति; कठिनीस्यात्; घटीकरोति; घटीभवति; घटीस्यात् इत्यादि।

प्रयोजन यह है कि जो पदार्थ अपनी प्रथमावस्था में जिस स्वरूप से वर्त्तमान हो, उसी अवस्था के साथ इस प्रत्ययार्थ की विवक्ता समभानी चाहिये। और इस प्रत्यय के विना लोक में सिद्ध पदार्थों का कहना बन सकता है, कि जो पदार्थ जैसा हो उसको नैसे ही स्वरूप से वर्णन करें।

यहां 'श्रभूततद्भाव' श्रहण इसिलये है कि—सम्पद्यन्ते यवाः, सम्पद्यन्ते शालयः, यहां िच प्रत्यय नहोवे। 'कुभू श्रस्ति धातुश्रों का योग' इसिलये कहा है कि—श्रश्रुह्यः श्रुह्यो जायते, यहां नहो। श्रोर 'संपूर्वक पद्धातु के कत्ती' का श्रहण इसिलये है कि—गृहे संयुज्यते, यहां भी विव प्रत्यय नहोवे॥ ८४७॥

#### वा०-समीपादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ८५८ ॥

समीप श्रादि शब्दों से भी पूर्वोक्त श्रधों में चिव प्रत्यय होंवे। जैसे—श्रसमीपस्थं समीपस्थं भवति समीपीभवति; श्रभ्याशीभवति; श्रन्तिकीभवति; सविधीभवति इत्यादि। यहां प्रकृति से विकार का होना नहीं है, इस कारण प्रत्यय की प्राप्ति नहीं है ॥८५८॥

### विभाषा साति कात्स्न्यें ॥ ८५६ ॥ अ० ५ । ४ । ५२ ॥

यहां चिव प्रत्यय को छोड़ के पूर्व सूत्र सं सब पदों की अनुवृत्ति आती है।

संपूर्वक पद धातु के कत्तां में वर्त्तमान प्रातिपदिकों से कु भू श्रौर श्रस्ति धातु का योग हो, तो श्रभूततद्भाव श्रर्थ में संपूर्णता विदित होवे, तो साति प्रत्यय विकल्प करके हो। जैसे—भस्ससाद्भवति काष्ट्रम्, भस्मसात्करोति, भस्मसात्स्यात्, भस्मीभवति, भस्मीस्यात्, उदकीभवति स्ववण्म् इत्यादि। प्रकृति संपूर्ण विकार रूप हो जावे।

यह सूत्र चिव प्रत्यय का अपवाद और यहां अप्राप्तविभाषा है। पद्म में चिव प्रत्यय भी हो जाता है। यहां 'संपूर्णता' प्रहण इसक्तिये है कि—एकदेशेन पटः शुल्कीभवति, यहां प्रत्यय न होवे॥ ८४६॥

#### स्वार्थिकप्रत्ययाधिकारः

75Kaw on 1293-9

#### देवमनुष्यपुरुषपुरुमत्त्र्यभ्यो द्वितीयाससम्योर्बहुळम् ॥ ८६० ॥ अ० ५ । ४ । ५६ ॥

यहां से साति प्रत्यय निवृत्त हुआ, और त्रा प्रत्यय की अनुवृत्ति आती है।

द्वितीया श्रोर सप्तमीसमर्थ देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु श्रोर मर्त्य प्रातिपदिकों से बहुल करके सार्थ में त्रा प्रत्यय होवे। जैसे—देवान् सरकरोति, देवत्रा सरकरोति; देवेषु वसति, देवत्रा वसति; मनुष्यान् गच्छति, मनुष्यत्रा गच्छति; मनुष्येषु वसति, मनुष्यत्रा वसति; पुरुषं ध्यायति, पुरुषत्रा ध्यायति; पुरुष् गुह्याति, पुरुषा गुह्याति, पुरुषा वसति, पुरुषा वसति, पुरुषा वसति; मर्त्यान् मर्त्योषु वा मर्त्यत्रा इत्यादि।

यहां 'बहुल' शब्द के ब्रह्म से ब्रह्म शब्दों से भी त्रा प्रत्यय हो जावे। जैसे—बहुत्रा जीवतो मन: इत्यादि ॥ ८६० ॥ अर् १०१० ८ २ - ८०० दिन् हो अर्थ के

### श्रव्यक्तानुकरणादृद्वयजवराद्वीद्नितौ डाच् ॥⊏६१॥ अ०५।४।५७॥

यहां क भू और अस्ति धातुओं के योग की अनुवृत्ति आती है। जिस ध्विन में अकारादि वर्ण पृथक् २ स्पष्ट नहीं जाने जाते उसको 'अव्यक्त' शब्द कहते हैं। उसी शब्द के अनुसार जो जनाया जावे कि वह अव्यक्त शब्द ऐसा हुआ, उसको 'अव्यक्तानुकरण' कहते हैं।

इति शब्द जिससे परे न हो, श्रौर जिसके एक श्रर्द्धभाग में दो श्रच् हों, ऐसे श्रव्य-कानुकरण प्रातिपदिक से क भू श्रौर श्रस् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होते। जैसे— पटपटा करोति; पटपटा भवति; पटपटा स्यात्, दमदमा करोति; दमदमा भवति; दमदमा स्यात्, बलबला करोति; बलबला भवति; वलबला स्यात् इत्यादि।

यहां 'अव्यक्तानुकरण' प्रहण इसिलये हैं कि — हषत्करोति, दरत्करोति इत्यादि में डाच् प्रत्यय न हो। 'द्वर्यजवरार्ज्ञ' ग्रहण इसिलये हैं कि — अत्करोति, यहां प्रकाच् में न हो। श्रीर 'श्रवर' शब्द का ग्रहण इसिलये हैं कि — खरट खरट करोति, यहां श्रर्ज्ञ-भाग में तीन श्रच् हैं, इससे डाच् प्रत्यय नहीं होता। श्रीर 'इतिपरक का निषेध' इसिलये हैं कि — पटिति करोति, यहां इति शब्द के परे डाच् प्रत्यय न हो।

(डाचि बहुलं द्वे भवतः) इस वार्त्तिक में विषयसप्तमी मान के डाच् प्रत्यय के होने की वियत्ता में ही द्विवंचन हो जाता है, पश्चात् डाच् प्रत्यय होता है। जो कदाचित् ऐसा न सममें तो जिसके अवर अर्द्धभाग में दो अच् हों, यह कहना ही न बने। डाच् प्रत्यय में डकार का लोप होकर डित् मान के टिलोप और चकार अनुबन्ध से अन्तोदात्तस्वर होता है। दिश् ॥

कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्कृषी ॥८६२॥ अ०५।४।५८॥ यहां कृज् धातु का प्रहण् भू और अस् धातु की निवृत्ति के लिये है। द्वितीय तृतीय शम्ब श्रौर बीज प्रातिपिद्क से खेती श्रर्थ श्रिमधेय हो, तो कुञ् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होवे। जैसे—द्वितीया करोति, दूसरी वार खेत को जोतता है; तृतीया करोति, तीसरी वार जोतता है; शम्बा करोति, सीधा जोत के फिर तिरछा जोतता है; बीजा करोति, बीज बोने के साथ ही जोतता है।

यहां 'कृषि' प्रहण इसलिये है कि-द्वितीयं करोति पादम्, यहां डाच् प्रत्यय न होवे ॥८६२॥

#### संख्यायाश्च गुगान्तायाः ॥ ८६३ ॥ अ० ५ । ४ । ५६ ॥

यहां कुञ् धातु और कृषि अर्थ दोनों की अनुवृत्ति चली आती है।

गुण शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे संख्यावाची प्रातिपदिक से कृषि अर्थ में कृ धातु के योग में डाच् प्रत्यय हो। जैस्डे—द्विगुणं विलेखनं दोत्रस्य करोति द्विगुणा करोति दोत्रम्; त्रिगुणा करोति इत्यादि।

यहां 'कृषि' ग्रहण इसिलिये हैं कि — द्विगुणां करोति रज्जुम्, यहां डाच् प्रत्यय न हो। पूर्व सूत्र में द्वितीय तृतीय शब्दों के साथ इस सूत्र का शब्दभेद ही ज्ञात होता है, अर्थभेद नहीं ॥ ८६३॥

### समयाच्च यापनायाम् ॥ ८६४ ॥ ऋ० ५ । ४ । ६० ॥

यहां कृषि की अनुवृत्ति नहीं आती, परन्तु कृञ् धातु की चली आती है।

करने योग्य कर्मों के अवसर मिलने को 'समय' कहते हैं, उस समय के यापना= अतिक्रमण अर्थ में समय शब्द से कुञ् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होवे। जैसे— समया करोति, कालचेप करता है।

यहां 'यापना' प्रहण इसिलिये है कि - समयं करोति मेघ:, यहां डाच् प्रत्यय न हो ॥८६४॥

#### मद्रात्परिवापसे ॥ ८६५ ॥ अ० ५ । ४ । ६७ ॥

मङ्गलवाची मद्र शब्द से परिवापण=मुग्डन ऋर्थ में कुञ् श्वातु का योग होवे, तो डाच् प्रत्यय हो। [ जैसे— ] मङ्गलं मुग्डनं करोति मद्राकरोति।

यहां 'परिवापण' इसिवये कहा है कि-मद्रं करोति, यहां डाच् प्रत्यय न हो ॥८६४॥

#### वा०-भद्राच्च ॥ ८६६ ॥

भद्र शब्द से भी परिवापण अर्थ में कुञ्धातु का योग हो, तो डाच् प्रत्यय हो। जैसे—भद्रा करोति नापितः कुमारम्।

यहां भी परिवापण अर्थ से पृथक् — भद्रं करोति, यही प्रयोग होता है ॥ ८६६ ॥

—इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥

[ इति पञ्चमाध्यायः समाप्तः ॥ ]

## नस्ति छिते ॥ ८६७ ॥ अ० ६ । ४ । १४४ ॥

ति तिसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो नकारान्त भसंज्ञक श्रङ्ग के टिभाग का लोप होवे। जैसे श्रिश्चमर्मेणोऽपत्यमाग्निशिमीः; श्रीडुलोमिः इत्यादि, यहां श्रिश्चशम्मेन् श्रादि शब्दों का बाह्मदिगण में पाठ होने से इञ् प्रत्यय हुआ है।

यहां 'नान्त' का प्रहृण इसिंखये हैं कि—सात्वतः, यहां तकारान्त के दिभाग का लोप न होवे। श्रीर 'ति द्वित' प्रहृण इसिंखये हैं कि—शर्मिणा, शर्मिणे इत्यादि प्रयोगों में लोप न हो॥ ८६७॥

## वा०-नांतस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापिकौथुमितैतिलिजाज-लिलाङ्गलिशिलालिशिखगिडसूकरसद्मसुपर्वणासुपसंख्यानम्।८६८।

यहां इन्नन्त और श्रन्नन्त शब्दों में श्रागामी सूत्रों से प्रकृतिभाव प्राप्त है, उसका पुरस्तात् श्रपवाद यह वार्त्तिक है।

ति प्रत्ययों के परे सब्रह्मचारिन् आदि भसंद्यक नकारान्त प्रातिपदिकों के टिभाग का लोप होवे। जैसे—सब्रह्मचारिण इमे छात्राः सब्रह्मचाराः—यहां सम्बन्धसामान्य में श्रीषिक अण् प्रत्यय हुआ है; पीठसर्पिण इमे छात्राः पैठसप्पाः—यहां भी पूर्व के समान अण्, कलापिना प्रोक्तमधीयते कालापाः—यहां (कलापिनोऽण्) इस स्व से प्रोक्त अर्थ में अण्, कौश्रुमिना प्रोक्तमधीयते कौश्रुमाः—यहां भी पूर्ववत् अण् जानो।

तैतिलिनामकं प्रन्थमधीयते विदुर्वा तैतिलाः, जाजलाः, लाङ्गलाः, शैलालाः, शैलएडाः, स्करस्वाना प्रोक्तमधीयते सौकरसद्माः, सुपर्वणा प्रोक्तमधीयते सौपर्वाः—यहां तैतिलि आदि प्रन्थवाची शब्दों से शैषिक प्रोक्त अर्थ में वृद्ध होने से छ प्रत्यय प्राप्त है, इसलिये अधीत वेद अर्थ में अण् समझना चाहिये। और स्करसद्मन् तथा सुपर्वन् शब्दों से वृद्धसंज्ञा के न होने से प्रोक्तार्थ अण् प्रत्यय होता है। ८६८॥

## वा०-चर्मगाः कोश उपसंख्यानम् ॥ ८६६ ॥

कोश=तलवार का घर अर्थ हो, तो तद्धितसंज्ञक प्रत्ययों के परे होते चर्मन् शब्द के टिभाग का लोप होवे। जैसे—चर्माणो विकार: कोश: चार्म: कोश:।

जहां कोश अर्थ न हो वहां — चार्मेण:, प्रयोग होगा ॥ ८६६ ॥

## वा०-अश्मनो विकार उपसंख्यानम् ॥ ८७० ॥

विकार अर्थ में तद्धित प्रत्यय परे हों, तो पाषाणवाची अश्मन् शब्द के टिभाग का लोप हो। जैसे—अश्मनो विकार आश्मः।

जहां विकार श्रर्थ न हो वहां — श्राश्मनः, ऐसा ही रहे ॥ ८७० ॥

## वा॰-श्रुनः संकोच उपसंख्यानम् ॥ ८७१ ॥

कुत्ते के वाची श्वन् शब्द के टिभाग का लोप हो, संकोच अर्थ अभिधेय रहे तो। [ जैसे— ] संकुचितः श्वा शौवः। इस श्वन् शब्द का द्वारादिगण में पाठ होने से वकार से पूर्व ऐच् का आगम हो जाता है।

श्रीर संकोच श्रर्थ से अन्यत्र - शौवनः, ऐसा ही प्रयोग होगा ॥ ८७१ ॥

## वा०-ग्रव्ययानां च सायम्प्रातिकाद्यर्थम् ॥ ८७२॥

तिद्धितसंज्ञक ।प्रत्ययों के परे सायम्प्रातिक आदि शब्दों के सिद्ध होने के लिये भसंज्ञक अव्यय शब्दों के टिभाग का भी लोप कहना च।हिये। जैसे—सायम्प्रातर्भवः सायम्प्रातिकः; पौनःपुनिकः इत्यादि।

यहां द्वन्द्रसंज्ञक अव्ययों से ठज् होता है। शास्त्रतिक शब्द में निपातन मान के टिलोप नहीं होता। (येषां च विरोध: शास्त्रतिक:) जिन अव्यय शब्दों में अविहित टिलोप दीखता है, वहां वैसे ही अव्ययों में समस्त्रना चाहिये। क्योंकि शास्त्रतम् इत्यादि में द्वन्द्व किये अव्यय ग्रोर ठज् प्रत्यय दोनों ही नहीं, इससे लोप नहीं होता॥ ८७२॥

#### अह्नष्टखोरेन ॥ ८७३ ॥ अ०६ । ४ । १४५ ॥

यह सूत्र निवमार्थ है। ट श्रोर ख इन्हों दोनों प्रत्ययों के परे श्रहन् शब्द के टिभाग का लोप होने, श्रम्यत्र प्रकृतिभाव ही हो जाने। जैसे—द्रे श्रहनी समाहते द्वचहः; ज्यहः, यहां समासान्त टच् प्रत्यय हुश्रा है; द्वे श्रहनी श्रधीष्टो भृतो भूतो भावी वा द्वचहीनः; ज्यहीनः; श्रह्मं समूहोऽहीनः कृतः।

यहां 'टिंलोप' का नियम इसिंखये हैं कि — श्रद्धा निर्मृत्तमाद्धिकम्, यहां नियम के होने से टिलोप न होने ॥ ८७३॥

#### ओर्गुणः ॥ ८७४ ॥ अ० ६ । ४ । १४६ ॥

तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो उवर्णान्त भसंज्ञक प्रातिपदिकों को गुण होवे। जैसे—बभ्रोगींत्रापत्यं बाभ्रव्यः, माएडव्यः, शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु, पिचव्यः कार्पासः, कमएडलव्या मृत्तिका, परश्रव्यमयः, श्रोपगवः, कापटवः इत्यादि।

पूर्वितिकत ति तित्रत्ययिश्वान प्रकरण में सर्वत्र गुण तथा अन्य कार्य जो २ यहां कहें, समक्षने चाहियें। श्रोर इस सूत्र को इसी प्रन्थ के ३२ पृष्ठ में भी लिख चुके हैं, परन्तु विशेष व्याख्यानार्थ यहां लिखना आवश्यक समक्षा गया॥ ८९४॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

## ढे लापोऽकड्वाः ॥ ८७५ ॥ अ०६ । ४ । १४७ ॥

तिखतसंज्ञक ढ प्रत्यय परे हो, तो कद्र शब्द को छोड़ के भसंज्ञक प्रातिपदिक के उवर्ण का लोप होवे। जैसे—कमएडल्वा अपत्यं कामएडलेय:; शैतिवाहेय:; जाम्बेय:; माद्रवाहेय: इत्यादि।

यहां 'कद्र शब्द का निषेध' इसलिये हैं कि—काद्रवेय ऋषि, यहां लोप न हो, किन्तु पूर्व सूत्र से गुण हो जावे। श्रोर यह लोप गुण का ही श्रपवाद है। प्रथ्र॥

## यस्येति च ॥ ८७६ ॥ अ० ६ । ४ । १४८ ॥

यहां तद्धित की अजुवृत्ति के लिये चकार पढ़ा है।

तिद्धतसंज्ञक श्रीर ईकार प्रत्यय परे हों, तो इवर्णान्त श्रवर्णान्त भसंज्ञक प्रातिपदिक का लोप हो। जैसे—इवर्णान्त का लोप ईकार के परे—दत्तस्यापत्यं स्त्री दान्ती; सान्ती इत्यादि।

यहां जो सवर्णदीर्घ एकादेश मान लेवें तो—हे दाचि, यहां सवर्णदीर्घ एकादेश वर्णकार्य से सम्बुद्धि में हस्व होना अङ्गकार्य वत्तवान् होने से प्रथम हो जाता है, फिर जो लोप न कहें तो पीछे सवर्णदीर्घ एकादेश होकर सम्बुद्धि में भी दीर्घ ईकार बना रहे। इसिलये ईकार प्रत्यय के परे इवर्णन्त का लोप कहा है।

इवर्णान्त का लोप तद्धितप्रत्ययों के परे—दुल्या श्रपत्यं दौक्षेयः; विल्व—वालेयः; श्रित्र—श्रात्रेयः इत्यादि । श्रवर्णान्त का लोप ईकार प्रत्यय के परे—कुमारी; किशोरी; गौरी; जानपदी इत्यादि । तद्धितप्रत्यय के परे—दािन्नः; प्रान्तिः; बलाकाया श्रपत्यं वालािकः; सुमित्राया श्रपत्यं संभि।त्रः इत्यादि ।

यहां सर्वत्र लोप को आदेश मान के अन्त्य अल् इवर्ण ओर उवर्ण का लोप होता है। यह भी सूत्र (ओर्गुण:) इसी के समीप पूर्व लिख चुके हैं, परन्तु उसी का सा लिखना इसका भी जानो ॥ ८% ॥

## वा०-यस्येत्यादौ श्यां प्रतिषेधः ॥ ८७७ ॥

(यस्पेति च) इत्यादि सूत्रों में श्रो विभक्ति के स्थान में जो श्री श्रादेश होता है, उस ईकार के परे इवर्ण श्रवर्ण के लोप का निषेध करना चाहिये। जैसे — काएडे; सुक्ने, यहां जब नपुंसक काएड श्रोर श्रद्ध शब्दों से परे श्रो के स्थान में शी हो जाता है, तब श्रवर्ण का लोप प्राप्त है, सो न हो।

श्रीर—कुडचे; सीर्ये, यहां भी पूर्व के समान श्रवर्ण का लोप श्रीर श्रागामी सूत्र से उपधासंद्रक यकार का लोप प्राप्त है, सो न होवे।

जैसे श्रियों; श्रियः; भ्रुवों; भ्रुवः इत्यादि में इयङ् उवङ् श्रादेश होते हैं, वैसे ही— वत्सान् प्रीणातीति वत्सप्रीः, लेखाभ्रः, तस्या त्रपत्यं वात्सप्रयः; लेखाभ्रेयः इत्यादि में भी इयङ् उवङ् श्रादेश प्राप्त हैं, परन्तु परविप्रतिषेध मान के इवर्ण उवर्ण का लोप हो जाता है ॥ ८७७ ॥

सूर्यितिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः ॥८७८॥ अ० ६।४।१४६॥

ति विस्त स्रोर ईकार प्रत्यय परे हो, तो सूर्य, तिष्य, स्रगस्त्य स्रोर मत्स्य शब्दों के उपधामूत भसंद्रक यकार का लोप हो जावे। स्रोर स्रवर्ण का लोप तो पूर्वसूत्र से हो ही जाता है।

जैसे—सूर्येण एकदिक् सौरी वलाका, यहां उपधाप्रहण् ज्ञापक से अवर्ण का लोप असिद्ध नहीं समका जाता; तिष्येण युक्तः कालः तैषमहः; तेषी रात्री; अगस्त्यस्यापत्यं कन्या—इस विग्रह में ऋषिवाची अगस्त्य शब्द से अण् प्रत्यय हो जाता है=आगस्ती; आगस्तीयः। मत्स्य शब्द के गौरादि गण् में होने से ङीष् हो जाता है=मत्सी।

'उपधा' प्रहण इसिलये है कि —सूर्यचरी, यहां सूरी शब्द से भूतपूर्व अर्थ में चरट् प्रत्यय के परे पुंचद्भाव हुआ है। स्थानियत् मान के यकार का लोप प्राप्त है, उपधा के न होने से नहीं होता, इत्यादि॥ ८७८॥

### वा०-मत्स्यस्य ङ्याम् ॥ ८७६ ॥

डीव् प्रत्यय के परे ही मत्स्य शब्द के उपधा यकार का लोप हो, अन्यत्र नहीं। जैसे — मत्सी। नियम होने से — मत्स्यस्य विकारो मात्स्यं मांसम्, यहां न हो॥ ८७६॥

## वा०-सूर्यागस्त्ययोश्छे च ॥ ८८० ॥

छु स्रोर ङीप् ङीव् प्रत्यय के परे ही सूर्य्य स्रोर स्रगस्त्य शब्दों के यकार का लोप हो। जैसे—सौरीयः, सौरी; स्रागस्तीयः, स्रागस्ती।

नियम होने से—सुर्यो देवताऽस्य सौर्यं हिवः; श्रगस्त्यस्य गोत्रापत्यमागस्त्यः, यहां न होवे ॥ ८८० ॥

## वा०-तिष्यपुष्ययोर्नचत्राणि ॥ ८८१ ॥

यहां स्वरूपप्रहणुपरिभाषा का आश्रय इसिलये नहीं होता जिसिलये वार्त्तिक पढ़ा है। अर्थात् स्वरूपप्रहण के न होने में वार्त्तिक झापक है।

ति वित्रसंज्ञक ग्रीर ईकार प्रत्यय परे हो, तो तिष्य ग्रीर पुष्य शब्दों के उपधा यकार का कोप होते, ग्रन्य पर्यायवाची का नहीं। जैसे—तिष्यनत्त्रत्रेण युक्तः कालः तैषः, पोषः।

नियम इसलिये है कि—सैध्यः, यहां लोप न हो ॥ ८८१ ॥

## वा०-अन्तिकस्य तिस कादिलोपश्चायुदात्तश्च ॥ ८८२ ॥

्त्रन्तिक शब्द से तिस प्रत्यय परे हो, तो कादि—स्वरसहित ककार—का लोप और आयुदात्तस्वर होवे। जैसे—अन्तितो न दूरात्।

तिस प्रत्यय को प्रत्ययस्वर होने से अन्तोदात्त होता, इसिलये आद्युदात्त कहा है।
और अन्तिक शब्द से अपादान कारक में असि प्रत्यय होता है।। ८८२।।

#### वा०-तमे तादेश्व ॥ ८८३ ॥

यहां चकार प्रहण से कादि की भी अनुवृत्ति आती है।

तम प्रत्यय परे हो, तो अन्तिक शब्द तादि—तिक—भाग तथा कादि—क—मात्र का लोप होने। जैसे—अतिशयेनान्तिकम् अन्तमः; अन्तिमः; अग्ने त्वन्नो अन्तमः; अन्तितमे अवरोहति।

यद्यपि इस वार्त्तिक में छुन्दोग्रहण नहीं किया, तथापि वैदिक प्रयोगों में ही बहुधा इसकी प्रवृत्ति दील पड़ती है। इससे पूर्व वार्त्तिक में जो तिस प्रत्यय का प्रहण है, उसकी महामाध्यकार ने उपेचा की है कि —'ग्रान्तिक सीदित ग्रान्तिषत्' इत्यादि प्रयोगों में भी कादिलोप हो जावे॥ प्रदर्श।

#### हलस्तद्धितस्य ॥ ८८४ ॥ अ० ६ । ४ । १५० ॥

हल् से परे जो ति दितसंक्षक प्रत्यय का उपधा यकार, उसका लोप होवे, ईकार प्रत्यय परे हो तो। जैसे -गर्गस्यापत्यं कन्या गार्गी; वात्सी; शाकली इत्यादि।

यहां 'इल्' प्रहण इसलिये है कि—वैद्यस्य स्त्री वैद्यी, यहां भी यकार का लोप न हो ॥ ८८४ ॥

### श्रापत्यस्य च तद्धिते ऽनाति ॥ ८८५ ॥ अ०६ । ४ । १५१ ॥

आकार जिसके आदि में न हो ऐसा तिद्धतसंद्धक प्रत्यय परे हो, तो हल् से परे अपत्याधिकारस्थ प्रत्यय के उपधा यकार का लोप होवे।

श्रीर इस सूत्र में फिर 'तद्धित' श्रहण से यह भी समक्ता चाहिये कि ईकार प्रत्यय परे हो, तो श्रपत्यसंद्रक से भिन्न यकार का भी लोप हो जाता है। जैसे—गर्गाणां समूहो गार्गकम्, वात्सकम्, सोमो देवताऽस्य सोम्यं हवि:, सोमी इष्टि:।

'आपत्य' प्रहण इसिलये हैं कि सांकाश्यकः, काम्पिल्यकः, यहां लोप न हो। 'आकारादि का निषेध' इसिलये हैं कि गार्ग्यायणः, वात्स्यायनः, यहां लोप न हो। श्रोर 'हल् से परे' इसिलये कहा है कि कारिकेयस्य युवापत्यं कारिकेयिः, यहां भी लोप न होवे ॥ प्रत्रे ॥

## क्यच्ठ्योश्च ॥ ८८६॥ अ०६। ४। १५२॥

क्य और ध्वि प्रत्यय परे हों, तो भी हल से परे श्रपत्यसंज्ञक यकार का लोप होवे। जैसे—गार्ग्य इवाचरित गार्गीयित; वात्स्य इवाचरित वात्सीयित; शाकलीयित; गार्गीयते; वात्सीयते; शाकलीयते इत्यादि। चित्र प्रत्यय के परे—गार्गीभूतः; वात्सीभूतः; शाकली-भूतः इत्यादि।

यहां अपत्यसंश्वक 'यकार' का प्रहण इसिलये है कि — सांकाश्यायते; सांकाश्यीभृतः, यहां लोप न हो। और 'हल् से परे' इसिलये कहा है कि — कारिकेयीयति; कारिकेयीभृतः, यहां भी यकार का लोप न होवे ॥ द्रद्ध ॥

## बिल्वकादिभ्यश्बस्य लुक् ॥ ८८७ ॥ अ० ६ । ४ । १५३ ॥

(नडादीनां कुक्च) इस सूत्र पर नडादिगण के अन्तर्गत बिल्वादि शब्द पढ़े हैं। उनको कुक्का आगम होने से बिल्वक आदि होते हैं।

बिल्वक ग्रादि शब्दों से परे छ प्रत्यय का लुक् हो, तद्धितसंद्धक प्रत्यय परे हों तो। जैसे—बिल्वा ग्रस्यां सन्तीति बिल्वकीया—तस्यां भवाः बैल्वकाः, वेशुकीयाः—वैश्वकाः वेत्रकीयाः—वैश्वकाः इत्यदि।

यहां 'छ' प्रत्यय का ग्रहण इसिलये है कि—कुक् आगम का लुक् न होने। अर्थात् (सिन्नयोगशिष्टानां०) इस परिभाषा से कुगागम के सिहत लुक् प्राप्त है, सो न हो। और लोप की अनुवृत्ति चली आती है, किर 'लुक्' ग्रहण इसिलये किया है कि—संपूर्ण प्रत्यय का लोप हो जाने। लुक् न कहते तो अन्त्य अल् के स्थान में होता ॥८८७॥

### तुरिष्टेमेयस्यु ॥ ८८८ ॥ अ०६।४।१५४॥

पूर्व से यहां लुक, की अनुवृत्ति नहीं आती, किन्तु लोप की आती है। लुक होने से अङ्गकार्य्य गुण का निषेध प्राप्त है। जो अन्त्य का लोप होने, तो सूत्र ही न्यर्थ होने, क्योंकि टि भाग का लोप तो अगले सूत्र से हो ही जाता।

इष्ठन्, इमिन् श्रोर ईयसुन् ये तिस्तिसंश्वक प्रत्यय परे हों, तो तृच् तृन् प्रत्ययान्त शब्दों का लुक् होवे। प्रत्ययमात्र का लुक् कहा है, इसिनये सब का हो जाता है। जैसे—श्रतिशयेन कर्त्ता करिष्ठः; भृशं विजेता विजयिष्ठः; वोढा विहिष्ठो वृषभः; दोहीयसी घेतुः इत्यादि। यहां इमिनच् प्रहण् उत्तरार्थं है॥ प्रद्रा

#### हेः ॥ ८८६ ॥ अ०६ । ४ । १५५ ॥

इष्टन्, इमनिज् श्रीर ईयसुन् प्रत्ययं परे हों, तो भसंझक श्रङ्गों के टिमाग का लोप होवे। जैसे—श्रतिशयेन पदुः पटिष्ठः; लिघष्ठः; पटीयान्; लघीयान्; पटिमा; लिघमा इत्यादि। यह लोप ग्रुण का श्रपवाद उवर्णान्त शब्दों में समस्रना चाहिये। श्रर्थात् ग्रुण की प्राप्ति में लोपविधान किया है॥ ८८६॥

## वा०-णाविष्ठवत्प्रातिपदिकस्य पुंवद्भावरभावटिलोपयणादिपरप्रादि-विन्मतोर्लकान्वध्यर्थम् ॥ ८६० ॥

णिच् प्रत्यय के परे भसंज्ञक प्रातिपदिकमात्र को इष्ठवत् कार्न्य होवे, प्रयोजन यह है कि पुंचञ्जाव, रभाव, टिलोप, यणादिपर, प्रादि आदेश, विन्मतोर्ज्जक्, और कन् प्रत्यय, ये विधि होने के लिये यह वार्त्तिक कहा है।

जैसे — पुंचद्भाव — पनीमाच छे पतयित; श्येनीमाच छे श्येतयित । इष्ठन् प्रत्यय के परे पुंचद्भाव कहा है, वैसे ही यहां णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है। इसी प्रकार सब कार्य जो इष्ठन् के परे होते हैं, वे णिच् प्रत्यय के परे भी समसना चाहिये।

रभाव—पृथुमाचष्टे, प्रथयति; झदयति। यहां (रऋतो०) इस आगामी सूत्र से इष्टन् के परे ऋकार को र आदेश कहा है, सो णिच् के परे भी होजाता है।

टिलोप—पदुमाचष्टे पटयति; लघुमाचष्टे लघयति। यहां इसी (टै:) सूत्रं से जो इष्टन् प्रत्यय के परे टिलोप कहा है, वह णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है।

यणादिपर—स्थूलमाचष्टे स्थवयित; दूरमाचष्टे ववयित इत्यादि । यहां अगले सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय के परे यण् को आदि लेके परभाग का लोप और पूर्व को गुणादेश कहा है, सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है।

प्रादि—अगले सूत्र से इष्टन् प्रत्यय के परे प्रिय आदि शब्दों को प्र आदि आदेश कहे हैं, सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावें। जैसे—प्रियमाचष्टे प्रापयित; स्थिरमाचष्टे, स्थापयित। यहां प्रिय और स्थिर शब्दों को प्र, स्थ आदेश होकर (अचोऽ बिल्ति) सूत्र में अच् प्रहण के होने से प्र, स्थ को वृद्धि होकर पुगागम हो जाता है।

विन्मतोर्जु क्—इस सूत्र से इष्टन् प्रत्यय के परे विन् श्रोर मतुप् प्रत्ययों का लुक् कहा है, सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावे। जैसे—स्विणमाच्छे स्वजयितः वसुमन्तमाच्छे वसयित। यहां वसु शब्द के उकार का भी लोप हो जाता है।

किन्विधि — युव और अल्प शब्दों को इष्ठन् प्रत्यय के परे कन् आदेश कह चुके हैं, सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावे। जैसे – युवानमाच हे — अल्पमाच हे कनयति; यवयति; अल्पयति इत्यादि।

इस वार्त्तिक के उदाहरणों की गिनती नहीं करदी कि इतने ही खलों में इस का प्रयोजन है, किन्तु उदाहरणमात्र दिये हैं। और भी इसके बहुत प्रयोजन समभने चाहियें॥ ८६०॥

## स्थूलदृरयुवह्नस्विष्ठज्जुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ॥८६१॥ अ०६।४।१५६॥

इष्टन्, इमनिच् झौर ईयसुन् प्रत्यय परे हों, तो स्थूल, दूर युव, हस्व, चिप्र और जुद्र शब्दों के यण् को आदि ले के परभाग का लोप और पूर्व को गुणादेश होने।

जैसे—झितश्येन स्थूलः स्थिवष्ठः; स्थवीयान्; श्रत्यन्तं दूरं दिवष्ठम्; द्वीयः। यहां स्थूल शब्द में ल झीर दूर में र मात्र का लोप होजाता, झीर पूर्व ऊकार को गुण होकर अवादेश होता है। युवन्—श्रत्यन्तो युवा यवीयान्; यविष्ठः। इन स्थूल श्रादि तीन शब्दों का पृथ्वादि गण में पाठ न क्षोने से इमनिच् प्रत्यय नहीं होता।

हस्य—हसिष्ठः; हसीयान्। हसिमा। चित्र—च्लेपिष्ठः; च्लेपीयान्। च्लेपिमाः, च्लोदिष्ठः; च्लेपीयान्। च्लेपिमाः, च्लोदिष्ठः; च्लोदीयान्। च्लोदिमा। इन हस्य आदि तीन शब्दों का पृथ्वादिगण् में पाठ होने से इमनिच् हो जाता है।

यहां 'पर' ग्रह्ण इसिलिये किया है कि —यण् को आदि लेके पूर्वभाग का लोप न

## प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुबृद्धतृप्रदीर्घबृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहि-गर्विषित्रब्द्राघिवृन्दाः ॥ ८९२ ॥ अ० ६ । ४ । १५७ ॥

प्रिय, स्थिर, हिफर, उठ, बहुल, गुठ, वृद्ध, तुप्र, दीर्घ श्रीर वृन्दारक शब्दों के स्थान
में प्र, स्थ, स्फ, बर्, बंहि, गर्, वर्षि, त्रप्, द्राधि श्रीर वृन्द श्रादेश यथासंख्य करके होवें,
इष्टन, इमनिच् श्रीर ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो।

जैसे — प्रिय — प्रातिशयेन प्रियः प्रेष्ठः; प्रेयानः प्रियस्य भावः प्रेमा । स्थिर — स्थेष्ठः; स्थेयान् । स्फिर — स्फिष्ठः; स्फेयान् । उठ — वर् — वरिष्ठः; वरीयानः वरिमा । वृद्ध — वर्षि — वर्षिष्ठः; वंदीयानः वंदिमा । गुरु — गर् — गर् — गरिष्ठः; गरीयानः गरिमा । वृद्ध — वर्षि — वर्षिष्ठः; वर्षीयानः । वृप्य — प्रपष्ठः प्रियानः । दीर्घ — द्राघि — द्राघिष्ठः; द्राघीयानः द्राघिमा । वृन्दारक — वृन्द — वृन्दिष्ठः; वृन्दीयानः ।

प्रिय उद गुरु बहुत और दीर्घ शब्द पृथ्वादि गए में पढ़े हैं, इस कारण उनसे इमनिच् प्रत्यय होता है, औरों से नहीं होता। इसीतिये उनसे इमनिच् प्रत्यय के उदाहरण भी नहीं दिये॥ बध्द ॥

#### बहार्लोपो भू च बहोः ॥ ८६३ ॥ अ० ६ । ४ । १५८ ॥

बहु शब्द से परे जो इष्टन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय उनका लोप हो, और बहु शब्द को भू आदेश होने। भू अनेकाल् आदेश होने से सब के स्थान में होजाता है। और (आदे: परस्य) इस परिभाषा सूत्र से पश्चमीनिर्दिए बहु शब्द से उत्तर को कहा लोपरूप आदेश आदि अल् के स्थान में होता है। जैसे—अतिशयेन बहु: भूयान्; भूयांसी; भूयांस:; वहोर्भाव: भूमा। बहु शब्द पृथ्वादिगण में पढ़ा है।

त्रीर इस सुत्र में बहु शब्द का दूसरी बार प्रहण इसलिये है कि — प्रत्ययों के स्थान में भू आदेश न हो जावे ॥ ८६३ ॥

इष्टन् प्रत्यय में विशेष यह है कि-

1

## इष्टस्य यिट् च ॥ ८६४ ॥ अ०६ । ४ । १५६ ॥

बहु शब्द से परे जो इष्ठन् प्रत्यय, उसको थिट् का आगम और बहु शब्द को भू आदेश भी होवे। जैसे—अतिशयेन बहु: भूथिष्ठ:। यिट् में से इट् मात्र का लोप हो जाता है। और यह आगम लोप का अपवाद है॥ ८१४॥

#### ज्यादादीयसः ॥ ८९५ ॥ अ० ६ । ४ । १६० ॥

प्रशस्य और वृद्ध शब्द को जो ज्य आदेश कह चुके हैं, उससे परे ईयसुन् प्रत्यय के ईकार को आकारादेश होवे। जैसे — अतिशयेन प्रशस्यो वृद्धो वा ज्यायान्।

लोप की श्रतुवृत्ति यहां चली श्राती, तो श्राकार।देश कहना नहीं पड़ता, फिर बीच में यिडागम का व्यवधान होने से नहीं श्रा सकती ॥ ८६४ ॥

### र ऋतो हलादेर्लघोः ॥ ८६६ ॥ अ० ६ । ४ । १६१ ॥

इष्ठन्, इमनिच् श्रीर ईयसुन् प्रत्यय परे हों, तो हल् जिसके श्रादि में हो पेसे लघु-संज्ञक हस्त भ्राकार के स्थान में र श्रादेश हो। जैसे—श्रतिशयेन पृथुः प्रथिष्ठः; प्रथीयान्। पृथोर्भावः प्रथिमा; स्रदिष्ठः; स्रदीयान्; स्रहिमा इत्यादि।

यहां 'ऋकार' का प्रहण इसिलये है कि — पिटेष्ठः; पटीयान्; पटिमा, यहां र आदेश न हो। 'हल् आदि में' इसिलये कहा है कि — अतिशयेन ऋजुः ऋजिष्ठः; ऋजीयान्। ऋजिमा, यहां न हो। और 'लघुसंद्रक' विशेषण इसिलये दिया है कि — कृष्णिष्ठः; कुष्णीयान्; कृष्णिमा, यहां गुरुसंद्रक ऋकार को र आदेश न होने ॥ ८६६॥

### वा०-पृथुमृदुभृशकृश्दृढपरिवृद्धानामिति वक्तव्यम् ॥ ८६७॥

इस वार्त्तिक से परिगणन करते हैं कि पृथु, सृदु, भृश, कृश, दढ श्रोर परिवृद्ध शब्दों के ऋकार को ही र श्रादेश हो, दूसरों को नहीं।

इस नियम के होने से—कृतमाचष्टे कृतयित; मातरमाचष्टे मातयित; भ्रातयित इत्यादि में ऋ के स्थान में र आदेश नहीं होता ॥ ८६७ ॥

## विभाषजोर्द्यन्द्सि ॥ ८६८ ॥ अ० ६ । ४ । १६२ ॥

यहां अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि ऋजु शब्द के ऋकार को किसी से र आदेश प्राप्त नहीं है।

इष्टन्, इमनिच् श्रीर ईयसुन् प्रत्यय परे हो, तो वेदविषय में ऋजु शब्द के ऋकार को विकल्प करके र श्रादेश होवे। जैसे —श्रतिशयेन ऋजु: रजिष्टः, ऋजिष्टो वा पन्थाः, रजीयान्, ऋजीयान्। ऋजुमाचष्टे ऋजयित इत्यादि॥ ८६८॥

प्रकृत्येकाच् ॥ ८६६ ॥ अ०६ । ४ । १६३ ॥

इन्डन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हो, तो भसंद्यक एकाच् जो शब्द है, वह प्रकृति करके रहे। जैसे—श्रतिशयेन स्रवी स्रजिन्डः, स्रजीयान्; स्रविष्णमाच हे स्रजयितः, श्रतिशयेन स्रुग्धान् स्रुचिन्डः, स्रुचीयान्, स्रुग्धन्तमाच हे स्रुचयित।

यहां भ्रजादि प्रत्ययों के परे विन् श्रीर प्रतुप् का लुक् होने के पश्चात् एकाच् शब्दों के टिमाग का लोप प्राप्त है, सो प्रकृतिभाव के होने से नहीं होता । श्रीर टिलोप का ही श्रपवाद यह सूत्र है।

यहां 'एकाच्' प्रहण इसिलये है कि—ग्रतिशयेन बसुमान् वसिष्ठः, यहां प्रकृतिभाव न होवे, किन्तु टिलोप ही होजावे ॥ ८६६ ॥

वा०-प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवानः ॥ ६००॥

श्रक् प्रत्यय परे हो, तो राजन्य मनुष्य श्रीर युवन् शब्द प्रकृति कश्के रह जावें। जैसे—राजन्यानां समूहो राजन्यकम्; मानुष्यकम्, यहां (श्रापत्यस्य च ति हतेऽनाति) इस लिखित सुत्र से यकार का लोप प्राप्त है, सो न होवे।

यूनो भाव: यौवनिका, यहां इस युवन् शब्द का मनोक्कादिगण में पाठ होने से वुञ् प्रत्यय हुआ है, उस के नांत टिभाग का लोप प्राप्त है, सो नहीं होता ॥ ६०० ॥

## इनग्यनपत्ये ॥ ६०१ ॥ अ० ६ । ४ । १६४ ॥

ः अपत्यरद्वित अर्थों में अण् प्रत्यय परे हो, तो भसंश्वक इन्नन्त अङ्ग प्रकृति करके रह जावे । जैसे—संकूटिनम्; सांरावणम्; सांमार्जिनम्; स्रग्विण इदं स्राग्विणम् इत्यादि ।

यहां 'श्रम्' प्रत्यय का ग्रह्ण इसिलये है कि - द्रिडनां समूहो द्राएडम्, यहां श्रञ् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव न होवे। श्रोर 'श्रपत्य का निषेध' इसिलये है कि—मेधा-विनोऽपत्यं मैधावः, यहां भी प्रकृतिभाव न होवे॥ ६०१॥

#### गाथिविद्धिकेशिगागिपागिनश्च ।। ६०२ ।। अ०६ । ४ । १६५ ।। यह सूत्र अपत्यसंज्ञक अण् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव होने के लिये हैं।

अपत्यसंज्ञक अण् प्रत्यय परे हो, तो गाथिन, विद्धिन, केशिन, गणिन, पणिन, ये शब्द प्रकृति करके रहें। जैसे—गाथिनोऽपत्यं गाथिनः, वैद्धिनः, कैशिनः, गाणिनः, पाणिनः, पाणिनः।

## संयोगादिश्च ॥ ६०३ ॥ अ० ६ । ४ । १६६ ॥

अपत्यसंद्यक अण् प्रत्यय परे हो, तो संयोग से परे इन्भाग प्रकृति करके रहे। जैसे —शाङ्खिनोऽपत्यं ग्राङ्खिनः, माद्रिणः, वाज्रिणः ॥ १०३॥

### अन् ॥ ६०४ ॥ अ० ६ । ४ । १६७ ॥

-

1

यहां श्रपत्य की श्रनुवृत्ति नहीं श्राती, किन्तु सामान्य विधान है।

श्रस् प्रत्यय परे हो, तो भसंज्ञक अञ्चन्त श्रङ्ग प्रकृति करके रहे । जैसे – साम्नामयं मंत्र: सामनः, वैमनः, सौत्वनः, जैत्वनः इत्यादि ॥ ६०४ ॥

## ये चाभावकर्मणोः ॥ ६०५ ॥ अ० ६ । ४ । १६८ ॥

भावकर्म अर्थों को छोड़ के अन्य अर्थों में विद्वित यकारादि तिद्वत प्रत्यय परे हो, तो भसंद्रक अञ्चन्त अङ्ग प्रकृति करके रह जावे। जैसे—सामसु साधुः सामन्यः, ब्रह्मएयः इत्यादि।

यहां 'भावकर्म अर्थों का निषेध' इसिलये हैं कि—राक्को भाव: कर्म वा राज्यम्। यह राजन् शब्द पुरोहितादिगण् में पढ़ा है, इस कारण् इससे यक् प्रत्यय हो जाता है ॥ १०४॥

## आत्माध्वानी खे॥ ६०६॥ अ०६। ४। १६९॥

ति वितसंद्यक ख प्रत्यय परे हो, तो आत्मन् झौर अध्वन् शब्द प्रकृति करके रह जावें। जैसे – आत्मनीनः; अध्वानमलङ्गामी अध्वनीनः।

यहां 'स्न' प्रत्यय का प्रहृण इसिलये हैं कि प्रत्यात्मम्; प्राध्वम्, यहां प्रकृतिभाव न होवे। यहां आत्मन् अन्नन्त शब्द से समासान्त टच् श्रोर उपसर्ग से परे अध्वन् शब्द से अच् प्रत्यय हुआ है ॥ १०६॥

## न मयूर्वोऽपत्येऽवर्मणः ॥ ६०७ ॥ अ० ६ । ४ । १७० ॥

श्रपत्याधिकार में विहित श्रण् प्रत्यय परे हो, तो वर्मन् शब्द को छोड़ के म जिसके पूर्व हो, ऐसा भसंद्रक श्रज्ञन्त श्रङ्ग प्रकृति करके न रहे, किन्तु टिलोप होजावे। जैसे— सुवाम्णोऽपत्यं सीवामः, चान्द्रसामः, सुवास्रोऽपत्यं सीवामः इत्यादि।

यहां 'मकारपूर्व' का प्रह्या इसिलये है कि—सौत्वनः, यहां टिलोप न हो। 'अपत्य अर्थ' इसिलये कहा है कि—चर्मगा परिवृतो रथआर्मगः, यहां प्रकृतिभाव हो जावे। अर्थ 'वर्मन् शब्द का निषेध' इसिलये किया है कि—भूपालवर्मगोऽपत्यं भौपालवर्मगः, यहां भी टिलोप न हो जावे॥ १०७॥

वा०-मपूर्वीत् प्रतिषेधे वा हितनाम्नः ॥ ६०८ ॥

पूर्व सूत्र में मकार जिसके पूर्व हो उसको प्रकृतिभाव का निषेध किया है, सो हितनामन् शब्द को विकल्प करके प्रकृतिभाव हो। जैसे—हितनाम्नोऽपत्यं हैतनामः; हैतनामः। यहां पद्म में टिलोप हो जाता है ॥ ६०८॥

## ब्राह्मो ऽजातौ ॥ ६०६ ॥ अ० ६ । ४ । १७१ ॥

इस सूत्र का अर्थ महाभाष्यकार ने ऐसा किया है कि—इस सूत्र का योगविभाग करके दो वाक्यार्थ समक्षने चाहियें। ब्राह्म शब्द सामान्य अर्थों में अल्प्रत्ययान्त निपातन किया है। जैसे—ब्राह्मो गर्भः, ब्राह्मसब्रम्, ब्राह्मं हविः, ब्राह्मो नारदः इत्यादि। यहां सर्वत्र ब्रह्मन् शब्द का टिलोप निपातन से किया है।

श्रीर श्रपत्यसंद्यक श्रण्यत्यय परे हो, तो जाति श्रर्थ में ब्रह्मन् शब्द के टिभाग का लोप न होवे। जैसे—ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणः।

यहां 'अपत्य' ग्रहण इसलिये हैं कि - ब्राह्मी श्रोषिः, यहां निषेध न लगे ॥ ६०६॥

#### कार्मस्ताच्छील्ये ॥ ६१० ॥ अ० ६ । ४ । १७२ ॥

ताच्छी त्य अर्थ में ए प्रत्यय परे हो, तो कर्मन् शब्द का टिलोप निपातन से किया है। जैसे— कर्मशील: कार्मः। इस कर्मन् शब्द का छुत्रादिगए में पाठ होने से शील अर्थ में ए प्रत्यय होता है।

यह सूत्र नियमार्थ है कि कम्मेण इदं काम्मेणम्, इत्यादि में टिलोप न होवे ॥ ६१०॥

## भोक्षमनपत्ये ॥ ६११ ॥ अ०६ । ४ । १७३ ॥

अपत्याधिकार को छोड़ के अन्य अर्थों में अण् प्रत्यय परे हो, तो औद्य शब्द में टिलोप निपातन किया है। जैसे—उद्या इदं श्रोद्मम्।

'अपत्य का निषेध' इसलिये हैं कि उच्णोऽपत्यमीच्च ,, यहां निषेध न होवे ॥ ११।॥

# दाणिडनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्याशिनेयवासिनायनिभ्रौणहत्यभैवत्यसारवैद्याकमैत्रेयहिरग्मयानि।।६१२।। अ० ६।४।१७४॥

इस सूत्र में दागिडनायन, हास्तिनायन, आधर्वणिक, जैह्याशिनेय, वासिनायनि, भ्रोणहत्य, धैवत्य, सारव, ऐदवाक, मैत्रेय और हिरएमय इन शब्दों में तिद्धतप्रत्ययों के परे टिल्लोप आदि कार्य निपातन से माने हैं।

द्विडन् ग्रीर इस्तिन् शन्द नडादि गण में पढ़े हैं, इनसे फक् प्रत्यय के परे प्रकृति-भाव निपातन से किया है। जैसे—द्विडनां गोत्रापत्यं दाविडनायनः; हास्तिनायनः। अथर्वन् शब्द वसन्तादि गणाः में पढ़ा है। उपचारोपाधि मानः के अथर्वा ऋषि के बनाये प्रत्थ को भी 'अथर्वान्' कहते हैं। उससे पढ़ने जानने अथीं में ठक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन किया है। जैसे—अथर्वाणमधीते वेत्ति वा आधर्वणिकः।

जिह्याशिन् शब्द शुभ्रादि गणु में पढ़ा है, उससे श्रपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन किया है। जैसे—जिह्याशिनोऽपत्यं जैह्याशिनेयः।

गोत्र संज्ञारहित वृद्धसंज्ञक वासिन् शब्द से अप्रत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय के परे टिस्रोप का निषेध निपातन किया है। जैसे – वासिनोऽपत्यं वासिनायनिः।

भूणहन् श्रोर भीवन् शब्दों से ध्यञ् प्रत्यय के परे इनके नकार को तकारादेश निपातन किया हैं। जैसे—अण्झो भाव: भ्रोणहत्यम्, भीवनो भावो धैवत्यम् । भ्रूणहन् शब्द से ध्यञ् प्रत्यय के णित् होने से (हनस्तोऽचिएणुलो:) इस सूत्र से नकारादेश हो जाता, फिर निपातन नियमार्थ है कि श्रन्य तिहत प्रत्ययों के परे इसको तकारादेश न होवे। जैसे—भ्रूणझोऽपत्यं श्रोणझः, बात्रझः, यहां श्रण् प्रत्यय हुन्या है।

सरयू शब्द से शैषिक अण् प्रत्यय के परे अय् भाग का लोप निपातन किया है। जैसे—सरय्वां भवं सारवमुदकम्। ऊकार को गुण होकर अवादेश हो जाता है।

जनपद के समान चित्रयवाचीः इच्वाकु शब्द से अपत्य और तद्राजः अर्थों में अञ् प्रत्यय के परे उकार का लोप निपातन किया है। जैसे — इच्चाकोर पत्यिमद्रवाकुनां राजा वा पेच्चाकः।

मित्रयु शब्द गुष्ट्यादि गण में पढ़ा है, उससे ढज् प्रत्यय के परे इयु आहेश का अपवाद यु शब्द का लोप निपातन किया है। जैसे—मित्रयोरपत्यं मैत्रेय:।

हिरएय शब्द से मयट् प्रत्यय के परे य मात्र का लोग निपातन किया है। जैसे— हिरएयस्य विकार: हिरएमय: ॥ ६१२ ॥

# ऋत्वयवास्त्वयवास्त्वमाध्वीाहरग्ययानि छन्दसि ॥ ६१३ ॥

1

अ० ६। ४। १७५॥

ऋत्व्य, वास्त्व्य, वास्त्व, माध्वी ऋौर हिरएयय, ये शब्द वेदविषय में तिखतप्रत्ययान्त निपातन किये हैं।

जैसे — ऋतो भवम् ऋत्व्यम्; वास्तो भवं वास्त्व्यम्, यहां ऋतु श्रौर वास्तु शब्दों को यकारादि यत् प्रत्ययं के परे यणादेश निपातन किया है।

वस्तुः शब्दः से अण् प्रत्यय के परे गुण का अपवादः यणादेश निपातन किया है— वस्तुनि भवं वास्त्वम् । मधुशब्दः से स्नीलिङ्ग में अण् प्रत्यय के परे यणादेश निपातन किया है। जैसे—मधुन इमा माध्वीनी सन्त्वोषश्री:।

Con, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

हिरएय शब्द से परे मयट् के म मात्र का लोप निपातन से किया है। जैसे —हिरएयस्य विकारो हिरएययम्॥ ११३॥

# तिद्धितेष्वचामादेः ॥ ६१४ ॥ अ० ७ । २ । ११७ ॥

ञित्, णित् तिद्धतसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो श्रङ्ग के श्रचों में श्रादि श्रच् को वृद्धि हो। जैसे—ञित्—गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः; वात्स्यः; दाितः; प्राितः इत्यावि। णित्— उपगोरपत्यम् श्रोपगवः; कापटवः; सोम्यं हिषः इत्यादि॥ ६१४॥

# किति च ॥ ६१५ ॥ अ० ७ । २ । ११८ ॥

कित्संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो भी ग्रङ्ग के श्रचों में श्रादि श्रच् को वृद्धि होवे। जैसे—फक्—नाडायनः; चारायणः; रेवत्या श्रपत्यं रैवतिकः इत्यादि॥ ६१५॥

# देविकाशिंश्पादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात्।।६१६॥ अ० ७।३।१॥

यहां जित्, णित् ग्रीर कित् तिद्धतप्रत्ययों तथा श्रचों के श्रादि श्रच् इन सब की श्राती है।

जित्, णित् श्रीर कित् तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो देविका, शिशपा, दित्यवाट्, दीर्घसत्र श्रीर श्रेयस्, इन श्रङ्गों के श्रादि श्रच्को वृद्धि प्राप्त है, उस को बाध के श्राकारादेश होवे।

जैसे —देविकायां भवं दाविकमुदकम्—देविका नाम किसी नदीविशेष का है; देविकाकृते भवा: दाविका: शालय:, पूर्वदेविका नाम है प्राचीनों के ग्राम का—पूर्वदेविकायां भव: पूर्वद्विक:, यहां भी (प्राचां ग्राम०) इस ग्रागामी सूत्र से उत्तरपदवृद्धि प्राप्त है, उसका ग्रापवाद ग्राकार ही हो जाता है।

शिशपाया विकार: शांशपश्चमसः, यह शिशपा शब्द शीशों वृत्त का नाम है। उसके अनुदात्तादि होने से विकार अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है। शिशपास्थले भवाः शांश-पास्थलाः। और पूर्वशिशपा शब्द प्राचीनप्राप्त की संज्ञा है, उसको भी पूर्वोक्त प्रकार से उत्तरपदवृद्धि हो जाती है। जैसे—पूर्वशिशपायां भवः पूर्वशांशपः।

दित्यवाट् – दित्योह इदं दात्योहम्, यहां शैषिक अण् प्रत्यय हुआ है; दीर्घसत्र — दीर्घसत्रे भवं दार्घसत्रम्; श्रेयसि भवं श्रायसम् ॥ ११६॥

### वा०-वहानरस्येद्वचनम् ॥ ६१७॥

जित्, शित् श्रोर कित् तिद्वतसंद्वक प्रत्यय परे हों, तो वहीनर शब्द के श्रादि श्रच् को इकारादेश होवे। जैसे—वहीनरस्यापत्यं वैद्वीनिरिः, यहां इकारादेश वृद्धि की प्राप्ति में नहीं कहा, इसी से वृद्धि का बाधक नहीं होता है। श्रादेश किये इकार को वृद्धि होजाती है। नहीं कहा, इसी से वृद्धि का बाधक नहीं होता है। श्रादेश किये इकार को वृद्धि होजाती है। श्रीर किन्हीं ऋषि लोगों का इस विषय में यह श्रमिश्राय है कि—'विद्वीनर' शब्द से ही प्रत्यय होता है। श्रर्थात् यह ऐसा ही शब्द है। कामभोगाभ्यां विद्वीनो नरः विद्वीनरः। यहां पृषोद्रादि मान के एक नकार का लोप हो जाता है। जिनके मत में 'विद्वीनर' शब्द है, उनके मत में वार्त्तिक नहीं करना चाहिये॥ ११७॥

#### केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः ॥ ६१८ ॥ अ० ७ । ३ । २ ॥

केकय, मित्रयु स्रोर प्रतय शब्दों के यकारादि भाग को इय् आदेश होवे, जित् ित् कित् तिहत प्रत्यय परे हों तो, श्रोर स्रादि स्रच्को वृद्धि तो पूर्व सूत्रों से सिद्ध ही है।

जैसे—केकयस्यापत्यं केकयानां राजा वा कैकेयः, यहां जनपद च्रत्रियवाची केकय शब्द से अञ् प्रत्यय हुआ है; मित्रयुभावेन स्ठाघते मैत्रेयिकया स्ठाघते, यहां गोत्रवाची मित्रयु शब्द से स्ठाघा अर्थ में बुञ् प्रत्यय हुआ है; प्रत्ययादागतं प्रात्तेयमुद्कम्, यहां आगत अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ है। ६१८॥

### न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वी तु ताभ्यामेच् ॥६१६॥ अ० ७ । ३ । ३ ॥

जित् िष्त् और कित् संक्षक ति वित्रस्थय परे हों, तो यकार वकार से परे अचें के आदि अच् के स्थान में वृद्धि न हो, किन्तु उन यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम हो, अर्थात् यकार से पूर्व ऐकार और वकार से पूर्व औकार आदेश होवे।

जैसे—ब्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः, न्यायमधीते नैयायिकः, ब्यसने भवं वैय-सनम् इत्यादि, स्वश्वस्यापत्यं सीवश्वः, सीवर्गः, स्वराणां ब्याख्यानो ग्रन्थः सौवरः इत्यादि।

यहां 'यकार वकार से पूर्व' इसिंखये कहा है कि अर्थस्याऽपत्यं त्राधि:, यहां रेफ से पूर्व ऐक् का आगम न हो। 'पदान्त' विशेषण इसिंखये है कि यिष्ट: प्रहरणमस्य याष्टीक:, यहां यकार से पूर्व ऐक् का आगम भी न होते। और जहां यकार वकारों से उत्तर वृद्धि की प्राप्ति न हो, वहां उनसे पूर्व ऐक् का आगम भी न हो। जैसे व्यव्य-स्यापत्यं दाध्यिः: ॥ ११६॥

#### द्वारादानाञ्च ॥ ६२० ॥ अ० ७ । ३ । ४ ।

द्वारादि शब्दों के यकार वकार से उत्तर अचों के आदि अच्को वृद्धि न हो, किन्तु उन यकार वकारों से पूर्व तो ऐच्का आगम हो जावे।

जैसे—द्वारे नियुक्तः दौवारिकः; द्वारपात्तस्यापत्यं दौवारपात्तम्; स्वरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः सौवरः; सोवरोऽध्यायः; स्वाध्यायः प्रयोजनमस्य सौवाध्यायिकः; स्यव्कशे भवः वैयव्कशः; स्वतीत्याद्व सौवस्तिकः; स्वर्गमनं प्रयोजनमस्य सौवर्गमनिकः; स्पेयकृतस्याऽपत्यं स्पेयकृतः; स्वादुमृदु मिक्तरस्य सौवादुमृद्वः; ग्रुन इदं शौवनम्—यहां पूर्विकिस्तितं श्रन्) सुत्र से श्रण् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव हो जाता है, ग्रुनो विकारः शौवनं मांसम्। श्वदंष्टायां

भवः शौवादंष्ट्रो मणिः; खस्येदमैक्षय्यं सौवम्; खत्रामे भवः सौवत्रामिकः — खत्राम शब्द से अध्यात्मादि गण् में मान के ठञ् प्रत्यय होता है।

पूर्व सूत्र में पदान्त यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम कहा है, यहां द्वारादि शब्दों में पदान्त नहीं, इसिलये फिर अलग करके कहा। खाध्याय शब्द इस द्वारादि गण में पढ़ा है, इसका दो प्रकार से निर्वचन होता है—सुन्दु वा अध्ययनं खाध्यायः, शोभनं वा अध्ययनं खाध्यायः, अथवा खमध्ययनं खाध्यायः। इनमें से किसी प्रकार का निर्वचन समभो, खाध्याय शब्द सर्वथा योगिक ही है।

श्रीर द्वारादि शब्द सब अव्युत्पन्न प्रातिपदिक हैं। इसीलिये यह सूत्र कहा है। सो जो 'सु+श्रध्याय' ऐसा विग्रह करें, तब तो पदान्त बकार से पूर्व प्रथम सूत्र से ही ऐच् का श्रागम हो जावेगा। श्रीर जब 'स्व+श्राध्याय' ऐसा निर्वचन करें तो भी स्व शब्द इसी गण में पढ़ा है। तो अगले सूत्र में केवल शब्द के ज्ञापक से इस प्रकरण में तदादिविधि होती है। फिर स्वशब्द जिसके श्रादि में हो ऐसे स्वाध्याय शब्द से इसी सूत्र करके ऐच् का श्रागम हो जावेगा। फिर स्वाध्याय शब्द को इस गण में पढ़ने से कुछ प्रयोजन नहीं। यह महाभाष्यकार का श्राश्य है॥ ६२०॥

# न्ययोधस्य च केवलस्य ॥ ६२१ ॥ अ० ७ । ३ । ५ ॥

केवल न्यप्रोध शब्द के यकार से परे, अचों के आदि अच् के स्थान में वृद्धि न हो, किन्तु यकार से पूर्व पेच का आगम हो जावे। जैसे — न्यप्रोधस्य विकारो नैयप्रोधस्थमसः।

यहां 'केवल' शब्द का ग्रहण इसिलये हैं कि न्यग्रोधमूले भवाः न्याग्रोधमूलाः शालयः, यहां ऐच् का आगम न होवे।

इस 'न्यप्रोध' शब्द का प्रहण व्युत्पत्तिपत्त में नियमार्थ है कि पदान्त यकार से पूर्व के केवत न्यप्रोध शब्द को ही पेच् का आगंम हो, अन्य शब्दों को तदादि होने से भी हो आवे। और अव्युत्पत्तिपत्त में विधान श्रापकार्थ है ॥ ६२१ ॥

# न कर्मव्यतिहारे ॥ ६२२ ॥ अ० ७ । ३ । ६ ॥

कर्मव्यतिहार अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक के यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम न होते। जैसे - द्यावकोशी; द्यावसेखी; द्यावहासी इत्यादि।

यद्दां कर्मन्यतिहार ऋर्थ में रूदन्त गुच् प्रत्यय ऋौर तदन्त से स्त्रीतिङ्गस्वार्थ में तिस्तसंद्रक अञ् प्रत्यय हुआ है ॥ ६२२ ॥

### स्वागतादीनां च ॥ ६२३ ॥ अ० ७ । ३ । ७ ॥

ञित् णित् कित् संश्रक तद्धितप्रत्यय परे हों, तो गण्पिटत स्वागतादि शब्दों के यकार वकार खेळूके के स्वागतादि शब्दों के वकार वकार खेळूके के स्वागतादि शब्दों के

जैसे—स्वागतमित्याह स्वागतिकः; स्वध्वरेण चरति स्वाध्वरिकः; स्वाङ्गस्यापत्यं स्वाङ्गः, व्यङ्गस्यापत्यं व्याङ्गः; व्यङ्गस्यापत्यं व्याङ्गः; व्यङ्गस्यापत्यं व्याङ्गः; व्यङ्गस्यापत्यं व्याङ्गः; व्यङ्गस्यापत्यं व्याङ्गः; व्यवहारः प्रयोजनमस्य व्यावहारिकः— यहां व्यवहार शव्द कर्मव्यतिहार श्रर्थं में नहीं, किन्तु लोकिक कार्यों का वाची है; स्वपतौ साधुः स्वापतेयः।

खागतादि सब योगिक शब्द हैं, उनमें तो पदान्त यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम प्राप्त है, श्रोर खपति शब्द में यह बात नहीं, सो स्व शब्द द्वारादि गण में पढ़ा है, वहां तदादि से ऐच् का आगम प्राप्त है, इन सबका निषेध समझना चाहिये ॥ ६२३॥

#### श्वादेरिञि ॥ ६२४ ॥ अ० ७ । ३ । ८ ॥

ति ति ति संक्षक इञ् प्रत्यय परे हो, तो किसी शब्द के आदि में वर्त्तमान श्व शब्द के वकार से पूर्व ऐच् का आगम न हो। जैसे — श्वभक्षस्यापत्यं खामिकाः; खादंष्ट्रिः इत्यादि।

श्वन् श्रव्द द्वारादिगंगा में पढ़ा है, इस कारण इसको तदादिविधि मान कर वकार से पूर्व ऐच् प्राप्त है, उसका प्रतिषेध किया है ॥ ६२४ ॥

### वा०-इकारादिग्रहणं च श्वागिषाकाद्यर्थम् ॥ ६२५ ॥

सूत्र में तिद्धतसंज्ञक इज् प्रत्यय के परे ऐजागम का निषेध किया है, सो सामान्य इकारादि प्रत्यय के परे करना चाहिये। जैसे—श्वगणेन चरित श्वागणिक:, श्वायृथिक: इत्यादि। यह वार्त्तिक सूत्र का शेष है॥ १२४॥

### वा०-तदन्तस्य चान्यत्र प्रतिषेधः ॥ ६२६ ॥

त्रीर इज् प्रत्यय से भिन्न कोई प्रत्यय परे हो, तो स्रादि में वर्त्तमान श्व शब्द के वकार से पूर्व ऐच् का स्रागम न हो। जैसे—श्वाभस्त्रेः स्वं श्वामस्त्रम् इत्यादि॥ १२६॥

# पद्गन्तस्यान्यतरस्याम् ॥ ६२७ ॥ श्र० ७ । ३ । ६ ॥

पद शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे ऋ शब्द के वकार से पूर्व ऐच् का आगम विकल्प करके होवे। जैसे—ऋापदस्येदं श्वापदम्, शौवापदम् इत्यादि॥ ६२७॥

#### उत्तरपदस्य ॥ ६२८ ॥ श्र० ७ । ३ । १० ॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे जो कार्य विधान करें, सो (इनस्तो०) इस सूत्र पर्य्यन्त सामान्य करके उत्तरपद को होगा ॥ ६२८॥

#### अवयवादृतोः ॥ ६२६ ॥ अ० ७ । ३ । ११ ॥

ञित् शित् श्रोर कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हों,तो श्रवयववाची से परे जो श्रातु-वाची उत्तरपद उसके श्रचों में श्रादि श्रच्को वृद्धि होवे। जैसे — पूर्ववर्षा सुभवं पूर्ववार्षिकम्; पूर्वहैमनम्; ग्रपरवार्षिकम्; ग्रपरहैमनम् इत्यादि । यहां पूर्व शब्द का वर्षा ग्रीर हेमन्त शब्द के साथ एकरेशी समास होता, ग्रीर वर्षा शब्द से शैषिक ठक्, हेमन्त से ग्रण् प्रत्यय ग्रीर हेमन्त शब्द के तकार का लोप हुआ है।

यहां 'श्रवयव' शब्द का प्रहण इसिलये है कि —पूर्वासु वर्षासु भवं पौर्ववार्षिकम्, यहां श्रवयविसमास के न होने से उत्तरपदबुद्धि न हुई। यहां वर्षा श्रीर हेमन्त शब्दों के पूर्व श्रीर श्रपर शब्द श्रवयव हैं ॥ १२१ ॥

# सुसर्वाद्धीजनपद्स्य ॥ ६३० ॥ अ० ७ । ३ । १२ ॥

ञित् ित् श्रीर कित् संहक ति प्रत्यय परे हों, तो सु, सर्व श्रीर श्रर्झ शब्दों से परे जो जनपद देशवाची उत्तरपद, उसके श्रचों में श्रादि श्रच् के स्थान में वृद्धि होवे।

जैसे —सुपञ्चालेषु भवः सुपाञ्चालकः; सर्वपाञ्चालकः; त्रर्द्धपाञ्चालकः इत्यादि । यहां शैषिक बुज् प्रत्यय होता है ॥ ६३० ॥

## दिशोऽमद्रागाम् ॥ ९३१ ॥ अ० ७ । ३ । १३ ॥

ञित् शित् श्रीर कित् संहक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो दिशावाची शब्दों से परे जो मद्र शब्द को छोड़ के जनपद देशवाची उत्तरपद, उसके श्रचों में श्रादि श्रच् के स्थान में वृद्धि होवे।

जैसे—पूर्वेपञ्चाला निवासोऽस्य पूर्वपञ्चालकः; त्रपरपञ्चालकः; दक्तिगपञ्चेत्वकः इत्यादि । यहां भी शैषिक बुञ् प्रत्यय होता है ।

यहां 'दिशावाची' का ग्रहण इसिंबये है कि एवं: पञ्चालानां पूर्वपञ्चालः पूर्वपञ्चालेषु मवः पौर्वपञ्चालकः, ग्रापरपञ्चालकः, यहां एकदेशी समास में पूर्व तथा श्रपर शब्द दिशावाची नहीं, किन्तु श्रवयववाची हैं, इस कारण उत्तरपदवृद्धि नहीं होती। 'मद्रशब्द का निषेध' इसिंबये है कि —पूर्वमद्रेषु भवः पौर्वमद्रः, श्रापरमद्रः, यहां शैषिक श्रञ् प्रत्यय के परे उत्तरपदवृद्धि नहीं होती॥ ६३१॥

# प्राचां ग्रामनगराणाम् ॥ ९३२ ॥ अ० ७ । ३ । १४ ॥

ञित् णित् श्रीर कित् संशक तिहत प्रत्यय परे हो, तो प्राचीन श्राचार्यों के मत में दिशावाची शब्दों से परे जो ग्राम श्रीर नगरवाची उत्तरपद, उसके श्रचों में श्रादि श्रच् के स्थान में वृद्धि हो।

जैसे-प्राम पूर्वेषुकामशम्यां भवः पूर्वेषुकामशमः; ग्रपरेषुकामशमः; पूर्वकार्णमृत्तिकः; ग्रपरकार्णमृत्तिकः। नगरों से—पूर्वमथुरायां भवः पूर्वमाथुरः; ग्रपरमाथुरः; पूर्वस्रोधः; द्विणस्त्रोध्नः इत्यादि ॥ ६३२॥ द्विणस्त्रोध्नः इत्यादि ॥ ६३२॥ Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

#### संख्यायाः संवत्सरतंख्यस्य च ॥ ९३३ ॥ अ० ७ । ३ । १५ ॥

ञित् णित् श्रौर कित् संशक तिद्धत प्रत्यय परे हों, तो संख्यावाची शब्दों से परे जो संवत्सर श्रौर संख्यावाची उत्तरपद, उसके श्रचों में श्रादि श्रच् के स्थान में वृद्धि होवे।

जैसे—द्विसंवत्सरावधीष्टो भृतो भृतो भावी वा, द्विसांवत्सरिकः; द्वे षष्टी अधीष्टो भृतो भृतो भावो वा द्विषाष्टिकः; द्विसाप्ततिकः, द्वश्राशीतिकः इत्यादि।

यहां संवत्सर के ग्रहण से उत्तर सूत्र में परिमाणान्तग्रहण में कालपरिमाण का ग्रहण नहीं होता, इससे -द्वेशमिकः, त्रेशमिकः, यहां उत्तरपदवृद्धि नहीं होती। द्विवर्षा, त्रिवर्षा, यहां परिमाणवाची से कहा छीप् प्रत्यय भी नहीं होता ॥ ६३३ ॥

#### वर्षस्याभविष्यति ॥ ९३४ ॥ अ० ७ । ३ । १६ ॥

यहां संख्यावाची की अनुवृत्ति आती है।

भविष्यत् अर्थं को छोड़ के अन्य अर्थों में स्थित जित् ि खित् और कित् संज्ञक ति अत्यय परे हों, तो संख्यावाची शब्दों से परे जो वर्ष उत्तरपद, उसके अचों में आदि अच् को बुद्धि हो। जैसे — द्विवर्षे अधीष्टो भृतो भूतो वा द्विवार्षिकः; त्रिवार्षिकः इत्यदि।

यहां 'भविष्यत् अर्थ का निषेध' इसिलये किया है कि – त्रीणि वर्षाणि भावी त्रैवर्षिकम्, यहां उत्तरपदवृद्धि न होवे।

श्रधीष्ट श्रीर मृत श्रथों में भी भविष्यत् काल होता है। परन्तु वहां भविष्यत् का निषेध नहीं लगता, क्योंकि उन श्रथों में जो भविष्यत् श्रा सकता है, वह तद्धित प्रत्यय का श्रर्थ नहीं है। जैसे—द्वे वर्षे श्रश्री भृतो वा कर्म करिष्यतीति द्विवार्षिको मनुष्य: ॥६३४॥

#### परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः ॥ ६३५ ॥ अ० ७ । ३ । १७ ॥

ञित् णित् श्रीर कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो संख्यावाची शब्दों से परे जो संज्ञाविषय में श्रीर शाण उत्तरपद को छोड़ के श्रन्य परिमाणान्त उत्तरपद, उसके श्रचों में श्रादि श्रच् को वृद्धि होवे।

जैसे — द्वो कुडवो प्रयोजनमस्य द्विकोडविकः; द्वाभ्यां सुवर्गभ्यां क्रीतं द्विसीवर्णिकम्; द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतं द्विनैष्किकम्; त्रिनैष्किकम् इत्यादि । यहां ठज् प्रत्यय हुन्ना है ।

यहां 'संज्ञाविषय में निषेध' इसिलये किया है कि—पञ्च लोहित्यः परिमाणमस्य पाञ्चलोहितिकम्; पाञ्चकपालिकम्, यहां संज्ञा में उत्तरपदवृद्धि न हो। स्रोर 'शाण उत्तरपद के परे निषेध' इसिलये है कि—द्वाभ्यां शाणाभ्यां कीतं द्वैशाणम्, त्रैशाणम्, यहां क्रीत स्रर्थं में स्रण् प्रत्यय के परे उत्तरपद को वृद्धि न होवे॥ ६३॥॥

# जे प्रोष्टपदानाम् ॥ ६३६ ॥ घ्र० ७ । ३ । १८ ॥

यद्दां जे शब्द से जात अर्थ का बोध होता है। जात अर्थ में विद्वित जित् शित् और कित् संहक तिद्धत प्रत्यय परे हों, तो प्रोष्टपदा नामक नक्षत्र में उत्तरपद के आदि अच को वृद्धि होवे।

5

जैसे-प्रोष्ठपदासु जात: प्रोष्ठपदो माण्यकः, यहां नच्चत्रवाची से सामान्य काल अर्थ में विद्वित श्रण् प्रत्यय का लुप् होकर फिर नचत्रवासी से जात श्रर्थ में श्रण् प्रत्ययहोता है।

यहां 'जे' प्रहण इसलिये हैं कि - प्रोष्ठपदासु भवः प्रोष्ठपदः, यहां वृद्धि न हो। श्रीर इस सूत्र में बहुवचन निर्देश से प्रोष्ठपदा के पर्यायवाचियों का भी प्रहण समक्रना चाहिये। जैसे - भद्रपदासु जातो भद्रपादः ॥ १३६॥

# हुद्भगिसन्ध्वनते पूर्वपद्स्य च ॥ ६३७ ॥ अ० ७ । ३ । १६ ॥

जित् ि खार कित् संइक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो हुदु, भग, सिन्धु ये जिनके अन्त में हों, ऐसे पूर्वपदों और उत्तरपदों के अचों में आदि अच् के स्थान में बुद्धि हो।

जैसे - सुहृद्यस्येदं सोहार्दम्; सुहृद्यस्य भावः सोहार्दम्; सुभगस्य भावः सोभाग्यम्; दौर्भाग्यम्; सुमगाया ऋपत्यं सौमागिनेयः; दौर्भागिनेयः।

श्रोर 'सुभग' शब्द उद्गात्रादि गण में भी पढ़ा है, उससे वेद में ही अञ् प्रत्यय होता है। परन्तु उभयपदवृद्धि नहीं होती, क्योंकि 'महते सीभगाय ऐसा ही प्रयोग वेद में आता है। सो वेद में सब कार्यों का विकल्प होने से पूर्वपदवृद्धि हो जाती है।। १३७॥

### अनुशतिकादानां च ॥ ६३८ ॥ ग्र० ७ । ३ । २० ॥ यहां पूर्व सूत्र से पूर्वपद की भी अनुवृत्ति चली आती है।

जित् िष्य ग्रीर कित् संज्ञक तिद्धत प्रत्यय परे हों, तो अनुशतिकादिगण पठित शुब्दों में पूर्व और उत्तर दोनों पदों के आदि अचों के स्थान में वृद्धि होते।

जैसे — अनुशतिकस्येदम् आनुशातिकम्; अनुहोडेन चरति आनुहोडिकः; अनुसंवरणे दीयते त्रानुसांवरणम्ः त्रनुसंवत्सरेण दीयते त्रानुसंवत्सरिकः; त्रङ्गारवेणोरपत्यम् आङ्गारवैण्वः; असिहरये भवम् आसिहात्यम्; अस्यहत्यशब्दोऽसिन्नध्यायेऽस्ति आस्यहात्यः; श्रस्यहेति: प्रयोजनमस्य भ्रास्यहैतिकः; वध्योगस्यापत्यंवाध्योगः; पुष्करसतोऽपत्यं पोष्कर-सादिः; श्रनुहरतोऽपत्यम् श्रानुहारतिः; कुरुकतस्यापत्यं कौरुकात्यः; कुरुपञ्चालेषु भवः कौरुपाञ्चालः; उद्कशुद्धस्यापत्यम् ग्रीद्कशोद्धिः।

इइ लोके मवं पेइलोकिकम्, परलोके भवं पारलोकिकम् लोकोत्तरपद प्रातिपदिको से ठञ् प्रत्यय कह चुके हैं; सर्वेत्वोके विदितः सार्वेत्वोकिकः पुरुषः; सर्वेपुरुषस्येदं कर्म CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative सार्वपौरुषम्; सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा सार्वभौमः; प्रयोगे भवं प्रायौगिकम्; परिस्त्रया अपत्यं पारस्त्रेण्यः—परस्त्री शब्द कल्याण्यादिगण् में पढ़ा है, वहां इनेङ् आदेश हो जाता है; राजपुरुष शब्द को ष्यञ् प्रत्यय के परे उभयपद्वृद्धि होती है—राजपुरुषस्य कर्म राजपौरुष्यम्।

ष्यञ् प्रत्यय का नियम इसिंबये हैं कि—राजपुरुषस्यापत्यं राजपुरुषायणिः, यहां उत्तरदेशीय आचारवों के मत में गोत्रसंज्ञारहित वृद्धिसंज्ञक प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में किञ् प्रत्यय होता है; शतकुम्मे भवः शातकोम्मः; सुखशयनं पृच्छति सौखशायनिकः; परदारान् गच्छति पारदारिकः; सूत्रनडस्यापत्यं सौत्रनाहिः; अभिगममहेति आभिगामिकः; अधिदेवे भवमाधिदैविकम्; आधिभौतिकम्; आध्यात्मिकम्—अध्यात्मादि शब्दों से भवार्थ में ठञ् प्रत्यय कह सुके हैं।

यह ब्राकृतिगण इसिंकिये समक्षना चाहिये कि अन्य अपिटत शब्दों को भी उभय-पद्वृद्धि हो जावे। जैसे—चतस्र एव विद्याः चातुर्वेद्यम्; चातुराश्रम्यम् इत्यादि में भी उभयपद्वृद्धि हो जावे॥ ६३८॥

#### देवताद्वन्द्वे च ॥ ६३६ ॥ अ० ७ । ३ । २१ ॥

जित् णित् और कित् संज्ञक ति प्रत्यय परे हो, तो देवतावाची शब्दों के द्वन्द्व-समास में पूर्व और उत्तर दोनों पदों के अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे। जैसे—आग्निवारणी; आग्निमारतो मन्त्र:।

परन् । जहां स्क ऋचा मन्त्र और इविष्य पदार्थ सम्बन्धी देवतावाची शब्दों की द्वन्द्वसमास हो, वहीं उभयपद्वृद्धि हो। और—स्कन्द्विशास्त्रो देवते अस्य स्कान्द्विशास्त्रं कर्मः। ब्राह्मप्रजापत्यम्, यहां उभयपद्विद्ध न होवे॥ ६३६॥

#### नेन्द्रस्य प्रस्य ॥ ६४० ॥ अ० ७ । ३ । २२ ॥ 🚕 💢

देवतावाची शब्दों के द्वन्द्रसमास में उत्तरपद में जो इन्द्र शब्द आवे, तो उसको वृद्धि न हो। पूर्वसूत्र से प्राप्त है, उसका निषेध किया है। जैसे—सोमेन्द्रों देवते अस्य सोमेन्द्रः; आग्नेन्द्रः इत्यादि।

यहां 'पर' प्रहण इसिलये है कि—ऐन्द्राग्नं चरुं निर्विष्तं, यहां पूर्वपद में निर्विधान होने। इन्द्र शब्द में दो खर हैं। उनमें से अन्त्य अकार का तिद्धत प्रत्यय के परे लोप, और पूर्व इकार का दूसरे वर्ण के साथ एकादेश होने से उत्तरपदवृद्धि की प्राप्ति ही नहीं हो सकती, फिर निषेध करने से यह झापक होता है कि अन्तरंक्ष भी एकादेश की बाध के प्रथम पूर्वोत्तरपदवृद्धि ही होती है।

इस झापक का अन्यत्र फल यह है कि — पूर्वेषुकामशमः, यहां उत्तरपद में इषु शब्द के इकार की वृद्धि प्रथम ही हो जाती है, पीछे एकादेश होता है ॥ ६४०॥

# दीर्घाच वरुणस्य ॥ ६४१ ॥ अ० ७ । ३ । २३ ॥

क्षीर्ध वर्ण से परे जो वरुण उत्तरपद उसके आदि अच्को वृद्धि न हो।

यहां भी देवता के द्रन्द्रसमास में पूर्वसूत्र से प्राप्ति है, उसका प्रतिषेध समभाना चाहिये। जैसे — इन्द्रावरुणी देवते श्रस्य पेन्द्रावरुणम्; मैत्रावरुणम् इत्यादि।

'दीर्घ वर्ण से परे' इसकिये कहा है कि — ग्राग्निवारुणी, यहां निषेध न होजावे ॥ ६४१॥

### प्राचां नगरान्ते ॥ ६४२ ॥ अ० ७ । ३ । २४ ॥

प्राचीनों के देश में जित् शित् और कित् संइक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो नगरान्त अङ्ग में उभयपद के आदि अच् को वृद्धि हो। जैसे—सुझनगरे भवः सौझनागरः, पौगडूनागरः इत्यादि।

यहां 'प्राचां' प्रहण इसलिये है कि मद्रनगरे भवः माद्रनगरः, यहां उत्तरदेशीय नगरान्त में न होवे ॥ ४४२ ॥

# जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम् ॥६४३॥ अ० ७।३।२५॥

ञित् ि होत कित् संद्रक ति ति प्रत्यय परे हो, तो अङ्गल, घेनु, वलज ये शब्द जिसके अन्त में हों, उस समुदाय के उत्तरपद के आदि अच् को विकल्प करके, और पूर्वपद के आदि अच् को नित्य वृद्धि होवे।

जैसे—कुरुजङ्गतेषु भवं कोरुजङ्गतम्, कोरुजङ्गतम्, वैश्वधैनवम्, वैश्वधेनवम्, सोवर्णवातजः, सोवर्णवत्तजः, यद्दां शैषिक अण् प्रत्यय दुआ है ॥ १४३॥

# अर्द्धात्परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा ॥ ६४४॥ अ० ७ । ३ । २६॥

ञित् िष्त् और कित् संद्वक तिहत प्रत्यय परे हो, तो अर्द्ध शब्द से परे जो परि-माण्याची उत्तरपदः उसके अचीं में आदि अच् को नित्य और पूर्वपद के आदि अच् को विकल्प करके वृद्धि होवे। जैसे—अर्द्धहोणेन कीतमार्द्धहोणिकम्, अर्द्धहोणिकम्; आर्द्धकोडिविकम्, अर्द्धकोडिविकम्।

यहां 'परिमाण' प्रहण इसिकये किया है कि—अर्द्ध कोश: प्रयोजनमस्य आर्द्ध कोशि-कम्, यहां पूर्वपद को विकल्प और उत्तरपद को नित्य वृद्धि न होवे ॥ ६४४ ॥

#### नातः परस्य ॥ ६४५ ॥ अ० ७ । ३ । २७ ॥

शित् ि श्रीर कित् संद्रक तिद्धत प्रत्यय परे हो, तो अर्ड शब्द से परे परि-माण्याची उत्तरपद के आदि अकार को वृद्धि न हो, और पूर्वपद को विकल्प करके होवे। जैसे — अर्द्ध प्रस्थेन कीतमार्द्ध प्रस्थिकम्, अर्द्ध प्रस्थिकम्। आर्द्ध कंसिकः। अर्द्ध कंसिकः।

यद्दां 'श्रकार' का प्रदेश इसिलये है कि—ग्रार्द्ध कौडविकः, यद्दां वृद्धि का निषेध न दोने। श्रोर 'श्रकार में तपरंकश' इसिलये है कि—ग्रर्द्ध खार्या भवा श्रार्द्ध खारी, यद्दां खारी शब्द उत्तरपद के श्रादि में दीर्घ श्राकार है।

यद्यपि वृद्धि होने न होने में कुछ विशेष नहीं दीखता, तो भी — श्रार्खकारी भार्या श्रस्य श्रार्खकारीभार्यः, यहां वृद्धि के निमित्त तद्धित प्रत्यय के परे पुंवद्भाव का निषेष्ठ नहीं पावेगा। क्योंकि जिस तद्धित प्रत्यय के परे वृद्धि का निषेष्ठ है, वह वृद्धि का निषेष्ठ है, वह वृद्धि का निमित्त नहीं हो सकता कि जैसे — वैयाकरणी भार्या श्रस्य वैयाकरणभार्यः, यहां पुंवद्भाव हो जाता है, वैसे उसमें भी हो जावेगा॥ ६४५॥

### प्रवाहग्रस्य हे ॥ ६४६ ॥ अ० ७ । ३ । २८ ॥

तद्धित संज्ञक ढ प्रत्यय परे हो, तो प्रवाहण शब्द के उत्तरपद के आदि अच्को वृद्धि हो और पूर्वपद के आदि अच्को विकल्प करके होवे।

जैसे—प्रवाहणस्यापत्यं प्रावाहणेयः, प्रवाहणेयः। प्रवाहण शब्द का श्रुश्चादिगण में पाठ होने से ढक् प्रत्यय हो जाता है ॥ १४६ ॥

#### तत्प्रत्ययस्य च ॥ ६४७ ॥ अ० ७ । ३ । २६ ॥

10

X

ञित् िष्त् श्रीर कित् संज्ञक तिद्धत प्रत्यय परे हो, तो ढक् प्रत्ययान्त प्रवाहण शब्द में उत्तरपद के ब्रादि श्रव् को नित्य श्रीर पूर्वपद के श्रव् को विकल्प करके वृद्धि हो।

जैसे—प्रवाह्णेयस्य युवापत्यं प्रावाह्णेयिः, प्रवाह्णेयिः इत्यादि, ग्रपत्य ग्रथं में इञ् प्रत्यय हुन्ना है। दूसरे प्रत्यय के ग्राश्रय जो वृद्धि है, सो ढक् प्रत्यय को मान के विकल्प से नहीं हो सकती, इसलिये यह सूत्र कहा है॥ ६४७॥

### नञः शु चीरवरक्षेत्रज्ञकुश्लिनिपुणानाम् ॥६४८॥ अ०७।३।३०॥

ञित् णित् और कित् संशक तिद्धत प्रत्यय परे हो, तो नञ् से परे जो शुचि, ईश्वर, द्वेत्रज्ञ, कुशल और निपुण उत्तरपद उसके अचीं में आदि अच् को नित्य और पूर्वपद को विकल्प करके वृद्धि हो।

जैसे—ग्रुचि—ग्रग्रुचेर्मावः आशोचम्, त्रशोचम्; ईखर—ग्रनीखरस्य भावः ग्रानै-श्वर्थम्, अनैखर्थम्; दोत्रज्ञ—ग्राचैत्रज्ञयम्, अचैत्रज्ञयम्; कुशल—ग्रकुशलस्य भावः श्राकोशलम्, त्रकोशलम्; निपुण—ग्रानैपुणम्, त्रनेपुणम् ॥ ६४८॥

# यथातथयथापुरयोः पर्यायेगा ॥ ६४६ ॥ अ० ७ । ३ । ३१ ॥

ञित् ि हो कित् संद्वक ति प्रत्यय परे हो, तो नञ् से परे जो यथातथ स्रोर यथापुर उसके सचों में स्रादि सच् को पर्याय से वृद्धि हो। स्रर्थात् जब पूर्वपद को हो तब उत्तरपद को नहीं, स्रोर जब उत्तरपद को हो तब पूर्वपद को नहीं होवे।

जैसे—ग्रयथातथा भाव: ग्रायथातथ्यम्, ग्रयाथातथ्यम्; त्रायथापुर्यम्, ग्रयाथा-पुर्यम् । ग्रयथातथा ग्रोर ग्रयथापुर ये दोनों शब्द ब्राह्मणादि गण में पढ़े हैं, इससे ध्यज् प्रत्यय होता है ॥ ६४६ ॥

> इति श्रीमत्स्वामिद्यानन्द्सरस्वतीव्याख्यातोऽष्टाध्याय्यां स्रोणताद्धितोऽयं ग्रन्थः समाप्तः ॥

वसुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे मार्गशीर्षे सिते दले। पब्चमीशनिवारेऽयं ग्रन्थः पूर्तिं गतः शुभः ॥

संवत् १६६८ मार्गशीर्ष ग्रुक्त ४ शनिवार के दिन यह स्त्रेणताद्धित ग्रन्थ श्रीयुत द्यानन्द सरस्वतीजी ने पूरा किया ॥



# वैदिक-पुस्तकालय में मिलनेवाली पुस्तकों की सूची

विऋयार्थ पुस्तकें	सृत्य	विक्रयार्थ पुस्तकें	स्रूल्य
ऋग्वेदभाष्य ( ६ ) भाग	भ्रश)	संस्कारविधि	111)
यज्ञुर्वेदमान्य सम्पूर्ण	२०)	विवाइपद्धति	11)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका		शास्त्रार्थ फीरोजाबाद	-1=)
केवल संस्कृत ।।।)		वेदविरुद्धमतखएडन	1-)
	CII=)	वेदान्तिध्वान्तनिवारण नागरी	-)11
श्रष्टाध्यायी मृत	11=)	,, ग्रंग्रेज़ी	-)11
अष्टाध्यायी भाष्य पहिला खएड	३॥)	भ्रान्तिनिवारण	1-)
,, दूसरा खण्ड	३॥)	शास्त्रार्थ काशी	-)11
पंचमहाय इविषि	=)11	स्वमन्तन्यामन्तन्यप्रकाश नागरी	)
निरुक्	111=)	,, ग्रंबेज़ी	11( 7
संस्कृतवाक्यप्रबोध	=)	ऋग्वेद संहिता बहिया जिल्ह	8)
<b>च्यवहारमानु</b>	=)	यजुर्वेद संहिता ,, ,,	- ২)
भ्रमोच्छेदन	=)	अथर्ववेद संहिता	₹¶)
<b>ब</b> तुश्रमोच्छेदन	-)	सामवेद संहिता	811)
सत्यधर्मविचार (मेला चांदापुर) न		चारों वेदों की अनुक्रमाणिका	२।)
आर्योद्देश्यरत्नभात्ता नागरी एक	प्रति )।।		111)
,, मरहठी	-)	छान्दोग्योपनिषद् भाष्य	8)
ं,, श्रंग्रेज़ी	-)	बृहदारएयकोपनिषद् भाष्य	8)
गोकरुणानिधि	-)11	यज्ञवेदभाषामाष्य	A)
स्वामीनारायणमतखयडन	1)	नित्यकर्मविधि एक	प्रति )।।।
सत्यार्थप्रकाश नागरी	<b>१11)</b>	इवनमन्त्र एक प्रति )।।।	
त्रायाभिविनय गुटका	=)	कममोरेशन वाल्युम बढ़िया १०), घटिया ४)	
,, मोटे अचरों की	11=)		

नोटः-डाकमइयुल सब का मूल्य से अलग होगा।

पुस्तक मिलने का पता— प्रबन्धकर्त्ता, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर.



तत्रत्यः

पश्चमो भागः

SOMANLAL AGRA-B.I. Hons. LL.B., F. Income Tax & Sales Tax P. Income Tax & Sales Tax P.

॥ सामासिकः ॥

# पाणिनिस्निप्रणीतायामष्टाध्याय्यां

चतुर्थो भागः॥

श्रीवस्त्वासिद्यानन्द्सरस्वतीकृतन्यास्यासाहतः ॥ एठनपाठनव्यवस्थायां सप्तमम्पुस्तकम् श्रजमेरनगरे वैदिकयन्त्रावये

धरनगरे वैदिकपन्त्रालये सुद्रितम् ॥

इस पुरतक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है। क्योंकि

इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

व्रठीवार १००० ]

संवत् १६६४.

[ मूल्य ।-)





# त्रथ सामासिक भूमिका।

समास उसे कहते हैं कि जिसमें अनेक पदों को एक पद में जोड़ देना होता है। जब अनेक पद मिल के एक पद होजाता है तब एक पद और एक स्वर होते हैं, पर समास विद्या के जाने विना कुछ विदित नहीं हो सकता। इसलिये समास विद्या अवश्य जाननी चाहिये।

#### समास चार प्रकार का होता है।

एक अन्ययीभाव । दूसरा तत्पुरुप । तीसरा बहुन्नीहि और चौथा द्वन्द्र । अन्ययीभाव में पूर्वपदार्थ, तत्पुरुप में जत्तरपदार्थ, बहुन्नीहि में अन्य पदार्थ और द्वन्द्व में उभय अर्थात् सब पदों के अर्थ प्रधान रहते हैं । जिसका अर्थ मुख्य हो वही प्रधान कहाता है ।

अन्ययीभाव के दो भेद होते हैं।

एक पूर्वपदाव्ययीभाव दूसरा उत्तरपदाव्ययीमाव ।

तत्पुरुष नव प्रकार का होता है।

द्वितीया तत्पुरुष । तृतीया तत्पुरुष । चतुर्थी त० । पञ्चमी त० । पष्ठी त० । सप्तमी त० । द्विगु, नञ् श्रौर कर्मधारय ।

वहुत्रीहि दो प्रकार का है।

एक तद्गुणसंविज्ञान दूसरा अतद्गुणसंविज्ञान।

इन्द्र भी तीन प्रकार का होता है।

एक इतरेतरयोग, दूसरा समाहार श्रीर तीसरा एकशोप । इस प्रकार से ४ समासों के १६ (सोलह) भेद समक्तने योग्य हैं। श्रीर इनमें से अञ्चयीभाव, तत्पुरुष श्रीर बहुव्रीहि जुक् श्रीर श्रजुक् भेद से दो २ प्रकार के होते हैं । इनके उदाहरण आगे आवेंगे इन समासों को यथार्थ जानने से सर्वत्र मिले हुए पद पदार्थ ग्रौर वाक्यार्थ जानने में श्रति सुगमता होती है और समस्त पदयुक्त संस्कृत बोलना तथा दूसरे का कहा समक भी सकता है यह भी व्याकरण विद्या की अवयव विद्या है जैसी कि संघि विषय और नामिक विद्या लिख आये । यहां जो पठनपाठन के लिये एक उदाहरण वा प्रत्युदाहरण लिखा है इसे देख इसके समान अन्य उदाहरण वा और प्रत्युदाहरण भी ऊपर से पढ़ने पढ़ाने चाहियें। इसके आगे प्रकृत जो कुछ लिखा जाता है वेंह सब ( समर्थः पदविधिः ) इस सूत्र के भाष्यस्थ वचन हैं ।। जिसको जानने की इच्छा हो वह उक्त सूत्र के महाभाष्य में देख लेवे (सापेच मसमर्थ भवतीति) जो एक पद के साथ अपेदा करके युक्त हो वह समर्थ होता है और जो अनेक पदों के साथ त्र्याकर्षित होता है वह प्रायः समास के योग्य नहीं होता । जो सापेच असमर्थ होता है ऐसा कहा जावे तो राजपुरुषो दर्शनीयः । यहां वृत्ति प्राप्त न होगी यह दोष नहीं, यहां प्रधान सापेच है क्योंकि प्रधान सापेच का भी समास होता है और जहां प्रधान सापेच है वहां वृत्ति अर्थात् समास होगा। उदाहरणस् । देवदत्तस्य गुरुकुलम् । यह दोप नहीं । यहां पष्टी सम्रुदाय गुरुकुल की अपेचा करती है। जहां पष्टी समुदाय की अपेदा नहीं करती वहां समास भी नहीं होता। किमोदनः शालीनाम् । यह कौन से शाली श्रर्थात् चावलों का श्रोदन है ऐसे श्रर्थ में तराडुलमात्र की श्रपेचा करके यह पष्टी नहीं है। इसलिये यह समुदाय अपेचा नहीं । इत्यादिक स्थलों में समास नहीं होता । समास समर्थों का होता है। समर्थ किसको कहते हैं। पृथक् २ अर्थ वाले पदों के एकार्थीमाव को । यहां अगले वाक्यों में पृथक् २ अर्थ वाले पद हैं । जैसे-राज्ञः पुरुषः इस वाक्य में राज्ञः त्र्यौर पुरुषः ये दोनों पद अपने २ त्र्यर्थ के प्रतिपादन करने में समर्थ हैं। श्रीर समास होने से इनका एकार्थीभाव हो जाता है। यथा-राजपुरुष इत्यादि प्रयोगों में समास कृत क्या विशेष है। विभक्ति का लोप अव्यवधान यथेष्ट परस्पर सम्बन्ध एकस्वर एक पद श्रौर एक विभक्ति रहती है। एकार्थी भाव पत्त में समर्थ पद का अर्थ-संगतार्थः समर्थः संसृष्टार्थः समर्थ इति । अरौर जैसे संसृष्टार्थ है जैसे संगतं घृतम् ऐसा कहने से मिला हुआ विदित होता है । और जैसे संसृष्टोऽ-क्रिरिति ऐसा कहने से भी उक्त ही अर्थ विदित होता है और जहां व्यपेदा सामर्थ्य होता है वहां संप्रेचितार्थः समर्थः श्रीर संबद्धार्थः समर्थ इति यहां श्रनेक पदों का

सम्बन्धमात्र प्रयोजन है इस व्यपेचा में अनेक पद अनेक स्वर अनेक विभक्ति वर्त्तमान रहती हैं।

वा॰-स विशेषणानां वृत्तिने वृत्तस्व वा विशेषणं न प्रयु-ज्यत इति वक्तव्यम् ॥

श्चनेक विशेषण युक्त विशेष्य का समास और समस्त का विशेषण के साथ योग नहीं होता । सविशेषण जैसे 'ऋद्धस्य राज्ञः पुरुपः' यहां राजा का विशेषण ऋद्ध होने से पुरुप के साथ राजन् शब्द का समास नहीं होता (वृत) राजपुरुपः इस समस्त राजन् शब्द के साथ ऋद्ध विशेषण का योग भी नहीं हो सकता \* इसलिये समास विद्या को समक्ष लेना सब मनुष्यों को श्चत्यन्त उचित है।

इति भूमिका ॥

<sup>\*</sup> अर्थात् वही असमर्थ होता है कि जिसका सम्बन्ध अनेक पदों के साथ हो जैसे राजन शब्द का सम्बन्ध ऋद और पुरुष के साथ होने से समास न हुआ वैसे सर्वत्र समक्षना चाहिये और जहां प्रधान की अपेचा हो वहां तो सिवशेषण और वृत्त का भी विशेषण के साथ योग होता है जैसे 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' यहां गुरु प्रधान है। इसिलये कुल के साथ समास और देवदत्त का सम्बन्ध भी हो गया॥

# **अथ सामासिकः**॥

अथ सामासिकः ॥ प्रारम्यते । तत्र समासाश्चत्वारः । प्रथमो ऽव्ययीभावः । द्वितीयस्तत्पुरुषः । तृतीयो बहुवीहिः । चतुर्थश्च द्वन्दः ॥

समर्थः पद्विधिः † ॥ २ । १ । १ ॥

ः समर्थपद्योरयं विधिशब्देन सर्वविभक्तयन्तः समासः । समर्थस्य विधिः समर्थविधिः । समर्थयोर्विधिः समर्थविधिः । समर्थानां विधिः समर्थविधिः । समर्थाद्विधिः समर्थविधिः । समर्थे विधिः समर्थविधिः । पद्स्य विधिः पद्विधिः । पद्योविधिः । पद्वानां विधिः पद्विधिः । पदाद् विधिः पद्विधिः । पद्विधः । पद्विधः । पद्विधिः । पद्विधिः । पद्विधिः । पद्विधिः । पद्विधिः । समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च एद्विधिः । पद्विधिः । पद्विधिश्च पद्विधिः । पद्विधिः । समर्थविधश्च पद्विधिः । प्रविधः । समर्थविधश्च पद्विधिः । प्रविधः । समर्थविधयः । समर्यविधयः । समर्थविधयः । समर्थविधः । समर्यविधः । समर्थविधः । समर्थविधः । समर्थविधः । समर्थविधः । समर्थविधः । समर्यविधः । समर्यविधः । समर्थविधः । समर्यविधः । समर्यविधः । समर्थविधः । समर्यविधः ।

यह महाभाष्य का वचन है। जिसमें भिन्न २ पदों का एकपद अनेक स्वरों का

<sup>\*</sup> समासानां व्याख्यानो प्रन्थः सामासिकः । जिस् प्रन्थ में समासों की व्याख्या हो उसका नाम सामासिक है ।

<sup>†</sup> यह सूत्र एक पद छौर अनेक पदों के सम्बन्ध में साधुत्व विधायक है।

<sup>‡</sup> जो यह आगे व्याख्या लिखी जाती है वह सब महाभाष्य की है।

एकस्वर, अनेक विसिक्तयों की एक विसिक्त हो जाती है उसको एकार्थीमाव और एकपद का अनेक पदों के साथ सम्बन्ध होने को व्यपेदाा कहते हैं।। सो प्रत्ययविधान एकपद का अनेक पदों के साथ सम्बन्ध होने को व्यपेदाा कहते हैं।। सो प्रत्ययविधान में और पराङ्गवद्भाव में भी जाननी चाहिये। समास का प्रयोजन यह है कि अनेक पदों का एकपद, अनेक विसिक्तयों की एक विसिक्त और अनेक स्वरों का एक स्वर होना। "वृत्तिस्तिहें कस्मान्न भवति महत्कष्टं श्रित इति। सिवशेषणानां वृत्तिने वृत्तस्य वा विशेषणान्न प्रयुज्यत इति"। यहां महत् शब्द विशेषण और कष्ट विशेषण है।। फिर विशेषण सिहत जो कष्ट है सो श्रित के साथ समास को प्राप्त नहीं होता और जो समास भी कर लें तो भी कष्ट का श्रित के साथ विशेषण का योग नहीं हो सकता। यहां वृत्ति नाम समास का है।। इसके उदाहरण तथा प्रत्युदाहरण इस सूत्र के आगे कहेंगे।।

# सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे ॥ २ । १ । २ ॥

जो आमिन्तित पद परे हो तो पूर्व सुबन्त को पराङ्गबद्भाव स्वर विधि करने में होवे । अर्थात् आमिन्तित पद का जो स्वर है वही पूर्व सुबन्त का स्वर हो जावे । संबोधन पद के परे सुबन्त पूर्व पद के स्थान में पराङ्गवत् अर्थात् संबोधन पद का जो स्वर है वही स्वर हो जाता है । कुण्डेनाटन् । परशुना वृश्चन् । मद्राणां राजन् । कश्मीराणां राजन् । मगधानां राजन् । सुबिति किम् । पीडिये पीडियमान । आमिन्तित इति किम् । गेहे गार्थः । परमहणां किम् । पूर्वस्य माभूत् । देवदत्तस्य कुण्डेनाटन् । स्वर इति किम् । कूपे सिद्धन् । चर्मे नमन् ।।

# वा०-षत्वणत्वे प्रति पराङ्गवन्न भवति । वा०-सुबन्तस्य पराङ्गवद्भावे समानाधिकरणस्योपसंख्यानमनन्तरत्वात् ॥

जैसे । तीक्ण्या सूच्या सीव्यन् । तीक्ण्नेन परशुना बृश्चन् ।।

वा०-अञ्ययानां प्रतिषेधो वक्तञ्यः ॥

उचैरधीयान । नीचैरधीयान ।।

### प्राक् कडारात् समासः ॥ २ । १ । ३ ॥

जो इस सूत्र से श्रागे (कडाराःकर्मघारये) यह सूत्र है वहां तक समास का

#### सह सुपा॥ २।१।४॥

सहमह्यां योगविभागार्थम् । सह सुप् समस्यते केन सह । समर्थेन । श्रनुव्यचलत् । श्रनुविशत् । ततः सुपा च सह सुप् समस्यते । उदाहरणम् । श्रनाकृपाणीयम् । पुनक-त्स्यूतम् । वासो देयं न पुनर्निष्कृतोरथः । श्राधिकारश्च लच्चणं च यस्य समासस्यान्य-रुलच्चणं नास्ति इदं तस्य लच्चणं भविष्यति । ऐसा जानना कि जिसका लच्चण कोई सूत्र न होवे उस समास की सिद्धि करने वाला यह सूत्र है । यहां से श्रागे तीन पद का श्राधिकार है । सो ये हैं—सह । सुप श्रीर पासु ।।

वा०-इवेन सह समासो विभक्तयलोपः पूर्वपद्प्रकृतिस्व-रत्वश्च वक्तव्यम् ॥

जैसे । वाससी इव । कन्ये इव ।।

#### अव्ययीभावः ॥ २।१।५॥

यहां से आगे जो समास कहेंगे उसकी अव्यय संज्ञा जानना चाहिये। पूर्वपदार्थ-प्रधानोऽन्ययीभाव:। अव्ययीभावसमास में पूर्वपद का अर्थ प्रधान होता है।।

अञ्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्धयऽर्थाभावाऽत्ययाऽसम्प्रति-शब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथाऽऽनुपूर्वययोगपद्यसादृश्यसंपत्तिसाकल्या-बन्तवचनेषु ॥ २ । १ । ६ ॥

विभक्ति से लेके अन्त शब्द पर्यन्त १६ (सोलह) अर्थ हैं उनमें वर्त्तमान जो अब्यय हैं सो सुवन्त के साथ समास पावें वह अव्ययीभाव संज्ञक हों। "विभक्ति-वचने तावत"। वचन शब्द का विभक्ति आदि सब के साथ योग जानना (विभक्ति) स्त्रीब्विधिस्त कथा प्रवर्त्तते। अधिक्ति \* अधिकुमारि।

#### ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ॥ १।२। ४७॥

जो नपुंसक लिङ्ग अर्थ में वर्तमान प्रातिपादक हो तो उसके अच् को हस्व हो। अतिरि कुलम् । अधिकि इत्यादि । नपुंसक इति किम् । प्रामणीः । सेनानीः । प्राति-पदिकस्येति किमर्थम् । काण्डे तिष्ठतः । कुड्ये तिष्ठतः ।।

<sup>\* &#</sup>x27;अञ्ययीभावश्च' इस सूत्र से यहां नपुंसक लिङ्ग होता है। और ''अञ्ययादा-प्सुपः" इस सूत्र से यहां सुप् का लुक् होता है।

#### वा०-समीपवचने ॥

कुम्भस्यं समीपम् उपकुम्भम् । उपमणिकम् । उपशालम् ।।

# नाव्ययीभावाद्तोऽम् त्वपञ्चम्याः ॥ २ । ४ । ८३ ॥

अद्गत अन्ययीभाव समास से सुप् का लुक् न हो किन्तु उसको अम् आदेश हो जाय पक्षमी को वर्ज के । जैसे । उपराजम् । अधिराजम् । अनश्चेतिटच् । उपम-ग्रिकं तिष्ठति । उपमग्रिकं पश्य । उपकुम्भं पश्यति । अपक्षम्या इति किम् । उप-कुम्भादानय ॥

तृतीयासप्तम्योर्वहुलम् ॥ २ । ४ । ८ ।

1000

श्रदन्त श्रव्ययीमाव समास से तृतीया और सप्तमी को श्रम् श्रादेश वहुल करके हो श्रश्नीत् पत्त में लुक् हो । जैसे उपकुम्मं कृतम्। उपकुम्मेन कृतम्। उपकुम्मे निघेहि । उपकुम्मे निघेहि ।। (समृद्धि ) मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् । सुमगधं वर्तते । (व्यृद्धि ) श्रृद्धि का न होना ''गवदिकानामृद्धेरमावः" दुर्गवदिकम् । दुर्थवनम् वर्तते (श्रव्यामाव ) वस्तु का श्रमाव । मित्तकाणामभावो निर्मित्तकम् । निमेशकम् वर्त्तते (श्रत्ययः ) नाशः । श्रतीतानि हिमानि यं समयं निर्हिमम् । निःशितं वर्त्तते (श्रसंप्रति ) श्रश्नीत् इस समय न हो । सप्रति ज्ञनास्ति । श्रतिज्ञथम् । श्रतित्वेषृकम् (शव्दप्राद्धुमोव ) श्रव्द का प्रकाश होना । रथानां प्रश्चात् श्रनुरथं पादातम् । योग्यता । विप्ता । पदार्थानतिवृत्तिः । सादश्यं चेतियथार्थाः । श्रनुरूपं । यह रूप के योग्य है । श्रर्थमर्थम्प्रतीति प्रत्यर्थम् । पदार्थानतिवृत्ति । यथाशिकि । यथावलिमत्यादि (श्रानुपूर्व्यम् ) श्रनुक्रमम् । श्रनुज्येष्टं प्रविशन्तु भवन्तः (योगप्य ) एककालं सवकं धेहि युगपचकं धेहित्यर्थः (सादश्य ) नाम समान । काले समानम् । सहशः सख्या । ससिखि (संपत्तिः) श्रर्थात् श्रच्छे प्रकार प्राप्ति । ब्रह्मणः संपत्तिः सब्रह्म । सधनम् देवदत्तस्य (साकल्य ) नाम सब । तुषेण सह मुङ्के सतुषम् । सबुसम् (श्रन्तवचन )

### यन्थान्ताधिके च ॥ ६ । ३ । ७६ ॥

जो मन्थ उत्तर पद् परे हो तो मन्थान्त में तथा आधिक अर्थ में वर्त्तमान जो सह शब्द है उसको स आदेश हो । सज्योतिषमधीते । समुहूर्त्तम् । ससंप्रहं व्याकरण-मधीते । अधिके । सद्रोणा खारी । समाषः कार्पापणः ।।

### अञ्चयीभावे चाकाले ॥ ६ । ३ । ८२ ॥

अव्ययीभाव समास में कालवाची भिन्न उत्तरपद परे हो तो सह को स आदेश हो। सचकम्। सबुसम्। अकाल इति किम्। सह पूर्वोह्नम्। सभाष्यम्। साग्न्यधीते।

#### यथा साहरये ॥ २ । १ । ७ ॥

जो सादृश्य भिन्न द्यर्थ में त्राञ्यय सो सुवन्त के संग समास को प्राप्त हो सो समास व्याञ्ययीभाव संज्ञक हो। यथा वृद्धं त्राह्मणानामन्त्रयस्त्र। ये ये वृद्धाः यथावृद्धम्। यथाऽध्यापकम्। त्रासाद्दश्य इति किम्। यथा देवदत्तस्तथा यज्ञदत्तः।

#### यावद्वधारमे ॥ २ । १ । = ॥

जो अवधारण अर्थ में वर्त्तमान अन्यय सो सुवन्त के संग समास पावे । यावद-मत्रं ब्राह्मणानामन्त्रयस्य । यावन्त्यमत्राणि संभवन्ति पंच पड् वा तावत आमन्त्रयस्य । अवधारण इति किम् । यावहत्तं तावद्धक्तम् । नावधारयामि । कियन्मया भुक्तमिति ।

#### सुप्प्रतिना मात्रार्थे ॥ २ । १ । ६ ॥

मात्रा विन्दुः स्तोकमल्पामिति पर्यायाः । जो मात्रार्थ में वर्त्तमान प्रति उसके साथ सुवन्त समास पावे सो अव्ययीभाव संज्ञक हो । अस्त्यत्र किञ्चिच्छाकम् । शाकप्रति । सूपप्रति । ओदनप्रति । मात्रार्थ इति किम् । वृद्धं प्रति विद्योतते विद्युत् । सूबिति वर्त्त-माने पुनः सुव्यहणमञ्ययानिवृद्यर्थम् ।

#### अक्षरालाकासंख्याः परिगा।। २ । १ । १० ॥

जो श्रन्त शलाका श्रीर संख्यात्राची शब्द एक द्वि त्रि इत्यादि परि के साथ समास को प्राप्त हों वह श्रव्ययीभाव संज्ञक समास है । श्रन्तेण परिक्रीड़न्त इति श्रन्तपरि । शलाकापरि । एकपरि । द्विपरि । त्रिपरि ।

## वा०-अक्षरालाकयोश्चैकवचनान्तयोरिति वक्तव्यम् ॥

इहं माभूत् अज्ञाभ्यां वृत्तमज्ञैर्वृत्तम् ।

### वा०-कितवव्यवहार इति वक्तव्यम्।।

्र इहं माभूत् । श्रज्ञेणीदं न तथा वृतं शकटेन तथा पूर्विभिति ।

### विभाषा ॥ २ । १ । ११ ॥

अधिकार । इसके आगे जो २ समास कहेंगे सो २ विभाषा करके होंगे अर्थात् पद्म में विम्रह भी रहेगा जहां २ वि० ऐसा संकेत करें वहां २ विकल्प जानना ।

# अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या ॥ २ । १ । १२ ॥

जो अप परि बहिस् और अञ्चु का सुवन्त के साथ समास विकल्प करके होता है वह अञ्चयीभाव कहाता है। जैसे वि० अपित्रगर्ते वृष्टो देव:। अपित्रगर्तेभ्यो वा। प्रामाद्बहिबहिर्मामम्। बहिर्मामात्। बहिश्शब्दयोगे पञ्चमीभावस्यैतदेव ज्ञापकम्।

# क्रिआङ्मर्यादाभिविध्योः ॥ २।१।१३॥

जो मर्योदा श्रौर श्राभिविधि श्रथं में श्राङ् पंचम्यन्त सुबन्त के सङ्ग वि० समास को प्राप्त होता है सो समास श्रव्ययीमाव संज्ञक होवे । श्रापाटिलपुत्रं वृष्टो देवः । श्रापा-टिल पुत्रात् । श्राभिविधि । श्राकुमारं यशः पाणिनेः । श्राकुमारेभ्यः ।

### लक्षणेनामित्रती आभिमुख्ये ॥ २ । १ । १४ ॥

जो आभिमुख्य अर्थ हो तो लच्च अर्थात् चिह्नवाची सुवन्त के साथ अभि और प्रति वि० समास को प्राप्त हों वह अन्ययीभाव स० हो। जैसे। अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति। अग्निमाभि। प्रत्यग्नि। आर्ग्नि प्रति। आभिमुख्ये किम्। देशंप्रति गतः।

### अनुर्यत्समया ॥ २ । १ । १५ ॥

समया नाम समीपता। जिसके समीप को श्रातु कहता हो उसी लच्चा वाची सुब-न्त के साथ वि० समास पावे सो श्राञ्ययीभाव संज्ञक हो। जैसे। श्रातुवनमशनिर्गतः। श्रातुष्टचम्। श्रातुरिति किम्। वनं समया। यत्समयेति किम्। वृत्तमतु विद्योतते विद्युत्।

#### यस्य चायामः ॥ २ । १ । १६ ॥

आयामो दैर्घ्यम् । जिसके लम्बेपन को अनु कहता हो उसी लच्च एकाची सुबन्त के सङ्ग वि० समास पावे सो अञ्ययीभाव संज्ञक हो । अनुगङ्गं वाराणसी । अनुयसुन नम्मथुरा । यसुनाऽऽयामेन मथुराऽऽयामो लच्यते । आयाम इति किम् । वृच्चमनुविद्यो-तते विद्युत् ।

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च ॥ २ । १ । १७ ॥

जो तिष्ठद्गु आदि शब्द निपातन किये हैं वे अव्ययीभाव संज्ञक हों। तिष्ठद्गु-

कालविशेषः । जैसे तिष्ठान्ति गावो यस्मिन् काले दोहनाय, स तिष्ठद्गु कालः । वहद्गु । स्रायतीगवम् ।

### वा०-खबेयवादीनि प्रथमान्तान्यन्यपदार्थे समस्यन्त इति वक्तव्यम् ।

जैसे । खलेवुसम् । खलेयवम् । लूनयवम् । लूयमानयवम् । पूतयवम् । संहितवु-सम् । संहियमाणवुसम् । एते कालशब्दाः । समभूमि । समपदाति । सुषमम् । विषमम् । निष्णमम् । दुष्णमम् । श्रापसमम् । प्राह्णम् । प्ररथम् । प्रमृगम् । प्रदिश्चिणम् । श्रापरद-चिणम् । संप्रति । श्रासंप्रति । पापसमम् । पुर्थसमम् ।

### वा०-इच् कर्भव्यतिहारे ॥

द्र्यडाद्रिड । मुसलामुसालि । नखानिख ।

#### पारे मध्ये षष्टचा वा ॥ २ । १ । १८ ॥

जो पार और मध्य शब्द पष्टचन्त सुवन्त के सङ्ग वि० समास पावें सो समास आव्ययीभाव संज्ञक हो। और एकारान्त निपातन भी किया है। जैसे। पार गङ्गायाः पारे गङ्गम्। पछीसमास पद्मे। गङ्गापारम्। गङ्गामध्यम्। यहां फिर (वा) प्रहण् का प्रयोजन यह है कि पद्म में पछी समास हो के वाक्य भी रह जावे। जैसे। गङ्गायाः पारम्। गङ्गाया मध्यम्।

#### संख्या वंश्येन ॥ २ । १ । १६ ॥

जो वंश्यवाची सुबन्त के साथ संख्यावाची सुबन्त वि० समास पावे सो अव्ययी-भाव संज्ञक हो, जैसे । द्वौ सुनी व्याकरणस्य वंश्यौ । द्विसुनि व्याकरणस्य \* । त्रिसुनि व्याकरणस्य † ।

#### नदीमिश्रा। २।१।२०॥

जो संख्यावाची सुबन्त नदीवाची सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त वि० होवें सो०। जैसे। सप्तगङ्गम्। द्वियमुनम्। पंचनदम्। सप्तगोदावरम्।

### अव्ययीमावे शरत्प्रमृतिभ्यः ॥ ५ । ४ । १०७ ॥

\* दो मुनि अर्थात् पाणिनि और पतञ्जाले । † तीन मुनि अर्थात् पाणिनि, पतञ्जाले और शाकटायन । श्राव्ययीभाव समास में शरत् आदि प्रातिपदिकों से टच् प्रत्यय होवे । जैसे । शरदः समीपम् उपशरदम् । प्रतिशरदम् । उपविपाशम् । प्रतिविपाशम् । श्रव्ययीभाव इति किम् । परमशरत् ।

# अनश्च ॥ ५ । ४ । १०८ ॥

अन् जिसके अन्त में हो उस सुवन्त से टच् प्रत्यय हो । जैसे । राज्ञः समीपं उपराजम् । आत्मिनि अधि इति अध्यात्मम् । प्रत्यात्मम् ।

# नपुंसकाद्न्यतरस्याम् ॥ ५ । ४ । १०९ ॥

अन्नन्त नपुंसक सुबन्त से अव्ययीभाव समास में समासान्त टच् प्रत्यय वि० हो । चर्म चर्म प्रति इति प्रतिचर्मम् । प्रतिचर्म । उपचर्मम् । उपचर्म ।

Ó.

# नदी पौर्णमास्यामहायणीभ्यः ॥ ५ । ४ । ११० ॥

नदी, पौर्णमासी, श्राप्रहायणी, ये तीन प्रातिपदिक जिनके श्रन्त में हों उन सम-स्त समुदायों से श्रव्ययीभाव समास में समासान्त टच् प्रत्यय वि० हो । जैसे । नद्याः समीपं उपनदम् । उपनदि । उपपौर्णमासम् । उपपौर्णमासि । उपाप्रहायणम् । उपाप्रहायणि ।

#### अस्यः ॥ ५ । ४ । १११ ॥

भत्य प्रत्याहार जिसके घ्रन्त में हो उस सुवन्त से घ्रव्ययीभाव समास में समा-सान्त टच् प्रत्यय वि० हो । जैसे । उपसमिधम् । उपसमित् । उपद्यवद्म् । उपद्यवत् । धातिद्यथम् । घ्रातिद्यत् ।

#### गिरेश्च सेनकस्य ॥ ५ । ४ । ११२ ॥

सेनक आचार्य के मत में गिरि शब्दान्त शातिपदिक से अव्ययीभाव समास में समासान्त टच् प्रत्यय वि० हो । जैसे । अंतर्गिरम् । अन्तर्गिरि । उपगिरम् । उपगिरि । अव्ययीभाव समास में इतने समासान्त प्रत्यय होते हैं ।

### अन्यपदार्थे च सञ्जायाम् ॥ २ । १ । २१ ॥

जो संज्ञा हो तो श्रन्य पदार्थ में वर्तमान जो सुवन्त सो नदीवाची सुबन्त के साथ समास पावे । जैसे । उन्मत्तगङ्गं नाम देशः । लोहितगङ्गं नाम देशः । कृष्णगङ्गं नाम देशः।शनैर्गङ्गं नाम देशः । श्रन्य पदार्थ इति किम् । कृष्णपेणी । संज्ञायामिति किम् । शीव्रगङ्गो देशः । इत्यव्ययीभावः समासः समाप्तः ॥

#### अथ तत्पुरुषः ॥

#### तत्पुरुषः ॥ २ । १ । २२ ॥

यहां से लेके वहुत्रीहि समास से पूर्व २ तत्पुरुष समास का श्राधिकार है।

#### उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्युरुषः ॥

तत्पुरुष समास में उत्तरपद का ऋर्थ प्रधान होता है।

#### हिगुश्च ॥ २ । १ । २३ ॥

द्विगु समास भी तत्पुरुष संज्ञक होता है "द्विगोस्तत्पुरुषत्वे समासान्ताः अयोजनम्"।

#### समासान्ताः ॥ ५ । ४ । ६८ ॥

श्रव जो प्रत्यय कहेंगे वे समासान्त होंगे श्रार्थात् उनका समास के ही साथ प्रहण किया जायगा । जैसे।पंचराजी । दशराजी । पंचराजम् । दशराजम् । द्वयहः । ऋग्रहः । पंचगवम् । द्वरागवम् ।

### गोरतद्धितलुकि॥ ४। ४। ६२॥

तद्धितलुक् को वर्ज के गो शब्दान्त तत्पुरुप से समासान्त टच् प्रत्यय हो। जैसे। परमगवः। उत्तमगवः। पंचगवम्। दशगवम्। श्रतद्धितलुकीति किम्। पंचमिर्गोभिः क्रीतः। पंचगुः। दशगुः। तद्धितप्रह्णेन किम्। सुव्दुकि प्रतिषेधो माभूत्। जैसे। राजगविभच्छति राजगवीयति। लुग्प्रह्णात्किम्। तद्धित एव माभूत्। पंचभ्यो गोभ्य श्रागतं पंचगवरूप्यम्। पंचगवमयम्।

# ऋक्यूरब्धः पथामानक्षे ॥ ५ । ४ । ७४ ॥

जो अन्तसम्बन्धी अर्थ न हो तो ग्रह्यक् । पुर् । अप् । धुर् और पथिन् ये जिनके अन्त में हों उन प्रातिपदिकों से समासान्त अकार प्रत्य हो । जैसे । अविद्य-माना ऋक् यस्मिन्सोऽनृचो ब्राह्मणः । बह्वृचः । ब्राह्मणपुरम् । नान्दीपुरम् । द्विर्गता आपो यस्मिन् तद्द्वीपम् । अन्तरीपम् । समीपम् । राज्ञान्धः । राजधुरा । महापुरा । देवपथः । जलपथः । अनम् इति किम् । अन्तस्य धूः अन्नधः । दृढध्रानः ।

# अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः ॥ ५ । ४ । ७५ ॥

जो प्रति । अनु और अव पूर्वक सामन् और लोमन् प्रातिपदिक हों तो उनसे समासान्त अच् प्रत्यय हो । प्रतिसामम् । अनुसामम् । अवसामम् । प्रतिलोमम् । अनुलोमम् । अवलोमम् ।

# अक्षणोऽदर्शनात् ॥ ५ । ४ । ७६ ॥

दर्शन भिन्न द्यर्थ में श्राचि शब्द से समासान्त श्रच् प्रत्यय हो। जैसे। पुष्कराच्चम्। उदुम्बराच्चः। श्रदर्शनादिति किम्। ब्राह्मणाचि ।

## ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः॥ ५।४।७८॥

ब्रह्मन् द्यौर इस्तिन् शब्द से परे जो वर्षस् उससे समासान्त श्रम् प्रत्यय हो । जैसे । ब्रह्मणो वर्षः । ब्रह्मवर्षसम् । इस्तिनो वर्षः । इस्तिवर्षसम् ।

# वा०-पल्ल्यराजभ्याञ्चेति वक्तव्यम् ॥

पल्ल्यवर्चसम् । राजवर्चसम् ।

### अवसमन्धेभ्य स्तमसः ॥ ५ । ४ । ७६ ॥

अव । सम् श्रौर श्रन्ध शब्द से परे जो तमस् उससे समासान्त श्रन् प्रत्यय हो । जैसे । श्रवगतं नाम प्राप्तं तमः । श्रवतमसम् । सम्यक्तमः । सन्तमसम् । श्रन्धन्तमः । श्रन्धतमसम् ।

### श्वसो वसीयः श्रेयसः ॥ ४ । ४ । ८० ॥

जो श्वस् शब्द से परे वसीयस् श्रीर श्रेयस् शब्द हों तो उनमें समासान्त श्रच् प्रत्यय हों । श्वोवसीयसम् । श्वःश्रेयसम् ।

### अन्ववतप्ताद्रह्सः ॥ ४ । ४ । ८१ ॥

अनुरहसम् । अवरहसम् । तप्तरहसम् ।.

### प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात्॥ ५। ४। ८२॥

जो प्रति से परे सप्तमीस्थ उरस् उससे समासान्त अन् प्रत्यय हो । जैसे । उरसि प्रति प्रत्युरसम् । सप्तमीस्थादिति किम् । प्रतिगत सुरः प्रत्युरः ।

### अनुगवमायामे ॥ ५ । ४ । ८३ ॥

यहां श्रायाम श्रर्थ में श्रनुगव श्रच् प्रत्ययान्त निपातन किया है । गोरनु । श्रनु-गवम् यानम् । श्रायाम इति किम् । गवां पश्चादनुगु ।

#### द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः ॥ ५ । ४ । ८४ ॥

जो वेदी के प्रमाण से श्राधिक द्विगुण वा त्रिगुण वेदी हो सो कहिये द्विस्तावा। त्रिस्तावा। ये वेदी के नाम हैं।

#### उपसर्गाद्ध्वनः ॥ ५। ४। ८ । ८४॥

उपसर्ग से परे जो अध्वन् उससे समासान्त अच् प्रत्यय हो । जैसे । प्रगतोऽ-ध्वानम् । प्राध्वोरथः । प्राध्वं शकटम् । निरध्वम् । प्रत्यध्वम् । उपसर्गादिति किम् । पर-साध्वा । उत्तमाध्वा ।

### तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः॥ ५ । ४ । ८६ ॥

जो तत्पुरुष समास में अङ्गुलि शब्दान्त हो तो उससे समासान्त अच् प्रत्य हो संख्यादि जैसे । द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य तद्द्वयङ्गुलम् । ज्यङ्गुलम् । यहां तदि-तार्थ में समास और मात्रच् प्रत्यय का लोप जानना । अव्ययादि—निर्गतमङ्गुलिभ्यो-निरङ्गुलम् । अत्यङ्गुलम् । तत्पुरुषस्येतिकिम् । पंचाङ्गुलिः । अत्यङ्गुलिः पुरुषः । (द्वन्द्वाच्चुदषद्दान्तात् समाहारे ) इस सूत्र से पूर्व २ तत्पुरुष का अधिकार जानना ।

### अहस्सर्वेकदेशसंख्यातपुण्याच रात्रेः ॥ ४ । ४ । ८७ ॥

श्रहन् । सर्व । एकदेश वाची । संख्यात श्रौर पुण्य । चकार से संख्या श्रौर श्रव्यय इनसे भी उत्तर जो रात्रि उससे समासान्त श्रच् प्रत्यय हो । श्रह्मेहणं द्वन्द्वार्थं द्रष्टव्यम् । श्रह्श्रयात्रिश्च श्रहोरात्रः । एकदेशे पूर्वरात्रः । श्रपरात्रः । पूर्वापराधरेति समासः । संख्याता रात्रिः संख्यातरात्रः । पुण्यारात्रः । पुण्यरात्रः । द्वे रात्री समाहृते द्विरात्रः ।

### अहनोऽह्व एतेभ्यः ॥ ५ । ४ । ८८ ॥

( एतेभ्यः ) अर्थात् संख्या । अव्यय और सर्व एकदेश इत्यादि शब्दों से परे जो अहन् उसको श्रह्न आदेश हो । संख्यायास्तावत् । जैसे । द्वयोरह्नोभेवो द्वयहः । त्रवहः । श्रहरति क्रान्तः । श्रत्यहः । निरहः । सर्वे च तद्दश्च । सर्वोहः । पूर्वश्च तद्दश्च । पूर्वोह्णः श्रपराह्णः । संख्याताहः ।

# न संख्यादेः समाहारे ॥ ५। ४। ८६॥

जो समाहार में वर्त्तमान ग्रौर संख्यादि तत्पुरुष उससे परे ग्रहन् शब्द को श्रह श्रादेश न हो । जैसे । द्वे श्रहनी समाहते द्वयहः । त्र्यहः इत्यादि । समाहारे इति किम् । द्वयोरह्वोर्भवः द्वयहः । त्र्यहः । तद्वितार्थं इति समासे कृतेऽण श्रागतस्य द्विगो-रिति लुक् ।

\*

### उत्तमैकाभ्याञ्च ॥ ४ । ४ । ६० ॥

उत्तम अर्थात् पुष्य । श्रौर एक इनसे परे श्रहन् को श्रह्न श्रादेश न हो । जैसे । पुष्याहः । एकाहः ।

# राजाहस्सिविभ्यष्टच् ॥ ४ । ४ । ६१ ॥

राजनं, श्रहन् श्रौर साखि इन प्रातिपदिकों से परे समासान्त टच् प्रत्यय हो । जैसे । महाराजः । मद्रराजः । परमाहः । उत्तमाहः । देवसखः । राजसखः । ब्रह्मसखः ।

### अव्राख्यायामुरसः ॥ ५ । ४ । ६३ ॥

अप्राख्या अर्थ में उरस् शब्दान्त तत्पुरुष समास से टच् प्रत्यय हो । जैसे । अश्वानामुरः । अश्वोरसम् । इस्त्युरसम् । अप्राख्यायामिति किम् । देवदत्तस्योरः । देवदत्तोरः ।

# अनोरमायस्सरसां जातिसञ्जयोः ॥ ५ । ६ । ६ ४ ॥

जाति और संज्ञा के विषय में अनस् अश्मन् अयस् और सरस् और शव्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो। जैसे। उपानसभिति जाति:। महानसमिति संज्ञा। अमृताश्ममिति जाति:। पिएडाश्म इति संज्ञा। कालायसमिति जाति:। लोहितायसमिति संज्ञा। मएड्रकसरसमिति जाति:। जलसरसमिति संज्ञा। जातिसंज्ञयोरिति किम्। सद्न:। सदश्मा। उत्तमाय:। सत्सर:।

## यामकौटाभ्यां च तत्त्णः ॥ ५। ४। ६५॥

याम और कौट से उत्तर जो तश्वन् उससे टच् प्रत्यय हो । प्रामस्य तचा प्राम-तचः । कौटस्य तचाः कौटतचाः । प्रामकौटाभ्यांचेति किम् । राज्ञस्तचाः।

#### अतेः ग्रुनः ॥ ५ । ४ । ६६ ॥

श्राति से उत्तर श्वन् तदन्त जो तत्पुरुष उससे समासान्त टच् प्रत्यय हो । जैसे । श्रातिकान्तः श्वानमतिश्वः । वराहो जववानित्यर्थः । श्रातिश्वः सेवकः । सुष्टु स्वामि-भक्त इत्यर्थः ।

#### उपमानाद्प्राणिषु ॥ ५ । २ । ६७ ॥

प्राणि भिष्न व्यर्थ में उपमानवाची श्वन् शब्द से टच् प्रत्यय हो । जैसे । त्राकर्षः श्वेव व्याकर्षश्वः । फलकश्वः । उपमितं व्याद्वादिभिरिति. समासः । उपमानादिति किम् । नश्वा । व्याया ।

### उत्तरसृगपूर्वाच सक्थनः ॥ ५ । ४ । ९८ ॥

उत्तर, सृग घ्रौर पूर्व चकार से उपमानपूर्वक जो सक्थिन तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो । उत्तरसक्थम् । सृगसक्थम् । पूर्वसक्थम् । उपमान । फलकमिव सक्थि फलकसक्थम् ।

#### नावो द्विगोः ॥ ५ । १ । ९९ ॥

नौ शब्दान्त द्विगु ले समासान्त टच् प्रत्यय हो । द्वे नावौ समाहते द्विनावम् । त्रिनावम् । द्वे नावौ धनमस्य द्विनावधनः। पंचनाविष्रयः। द्वाभ्यात्रौभ्यामागतं द्विनावरू-प्यम् । द्विनावसयम् । द्विगोरिति किम् । राजनौः । श्रतद्वितलुकीत्येव । पंचभिनौंभिः क्रीतः पश्चनौः । दशनौः ।

#### अर्द्धा । ५ । ४ । १०० ॥

जो द्यर्द्ध से परे नौ शब्द हो तो उससे समासान्त टच् प्रत्यय हो । द्यर्द्ध नावः व्यर्द्धनावम् ।

### खार्च्याः प्राचाम् ॥ ५ । ४ । १०१ ॥

प्राचीन आचार्यों के मत में अर्द्ध से उत्तर खारी शब्द और खारी शब्दान्त द्विगु इनसे समासान्त टच् प्रत्यय हो । अर्द्ध खार्याः अर्द्धखारम् । अर्द्धखारी । द्वे खाय्यौं समाहते द्विखारम् । द्विखारि । त्रिखारम् । त्रिखारि ।

#### द्वित्रिभ्यामञ्जलेः ॥ ५ । ४ । १०२ ॥

द्धि श्रौर त्रि शब्द से परे जो श्राङ्खालि उससे समासान्त टच् प्रत्यय हो।

द्वावञ्जली समाहतौ द्वश्वञ्चलम् । ज्यञ्जलम् । द्विगोरित्येव । द्वयोरञ्जलिः द्वश्वञ्जलिः । अतिदित्तलुकीत्येव । द्वाभ्यामञ्जलिभ्यां क्रीतः द्वश्वञ्जलिः । ज्यञ्जलिः । प्राचामित्येव । द्वश्वञ्जलिप्रियः ।

# अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्द्सि ॥ ५ । ४ । १०३॥

9

नपुंसकितङ्ग वाची जो अनन्त और असन्त तत्पुरुष उससे समासान्त टच् प्रत्यय हो वेद के विषय में । हिस्तिचर्मे जुहोति । वृषभचम्मेंऽभिषिख्नति । असन्तात् । देव-च्छन्दसानि । मनुष्यच्छन्दसानि । अनसन्तादिति किम् । विल्वदारु जुहोति । नपुंस-कादिति किम् । सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसम् । अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दिस वा वचनम् । ब्रह्मसाम । देवच्छन्दः । ब्रह्मसामम् । देवच्छन्दसम् ।

### ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम् ॥ ५ । ४ । १०४ ॥

ब्रह्मन् शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो जानपद की आख्या अर्थ में । सुराष्ट्रेषु ब्रह्मा सुराष्ट्रब्रह्मः । अवन्तिब्रह्मः । पद्धालब्रह्मः । जानपदाख्यायामिति किम् । देवब्रह्मा नारदः ।

### कुमहद्भचामन्यतरस्याम् ॥ ५ । ४ । १०५ ॥

कु और महत् से परे जो ब्रह्मन् शब्द सो अन्त में जिसके उस तत्पुरुष से समा-सान्त टच् प्रत्यय हो । कुब्रह्मः । कुब्रह्मा । महाब्रह्मः । महाब्रह्मा । ब्राह्मणपर्यायो ब्रह्मन्शब्दः ।

<u> दितीयाश्चितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ॥ २ । १ । २४ ॥</u>

द्वितीयान्त समर्थ जो सुबन्त सो श्रित श्रात पतित गत श्रात्यस्त प्राप्त श्रोर श्रापत्र इस सुबन्तों के संग वि० समास पावे । सो समास तत्पुरुष संज्ञक हो \* । कष्टं श्रितः कष्टश्रितः । नरकश्रितः । कान्तारमतीतः । कान्तारातीतः । नरकं पतितः नरकपतितः । प्रामं गतः प्रामगतः । व्यसनमत्यस्तः । व्यसनात्यस्तः । सुखं प्राप्तः सुखप्राप्तः । सुख-मापन्नः सुखापन्नः । समर्थप्रहणं किमर्थम् । पश्य देवद्तः कष्टं श्रितो विष्णुमित्रो गुरुष्ठ- लम् । यहां कष्ट शब्द का संबन्ध पश्य किया के साथ है इसित्ये समास नहीं होता ।

<sup>\*</sup> यहां से आगे द्वितीया तत्पुरुष समास चला ।

#### वा॰-श्रितादिषु गमिगाम्यादानामुपसङ्ख्यानम् ॥

मामं गमी प्रामगमी । प्रामं गामी प्रामगामी । श्रोदनं बुमुद्धः श्रोदनबुमुद्धः ।

#### स्वयं केन ॥ २ । १ । २५ ॥

स्वयं सुवन्त कान्त सुवन्त के संग वि॰ जो समास हो सो समास तत्पुरुष संज्ञक हो । जैसे। स्वयंधौतौ पादौ । स्वयंविलीनमाज्यम् । एकपद्यमैकस्वर्यं च समासत्वाद् भवति।

#### खट्वाक्षेपे ॥ २ । १ । २६ ॥

च्चेप नाम निंदा का है। द्वितीयान्त खट्वा सुबन्त, कान्त सुबन्त के संग वि० समास को प्राप्त हो सो समास तत्पुखप संज्ञक हो। जैसे। खट्वारोहणं चेह विमार्गस्था-नस्योपलच्चणम् सर्वण्वायमविनीतः खट्वारूढ इत्युच्यते। खट्वारूढो जाल्मः। खट्वाण्लुतः। अपर्थप्रस्थित इत्यर्थः। च्चेप इति किम्। खट्वामारूढः।

#### सामि॥ २।१।२७॥

यह सामि श्रव्यय श्रद्धे का पर्याय है । जैसे । सामिकृतम् । सामिपीतम् । सामि-भुक्तम् ।

#### कालाः ॥ २ । १ । २ = ॥

जो द्वितीयान्त काल वाचि सुवन्त शब्द कान्त सुवन्त के साथ समास वि० पावे सो तत्पुरुष संज्ञक हो । जैसे । षण्मुहूर्त्ताश्चराचराः । ते कदाचिदहर्गच्छन्ति । कदा-चिद्रात्रिम् । श्रहरतिसृता मुहूर्त्ताः । श्रहस्संक्रान्ताः । राज्यतिसृता मुहूर्ताः । रात्रिसंक्रा-न्ताः । मासप्रमितश्चन्द्रमाः । मासं प्रमातुमारच्यः प्रतिपचनद्रमा इत्यर्थः ।

### अत्यन्तसंयोगे च ॥ २।। १। २६ ॥

द्वितीयान्त कालवाची सुवन्त, सुवन्त के संग समास पावे श्रत्यन्त संयोग श्रर्थ में । श्रत्यन्त संयोग नाम सर्वसंयोग का है । जैसे । सुहूर्त्त सुखम् सुहूर्त्तसुखम् । सर्व-रात्रकल्याणी । सर्वरात्रशोभना ।

#### तृतीयातत्कृतार्थेन गुणवचनेन \*॥ २। १। ३०॥

जो रुतीयान्त सुबन्त ( तत्कृतेन ) श्रर्थात् तृतीयार्थकृत गुण वचन के साथ

\* यहां से आगे तृतीया तत्पुरुष समास का आरम्भ जानो ॥

समास हो । तथा तृतीयान्त सुवन्त, अर्थ सुवन्त के संग भी समास हो सो तृतीया तत्पुरुष हो, उपादानेन विकलः उपादानिविक्लः । किरिणा काणः किरिकाणः । राङ्कु-लया खण्डः राङ्कुलाखण्डः । धान्येनार्थः । धान्यार्थः । तत्कृतेनेति किम् । अद्णा काणः । गुणवचनेनेति किम् । गोभिविपावान् । समर्थप्रहणं किम् । त्वं तिष्ठ रांकुलया । खण्डो धावति ग्रुसलेन ।

# पूर्वसद्दशसमोनार्थकलहनिपुणिमश्रश्लच्णैः॥२।१।३१॥

तृतीयान्त सुवन्त का पूर्व सदश सम ऊनार्थ कलह निपुण पिश्र छौर श्लदण सुवन्तों के साथ समास हो सो तृतीया तत्पुक्ष हो । जैसे । मासेन पूर्वः मासपूर्वः । संवत्सरपूर्वः । पित्रा सदशः पितृसदशः । पित्रा समः पितृसमः । मापेणोनम् मापोनम् । कार्षापणोनम् । मासविकलम् । कार्षापणविकलम् । श्रासिकलहः । वाक्कलहः । वाग्नि-पुणः । शास्त्रनिपुणः । गुडमिश्रः । तिल्पिश्रः । श्राचारश्लदणः ।

# वा०-पूर्वादिष्ववरस्योपसंख्यानस् ॥

मासेनावरः मासावरः । संवत्सरावरः ।

### कर्तृकरणे कृता बहुत्तम् ॥ २ । १ । ३२ ॥

कर्ता ग्रौर करण द्यर्थ में जो तृतीयान्त सुबन्त सो छद्नत के साथ कहीं २ समास को प्राप्त होते हैं । वह तृतीया तत्पुरुष समास होता है । जैसे । व्यहिना दृष्टः व्यहि-दृष्टः । देवदत्तेन छतम् देवदत्तछतम् । नखौर्नीर्भिनः नखनिर्मिन्नः । कर्तृकरणे किम् । भिन्नाभिरुषितः । वहुलप्रहणं किम् । दात्रेण ल्नवान् । परशुना छिन्न इह समासो न भवति । इह च भवति । पादहारको गलेचोपकः ।

### कृत्यैरधिकार्थवचने ॥ २ । १ । ३३ ॥

कर्ता और करण कारक में जो तृतीयान्त सो कृत्य प्रत्ययान्त सुवन्त के सङ्ग वि० समास को प्राप्त हो, अधिकार्थ वचन हो तो । स्तुति निन्दायुक्त वचन को अधिकार्थ वचनकहते हैं । वह तृतीया तत्पुरुष समास कहाता है । जैसे । कर्ता । काकपेया नदी । अखेहाः कूपः । करण । वाष्पच्छेचानि तृणानि । घनांघात्यो गुणः । कषताड्यो दुष्टः । वाष्पच्छेचानि तृणानि । घनांघात्यो गुणः । कषताड्यो दुष्टः । वाष्ट्र कृत्यप्रहणे यएएयतोर्प्रहण्म् । इह मासूत् । काकैः पातच्या इति ।

### अन्नेन व्यञ्जनम् ॥ २ । १ । ३४ ॥

जो तृतीयान्त व्यवजन वाची सुवन्त का श्रन्न वाची सुवन्त के साथ समास हो

सो तृतीया तत्पुरुष हो । जिससे अन्न का संस्कार किया जाय उसको व्यञ्जन कहते हैं। जैसे । दृष्ना उपसिक्त भ्रोदनः दृष्योदनः । चीरोदनः ।

# अक्ष्येण सिश्रीकरसम् ॥ २ । १ । ३५ ॥

मिश्रीकरण वाची तृतीयान्त सुबन्त भदयवाची सुबन्त के सङ्ग में वि० समास पावे सो तृतीया तत्पुरुष हो। जैसे। गुडेन भिश्रा धानाः गुडधानाः। घृतेन मिश्रं शाकम् घृतशाकम्।

# ओजः सहोम्भस्तमसस्तृतीयायाः ॥ ६ । ३ । ३ ॥

जो तृतीयान्त श्रोजस् सहस् श्रम्भस् तमस् शब्दों से परे तृतीया का श्रतिक् हो, जो उत्तरपद परे हो तो । जैसे । श्रोजसा इतम् । सहसा इतम् । श्रम्भसा इतम् । तमसा इतम् ।

# वा०-पुंसानुजो जनुबान्धो विक्रताक्ष इतिचोपसङ्ख्यानम् ॥

पुंसानुजः । जनुषान्धः । विकृताद्यः ।

#### मनसः संज्ञायाम् ॥ ६।३।४॥

जो संज्ञा विषय में उत्तरपद परे हो तो तृतीयान्त मनस् से परे तृतीया का घालुक् हो । जैसे । मनसादत्ता । मनसागुप्ता । मनसारामः ।

#### आज्ञायिनि च॥६।३।४॥

जो आज्ञायिन् उत्तरपद परे हो तो तृतीयान्त मनस् से परे तृतीया का श्रलुक् हो। जैसे। मनसाज्ञायी।

#### आत्मनश्च पूरणे ॥ ६ । ३ । ६ ॥

श्रात्मनापष्टः । श्रात्मनापञ्चमः ।

### चतुर्थी तदर्थार्थबिलिहितसुखरिक्षतैः ॥ २ । १ । ३६ ॥

जो तदर्थ अर्थात् विकृतिवाची चतुर्थ्यन्त सुबन्त, अर्थ वित हित सुख और रिचत सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हो सो चतुर्थी तत्पुरुष कहावे \* । जैसे । यूपाय दारु यूपदारु । कुष्डलाय हिरण्यम् कुष्डलहिरण्यम् । इह न भवति । रन्धनाय स्थाली । अवहननायोत्स्वलामिति ।

<sup>. \*</sup> यहां से चतुर्थी तत्पुरुप समास का आरम्भ समफना।

# वा०-अर्थेन नित्यसमासवचनं सर्विङ्गता च वक्तव्या।।

जैसे । ब्राह्मणार्थं पयः । ब्राह्मणार्था यवागूः । ब्राह्मणार्थः कम्बलः । क्रामिभ्यो बिलः क्रामिबलिः । गोहितम् । मनुष्यहितम् । गोसुलम् । गोरिक्तिम् । व्यथरितम् ।

वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः॥ ६। ३।७॥

जो उत्तरपद परे हो तो वैयाकरणों की आख्या अर्थात् संज्ञा विषय में आत्मन् शब्द से परे चतुर्थी का अलुक् हो । आत्मनेभाषा । आत्मनेपदम् ।

### परस्य च ॥ ६।३।८॥

जो वैयाकरणों की आख्या अर्थ में उत्तरपद परे हो तो पर शब्द से परे चतुर्थी का अलुक् हो । जैसे । परस्पैपदम् । परस्पैभाषा ।

### पञ्चमी भयेन ॥ २ । १ । ३७ ॥

जो पद्धम्यन्त सुबन्त, भय सुबन्त के सङ्ग समास को प्राप्त हो सो पञ्चमी तत्पु-रूष हो \* । जैसे । वृकेभ्यो भयम् वृक्तभयम् । चोरभयम् । दस्युभयम् ।

# वा०-भयभीतभीतिभीभिरिति वक्तव्यम् ॥

जैसे वृकेभ्यो भीतः वृकभीतः । वृकभीतिः । वृकभीः ।

# अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः ॥ २ । १ । ३८॥

जो पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक, अपेत अपोढ मुक्त पतित और अपत्रस्त इन सुबन्तों के साथ समास होता है सो पंचमी तत्पुरुष हो । जैसे । सुखाद्पेतः सुखापेतः । दुःखा-पेतः । कल्पनापोढः । कृच्छ्रान्मुक्तः । चक्रमुक्तः । वृक्षपिततः । नरकापत्रस्तः । अल्पशः अर्थात् पंचमी अल्पशः समास पावे । सब पंचमी नहीं । इससे प्रासादात् पिततः । भोजनाद्पत्रस्तः । इत्यादि में नहीं होता ।

# स्तोकान्तिकदूरार्थकुच्छ्राणि क्तेन ॥ २ । १ । ३६ ॥

जो स्तोक अन्तिक दूर और इनके तुल्य पद्धम्यन्त हैं वे क्वान्त सुबन्त के साथ समास पावें सो पंचमी तत्पुरुष हो ।

# अलुगुत्तरपदे ॥ ६ । ३ । १ ॥

अलुक् और उत्तरपद । इन दो पदों का अधिकार किया है।

\* यहां से पंचमी तत्पुरुष का आरम्भ है।।

#### पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ॥ ६ । ३ । २ ॥

स्तोक आदि प्रातिपदिकों से परे उत्तरपद हो तो पंचमी विभक्ति का लुक् न हो। जैसे।। स्तोकान्मुक्तः। स्वल्पान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। समीपादागतः। श्रभ्याशा-दागतः। दूरादागतः। विप्रकृष्टादागतः। क्रच्छ्रान्मुकः। क्रच्छ्राङ्गब्धः। क्लोशान्मुकः।

#### वा॰---शतसहस्रो परेणेति वक्तव्यम् ॥

शतात्परे परश्शताः । सहस्रात्परे परस्सहस्राः । राजदन्तादित्वात्परिनपातः । निपा-तनात् सुडागमः ।

### सप्तमी शौण्डैः ॥ २।१।४०॥

जो सप्तम्यन्त सुबन्त शौएड त्रादि सुबन्तों के साथ वि० समास को प्राप्त हो सो सप्तभी तत्पुरुष हो \* । जैसे । त्राचेषु शौएडः श्रच्चशौएडः । श्रच्चधूर्तः । श्रच्चितवः ।

#### सिद्धशुष्कपक्कबन्धेश्च ॥ २ । १ । ४१ ॥

जो सिद्ध, ग्रुष्क, पक्व श्रीर बन्ध, सुवन्तों के संग सप्तम्यन्त सुबन्त का समास होता है सो सप्तमी तत्पुरुष होता है। जैसे। सांकाश्यसिद्धः। प्रामसिद्धः। श्रातप-श्रुष्कः। छायाशुष्कः। पयःपक्वः। तैलपक्वः। घृतपक्वः। स्थालीपक्वः। चक्रबन्धः। गृहबन्धः।

# ध्वाङ्क्षेण चेपे॥२।१।४२॥ वा०—ध्वाङ्चेणेत्पर्थयहणं कर्तव्यम्॥

जो च्रेप त्रर्थात् निन्दा त्रर्थं में सप्तम्यन्त सुवन्त, ध्वाङ्चवाची सुवन्त के साथ समास पावे सो सप्तमी तत्पुरुष हो । जैसे । तीर्थेध्वाङ्च इव तीर्थध्वाङ्चः । श्रनवस्थित इत्यर्थः । तीर्थकाकः । तीर्थवायसः । द्वोप इति किम् । तीर्थे ध्वाङ्चितिष्ठति ।

#### कृत्यैर्म्यणे ॥ २ । १ । ४३ ॥

ऋण् अर्थ जाना जाय तो सप्तम्यन्त सुबन्त कृत्य प्रत्ययान्त के साथ समास पावे । मासे देयमृण्म् मासदेयम् । सम्वत्सरदेयम् । पूर्वोद्धे गेयं साम । प्रातरध्येयोऽनुवाकः । ऋण् इति किम् । मासे देया भिद्धा ।

<sup>\*</sup> यहां से आगे सप्तमी तत्पुरुष का आधिकार चला है।

# सञ्ज्ञायाम् ॥ २ । १ । ४४ ॥

सञ्ज्ञा त्रर्थ में जो सप्तम्यन्त सुवन्त, सुवन्त के सङ्ग समास पावे सो सप्तमी तत्पु-रुष समास होता है। जैसे। श्रार्थ तिलकाः। श्रार्थ माषाः। वने किंशुकाः। हलद्-न्तात्सप्तम्याः सञ्ज्ञायामित्यलुक्।

# क्तेनाहोरात्रावयवाः ॥ २ । १ । ४४ ॥

जो दिन श्रौर रात्रि के श्रवयव वाची सप्तम्यन्त सुबन्त प्रातिपदिक, क्रांत सुवन्त के साथ समास को प्राप्त हों सो सप्तमी तत्पुरूष समास हों। जैसे। पूर्वाहकृतम्। श्रप-राहकृतम्। पूर्वरात्रकृतम्। पररात्रकृतम्। श्रवयवप्रहणं किम्। श्रहिन सुक्तम्। रात्रोकृतम्।

#### तत्र ॥ २ । १ । ४६ ॥

जो तत्र सप्तम्यन्त सुबन्त, क्षांत सुबन्त के साथ समास पावे सो सप्तमी तत्पुरुष हो । जैसे । तत्रभुक्तम् । तत्रपीतम् । तत्रमृतः ।

#### चेपे॥ २।१।४७॥

जो च्रेप नाम निन्दा व्यर्थ में सप्तम्यन्त सुबन्त, क्षान्त सुबन्त के साथ समास पावे सो सप्तमी तत्पुरुष हो। व्यवतप्ते नकुलस्थितम् तवैतत्। उदके। विशीर्णम्। प्रवाहे मूत्रितम्। भस्मनि हुतम्। निन्फले यत्क्रियते तदेवात्रोच्यते। तत्पुरुषे कृति बहुल-मित्यलुक्।

# पात्रेसंमिताद्यश्च ॥ २ । १ । ४८ ॥

पात्रेसम्मित आदि शब्द निपातन किये हैं चेप अर्थ में सो सप्तमी तत्पुरुष जानना। पात्रेसंभिताः । पात्रेबहुलाः । उदरकृभिः । इत्यादि ।

### हलद्न्तात्सप्तस्याः संज्ञायाम् ॥ ६ । ३ । ६ ॥

हलन्त और अदन्त प्रातिपदिक से परे सप्तमी का अलुक् हो जो संज्ञा विषय में उत्तरपद परे हो तो। जैसे। युधिष्ठिरः। त्विसारः। अदन्तात्। अरण्ये तिलकाः। अरण्ये माषकाः। वने किंग्रुकाः। वने हरिद्रकाः। वने वल्बजकाः। पूर्वोद्धे स्फोटकाः। कूपे पिशाचकाः। नद्यां कुक्कुटिकाः नदीकुक्कुटिका । सूम्यां पाशाः। संज्ञायामिति किम्। अन्तशौण्डः।

### वा०—हृद्युभ्यां डेः ॥

जो उत्तरपद परे हो तो हृद् श्रौर दिव् से परे सप्तमी का श्रालुक् हो। जैसे। हृदिस्पृक्। दिविस्पृक्।

# कारनाम्नि च प्राचां हलादौ ॥ ६ । ३ । १० ॥

कारनाम हलादि उत्तरपद परे हो तो प्राचीनों के मत में हलन्त और अदन्त से परे सप्तमी का अलुक् हो । जैसे । सूपेशाणः । मुकटेकार्षापणम् । हलेद्विपदिका । हले- त्रिपदिका । कारनाम्नोति किम् । अभ्यहिते पशुः । प्राचामिति किम् । यृथे पशुः यृथ-पशुः । हलादाविति किम् । अविकटे उरणः अविकटोरणः । हलदन्तादित्येव । नद्यां दोहनी नदीदोहनी ।

मध्याद्गुरौ ॥ ६ । ३ । ११ ॥

मध्येगुरुः।

वा०-अन्ताचेति वक्तव्यस् ॥

श्रन्तेगुरुः ।

# अमूर्डमस्तकात्स्वाङ्गादकामे ॥ ६ । ३ । १२ ॥

जो कामवर्जित उत्तर पद परे हो तो मूर्छ श्रौर मस्तक भिन्न हलन्त श्रौर श्रदन्त से परे सप्तमी का श्रलुक् हो। जैसे। कएठे कालो यस्य सः कएठे कालः। उरासि लोमा। उदरे मिणः। श्रमूर्छमस्तकादिति किम्। मूर्छिशिखः। मस्तकशिखः। श्रकाम इति किम्। मुखे कामो यस्य मुखकामः। स्वाङ्गादिति किम्। श्रद्धशौएडः। हलदन्ता-दिति किम्। श्रङ्गुलित्राणः। जङ्घावितः।

# बन्धे च विभाषा ॥ ६ । ३ । १३ ॥

जो घनन्त बन्ध उत्तरपद परे हो तो विकल्प करके हलन्त और अदन्त से परे सप्तमी का अलुक् हो । जैसे । हस्ते बन्धः हस्तवन्धः । चक्रे बन्धः चक्रबन्धः ।

# तत्पुरुषे कृति बहुलम् ॥ ६।३।१४॥

तत्पुरुष समास में कृदन्त उत्तरपंद परे हो तो सप्तमी का श्रालुक् बहुल करके हो। श्रर्थात् कहीं २ हो। स्तम्बेरमः। कर्णेजपः। नच भवति। क्रुरुचरः। सद्रचरः।

# प्रावृद्शरत्कालदिवां जे ॥ ६ । ३ । १५ ॥

जो ज उत्तरपद परे हो तो प्रावृद्, शरत्, काल, दिव, इनसे परे सप्तमी का अलुक् हो । जैसे । प्रावृषिजः । शरदिजः । कालेजः । दिविजः ।

# विभाषा वर्षक्षरशरवरात् ॥ ६ । ३ । १६ ॥

इन शब्दों से परे वि० सप्तमी का त्रालुक् हो । वर्षेजः । वर्षेजः । चरेजः । चरजः । वरेजः । वरजः ।

# घकाळतनेषु काळनामः॥ ६।३।१७॥

जो \* घसंज्ञक प्रत्यय, काल श्रीर तन प्रत्यय परे हों तो सप्तमी का श्रलुक् हो । जैसे । पूर्वाह्वेतरे । पूर्वाह्वेतमे । पूर्वाह्वेतरे । पूर्वाह्वेतमे । पूर्वाह्वेतमे । पूर्वाह्वेतमे । पूर्वाह्वेतमे । पूर्वाह्वेतमे । कालनाम्न इति किम् । शुक्लतरे । शुक्लतमे । हलद्न्तादिति किम् । रात्रितरायाम् ।

# शयवासवासिष्वकालात् ॥ ६ । ३ । १८ ॥

जो शय, वास, वासि, ये उत्तरपद परे हों तो वि० सप्तमी का अलुक् हो। खेशयः। खशयः। ग्रामे वासः ग्रामवासः। ग्रामे वासी ग्रामवासी। अकालादिति किम्। पूर्वोह्वशयः। हलदन्तादित्येव। भूमिशयः।

# नेन्सिद्धबध्नातिषु च ॥ ६ । ३ । १९ ॥

जो इन् प्रत्ययान्त सिद्ध श्रौर बध्नाति ये उत्तरपद परे हों तो सप्तमी का श्रातुक् न हो श्रर्थात् लुक् हो । स्थिपडिलशायी । सांकाश्यसिद्धः । चक्रवन्धकः । चरक-बन्धकः ।

# स्थे च भाषायाम् ॥ ६ । ३ । २० ॥

जो स्थ उत्तरपद परे हो तो लोक में सप्तमी का श्रतुक् न हो । जैसे । समस्थः । विषमस्थः । भाषायामिति किम् । कृष्णोस्याखरेष्टः ।

पूर्वकालेकसर्वजरत्पुराग्णनवकेवलाः समानाधिकरणेन ॥ २ । १ । ४६ ॥

\* तरप्तमपौ घः । इस सूत्र से तरप् त्रौर तमप् की घ संज्ञा है ।

पूर्व काल यह अर्थ का प्रहर्ण है। पूर्वकाल। एक। सर्व। जरत्। पुराण। नव और केवल। सुवन्त शब्द समानाधिकरण सुवन्त के साथ समास पावे \*। जैसे। पूर्व स्नातः पश्चाद्नुलिप्तः स्नातानुलिप्तः। कृष्टसमीकृतम्। दग्धप्रकृढम्। एका चासौ शाटी च एकशाटी। सर्वे च ते वेदाश्च सर्ववेदाः। जरचासौ वैद्यश्च जरद्वैद्यः। पुरा-णान्नम्। केवलान्नम्। समानाधिकरणेनेति किम्। एकस्याः शाटी।

# दिक्संख्ये संज्ञायाय् ॥ २ । १ । ५० ॥

संज्ञा के विषय में दिक् चार संख्यावाची शब्द समानाधिकरण के साथ समास् पावें । समानाधिकरण की घातुवृत्ति पाद की समाप्ति पर्यन्त जाननी । पूर्वेषु कामशमी । श्रापरेषु कामशमी । संख्या । पञ्जान्नाः । सप्तर्पयः । संज्ञायामिति किम् । उत्तराः वृज्ञाः । पञ्च ब्राह्मणाः ।

#### तद्धितार्थोत्तरपद्समाहारे च ॥ २ । १ । ५१ ॥

विग् वाची राव्द श्रौर संख्या वाची राव्द तद्वित श्रर्थ में तथा उत्तरपद परे हो तो समाहार श्रर्थ में समानाधिकरण के साथ समास को प्राप्त हों। पूर्वस्यां शालायां भवः पौर्वशालः । श्रौत्तरशालः । श्रापरशालः । उत्तरपदे । पूर्वा शाला प्रिया यस्य स पूर्वशालाप्रियः । श्रपरशालाप्रियः । संख्यातद्वितार्थे । पाद्धनापितिः । पाद्धकपालः । उत्तरपदे । पद्धगवधनः । समाहारे । पद्धकपालानि समाहतानि यस्मिस्तत्पद्धकपालं गृहम् । पञ्च- फली । दशपूली । पद्धकुमारि । दशकुमारि । दशपुली । श्रष्टाध्यायी ।

# संख्यापूर्वो द्विगुः ॥ २ । १ । ५२ ॥

जो तद्धितार्थोत्तरपद समाहार में संख्या पूर्व समास है सो द्विगु संज्ञक होता है। पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः। दशकपालः। द्विगोर्जुगनपत्य इति लुक्। ऐसे ही समासान्त तथा कीप् इत्यादि कार्य्य जानने चाहियें। पञ्चनाविष्रयः। तावच्छती।

## कुत्सितानि कुत्सनैः ॥ २ । १ । ५३ ॥

जो कुत्सित वाची सुवन्त का कुत्सन वचन सुवन्तों के साथ समास हो सो तत्पुरुष संज्ञक हो। जैसे। वैयाकरण्खसूचिः। निष्प्रतिभ इत्यर्थः। याज्ञिकिकतवः। श्रयाज्य

<sup>\*</sup> यह समास बहुधा प्रथमा विभक्ति में आता है इसिलये प्रथमा तत्पुरुष और कर्मधारय समास भी कहते हैं।

याजनतृष्णापरः । मीमांसकदुर्दुरूटः । नास्तिकः । कुत्सितानीति किम् । वैयाकरण-श्रोरः । कुत्सनैरिति किम् । कुत्सितो ब्राह्मणः ।

# पापाणके कुत्सितैः ॥ २ । १ । ५४ ॥

जो पाप त्रोर श्राणक सुवन्त का कुत्सित सुवन्तों के साथ समास हो सो समाना-धिकरण हो । जैसे । पापनापितः । पापकुलालः । श्राणकनापितः । श्राणककुलालः ।

# अं उपमानानि सामान्यवचनैः ॥ २ । १ । ५५ ॥

जो (स० \*) उपमानवाची सुवन्त का सामान्य वचन सुबन्तों के साथ समास हो सो०। शस्त्रीवश्यामा शस्त्रीश्यामा देवदत्ता। कुमुदश्येनी। हंसगद्गदा। घन इव श्यामः घनश्यामो देवदत्तः। उपमानानीति किम्। देवदत्ता श्यामा। सामान्यवचनैरिति किम्। पर्वता इव वलाहकाः।

# उपितं व्याव्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ॥ २ । १ । ५६ ॥

जो उपिमत द्र्यशंत् उपमेय वाची सुवन्त का व्याघादि सुवन्तों के साथ समास हो सो०। पुरुषोऽयं व्याघ्र इव पुरुषव्याघः। पुरुषसिंहः। सिंह इव ना नृसिंहः। सामान्याप्रयोग इति किम्। पुरुषो व्याघ्र इव शूरः।

# विशेषणं विशेष्येया बहुलस् ॥ २ । १ । ५७ ॥

जो विशेषण वाची सुवन्त का विशेष्यवाची समानाधिकरण सुवन्त के साथ समास हो सो०। नीलञ्च तदुत्पलञ्च नीलोत्पलम् । रहोत्पलम् । बहुलवचनं व्यवस्थार्थम् । क्वचित्रित्यसमास एव।कृष्णसर्पः। लोहितशालिः। क्वचित्र भवत्येव। रामो जामद्ग्न्यः। श्रार्जुनः कार्त्तवीर्थः। क्वचिद्विकल्पः। नीलसुत्पलं नीलोत्पलम्।

# पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानसध्यमध्यमवीराश्च ॥ २।१।५८॥

पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम और वीर, जो इन सुवन्तों का समानाधिकरण सुवन्तों के साथ समास हो सो०। पूर्वश्चासौ पुरुषश्च पूर्वपुरुषः। अपरपुरुषः। प्रथमपुरुषः। चरमपुरुषः। जघन्यपुरुषः। समानपुरुषः। मध्यपुरुषः। सध्यपुरुषः। समानपुरुषः। स्थापुरुषः। स्थापुरुषः।

<sup>\*</sup> इस संकेत से सामानाधिकरण तत्पुरुष जानना ।

# श्रेगयादयः कृतादिभिः ॥ २ । १ । ५६ ॥

श्रेणि त्रादि सुवन्तों का कृत त्रादि सुवन्तों के साथ समास हो सो०।

### वा०-श्रेगयादिषु च्ट्यर्थवचनम् ॥

जैसे । श्रश्रेणयः श्रेणयः कृताः श्रेणिकृता विणजो वसन्ति । च्व्यन्तानान्तु कुग-विप्रादय इसनेन निस्पसमासः ।

# क्तेन नञ्जिशिष्टेनानञ् ॥ २ । १ । ६० ॥

जो नम् रहित कान्त सुवन्त का नम् विशिष्ट कान्त सुवन्त समानाधिकरण के साथ समास हो सो०। जैसे। कृतं च तद्कृतम् कृताकृतम्। सुकाभुक्तम्। पीतापीतम्। उदितानुदितम्। श्राशितानशितेन जीवति। क्लिष्टाक्लिप्टेन वर्तते।

#### वा०-- ऋतायऋतादीनासुपसंख्यानस् ॥

कृतापकृतम् । भुक्तविभुक्तम् । पीतविपीतम् । गतप्रत्यागतम् । यातानुयातम् । क्रयाक्रयिका । पुटापुटिका । फलाफालिका । मानोन्मानिका ।

# वा॰—समानाधिकरणाधिकारे शाकपाथिवादीनामुपसंख्या-नमुत्तरपद्लोपश्च ॥

शाकप्रधानः पार्थिवः शाकपार्थिवः । कुतपसौश्रुतः । त्राजातौल्वातिः ।

# सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः ॥ २ । १ । ६१ ॥

जो सत्, महत्, परम, उत्तम, उत्ऋष्ट सुवन्तों का पूज्यमान सुबन्तों के साथ समास हो सो०। जैसे। सत्पुरुषः। महापुरुषः। परमपुरुषः। उत्तमपुरुषः। उत्ऋष्ट-पुरुषः। पूज्यमानैरिति किम्। उत्ऋष्टो गौः कईमात्।

# बृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम् ॥ २ । १ । ६२ ॥

जो वृन्दारक नाग कुंजर सुबन्तों के साथ पूज्यमान अर्थों के वाचक सुवन्त के साथ समास हो सो । गोवृन्दारकः । अश्ववृन्दारकः । गोनागः । अश्वनागः । गोकुंजरः । पूज्यमानमिति किम् । सुसीमो नागः ।

# कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने ॥ २ । १ । ६३ ॥

जो जाति के परिप्रश्न द्वार्थ में वर्त्तमान कतर कतम प्रत्ययान्त सुबन्त का समा-नाधिकरण सुबन्त के साथ समास हो सो०। जैसे। कतरकठः। कतरकलापः। कतमकठः। कतमकलापः। जातिपरिप्रश्न इति किम्। कतरो भवतोर्देवदत्तः। कतमो भवतां देवदत्तः।

किं क्षेपे ॥ २ । १ । ६४ ॥

किम् शब्द का च्रेप द्यर्थ में सुवन्त के साथ समास हो सो । जैसे । किं राजा यो न रच्चति । किं सखा योऽभिद्रुद्यति । किं गौः यो न वहति ।

किमः चेपे ॥ ५ । ४ । ७० ॥

च्चेप द्रार्थ में जो किं शब्द उससे समासान्त प्रत्यय न हो \*।

पोटायुवतिस्तोककतिपयग्रष्टिघेनुवशावेहद्वष्कयणीप्रवक्तृ-श्रोत्रियाध्यापकधूर्त्वैर्जातिः ॥ २ । १ । ६५ ॥

जो पोटा, युवति, स्तोक, कतिपय, गृष्टि, धेनु, वशा, वेहद्, वक्कयगी, प्रवक्त्र, श्रोत्रिय, श्रध्यापक, धूर्त इन सुबन्तों का जातिवाची सुवन्तों के साथ समास होता है वह तत्पुरुष हो। जैसे। इमा चासौ पोटा च इमपोटा। इमयुवतिः। श्राग्निस्तोकः। खद्शिवत्कतिपयम्। गोगृष्टिः। गोधेनुः। गोवशा। गोवेहत्। गोवक्कयगी। कठप्रवक्ता। कठश्रोत्रियः। कठाध्यापकः। कठधूर्तः। जातिरिति किम्। देवदत्तः प्रवक्ता।

# प्रशंसावचनेश्च ॥ २ । १ । ६६ ॥

जातिवाची सुबन्त, प्रशंसावाची सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हो सो । जैसे । गोप्रकाएडम् । श्रश्वप्रकाएडम् । गोमतिष्ठिका । गोमचर्चिका । श्रश्वमचर्चिका । जातिरिति किम् । कुमारीमतिष्ठका ।

# युवा खलतिपलितबल्लिनजरतीभिः॥ २।१।६७॥

खलति, पिलत, बिलन श्रोर जरती, इन सुवन्तों के साथ युवन् सुवन्त समास को प्राप्त हो सो तत्पुरुष हो । युवाखलितः युवखलितः । युवितः खलती युवखलितः । युवापिलतः युवपिलतः । युवितः पिलता युवपिलता । युवा बिलनः युवबिनः । युवितिविलिना युवबिलिना । युवाजरन् युवजरन् । युवितिर्जरती युवजरती ।

<sup>\*</sup> किंराजा आदि उदाहरणों में टच् प्रत्यय न हुआ।

#### क्टरयतुल्याख्या अजात्या ॥ २ । १ । ६८ ॥

कृत्य प्रत्ययान्त श्रौर तुल्य तथा तुल्य के समानार्थ जो सुबन्त सो जातिवर्जित सुबन्त के साथ समास पावे सो समानाधिकरण तत्पुरुष कर्मधारयसमास हो । जैसे । भोड्यं च तदुष्ण्वच भोड्योष्ण्म् । भोड्यलवण्म् । पानीयशीतम् । तुल्याख्या । तुल्य-श्वेतः । तुल्यमहान् । सदृशश्वेतः । सदृशमहान् । श्रजात्येति किम् । रज्ञ्गीयो मनुष्यः ।

# वर्गो वर्गेन ॥ २ । १ । ६६ ॥

वर्ण विशेषवाची समानाधिकरण, सुवन्त के साथ वर्ण विशेषवाची सुवन्त समास पावे सो । कृष्णसारङ्गः । लोहितसारङ्गः । कृष्णशावलः । लोहितशबलः ।

#### कुमारः श्रमणादिभिः ॥ २ । १ । ७० ॥

कुमार शब्द, श्रमण श्रादि सुवन्तों के साथ समास पावे सो०। कुमारी श्रमणा कुमारश्रमणा। कुमारी प्रव्रजिता कुमारप्रव्रजिता। कुमारी कुलटा कुमारकुलटा इत्यादि।

# चतुष्पादो गर्भिण्या ॥ २ । १ । ७१ ॥

चतुष्पादवाची सुवन्त, गर्भिणी सुवन्त के साथ समास पावे सो तत्पुरूषं हो। जैसे। गोगर्भिणी। श्रजागर्भिणी। महिषीगर्भिणी।

### वा०—चतुष्पाजातिरिति वक्तव्यम् ॥

इह माभूत् । कालाची गर्भिणी । स्वस्तिमती गर्भिणी । चतुष्पाद इति किम् । ब्राह्मणी गर्भिणी ।

### मयूरव्यंसकाद्यश्च ॥ २ । १ । ७२ ॥

मयूरव्यंसक त्रादि शब्द निपातन किये हैं सो०। जैसे। मयूरव्यंसकः। छात्र-व्यंसकः।

इति समानाधिकरणः कम्मधारयस्तत्पुरुषः समाप्तः ॥

# अथैकाधिकरणस्तत्पुरुषः ॥ पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे ॥ २ । २ । १ ॥

पूर्व, अपर, अधर, उत्तर ये सुबन्त एकदेश वाची अर्थात् अवयव वाची सुबन्त के साथ समास पावें । एक \* आधिकरण अर्थात् एक द्रव्य वाच्य हो तो । पष्टीसमा-सापवादोऽयं योगः । पूर्वे कायस्य पूर्वकायः । अपरकायः । अधरकायः । उत्तरकायः । एकदेशिनेति किम्। पूर्वं नाभेः कायस्य। एकाधिकरण इति किम्। पूर्वे छात्राणामामन्त्रय।

# अर्द्धं नपुंसकम् ॥ २।२।२॥

जो नपुंसक लिङ्ग अर्द्ध शब्द, एकदेशी एकाधिकरण सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो सो तत्पुरुष हो। जैसे। अर्द्ध पिप्पल्याः अर्द्धपिप्पत्ती। अर्द्धकौशातकी। नपुंसकमिति किम् । प्रामार्द्धः । नगरार्द्धः । एकदेशिनेत्येव । श्रद्धं प्रामस्य देवदत्तस्य । एकाधिकरण इत्येव । श्रद्धं पिप्पलीनाम् ।

# द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम् ॥ २।२।३॥

द्वितीय, रुतीय, चतुर्थ और तुर्य्य ये सुबन्त एकदेशि एकाधिकरण सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों सो तत्पुरुष हो । द्वितीयं भिचायाः द्वितीयभिचा । षष्ठीसमासः पत्ते । भित्ताद्वितीयं वा । तृतीयं भित्तायाः तृतीयभित्ता । भित्तातृतीयं वा । चतुर्थं भित्तायाः चतुर्थमित्ता । भित्ताचतुर्थं वा। एकदेशिनेत्येव । द्वितीयं भित्तायाः भिज्जकस्य । एकाधि-करण इत्येव । द्वितीयं भिन्नाणाम् ।

# मातापन्ने च द्वितीयया ॥ २ । २ । ४ ॥

प्राप्त और व्यापन्न सुवन्त, द्वितीयान्त सुवन्त के साथ समास को प्राप्त हों। जैसे। प्राप्तो जीविकाम् प्राप्तजीविकः । जीविकाप्राप्त इति वा । श्रापन्नो जीविकाम् श्रापन्नजी-विकः। जीविकापन्न इति वा।

# कालाः परिमाणिना ॥ २।२।५॥

कालवाची सुवन्त, परिमाणवाची सुवन्त के साथ समास को प्राप्त हो रुष हो। जैसे । मासो जातोऽस्य स मासजातः । संयत्सरजातः । द्वयहजातः । त्र्यहजातः ।

# नञ्॥२।२।६॥

नव् समर्थ सुबन्त के साथ समास पावे सो नव् तत्पुरुष हो । जैसे ।∶न ब्राह्मण्ः अत्राह्मणः । अवृषतः ।

#### तस्माञ्चडचि ॥ ६ । ३ । ७४ ॥

तस्मात् नाम लोप हुये नञ् के नकार से परे अजादि उत्तरपद को नुट् का आगम हो । न अच् अनच् । न अश्वः अनश्वः । न उष्ट्रः अनुष्ट्रः । इत्यादि ।

#### नञस्तत्पुरुषात् ॥ ५ । ४ । ७१ ॥

जो नव्यू से परे राज ब्यादि शब्द सो ब्यन्त में जिस तत्पुरुष के उससे समासान्त भत्यय न हों। ब्यराजा। ब्यसखा। ब्यगौः। तत्पुरुषादिति किम्। ब्यनुचो माण्वकः। ब्यधुरं शकटम्।

#### पथो विभाषा ॥ ५ । ४ । ७२ ॥

जो नज् से परे पथिन् शब्द सो जिस तत्पुरुष के खन्त में हो उससे समासान्त प्रत्यय विकल्प करके हो । खपथम् । खपन्थाः ।

# ईषद्कृता ॥ २ । २ । ७ ॥

जो सुबन्त ईषत् शब्द छत् वर्जित सुवन्त के साथ समास को प्राप्त हो वह तत्पु-रुप समास हो।

# वा०—ईषद्गुणवचनेनेति वक्तव्यम् ॥

ईपत्कडारः । ईषत्पिङ्गलः । ईषाद्विकारः । ईषदुञ्जतः । ईषत्पीतम् । गुणवचनेनेति किम् । ईषद् गार्ग्यः । \*

#### षष्टी ॥ २ । २ । ८ ॥

षष्ठश्चन्त सुवन्त, समर्थ सुबन्त के साथ वि० समास पावे, सो षष्ठी तत्पुरुष जानो । राज्ञः पुरुषः राजपुरुषः । राज्ञोः पुरुषौ राजपुरुषौ । राज्ञां पुरुषाः राज-पुरुषाः । राज्ञः पुरुषौ पुरुषा वा । त्राह्मग्युकम्बलः ।

### वा॰—क्रयोगा च षष्टी ससस्यत इति वक्तव्यम् ॥

जैसे । इध्मव्रश्चनः । पलाशशातनः । किमर्थभिद्गुच्यते । प्रतिपद्विधाना षष्टी न समस्यत इति वद्यति तस्यायं पुरस्ताद्पकर्षः ।

<sup>\*</sup> यहां तक तत्पुरुष समास का प्रकरण आया इसके आगे षष्टीतत्पुरुष का प्रक-रण सममना चाहिये।

### याजकादिभिश्च ॥ २ । २ । ६ ॥

षष्ट्यन्त याजक आदि शब्द, सुबन्तों के साथ समास पार्वे सो षष्टी । जैसे । हाह्मस्यायाजकः । चत्रिययाजकः ।

#### षष्ट्या आक्रोशे ॥ ६ । ३ । २१ ॥

आक्रोशे अर्थात् निन्दा अर्थ में उत्तरपद परे हो तो षष्ठी का अनुक् हो । जैसे । चौरस्य कुलम् । आक्रोश इति किम् । ब्राह्मण्कुलम् ।

वा०—षष्टीप्रकरणे वाग्दिक्पश्यद्भयो युक्तिद्ग्रदहरेषुयथा-संख्यमलुग्वक्तव्यः ॥

जैसे । वाचोयुक्तिः । दिशोदण्डः । पश्यतोहरः ।

वा॰—आमुष्यायणामुष्यपुत्रिकामुष्यकुलिकेति चालुग् वक्तव्यः।।

अमुख्या अपत्यम् आमुख्यायणः । नडादित्वात् फक् । अमुख्य पुत्रस्य भावः आमुख्यपुत्रिका । मनोज्ञादित्वाद् वुन् । तथा आमुख्यकुत्तिकेति ।

वा॰—देवानां प्रिय इत्यत्र च षष्टया अलुग्वक्तटयः ॥ जैसे । देवानां प्रियः ।

वा० — रोपपुच्छलाङ्गू लेषु श्रुनः संज्ञायां षष्टचा अलुग् वक्तव्यः ॥ जैसे । श्रनः रोपः । श्रनः पुच्छः । श्रनो लाङ्गूलः ।

वा॰—दिवश्च दासे षष्ट्या अलुग् वक्तव्यः ॥ दिवोदासाय गायति ।

# पुत्रे उन्यतरस्याम् ॥ ६ । ३ । २२ ॥

पुत्र उत्तरपद परे हो तो आकोश अर्थ में षष्टी अलुक् विकल्प करके हो । जैसे । दास्याः पुत्रः । दासीपुत्रो वा । आकोश इति किम् । ब्राह्मणीपुत्रः ।

भृतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः ॥ ६ । ३ । २३ ॥

ऋकारान्त विद्यासम्बन्धी और ऋकारान्त योनि सम्बन्धियों से परे पष्टी का

ष्णतुक् हो । जैसे । होतुरन्तेवासी होतु पुत्रः । पितुरन्तेवासी पितुः पुत्रः । ऋत इति किम् । ष्याचार्य्यपुत्रः । मातुलपुत्रः ।

### विभाषा स्वस्टपत्योः ॥ ६ । ३ । २४ ॥

ऋकारान्त विद्यासम्बन्धी और ऋकारान्त योनि सम्बन्धियों से स्वसू तथा पति डत्तरपद परे•हो तो वि॰ षष्ठी का अलुक् हो । जैसे । मातुः ष्वसा । मातुः स्वसा । मातृष्वसा । पितुःष्वसा । पितुःष्वसा । पितृष्वसा । दुहितुः पितः । दुहितृपितः । नना-न्दुः पितः । ननान्द्रपितः ।

#### नित्यं क्रीडाजीविकयोः ॥ २ । २ । १७ ॥

क्रीडा भौर जीविका अर्थ में पष्टी सुवन्त के साथ नित्य समास पावे । जैसे । (क्रीडा ) उदालकपुष्पभिक्जका । वारणपुष्पप्रचायिका (जीविका ) । दन्तत्तेखकः । पुस्तकतेखकः । क्रीडाजीविकयोरिति किम् । श्रोदनस्य भोजकः । क्र

#### कुगतिप्राद्यः ॥ २ । २ । १८ ॥

क्क व्यन्यय गतिसंत्तक त्रौर प्रादि गणस्थ शब्द समर्थ सुवन्त के साथ समास को प्राप्त हों। जैसे। क्क । कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः । गति । उररीकृतम् । यदूरीकरो-ति । प्रादयः।

# वा०—दुर्निन्दायाम् ॥ दुष्पुरुषः॥ वा०—स्वतीपूजायाम् ॥

सु श्रीर श्राति ये पूजा श्रर्थ में ही समास को प्राप्त हों। शोभनः पुरुषः सुपु-

#### वा०--आङीषद्रथे।।

आपिङ्गलः । आकडारः । दुक्कृतम् । अतिस्तुतम् । आवद्धम् ।

#### वा०-पाद्यो गताचर्थे प्रथमया ॥

प्रगत आचार्यः प्राचार्यः । प्रान्तेवासी ।

यहां तक षष्ठीतत्पुरुष आया इसके आगे पुनस्तत्पुरुष का प्रकरण चला है।

वा०-अत्याद्यः क्रान्ताचर्थे द्वितीयया ॥

श्रातिकान्तः खट्वाम् श्रातिखट्वः । श्रातिमालः ।

वा०-अवाद्यः क्रुष्टाचर्थे तृतीयया ॥

अवक्रुष्टः कोकिलया अवकोकिलः।

वा०-पर्यादयो ग्लानायर्थे चतुर्थ्या ॥

परिग्तानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः । अतं कुमार्ये अतंकुमारिः ।

वा०--- निरादयः क्रांताद्यर्थे पञ्चम्या ॥

निष्कान्तः कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बः । निर्वाराण्सिः । निष्कान्तः सभायाः निःसभः ।

वा०-प्राद्प्रिसङ्गे कर्मप्रवचनीयानां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

ष्ट्रचं प्रति विद्योतते विद्युत् । साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति ।

उपपद् मतिङ् ॥ २।२।१६॥

जो तिङ् वर्जित उपपद है सो समर्थ सुवन्त के साथ नित्य समास को प्राप्त हो सो तत्पुरुष समास हो । जैसे । कुम्भकारः । नगरकारः । इत्यादि ।

न पूजनात् ॥ ५ । ४ । ६६ ॥

पूजन वाची से परे समासान्त प्रत्यय न हो । जैसे । सुराजा । श्रातिराजा । सुसला । श्रातिसला । सुगौः श्रातिगौः ।

#### अमैवाटययेन ॥ २ । २ । २० ॥

जो उपपद अन्यय के साथ समास हो तो अम् अन्यय ही के साथ हो अन्य के सङ्ग नहीं। स्वादुंकारं अुङ्के। लवगंकारं अुङ्के। संपन्नकारं अुङ्के। अमैवेति किम्। नेह भवति कालो भोक्कम्। एवकारकरण्मुपपदिवशेषणार्थम्। अमैव यत्तुल्य-विधानमुपपदं तस्य समासो यथा स्यात्। अमा चान्येन च यत्तुल्यविधानं तस्य माभूत्। अमेमुक्का। अमेमोजम्।

तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्यास् ॥ २ । २ । २१ ॥ ( उपदंशस्तृतीयायाम् ) । यहां से ले के जो उपपद हैं वे अम् अन्यय के साथ वि० समास को प्राप्त हों सो तत्पुरुष समास हो। मूलकोपदंशं अुङ्के। मूलकेनोपदंशं अुङ्के। चुककेनोपदंशं अुङ्के। चुककेनोपदंशं

#### वा०-पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ॥

पर्याप्तो भोक्तुम् । प्रभुर्भोक्तुम् । समर्थो भोक्तुम् ।

#### क्ताच॥ २। २। २२॥

वतीया प्रभृति शब्द क्त्वा प्रत्यय के साथ समास को प्राप्त वि० हों । उचै:कृत्य । उचै:कृत्वा ।

# \* शेषो बहुन्रीहिः ॥ २ । २ । २३ ॥

शेष अर्थीत् उक्त समासों को छोड़ के जो आगे समास कथन करते हैं सो बहु-ब्रीहि है। यह अधिकार सूत्र भी है।

#### अनेकसन्यपदार्थे ॥ २ । २ । २४ ॥

जो अन्य पद के अर्थ में वर्तमान अनेक सुवन्त, सो सुवन्त के सङ्ग समास को प्राप्त हो, उसको बहुन्नीहि जानो । † विशाले नेत्रे यस्य स विशालनेत्रः। बहु धनं यस्य स बहुधनो बहुधनको वा पुरुषः। एक प्रथमा विभक्ति के अर्थ को छोड़ कर सब विभक्ति के अर्थों में बहुन्नीहि समास होता है। प्राप्तमुदकं यं पामं स प्राप्तोदको प्रामः। ऊढो रथो येन स ऊढरथोऽनड्वान् । उपहृतमुदकं यस्मै स उपहृतोदकोऽतिथिः। उद्भृत ओदनो यस्याः सा उद्धृतौदना स्थाली। अच् अन्तो यस्य स अजन्तो धातुः। विशाः पुरुषा यस्मिन् पामे स वीरपुरुषो प्रामः। परन्तु प्रथमा के अर्थ में नहीं होता है। वृष्टे मेचे गतः। अनेकप्रह्गां किम्। बहूनामिप यथा स्यात्। सुसून्त्मजटकेशः। इत्यादि।

# वा०—बहुब्रीहिः समानाधिकरणानामिति वक्रव्यस् ॥ व्यधिकरणानां माभृत् । पञ्चिमर्भक्षमस्य ।

<sup>\*</sup> यहां तक कुगति श्रौर प्रादि प्रयुक्त तत्पुरुप समास श्राया, इसके श्रागे वहु-ब्रीहि का श्रिधकार चला है।

<sup>†</sup> इस बहुत्रीहि समास के विमह में प्रथमा और अन्य पदार्थ में द्वितीया आदि विभक्तियों के प्रयोग होते हैं जैसे नेत्र शब्द प्रथमा और यत् शब्द से पष्टी हुई है वैसे सर्वत्र सममो।

# वा०-अव्ययानां च बहुब्रीहिर्वक्रव्यः ॥

ष्वेर्मुखः । नीवेर्मुखः ।

# वा०--सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपद्छोपश्च ॥

करठे स्थितः कालो यस्य करठेकालः । उरसिलोमा । उष्ट्र्य मुखमिव मुखं यस्य स उष्ट्रमुखः । खरमुखः ।

# वा०-समुदायविकारषष्ठचाश्चबहुब्रीहिरुत्तरपदलोपश्चेति वक्कटयम्।।

केशानां संचातः केशसंघातः । केशसंघातश्चूडाऽस्य स केशचूडः । सुवर्णविकारो-ऽलंकारोऽस्य स सुवर्णाऽलंकारः ।

# वा०—प्रादिभ्यो धातुजस्योत्तरपद्छोपश्च वा बहुब्रीहिर्वक्रठयः।। प्रपतितं पर्णमस्य प्रपर्णः। प्रपतितं पत्ताशमस्य प्रपत्ताशः।

# बा॰—नञोऽस्त्यर्थानां बहुब्रीहिर्वा चोत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः ॥

अविद्यमानः पुत्रो यस्य सोऽपुत्रः । अविद्यमाना भार्यो यस्य सोऽभार्यः । अवि-द्यमानभार्यः ।

वा०--- सुविधिकारे ऽस्तिक्षीरादीनां बहु ब्रीहिर्वक्तव्यः ।। श्रास्तिचीरा ब्राह्मणी । श्रास्तादयो निपाताः ।

# स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपू-रणीप्रियादिषु ॥ ६ । ३ । ३४ ॥

भाषितः पुमान् येन स भाषितपुंस्कः तंस्मात्। भाषित पुंलिङ्ग से परे ऊड्वर्जित जो स्त्री शब्द उसको पुंवत् हो अर्थात् उसका पुंलिङ्ग के सदृश रूप होता है समाना- धिकरण स्त्रीलिङ्ग वाची उत्तरपद परे हो तो। परन्तु पूर्णी तथा प्रियादि को छोड़ के। दर्शनीया भार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः। रूपवद्भार्यः। ऋत्वचणचृृृहः। पूर्णी विद्या यस्या सा पूर्णिवद्या। विदिता नीतिर्यया सा विदितनीतिः। सुशिचिता वाणी यस्याः सा सुशि- चितवाणी। स्त्रिया इति किम्। प्रामिण ब्राह्मणकुलं दृष्टिरस्य प्रामिणदृष्टिः। भाषि- तपुंस्कादिति किम्। खद्वाभार्यः। अन् किति किम्। ब्रह्मबन्धूभार्यः। समानाधिकरण

इति किम् । कल्यायया माता कल्यायीमाता । श्रियामिति किम् । कल्यायीप्रधानमेषां कल्यायीप्रधाना इमे । अपूर्याति किम् । कल्यायी पञ्चमी यासां ताः कल्यायीपंचमा रात्रयः । कल्यायीदशमाः ।

# वा०-प्रधानपूरणीयहर्णं कर्त्तव्यम् ॥

इह माभूत्। कल्याणपंचमीकः पत्त इति । अप्रियादिष्टिति किम्। कल्याणीप्रियः। दिङ् नामान्यन्तराक्ते ॥ २ । २ । २६ ॥

जो अन्तरात अर्थ में दिक् नाम सुबन्त राज्द, सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों सो बहुवीहि समास है। मध्य कोण को अन्तरात कहते हैं दिल्लिणस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरातं दिक् सा दिल्लिणपूर्वा दिक् । पूर्वोत्तरा । उत्तरपश्चिमा । पश्चिमदिल्लिणा । संख्यया उथयासन्नादूराधिकसङ्ख्याः सङ्ख्येये ॥ २ । २ । २ ५ ॥

जो संख्येय में वर्तमान अन्यय, आसन्न, दूर, आधिक और सङ्ख्या, सुबन्त के साथ समास पावे वह समास बहुन्रीहि हो (अन्यय) दशानां समीपे उपदशाः । उप-विंशाः । आसन्नदशाः । अदूरपामा बृत्ताः । अधिकविंशाः । (संख्या) द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः । त्रिचतुराः । द्विदशाः । संख्ययेति किम् । पंच न्नाह्मणः । अन्ययासन्नादूराधि-कसंख्या इति किम् । न्नाह्मणः पंच । संख्येय इति किम् । अधिका विंशातिर्गवाम् ।

# बहुनीहौ संख्येये डजबहुगणात् ॥ ५ । ४ । ७३ ॥

जो संख्येय में वर्त्तमान बहुनीहि उससे समासान्त डच् प्रत्यय हो । जैसे । उप-दशाः । उपविंशाः । उपत्रिंशाः । आसन्नदशाः । अदूरदशाः । संख्येय इति किम् । चित्रगुः । शवलगुः । अबहुगणादिति किम् । उपबहवः । उमगणाः ।

# वा०--- डच्प्रकरणे संख्यायास्तत्पुरुषस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥

निर्खिशाद्यर्थम् । निर्गतानि त्रिंशतः । निर्खिशानि वर्षाणि देवदत्तस्य । निश्चत्वारि-शानि यज्ञदत्तस्य । निर्गतिर्खिशताङ्गुलिभ्यो निर्खिशः खड्गः ।

# तत्र तेनेद्मिति सरूपे ॥ २ । २ । २७ ॥

इदम् अर्थ में सप्तम्यन्त सरूप और तृतीयान्त सरूप, सुबन्त के साथ समास पावे स्रो बहुब्रीहि हो।

इच् कर्मव्यतिहारे ॥ ५ । ४ । १२७ ॥

कर्म के व्यतिहार अर्थ में जो वहुन्रीहि उससे समासान्त इच् प्रत्यय हो । और तिष्ठद्गुप्रश्वति में इच् पढ़ा भी है इसितये अव्यय जानना । केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रष्टुत्तं केशाकेशि । दण्डेद्ण्डे:प्रहृत्येदं युद्धं प्रवर्त्तते तत् दण्डादण्डि ।

#### अन्येषामपि दृश्यते ॥ ६ । ३ । १३७ ॥

जिस शब्द को दीर्घादेश विधान कहीं न किया हो उसको दीर्घत्व इस सूत्र से जानिये। केशाकेशि। दण्डादण्डि। इत्यादि।

#### द्विद्ण्डचाद्भियश्च ॥ ५ । ४ । १२८ ॥

इच् प्रत्ययान्त द्विदिष्ड, द्विमुसिल इत्यादि निपातन किये हैं।

#### ५७ तेन सहेति तुल्ययोगे ॥ २ । २ । २८ ॥

तुल्य योग अर्थ में सह शब्द तृतीयान्त सुवन्त के साथ समास पावे सो बहुवीहि हो।

#### वोपसर्जनस्य ॥ ६ । ३ । ८२ ॥

जो उपसर्जन द्यर्थ में वर्तमान सह शब्द उसको स द्यादेश विकल्प करके हो। पुत्रेण सहागतः पिता सपुत्रः। सहपुत्रः। सच्छात्र द्याचार्यः। सहच्छात्रो वा। सक-भेकरः। सहकर्मकरो वा। तुल्ययोग इति किम्। सहैव दशाभिः पुत्रेभीरं बहति गर्दभी। उपसर्जनस्येति किम्। सहकृत्वा। सहयुष्वा।

#### प्रक्रत्याशिष्यगोवत्सहलेषु ॥ ६ । ३ । ८३ ॥

श्राशीर्वाद अर्थ में उत्तरपद परे हो तो गो, वत्स श्रीर हल इनको वर्ज के सह शब्द प्रकृति करके रहे अर्थात् स श्रादेश न हो । स्विस्त देवदत्ताय । सह पुत्राय । सह-च्छात्राय । सहामात्याय । श्राशिपीति किम् । सानुगाय दस्यवे दण्डं द्यात् । सहानुगा-य वा । श्रगोवत्सहलेष्विति किम् । स्वस्ति भवते सहगवे । सगवे । सहवत्साय । सव-त्साय । सहहलाय । सहलाय । वोपसर्जनस्येति पत्ते भवत्येव समासः ।

#### समानस्य छन्दस्यमूर्द्धप्रभृत्युद्केषु ॥ ६ । ३ । ८४ ॥

जो मूर्छ प्रभृति और उदके वर्जित उत्तरपद परे हो तो समान शब्द को स आदेश हो । अनुस्राता सगर्भ्यः । अनुसला सयूथ्यः । अमूर्छप्रभृत्युदर्केष्विति किम् । समान-मूर्ज्ञ । समानप्रभृतयः । समानोदकीः ।

# बहुब्रीहो सक्थ्यच्योः स्वाङ्गात् षच् ॥ ५ । ४ । ११३ ॥

बहुनीहि समास में स्वाङ्ग वाची सक्थि और श्राह्म शब्द से समासान्त षच् प्रत्यय हो । जैसे । दीर्घसक्थः । कल्याणाद्मः । लोहिताद्मः । जो स्त्री हो तो षित् होने से कीष् प्रत्यय होता है । दीर्घसक्थी । कल्याणाद्मी । इत्यादि । बहुन्रीहाविति किम् । परमसक्थि । परमाद्मि । सक्थ्यक्णोरिति किम् । दीर्घजातुः । सुबाहुः । स्वाङ्गादिति किम् । दीर्घसिक्थशकटम् । स्थूलाचिरिद्धः ।

### अङ्ग्र जेर्दारुगि ॥ ४ । ४ । ११४ ॥

दारु अर्थ में श्रङ्गुलि शब्दान्त बहुत्रीहि समास से समासान्त षच् प्रत्यय हो । हे श्रङ्कुली यस्य द्वश्रङ्गुलम् । त्र्यङ्गुलम् । चतुरङ्गुलं दारु । दारुणीति किम् । पञ्चाङ्गुलिहस्तः ।

# दित्रिभ्यां व मूर्द्धनः ॥ ५ । ४ । ११५ ॥

द्वि श्रौर त्रि से परे मूर्द्धन् शब्द से बहुन्नीहि समास में समासान्त प प्रत्यय हो। जैसे। द्विमूर्द्धः। त्रिमूर्द्धः। द्वित्रिभ्यामिति किम्। उचैर्मूर्द्धा।

#### अप् पूरणीप्रमाण्योः ॥ ४ । ४ । ११६ ॥

जो पूरण प्रत्ययान्त श्रीर प्रमाणी शब्दान्त बहुन्नीहि उससे समासान्त श्रप् प्रत्यय हो । जैसे । कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणाम्, ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः । कल्याणीदशमा रात्रयः । स्त्रीप्रमाणी येषां ते स्त्रीप्रमाणाः कुटुन्बिनः । भार्योप्रधाना इत्यर्थः ।

### वा०-प्रधानपूरगीग्रहणं कर्त्तव्यम्।।

इह माभूत्। कल्याणीपक्रमी श्रासिन् पद्मे कल्याणपंचमीकः।

#### वा०-नेतुर्नक्षत्र उपसंख्यानम् ॥

मृगो नेता त्रांसां रात्रीणां ता सृगनेत्रा रात्रयः । पुष्यनेत्राः । नत्तत्र इति किम् । देवदत्तनेतृकाः ।

### वा॰--छन्द्सि च नेतुरुपसंख्यानम् ॥

विद्याधर्मनेत्रा देवाः । सोमनेत्राः ।

# वा०-मासात् प्रत्ययपूर्वपदात् ठञ्विधिः ॥

पंचको मासोऽस्य पंचकमासिकः । कर्मकाराः । दशकमासिकाः ।

### अन्तर्वहिभ्यां च लोम्नः ॥ ४ । ४ । ११७ ॥

अन्तर् और बहिस् शब्द से परे जो लोमन् शब्द तदन्त बहुन्नीहि से समासान्तं अप् प्रत्यय हो । जैसे । अन्तर्गतानि लोमान्यस्यान्तर्जोमः प्रावारः । बहिर्गतानि लोमान्यस्य स बिल्जोमः पटः ।

# अञ् नासिकायाः संज्ञायां नसं चारुथूलात् ॥ ५ । ४ । ११८ ॥

O.

नासिकान्त बहुन्नीहि समास से अन् प्रत्यय हो श्रीर संज्ञा श्रर्थ में नासिका के स्थान में नस् आदेश हो। द्वरिव नासिकाऽस्य हुएसः। वार्द्धीग्रसः। गोनसः। संज्ञा-यामिति किम्। तुङ्गनासिकः। अस्थूलादिति किम्। अस्थूलनासिको वसहः।

#### वा०-खुरखराभ्यां नस् वक्तव्यः ॥

खुरणाः । खरणाः । पत्त में श्रच् प्रत्यय भी इष्ट है । खुरणसः । खरणसः ।

#### उपसर्गोच ॥ ४ । ४ । ११६ ॥

खपसर्ग से परे जो नासिका शब्द तदन्त बहुत्रीहि से समासान्त अच् प्रत्यय हो और नासिका को नस् आदेश भी हो। जैसे। उन्नता नासिका अस्य स उन्नसः। प्रगता नासिका अस्य प्रणसः।

#### वा०-वेर्भो वक्तव्यः ॥

वि पूर्वक नासिका के स्थान में प्र श्रादेश श्रौर श्रन् प्रत्यय भी हो । विगता नासिका श्रस्य स विप्रः ।

### सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रेणीपदाजपद्घोष्टपदाः ॥ ४ । ४ । १२० ॥

इसमें सुप्रात इत्यादि वहुन्नीहि समास श्रौर श्रच् प्रत्ययान्त निपातन किये हैं। जैसे। शोभनं प्रातरस्य सुप्रातः। शोभनं श्वोऽस्य सुश्वः। शोभनं दिवा श्रस्य सुदिवः। शािरिव कुच्चिरस्य शािरिकुचः। चत्तस्रोऽश्रयोऽस्य स चतुरश्रः। एएयाइव पादावस्य एखीपदः। श्रजस्येव पादावस्य श्रजपदः। प्रोष्टो गौस्तस्येव पादावस्य प्रोष्टपदः।

# नञ्दुः सुभ्यो हिलिसक्थ्योरन्यतरस्याम् ॥ ५ । १२१ ॥ नन् दुस् और सु इन से परे जो हिल और सिक्थ तदन्त बहुनीहि से

समासान्त अच् प्रत्यय विकल्प करके हो । जैसे । अविद्यमाना हित्तरस्य अहतः । अहितः । दुईतः । दुईतिः । सुहतः । सुहितः । अविद्यमानं सक्ध्यस्य असक्थः । असक्थिः । दुःसक्थः । दुःसक्थिः । सुसक्थः । सुसक्थिः ।

#### नित्यमसिच् प्रजामेधयोः ॥ ५ । ४ । १२२ ॥

नष् दुस् और सु से परें जो प्रजा और मेघा तदन्त बहुव्रीहि से नित्य ही समा-सान्त श्रासिच् प्रत्यय हो। जैसे। श्राविद्यमाना प्रजाऽस्य श्रप्रजाः। दुष्प्रजाः। सुप्रजाः। श्राविद्यमाना मेघाऽस्य श्रमेघाः। दुर्नेधाः। सुमेघाः। नित्य प्रहण् इसलिये है कि पूर्वसूत्र के विकल्प से दो प्रयोग न हों।

# बहुप्रजार्छन्द्सि ॥ ५ । ४ । १२३ ॥

बहुप्रजाः । यह वेद में निपातन किया है । छन्दसीति किम् । बहुप्रजो ब्राह्मणः ।

### धर्माद्निच् केवलात् ॥ ५ । ४ । १२४ ॥

केवल त्रर्थात् एक ही राज्द से परे जो धर्म राज्द उससे समासान्त त्रानिच् प्रत्यय हो । जैसे । कल्याणो धर्मोऽस्य कल्याणधर्मा । प्रियधर्मा । केवलादिति किम् । परमः स्वो धर्मोऽस्य परमस्वधर्मः ।

### जम्मासुहरिततृणसोमेभ्यः ॥ ५ । ४ । १२५ ॥

सु, हरित, तृण श्रौर सोम शब्द से परे यह जम्भा शब्द निपातन किया है, जम्भा नाम मुख्य दांतों का श्रौर खाने योग्य वस्तु का भी है। शोमनो जम्भोऽस्य सुजम्भा देवदत्तः । हरितजम्भा । तृणजम्भा । सोंमजम्भा ।

### दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे ॥ ५ । १ । १ २६ ॥

दिचियोर्मी समासान्त निपातन किया है लुब्धयोग अर्थ में । लुब्ध नाम व्याध का है । दिच्चियोर्मे त्रयामस्य दिच्चियोर्मी सृगः \* । ईर्मेत्रयासुच्यते । दिच्चियमङ्गं त्रियातमस्य व्याधेनेत्यर्थः । लुब्धयोग इति किम् । दिच्चियोर्मे शकटम् ।

### प्रसंभ्यां जानुनोर्जुः ॥ ५ । ४ । १२६ ॥

# जिस मृग के दिल्ला पार्श्व में बाण आदि से चत किया हो उसको दिल्ला में कहते हैं, क्योंकि ईमें चत का नाम है।

प्र भौर सम् से परे जातु शब्द को समासान्त हु आदेश हो। जैसे। प्रकृष्टे संसृष्टे च जातुनी अस्य प्रहुः। संहुः।

### कर्घाद् विभाषा ॥ ५ । ४ । १३० ॥

कर्ष्व शब्द से परे जानु शब्द को विकल्प करके हु आदेश हो । जैसे । ऊर्ध्वे जानुनी अस्य । ऊर्ध्वेद्धः । ऊर्ध्वजानुः ।

#### ऊधसोऽनङ् ॥ ५ । ४ । १३१ ॥

ऊधस् \* शब्दान्त बहुब्रीहि को समासान्त अनङ् आदेश हो । जैसे । कुण्डिसि-वोधोऽस्याः कुण्डोध्नी । घटोध्नी गौः ।।

### वा०--- ऊधसोऽनङि स्त्रीयहुगां कर्त्तवयम् ॥

इह माभूत् । महोधाः पर्जन्यः । घटोघो धैनुकम् ।

#### धनुषश्च ॥ ४ । ४ । १३२ ॥

धनुष् राव्दान्त बहुत्रीहि को अनङ् आदेश हो। जैसे। † शाङ्गे धनुरस्य शार्ङ्ग-धन्वा। गाय्डीवधन्वा। पुष्पधन्वा। अधिज्यधन्वा।

#### वा संज्ञायाम् ॥ ५ । ४ । १३३ ॥

संज्ञाविषय में धनुः शब्दान्त बहुत्रीहि को विकल्प करके अनङ् आदेश हो। जैसे। ‡ शतधनुः। शतधन्वा। दृढधनुः। दृढधन्वा।

#### जायाया निङ् ॥ ५ । ४ । १३४ ॥

जायान्त बहुन्रीहि को समासान्त निङ् घादेश हो । युवतिर्जायाऽस्य युवजानिः । घुद्धजानिः ।

# गन्धस्येदुत्पृतिसुसुरिभभ्यः ॥ ५ । ४ । १३५ ॥

बत, पूति, सु और सुरिम शब्दों से परे गन्ध शब्द को समासान्त इत् आदेश हो।

\* थनों के ऊपर जो दूध का स्थान अर्थात् एन है उसको ऊधस् कहते हैं।

† शार्क्क आदि धनुष् के विशेष नाम हैं।

‡ शतधनु आदि किसी पुरुष विशेष के नाम हैं।

उद्गतो गन्धोऽस्य उद्गन्धिः । पूतिगन्धिः । सुगन्धिः । सुरिमगन्धिः । पतेभ्य इति किम् । तीत्रगन्धो वातः ।

#### वा०--गम्धस्येत्वे तदेकान्तप्रहणम् ॥

गन्ध शब्द को इस्व विधान में उसी का अवयव हो तो इस्व होता है यहां नहीं होता \*। शोभनो गन्धोऽस्य सुगन्ध आपणः।

#### अल्पाख्यायाम् ॥ ५ । ४ । १३६ ॥

अलप अर्थ में वर्त्तमान बहुव्रीहि समासान्त गन्ध शब्द को इत् आदेश हो। जैसे। सूपोऽल्पोऽस्मिन् सूपगन्धि भोजनम्। अल्पमस्मिन् भोजने वृतं वृतगन्धि। चीरगन्धि। तैलगन्धि। द्धिगन्धि। तक्रगन्धि। इत्यादि।

#### उपमानाच ॥ ४। ४। १३७॥

खपमान वाची से परे गन्ध शब्द को इत् आदेश हो। पद्मस्येव गन्धोऽस्य पद्मगन्धि। खत्पत्तस्येव गन्धोऽस्य पुष्पस्य तदुत्पत्तगान्धि। करीषगन्धि। कुमुदगान्धि।

#### षादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ॥ ५ । ४ । १३८ ॥

बहुव्रीहि समास में हिस्ति आदि शब्दों को छोड़ के उपमान वाची शब्द से परे पाद शब्द के आकार का लोप हो। व्यावस्येव पादावस्य शुनः स व्याव्रपात्। सिंहपात्। आहस्त्यादिभ्य इति किम्। हस्तिपादः। कटोलपादः।

#### क्रुम्भपदीषु च।। ५। ४। १३६।।

कुंभपदी आदि शब्दों में पाद शब्द के अकार का लोप निपातन से किया है । कुंभपदी । शतपदी । अष्टापदी । इत्यादि ।

# संख्यासुपूर्वपदस्य च ॥ ५ । १ । १४० ॥

बहुनीहि समास में संख्या श्रीर सु पूर्वक पाद शब्द के श्रकार का लोप हो । द्वौ पादावस्य द्विपात् । त्रिपात् । चतुष्पात् । शोभनौ पादावस्य सुपात् ।

\* गन्ध शब्द सामान्य से गुण का नाम है सो जहां इसशब्द को द्रव्य की विवज्ञा न हो वहीं इत् आदेश हो और जहां विशेष द्रव्य की विवज्ञा में अन्य पदार्थ समास हो वहां इत् आदेश न हो । जैसे । सुगन्ध आपणः । सुन्दर गन्धयुक्त दुकान ।

#### वयसि दन्तस्य दत् ॥ ५ । ४ । १४१ ॥

संख्या और सुपूर्वक बहुन्नीहि समासान्त दन्त शब्द को दृष्ट आदेश हो । हाँ दन्तावस्य द्विदन् । त्रिदन् । चतुर्दन् । शोभना दन्ता अस्य सुदृन् कुमारः । वयसीति किम् । द्विदन्तो कुक्षरः ।

#### ब्रन्दिस च ॥ ५ । १ । १४२ ॥

वेद में बहुन्रीहि समासान्त दन्त शब्द को दृष्ट आदेश हो। जैसे। पत्रदन्तमालभेता। उभयदृत आसमते।

# स्त्रियां संज्ञायाम् ॥ ५ । ४ । १४३ ॥

जहां स्त्री की संज्ञा करना हो वहां बहुब्रीहि समासान्त दन्त शब्द को दत्र आदेश हो । अयोदती । फालदती । संज्ञायामिति किम् । समदन्ती । स्निग्धदन्ती ।

#### विभाषा इयावारोकाभ्याम् ॥ ५ । ४ । १४४ ॥

श्याव और अरोक शब्द से परे बहुब्रीहि समासान्त दन्त शब्द को विकल्प करके. दृत आदेश हो । श्यावा दन्ता अस्य श्यावदन् । श्यावदन्तः । अरोकदन् । अरोक-दृन्तः । अरोक नाम दीप्तिरहितः ।

#### अम्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च ॥ ५ । ४ । १४५ ॥

अप्रान्त शब्द, शुद्ध, शुभ्र, वृष और वराह इनसे परे बहुब्रीहि समासान्त दन्तशब्द को विकल्प करके दृष्ट आदेश हो । जैसे । कुड्मलाप्रामिव दन्ता अस्य कुड्मलाप्रदृत् । कुड्मलाप्रदन्तः । शुद्धदृन् । शुद्धदृन्तः । शुभ्रदन्तः । वृषदृन् । वृषदृन्तः । वराहदृन् । वराहदन्तः ।

### ककुद्स्यावस्थायां लोपः ॥ ५ । ४ । १४६ ॥

अवस्था अर्थ में वर्त्तमान बहुत्रीहि समासान्त ककुद शब्द के अन्त का लोप हो। असंजातककुत् वत्सः। बाल इत्यर्थः। उन्नतककुत्। वृद्धवया वृष इत्यर्थः। स्थूलककुत्। बलवानित्यर्थः। अवस्थायामिति किम्। खेतककुदः।

# त्रिककुत् पर्वते ॥ ५ । १ । १४७ ॥

पर्वत द्यर्थ में त्रिककुत् निपातन किया है । त्रीणि ककुदान्यस्य त्रिककुत् पर्वतः । पर्वत इति किम् । त्रिककुत्।ऽन्यः ।

### उद्रिभ्यां काकुद्स्य ॥ ५ । १ । १४८ ॥

उत् और विपूर्वक बहुनीहि समासान्त जो काकुद शब्द उसके अन्त का लोप हो। उद्गतं काकुदमस्य उत्काकुत्। विकाकुत्। तालुकाकुदमुख्यते।

### पूर्णीद्विभाषा ॥ ५ । ४ । १४६ ॥

पूर्ण शब्द से परे बहुत्रीहि समासान्त जो काकुद उसके अन्त का लोप विकल्प करके हो । पूर्णकाकृत् । पूर्णकाकुदः ।

# सुहृद्दुईदी मित्रामित्रयोः ॥ ५ । ४ । १५० ॥

खुहृद् श्रोर दुईद् निपातन मित्र श्रोर श्रमित्र श्रथों में किये हैं। शोभनं हृद्यम-स्य सुहृन्मित्रम्। दुष्टं हृद्यमस्य दुईद्मित्रः। मित्रामित्रयोरिति किम्। सुहृद्यः कारु-णिकः। दुईद्यश्चोरः।

### उरः प्रभृतिभ्यः कप् ॥ ५ । ४ । १५१ ॥

उरस् त्रादि शब्द जिसके अन्त में हों उस बहुत्रीहि समास से समासान्त कप् प्रत्यय हो । जैसे । व्यूदमुरोऽस्य व्यूदोरस्कः । प्रियसर्पिकः । अवमुक्तोपानत्कः ।

### इनः स्त्रियाम् ॥ ५ । ४ । १५२ ॥

इन् प्रत्ययान्त बहुत्रीहि समास से समासान्त कप् प्रत्यय हो । बहुवो दिखनो-ऽस्यो शालायां बहुदाखिका शाला । बहुच्छात्रिका । बहुस्वामिका नगरी । बहुवाग्मिका सभा । स्त्रियामिति किम् । बहुदखी \* । बहुदखिकों वा राजा ।

#### नयृतंश्च ॥ ५ । ४ । १५३ ॥

नयन्त और ऋकारान्त बहुत्रीहि समास से कप् प्रत्यय हो। जैसे। बहुव्यः कुमार्योऽस्यां शालायां सा बहुकुमारीका शाला। बहुत्रह्मबन्धूको देशः (ऋतः) बहुवः कर्त्तारोऽस्य बहुकर्तृको यज्ञः।

### न संज्ञायाम् ॥ ५ । ४ । १५५ ॥

अस्यहां शोषाद्विभाषा इस सूत्र से शेष अविहित समासान्त शब्दों से विकल्प करकें कप् प्रत्यय हो जाता है। बहुब्रीहि समास से संज्ञा विषय में समासान्त कप् प्रत्यय न हो । विश्वं यशोऽस्य स विश्वयशाः ।

# ईयसश्च ॥ ५ । ४ । १५६ ॥

ईयसन्त बहुन्रीहि समास से कप् प्रत्यय न हो । बहवः श्रेयांसोऽस्य बहुश्रेयान् । बह्नयः श्रेयस्योऽस्य बहुश्रेयसी । हस्वत्वमपि न भवति । ईयसो बहुन्रीही पुंचदिति वचनात् ।

#### वन्दिते आतुः ॥ ५ । ४ । १५७ ॥

प्रशंसा धर्थ में भ्रातृ शञ्दान्त बहुन्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय न हो । शोमनो भ्राताऽस्य सुभ्राता । वंदित इति किम् । मूर्खभ्रातृकः । दुष्टभ्रातृकः ।

#### भृतश्बन्द्सि ॥ ५ । ४ । १५८ ॥

वैदिक प्रयोग विषय में ऋकारान्त बहुब्रीहि समास से कप् प्रत्यय न हो । पंडिता माताऽस्य स परिडतमाता । विद्वान्पिताऽस्य स विद्वत्पिता । विदुषी स्वसाऽस्य स विद्व-त्स्वसा सुहोता ।

#### नाडीतन्त्रयोः स्वाङ्गे ॥ ५ । ४ । १५६ ॥

स्वाङ्गवाची नाडी और तन्त्री शब्दान्त बहुत्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय न हो। बहुयः नाड्योऽस्य बहुनाडिः कायः। बहुतन्त्री प्रीवा। स्वाङ्ग इति किम्। बहुनाडीकः स्तम्भः। बहुतन्त्रीका वीणा।

#### निष्प्रवाणिश्च ॥ ५ । ४ । १६० ॥

प्रवाणी नाम कोरी की शुलाई का है। निर्गता प्रवाणी यस्मात्स निष्प्रवाणिः पटः। निष्प्रवाणिः कम्बलः। प्रत्यम इत्यर्थः।

# सप्तमीविशेषणे बहुनीहौ ॥ २।२।५५)॥१९५

बहुत्रीहि समास में सप्तम्यन्त ध्यौर विशेषण पद का पूर्वनिपात हो। सप्तमी। जैसे। कर्ण्डेकालः। उरसिलोमा। विशेषण । चित्रगुः। शवलगुः।

# वा०-सर्वनामसंख्ययोरुपसंख्यानम् ॥

सर्वनाम श्रोर संख्यावाची शब्दों का पूर्वनिपात हो । सर्वश्वेतः । सर्वश्वद्याः । द्विशुक्तः । द्विश्वर्षः । विश्वदेवः । विश्वयशाः । द्विपुत्रः । द्विमार्यः । श्रथ यत्र संख्या सर्वनामयोरेव बहुब्रीहिः कस्य तत्र पूर्वनिपातेन भवितव्यम् । परत्वात् संख्यायाः । क्रयन्यः । त्रयन्यः ।

# वा०—वा प्रियस्य पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम् ॥

त्रिय शब्द का विकल्प करके पूर्व निपात हो । त्रियधर्मः । धर्मत्रियः ।

# वा०-सप्तम्याः पूर्वनिपाते गड्वादिभ्यः परवचनम् ॥

बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त राव्दों का पूर्वनिपात (सप्तमी वि०) इस सूत्र से कर चुके हैं सो गडुआदि राव्दों में न हो अर्थात् परनिपात हो। जैसे। गडुकण्ठः। गडुशिराः।

#### निष्ठा ॥ २ । २ । ३६ ॥

तिष्ठान्त शब्द का प्रयोग वहुत्रीहि समास में पूर्व हो, अधीता विद्या येन अधी-तविद्यः । प्रचालितहस्तपादः । कृतकटः । कृतधर्मः । कृतार्थः । संशितव्रतः ।

# वा०—निष्ठायाः पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परवचनम् ॥

जहां निष्ठान्त राव्दों का पूर्वनिपात किया है वहां जातिवाची, कालवाची और सुखादि राव्दों का पूर्वनिपात न हो अर्थात् परप्रयोग किया जावे । जैसे । शार्क्नजग्धी । पलाय्डुभित्तती । मासजातः । संवत्सरजातः । सुखजातः । दुःखजातः ।

# वा०-प्रहरणार्थेभ्यश्च परे निष्ठासप्तम्यौ भवत इति वक्तव्यम् ॥

शस्त्रवाची शब्दों से परे निष्ठान्त श्रौर सप्तम्यन्त शब्द होने चाहियें, श्रासिख्यतो येन श्रस्युद्यतः । मुसलोद्यतः । द्र्याणिः ।

#### वाहिताग्न्यादिषु ॥ २ । २ । ३७ ॥

बहुव्रीहि समास में श्राहिताग्नि इत्यादि शब्दों में निष्ठान्त का पूर्व निपात विक-ल्प करके हो । श्राग्निराहितो येन श्राग्न्याहितः । श्राहिताग्निः। जातपुत्रः । पुत्रजातः । जातदन्तः । दन्तजातः । इत्यादि ।

# अब इसके आगे द्रन्द्रसमास का प्रकरण है।।

### उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः \*।। चार्थे द्वन्द्वः ॥ २। २। २६॥

जो चकार के अर्थ में वर्तमान अनेक सुबन्त, वे सुबन्त के साथ समास पावें सो द्वन्द्वसंज्ञक समास हो। चकार के चार अर्थ हैं—समुच्चय। अन्वाचय। इतरेतर और समाहार। सो समुच्चय और अन्वाचय इन अर्थों में असमर्थ होने से समास में नहीं हो सकता और इतरेतर तथा समाहार अर्थों में द्वन्द्व समास हो, प्लच्छ न्यमोध्छ तौ प्लच्चन्यमोधौ। धवछ खदिरछ प्लाशक्ष ते धवखदिरप्लाशाः।

द्वन्द्वाच्चुद्वहान्तात्समाहारे ॥ ५ । ४ । (७ ॥ १०६

जो द्वन्द्व समाहार अर्थ में वर्तमान हो तो चवर्गान्त दान्त और हान्त द्वन्द्व समास से समासान्त टच् प्रत्यय हो । जैसे । वाक् च त्वक् च अनयोः समाहारः वाक्-त्वचम् । स्नक् च त्वक् च स्नक्त्वचम् । श्रीश्च स्नक् च श्रीस्नजम् । इड्जम् । वागूर्जम् । सामिधश्च दृषद्श्च सामिद्दृषद्म् । संपद्विपद्म् । वाग्विमुषम् । छत्रोपानहम् । धेनुगो-दुहम् । द्वन्द्वादिति किम् । तत्पुरुषान् माभूत् । पञ्चवाचः समाहृताः पञ्चवाक् । चुद्षहान्तादिति किम् । वाक्समित् ।

# उपसर्जनं पूर्वम् ॥ २ । २ । ३० ॥

सब समासों में उपसर्जन संज्ञक का पूर्व प्रयोग करना चाहिये। कष्टं श्रितः कष्ट-श्रितः। शङ्कुलाखण्डः, इत्यादि।

### राजद्न्तादिषु परम् ॥ २ । २ । ३१ ॥

सब समासों में राजदन्त आदि शब्दों का परे प्रयोग होता है। दन्तानां राजा राजदन्तः। अमेवरणम्। लिप्तवासितम्।

#### द्वन्द्वे घि॥२।२।३२॥

द्वन्द्व समास में घिसंज्ञक शब्द का पूर्वनिपात होता है। पदुश्च गुप्तश्च पदुगुप्ती।

#### वा०-अनेकप्राप्तावेकस्य नियमः शेषेष्वनियमः॥

जहां अनेक विसंज्ञकों का पूर्वनिपात प्राप्त हो वहां एक विसंज्ञक पूर्व प्रयोक्तन्य है और जो शेष रहें उनमें कुछ नियम नहीं है। पदुमृदुशुक्लाः। पदुशुक्लमृदवः।

<sup>\*</sup> इन्द्र समास में पूर्व पर सब शब्दों के अर्थ प्रधान रहते हैं।

### वा॰—ऋतुनच्चत्राणामानुपूर्व्यण समानाक्षराणां पूर्वनिपातो वक्तव्यः ॥

ऋतु श्रौर नत्तत्र जिस क्रम से पढ़े लिखे श्रौर समभे जाते हैं उनका उसी क्रम से पूर्व निपात होना चाहिये। जैसे। शिशिरवसन्तावुदगयनस्थौ। क्रितिकारोहिण्यः। चित्रास्वाती।

# वा॰-अभ्यहितं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् ॥

जहां पूर्वापर नियमपठित शब्द हों उन घ्यौर जहां साध्य घ्यौर साधन वाची शब्दों का समास किया जाय वहां पूर्वापर नियमित शब्द घ्यौर साधन वाची शब्दों का पूर्व निपात होता है। ऋग्यजुःसामाथर्वाणो वेदाः। इत्यादि। माता च पिता च मातापि-तरौ। श्रद्धा च मेधा च श्रद्धामेधे। दीचा च तपश्च दीच।तपसी।

### वा॰---लघ्वचारं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् ॥

जिस पद में थोड़ी मात्रा हों उस पद का द्वन्द्वसमास में पूर्व निपात होता है। कुशाश्च काशाश्च कुशकाशम्। शरचापम्। शरराईम्। अपर आह।

# वा॰—सर्वत एवाभ्यहिंतं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् जघ्व-क्षराद्पीति ॥

किन्हीं आचार्यों का ऐसा मत है कि सब विधियों का अपवाद होके अभ्यर्हित का ही पूर्वेनिपात होना चाहिये। जैसे। दीन्नातपसी। श्रद्धातपसी।

# वा॰—वर्णानामानुपूर्व्येण पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम् ॥

त्राह्मण आदि वर्णों का यथाक्रम पूर्वनिपात जानना चाहिये। ब्राह्मण्डात्रिय-विद्शुद्राः।

# वा०-अातुश्च ज्यायसः पूर्वनिपातो भवतीति वक्तंव्यम् ॥

बन्द्र समास में बड़े भाई का पूर्वनिपात होता है। युधिष्ठिरार्जुनौ । रामलक्ष्मणौ । वा॰—संख्याया अल्पीयस्याः पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम् ॥

द्वन्द्वसमास में अल्पसंख्यावाची शब्दों का पूर्वनिपात होता है। एकादश । द्वा-दश । द्वित्राः । त्रिचतुराः । नवतिशतम् ।

# वा०-धर्मादिषूभयं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् ॥

धर्म आदि शब्दों में दोनों पदों का पूर्वानिपात होता है। धर्मार्थों । अर्थधर्मों । कामार्थों । अर्थकामों । गुणवृद्धी । वृद्धिगुणों । आवानतों । अन्तादी ।

# अजाचद्न्तस् ॥ २ । २ । ३४ ॥

जिसके आदि में अच् और अकार अन्त में हो उस पद का पूर्व निपात होता है। उप्रखरों। ईशकेशयों। इन्द्ररामों। द्वन्द्वे व्यजाद्यदन्तं विप्रतिषेधेन। जहां अजादि अदन्त और धिसंज्ञक का द्वन्द्व समास हो वहां अजादि अदन्त का पूर्वनिपात होता है। जैसे। इन्द्राग्नी। इन्द्रवायू। तपरकरणं किम्। अश्वावृषौ। वृषाश्वे।

# द्रन्द्रश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ॥ २ । ४ । २ ॥

प्राणि तूर्य \* और सेना के अङ्गों का जो द्वन्द्वसमास सो एकवचन हो। (प्राण्यङ्ग) पाणी च पादौ च पाणिपादम्। शिरोप्रीवम्। (तूर्योङ्ग) मार्देङ्गिकपाणिवकम्। वीणा- वादकपरिवादकम्। (सेनाङ्ग) रथिकाश्वारोहम्। रथिकपादातम्।

#### अनुवादे चरणानाम् ॥ २ । ४ । ३ ॥

अनुवाद में अर्थ में चरण वाची सुबन्तों का जो द्वन्द्व समास सो एक वचन होता है। स्थेणोरद्यतन्यां चेति वक्तन्यम्। जहां स्था और इण् धातु का लङ् लकार का प्रयोग हो वहां चरण थाची सुबन्तों का द्वन्द्व एक वचन होता है। उदगात् कठ-कालापम्। प्रस्रष्ठात् कठकौथुमम्। अनुवाद इति किम्। उदगुः कठकालापाः। प्रस्रष्ठुः कठकौथुमाः। स्थेणोरिति किम्। अनन्दिषुः कठकालापाः। अद्यतन्यामिति किम्। उद्यन्ति कठकालापाः। इस सूत्र में चरण शब्द उन लोगों का नाम है कि जो वेद की शास्ताओं के निमित्त अर्थात् जिनके नाम से इस समय भी शास्ता प्रसिद्ध हैं। जैसे। कठ। मुण्डक। चरक। सुश्रुत। इस्रादि।

अध्वर्युक्रतुरनपुंसक्स् ॥ २ । ४ । ४ ॥ जो ऋतु वाची शब्द नपुंसक न हो तो अध्वर्यु नाम यजुर्वेद में विधान किये

<sup>\*</sup> ढोल आदि वाजों का यह नाम है।

<sup>†</sup> अनुवाद उसे कहते हैं जो पूर्व कहे प्रसंग को किसी प्रयोजन के लिये। फिर कहना है।

कतु नाम यज्ञवाची सुबन्तों का द्वन्द्व समास एकवचन हो । जैसे । अर्काश्वमेधम् । सायान्हातिरात्रम् । अध्वर्युकतुरिति किम् । इषुवज्रौ । उद्भिद्बलिभिदौ । अनपुंसकमिति किम् । राजसूयवाजपेये । इह कस्मान्न भवति । दर्शपौर्णमासौ । क्रतुशब्दः सोम-यज्ञेषु रूढः ।

#### अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाच्यानाम् ॥ २ । ४ । ५ ॥

जिन प्रन्थों का पठनपाठन आतिसमीप होता हो उन सुबन्तों का द्वन्द्व समास एकवचन हो । पदकक्रमकम् । क्रमकवार्तिकम् । अष्टाऽध्यायीमहाभाष्यम् । अध्ययनत इति किम् । पितापुत्रौ । अविश्रक्वष्टाख्यानामिति किम् । याज्ञिकवैयाकरणौ ।।

#### जातिरप्राणिनाम् ॥ २ । ४ । ६ ॥

प्राणिवर्जित जातिवाची सुवन्तों का द्वन्द्व समास एकवचन हो । आराशिस्त्र । धानाशब्कुलि । शय्यासनम् । जातिरिति किम् । नन्दकपाञ्चजन्यौ । अप्राणिनामिति । किम् । ब्रह्मचत्रियविट्शुद्धाः ।

#### विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः ॥ २ । ४ । ७ ॥

भिन्न तिङ्ग नदी और भिन्न तिङ्ग देशवाची सुवन्तों का द्वन्द्वसमास एकवचन हो प्राम को छोड़ के। उद्ध्यश्च इरावती च उद्ध्येरावति। गङ्गा च शोएश्च गङ्गाशोएम्। देश। कुरवश्च कुरुचेत्रं च कुरुकुरुचेत्रम्। कुरुजाङ्गतम्। विशिष्टतिङ्ग इति किम्। गङ्गायसने। मद्रकेकयाः।

#### वा॰-अग्राम इत्यत्र नगराणां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

जैसे ग्रामों के द्वन्द्व को एकवचन का निषेध है वैसे नगरों का होना चाहिये। जैसे। मथुरापाटलिपुत्रम्।

#### वा०-उभयतश्च ग्रामाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

उभयत अर्थात् प्राम और नगरों का अवयव जो द्वन्द्वसमास उसको एकवचन न हो । शौर्य्य नाम नगरम् केतवता नाम प्रामः । शौर्यं च केतवता च शौर्यकेतवते । जाम्बवं नगरं । शाल्किनी प्रामः । जाम्बवशाल्किन्यौ ।

#### भ्रुद्रजन्तवः ॥ २ । ४ । ८ ॥

सो एकवचन हो, दंशमशकम् । यूकामिद्यकमत्कुणम् । ज्ञुद्रजन्तव इति किम् । व्राह्मणचित्रयौ ।

# येषां च विरोधः शाश्वतिकः ॥ २ । ४ । ६ ॥

जिनका वैर नित्य हो तद्वाचि सुबन्तों का द्वन्द्व एकवचन हो। मार्जारम् पकम् । अश्वमहिषम्। अहिनकुलम्। श्वशृगालम्। चकार प्रहण् का प्रयोजन यह है कि जब विभाषा वृत्तमृग०। यह सूत्र प्राप्त हो और येषां च विरोध०। यह भी तब नित्य ही एकवचन हो। अश्वमहिषम्। काकोल्कम्। शाश्वतिक इति किम्। देवासुराः।

# शूद्राणामनिरवसितानाम् ॥ २ । ४ । १० ॥

जिन शूद्रों के भोजन करे पीछे मांजे से भी पात्र शुद्ध न हों वे श्रानिरवसित कहाते हैं श्रानिरवसित शूद्रों का द्वन्द्व समास एकवचन हो। तन्नायस्कारम्। रजकतन्तुवायम्। श्रानिरवसितानामिति किम्। चण्डालमृतपाः।

# गवाश्वप्रभृतीनि च ॥ २ । ४ । ११ ॥

यहां गवाश्वम् इत्यादि शब्द द्वन्द्व समास में एकवचन निपातन किये हैं । गवा-श्वम् । गवाविकम् । गवैडकम् । श्रजाविकम् । श्रजैडकम् । गवाश्वप्रभृतिषु यथोचारितं द्वन्द्ववृत्तं द्रष्टव्यम् । रूपान्तरे तु नायं विधिर्भवतीति \* । गोश्रश्वौ । पशुद्वन्द्वविभाषेव भवति ।

# विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यंजनपशुश्कुन्यश्ववडवपूर्वीपरा-धरोत्तराणाम् ॥ २ । ४ । १२ ॥

वृत्त मृग तृण् धान्य व्यंजन पशु शकुनि अश्ववडव पूर्वापर अधरोत्तर इन सुवन्तों का द्वन्द्व समास परस्पर विकल्प करके एकवचन हो। (वृत्त) सत्तन्यप्रोधम्। सत्तन्यप्रोधाः। (मृग) करुपृषतम्। करुपृषताः। (तृण्) कुराकाशम्। कुराकाशाः। (धान्य) ब्रीहियवम्। ब्रीहियवाः। (व्यञ्जन) दिधिवृतम्। दिधिवृते। (पशु) गोमहिषम्। गोमहिषाः। (शकुनि) तित्तिरिकपिञ्जलम्। तित्तिरिकपिञ्जलाः। हंसचक्रवाकाः। इसचक्रवाकाः। अधरोत्तरे। अधरोत्तरे।

क्रपान्तर अर्थात् जिस पत्त में अवङ् आदेश नहीं होता वहां यह एकवचन विधि नहीं होता ।

# वा॰—बहुप्रकृतिः फलसेनावनस्पतिमृगशकुनिचुद्रजन्तु-धान्यतृणानाम् ॥

एपां बहुप्रकृतिरेव द्वन्द्व एकवद्भवति \*। न द्विप्रकृतिः । वदरामलके । रथिकाश्वा-रोहो । प्लच्चन्यमोधो । रुरुप्रतो । हंसचक्रवाको । यूकालिचे । ब्रीहियवो । कुशकाराो ।

#### विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि ॥ २ । ४ । १३ ॥

जो भिन्न द्रव्यवाची श्रौर परस्पर विरुद्धार्थ सुबन्तों का द्वन्द्व, वह एकवचन वि-कल्प करके हो । शीतोष्णम् । शीतोष्णे । सुखदुःखम् । सुखदुःखे । जीवितमरणम् । जीवितमरणे । विप्रतिषिद्धमिति किम् । कामक्रोधौ । श्रनधिकरणवाचिनामिति किम् । शीतोष्णे उदके ।

#### न द्धिपयआदीनि ॥ २ । १ । १४ ॥

द्धिपय त्रादि शञ्दों द्वन्द्व एक वचन न हो । द्धि च पयथ्च ते द्धिपयसी । स-र्पिर्मधुनी । मधुसर्पिषी । ब्रह्म प्रजापती । शिववैश्रवणौ । इत्यादि ।

#### अधिकरणैतावत्वे च ॥ २ । ४ । १५ ॥

श्राधिकरण्वाची द्वन्द्व समास के एतावत्त्वनाम परिमाण श्रर्थ में एक वचन हो । चतुः इंशिंशहन्तोष्टाः । दश मार्दाङ्गिकपाण्विकाः ।

#### विभाषा समीपे ॥ २ । ४ । १६ ॥

श्रधिकरण के एतावत्त्व के समीप श्रथं में एक वचन विकल्प करके हो । उपदशं दुन्तोष्ठम्। उपदशा दन्तोष्ठाः । उपदशं मार्दक्षिकपाणविकम् । उपदशा मार्दक्षिकपाणविकाः ।

#### स नपुंसकेम् ॥ २ । ४ । १७ ॥

जिस द्विगु श्रोर द्वन्द्व को एकवन्द्राव विधान किया है सो नपुंसक लिङ्ग होता है (द्विगु) पञ्चगवम् । दशगवम् । (द्वन्द्व) पाणिपादम् । शिरोमीवम् । इत्यादि ।

परपद का लिङ्ग प्राप्त हुआ था उसका अपवाद यह सूत्र है।

#### अव्ययीभावश्च ॥ २ । ४ । १८ ॥

अबहुप्रकृति अर्थात् जहां बहुवचनान्त शब्दों का द्वन्द्व हो वहीं एक वचन हो ।
 (वदरामलके) यहां द्विवचनान्त के होने से एक वचन न हुआ ।

श्रव्ययीभाव समास नपुंसक लिङ्ग हो ।

# वा०-पुण्यसुद्भ्यामहः क्लीवतेष्यते ॥

जैसे । पुर्यं च तद्हश्च पुर्याहम् । सुदिनाहम् ।

# वा०-पयः संख्याञ्ययादेः क्लीवंतेष्यते ॥

संख्या और श्रान्यय जिसके श्रादि में हो ऐसे पथिन् शन्द को नपुंसकितङ्ग हो । त्रिपथम् । चतुष्पथम् । विपथम् । सुपथम् ।

#### वा॰-क्रियाविशेषणानां च ब्रजीवता वक्तव्या ॥

मृदु पचति । शोभनं पचति ।

# \* सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ ॥ १ । २ । ६४ ॥

जो तुल्य रूप शब्द हों उनका एक विभक्ति परे हो तो एकशेष तथा अन्य रूपों की निष्टति हो। वृत्तश्च वृत्वश्च वृत्तश्च वृत्य वृत्तश्च वृत्त वृत्य

# वृद्धो यूना तहाचणश्चेदेव विशेषः ॥ १ । २ । ६५ ॥

जो तल्लक्षण अर्थात् वृद्धप्रत्ययान्त श्रीर युवप्रत्ययान्त ही का विशेष नाम विरूपता हो श्रीर मूल प्रकृति समान होवे तो वृद्धनाम गोत्र प्रत्ययान्त शब्द श्रीर युव प्रत्य-यान्त शब्द का जब एक सङ्ग उचारण करें तब वृद्ध शेष रहे श्रीर युवा की निवृत्ति हो ( चदाहरण ) गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च तौ गार्ग्यो । वात्स्यश्च वात्स्यायनश्च वात्स्यौ । वृद्ध इति किम् । गर्गश्च गार्ग्यायणश्च गर्गगार्ग्यायणौ । यूनेति किम् । गार्ग्यश्च गर्गश्च गार्ग्यगार्गा । तल्लक्षण इति किम् । गार्ग्यवात्स्यायनौ । एवकारः किमर्थः । भागवित्तिश्च भागवित्तिकश्च । भागवित्तिभागवित्तिकौ । कुत्सा श्रीर सौवीर ये दो श्रथं भागवित्तिक शुब्द में युव प्रत्ययान्त से भी श्रलग हैं।

<sup>\*</sup> यहां से एकशेष द्वन्द्व का प्रकरण चलता है।

### स्त्री पुंवचा। १।२।६६॥

जब वृद्धा स्त्री श्रौर युवा का एक सङ्ग उचारण करें तब वृद्धा स्त्री शेष रहे श्रौर युवा की निवृत्ति हो । पुंवत् श्रर्थात् स्त्री को पुलिङ्ग के सदृश कार्य्य हो जो तल्लचण ही विशेष होवे तो । गार्गी च गार्ग्यायण्य गार्ग्यों । वात्सी च वात्स्यायनश्च वात्स्यों । दाची च दाचायण्य दाची ।

### पुमान् ख्रिया ॥ १ । २ । ६७ ॥

जो तल्लक्षण विशेष होवे तो स्त्री के साथ पुरुष शेष रहे स्त्री निवृत्त हो । जैसे । ज्ञाह्मण्य ज्ञाह्मण्य ज्ञाह्मण्य ज्ञाह्मण्य ज्ञाह्मण्ये । कुक्कुटश्च कुक्कुटी च कुक्कुटौ । यहां तल्लक्षण्य विशेष इसिलये है कि कुक्कुटश्च मयूरीच कुक्कुटमयूर्यों । यहां एक शेष न होषे । एवकार इसिलये है कि इन्द्रश्च इन्द्राणीचेन्द्रेन्द्राण्यौ । यहां इन्द्राणी शब्द में पुंयोग की आख्या स्त्रीत्व से प्रथक् होने के कारण एकशेष न हो ।

### आतुपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् ॥ १ । २ । ६८ ॥

भ्रात् श्रौर पुत्र शब्द, यथाकम स्वसृ श्रौर दुहित के साथ शेष रहें । भ्राता च स्वसा च भ्रातरो । पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ ।

### नपुंसकमनपुंसकेनैकवचास्यान्यत्रस्याम् ॥ १ । २ । ६६ ॥

नपुंसकितक्षवाची शब्द नपुंसकिमिर्जवाची शब्द के साथ एकरोष पावे । और नपुं-सक को एक वचन भी विकल्प करके हो । शुक्लक्ष कम्बलः शुक्ला च बृहतिका शुक्लं च वस्त्रं तिददं शुक्लम् । तानीमानि शुक्लानि । अनपुंसक के साथ इसिलये कहा है कि शुक्लं च शुक्लं च शुक्लं च शुक्लानि । यहां एकवचन न हो ।

#### पिता मात्रा ॥ १ । २ । ७० ॥

मातः शब्द के साथ पितृशब्द विकल्प करके शेष रहे । माता च पिता च पितरौ । मातापितराविति वा ।

# श्वशुरः श्वथ्वा ॥ १ । २ । ७१ ॥

श्वशुर शब्द श्वश्रू शब्द के साथ विकल्प करके शेष रहे। श्वश्रू च श्वशुरश्च श्वशुरौ । श्वश्रृश्वशुराविति वा।

# त्यदादीनि सर्वेर्नित्यम् ॥ १ । २ । ७२ ॥

यहां नित्य प्रह्णा पूर्व विकल्प की निष्टत्ति के लिये है त्यद् आदि शब्द सब शब्दों के साथ शेष रहें। स च देवदत्तश्च तौ । यश्च देवदत्तश्च यौ । त्यदादीनां मिथो यद्य-तुपरं तिच्छिष्यते । सच यश्च यौ । यश्च कश्च कौ ।

### माम्यपशुसंघेष्वतरुगोषु स्त्री ॥ १ । २ । ७३ ॥

प्राप्त में रहने वाले पशुष्ठों के समुदाय में स्त्रीवाची शब्द पुरुषवाची शब्द के साथ शेष रहें 'पुमान सिया' इस सूत्र से पुरुषवाची शब्द का शेष पाया था उसका अपवाद यह सूत्र है। महिषाश्च महिष्यश्च महिष्य इमाश्चरन्ति। गाव इमाश्चरन्ति। श्राम्यप्रहणं किम्। रुरव इमे। प्रषता इमे। पश्चिति किम्। प्राह्मणाः। चित्रयाः। संघेष्विति किम्। पतौ गावौ चरतः। अतरुणेष्विति किम्। बरुसा इमे। वर्करा इमे।

### वा०-अनेकशफेष्विति वक्तव्यम् ॥

धानेक शफ अर्थात् जिन पशुओं के खुर दो २ हों कि जैसे—गाय मैंस आदि उन्हीं में यह विधि हो धौर यहां न होवे कि । धश्वा इमे । गर्दभा इमे । घोड़े और गर्ध के खुर जुड़े होते हैं । इसके धागे सामान्य सूत्रों को लिखते हैं जिनमें एक समास का नियम नहीं है ।

# प्रथमानिर्दिष्टं समासउपसर्जनम् ॥ १ । २ । ४३ ॥

समास त्रिधायक सूत्रों में प्रथमा विभक्ति से जिस शब्द का उच्चारण किया हो वह उपसर्जन संज्ञक हो। द्वितीया समास में द्वितीया प्रथमानिर्दिष्ट और तृतीया समास में तृतीया प्रथमानिर्दिष्ट है। ऐसे ही और भी जानो। कष्टाश्रितः। शाङ्कुलया खण्डः।

# उपसर्जनं पूर्वम् ॥ २ । २ । ३० ॥

इस सूत्र से उपसर्जन संज्ञक का पूर्व निपात होता है तथा अन्य भी उपसर्जन संज्ञा के बहुत प्रयोग हैं सो अपने २ प्रकर्ण में सममने चाहियें यहां समास में उनके जिखने की आवश्यकता नहीं।

# एकविभक्ति चापूर्वनिपाते ॥ १ । २ । ४४ ॥

जिस पद की समास विधायक सूत्र में एक ही विभक्ति नियत हो तो उपसर्जन

संज्ञक हो । अपूर्विनिपाते । पूर्विनिपाताख्य जो उपसर्जन कार्य्य है उसको वर्जि के । निरादयः क्रांताद्यर्थे पञ्चम्या । यहां जैसे पञ्चम्यन्त ही पद का नियम है इसिलये उत्तर पद की उपसर्जन संज्ञा होती है । निष्क्रांतः कौशाम्ज्या निष्कौशाम्बः । यहां उपसर्जन संज्ञा का प्रयोजन यह है कि स्त्रीप्रत्यय को हस्व हो जाता है । एकविभ-क्षीति किम् । राजकुमारी \* । अपूर्विनिपात इति किम् । कौशाम्बीनिरिति । यहां कौशाम्बी की उपर्जन संज्ञा नहीं होती ।

गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ॥ १ । २ । ४८ ॥

गो इति स्वरूपप्रहणं स्त्रीति प्रत्ययप्रहणं स्वरितत्त्वात् । इसका अर्थ यह है कि जो हिन् रेवे चतुर्थ अध्याय में 'स्त्रियाम्' इस अधिकार सूत्र करके प्रत्यय कहे हैं उनका यहां प्रहण हिन निन्दे हैं । स्त्रीशब्दान्त प्रातिपदिक को और उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिक को इस हो । चित्रगुः । शवलगुः । निष्कौशान्तिः । निर्वाराणिसः । अतिसद्वः । अतिमालः । उपसर्जनस्येति किम् । राजकुमारी । स्वरितत्वात् किम् । अतितन्त्रीः । अतिसद्मीः । अतिस्रीः ।

# कडाराः कर्मधारये ॥ २ । ३ । ३८ ॥

कर्मधारय समास में कडार शब्द का पूर्वनिपात विकल्प करके हो। जैसे। कडार-जैमिनिः। जैमिनिकडारः। इत्यादि †।

### परविद्धिङ्गनद्वनद्वतत्पुरुषयोः ॥ २ । १ । २६ ॥

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में परपद का लिंग हो। द्वन्द्व। कुक्कुटमयूर्योविमे। मयू-रीकुक्कुटाविमो । तत्पुरुष । अर्द्ध पिप्पल्या अर्द्धपिप्पली । अर्द्धकोशातकी ।

# द्विगुत्रातापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

द्विरा । प्राप्त । आपन्न । अलंपूर्वक तथा गतिसंज्ञक इन समासों में पर पद का

\* यहां एक विभाक्त का नियम इसिलये नहीं है कि जिस षष्ठयन्त की उपसर्जन संज्ञा होती है उससे सब विभाक्त आती हैं। जैसे। राज्ञः कुमारी। राज्ञोः कुमार्यों। राज्ञां कुमार्थ्यः। इत्यादि।

† जो 'प्राक्कडायत्समासः' इस सूत्र में समास का श्राधिकार किया था वह पूरा हो गया। श्रव इसके श्रागे समास में किस पद के लिङ्ग का प्रयोग होना चाहिये, इसका श्रारम्भ हुआ है। तिङ्ग न हो । पञ्चमु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः पञ्चकपालः । प्राप्तो जीविकां प्राप्त-जीविकः । आपन्नो जीविकां आपन्नजीविकः । अलंपूर्वेकः । अलंजीविकाये । अलंजी-विकः । गतिसमास । निष्कान्तः कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः । निर्वाराणसिः ।

अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्दनहुहर्क्सामवाङ्मनसा-चिश्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तंदिवरात्रिंदिवाहर्दिवसरजसिन-रश्रेयसपुरुषायुषद्रचायुषत्र्यायुषग्र्यज्ञषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोप-शुनगोष्ठश्वाः ॥ ५ । ४ । ७७ ॥

ये १५ बहुन्नीहि न्नादि समासों में अन् प्रत्ययान्त निपातन किये हैं सो न्नादि में तीन बहुनीहि हैं न्नविद्यमानानि चत्वारि सेनाङ्गानि यस्य सः अचतुरः। विगतानि चत्वारि यस्य सः विचतुरः। शोभनानि यस्य सः सुचतुरः। इससे न्नागे ११ ग्यारह द्वन्द्व समास में निपातन किये हैं। स्त्रीपुंसौ। धेन्वनड्हौ। ऋक्सामे। वाङ्मनसे। अन्तिभुवम्। दाराश्च गावश्च दारगवम्। ऊरू च न्नष्टीवन्तौ च ऊर्वष्ठीवम्। टिलोपो निपात्यते। पादौ चाष्टीवन्तौ च पद्ष्ठीवम्। नक्तं च दिवा च नक्तन्दिवम्। रात्रौ च दिवा च रात्रिन्दिवम्। पूर्वपदस्यमान्तत्वित्रपत्यते। म्नहानि च दिवा च महर्दिवम्। वीप्तायान्द्वन्द्वो निपात्यते। महन्यहनीत्यर्थः। एक् अव्ययीभाव साकल्य मर्थं में है। सरजसमभ्यवहरति। इससे परं तत्पुरुष जानो। निश्चितं श्रेयो निश्श्यसम्। यहां से परं वष्टी समास है। पुरुषस्य आयुः पुरुषायुषम्। इससे परं द्विगु है। द्वे आयुषी समाहते द्वशायुषम्। ज्यायुषम्। इससे परे द्वन्द्व। ऋक् च यजुश्च ऋग्यजुषम्। ज्ञागे उच्चश्चन्तन्त तीन कर्मधारय समास हैं। जातश्चासावुचा च जातोचः। महोचः। वृद्धोचः। इससे परे एक अव्ययीभाव समास है। शुनः समीपं उपशुनम्। इससे परे सतमी तत्पुरुष समास है। गोष्टेश्वा गोष्टिश्वः। जिस २ समास में जो २ निपातन किये हैं वे इसी २ समास में निपातन जानने चाहियें।

# वा०-चतुरोऽच्प्रकरणे त्र्युपाभ्यामुपसंख्यानम् ॥

त्रि श्रौर उपशब्द से परे जो चतुर शब्द उससे समासान्त श्रच् प्रत्यय हो। जैसे । त्रिचतुराः । उपचतुराः ।

### द्वितीये चाऽनुपाख्ये ॥ ६ । ३ । ८० ॥

जो प्रत्यच्न जाना जाय सो उपाख्य श्रौर जो इससे भिन्न है सो किहये श्रानु-पाख्य श्रशीत् श्रानुमेय है जहां द्वितीय श्रानुपाख्य हो वहां सह राज्द को स श्रादेश हो । सबुद्धिः । साग्निः कपोतः । सपिशाचा वात्त्या । सराच्चसीका शाला । यहां श्रीप्र श्रादि साचात् नहीं होते किंतु श्रानुमानगम्य हैं ।

### ज्योतिर्जनपद्रात्रिनामिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचन-बन्धुषु ॥ ६ । ३ । ८५ ॥

ज्योतिष्, जनपद, रात्रि, नाभि, नाम, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन श्रोर बन्धु ये उत्तरपद परे होवें तो समान को स श्रादेश हो । समानं च तज्ज्योतिश्च सज्योतिः । समानं ज्योतिर्यस्मिन् स सज्योतिर्व्यवहारः । सजनपदः । सरात्रिः । सनाभिः । सनामा । सगोत्रः । सरूपः । सस्थानः । सवर्णः । सवयाः । सवचनः । सबन्धुः ।

### चरगो ब्रह्मचारिगा ॥ ६ । ३ । ८६ ॥

धाचरण द्यर्थ में ब्रह्मचारी उत्तरपद परे हो तो समान शब्द को स द्यादेश हो। समानो ब्रह्मचारी सब्रह्मचारी। जो एक वेद पढ़ने खाँर द्याचार्य्य के समीप व्रत को धारण करता है वह सब्रह्मचारी कहाता है।

### इदंकिमोरीश्की ॥ ६ । ३ । ६० ॥

जो हक् हरा त्रौर वतु परे हों तो इदम् त्रौर किम् शब्द को ईश् त्रौर की आदेश हों। ईहक्। ईहशः। इयान्। कीहक्। कीहशः। कियान्।

### वा०-हचेचेति वक्तव्यम्॥

हत्त्व उत्तरपद के परे भी इदं और किम् शब्द को ईश् और की आदेश हो जावें। जैसे। ईहत्तः। कीहत्तः।

# विश्वग्देवयोश्च टेरच्रञ्जतावप्रत्यये ॥ ६ । ३ । ६२ ॥

जो अप्रत्यय अर्थात् विवप् तथा विच् प्रत्ययान्त अञ्चिति परे हो तो विश्वग्, देव और सर्वनाम की टि को अद्रि आदेश हो। विश्वगञ्चतीति विश्वयुक्। देवणूक्। सर्वनाम। तद्गुक्। यद्गुक्। विश्वग्देवयोरिति किम्। विश्वाची। अप्रत्यय इति किम्। विश्वगञ्चनम्।

### वा०--छन्द्सि स्त्रियां बहुलमिति वक्तव्यम् ॥

वेद विषयक स्नीलिंग में विश्वग् आदि की टि को अद्रि आदेश वहुल करके हो। जैसे। विश्वाची च घृताची चेत्यत्र न भवति। कद्रीचीत्यत्र तु भवत्येव।

### समः समिः ॥ ६।३। ६३॥

जो श्राप्रत्ययान्त श्राष्ट्रति परे हो तो सम् के स्थान में सिम श्रादेश हो । सम्यक्। सम्यञ्जी । सम्यञ्जः ।

# तिरसस्तिर्यछोपे ॥ ६ । ३ । ६४ ॥

अप्रत्ययान्त लोप रहित अञ्चित उत्तरपद परे हो तो तिरस् के स्थान में तिरि आदेश हो। तिर्यञ्चौ। तिर्यञ्चौ। विर्यञ्चः। अलोप इति किम्। तिरश्चौ। तिरश्चौ।

### सहस्य सिधः ॥ ६ । ३ । ६५ ॥

जो अप्रत्ययान्त अञ्चित उत्तरपद परे हो तो सह शब्द को सिध आदेश हो। सध्युङ् । सध्युङ्कौ । सध्युञ्चः ।

### सधमाद्स्थयोश्छन्द्सि ॥ ६ । ३ । ६६ ॥

वेद विषय में माद श्रौर स्थ उत्तरपद परे हों तो सह के स्थान में सघ श्रादेश हो । सधमादो शुम्न एकास्ताः । सधस्थाः ।

### द्वचन्तरुपसर्गेभ्योऽपईत् ॥ ६ । ३ । ६७ ॥

द्वि अन्तर् और उपसर्गों से परे अप् शब्द के आदि अत्तर के स्थान में इत् आदेश होता है। द्वयोः पार्श्वयोरापो यस्मिन्नगरे तद्द्वीपम्। अन्तर्मध्ये आपो यस्मि-न्त्रामे सोऽन्तरीपः। अभिगता आपोऽस्मिन्सोऽभीपो प्रामः। इत्यादि \* ।

### ऊद्नोदेंशे ॥ ६ । ३ । ६८ ॥

देश अर्थ में अनु उपसर्ग से परे अप् शब्द के अकार को ऊकार आदेश हो। अनुपो देश: । देश इति किम् । अन्वीपम् ।

# अषष्टचतृतीयास्थस्यान्यस्यदुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिका-रकरागच्छेषु ॥ ६ । ३ । ६६ ॥

<sup>\* &#</sup>x27;आदे: परस्य' इससे अप् शब्द के अकार के स्थान में ईत् आदेश होता है।

जो आशिष्। आशा। आस्था। आस्थित। उत्सुक। अति। कारक। राग और छ प्रत्यय परे हों तो जो षष्ठी तृतीया विभक्षि रहित अन्य शब्द उसको दुक् का आगम हो। अन्या आशीः, अन्यदाशीः। अन्या आशाः, अन्यदाशाः। अन्या आस्थाः, अन्यदास्था। अन्य आस्थितः, अन्यदास्थितः। अन्य उत्सुकः, अन्यदुत्सुकः। अन्या अतिः, अन्यदृतिः। अन्यः कारकः, अन्यत्कारकः। अन्योरागः, अन्यद्रागः। अन्यस्मिन् भवः, अन्यदीयः, गहादिष्वन्य शब्दो द्रष्टव्यः। अषष्ट्रधतृतीयास्थस्येति किम्। अन्यस्य आशीः, अन्याशीः। अन्येन आस्थितः, अन्यास्थितः।

### अर्थे विभाषा ॥ ६ । ३ । १०० ॥

अर्थ उत्तरपद परे हो तो अन्य शब्द को दुक् का आगम विकल्प करके हो । अन्योर्थः अन्यदर्थः । पत्ते अन्यार्थः ।

### कोः कत्तत्पुरुषे उचि ॥ ६ । ३ । १०१ ॥

जो अजादि उत्तरपद परे श्रीर तत्पुरुष समास हो तो कु शब्द के स्थान में कत् श्रादेश हो । कदजः । कदश्वः । कदुष्ट्रः । कदन्नम् । इत्यादि । तत्पुरुष इति किम् । कुष्ट्रो राजा । श्रचीति किम् । कुन्नाह्मणः । कुपुरुषः ।

### वा०-कद्भावे त्रावुपसंख्यानम् ॥

जो कु शब्द को कत् आदेश कहा है सो त्रि शब्द के परे भी होवे । कुत्सिता-स्त्रयः कत्र्यः ।।

### रथवद्योश्च ॥ ६ । ३ । १०२ ॥

रथ और वद उत्तरपद परे हों तो कु शब्द को कत् आदेश हो। कद्रथः। कद्रदः।

### तृणे च जातौ ॥ ६। ३। १०३॥

जाति अर्थ में तृण उत्तरपद परे हो तो कु के स्थान में कत् आदेश हो । कत्तृणा नाम जातिः । जाताविति किम् । कुत्सितानि तृणानि कुतृणानि ।

### का पथ्यक्षयोः ॥ ६ । ३ । १०४ ॥

पथिन् श्रौर श्रज्ञ उत्तरपद परे हों तो कु शब्द को का श्रादेश हो। कुस्सितः पन्थाः कांपथः । कांज्ञः ।

B

# ईषद्र्ये ॥ ६ । ३ । १०५ ॥

किंचित् अर्थ में वर्त्तमान कु शब्द को उत्तरपद परे हो तो का आदेश हो। ईवल्लवरणम् । कालवरणम् । कामधुरम् । काऽम्लम् । ईवदुष्णम् । कोष्णम् ।

### विभाषां पुरुषे ॥ ६ । ३ । १०६ ॥

पुरुष उत्तरपद परे हो तो कु शब्द को का आदेश विकल्प करके हो । कुत्सितः पुरुषः कापुरुषः । कुपुरुषः ।

### कवं चोष्णे ॥ ६ । ३ । १०७ ॥

खब्ण उत्तरपद परे हो तो कु शब्द को कव आदेश विकल्प करके हो पद्ध में का हो । ईषदुब्लाम् । कवोब्लाम् । कोब्लाम् । कदुब्लाम् ।

### पथि च छन्दसि ॥ ६ । ३ । १०८ ॥

वेद में पथिन उत्तरपद परे हो तो कु शब्द को कव आदेश हो। पन्न में विकल्प करके का भी हो। कवपथः। कापथः। कुपथः।

### पृषोद्रादीनि यथोपदिष्टम् ॥ ६ । ३ । १०६ ॥

जिन शब्दों में लोप आगम और वर्णविकार किसी सूत्र से विधान न किये हों और वे शिष्ट पुरुषों ने उच्चारण किये हैं तो वैसे ही उन शब्दों को जानना चाहिये करें। पृषदुदरमस्य, पृषोदरम् । पृषत् उद्धानम्, पृषोद्धानम् । यहां तकार का लोप है । वारिवाहको बलाहकः । यहां वारि शब्द को व आदेश है । तथा वाहक पद के आदि को ल आदेश जानो । जीवनस्य मूतो जीमूतः । यहां वन शब्द का लोप है । शवानां शयनं शमशानम् । शव शब्द को शम आदेश और शयन के स्थान में शान जानो । उच्वें खमस्येति ऊखलम् । यहां उच्वे को ऊ तथा ख शब्द को खल आदेश जानना चाहिये । पिशिताशः पिशाचः । यहां पिशि को पि और ताश के स्थान में शाच आदेश है । बुवन्तोऽस्यां सीदन्तीति वृसी । सदधातु से अधिकरण् में डट् प्रत्यय और उपपद बुवत् शब्द को वृ आदेश होजाता है । मह्यां रौतीति मयूरः । अच्

<sup>\*</sup> यह सूत्र अन्य सब साधुत्वकारक सूत्रों के विषयों को छोड़ के बाक़ी विषय में प्रकृत्त होता है।

प्रत्यय के परे रुधातु के टि का लोप और मही शब्द को मय् आदेश हो जाता है इसी प्रकार और भी अश्वत्थ, कपित्थ आदि शब्दों की सिद्धि समम्मनी चाहिये।

# वा०—दिक्राब्देभ्य उत्तरस्य तीरशब्दस्य तारभावो वा भवति ॥

दिशा वाची शब्दों से परे तीर शब्द को तार आदेश विकल्प करके हो। दिन-णतीरम्। दिन्नणतारम्। उत्तरतीरम्। उत्तरतारम्।

### वा॰—वाचो वादे डत्वं च लभावश्चोत्तरपद्स्येञि प्रत्यये भवति॥

वाद उत्तर पद के परे वाक् शब्द को ड आदेश और इस् प्रत्यय के परे उत्तर बाद शब्द को ल आदेश हो जावे। वाचं वदतीति वाग्वादः। तस्यापत्यं वाड्वालिः।

### वा०-षषउत्वं दतृदशधासूत्तरपदादेष्टुत्वं च भवति॥

षद् शब्द को उ हो दतृ, दश और धा उत्तरपद परे हों तो और उत्तरपद के आदि को मूर्द्धन्य आदेश हो । षड्दन्ता अस्य षोडन् । षट् च दश च षोडश ।

वा॰—धासु वा षषउत्वं भवति उत्तरपदादेश्च ष्टुत्वम् ॥
पूर्वोक्त कार्य्य धा उत्तरपद में विकल्प करके हो । षोढा । षड्धा कुरु ।

# बा०—हुरो दारानाराद्भध्येषूत्वं वक्तव्यमुत्तरपदादेश्च ष्टुत्वम् ॥

दुर् शब्द को उत्व हो दाश नाश दम और ध्य ये उत्तरपद परे हों तो और ध्यार पदों के आदि को मूर्डन्य आदेश हो। क्रच्छ्रेण दाश्यते। नाश्यते। दभ्यते। च या स दूडाशः। दूणाशः। दूडभः। दुष्टं ध्यायतीति दूढ्यः। इत्यादि। वर्णागमो वर्णविपर्ययक्ष द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ। धातोस्तद्शीतिशयेन योगस्तदुच्यते पंच- थिधं निरुक्तम्।

### संहितायाम् ॥ ६ । ३ । ११४ ॥

अब जो कार्य कहेंगे सो संहिता के विषय में होंगे अर्थात् यह अधिकार सूत्र है। कर्णे लक्ष्मणस्याविष्टाष्ट्रपञ्चमणिभिन्नछिन्नछिन्नस्वस्ति-कस्य ॥ ६ । ३ । ११५ ॥

विष्ठ । अष्ट । पञ्च । मणि । मित्र । छित्र । छित्र । सुष । स्वस्तिक । इन नव

शब्दों को छोड़ के कर्ण शब्द उत्तरपद परे हो तो लक्षणवाची पूर्वपद को दीर्घ आदेश हो संहिता विषय में । दात्रमिव कर्णावस्य दात्राकर्णः । द्विगुणाकर्णः । त्रिगुणाकर्णः । द्वियङ्गुलाकर्णः । ज्यङ्गुलाकर्णः । यत् पश्चनां स्वामिविशेषसम्बन्धज्ञापनार्थं दात्राका-रादि कियते । तदिह लक्षणं गृद्धते । लक्षणस्थेति किम् । शोभनकर्णः । आविष्टादीना-मिति किम् । विष्टकर्णः । अष्टकर्णः । पंचकर्णः । माणिकर्णः । भिन्नकर्णः । छिन्नकर्णः । छिन्नकर्णः । स्वस्तिककर्णः ।

### नहिवृतिवृषिञ्यधिरुचिसहितनिषु को ॥ ६ । ३ । ११६ ॥

जो ये नह आदि धातु क्विप् प्रत्ययान्त उत्तरपद परे हों तो संहिता विषय में पूर्वेपद को दीर्घादेश हो । उपानत् । परीणत् । नीष्टत् । उपाष्टत् । प्राष्ट् । उपावृद् । मर्मावित् । इदयावित् । श्वावित् । नीरुक् । अभीरुक् । ऋतीषद् । तरीतत् । क्वाविति किम् । परिणहनम् ।

# वनगिर्योः संज्ञायां कोटराकेंशुलकादीनाम् ॥ ६ । ३ । ११७ ॥

संज्ञा विषय में वन उत्तरपद परे हो तो कोटर आदि और गिरि परे हो तो किंगु-लक आदि पूर्वपदों को दीर्घ आदेश हो । कोटरावणम् । मिश्रकावणम् । सिध्रकाव-णम् । सारिकावणम् । किंगुलकागिरिः । अञ्जनागिरिः । कोटरिकंगुलकादीनामिति किम् । असिपत्रवनम् । कृष्णागिरिः ।

### अष्टनः संज्ञायाम् ॥ ६ । ३ । १२५ ॥

अष्टन् पूर्वपदं को दीर्घ आदेश हो संज्ञा विषय में । अष्टावकः । अष्टावन्धुरः । अष्टापदम् । संज्ञायामिति किम् । अष्टपुत्रः । अष्टबन्धुः ।

### ब्रन्द्सि च ॥ ६ । ३ । १२६ ॥

वेद विषय में अष्टन् पूर्वेपद को उत्तरपद परे हो तो दीर्घ आदेश हो । आग्नेय-मष्टाकपालं निर्वेपेत् । अष्टाहिरएया दिल्ला। अष्टापदं सुवर्णम् ।

# वा॰ गिव च युक्ते भाषायामष्टनोदीर्घो भवतीति वक्तव्यम् ॥

लौकिक प्रयोग विषय में युक्त गो शब्द उत्तरपद परे हो तो अष्टन् पूर्वपद को दीर्घ हो जावें। जैसे । अष्टागवं शक्तटम् ।

### चितेःकपि ॥ ६ । ३ । १२७ ॥

कृप् प्रत्यय परे हो तो चिति पद को दीर्घ आदेश हो। द्विचितीकः। त्रिचितीकः।

# विश्वस्य वसुराटोः ॥ ६ । ३ । १२८ ॥

वसु और राट् उत्तरपद परे हों तो विश्व पूर्वपद को दीर्घ आदेश हो। विश्वावसुः। विश्वाराट्।

### नरे संज्ञायाम् ॥ ६ । ३ । १२६ ॥

संज्ञा विषय में जो नर उत्तरपद परे हो तो विश्व पूर्वपद को दीर्घ हो । विश्वानरो नाम तस्य वैश्वानरिः पुत्रः । संज्ञायामिति किम् । विश्वे नरा यस्य स विश्वनरः ।

### मित्रे चर्षे ॥ ६ । ३ । १३० ॥

ऋषि अर्थ में मित्र उत्तरपद परे हो तो विश्व पूर्वपद को दीर्घ आदेश हो। विश्वामित्रो नाम ऋषिः। ऋषाविति किम्। विश्वमित्रो माणवकः।

### सर्वस्य द्वे ॥ ८ । १ । १ ॥

सब शब्दों के दो २ रूप होवें। यह अधिकार सूत्र है।

### तस्य परमाञ्रेडितम् ॥ ८ । १ । २ ॥

दो भागों का जो पर रूप है सो आब्रेडित संज्ञक हो । चौर चौर ३ । दस्यो दस्यो ३ । घातयिष्यामि त्वा । बन्धयिष्यामि त्वा ।

### अनुदात्तं च॥ ८।१।३॥

जो दित्व हो सो अनुदात्त संज्ञक भी हो।

### नित्यवीप्सयोः ॥ ८ । १ । ४ ॥

नित्य और वीप्सा अर्थ में वर्तमान जो शब्द उसको द्वित्व हो । तिङ् अव्यय और कृत् इनमें तो नित्य होता है । तथा सुप् में वीप्सा होती है। व्याप्तुमिच्छा वीप्सा। पचित पचित । पठित पठित । जल्पित २ । अक्त्वा २ व्रजित । भोजं २ व्रजित । तुनीहि तुनीहीत्येवायं तुनाति । वीप्सा । प्रामो २ रमणीयः । जनपदो २ रमणीयः । पुरुषः पुरुषो निधनसुपैति ।

### परेर्वर्जने ॥ ८ । १ । ५ ॥

वर्जन अर्थ में जो परि हो तो उसको द्वित्व हो । परि २ त्रिगर्त्तेभ्यो घृष्टो देवः । परि २ सौवीरभ्यः । वर्जन इति किम् । आदनं परिषिद्धति ।

# वा०-परेर्वर्जने उसमासे वेति वक्तव्यम् ॥

असमास \* अर्थात् जिस पत्त में समास नहीं होता वहां विकल्प करके द्विवेचन हो । परि २ त्रिगर्तेभ्यो वृष्टोदेवः । परित्रिगर्त्तेभ्यः ।

# प्रसमुपोदः पादपूरणे ॥ ८ । १ । ६ ॥

पाद पूरा करना ही द्यर्थ हो तो प्र सम् उप उद् इनको द्वित्व हो । प्रप्रायमग्निर्भ-रतस्य श्रृण्धे । संसमिद्युवसे वृषन् । उपोपमे परामृश । किन्नोदुदुहर्षसे दातवाउ ।

# उपर्यध्यधसः सामीप्ये ॥ ८ । १ । ७ ॥

उपरि अधि और अधस् इनको द्वित्व हो समीप अर्थ में । उपर्ध्युपरि दुःखम् । उपर्य्युपरिमामम् । अध्यधिप्रामम् । अधोधोवनम् । सामीप्य इति किम् । उपरिचन्द्रमाः ।

# वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासंमतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु॥८।१।८॥

असूया आदि अथों में जो वाक्य उसका आदि जो आमन्त्रित पद उसको द्वित्व हो (असूया) और के गुणों को न सहना (सम्मित) सत्कार (कोप) क्रोध (कुत्सन) निन्दा (भत्सेन) में धमकाना (असूया) माणवक ३ माणवक अभि-रूपक ३ आमिरूपक रिक्तन्ते आमिरूप्यम्। (संमित) माणवक ३ माणवक अभिरू-पक ३ अमिरूपक शोभनः खल्वास (कोप) देवदत्त ३ देवदत्त आविनीतक ३ आवि-नीतक संप्रति वेत्स्यसि दुष्ट (कुत्सन) शिक्तके ३ शिक्तके यिष्टके ३ यिष्टके रिक्ता ते शिक्तः (भत्सेन) चौर चौर ३ वृषत्त वृषत्त ३ घातियिष्यामि त्वा बन्धियिष्यामि त्वा। वाक्यादेरिति किम्। अन्तस्य मध्यस्य च माभूत्। शोभनः खल्वासि माणवक। आम-नित्रतस्येति किम्। उदारो देवदत्तः। असूयादिष्विति किम्। देवदत्त गामभ्याज शुक्ताम्।

ां कोप और भत्सेन में इतना भेद है कि कोप में अन्तः करण से दूसरे को दुःख देना चाहता है और भत्सेन में ऊपर ही का तेजमात्र दिखाया जाता है।

अधिकार में (अपपरि०) इस सूत्र से हो जाता है।

# एकं बहुब्रीहिवत्।। ८।१।६॥

द्वित्व का जो एक शब्दरूप है उसकी बहुव्रीहि के समान कार्य्य हो बहुव्रीहि के हो प्रयोजन हैं। सुब्लोप और पुंबद्भाव। एकैकमत्तरं वदन्ति। एकैकयाऽऽहुत्या जुहोति। एकैकस्मै \* देहि।

#### आबाधे च ॥ = । १ । १०॥

श्रावाध नाम पीड़ा श्रर्थ में वर्त्तमान शब्द को द्वित्व हो । श्रीर बहुब्रीहि के समान कार्य हो । गतगतः । नष्टनष्टः । पतितपतितः । प्रियस्य चिरगमनादिना पीड्यमानः कश्चिदेवं प्रयुङ्के प्रयोक्ता ।

# कर्मधारयवदुत्तरेषु ॥ ८ । १ । ११ ॥

यहां से आगे जो दित्व कहेंगे वहां कर्मधारय के तुल्य कार्य होगा । कर्मधार-यवत् कहने से तीन प्रयोजन हैं । सुब्लोप, पुंबद्भाव और अन्तोदात्त । सुब्लोप । पटुपटुः । मृदुमृदुः । परिडतपरिडतः । पुंबद्भाव । पटुपट्वी । मृदुमृद्वी । कालिकंका-लिका । अन्तोदात्त । पटुपटुः । पटुपट्वी ।

### प्रकारे गुणवचनस्य ॥ ८ । १ । १२ ॥

प्रकार नाम सादृश्य अर्थ में वर्त्तमान शब्द को द्वित्व हो । पटु २ । पिडत २ । प्रकारवचन इति किम् । पटुर्देवदत्तः । गुणवचनस्येति किम् । अभिर्माणवकः ।

### वा०-आनुपूर्व्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

मूले २ स्थूलाः । अप्रे २ सूच्माः । क्येष्टम् २ प्रवेशय ।

# वा०-स्वार्थेऽवधार्यमाणेऽनेकस्मिन् द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

श्रास्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषं २ देहि । श्रवधार्यमाण इति किम् । श्रास्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषमेकं देहि द्वौ मासौ देहि । त्रीन् वा माषान् देहि । श्रनेक-स्मिन् इति किम् । श्रास्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषमेकं देहि ।

### वा०-चापले द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

अ बहुत्रीहि समास में सर्वनाम संज्ञा का निषेध किया है सो वह निषेध यहां इस-लिये नहीं लगता कि जो मुख्य करके बहुत्रीहि हो वहीं निषेध हो यह मुख्य नहीं है। संभ्रमेण प्रवृत्तिश्चापलम् । श्राहिराहिर्बुध्यस्य २ । नावश्यं द्वावेव शब्दौ प्रयोक्तव्यौ । किं तर्हि यावद्भिः शब्दैः सोऽर्थोऽवगम्यते तावन्तः प्रयोक्तव्याः । श्रहिः ३ बुध्यस्य ३ ।

वा०-आभीच्णये द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

भुक्त्वा भुक्त्वा ब्रजित । भोजं भोजं ब्रजित ।

वा०—कियासमिसहारे द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

स भवान् जुनीहि जुनीहीस्येवायं जुनाति ।

वा०—डाचि बहुलं द्वे भवत इति वक्तव्यम्॥

पटपटा करोति । पटपटायते ।

वा॰—पूर्वप्रथमयोरर्थाऽतिशये विवक्षायां द्वे भवत इति

पूर्व २ पुष्यन्ति । प्रथम २ पच्यन्ते ।

वा॰—डतरडतमयोः समसंप्रधारणयोः स्त्रीनिगदे भावे हैं भवत इति वक्तव्यम् ॥

खमाविमात्राढ्यो । कतरा कंतरा श्रनयोराढ्यता । सर्व इमे श्राढ्याः । कतमा कतमा एषामाढ्यता । डतरडतमाभ्यामन्यत्रापि हि दृश्यते । उभाविमावाढ्यो । कीदृशी कीदृशी श्रनयोराढ्यता । तथा स्त्रीनिगदाद् भावादन्यत्रापि हि दृश्यते उभाविमावाढ्यो । कतरः कतरोऽनयोर्विभव इति ।

वा०-कर्मञ्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे भवत इति वक्तञ्यस् ॥

समासवच्च बहुताम् । यदा त समासवत् प्रथमैकवचनं तदा पूर्वपदस्य । अन्य-मन्यमिमे ब्राह्मणा भोजयन्ति । अन्योन्यमिमे ब्राह्मणा भोजन्ति । अन्योन्यस्येमे ब्राह्मणा भोजयन्ति । इतरेतरान् भोजयन्ति ।

वा० - स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपद्स्य चाम्भावो वक्तव्यः ॥

अन्योन्यामिमे ब्राह्मएयौ भोजयतः । अन्योन्यम्भोजयतः । इतरेतराम्भोजयतः । इतरेतरम्भोजयतः । अन्योन्यमिमे ब्राह्मण्कुले भोजयतः । इतरेतरिममे ब्राह्मण्कुले भोजयतः ।

# द्रन्द्रं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु

द्वन्द्व यहां द्वि शब्द को द्वित्व तथा पूर्वपद को अम्भाव और उत्तरपद को अकार आदेश निपातन किया है रहस्य, मर्यादावचन, व्युत्क्रमण, यज्ञपात्रप्रयोग और अभिव्यक्ति इन अर्थों में। (रहस्य) द्वन्द्वं मन्त्रयते द्वन्द्वं मिथुनायते क्षः। (मर्यादावचन) आचतुरं हीमे परावो द्वन्द्वं मिथुनायन्ते। माता पुत्रेण मिथुनं गच्छति। पौत्रेण तत्पुत्रे-णापीति। (व्युत्क्रमण) द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ताः। द्विवर्गसम्बन्धात्प्रथगवस्थिता इत्यर्थः। (यज्ञपात्रप्रयोग) द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनिक्त धीरः। (अभिव्यक्ति) द्वन्द्वं नारदपर्वतौ। द्वन्द्वं संकर्षणवासुदेवौ। द्वावप्यभिव्यक्तौ साहचर्येणेत्यर्थः।

वसुकालाङ्कभूवर्षे भाद्रमास्यसिते दले । 1938 द्वादश्यां रविवारे ऽयं सामासिकः पूर्णो ऽनघाः ॥

इति श्रीमत्परित्राजकाचार्य्येण श्रीयुत्तयतिवरमहाविद्वद्भिः श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिभिः सुशिच्चितेन दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितः पाणिनीयव्याख्यया सुभूषितः सामासिकोऽयं प्रन्थः पूर्त्तिमगमत् ।।

<sup>\*</sup> राजा और मुख्यसभासद् एकान्तं में विचारं और विवाहित स्त्रीपुरुष ऋतुकाल में समागम करें।

FEL.R.

केवल समा अञ्चयीसाव तत्पुरुष एकाधिकरणतत्पु० बहुबीहि द्वन्द्व

एकशेषादि

HINDU SUCCESSION ACT, 1956-contd.

the family property on behalf of the member sells away the property, necessity, the alienation is not bin of the family and the other medium question the alienation at any ting it is however, well settled that the property without legal necess not bind the reversioners and it life-time of the widow.

If the widow alienates property the reversioners are entitled even the widow to bring a suit for a detion in question was not for legal was not binding upon them. A cannot in the absence of legal ne ance for her own personal debts against the reversioners. An alien powers is, however, not void but that it is open to the reversioners alienation when the estate falls into by express ratification or by acts of the alienation as valid and binding

The interest of a Hindu wid inherited by her bears no analogy equitable estate in English Law followed in the hands of a bona notice. From very early times powers of alienation by a Hindu from her estate. For legal necessary another an absolute title to the p there is no legal necessity, the widow's estate which is not even for it can come to an end not me the happening of other continge adoption, etc. If an alienee su that there was legal necessity fo pletely protected and it is imma was brought about by the misma owner herself even if there is no is proved that there was represe the alienee after making bon

the alience after making bon himself as best as he could that then the actual existence of a leg dition precedent to the validity

> It is well established by now 14, Hindu Succession Act, 1956, status of a Hindu woman with owned and possessed by her at t

# दिक-पुस्तकालय में मि उने वाली पुस्तकों की सूची

102		C N DEED
्र च्लें स	<b>ब्रु</b> च्य	विक्रयार्थ पुस्तकें मूर्वय
	37)	संस्कारविधि बहिया
	(A)	, घाटिया
	(8)	२५ प्रति लेने वाले को =) में
	un	
on the man will determ	15	विवाहपद्धति =
and the subject of th		जासिय काराजीकार
The state of the s		MIO HA MILLIAM
		द्विरुद्धसत्त्वराडन े =)।।
		ीरान्तिभ्वान्तिनवार्या नागरा
		अंग्रेज़ी -)।।
		भ्रान्तिनिवारण
		शास्त्रार्थ काशी
	0	शास्त्राय कारा। स्त्रमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश नागरी )।।
	16-1	स्वामक्ताववामन्त्र नात्र वार्
	(-)	
- (स्पुर)ना	nal)	निर्वा भूषायप राजार
- Alice Inc	) सौ	पारा नरा ०
ा नागरी ॥।= एक म्रा	ते ।	्रिक्तिकारियतं प्रत
गर्भ सरहर	ft -)	छान्दोग्योपनिषद् संस्कृत तथा है १)
	ज़ी -)	हिन्दी भाष्य
गोकरुगानिधि	" (-)	
गाकरणानाव स्वामीनारायणमतखराडन	=)	बुहद्वारविश्व साराम् र
्यामानारायखनात्त्रवर्	11=)	युज्य द भाषामा अ
सत्यार्थप्रकाश नागरी बढ़िया	1)	विद्वित्रीवातात्र भाग । व
सत्यार्थप्रकाश नागरी घटिया २५ प्रति लेने वाले क		ह्वनमन्त्र)।, भूभभूभ
भार्याभिविनय गुटका	=)	कृत्वय ६५७ ताम .
मोरे क्रिया हो	11=)	्र, बिह्या समिल्द । <sup>=</sup> )
क्रमाधिकान वॉर्ट से बहिया १०), घाटया १)		
द्यानन्द ग्रन्थमाला बढ़िया सजित्द ४), घटिया ३)		
		No. of Concession, Name of Street, or other Designation of the Owner, or other Designa

नोट:-डाकमहम्रल भवका मूल्य से अलग होगा।

पुस्तक मिलने का पता— प्रबन्धकर्सा वैदिक पुस्तकालय, Copy right Registered under Sections 18 and 19 Act XXV of 1867

\* श्रो३म् \*

# त्र्यथ वेदाङ्गप्रकाशः

++12++++12++++12++

तत्रत्यः

B. L. Hens. LL. B. F.

FEFF WINE ALL OMT. JAES

सोवरः

श्रीमत्स्वामिद्यानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः

पाणिनिसुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यामष्टमो भागः पठनपाठनव्यवस्थायामेकादशं पुस्तकम्।

(20% pm)

श्री पंडित भगवानस्वरूप न्यायभूषण प्रबन्धकर्तुः प्रबन्धेन वैदिक यन्त्रालये, अजमेरनगरे मुद्रितः ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं क्योंकि इसकी रजिस्टरी कराई गई है।

संवत् २००३ विक्रमीः चौथी वार १००० ] श्रीमद्दयानन्दान्द १२३

[ मूल्य।)

पुस्तक मिलने का पताः— वैदिक-पुस्तकालय, अजमेर.

# अथ भूमिका

++11++ ++11++

इस सौवर प्रनथ के बनाने का मुख्य प्रयोजन यही है कि जिससे सब मनुष्यों को उदात्तादि स्वरों की व्यवस्था का बोध यथार्थ हो जावे। जब तक उदात्तादि स्वरों को ठीक २ नहीं जानते तब तक लौकिक वैदिक वाक्यों वा छन्दों का स्पष्ट, प्रिय उच्चारण, गान और ठीक २ द्रार्थ भी नहीं जान सकते। और उच्चारण आदि के यथार्थ होने के विना लौकिक वैदिक शब्दों से यथार्थ सुखलाम भी किसी को नहीं होता। देखो इस विषय में प्रमाण:——

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः खरतोऽपराधात्।।

जो शब्द अकारादि वर्णों के स्थान प्रयत्न पूर्वक उच्चारण नियम और उदात्तादि स्वरों के नियम से विरुद्ध बोला जाता है उस को मिथ्यात्रयुक्त कहते हैं, क्योंकि जिस अर्थ को जताने के लिये उसका प्रयोग किया जाता है उस अर्थ को वह शब्द नहीं कहता, किन्तु उससे विरुद्ध अर्थान्तर को कहता है। इसलिये उच्चारण किया हुआ वह शब्द अभीष्ट अभिप्राय को नष्ट करने से वज्र के तुल्य वार्गीरूप होकर यजमान अर्थान् शब्दार्थसम्बन्ध की सङ्गति करने वाले पुरुष ही को दुःख दे देता है, अर्थात् प्रयोक्ता के आभिप्राय को बिगाड़ देना ही उस को दुःख देना है। जैसे (इन्द्रशत्रुः) शब्द स्वर के विरोध से ही विरुद्धार्थ हो जाता है। इन्द्रशत्रुः तत्पुरुष समास में तो अन्तोदात्त होता है। इन्द्रः अर्थात् सूर्य का शत्रु मेघ बढ़कर विजयी हो। (इन्द्रंशत्रु:) यहां बहुब्रीहि समास में पूर्वपद प्रकृतिस्वर से आगुदात्त स्वर होता है। और शत्रु शब्द का अर्थ यही है कि शान्त करने वा काटनेवाला। प्रमाण निरुक्त का-इन्द्रोऽस्य शुमियता वा शातियता वा । सो तत्पुरुष समास में तो इन्द्र नाम सूर्य का शत्रु शान्त करने वाला मेघ आया और बहुत्रीहि समास में सूर्य जिसका रात्रु शान्त करने वा काटने वाला है ऐसा अन्य पदार्थ मेघ आया। जो पुरुष, सूर्य का शान्त करने वाला मेघ है, इस अभिप्राय से इन्द्रशत्रु शब्द का वच्चारण किया चाहता है तो उसको आन्तोदात्त वच्चारण करना चाहिये, परन्तु जो वह आयुदात्तं उच्चारण कर देवे [तो] उसका आभिप्राय नष्ट हो जावे, क्योंकि आयुदात्त उच्चारण से बहुब्रीहि समास में मेघ का शान्त करने वा काटने वाला सूर्य ठहरेगा। इसालिये जैसा अपना इष्ट अर्थ हो वैसे स्वर और वर्ण का नियमपूर्वक ही

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

品

उच्चारण करना चाहिये। जब मनुष्य को उदात्तादि स्वरों का ठीक २ बोध हो जाता है तब स्वर लगे हुए लौकिक [वैदिक] शब्दों के नियत अर्थों को शीघ्र जान लेता है। जैसे किसी एक शब्द को आगुदात्त स्वरयुक्त देखा तो जान लेगा कि अमुक अर्थ में अमुक श्रित वा नित प्रत्यय हुआ है, इसलिये इस का यही अर्थ होना चाहिये, इससे विकद्ध अर्थ नहीं हो सकता, ऐसा निश्चय स्वरज्ञ पुरुष को हो जाता है। जैसे—स कर्ता, स कर्ता इन दो वाक्यों में दो प्रकार के स्वर होने से दो ही प्रकार के अर्थ होते हैं। पहिले वाक्य में लुद लकार की क्रिया है। अर्थ-वह अगले दिन करेगा। और दूसरे में कृदन्त तृच् प्रत्ययान्त शब्द है। अर्थ-वह करनेवाला पुरुष है, इत्यादि।

इसी प्रकार एक प्रकार के शब्दों का अर्थभेद स्वरव्यवस्था के जानने से ही निकलता है। जो स्वरव्यवस्था का बोध न हो तो अर्थों का लौट पौट व्यभिचार होजाने से बड़ा अन्धेर फैल जावे। इसी प्रकार समासों के प्रथक र नियतस्वरों को जान के उन र समासों के नियत अर्थों को शीघ्र जान लेता है, अर्थात उदात्तादि स्वरज्ञान के विना अर्थ की आन्ति नहीं छूटती। और उदात्तादि स्वरबोध के विना वेदमंत्रों का गान और उच्चारण भी यथार्थ नहीं हो सकत, क्योंकि षड्जादि स्वर गानविद्या में उपयोगी होते हैं, वे उदात्तादि के विना नहीं हो सकते। जैसे:—

# उची निषादगांधारी नीचावृषभधेवती। शेषास्तु स्वरिता ज्ञेयाः षड्जमध्यमपंचमाः॥

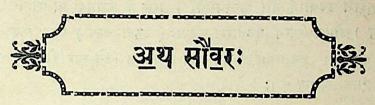
यह वचन याज्ञवल्क्याशिचा का है।।

षड्जादिकों में निषाद और गान्धार तो उदात्त के लच्च्या से, ऋषभ और धैवत अनुदात्त के लच्च्या से तथा पड्ज, मध्यम और पञ्चम ये तीनों स्वरितस्वर से गाये जाते हैं। उदात्तादि के विना वेदमंत्रों का उच्चारण भी प्रिय नहीं लगता और जब उदात्तादि के सहित उच्चारण किया जाता है तब अतिप्रिय मनोहर उच्चारण होता है। इस प्रन्थ में स्वरच्याख्या संदोप से की है, परन्तु जो मुख्य २ स्वरविषय के पाणिनीय अष्टाध्यायीस्थ सूत्र हैं, वे सब इस में लिख दिये हैं, और सब अष्टाध्यायी की वृत्ति में लिखे जायंगे।

इति भूमिका॥

स्थान महाराणाजी का उदयपुर ) संवत् १६३६ माश्विन वदी १३

(स्वामी) द्यानन्दसरस्वती



# १-महाभाष्य-स्वयं राजन्त इति स्वराः, अन्वरभवति व्यञ्जनम् ॥ [ महा० १ । २ । २६ ]

स्वर उन को कहते हैं कि जो विना किसी की सहायता से उच्चारित और इस्ट्रं प्रकाशमान [हों, ] और व्यव्जन वे कहाते हैं।के जिन का उच्चारण स्वर के आधीन हो।। १॥

# २-उच्चेरुद्।तः ॥ अ०१।२।२६॥

मुख के किसी एक स्थान में जिस अच् का ऊंचे स्वर से उचारण हो वह उदात्तसंज्ञक होता है ।। जैसे——श्रीपगवः । यहां 'अण्' प्रत्यय का अकार उदात्त हुआ है ।। २ ।।

# ३-महा०-स्रायामो दारुण्यमगुता खस्येत्युचैःकरागि शब्दस्य ॥

उदात्त स्वर के उच्चारण में इतनी बातें होनी चाहियें—(आयाम:) शरीर के सब अवयवों को रोक लेना, अर्थात् ढीले न रखना, (दारुख्यम्) शब्द के निकलते समय तीखा रूखा स्वर निकले, और (अर्णुता खस्य) कण्ठ को रोक के बोलना चाहिये, फैलाना नहीं। ऐसे प्रयत्नों से जो स्वर उच्चारण किया जाता है वह उदात्त कहाता है, यही उदात्त का लक्षण है।। ३॥

# ४-नीचैरनुदात्तः ॥ अ०१।२।३०॥

जो किसी एक मुखस्थान में नीचे प्रयत्न से उच्चारण किया हुआ स्वर है उस को अनुदात्त कहते हैं ।। जैसे—आपग्वः । यहां जिन के नीचे तिर्झी रेखा है वे तीनों वर्ण अनुदात्त हैं ।। ४ ।।

# ५-महा०-अन्ववसर्गों मार्दवमुरुता खस्योति नीचैःकराणि शब्दस्य॥ [ महा०१।२।३० ]

अनुदात्त उच्चारण में (अन्ववसर्गः) शरीर के अवयवों को शिथित कर देना, (माईवम्) कोमल स्निग्ध उच्चारण करना, (उक्ता खस्य) और कण्ठ को कुछ फैला के बोलना। इस प्रकार के प्रयत्न से उच्चारण किये स्वर को अनुदात्त कहते हैं, यही इसका लच्चण है।। १।।

### ६-समाहारः स्वरितः ॥ अ०१ । २ । ३१ ॥

उदात्त और अनुदात्त गुण का जिसमें मेल हो वह अच् स्वरितसंज्ञक होता है।। जो उदात्त स्वर है उस का कोई चिन्ह नहीं होता, किन्तु बहुधा स्वरित वा अनुदात्त से पूर्व ही उदात्त रहता है। अनुदात्त वर्ण के नीचे जैसा (क्) यह तिर्छा चिन्ह किया जाता है। और स्वरित के ऊपर (क) ऐसा खड़ा चिन्ह किया जाता है। दो गुणों को मिला के जो बनता है उस का तीसरा नाम रखते हैं। जैसे खेत और काला ये रङ्ग अलग २ होते हैं परन्तु जो इन दोनों को मिलाने से उत्पन्न होता है उस को (कल्माप) खाखी वा आसमानी [रंग] कहते हैं। इसी प्रकार यहां भी उदात्त और अनुदात्त गुण पृथक् २ हैं परन्तु जो इन दोनों को मिलाने से उत्पन्न होता है उस को स्वरित कहते हैं। ६॥

# ७-तस्यादित उदात्तमर्द्धहुस्वम् ॥ अ०१।२।३२॥

जो पूर्व सूत्र में स्वरित विधान किया है उस के तीन भेद होते हैं—ह्रस्वस्वरित, दीर्घस्वरित श्रौर प्लुतस्वरित । सो इन स्वरितों की श्रादि में श्राधी मात्र । उदात्त होती श्रौर [शेष] सब श्रनुदात्त रहती हैं। जैसे—क्षे । कुन्यों। श्राक्तिकें रे। यहां ह्रस्व, दीर्घ श्रौर प्लुत तीनों क्रम से स्वरित हुए हैं।

इस सूत्र में हस्व के कहने से यह सन्देह होता है कि दीर्घस्वारित और प्लुत-स्वरित में उदात्त का विभाग न होना चाहिये, क्योंकि हस्वसंज्ञा से दीर्घ प्लुतसंज्ञा मिन्नकालिक है। इसीलिये अर्छह्स्व शब्द के आगे प्रमाण अर्थ में 'मात्रच्' प्रत्यय का जोप महाभाष्यकार ने माना है कि हस्व का अर्छभागमात्र अर्थात् आदि की आधी मात्रा हस्व दीर्घ प्लुत किसी में हो उदात्त होजाती है।

इस सूत्र के उपदेश करने में प्रयोजन यह है कि जो मिली हुई चीज होती है उस में नहीं जाना जाता कि कौनसा कितना भाग है। जैसे दृध और जल मिलादें तो यह नहीं विदित होता कि कितना दूध और कितना जल है तथा किधर दूध और किधर जल है, इसी प्रकार यहां भी उदात्त और अनुदात्त मिले हुए हैं, इस कारण जाना नहीं जाता कि कितना उदात्त और कितना अनुदात्त और किधर उदात्त और किधर अनुदात्त है। इसलिये सब के मित्र हो के पाणिनि महाराज ने इस सूत्र का उपदेश किया है, जिस से ज्ञात हो जावे कि इतना उदात्त, इतना अनुदात्त तथा इधर उदात्त और इधर अनुदात्त है।

( प्रश्न ) जो पाणिनि महाराज सब के ऐसे परम मित्र थे तो इस प्रकार की श्रीर बातें क्यों नहीं प्रसिद्ध कीं । जैसे स्थान, करण, प्रयत्न, नादानुप्रदान श्रादि ?

( उत्तर ) जय व्याकरण अष्टाऽध्यायी बनाई गई थी उस से पूर्व ही शिह्मा आदि कई प्रनथ बन चुके थे, जिन में स्थान, करण आदि का प्रकार लिखा है, क्योंिक शब्द के उच्चारण में जितने साधन हैं वे मनुष्य को प्रथम ही जानने चाहियें। और जो बातें उन प्रन्थों में लिख चुके थे उन को किर अष्टाऽध्यायी में भी लिखते तो पिष्टपेपण दोपवत् पुनरुक्तदोप सममा जाता। इसलिये जो बातें वहां नहीं लिखीं वे विद्या पर्यां प्रसिद्ध की हैं। तथा गणना से भी व्याकरण तीसरा वेदाङ्ग है इसलिये पाणिनिजी किया महाराज ने सब कुछ अच्छा ही किया है। जो इस सूत्र का प्रयोजन और इस पर का प्रश्नोत्तर लिखे हैं सो सब महामाध्य में स्पष्ट करके इसी सूत्र पर लिखे हैं \* ॥ ७ ॥ जिक्न विद्या स्थान करके इसी सूत्र पर लिखे हैं \* ॥ ७ ॥ जिक्न विद्या स्थान स्था

# ८-एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ ॥ अ०१।२। ३३॥

दूर से अच्छे प्रकार बल से बुलाने अर्थ में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीनों स्वरों का एकश्रुति अर्थात् एकतार श्रवण हो, पृथक् २ सुनने में न आवें, ऐसा

<sup>\*। (</sup>तस्यादित॰) — इस सूत्र के ज्याख्यान में काशिकाकार जयादित्य और महोजिदीचित आदिं जोगों ने जिखा है कि इस सूत्र में हुस्वप्रह्या शाखिक उहें, सो यह केवल उनकी भूल है, क्यों कि जो इस्वप्रह्या का कुछ प्रयोजन नहीं होता तो महाभाष्यकार प्रवश्य प्रसिद्ध कर देते, उन्होंने तो जो इसमें सन्देह हो सकता है उस का समाधान किया है कि ग्रर्डह्स शब्द के आगे 'मात्रम्' प्रस्यय का लोप जानो, जिससे दीर्घ प्लुत स्वरित में भी उदात्त का विभाग हो जावे। हुस्वस्याद्ध मई इस्वम्, एक मान्ना का हुस्व है उस की आधी मान्ना जो आदि में है वह उदात्त और शेष इससे परे सब अनुदात्त है। यह बात इस (ग्रर्डह्स्व) के प्रह्या ही से जानी गई॥

उचारण करना चाहिये ।। जैसे — त्रागच्छ भो माण्यवक देवदत्त ३ । यहां उदात्तानु-दात्तस्वरित का पृथक् २ अवण नहीं होता। 'दूरात्' प्रहण इसलिये है कि--आगच्छ भो भवदेव । यहां उदात्त, अनुदात्त और स्वरितों का अलग २ उचारण होता है ॥ ८ ॥ ६-उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः ॥ अ० ८ । ४ । ६६ ॥ स्वर्णनि

सब स्वरप्रकरण में यह सामान्य नियम समभना चाहिये कि जो उदात्त से परे अनुदात्त हो तो उस को स्वरित हो जाता है।। जैसे - ऋतेन । यहां 'ते' उदात्त है, उससे परे नकार अनुदास [ है उस ] को स्वरित हो जाता है=ऋतेन । तथा-गाग्यी:। यहां 'गा' उदात्त है और 'गर्य' अनुदात्त था उस को 'गर्थ' स्वरित हो जाता है। इसी प्रकार उदात्त से परे जहां २ स्वरित आता है वहां २ सर्वत्र असंख्य शब्दों में इसी सूत्र से अनुदात्त को स्वरित जानना चाहिये। श्रीर जहां उदात्त से परे अनेक अनुदात्त हों वहां एक को स्वरित [ तथा ] औरों को जो होना चाहिये सों आगे लिखेंगे ।। ६ ।।

उदात्त से परे जो अनुदात्त, उस से परे उदात्त वा स्वरित होने में इतना विशेष है कि-१०-नोदात्तस्वरितोद्यमगार्ग्यकाश्यपगाळवानाम् ॥ अ०८।४।६७॥

उदात्त से परे जिस अनुदात्त को स्वरितविधान किया है यदि उस अनुदात्त से परे खदात्त वां स्वरित हो तो उस अनुदात्त को स्वरित न हो। परन्तु गार्ग्य, काश्यप, गालव इन ऋषियों के मत को छोड़ के, अर्थात् इन तीनों के मत में तो जिससे परे उदात्त वा स्वरित हो उस अनुदात्त को भी स्वरित हो जावे।।

परन्तु यह गार्ग्य त्रादि ऋषियों का मत वेद में प्रवृत्त नहीं होता, क्योंकि वेद सनातन हैं। वहां किसी का मत नहीं चलता। लौकिक प्रयोगों में गार्थ आदि का मत चल जाता है। वेद में सर्वत्र उदात्तस्वरितोदय हो तो भी अनुदात्त ही बना रहता है। जैसे— कस्य नूनं केत्मस्यामुतानां मनामहे चारुं देवस्य नाम [ऋ०१।२४। १]। यहां 'देवस्य नामं' [में] नाम शब्द आद्युदात्त के परे होने से 'व' उदात्त से परे 'स्य' अनुदात्त को स्वरित नहीं हुआ। तथा--नन्यं तदुक्थ्यम् [ ऋ०१। १०५। १२]। यहां तकार उदात्त से परे 'दु' अनुदात्त को आगे 'क्थ्यं' स्वरित होने से भी स्वरित नहीं होता । इसी प्रकार सर्वत्र समम्तना चाहिये । लौकिक उदाहरण-गार्ग्य ऋषि: । यहां

'गार्ग्य' और 'ऋषि' दोनों शब्द आद्युदात्त हैं। ऋकार उदात्त के उद्य में अनुदात्त 'र्ग्य' को स्वरित नहीं होता=गार्ग्य ऋषिः। और गार्ग्य आदि के मत में='गार्ग्य ऋषिः' ऐसा भी होता है।। १०।।

अब एकश्रुतिस्वरविषय में लिखते हैं--

# ११-यज्ञकर्मग्यजपन्यूङ्खसामसु ॥ अ०१।२।३४॥

यज्ञकर्भ द्रार्थात् यज्ञसम्बन्धी कर्म करने में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं वहां उदात्त, ध्रमुदात्त और स्वरित को एकश्रुतिस्वर हो, [अर्थात्] उदात्तादि का पृथक् २ श्रवण् न हो, परन्तु जिप करने में तथा न्यूङ्ख—किसी प्रकार के वेद के स्तात्रों का नाम है—वहां और सामवेद में उदात्तादि के स्थान में एकश्रुति न हो, किन्तु तीनों स्वर पृथक् २ बोले जावें।। जैसे—सिभाऽप्रिं दुवस्यत घृतैर्वोधयतातिथिम् । आस्मिन् हन्या जुहोतन । [ यज्ञु० ३ । १ ] इत्यादि मन्त्र होम करते समय स्वरभेद के विना ही पढ़े जाते हैं। तीनों स्वर के विभाग से वेद मन्त्रों का पाठ होना चाहिये, इस कारण यज्ञकर्म में भी पृथक् २ उच्चारण प्राप्त था, इसलिये इस सूत्र का आरम्भ है ।। ११ ।।

# १२-उचैस्तरां वा वषट्कारः ॥ अ० १ । २ । ३३ ॥ वषर् - सुद्धु रानेप्रायोग

जो यज्ञकर्म में वषट्कार शब्द है वह विकल्प करके उदात्ततर हो और पत्त में एकश्रुतिस्वर होता है ।। जैसे—अपट्कारै: सर्रस्वती, वषट्कारै सर्रस्वती । [ यज्जु ॰ २१ | ५३ ] यहां उदात्त और एकश्रुति दोनों का चिह्न न होने से एक ही प्रकार का स्वर दीख पड़ता है परन्तु उच्चारण में भेद जान पड़ता है ।। १२ ।।

### १३-विभाषा छन्दिस ॥ अ० १ । २ । ३६ ॥

वेदमन्त्रों के सामान्य उच्चारण करने में उदात्त, श्रनुदात्त और स्वरित को एकश्रुति स्वर विकल्प करके होता है। एकश्रुतिपत्त में उदात्तादि का भिन्न २ उच्चारण नहीं होता ॥ सो ये दो पत्त तीन वेदों में घटते हैं। सामवेद में तीनों स्वर भिन्न २ उच्चारण किये जाते हैं, क्योंकि (११) सूत्र से सामवेद में एकश्रुति होने का निषेध कर चुके हैं।। १३।।

# १४-न सुब्रह्मग्यायां स्वरितस्य तूदात्तः ॥ अ०१ । २ । ३७ ॥

जो सुब्रह्मएया निगद में यज्ञकर्म में पूर्वसूत्र से एकश्रुति स्वर प्राप्त है सो न हो, किन्तु उसमें जो स्वरित वर्ण हों उन के स्थान में उदात्त हों जावे ।। सुब्रह्मएया एक निगद का नाम है। उस का ज्याख्यान शतपथ ब्राह्मण में तृतीय काएड तृतीय प्रपाठक के प्रथम ब्राह्मण में सत्रहवीं किएडका से लेके बीसवीं किएडका पर्यन्त किया है। उस निगद में जितने शब्द हैं उन सब में स्वर का विशेष नियम समक्तना चाहिये।।

# भा०-सुब्रह्मग्यायामोकार उदात्तो भवति ॥ [अ०१।२।३७]

सुब्रह्मन् शब्द से साध्वर्थ में 'यत्' प्रत्यय होके [सुब्रह्मण्य शब्द] खरितान्त होता है, उसका 'टार्' [ के अनुदात्त आकार के साथ एकादेश होके 'सुब्रह्मण्या' शब्द स्वरितान्त होता है, उसका उदात्त ] ओकार के साथ एकादेश होके स्वरित [ ही बना रहता है ]। उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त आदेश हो जाता है, और तीन वर्ण अनुदात्त रहते हैं—सुब्रह्मण्योम् ।।

# भा०-आकार आख्याते परादिश्च, वाक्यादी च द्वे द्वे ॥ [अ० १।२।३७]

जहां आख्यातिक्रया परे हो वहां उससे पूर्व का आकार और उस क्रिया का आदि वर्ण उदात्त होता है [ और वाक्य के आदि में दो २ वर्ण उदात्त होते हैं ]।। जैसे—इन्द्र आगच्छ, हरिव आगच्छ। यहां ऐसा समभो कि 'इन्द्र' आरे 'हरिवः' शब्द आमन्त्रित होने से आद्युदात्त हैं। उनके दूसरे वर्ण अनुदात्त हैं। उनको उदात्त से परे स्वरित हो जाता है। उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त करते हैं। इस प्रकार 'इन्द्र' शब्द सब उदात्त और 'हरिवः' शब्द में भी दो उदात्त और वकार अनुदात्त हैं, उस को पूर्व उदात्त के असिद्ध मानने से स्वरित नहीं होता। (आगच्छ) में आकार तो प्रथम ही उदात्त है, उससे परे दोनों अच्चर अनुदात्त हैं। आकार उदात्त से परे गकार अनुदात्त को स्वरित होके इस सूत्र से स्वरित को उदात्त हो जाता है। इस प्रकार 'इन्द्र आगच्छ' इस वाक्य में एक छकार अनुदात्त और चार वर्ण उदात्त रहते हैं, तथा 'हरिव आगच्छ' इस वाक्य में वकार छकार दो वर्ण अनुदात्त और चार वर्ण उदात्त रहते हैं।

सुज्ञ अपयो शिमन्द्र आगच्छ हरिव आगच्छ मेघातिथेर्मेष वृपण्थस्य मेने गौरावस्कन्दि आहर्याये जार । कौशिक जाक्षण गौतम ज्ञुवाण थः सुत्यामागच्छ मघवन् । 'मेघातिथेर्मेष' यहां आमान्त्रित 'मेष' राव्द के परे पूर्व सुवन्त को पराङ्गवत् [ माव से ] आद्युदात्त होके [ शेष ] सब अज्ञर अनुदात्त हो जाते.

हैं। फिर 'में' उदात्त से परे 'धा' अनुदात्त को स्वरित होकर उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त हो के आदि में दो उदात्त और चार वर्ण अनुदात्त रहते हैं।

इसी प्रकार 'वृष्णुश्चस्य मेने, गौरावस्कृन्दिन्, ऋहल्यायै जार्, कौशिक ब्राह्मण्, गौतम् ब्रुवाणु' इन सबमें दो २ आदि में उदात्त और [शेष] सब वर्ण अनुदात्त रहते हैं।

'श्रस्' और 'सुत्या' शब्द अन्तोदात्त हैं। 'श्रस्' उदात्त शब्द से परे सु अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त होजाता है। इस प्रकार तीनों उदात्त रहते हैं=श्व: सुत्याम्। 'आगच्छ मध्यन्' यहां भी उदात्त आकार से परे गकार अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त हो जाता है। 'मध्यन्' शब्द आमन्त्रित के होने से सब अनुदात्त होजाता है। यहां जितने पदों का व्याख्यान किया है वे सब सुत्रह्मण्या निगद के ही हैं। अब आगे एक अपूर्व बात लिखते हैं कि जो इस सूत्र से भी सिद्ध नहीं है। १४।

१५-वा०-सुत्यापराग्णामन्तः ॥ [ अ० १ । २ । ३७ ]

सुत्या शब्द जिन से परे हो उनको अन्तोदात्त हो ।। [जैसे—] दुग्रहे सुत्यास्, ज्यहे सुत्यास् । यहां 'द्वश्यह' 'ज्यह' शब्दों को अन्तोदात्त होके उससे परे 'सु' अनुदात्त को स्वरित और स्वरित को उदात्त होजाता है ।। १५ ।।

### १६-वा०-असावित्यन्तः ॥ [ अ० १ । २ । ३७ ]

वाक्य में जो प्रथमान्त पद है वह अन्तोदात्त हो ।। [जैसे—] गाम्यों यजते । 'गाम्ये' शब्द प्रथम आयुदात्त प्राप्त है । उस का बाधक यह अन्तोदात्त होके उस उदात्त से परे यकार को स्वरित और स्वरित को इस से उदात्त हो जाता है, और 'यजते' किया में अन्त्य के दो वर्ण अनुदात्त रहते हैं ।। १६ ।।

### १७-वा०-अमुष्येत्यन्तः ॥ [ अ०१।२।३७]

अमुख्य यह षष्ठी के एक वचन का संकेत है, जो षष्ठधेकवचनान्त पद है वह अन्तोदात्त हो।। जैसे—दाने: पिता यजते । यहां 'दान्ती' शब्द षष्ठी का एक वचन है, उस 'इञ्' प्रत्ययान्त को आद्युदात्तस्वर प्राप्त है, उसको अन्तोदात्त होजाता है, स्नौर पिता शब्द 'तृच्' प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त ही है। अन्तोदात्त 'दान्ति' शब्द से परे 'पि' अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त और अन्तोदात्त 'पितृ' शब्द से परे अनुदात्त यकार को स्वरित होकर उदात्त होजाता है। इस प्रकार मध्य में चार उदात्त तथा आदि में एक [ और ] अन्त में दो अनुदात्त रहते हैं=दाने: पिता यजते ।। १७॥

### १८-वा०-स्यान्तस्योपोत्तमं चान्त्यश्च ॥ [ अ० १ । २ । ३७ ]

जहां षष्ठी का एकवचन स्थान्त हो वहां उपोत्तम अर्थात् [तीन या तीन से अधिक अच् वाले शब्दों में अन्त्य से पूर्व अच् ] को उदात्त होता है, और उस शब्द को भी अन्तोदात्त होजाता है।। [जैसे—] गार्थस्य पिता यज्ते। यहां उतीय वर्ण 'स्य' और द्वितीय 'र्य' को उदात्त और 'पिता यजते' यहां पूर्ववत् उदात्त होता है। इसिलिये पांचवर्ण मध्य में उदात्त और आदि में एक [तथा] अन्त में दो अनुदात्त रहते हैं=गार्ग्यस्य पिता यज्ते, वात्स्यस्य पिता यज्ते।। १८।

# १६-वा०-वा नामधेयस्य ॥ [ अ० १ । २ । ३७ ]

जो किसी का नामवाची स्यान्त षष्ठ्येकवचनान्त [ शब्द है उसके उपोत्तम तथा अन्त्य को ] विकल्प करके उदात्त होता है, पद्म में जैसा प्राप्त है वैसा बना रहता है।। [जैसे—] देवदत्तस्य पिता यजते । यहां 'त्तस्य' ये दो उदात्त और 'पिता यजते' यहां पूर्ववत् उदात्त होके मध्य में पांच वर्ण उदात्त और आदि [में तीन] और अन्त में दो अनुदात्त हो जाते हैं =देवदत्तस्य पिता यजते । युद्धत्तस्य पिता यजते । और पद्म में 'देवदत्त' शब्द अन्तोदात्त है, सो ज्यों का त्यों ही वना रहता है और 'पिता यजते' यहां पूर्ववत् स्वरित को उदात्त हो जाता है। जैसे—देवदत्तस्य पिता यजते ।।१९।।

# २०-देवब्रह्मणोरनुदात्तः ॥ [अ०१।२।३८] भा०-देवब्रह्मणोरनुदात्तत्वमेके ॥ [अ०१।२।३८]

पूर्व सूत्र से सुब्रह्मस्या निगद में देव और ब्रह्मन् शब्द के स्वरित को उदात्त पाता है सो न हो, किन्तु उस स्वरित को अनुदात्त ही होजावे।। भाष्यकार का अभिप्राय यह है कि जो देव और ब्रह्मन् शब्द को अनुदात्त कहते हो सो किन्हीं आचार्यों का मत है, अर्थात् विकल्प करके होना चाहिये। देव और ब्रह्मन् शब्द आमन्त्रित हैं, इससे विशेष वचन आमन्त्रित 'ब्रह्मन्' शब्द के परे पूर्व आमन्त्रित देव राब्द को विकल्प करके अविद्यमानवत् होने से पर आमन्त्रित को जहां एक पच्च में निघात नहीं होता वहां दोनों आमन्त्रित को आद्युदात्त होकर उदात्त से परे दूसरा २ वर्ण स्वरित होके उस को किर इस सूत्र से अनुदात्त हो जाता है। जैसे देवा ब्रह्माणः। और दूसरे पच्च में जहां पूर्व आमन्त्रित को विद्यमान

सानते हैं, वहां पर आमिन्त्रत को निघात होकर पूर्व आमिन्त्रत को आद्युदात्त हो जाता है, पीछे 'दे' उदात्त से परे 'वा' अनुदात्त को स्वरित होके जिन के मत में अनुदात्त होता है, वहां तो देवा ब्रह्माण: ऐसा प्रयोग, और जिन के मत में स्वरित को अनुदात्त नहीं होता वहां पूर्व सूत्र से स्वरित को उदात्त होकर देवा ब्रह्माण: ऐसा प्रयोग होता है । और जिन आचार्यों का ऐसा मत है कि देव और ब्रह्मन् राज्द समानाधिकरण सामान्यवचन है, वहां ये ही दो प्रयोग होते हैं, क्योंकि अविद्यमानवत् का निवेध होने से पर आमिन्त्रत को नित्य ही निघात हो जाता है ।। २०।।

हो जाता है।। २०।।
स्वेह्न पाठ तथा यद पाइन २१ – स्वरितात्संहिनायामनुदात्तानाम्।। अ०१।२।३६। विकास के स्व

स्वरित से परे संहिता में एक, दो और बहुत अनुदात्तों को भी पृथक् र एकश्रुति-

# आ०-एकशेषनिर्देशोऽयम् । अनुदात्तस्य चानुदात्तयोश्चा-नुदात्तानामिति ॥ [ अ० १ । २ । ३६ ]

भाष्यकार का श्रमिशाय यह है कि जो इस सूत्र में बहुवचनान्त श्रमुदात्त शब्द पढ़ा है, उसमें एकशेष समक्षना चाहिये, अर्थात् एक, दो और बहुत श्रमुदात्तों को भी पृथक् २ कार्य होता है। जैसे—अप्रिमींळे पुरोहिंतम् [ ऋ० १ । १ । १ ]। यहां 'मी' स्वरित से परे एक 'ळे' अनुदात्त को एकश्रुतिस्वर हुआ है। एकश्रुति का नियम यही है कि स्वरित से परे उसपर कोई चिन्ह नहीं होता। होतारं रत्नधातमम् [ ऋ० १ । १ । १ ] यहां 'ता' स्वारित स परे दो रेफ अनुदात्त वर्णों को एकश्रुतिस्वर हुआ है, तथा इमं में गङ्गे यमुने सरस्वति [ ऋ० १० । ७५ । ५ ] यहां 'में स्वरित वर्ण है, उनसे परे 'ति' पर्यन्त सब अनुदात्त हैं, उन सब को एकश्रुतिस्वर इस सुत्र से हुआ है। 'संहिता' महण इसलिये है कि—इम्म, मे, गुक्ने, यमुने, सरस्वति यहां पृथक् २ पदों पर अवसान होने से एकश्रुतिस्वर न हुआ।। २१।।

### २२-उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ॥ अ०१।२।४०॥

उदात्त श्रीर स्वरित जिससे परे हों उस श्रानुदात्त को एकश्रुतिस्वर न हो किन्तु सन्नत्र श्राम्यात् श्राम्य हो स्वर्त हो जावे ।। पूर्व सूत्र से सामान्य विषय में एकश्रुतिस्वर प्राप्त है, उसका इस सूत्र से विशेष विषय में निषेध किया है। जैसे—ग्राप्तिः

पूर्विभिन्धि पिभिः [ऋ॰१।१।२]। यहां 'ऋषि' शब्द आधुदात्त के परे [रहते] भिस् विभक्ति को एकश्रुति स्वर प्राप्त है, सो न हुआ, किन्तु उसको अनुदात्ततर होगया। तथा मरुतः क्षं सुविता [ऋ॰१।३८।३] यहां 'क्व' शब्द स्वरित के परे [रहते] 'त' अनुदात्त को स्वरित नहीं होता, किन्तु अनुदात्ततर होजाता है।। २२।।

# २३-आयुदात्तश्च ॥ अ०३ । १ । २ ॥

धातुओं वा प्रातिपिदिकों से जितने प्रत्यय होते हैं, उन सब के लिये यह उत्सर्ग सूत्र है कि—सब प्रत्यय आयुदात्त हों।। जो एकाच्चर के ही प्रत्यय हैं, वे आयन्त- वद्भाव से उदात्त होजाते हैं। जैसे—-प्रिय:। यहां एकाच्चर 'क' प्रत्यय किया है। आयिनिकंपकः यहां 'इकवक' प्रत्यय आयदात्त हुआ है। इसके अपवाद विषय में अन्य प्रत्ययखरविधायक सूत्र वहुत हैं, उनमें से थोड़े यहां भी आगे लिखे हैं।। २३।।

# २४-अनुदात्तौ सुप्पितौ ॥ अ० ३ । १ । ३ ॥

जो सुप् अर्थात् सु आदि इकीस और पित् प्रत्यय हैं, वे अनुदात्त हों ।। जैसे— सोमसुतौं, सोमसुतंः । यहां सुप् में 'औ' तथा 'जस्' अनुदात्त होके उदात्त से परे खरित होगये हैं । [ऐसे ही ] भवति, पचित इत्थादि, यहां शप् और तिप् पित् प्रत्यय होने से अनुदात्त हुए हैं ।। २४ ।।

# २५-म्रनुदात्तं पदमेकवर्जम् ॥ अ० ६ । १ । १५८ ॥

स्वरप्रकरण में यह परिभाषा सूत्र सर्वत्र प्रवृत्त होता है। जो दो वा अनेक कितने ही पदों का समास होता है, वह भी एक पद कहाता है। स्वरप्रकरण में जिस एक पद में उदात्त वा स्वरित जिस वर्ण को विधान करें, उससे पृथक जितने वर्ण हों वे सब अनुदात्त होजावें।। इस बात का स्मरण सब स्वरप्रकरण में रखना चाहिये।

# इस सूत्र का प्रयोजन महाभाष्यकार दिखलाते हैं--

# का०-आगमस्य विकारस्य प्रकृतेः प्रत्ययस्य च।

पृथक्स्वरिनवृत्त्यर्थमेकवर्जं पद्स्वरः ॥ [महा०६।१।१५८

आगम, विकार, प्रकृति और प्रत्यय का पृथक् स्वर न होने के लिये इस सूत्र का आरम्भ किया है। आगम—जो टित् कित् मित् चिह्न के साथ अपूर्व उपजन होजाता है, उसका स्वर होजावे। जैसे—चुत्वारंः, अनुह्वाहंः। यहां चतुर् और अनुहुह् राव्द को 'आम्' आगम हुआ है, उसी का स्वर रहता और प्रकृतिस्वर की निवृत्ति हो जाती है, अर्थात् प्रकृति और आगम के दोनों स्वर एक पद में एक साथ नहीं रह सकते। विकार—जो किसी वर्ण वा राव्द को आदेश हो जाता है। जैसे—अस्थना, दृध्ना, अस्थिनि, दृधानि। यहां अस्थि और दिध राव्द प्रथम आग्रुदात्त हैं, पश्चात् तृतीयादि अजादि विभक्तिओं में इन को अनुह् आदेश हो के प्रकृति और आदेश के दो स्वर प्राप्त हैं, सो नहीं होते, किन्तु प्रकृति स्वर को वाध के आदेश का उदान्त स्वर हो जाता है। प्रकृति—धातु वा प्रातिपादिक जिससे प्रत्यय वत्पन्न होते हैं। जैसे—गोपायिति, धूपायिति। यहां प्रकृतिस्वर 'गोपाय' 'धूपाय' धातु को अन्तोदात्त और प्रत्ययस्वर 'आय' प्रत्यय को आग्रुदात्त दो स्वर प्राप्त हैं, सो न हों, किन्तु प्रत्ययस्वर को बाध के प्रकृतिस्वर होजावे। प्रत्यय—जो धातु वा प्रातिपादिक से परे विधान किया जाता है। जैसे—क्तंव्यस्य, तैतिरीयः। यहां क धातु और तित्तिरि प्रातिपादिक से 'तव्य' और 'छ' प्रत्यय हुआ है, प्रकृति और प्रत्यय दोनों के स्वर प्राप्त हैं, सो न हों, किन्तु प्रकृतिस्वर को वाध के प्रत्यय का आग्रुदात्त स्वर होजावे।। रहा। १६ स्वर प्राप्त हैं, सो न हों, किन्तु प्रकृतिस्वर को वाध के प्रत्यय का आग्रुदात्त स्वर होजावे।। रहा। १६ स्वर प्राप्त हैं, सो न हों, किन्तु प्रकृतिस्वर को वाध के प्रत्यय का आग्रुदात्त स्वर होजावे।। रहा। १६ स्वर प्राप्त हैं, सो न हों, किन्तु प्रकृतिस्वर को वाध के प्रत्यय का आग्रुदात्त स्वर होजावे।। रहा।

स्तरे कि स्मिन् स्वरे विशिष्टो द्वितीयः स्वरो बलवान् भवति ॥ सितिशिष्ट वह कहाता है कि एक स्वर के वर्त्तमान में द्वितीय विशेषविधान किया जावे, वहीं बलवान् रहता है। प्रथम स्वर निष्टत्त हो जाता है, श्रीर पश्चात् विहित स्वर प्रधान रहता है।

वा०-तच्चानेकप्रत्ययसमासार्थम् ।। [ अ० ६ । १ । १५८ ]

सतिशिष्ट का प्रयोजन यह है कि अनेक प्रत्यय और अनेक समासों में उत्तरोत्तर स्वर बलवान् होता जावे।। जैसे—अनेक प्रत्यय—अौपगवः। यहां उपगु राव्द से 'अग्युं हुआ है, उसी का स्वर रहता है। औपगव राव्द से त्व—औपगवत्वक्ष्य । यहां अग्युं स्वर का वाधक 'त्व' प्रत्यय का स्वर । ओपगवत्वमेव अौपगवत्वक्ष्य । यहां 'त्व' प्रत्यय के स्वर का वाधक 'क' प्रत्यय का स्वर रहता है। तथा पुरूषां राजा पौर्वः यहां 'अग्युं प्रत्यय का स्वर प्रकृतिस्वर का वाधक। पौरवस्यापत्यम् इज् पौर्विः आद्युदात्त । तस्य युवापत्यं फक् पौरवायगाः अन्तोदात्त । पौरवायगानां समृहः वुज् पौर्वायगाक्रम् आयुदात्त । पौरवायगाक्रीगाः

यहां 'छ' प्रत्यय श्राद्युदात्त । पौरवायणकीयैः प्रोक्तमधीयते तेऽि पौरवायणकीयाः । 'श्राण्' का स्वर श्रन्त में रहता है। इसी प्रकार बहुत कुछ प्रत्ययमाला बन सकती है। श्रानेक समास—वीरश्चासौ राजा वीरराजः । टच् श्रान्तोदात्त । वीरराजस्य पुरुषा वीरराजपुरुषः । वीरराजपुरुषपुत्रः । वीरराजपुरुषपुत्रः प्रधानो येषां ते वीरराजपुरुषपुत्रप्रश्चानाः यहां पूर्वपदप्रकृतिस्वर होता है। इसी प्रकार के इन से बहुत बड़े २ समास हो सकते हैं श्रीर उनके स्वर भी तदनुकूल हो जावेंगे ।। २६ ।।

# २७-वा०-विभक्तिस्वरान्नञ्स्वरो बलीयान् ॥ [अ०६।१।१५८]

विभक्तिस्वर से नव्स्वर बलवान् होता है।। जैसे—न तिस्नः ऋतिसः। यहां विभक्तिस्वर जस् विभक्ति को उदात्त प्राप्त है, उसका वाधक नव्स्वर पूर्वपद्पकृतिभाव हो जाता है।। २७।।

# २८-वा०-विभक्तिनिमित्तस्वराच्च नञ्स्वरो बलीयानिति वक्तव्यम्॥ [ अ०६।१।१५८]

विभक्ति जिस का निमित्त है, उस को जो स्वर होता है, उस को बाध के नव्स्वर होना चाहिये।। जैसे—अर्चत्वारः, अन्निह्वाहः। यहां विभक्ति को मान के जो 'आम्' आगम होता है, उस का बाधक नव्यक्रितस्वर हो जाता है।। २८॥

# २६-ज्नित्यादिर्नित्यम् ॥ अ०६।१।१६७॥

नित् नित् प्रत्ययों के परे पूर्व प्रकृति को आयुदात्तस्वर हो।। यह सूत्र (२३)
सूत्र का अपवाद है, और इसके अपवाद आगे कुछ लिखेंगे। उदाहरण—नित्—ज्यन्—
ब्राह्मएयम्, चार्तुर्वप्रम्, त्रैलोक्यम्; यन्—गाग्धः, शार्त्तस्यः, मार्थव्यः, वार्त्रव्यः
इत्यादि; इन्—दार्विः, सौधातिकः, वैयासिकः; किन्—तैकायिनः, कैत्वायिनः
इत्यादि । नित्—वृत्—वार्तुदेवकः, अर्जुनकः; ठन्—वार्तिकः; कन्—द्रव्यंकः इत्यादि
शब्द आयुदात्त होजाते हैं ।। २६ ।।

# ३०-कर्षात्वतो घञोऽन्त उद्।तः ॥ अ०६।१।१५९॥

घनन्त कर्ष धातु और आकारवान् घनन्त शब्दों के अन्त में उदात्त स्वर हो ।। कर्ष धातु के कहने से भ्वादिगण वाले का प्रहण होता है । गुण्निषेध वाले तुदादि

का महण नहीं होता । जैसे—-क्र्यः, त्यागः, रागः, दायः, धायः, पाकः, पाठः इत्यादि । श्राकारवान् कहने से कर्ष को प्राप्त नहीं था, इसलिये प्रथक् प्रहण किया है । 'आकारवान्' प्रहण इसलिये है कि—-मन्थंः, योगः यहां न हो ।। ३० ।।

### ३१-उञ्बादीनां च ॥ अ० ६ । १ । १६० ॥

जञ्ज आदि गणपित शब्दों को अन्तोदात्त स्वर हो ।। जैसे—जुब्छः, म्लेच्छः, जुब्जः, जुल्पः । इन चार घवन्त शब्दों में आग्रुदात्त प्राप्त था, सो न हुआ। जुपः, व्युधः ये दो शब्द अप् प्रत्ययान्त हैं, इन को भी आग्रुदात्त स्वर प्राप्त था।

# ग्गा सूत्र-युगः कालविशेषे रथायुपकरणे च ॥ १ ॥

युग शब्द कालविशेष अर्थात् किल युग, द्वापर युग इत्यादि वा पीढ़ी तथा रथ आदि के उपकरण अर्थात् अवयव जुआ आदि अर्थ में अन्तोदात्त होता है, अन्यत्र नहीं होता ॥ [ जैसे— ] युग: | घवन्त होने से आद्यदात्त शप्त था ।

### ग॰ सू०-गरो दुष्ये ॥ २ ॥

दूष्य अर्थात् विष अर्थ में गर शब्द अन्तोदात्त हो ॥ जैसे—गुरः । अन्यत्र आद्युदात्त रहेगा ।

### ग० सू०-वेगवेदवेष्टबन्धाः करणे ॥ ३ ॥

करणकारक में प्रत्यय किया हो तो घननत वेग आदि चार शब्द अन्तोदात्त हों।। विजयते येन स वेगः, वेत्ति येन स वेदः, वेष्टते येन स वेष्टः, बध्नाति येन स वन्धः। और भाव वा अधिकरण में प्रत्यय होगा तो आद्यदात्त ही समक्षे जावेंगे।

# ग० सू०-स्तुयुद्भवश्च छन्द्सि॥ ४॥

क्विवन्त स्तु आदि तीन धातुओं को अन्तोदात्त स्वर हो ॥ जैसे — परिष्ठुत्, संयुत्, परिटुत् । यहां उपसर्गों को प्रकृतिसाव प्राप्त था ।

# ग० सू०-वर्त्तनिः स्तोत्रे ॥ ५॥

जो स्तुति अर्थ में वर्त्तानि शब्द हो तो अन्तोदात्त स्वर हो ।। जैसे—वर्त्तानिः । अन्यत्र अनि प्रत्यय आद्युदात्त होने से मध्योदात्त स्वर होगा । [ जैसे ]—वर्त्तानिः । ग० सू०-श्रम्रे द्रः ॥ ६॥

अभ अभिधेय हो तो दर शब्द अन्तोदात्त हो ।। जैसे—दुर: । अन्यत्र आधुदात्त ही सममा जाता है । जैसे—दूर: ।

ग० सू०-साम्बतापी भावगहीयाम् ॥ ७॥

भावगही अर्थात् धात्वर्थं की निन्दा में साम्ब और ताप शब्द अन्तोदात्त हों।। जैसे—साम्बः, तापः। अन्यत्र आद्युदात्त ही सममे जावेंगे।

# ग॰ सू०-उत्तमशश्वत्तमी सर्वत्र ॥ ८ ॥

उत्तम श्रीर शश्वत्तम ये दोनों शब्द सामान्य श्रार्थों में श्रान्तोदात्त हों ।। जैसे---उत्तमः, श्राश्वत्तमः ।

तथा भुन्नः, मुन्यः, भोगः, देहः इत्यादि ।। ३१ ।।

### ३२-अनुद्।त्तस्य च यत्रोदात्तलोपः ॥ अ०६ । १ । १६१ ॥

जिस अनुदात्त के परे उदात्त का लोप हो उस अनुदात्त को उदात्त हो ।। जैसे—

श्रीपगव—ई । यहां ई अनुदात्त के परे अन्तोदात्त श्रीपगव शब्द के अन्त्य वर्ण का लोप होकर ईकार उदात्त हो जाता है=श्रीपग्वी । तथा दाचायणी, साचायणी, कुमारी इत्यादि । अस्थन, दधन शब्द दोनों अन्तोदात्त हैं, वृतीयादि अजादि विभक्तियों में उपधा अकार का लोप होकर अस्थना, दुआ, अस्थने, दुधे इत्यादि । इसी प्रकार इस सूत्र का बहुत विषय है, जहां कहीं अनुदात्त के परे उदात्त का लोप हो, वहां सर्वत्र इसी से उदात्त समफा जावेगा । 'यत्र' प्रहण इसलिये है कि—

भागवः, भागवौ, भुगवः यहां जस विभक्ति के आने से प्रथम ही प्रत्यय का लुक् होजाता है । 'उदात्त' प्रहण इसलिये है कि जहां अनुदात्त के परे अनुदात्त ही का लोप हो, वहां उदात्त न हो ॥ ३२ ॥

### ३३-धातोः ॥ अ०६। १ । १६२॥

धातु को अन्तोदात्त स्वर्ंहो ।। [जैसे—] पर्चति, पर्वति, चिचीपति, तुष्टूपति, क्योंति, पापच्यते, जागात्ति, गोपायति इत्यादि । इनमें जितने अंश की धातु संज्ञा है, दसी को अन्तोदात्त हुआ है ।। ३३ ।।

# ३४-चितः ॥ अ०६।१।१६३॥

2,72-And : Dic . 9. 7

वित् धर्थात् चकार इत् होके लोप जिस में हो उस समुदाय को अन्तोदान्त स्वर हो।। प्रत्यय के आधुदात्त स्वर का अपवाद यह सूत्र है। [जैसे—] घुरच्—मुङ्गुरः, भासुरः, मेदुरः; कोरिडन्य को कुरिडनच् आदेश—कुरिडनाः; अकच्—सर्वकः, उचकैः, नीचकैः; वहुच्—बहुकृतम्, वहुमुक्तम्, वहुपुटु इत्यादि ।। ३४।।

# ३५-तद्धितस्य च ॥ अ० ६ । १ । १६४ ॥

जो तद्धित चित् प्रत्यय है, वह अन्तोदात्त हो ।। जैसे—क्प्रञ्—कौ क्जायनः, भौक्जायनः इत्यादि । पूर्वसूत्र में चित् के कहने से यहां भी अन्तोदात्त हो जाता । फिर इस सूत्र का प्रथक् आरम्भ इसिलये किया है कि जहां दो अनुबन्धों से दो स्वर प्राप्त हों वहां भी चित् का स्वर अन्तोदात्त ही हो । जैसे च्फ्रञ् प्रत्ययान्तों को हुआ। । ३४ ।।

#### ३६-कितः ॥ अ०६।११ १६५॥

जो तद्धित कित् प्रत्यय है, वह अन्तोदात्त हो ।। जैसे—फक्<u>नाडाय</u>नः, <u>चारायगाः, दाचायगाः, ठक्—रैवतिकः, आचिकः, कौद्दालिकः, पारिधिकः ॥३६॥</u>

# ३७ — सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः ॥ अ०६।१। १६८॥

जो सु अर्थात् सप्तमी के बहुवचन में एकाच् शब्द हो उससे परे जो हतीयादि विभक्ति वह उदात्त हो ।। जैसे—्याचा, वाग्र्याम्, वाग्रिः, वाचे, वाचः, त्वचे, त्वचः इत्यादि । 'सु' प्रह्ण इसलिये हैं कि—्राज्ञां, राज्ञें यहां न हो । 'एकाच्' प्रह्ण इसलिये हैं कि—किरिणां, गिरिणां यहां विभक्ति उदात्त न हो । 'हतीयादि' प्रह्ण इसलिये हैं कि—वाचौं, वाचेः यहां न हो । 'विभक्ति' प्रह्ण इसलिये हैं कि—वाक्तरा यहां न हो । सप्तमी का बहुवचन 'सु' इसलिये लिया है कि—त्वयां यहां भी विभक्ति उदात्त न हो ।। ३७ ।।

### ३८-शतुरनुमो नचजादी ॥ अ० ६ । १ । १७३ ॥

नुम् रहित जो शतृप्रत्ययान्त प्रातिपदिक उससे परे जो नदीसंज्ञक प्रत्यय और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति वह उदात्त हो।। [जैसे—] नदीसंज्ञक छीप्—तुद्ती, नुद्ती, ळन्ती इत्यादि। अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति— छुन्ते, खुन्तः, छुनतोः, छुन्ति।

'श्रतुम्' प्रहण इसिलये हैं कि—तुदन्तीं, नुदन्तीं इत्यादि में नदी उदात्त न हो। 'नय-जादि' प्रहण इसिलए है कि—तुदद्भ्याम्, तुदद्भिः यहां विभक्ति उदात्त न हो।।३८।।

# ३६-वा०-नयजायुदात्तत्वे बृहन्महतोरुपसंख्यानम् ॥ [अ०६।१।१७३]

जो बृहत् श्रौर महत् शब्द से परे नदी श्रौर श्रजादि श्रसर्वनामस्थान विभाक्ति है, वह उदात्त हो ।। जैसे— बृहती, महती, बृहता, बृहते, महता, महते इत्यादि । पृथ्ते श्रादि शब्दों को शतृ प्रत्ययान्त के सब कार्य होते हैं, फिर इस बार्तिक के कहने का प्रयोजन यह है कि पृथ्त श्रादि सब शब्दों से परे नदी श्रौर श्रजादि विभक्ति उदात्त न हो किन्तु बृहत् श्रौर महत् से ही हो ।। १९।

# ४०-उदात्तयणो हल्पूर्वात् ॥ अ०६।१।१७४॥

हल् वर्ण जिसके पूर्व हो ऐसा जो उदात्त के स्थान में यण्, उससे परे जो नदी संज्ञक प्रत्य और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति सो उदात्त हो।। जैसे नदी—कुर्जी, हुर्जी, प्रस्तित्री, प्रस्तित्री इत्यादि। यहां सर्वत्र एच् अन्तोदात्त के स्थान म यण् हुआ है। अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति—कुर्जी, कुर्जी, कुर्जी, खुर्जी, खुर्जी, खुर्जी, हुर्जी, कुर्जी, खुर्जी, खुर्जी,

# ४१-वा०-नकारप्रहणं च कर्त्तव्यम् ॥ [ अ० ६ । १ । १७४ ]

जो नकारान्त से परे नदीसंज्ञक प्रत्यय हो वह उदात्त हो ।। [जैसे--] वाक्रप्रनी, वित्पत्नी ।। ४१ ।।

# ४२-हस्वनुड्भ्यां मतुप् ॥ अ०६।१।१७६॥

जो ह्रस्वान्त अन्तोदात्त प्रातिपदिक और नुट् का आगम इन से परे जो मतुप् प्रत्यय हो तो वह उदात्त हो ।। पित् प्रत्यय के अनुदात्त होने का यह अपवाद

<sup>🤋</sup> वर्तमाने पृषद्बृहन्महजागच्छृतृवञ्च ॥ [उ॰ २।८४] सूत्रविहित पृषत् बृहत् महत् जगत् चार शब्द ॥

है । [जैसे—] हस्व—-ग्राग्निमान्, <u>वायुमान्, भानुमान्, कर्त</u>ुमान् इत्यादि । तुट्— श्र<u>ाच</u>रवर्ता, श्रीर्थेषवर्तः, मुर्द्धन्वती ॥ ४२ ॥

#### ४३-वा०-मतुबुदात्तत्वे रेग्रहणम् ॥ [अ० ६ । १ । १७६]

रे शब्द से परे जो मतुप् हो तो वह भी उदात्त हो ।। [जैसे—-] आ रेवाने तु नो विश: । यहां रेवान शब्द में ह्रस्व के नहीं होने से प्राप्त नहीं था ।। ४३ ।।

### ४४-वा०-त्रिप्रतिषेधश्च ॥ [अ०६।१।१७६]

त्रि शब्द से परे मतुप् उदात्त न हो ।। [ जैसे-- ] त्रिवंती: । यहां उदात्त न हुआ ।। ४४ ।।

#### ४५-नामन्यतरस्याम् ॥ अ०६ । १ । १७७ ॥

मतुप् प्रत्यय के परे जो ह्रस्व श्रङ्ग उससे परे पष्ठी का बहुवचन नाम् विभाक्ते हो तो वह विकल्प करके उदात्त हो ।। जैसे—श्रुग्नीनाम्, श्रुप्नीनाम्, वायुनाम्, वायुनाम्, तिसृणाम्, तिसृणाम्, चतुमृणाम्, चतुमृणाम्, चतुमृणाम्, विस्णाम्, किशारीणाम् इत्यदि में विभक्ति उदात्त न हो ।। ४५ ।।

#### ४६-ङ्यार्छन्द्ति बहुलम् ॥ अ०६।१।१७८॥

जो डम्बन्त से परे नाम् हो तो वह बहुल कर के उदात्त हो, अर्थात् कहीं हो श्रीर कहीं न हो। [जैसे—] दे<u>वसेनानामिम्व्रजृतीनाम् । यहां |नाम् विभाक्त उदात्त</u>] होगई, तथा नदीनां पुरि जैयन्तीना मर्रतः यहां [नाम् विभक्ति उदात्त नहीं होती।।४६।।

#### ४७-तित्स्वरितम् ॥ अ०६।१।१८५॥

जो तित् प्रत्यय है वह स्वरित हो ।। यह आधुदात्त प्रत्ययस्वर का अपवाद है । [जैसे—] यत्—<u>चिक्री</u> व्यम्, जिहाब्यम्, <u>चिची</u> व्यम्, तुष्टू व्यम् । ययत्—कार्यम्, हार्यम् इत्यदि ।। ४७ ।।

### ४८-तास्यनुदात्तेन्ङिद्दुपदेशाह्मसार्वधातुकमनुदात्तमह्न्विङोः ॥ अ०६।१।१८६॥

तासि प्रत्यय, श्रनुदात्तेत् धातु, ङित् धातु श्रौर श्रदुपदेश इनसे परे लकार के श्रान में जो सार्वधातुक संज्ञक तिप् श्रादि प्रत्यय वे श्रनुदात्त हों, परन्तु यह कार्य

ह्तुङ् और इङ् धातु को छोड़ के होवे, क्योंकि ये दोनों िकत् हैं ।। जैसे—तासि प्रत्यय—कत्ती, क्तारी, कत्तीरें। । अनुदात्तेत्—आस्ते, आसीते, आसीते । कित् —शेते, सते, दीधीते, वेवीते । अदुपदेश—पर्वतः, पर्वन्ति, पर्वतः, पर्वन्ति । 'तासि आदि से परे' प्रहण इसिलये है कि—सुनुतः, सुन्वन्ति यहां न हो। 'त्तसावधातुक' प्रहण इसिलये है कि—सुनुते, सुधुवाते यहां न हो। और ह्नुङ् तथा इङ् का निषेध इसिलये है कि—ह्नुते, अधीते यहां अनुदात्त न हो।। ४८।।

#### ४६-लिति ॥ अ०६।१। १६३॥

लकार जिस का इत् संज्ञक हो उस प्रत्यय से पूर्व उदात्त हो ।। जैसे—चिकीर्षकः, जिहीर्षकः । यहां चिकीर्ष जिहीर्ष धातु से एवुल् हुआ है । भौरिकिविधम यहां तिद्धित का विधल् प्रत्यय है, और ऐयुकारिमक्तः यहां तिद्धित का भक्तल् प्रत्यय हुआ है, इत्यादि ॥ ४६ ॥

#### ५०-आमन्त्रितस्य च ॥ अ०६।१।१६८॥

जो आमन्त्रित अर्थात् सम्बोधन में प्रथमा विभक्त्यन्त शब्द हों उन को आधु-दात्त स्वर हो जाता है ।। जैसे—अर्थे, वायो, इन्द्रं, देवंदत्त, देवंदत्ती, देवंदत्ताः, धनेब्जय इत्यादि ।। ५० ।।

#### ५१-यतोऽनावः ॥ अ०६।१। २१३॥

दो अन् वाले यत्प्रत्ययान्त शब्दों को आद्युदात्तस्वर हो, परन्तु नौ शब्द को छोड़ के ।। जैसे—देयेम्, घेयेम्, चेयेम्, जेयेम्; शर्रारावयवाद्यत्—क्राट्यंम्, श्रोब्ट्यंम्, जक्ट्यंम्, जिह्न्यंम् इत्यादि । (तित्स्वरितम्) इस पूर्व लिखित सूत्र से [तित् प्रत्ययान्त] द्वयन् प्रातिपदिकों को भी स्वरित पाता है सो उसका अपवाद यह सूत्र है । 'द्वयन्' प्रह्ण इसलिये है कि—उर्स्यंम्, छ्छाट्यंम्, नासिक्यंम् यहां आद्युदात्त न हो । 'नौ' शब्द का निपेध इसलिये है कि—नाव्यंम् यहां भी आद्युदात्त न हो ।। ५१ ।।

#### ५२-समासस्य ॥ अ०६ । १ । २२३ ॥

समास किये राज्दमात्र को अन्तोदात्तस्वर हो ।। अब समास के स्वर का थोड़ासा विषय जिला जाता है । समास के स्वर का सामान्यसूत्र यह है । और यह सब समास के स्वर का उत्सर्ग सूत्र है, आगे सब प्रकरण इसका अपवाद है। [जैसे--] राजपुरुषः, बाअपकम्बुलः, नदीघोषः, प्टह्शब्दः, वीरपुरुषः, प्रमेश्वरः इत्यादि ।। ५२ ।।

# प्र-परिभा०- स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत् ॥

खदात्तादि स्वरों के विधान में व्यञ्जन वर्णों को अविद्यमानवत् सममना चाहिये।।
जैसे—गुजदुषत्, ब्राह्मणुस्मित्। यहां समासान्त हल् वर्ण के होने से उस हल् को
खदात्त प्राप्त है, उस को अविद्यमानवत् मान के उस से पूर्व वर्ण को उदात्त होजाता है।
इसी प्रकार और भी बहुत से प्रयोजन हैं।। ५३।।

श्रव समासस्वर का विशेष नियम कुछ लिखते हैं--

# ५४-बहुत्रोही प्रकृत्या पूर्वपद्म् ॥ अ०६।२।१॥

जो बहुत्रीहि समास में पूर्वपद का स्वर हो वह प्रकृति करके अर्थात् अन्तोदात्त न हो और ज्यों का त्यों बना रहे ।। जैसे—स्युलपृषिती, हिर्एयबहुः, ब्रह्मचारिपरि-स्कन्दः, स्नातंकपुत्रः, पुरिड्तपुंत्रः, श्रुध्यापंकपुत्रः इत्यादि ।। ५४ ।।

#### पूर्य-तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयाससम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः ॥ अ०६।२।२॥

तत्पुरुष समास में जो तुल्यार्थ, तृतीयान्त, सप्तम्यन्त, उपमानवाची, अव्यय, द्वितीयान्त और कृत्यप्रत्ययान्त पूर्वपद हो तो उस में प्रकृतिस्वर हो ।। जैसे—तुल्यार्थ—तुल्येश्वेतः, तुल्यंलोहितः, तुल्यंमहान्, सृहक्स्वेतः, सृहग्लोहितः । यहां तुल्यार्थ शब्दों के साथ कर्मधारय तत्पुरुष समास हुआ है। तृतीयातत्पुरुष—शक्कुलया खण्डः श्वाङ्कुलाख्यंडः, किरिकाणः । सप्तमीतत्पुरुष—अवशौण्डः, पानशौण्डः। उपमानवाची—चनश्यामः, तृडिद्गौरी, शक्तीश्यामा, कुमुदश्यंनी इत्यादि। अव्यय पर—

# ५६-वा०-अव्यये नञ्कुनिपातानाम् ॥ [अ०६।२।२]

श्रव्यय के कहने से सामान्य श्रव्यय का प्रहण न हो इसिलये इस वार्तिक से परिगणन किया है कि—श्रव्ययों में नव्, कु और निपातों को ही पूर्वपद प्रकृतिस्वर हो ॥ जैसे—नव् श्रव्राह्मणः, श्रवृषतः। कु—कुव्राह्मणः, कुवृषतः। निपात—निष्कौ-शाम्बः, निर्वाराणसिः। परिगणन इसिलये है कि—स्नात्वाकाळकः, पीत्वास्थिरकः यहां पूर्वपदप्रकृतिस्वर न हो । द्वितीयान्त—मुद्दुत्तसुत्वम्, मुद्दूर्तरमणीयम्, सूर्वराष्ट्र-केल्याणी, स्वरात्रशोभना। यहां श्रयन्तसंयोग में द्वितीया का समास है । कुत्यान्त—

भोज्यञ्च तदुष्णं च <u>भो</u>ज्योष्णम्, <u>भो</u>ज्यंत्तवणम्, पानीयशीतम्, हुर्णायंचूर्णम् इत्यादि ॥ ४४—४६॥

#### ५७-गतिरनन्तरः ॥ अ०६।२।४६॥

जो कर्मवाची कान्त उत्तरपद परे और अनन्तर अर्थात् समीप गित हो तो वह प्रकृतिस्वर हो ।। जैसे-प्रकृतः, प्रहृतः इत्यादि । 'अनन्तर' प्रह्ण इसिलये है कि—— अभ्युद्धृतम्, उपसमाहृतम् इत्यादि में पूर्वपदप्रकृतिस्वर न हो । 'कर्मवाची' का प्रह्ण इसिलये है कि—प्रकृतः कृटं देवदंतः यहां कत्ती में क प्रत्यय है इसिलये नहीं होता ।। ५७ ।।

यह पूर्वपदप्रकृतिस्वर पूरा हुआ। अब पूर्वपद आद्युदात्त आदि प्रकरण कुछ २

7

#### प्र⊏-आदिस्दात्तः ॥ अ०६।२।६४॥

पूर्वपद आयुदात्त होने के लिये यह अधिकार सूत्र है।। ५८।।

#### प्रह-िश्नि ॥ अ०६।२। ७६॥

णिनि प्रत्ययान्त उत्तरपद परे हो तो पूर्वपद आयुदात्त हो ।। जैसे—उद्योमोजी, शीतंभोजी, स्यापंडलशायी, परिंडतमानी, सोमयाजी, कुर्मारघाती, शीर्षघाती, फलंहारी, पर्योहारी इत्यादि ।। ५६ ।।

#### ६०-अन्तः ॥ अ०६।२।६२॥

पूर्वपद अन्तोदात्त प्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ।। ६० ।।

### ६१-सर्व गुणकात्स्न्ये ॥ अ०६।२। ६३॥

जो गुणों की सम्पूर्णता अर्थ में वर्तमान पूर्वपद सर्व शब्द हो तो वह अन्तोदात्त हो।। जैसे—सुर्वश्वेतः, सुर्वकृष्णः, सुर्वलोहितः, सुर्वहरितः, सुर्वश्यामः, सुर्वसारङ्गः, सुर्वकल्माषः, सुर्वमहान् इत्यादि।। ६१।।

# ६२-उत्तरपदादिः ॥ अ० ६ । २ । १११ ॥

उत्तरपद श्राद्युदात्त प्रकरण में यह अधिकार सूत्र है।। ६२।।

# ६३-श्रकमधारये राज्यस् ॥ अ०६।२। १३०॥

कर्भधारय समास से भिन्न तत्पुरुष समास में जो राज्य उत्तरपद हो तो वह आद्युदात्त हो ।। जैसे <u>ब्राह्मण</u>राज्यंम, <u>च्रात्रिय</u>राज्यंम, <u>यवन</u>राज्यंम, <u>कुरु</u>राज्यंम इत्यादि ॥ ६३ ॥

श्रव उत्तरपद तथा उभयपद प्रकृतिस्वर के विषय में कुछ लिखते हैं:-

## ६४-गतिकारकोपपदास्कृत् ॥ अ०६।२। १३६॥

जो तत्पुरुषसमास में गित, कारक और उपपद से परे कृदन्त उत्तरपद हो तो वह प्रकृतिस्वर हो।। जैसे—गित—प्रकार्यकः, प्रहार्यकः, प्रकरिणम्, प्रहरेणम् । कारक—— इध्मुप्रव्रश्चनः, प्रलाशशात्नः, रमुश्रुकरुपनः। उपपद—ईष्ट्रकरेः, दुष्करेः, सुकरेः। 'गितिकारकोपपद' प्रहण इसिलये है कि—देवदत्तस्य कारको देवदत्तकारकः यहां न हो।। ६४।।

### ६५-उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ अ०६।२।१४०॥

वनस्पति त्रादि समास किये हुये शब्दों में पूर्वपद उत्तरपद दोनों एककाल में प्रकृतिस्वर हों ।। [जैसे--] वन्स्पतिः। यहां वन त्रौर पति दोनों शब्द त्राद्युदात्त हैं। पति शब्द को समास में सुट् होजाता है। बृह्स्पतिः यहां भी सुट् हुत्रा है। श्रुची-पतिः, तन्त्रपति, नराशंसः, श्रुनःशेपः, श्रग्डामकैं।, तृष्णाविक्षत्री, वृम्वाविश्ववयसी, मर्मुत्युः।। ६४।।

#### ६६-देवताद्वन्दे च ॥ अ० ६ । २ । १४१ ॥

देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में एककाल में दोनों शब्द प्रकृतिस्वर हों ।। [ जैसे— ] इन्द्रासोमी, इन्द्रावर्रुगी, इन्द्राबृह्स्पती, द्याविष्टिव्यी, सोमारुद्री, इन्द्रापूर्वगी, शुक्रामिन्यनी इत्यादि ।। ६६ ।।

#### ६७-ग्रन्तः ॥ अ०६।२।१४३॥

उत्तरपद अन्तोदात्त प्रकरण में यह अधिकार सूत्र है।। ६७।।

### ६८-याथघञ्काजिबत्रकाणाम् ॥ अ०६।२।१४४॥

गति, कारक और उपपद से परे जो थ, श्रथ, घन्, क, अन्, श्रप्, इत्र और क इतने प्रत्यान्त शब्द उत्तरपद उन को श्रन्तोद।त्तस्वर हो ।। जैसे-स्थ-सुनीथं:,

अव्युष्यः । अथ—आवस्यः, उपवस्यः । घन्—प्रभेदः, काष्ठभेदः, रुच्चु च्छेदः । क्र—दूरादागतः, विशुष्कः, आतपशुष्कः । अन्—प्रग्रयः, विनयः, विजयः, आश्रयः, व्यत्ययः, अन्वयः इत्यादि । अप्—प्रलवः, प्रस्वः । इत्र—प्रलवित्रम्, प्रस्वित्रम् । क्—गोदः, कम्बल्दः, श्रांस्थः, गृहस्थः, वनस्थः इत्यादि ॥ ६८ ॥

अब इसके आगे अनुदात्त का प्रकरण संचेप से लिखते हैं-

#### ६६-पदात् ॥ अ० ८ । १ । १७ ॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे पद से परे कार्य होगा।। ६९।।

#### ७०-पद्स्य ॥ अ० ८ । १ । १६ ॥

यह भी ऋधिकार सूत्र है। यहां से आगे जो कार्य कहेंगे वह पद के स्थान में समक्ता जावेगा ।। ७० ।।

# ७१-श्रनुदात्तं सर्वमपादादौ ॥ अ० ८ । १ । १८ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है। अपादादि अर्थात् जो पाद की आदि में न हो किन्तु मध्य वा अन्त में हो तो पद से परे सब पद अनुदात्त हो।। यह अधिकार चलेगा।। ७१॥

#### ७२-ग्रामन्त्रितस्य च ॥ अ० ८ । १ । १६ ॥

जो पद से परे अपादादि में वर्तमान आमिन्त्रित पद हो तो वह सर्व अतुदात्त होवे।। जैसे—पर्टिस देवदत्त, जुहोंसि देवदत्त। आमिन्त्रित पद को पूर्वोक्त (५०) सूत्र से आद्युदात्त प्राप्त था, इसिलये यह विधान है।। ७२।।

# ७३-परिभाषा०-म्रामन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् ॥ अ० ८ । १ । ७२॥

पद से परे जिस पद को अनुदात्त आदि विधान करते हैं उससे पूर्व जो आमन्त्रित हो तो उस को अविद्यमानवत् सममना चाहिये, अर्थात् पूर्व कुछ नहीं है ऐसा माना जावे।। जैसे—देवंदन्त यद्गंदन्त । यहां यज्ञदत्त शब्द को पद से परे निघात नहीं हुआ। तथा देवंदन्त पर्चिस यहां आविद्यमानवत् होने से क्रिया को निघात नहीं होता। तथा देवंदन्त तव ग्रामः स्वम् । देवंदन्त मम ग्रामः स्वम् यहां पद से परे 'ते' 'मे' आदेश नहीं होते, इत्यादि।। ७३।।

# ७४-नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्।। अ०८।१।७३॥

सामान्यवचन समानाधिकरण आमान्त्रित पद परे हो तो पूर्व जो आमन्त्रित पद है वह अविद्यमानवत न हो ।। जैसे—अमें व्रतपते [ यजु० १ । ४ ], अमें गृहपते [ यजु० २ । २७ ], पृथिवि देवयजानि [ यजु० १ । २४ ] । अर्थात् पद से परे निघात आदि कार्य हो जावें । 'समानाधिकरण' प्रहण इसिलये हैं कि पूर्व सूत्र के विषय में 'यह सूत्र न लगे । 'सामान्यवचन' प्रहण का प्रयोजन यह है कि—अध्नेये देवि सर्रस्वित ईंट्रे काच्ये विह्न्ये यहां पर्यायवाची शन्दों में न हो ।। ७४ ।।

# ७५-विभाषितं विशेषवचने बहुवचनम् ॥ अ० ८ । १ । ७४ ॥

R

विशेषवचन समानाधिकरण आमिन्त्रत पद परे हो तो पूर्व जो आमिन्त्रत पद है वह विकल्प करके अविद्यमानवत् हो ।। जैसे—देवा ब्रह्माणः, देवा ब्रह्माणः, ब्राह्मणा वैयाकरणाः इत्यादि । यहां अविद्यमानवत् पत्त में दोनों पद के खर और विद्यमानवत् पत्त् में उत्तरपद निघात हो जाता है । 'विशेषवचन' प्रहण इसितिये हैं कि—मार्णवक्ष जिटलक यहां विकल्प न हो ।। ७४ ।।

# ७६-युष्मद्स्मदोः षष्टीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावी ।। अ० ८।१।२०॥

पष्ठी चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के सह वर्त्तमान अपादादि में पद से परे जो युष्मद् अस्मद् पद उनको क्रम से वाम् और नौ आदेश हों, और वे सब अनुदात्त हों।। जैसे—पष्ठीस्थ—प्रामी वां स्वम्, जनपदो नौ स्वम् । चतुर्थीस्थ—प्रामी वां दीयते, जनपदो नौ स्वम् । चतुर्थीस्थ—प्रामी वां दीयते, जनपदो नौ दीयते । द्वितीयास्थ—माण्यको वां पश्यित, माण्यको नौ पश्यित इत्यादि । इस सूत्र में 'स्थ' प्रह्ण इसिलये हैं कि—हष्टो मया युष्मत्युत्रः यहां पष्टी का लुक् होजाने से आदेश और अनुदात्त नहीं होता ।। ७६ ।।

#### ७७-बहुवचनस्य वस्नसी ॥ अ० ८ । १ । २१ ॥

षष्ठी, चतुर्थी और दितीया विमिक्त के सह वर्तमान अपादादि में पद से परे बहुवचनान्त जो युष्मद् अस्मद् पद उनको क्रम से वस् और नस् आदेश हों तथा वे सब अनुदात्त हों ।। जैसे—नमी वः पितरः [ यज्ज० २ । ३२], नमी वो देवाः, मा नी वधीः [ यज्ज० १६ । १५ ], मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः [ यज्ज० १६ । १६ ], शर्मः [ यज्ज० ३६ । १२ ] इत्यादि ।। ७७ ।।

# ७८-तेमयावेकवचनस्य ॥ अ० ८ । १ । २२ ॥

अपादादि में वर्त्तमान पद से परे जो एकवचनान्त युष्मद् अस्मद् पद उन को ते, मे, आदेश हों और वे सब अनुदात्त हों।। जैसे——गुरुस्ते पिएडतः, गुरुमें पिएडतः, देहिं मे ददामि ते इत्यादि॥ ७८॥

#### ७६-त्वामौ द्वितीयायाः ॥ अ० ८ । १ । २३ ॥

पद से परे अपादादि में वर्त्तमान द्वितीयैकवचनान्त जो युष्मद् अस्मद् पद उनको त्वा, मा आदेश हों और वे सब आद्युदात्त हों।। जैसे—कस्त्वा युनकि [यजु॰ ११६], स त्वा युनक्ति [यजु॰ १।६], पुनन्तुं मा [यजु॰ १६। ३६] इत्यादि।।७६॥

# ८०-तिङ्ङतिङः ॥ अ० ८ । १ । २८ ॥

जो अपादादि में अतिङन्त पद से परे तिङन्त पद हो तो वह सब अनुदात्त हो जावे।। जैसे—त्वं पंचित, अहं पंठामि, स गंच्छात, तौ गंच्छातः इत्यादि। यहां 'तिङ्' प्रहण इसिलये है कि—शुक्कं वंस्नम् यहां नहीं होता। 'अतिङ्' प्रहण इसिलये है कि—प्रति पर्चित यहां न हो।। ८०।।

#### ८१-यावयथाभ्याम् ॥ अ० ८ । १ । ३६ ॥

जो यावत् श्रौर यथा से युक्त तिङन्त पद हो तो वह श्रनुदात्त न हो।। [जैसे—] यावंद् मुङ्क्ते, यथा मुङ्क्ते, यावंद्धीते, यथाऽधीते, देवद्तः पर्वति यावंद्, देवद्तः पर्वति यथा इत्यादि ॥ ८१ ॥

# ८२-यद्वृत्तान्नित्यम् ॥ अ० ८ । १ । ६६ ॥

जो यत् शब्द के प्रयोग से युक्त तिङन्त पद हो तो वह अनुदात्त न हो ।। जैसे— यो भुङ्क्ते, यं भोजयति, येन भुङ्क्ते इत्यादि ।। ८२ ।।

#### ८३-गृतिर्गतौ ॥ अ० ८ । १ । ७० ॥

जो गित से परे पूर्व गित हो तो वह निघात हो जाती है।। जैसे—अभ्युद्धरित,
समुदानयति, उपसंघ्यानयति, उपसंहरिति, अभ्यवहरित इत्यादि ।। ८३ ।।

# ८४-उदात्तस्वरितयोर्थणः स्वरितोनुदात्तस्य ॥ अ०८।२।४॥

जो उदात्त और स्वरित के स्थान में यण् उस से परे अनुदात्त हो तो उसको स्वरित हो जावे।। जैसे—सुष्टा [यजु०१।३]। यहां सुपू शब्द अन्तोदात्त और विभाक्त अनुदात्त है उस को स्वरित हो जाता है। नीचे जो - यह वक चिह्न होता है वह भी स्वरित ही का चिह्न है। इसी प्रकार पृथिव्यासि [यजु०१।२] यहां पृथिवी शब्द अन्तोदात्त है, उससे परे अकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता है। स्वरित यण्—स्कृल्ल्व+आशा, खल्लिव+आशा यहां 'सकृल्ल्व' 'खल्लिव' सप्तम्यन्त स्वरितान्त शब्द हैं, उन के यण् से परे आकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता हैं — सकुल्ल्वपीशा, खल्लिवयाशा इत्यादि।। ८४।।

# ८५-एकादेश उदात्तेनोदात्तः ॥ अ० ८ । २ । ५ ॥

उदात्त के साथ जो अनुदात्त का एकादेश है वह भी उदात्त ही हो जाता है।। जैसे—-अग्रनी, वायू। यहां अग्नि वायु शब्द अन्तोदात्त हैं, उनका अनुदात्त विभक्ति के साथ एकादेश हुआ है। इसी प्रकार वृत्तै:, स्विः इत्यादि।। ८४।।

### ८६-स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ ॥ अ० ८ । २ । ६ ॥

जो उदात्त के साथ एकादेश है वह पदादि अनुदात्त के परे विकल्प करके स्वरित हो, पन्न में उदात्त हो ।। [ जैसे— ] सु+उत्थित:=स्र्रीत्थत:, स्रत्थित: | वि+ईचते= वीचते, वीचते इत्यादि ।। ८६ ।।

इति श्रीमद्द्यानन्दसरस्वतीनिर्मितः सौवरो ग्रन्थः समाप्तः संवत् १६३६ भाद्र ग्रुक्क १३ चन्द्रवार ॥

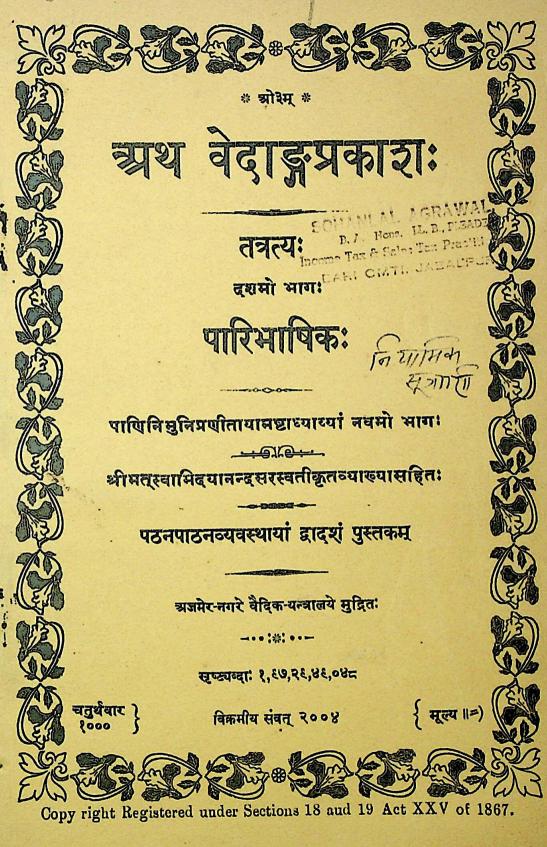


| 朝 美 川 |

# श्रार्थ्समाज के नियंम

(20):0:00 ·

- १—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिसूच परमेश्वर है।
- २—ईश्वर साचिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकत्ती है, उसी की उपासना करनी योग्य है।
- ३-वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।
- ४-सत्य प्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।
- ५-सब काम धर्मातुसार अर्थात् सत्य श्रीर असत्य को विचार करके करने चाहियें।
- ६—संसार का उपकार करना इस समाज का ग्रुख्य उद्देश है, अर्थात् शारीरिक, आर्तिक और सामाजिक उंचति करनां।
- ७-सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये।
- <u> प्रविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।</u>
- ८-प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की चन्नति
   में अपनी उन्नति समभ्रती चाहिये ।
- १०-सब मनुष्यों को सामाजिक सर्विहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये श्रौर प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।।



# भूमिका

++54+

संज्ञापरिभाषाविधिनिपेधनियमातिदेशाधिकाराख्यानि सप्तविधानि सत्राणि भवन्ति । सम्यग् जानोयुर्यया सा संज्ञा, यथा 'वृद्धिरादैच्' इत्यादि । परितः क् सर्वतो भाष्यन्ते नियमा याभिस्ताः परिभाषाः, यथा 'इको गुणवृद्धी' इत्यादि । यो विधीयते स विधिर्विधानं वा, यथा 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' इत्यादि । निषध्यन्ते निवार्यन्ते कार्याणि यैस्ते निषधाः, यथा 'न धातुत्तोप आर्द्ध्धातुके' इत्यादि । नियम्यन्ते निश्चीयन्ते प्रयोगा यैस्ते नियमाः, यथा 'अनुदात्तिकत आत्मनेपदम्' इत्यादि । आतिदिश्यम्ते तुल्यतया विधीयन्ते कार्याणि यैस्ते-ऽतिदेशाः, यथा 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' इत्यादि । अधिकियन्ते पदार्था यैस्ते-ऽिकाराः, यथा 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' इत्यादि । अधिकियन्ते पदार्था यैस्ते-ऽिकाराः, यथा 'कारके' इत्यादि ।

एषां सप्तविधानां सूत्राणां मध्याद्यतोऽयं परिभाषाणां न्यारूयानो ग्रन्थोऽस्ति, वस्मात्पारिभाषिको वेदितन्यः।

भाषार्थः स्व सात प्रकार के होते हैं संद्वा, परिभाषा, विधि, निषेध, नियम, अतिदेश, अधिकार। अच्छे प्रकार जिससे जानें वह संद्वा कहाती है; जैसे 'वृद्धिरादेच्' हत्यादि। जिन से सव प्रकार नियमों की स्थिरता की जाय वे परिभाषा स्त्र कहाते हैं; जैसे 'इको गुणवृद्धी' इत्यादि। जो विधान किया जाय वा जो विधान है, वह विधि कहाता है; जैसे 'सिचि वृद्धिः परसीपदेषु' इत्यादि। निपेध उस को कहते हैं कि जिस से कार्यों का निवारण किया जाय; जैसे 'न धातुलोप आर्द्धधातुके' इत्यादि। नियम उनको कहते हैं कि जिनसे प्रयोगों का निश्चय किया जाय; जैसे 'अनुदात्तिक्षत आत्मनेपदम्' इत्यादि। जिससे किसी की तुल्यता लेकर कार्य कहें वह आतिदेश कहाता है; जैसे 'आद्यन्तवदेक सिन्' इत्यादि। और जिनसे पदार्थों की विशेष अनुवृत्ति हो उन को अधिकार कहते हैं; जैसे 'कारके' इत्यादि।

इन सात प्रकार के सूत्रों में से जिसिलये यह परिभाषाओं का व्याख्यानरूप प्रनथ है, इसिलये इस का नाम पारिभाषिक रक्खा है। इन परिभाषाओं में से जो श्रष्टाऽध्या-यीस्थ परिभाषासूत्र हैं, वे सिन्धविषय में व्याख्यापूर्वक लिख दिये हैं, यहां केवल महाभाष्यस्थ परिभाषासूत्रों का व्याख्यान है।

परिभाषात्रों का मुख्य तात्पर्य यही है कि दोषों का निवारण करके व्यवस्था कर देना। इसीतिये इस प्रन्थ को बनाया है कि व्याकरण के सन्धि स्नादि प्रकरणों में जो २ सन्देह पड़ते हैं, वे इन परिभाषात्रों के पठन-पाठन से स्नवश्य निवृत्त हुआ करेंगे, इत्यादि स्ननेक प्रयोजन हैं।

श्रीर इस में मूल परिभाषा के श्रागे जो संख्या पड़ी है, वह श्रष्टाऽध्यायी के सूत्र की है। उस सूत्र की व्याख्या में महाभाष्य में वह परिभाषा लिखी है। श्रीर परिभाषा के पहिले जो संख्या है, वह इस ग्रन्थ की है।

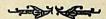
इति भूमिका॥

स्थान— - महाराणाजीका उदयपुर स्राहिबन ग्रुक्त संवत् १६३६

द्यानन्द सरस्वती.



# अथ पारिभाषिकः



"परितो व्यापृतां भाषां परिभाषां प्रचत्तते"। सब श्रोर से वैदिक, लोकिक श्रोर शास्त्रीय व्यवहार के साथ जिसका सम्बन्ध रहे, श्रर्थात् उक्त तीनों प्रकार का व्यवहार जिस से सिद्ध हो, उस को 'परिभाषा' कहते हैं।

इस पारिभाषिक ग्रन्थ में प्रथम परिभाषा की भूमिका लिख कर, आगे लच्य अर्थात् उदाहरण लिख के, पुनः मूल परिभाषा लिखेंगे, और उस के आगे उस का स्पष्ट व्याख्यान करेंगे।

श्रव प्रथम पाणिनीय व्याकरण श्रष्टाऽध्यायी के प्रत्याहार सूत्रों में (श्रइउण्; लण्) इन दो सूत्रों में लोप होने वाला हल् ज्ञार पढ़ा है। इस ज्ञार से 'श्रण्' श्रोर 'इण्' दो प्रत्याहार बनते हैं। सो जिन सूत्रों में 'श्रण्' 'इण्' प्रत्याहारों से काम लिया जाता है, वहां सन्देह पढ़ता है कि किन २ सूत्रों में पूर्व श्रोर किन २ में पर ज्ञार से 'श्रण्' तथा 'इण्' प्रत्याहार जानें। इस सन्देह की निवृक्ति के लिये यह परिभाषा है—

# १ -व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिनीहिं सन्देहादलक्षणम् ॥

'लण्' सूत्र पर॥

जिस सूत्र वा वार्त्तिक श्रादि में सन्देह हो, वहां व्याख्यान से विशेष वात का निश्चय कर लेना चाहिये, किन्तु सन्देहमात्र के होने से सूत्र श्रादि ही को श्रन्यथा न जान लेवें।

जहां पृथक् २ देखे हुए दो पदार्थों के समान अनेक विरुद्ध धर्म एक में दीख पड़ें, श्रोर उपलब्धि श्रानुपलब्धि की अव्यवस्था हो, अर्थात् जो पदार्थ है श्रोर जो नहीं है दोनों की उपलब्धि श्रोर दोनों की श्रानुपलब्धि होती है, क्योंकि पदार्थों के साधारण धर्म को लेकर सन्देह होता है। उन में से जब विशेष श्रर्थात् किसी एक का निश्चय होजाता है, तब सन्देह नहीं रहता।

जिन सूत्र आदि में सन्देह पड़ता है, यहां उनमें छ: प्रकार का व्याख्यान करना चाहिये—पदच्छेद, पदार्थ, अन्वय, भावार्थ, पूर्वपच्च—शङ्का, उत्तरपच्च—समाधान। इन छ: प्रकार के व्याख्यानों से संदेहों की निवृत्ति कर लेनी चाहिये।

प्रश्न—जैसे प्रथम (ढूलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः) इस सूत्र में 'श्रण्' प्रत्याहार पूर्व सकार से लेना वा पर से, यह संदेह हैं ?

उत्तर—इसमें निस्संदेह पूर्व शुकार से लेना चाहिये। क्योंकि जो पर शुकार से लिया जावे, तो इस सूत्र में 'ऋश्' का प्रहश करना व्यर्थ है, क्योंकि (अचध) इस सूत्र से इस्व दीर्घ, सुत अच् ही के स्थान में होते हैं। इस से 'श्रच्' की उपस्थिति होडी जाती। किर 'श्रश्' प्रहश का यही प्रयोजन है कि इत्यादि सुत्रों में पूर्व शुकार ही से लिया जावे।

प्रश्न--ग्रोर (त्रागुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः) इस सूत्र में 'त्राण्' प्रत्याद्वार पूर्व गुकार से वा पर गुकार से लेगा चाद्विये ?

उत्तर—निस्तंदेह पर णुकार से 'अण्' प्रत्याहार का प्रहण है। क्योंकि (ऊर्ऋंत्) इस सूत्र में ऋकार तपर इसी ित्ये पढ़ा है कि 'अचीकृतत्' इत्यादि प्रयोगों में ऋकार को हस्य ऋकार ही आदेश हो। अर्थात् सवर्णप्रहण (अर्णुदित्०) परिभाषा सूत्र से हस्य का सवर्णी दीर्घ न हो जावे। जो पूर्व शुकार से 'अण्' प्रहण होता, तो पूर्व अर्ण में ऋकार के होने से ऋकार को सवर्ण प्रहण प्राप्त ही नहीं, किर तपर क्यों पढ़ते? इस से स्पष्ट हुआ कि (अर्णुदित्०) इस सूत्र में पर शुकार से, और इसी एक सूत्र को छोड़ के अन्यत्र सब सूत्रों में पूर्व शुकार से 'अर्णु' प्रहण है।

प्रश्न--श्रोर (इण्को:) इत्यादि जिन २ सूत्रों में 'इण्' प्रत्याहार पढ़ा है, वहां २ पूर्व वा पर णुकार से प्रहण करना चाहिये ?

उत्तर—यहां सर्वत्र निस्संदेह पर गुकार से 'इग्' समक्षना चाहिये। क्यों कि पूर्व से 'इग्' प्रत्याहार' में 'इ; उ' दो ही वर्ग आते हैं। सो जहां इन दो वर्गों से कार्य लिया है, वहां 'खोः' ऐसा इ उ को विभक्ति के साथ सिन्ध करके पढ़ा है। यहां 'इग्' पढ़ते तो कुछ गौरव नहीं था, किन्तु आधी मात्रा का लाघव ही था। फिर 'इग्' पत्याहार के न पढ़ने से निश्चय हुआ कि सर्वत्र पर गुकार से 'इग्' प्रत्याहार लिया जाता है।

अन्यत्र भी जहां कहीं शिष्ट वचन में सन्देह पड़े, वहां व्याख्यान से विशेष करके सत्य विषय का निश्चय कर लेना चाहिये, किन्तु उस वचन को व्यर्थ जान के नहीं छोड़ देना चाहिये। श्रीर सन्दिग्ध लौकिक व्यवहारों का भी विशेष व्याख्यान से निर्णय किया जाता है ॥ १॥

(सार्वधातुकार्कधातुकयोः) यह गुणकार्य होने का काल है। यहां (श्रलोन्सस्य; इको गुणवृद्धी) इन दो परिभाषाश्चों की विधिस्त्रत्र के साथ परिभाषाबुद्धि से एकवाक्यता हो, इसीलिये कार्यकाल परिभाषापत्त, श्रीर जब (हयवरट्; हल्) यहां दो हकारों का उपदेश इत्यादि विषयों में सन्देह पड़े, तब उस विषय के साथ सामान्यविषयक बुद्धि से परिभाषाक्रप व्याख्या की एकवाक्यता होवे। इसलिये यथोहे श पत्त है। इससे ये दोनों परिभाषा की गई हैं—

# २-कार्यकाळं संज्ञापरिभाषम् ॥ ३-यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम् ॥ अ०१।१।११॥

'कार्यस्य काल: कार्यकाल:, कार्यकाल: कालोऽस्य तत् कार्यकालम्; संझा च परिभाषा च तत्संज्ञापरिभाषम्; उद्देशमनतिकस्य यथोद्देशम्।' संज्ञा झौर परिभाषा का समय वही है, जो कार्य करने का काल होता है। उसी समय उनकी उपस्थिति होती है।

जैसे दीपक एक स्थान पर रक्खा हुन्ना, सब घर को प्रकाशित करता है, वैसे परिभाषा भी एकदेश में स्थित होकर सब शास्त्र के विषयों को प्रकाशित करती है। इस में प्रमाण—"परिभाषा पुनरेकदेशस्था सती कृत्स्नं शास्त्रमिन्नवलयित प्रदीपनत्, यथा प्रदीपः सुप्र-ज्वितः सर्व वेदमाभिज्वलयित ।। महाभाष्य०२।१।१।।।

श्रीर यथोहेश पत्त से प्रयोजन यह है कि जिस विषय पर जिस परिभाषा का उच्चारण किया हो, वह उस का उल्लंघन न करे। श्रर्थात् उस विषय के श्रमुक्त उस की प्रवृत्ति होवे। इन दोनों पत्तों में भेद यह है कि कालपत्त की परिभाषा किसी की दृष्टि में श्रसिद्ध नहीं मानी जाती। श्रीर यथोहेशपत्त की परिभाषा श्रसिद्ध प्रकरण में नहीं लगती॥ २—३॥

(दाधाच्वदाप्) इस सूत्र में 'त्रादाप्' कहने से 'दाप् लवने' धातु का निषेध हो सकता है, फिर 'दैप् शोधने' धातु की घुसंहा हो जाने, तो 'श्रवदातं मुखम्' यहां श्रनिष्ट 'दत्' श्रादेश प्राप्त है। इसीलिये 'दैप्' धातु की घुसंहा इप्ट नहीं है। इस्यादि प्रयोजनों के लिये यह परिभाषा की गई है—

#### ४-अनेकान्ता अनुबन्धाः ॥ अ०१।१।२०॥

प्, ज्, ङ्, क् इत्यादि अनुवन्ध जिन धातु आदि के साथ युक्त होते हैं, उन के एकान्त अर्थात् अवयव नहीं, किन्तु वे अनुवन्ध उन धातु आदि से पृथक् हैं।

इस से यह सिद्ध हुआ कि 'दैप्' धातु को एजन्त मानकर आकारादेश किये पीछे 'दाप्' मानकर इसी घुसंद्वा का निषेध होता है । इसी से 'अवदातं मुखम्' यहां दोष नहीं आता ॥ ४ ॥

श्रव (श्रनेकाल्शित्सर्वस्य) इस सूत्र से 'श्रनेकाल्' श्रोर 'शित्' श्रादेश संपूर्ण के स्थान में होते हैं। (इदम् इश्; श्रायाभ्य श्रोश्) यहाँ 'इश्' श्रोर 'श्रोश्' भी शकार के सिंहत श्रनेकाल हैं। फिर श्रजुबन्धों \* के एकान्तपत्त में शित् प्रहण् ज्ञापक हैं। इस से यह परिभाषा निकाली—

अनुबन्धों में एकान्त और अनेकान्त दोनों पच माने जाते हैं (सो अनेकान्तपच में परि-भाषा का प्रयोजन दिखा दिया । और एकान्तपच इसिलये मानते हैं कि अनेकान्तपच में 'क्' जिस

# ५-नानुबन्धकृतमनेकाल्तम् ॥ अ०१।१।५५॥

अनुवन्ध के सहित जो अनेकाल् हो, उसको अनेकाल् नहीं मानना, किन्तु जो अनुवन्धरहित अनेकाल् हो, वही अनेकाल् कहाता है।

इस से यह आया कि 'इश्' आदि आदेश 'शित्' होते से अनेकाल् नहीं होते। तो 'शित्' आदेश सार्थक होकर खार्थ में इस परिभाषा का चरितार्थ होगया।

श्रीर श्रन्यत्र फल यह है कि जो 'श्रर्वन्' शब्द को (श्रर्वग्रह्मसावनञः) इस सूत्र से 'तृ' श्रादेश कहा है, उस को ऋकार श्रनुवन्ध के सिहत श्रनेकाल् मान लें तो सर्वादेश श्रिनेष्ट प्राप्त हो, श्रन्य को इष्ट है। श्रनुवन्ध कृत श्रनेकाल् न होने से सर्वादेश नहीं होता, इत्यादि श्रनेक प्रयोजन हैं। ॥ ॥

श्रव इस पांचवीं परिभाषा के एकान्तपच्च में होने से 'दैप्' धातु के पकार का लोप प्रथम होगया, क्योंकि लोपविधि सब से बलवान् है। लोप किये पीछे आकारा-देश करने से 'श्रदाप्' इस से घुसंज्ञा का निषेध नहीं हो सकता। और किसी प्रकार पकार का लोप प्रथम न करें तो अनुबन्धों के एकान्तपच्च में 'दैप्' धातु एजन्त नहीं। पुनः आकारादेश नहीं प्राप्त है, तो 'श्रवदातं मुखम्' यहां घुसंज्ञा होनी चाहिये। इसलिये ज्ञापकसिद्ध यह परिभाषा है—

#### ६-नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वम् ॥ अ०३।४।१६॥

श्रनुबन्ध के होने से एजन्तपन की हानि नहीं होती।

(उदीचां माङो०) इस सूत्र में 'मेङ्' धातु का 'माङ्' निहंश नहीं करते तो व्यतिहारग्रह्ण भी नहीं करना पड़ता, क्यों कि 'मेङ्' धातु का व्यतिहार अर्थ ही है ि फिर
(उदीचां मेङ:) इतने छोटे सूत्र से सब काम निकल जाता, तो वड़ा सूत्र करने से यह
आया कि अनुवन्ध के बने रहते ही आकारादेश हो जाता है, कि जैसे 'मेङ्' का 'माङ्'
बन गया, अर्थात् अनुवन्ध के होने से भी एजन्तत्व की हानि नहीं होती। जैसे कि
'मेङ्' में 'ङ्' अनुबन्ध के बने रहते ही एच्निमित्त आकारादेश होगया। इससे यह
परिभाषा खार्थ में चरितार्थ हुई। और अन्यत्र फल यह है कि 'दैए' धातु को भी
अनुबन्ध के वर्त्तमान समय ही में एजन्त मानकर आकारादेश होजाता है। फिर 'अदाए'
निषेध के प्रवृत्तं होने से घुसंजा का प्रतिषेध होकर 'अवदातं मुखम्' प्रयोग सिद्धं
होता है॥ ६॥

का इत् गया हो वह 'कित्' नहीं हो सकता, क्योंकि कित् शब्द में बहुव्रीहि समास से श्रन्य पदार्थ प्रत्यय के साथ ककार श्रनुवन्ध का मुख्य सम्बन्ध नहीं घटता। श्रौर एकान्तपत्त में घट जाता है। श्रौर श्रनेकान्तपत्त में शकार श्रनुवन्ध से 'शित्' श्रनेकाल् नहीं हो सकता, फिर एकान्तपत्त के जिये ही सगजी ४, ६, ७ तोनों परिमापा हैं॥ अब अनुवन्धों के एकान्तपत्त में यह भी दोष आता है कि 'अण्' और 'क' प्रत्यय में 'ण्, क्' अनुवन्धों के लगे होने से भिन्नक्रप वाले समक्ते जावें। फिर सक्रप प्रत्यय नित्य बाधक होते हैं। अर्थात् अपवाद विषय में उत्सगं की प्रवृत्ति नहीं होती, यह वात नहीं बनेगी। इस से 'गोदः, कम्बलदः' यहाँ 'अण्' का अपवाद 'क' प्रत्यय हो जाता है। इस अपवाद के विषय में उत्सगें 'अण्' भी होना चाहिये। इसलिये ज्ञापकसिख यह परिभाषा है—

### ७-नानुबन्धकृतमसारूप्यम् ॥ अ०३।१ । १३६॥

जिन में अनुबन्धमात्र का भेद हो, वे भिन्नक्रपवाले असक्रप नहीं कहाते।

(ददातिद्धात्योर्विभाषा) इस स्त्र में 'विभाषा' ग्रहण इसिलये है कि 'श' प्रत्यय के पत्त में त्राकारान्त से विहित उत्सर्गक्षप 'गु' प्रत्यय भी होजावे। श्रोर 'श्रण्, क' प्रत्यय के समान 'गु, श' प्रत्यय भी श्रानुबन्ध से श्रवक्षण श्रोर श्रानुबन्ध रहित सक्षप ही हैं। फिर श्रसक्षप प्रत्ययों में तो (वाऽसक्षपोऽक्षियाम्) इस परिभाषा स्त्र से उत्सर्गापवाद विकल्प होही जाता। फिर विभाषाग्रहण व्यर्थ होकर यह जनाता है—श्रानुबन्धमात्र भेद के होने से श्रसाक्षण नहीं होता। श्रर्थात् 'गु', 'श'प्रत्यय श्रसक्षण नहीं हैं कि जो (वाऽसक्षण) परिभाषा से विभाषा होजावे। इस से 'विभाषा ग्रहण स्वार्थ में चरितार्थ, श्रोर श्रन्थन्य फल यह है कि इसीसे 'गोद:', 'कम्बलद:' यहां 'क' श्रपवाद के विषय में 'श्रण्' उत्सर्ग भी नहीं होता।। ७॥ "

त्रव संज्ञा दो प्रकार की होती है—एक तो जो वाच्यवाचक संकेत से किन्हीं विशेष प्रयोजनों के लिये किसी का कुछ नाम रख लेना, उस को कृत्रिमसंज्ञा कहते हैं। ग्रीर जो प्रकृति प्रत्यय के योग से योगिक अर्थ होता है, उस को अकृत्रिमसंज्ञा कहते हैं। सो लोकिक व्यवहारों में तो यही रीति है कि जहां कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों संज्ञाओं का सम्भव हो, वहां कृत्रिम संज्ञा ली जावे, अकृत्रिम नहीं। 'यथा केनचिदुक्तं गोपालकमानयेति' जैसे किसी ने कहा कि गोपालक को ले आ। एक तो यहां गोपालक किसी निज मनुष्य का नाम है, और दूसरा जो कोई गोंओं का पालन करे, उसको गोपालक कहते हैं। तो यह अर्थ किसी निज के साथ नहीं है। फिर इस कृत्रिमसंज्ञा वाले निज गोपालक का ही प्रहण होता है।

ऐसे अब व्याकरण में जहां छित्रिम असिम दोनों सङ्घाओं का सम्भव है, जैसे धातु, प्रातिपदिक, बहुवीहि, तत्पुरुष, वृद्धि, गुण, सवर्ण, सम्प्रसारण, नदी इत्यादि शब्दों में सुत्रिम संज्ञा का ग्रहण हो वा श्रासृत्रिम का ? इसलिये यह परिभाषा है—

# प्त-कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्ययः ॥ अ०१ ।१।२३॥

जहां कृत्रिम श्रीर श्रकृत्रिम दोनों संज्ञाश्रों में कार्य होना सम्भव हो, वहां कृत्रिम संज्ञा में कार्य होना निश्चित रहे, श्रकृत्रिम में नहीं। इस से व्याकरण में भी धातु आदि कृत्रिम संज्ञाओं से कार्य लेने चाहियें, सुवर्ण आदि धातुसंज्ञक से नहीं ॥ ८ ॥

श्रव इस कृत्रिम परिभाषा के होने से दोष श्राते हैं कि जहां कृत्रिमसंज्ञा के लेंने से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, जैसे (कर्चिर कर्मव्यतिहारे) इस सूत्र में जो कृत्रिम कर्मसंज्ञा का ग्रहण होने तो 'देवदत्तस्य धान्यं व्यतिलुनन्ति' यहां कर्चा को ईप्सिततम धान्य कर्म के होने से श्रात्मनेपद होना चाहिये, वह यहां इष्ट नहीं है। इसिलिये यह परिभाषा है—

7

#### ६-उभयगतिरिह भवति ॥ अ० १ । १ । २३ ॥

इस व्याकरण शास्त्र में दोनों प्रकार का वोध होता है, अर्थात् कहीं कृत्रिम और कहीं श्रक्तिम का भी प्रहण होता है।

जैसे—(कर्मणि द्वितीया) यहां कृत्रिम कर्मसंज्ञा और (कर्चिर कर्मव्यतिहारे) 'कृषी-वला व्यतिलुनते' यहां श्रकृत्रिम क्रियारूप कर्म का ग्रह्ण है। इसलिये 'देवदत्तस्य धान्यं व्यतिलुनन्ति' यहां श्रकृत्रिम कर्म के होने से श्रात्मनेपद नहीं होता।

तथा (कर्नु करण्योस्तृतीया) 'देवदत्तेन स्रामो गम्यते; रथेन गच्छिति' यहां कृत्रिम करण्संज्ञा, स्रोर (शब्दवैरकलद्दास्रकण्यमेघेम्य: करण्क) 'शब्दं करोति शब्दायते' यहां स्रकृत्रिम करण्संज्ञा लीजाती है। इत्यादि स्रनेक प्रयोजन हैं॥ १॥

'ऋव्येता; शयिता' इत्यादि प्रयोगों में 'इङ्' और 'शीङ्' धातु को गुणनिषेश्व होना चाहिये। क्योंकि अनुबन्धों के एकान्तपत्त में दोनों धातु 'ङित्' हैं। और अनेका-न्तपत्त में अनुबन्ध पृथक् भी हैं, इस में गुणनिषेध कार्य और इगन्त कार्यी है—

# १०-कार्यमनुभवन् हि कार्यी निमित्तत्वेन नाश्रीयते ॥

कार्य करते हुए कार्यों का निमित्तपन से आश्रय नहीं किया जाता है। अर्थात् जिसके आश्रय से कार्य होता हो, वही उसका निमित्त कार्यी नहीं होता है।

जैसे—गुणनिषेध का निमित्त 'ङित्' इगन्त नहीं कि जो वह 'ङित्' इगन्त गुण-निषेध का निमित्त इगन्त कार्यी होता तो अवश्य गुण का निषेध हो जाता। (स्थिपड-लाच्छ्वियतिरे०) इस सूत्र में 'शीङ्' धातु को गुणपठनज्ञापक से यह परिमाषा निकली है। तथा सन्नन्त यङन्त को कहा द्वित्व 'ऊर्णु' धातु के नुभाग को होजाता है। क्यों कि 'सन्' का निमित्त ऊर्णु धातु है—ऊर्णुनविषति; ऊर्णु नुविषति इत्यादि॥ १०॥

'प्रिणिदापयितः; प्रिणिधापयिति' इत्यादि प्रयोगों में 'दाः धा' रूप को कही हुई घुसंझा पुगन्त 'दापः धाप्' को न प्राप्त होने से घुसंझक धातुत्रों के परे 'प्र' उपसर्ग से उत्तर 'नि' के नकार को खत्व न होना चाहिए, इसिकिये यह परिभाषा की गई है—

# ११-अर्थवत आगमस्तद्गुणीभृतोऽर्थवद्ग्रहणेन एहाते \*।। अ०१।१।२०॥

जो अर्थवान् प्रकृति आदि को टित् कित् और मित् आगम होते हैं, वे उन्हीं प्रकृति आदि के खक्षप्रतृत होने से उन्हीं के प्रहृण से प्रहृण किये जाते हैं। अर्थात् वे पुक् आदि आगम प्रकृति आदि से पृथक् खतन्त्र नहीं समके जाते।

इस से 'प्रियादापयित' आदि में पुगन्त की भी घु संज्ञा के होजाने से 'यात्व' आदि कार्य होजाते हैं।

तथा 'सर्वेषाम्' इत्यादि प्रयोगों में भी 'सुडादि' श्रागमों के तद् गुणीभूत होने से 'साम्' को कलादि सुप् मानकर एकारादेश हो ही जाता है। इसी प्रकार लोक में भी किसी प्राणी का कोई श्रङ्ग अधिक होजावे, तो वह उसी के प्रहण् से प्रहण् किया जाता है॥११॥

श्रव (पाद: पत्) इस सूत्र से जो 'पाद' शब्द को 'पत्' श्रादेश कहा है, यहां तद्न्तविधि परिभाषा के श्राश्रय से 'द्विपात्; त्रिपात्' शब्दों को भी भसंद्वा में 'पत्' श्रादेश होता है। उस 'पत्' श्रादेश के श्रनेकाल् होने से 'द्विपात्; त्रिपात्' संपूर्ण के स्थान में प्राप्त है। सो जो संपूर्ण के स्थान में होवे तो 'द्विपद: पश्य; त्रिपद: पश्य' इत्यादि प्रयोग न बन सकें। इसलिये यह परिभाषा कही है—

#### १२-निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति ॥ अ०६ । ४ । १३० ॥

षष्ठी विभक्ति से दिखाये हुए स्थानी के स्थान में प्राप्त जो प्रथमानिर्दिष्ट आदेश, वह निर्दिश्यमान, अर्थात् सूत्रकार वा वार्त्तिककार ने जितने स्थानी का निर्देश किया हो, उसी के स्थान में हो। अर्थात् तद्दन्तविधि से जो पूर्वपद वा अन्य उसके सहश कोई आजावे, तो उस सब के स्थान में न हो।

इस से 'द्विपात्' शब्द में पादमात्र को 'पत्' श्रादेश हो जाता है, 'द्वि; त्रि' श्रादि बच जाते हैं। इसी से 'द्विपद; पश्य' इत्यादि प्रयोग बन जाते हैं॥ १२॥

श्रव 'चेता; स्तोता' इन प्रयोगों में (स्थाने अन्तरतमः) इस सूत्र से प्रमाणकृत श्रान्तर्य मानें, तो हस इकार उकार के स्थान में श्रकार गुण प्राप्त है। इससे श्रभीष्ट प्रयोगों की सिद्धि नहीं होती। इसलिये यह परिभाषा की है—

\* जो नागेश श्रीर महोतिदीजित श्रादि नवीन जोग इस परिमापा को ( यदागमास्तद्गुयी-सूतास्तद्ग्रहयोन गृह्यन्ते ) इस प्रकार की जिखते मानते श्रीर ज्याख्यान भी करते हैं, सो यह पा॰ महाभाष्य से विरुद्ध है। महाभाष्य में यह परिमापा ऐसी कहीं नहीं जिखी। इसजिये इन जोगीं का प्रमाद है॥

7

# १३-यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत एवान्तर्यं बळीयः ॥ अ०१ । १ । ५० ॥

जहां अनेक प्रकार का, अर्थात् स्थानकृत, अर्थकृत, गुणकृत और प्रमाणकृत, यह चार प्रकार का आन्तर्य प्राप्त हो, वहां जो स्थान से आन्तर्य हैं, वही बत्तवान् होता है।

इससे प्रमाणुकृत आन्तर्य के हट जाने से स्थानकृत आन्तर्य के आश्रय से एकार श्रोकार गुण होकर 'चेता; स्तोता' प्रयोग बन जाते हैं।

स्थानकृत मादि के विशेष उदाहरण सनिधविषय में लिख चुके हैं ॥ १३॥

(संख्याया अतिशदन्तायाः कन्) यहां 'ति' और 'शत्' जिस के अन्त में हों, उस से 'कन्' प्रत्यय का निषेध किया है। सो 'कितिभिः क्रीतम्=कितकम्' यहां भी त्यन्त से निषेध होना चाहिये, और कन् प्रत्यय तो इष्ट ही है। इसिलिये यह परिभाषा है—

# १४-अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ॥ अ० ५ । १ । २२ ॥

अर्थवान् के प्रहण होने में अनर्थक शब्दों का प्रहण नहीं होता।

इससे अर्थवान् 'ति' शब्द के प्रहण में निरर्थक डितप्रत्ययान्त के 'ति' का प्रहण नहीं होता। इस से 'कितकम्' यहां कन् का निषेध नहीं हुआ।

इसी प्रकार प्र शब्द से ऊढ के परे वृद्धि कही है, सो 'प्र+ऊढवान्=प्रोढवान्' यहां 'ऊढ' शब्द निरर्थक है। इसितये वृद्धि नहीं होती। इत्यादि श्रनेक प्रयोजन हैं॥ १४॥

श्रव श्रर्थवद्ग्रहण परिभाषा के होने से भी 'श्रमहान् महान् संपन्नो=महद्भृत-श्रन्द्रमाः' इस प्रयोग में 'महत्' शब्द को श्राकारादेश होना चाहिये। श्रोर श्रात्व के होने से श्रनिष्टसिद्धि प्राप्त है। इसलिये यह परिभाषा है—

# १५-गीणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः ॥ अ०६।३।४६॥

जो गुणों से प्राप्त होने वह 'गोण', श्रोर जो गुणी से प्राप्त होने वह 'मुख्य' कहाता है। उस गोण से प्राप्त श्रोर मुख्य दोनों में एककाल में एककार्य प्राप्त हो, तो मुख्य में कार्य होने, श्रोर गोण में नहीं।

इससे 'महद्भूतश्चन्द्रमाः' यहां श्राकारादेश नहीं होता। क्योंकि यहां 'महत्' शब्द अभूततद्भाव श्रर्थ में मुख्य श्रोर चन्द्रमा के साथ समानाधिकरण में गौण विशेषण है।

इसी प्रकार 'अगी: गी: संपद्यत=गोभवत्' यहां चिवप्रत्ययान्त 'गो' शब्द निपात-संइक है, परन्तु मुख्य त्रोकारान्त निपात नहीं। इसक्षिये (त्रोत्) सूत्र से प्रगृह्यसंद्वा नहीं होती। इत्यादि स्रनेक प्रयोजन हैं॥ १४॥ अर्थवान् के प्रहण् में अनर्थक का प्रहण् नहीं होता, यह कह चुके हैं। सो 'राह्मा' यहां राजन् शब्द में 'किनन्' प्रत्यय का 'अन्' अर्थवान् है, इसिलये अन्नन्त के अकार का लोप होना ठीक है। ओर 'साम्ना' यहां सामन् शब्द में 'मिनन्' प्रत्यय का 'मन्' अर्थवान् और अन् अनर्थक है। इस समाधान के लिये यह परिभाषा है—

# १६-अनिनस्मन् यहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति॥ अ० १ । १ । ७२ ॥

अन्, इन्, अस्, मन् ये जिन सूत्रों में ग्रहण हैं, वहां अर्थवान् और अनथेक दोनों से तदन्तविधि होता है।

अन्—मं तो अर्थवान् और अनर्थक दोनों के उदाहर ए दे दिये। इन्—'द्राडी' यहां इनि प्रत्यय के अर्थवान् इन्नन्त को दीर्घ; और 'वाग्मी' यहां अर्थवान् 'असुन्' प्रत्यय के 'अस्' को दीर्घ; और 'पीतवाः' यहां पीत पूर्वक 'वस्' धातु से किए हुआ है, सो वस् मं अनर्थक 'अस्' को दीर्घ होता है। मन्—'सुष्ठु शर्म्म यस्याः सा सुश्मां यहां तो अर्थवान् मन्नन्त से ङीप् का निषेध है, और 'सुप्रथिमा' यहां 'इमनिच्' प्रत्यय का 'इमन्' अर्थवान् और मन् भाग निर्थक को भी ङीप का निषेध होता ही है। १६॥

ग्रीर ग्रागे एक परिभाषा लिखेंगे कि समीपस्थ का विधान वा निषेध होता है। इस में यह दोष ग्राता है कि जैसे (लिङ्सिचावात्मनेपदेषु) इस स्त्र की अनुवृत्ति (उश्च) इस में ग्राती है। सो जो समीपस्थ के विधि निषेध का नियम है, तो ग्रात्मनेपद की अनुवृत्ति ग्रानी चाहिये, क्योंकि ग्रात्मनेपद की ग्रपेत्ता में 'लिङ्, सिच्' दूर हैं, ग्रीर 'लिङ्, सिच्' की ग्रनुवृत्ति के विना कार्यसिद्धि नहीं हो सकती। इसलिये यह वह्यमाण परिभाषा है—

### १७-एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः ॥

जो एक सुत्र में निर्देश किये पद हैं, उन की अन्य स्त्रों में एक साथ प्रवृत्ति श्रोर एक साथ निवृत्ति हो जाती है।

इस से (उश्च) सूत्र में 'लिङ्; सिच्' की भी श्रनुवृत्ति श्रा जाती है। इसी प्रकार श्रन्यत्र यहुत स्थलों के सूत्र वार्त्तिकों में यह रीति दीख पड़ती है, कि जैसे कहीं दो पदों की श्रनुवृत्ति श्राती है, उन में से जय एक को छोड़ना होता है तब दितीय पद को फिर के पढ़ते हैं। तो यही प्रयोजन है कि उन दोनों पदों की श्रनुवृत्ति एक साथ ही चलती है। उस में से एक को छोड़ के दूसरे पद की श्रनुवृत्ति नहीं जा सकती ॥ १७॥

श्रव इस पूर्व परिभाषा के होने में यह दोष है कि (श्रलुगुत्तरपदे) इस सब सूत्र का अधिकार चलता है। उस में 'श्रलुक्' श्रधिकार तो 'श्रानङ्' विधान से पूर्व २ ही रहता है, फिर उत्तरपदाधिकार पादपर्य्यन्त क्यों जावे ? इसलिये यह परिभाषा है—

# १८-एकयोगनिर्दिष्टानामप्येकदेशानुवृत्तिर्भवति ॥ अ०४।१।२७॥

एक सूत्र में पृथक् पठित पदों में से भी कहीं एकदेश की अनुवृत्ति होती है।

इस से उत्तरपदाधिकार का पादपर्यन्त जाना सिद्ध हो गया। तथा (दामहाय-नान्ताच ) यहां पूर्व सूत्र से 'संख्या' की अनुवृत्ति आती है, और 'अव्यय' की नहीं।

ग्रोर (पत्तात्तिः) इस सूत्र में पूर्व सूत्र से 'मूल' शब्द की अतुवृत्ति आ आती है, 'पाक' की नहीं आती, इत्यादि ॥ १८॥

(श्रणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः) यहां प्रत्ययग्रहण् से सवर्ण का निषेध किया है। इस का यही प्रयोजन है कि (सनाशंसिमच डः) इत्यादि में 'उ' आदि प्रत्यय अपने सवर्णी दीर्घ श्रादि के ग्राहक न हों। सो जब स्त्रीप्रत्यय को छोड़ के श्रन्य दीर्घ प्रत्यय से किसी श्रर्थ की प्रतीति ही नहीं होती, तो दीर्घ प्रत्यय नहीं हो सकता। इसिलये प्रत्यय प्रहण् के व्यर्थ होने से यह झापक होता है कि इस सूत्र में यौगिक प्रत्यय का निषेध है। 'प्रतीयते विश्वीयते भाव्यतेऽनेनाऽसौ प्रत्ययः, प्रत्ययोऽप्रत्ययः' इसी व्याख्यान से यह परिभाषा निकली है—

#### १६-भाव्यमानेन सवर्णानां प्रहर्णम् ॥ अ० १ । १ । ६६ ॥

जो विधान किया जाता है, उस से सवर्णी का ग्रह्ण नहीं होता।

जैसे—( त्यदादीनामः ) यहां श्रकार का विधान किया है, उससे दीर्घ सवर्णी का प्रहण नहीं होता।

श्रीर (ज्यादादीयसः) यहां 'ईयसुन्' प्रत्यय के ईकार को श्राकारादेश न कहते किन्तु श्रकार कहते, तो सवर्णश्रहण से दीर्घ हो ही जाता, फिर निश्चित हुश्रा कि यहां भी पूर्ववत् भान्यमान श्रकार सवर्णश्रही नहीं हो सकता, इसिलये दीर्घ कहा, इस्यादि ॥ १६॥

यदि भाव्यमान से सवर्णी का प्रहण नहीं होता तो (दिव उत्; ऋत उत्) इन स्त्रों में भाव्यमान उकार को तपर करना व्यर्थ है। क्योंकि तपर करने का यही प्रयोजन है कि इकार तत्काल का प्राहक हो, अपने सवर्णी का प्रहण न करे। फिर (अखदित्०) परिभाषा से सवर्णप्रहण तो प्राप्त ही नहीं, उकार तपर क्यों पढ़ा? इसिंबिये यह परिभाषा है—

### २०-भवत्युकारेण भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणम् ॥ अ०६ । १ । १८५ ॥

भाव्यमान उकार से सवर्गी का प्रह्या होता है।

इस से पूर्वोक्त उकार में तपर सार्थक हुआ। और अन्यत्र फल यह है कि (अद्सोऽसेर्दादुदोम:) यहां भाव्यमान हस्य उकार सवर्णी का ब्राही होता है। तभी 'अमूस्याम्' आदि में दीर्घ ऊकारादेश हुआ।। २०॥

'गवे हितं≕गोहितम्' यहां समास में चतुथ्येंकवचन प्रत्यय का लुक् किये पीछे (प्रत्ययतोपे०) सूत्र से प्रत्ययतत्त्वण कार्य मानें, तो 'गो' शब्द के स्रोकार को अवादेश प्राप्त हैं। इसत्तिये यह परिभाषा हैं—

#### २१-वर्णाध्यये नास्ति प्रत्ययस्थणम् ॥

20

वर्ण के आश्रय से जो कार्य कर्त्तव्य हो, तो प्रत्ययत्तत्त्त्ण न हो। अर्थात् उस प्रत्यय को मान के वह कार्य न होवे।

इसिलिये अञ् को मान के अवादेश नहीं होता, इत्यादि ॥ २१ ॥

( श्रत: क्रकमिकंस॰) इस सूत्र में 'कंस' श्रव्द का पाठ व्यर्थ है, क्योंकि उणादि में ( कमे: स: ) इस सूत्र से 'कम्' धातु का कंस शब्द बना है। कम् धातु के सामान्य प्रयगों के ग्रहण में 'कंस' शब्द का भी ग्रहण हो जाता, किर कंस शब्द क्यों पढ़ा। इसिंखिये यह परिभाषा है—

#### २२-उणाद्योऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि ॥ अ०१ । १ । ६१ ॥

उणादि प्रातिपदिक अञ्युत्पन्न. अर्थात् उन का सर्वत्र प्रकृति, प्रस्यय, कारक आदि से योगिक यथार्थ अर्थ नहीं लगता। अर्थात् उणादि शब्द बहुधा कहि होते हैं।

इसिबिये ( अतः कृकमिकंस॰ ) सूत्र में 'कंस' ग्रहण सार्थक है।

इसी प्रकार (प्रत्ययस्य लुक्०) इस सूत्र से 'परश्रव्य' शब्द का लुक् कहा हुआ उकार प्रत्यय होने से भी अव्युत्पन्नपत्त मान के 'परश्रु' शब्द के उकार का लुक् नहीं होता। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ २२॥

'देवदत्तश्चिकीर्षति' इत्यादि प्रयोगों में देवदत्त आदि शब्दों को सम्नन्त के आतु-संज्ञा आदि कार्य्य प्राप्त हैं, सो क्यों नहीं होते ? जो देवदत्त के सहित सब वाक्य की धातुसंज्ञा हो जावे, तो (सुपो धातु०) इस सूत्र से जो देवदत्त के आगे विभक्ति है, उस का लुक् प्राप्त होवे। इसलिये यह परिभाषा है—

# २३-प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स प्रत्ययो विहितस्तद् देस्तद् न्तस्य च ग्रहणं भवति ॥ अ० १ । ४ । १३ ॥

जिससे जो प्रत्यय विधान किया हो,वह जिसके आदि वा अंत में हो,उसीका प्रहण हो। और जो उस वाक्य में प्रत्ययथिधि से पद पृथक् हो, उसका सामान्य कार्यों में प्रहण न हो।

इससे सन्नन्त की धातु संज्ञा में देवदत्त का ग्रह्ण न हु ग्रा,तो विभक्ति का लुक् भी बचगया।

इसी प्रकार 'देवद्त्तो गार्थः' यहां समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा हो, तो मध्य विभक्ति का लुक् हो जावे।

तथा 'ऋदस्य राज्ञः पुरुषः' इस समुद्राय की समाससंज्ञा हो, तो मध्य विभक्तियों

का लुक् प्राप्त होवे। इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं॥ २३॥

(येन विधिस्तद्न्तस्य) इस परिभाषा सूत्र से 'द्दवत्तीर्गां, परिषत्तीर्गां' इत्यादि प्रयोगों में (रदाभ्यां निष्ठातो न: पूर्वस्य च द:) इस सूत्र से 'द्दवद्' 'परिषद्' दकारान्त शब्दों से परे धातु के तकार को अनिष्ठ नकारादेश प्राप्त है। इसक्रिये यह परिभाषा है—

#### २४-प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्याः ॥ अ० १ । १ । ७२ ॥

जिन सूत्रों में प्रत्ययग्रहण से कार्य होते हैं, वहां पञ्चम्यन्त से परे वह कार्य न हो। अर्थात् पंचम्यन्त से परे प्रत्ययग्रहण में तदन्तविधि न होवे।

इससे परिषत्तीर्णा आदि में धातु के तकार को नकार आदेश नहीं होता, इत्यादि।। २४।।

'कुमारीगौरितरा' इत्यादि प्रयोगों में तद्दन्तविधि मानें, तो 'कुमारी' शब्द को भी हूख प्राप्त है । इसलिये यह परिभाषा है—

#### २५-उत्तरपदाधिकारे प्रत्ययंग्रहणे रूपग्रहणं द्रष्टव्यम् ॥ अ०६।३।५०॥

(श्रतुगुत्तरपरे) जो षष्टाऽध्याय के तृतीय पाद में प्रत्ययनिमित्त कार्य है, वहां सक्ष्म का प्रहण होना चाहिये, अर्थात् तदन्तविधि न हो।

इस से 'कुमारीगौरितरा' यहां 'कुमारी' शब्द को हस्व नहीं होता।

श्रीर 'रूप' श्रहण से यह भी प्रयोजन है कि (हृदयस्य हृल्लेखयद्ण्लासेषु ) जो इस सूत्र में २३ वीं परिमाण के श्रनुकूल 'यत्' श्रीर 'श्रण्' प्रत्यय जिस से विहित हों, उस उत्तरपद के परे पूर्व को कार्य होजावे, सो इष्ट नहीं है। क्योंकि जो तदन्तविधि हो तो केवल हृद्य शब्द से 'हृद्यम्; हार्दम्' प्रयोग नहीं बनें। इस में 'लेख' श्रहण श्रापक है कि श्रण्नत उत्तरपद का श्रहण हो, तो लेख शब्द 'श्रण्' प्रत्ययान्त पृथक् श्रहण व्यर्थ है। इस से यह निश्चित हुआ कि इस उत्तरपद्। धिकार के प्रत्ययाश्रितकार्यविधायक सूत्रों में तदन्तविधि नहीं होती।। २४॥

(प्रत्ययप्रहणें ) इस २३ वीं परिभाषा से (ष्यङ: संप्रसारणां पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे )
यहां तत्पुरुष में 'पुत्र' श्रोर 'पित' उत्तरपदों के परे 'ष्यङ्' को संप्रसारण कहा है, तो
'ष्यङ्' का जो श्रादि वा ष्यङन्त को कार्य होगा। इससे 'कारीषगन्ध्यायाः पुत्रः≔कारीषगन्धीपुत्रः; कारीषगन्धीपितः; वाराहीपुत्रः; वाराहीपितः' इत्यादि प्रयोग तो सिख हो
जावेंगे, परन्तु 'प्रमकारीषगन्धीपुत्रः, प्रमकारीषगन्धीपितः' इत्यादि प्रयोग नहीं सिख
होंगे। क्योंकि जिस 'कारीषगन्धि' शब्द से ष्यङ् प्रत्यय विहित है, तो वही जिस के
श्रादि में हो ऐसे ष्यङ् का ग्रहण हो सकता है, श्रीर प्रम के सहित ग्रहण नहीं हो
सकता। इसिलये यह परिभाषा है—

### २६-अस्त्रीप्रत्ययेनानुपसर्जनेन ॥ अ०६।१।१३॥

90

तदादिग्रहण परिभाषा स्त्रीप्रत्यय श्रीर उपसर्जन को छोड़ के प्रवृत्त होवे ।

इस से सामान्य स्त्रीप्रत्यय 'परमकारीषगन्धीपुत्रः' इत्यादि में तदादि ग्रहण के दोष से संप्रसारण का निषेध नहीं होता।

स्रोर 'कारीवगन्ध्यमितकान्तोऽतिकारीवगन्ध्य:, स्रतिकारीवगन्ध्यस्य पुत्र: स्रतिकारीवगन्ध्यपुत्रः' यहां व्यङ्गत स्त्रीप्रत्यय उपसर्जन, स्रर्थात् स्वार्थं में स्रप्रधान है। इसिलिये संप्रसारण नहीं होता, इत्यादि ॥ २६ ॥

(सुप्तिङन्तं पदम्) इस सूत्र में 'अन्त' प्रहण व्यर्थ है, क्योंकि जो (सुप्तिङ् पदम्) ऐसा सूत्र करते तो तदन्तविधि परिभाषा से अन्त की उपलब्धि से सुवन्त, तिङन्त की पदसंज्ञा हो ही जाती, फिर अन्तप्रहण व्यर्थ होकर इस परिभाषा का ज्ञापक है—

२७-संज्ञाविधे। प्रत्ययग्रहणे तद्दन्तविधिर्न भवति ॥ अ०१।४।१४॥

प्रत्ययों की संज्ञा करने में तदन्तविधि नहीं होती।

इस से अन्तग्रहण सार्थंक होना तो खार्थं में चिरतार्थं है, और अन्यन फल यह है कि (तरप्तमपो घः) यहां 'तरप्। तमपं' प्रत्ययान्त की 'घ' संज्ञा नहीं होती। जो तरप् प्रत्यथान्त की 'घ' संज्ञा हो जावे तो 'कुमारीगौरितरा' यहां घसंज्ञक के परे 'कुमारी' शब्द को हुस्र हो जावे। सो इस परिभाषा से नहीं होता।

श्रीर (कृतिद्वतसमासाश्च) यहां कृतिद्वित प्रत्ययों में श्रन्तप्रहण नहीं किया, श्रीर प्रातिपदिकसंज्ञा के होने से तद्दन्ति धि भी नहीं हो सकती, इसिलये कृत्तद्वित में श्रर्थवान् की श्रमुवृत्ति करने से कृदन्त श्रीर तद्वितान्त ही श्रर्थवान् होते हैं, केवल कृत्, तद्वित नहीं। क्योंकि (न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या न च केवलप्रस्ययः) इस महाभाष्य के प्रमाण से प्रत्ययान्त ही श्रर्थवान् होता है। श्रीर 'बहुच्' प्रत्यय प्रातिपिद्क से नहीं होता, किन्तु सुबन्त से पूर्व बहुच् कहा है। बहुच् प्रत्यय के सिहत जो समुदाय है, वहां प्रातिपिद्कसंद्वा होने की कुछ श्राव-श्यकता नहीं हैं। जैसे 'बहुपटवः' यहां बहुच् के होने से पिहले ही श्रथवा 'पट्ठ' शब्द की प्रातिपिद्कसंद्वा तो सिद्ध ही है। फिर 'बहुच्' प्रत्यय की विवत्ता में जिस विभक्ति श्रीर वचन का प्रयोग करना हो उस को रख के 'बहुच्' प्रत्यय लाना चाहिये। जैसे— 'पट्ठ,+जस्' इस सुबन्त के पूर्व 'बहुच्' श्राकर 'बहुपटवः' प्रयोग सिद्ध हो गया। इसी प्रकार श्रन्य प्रयोगों में जान लेना चाहिये।

1

ग्रीर 'सर्वकः' 'विश्वकः' इत्यादि में जो 'ग्रकच्' प्रत्यय मध्य में होता है, उस के श्राग परिभाषा लिखी है कि—(तदेकदेशभूतस्तद्ग्रहणेन गृह्यते) 'सर्व' प्रातिपदिक के एक देश के मध्य में श्राया 'श्रकच्' उसी प्रातिपदिक के ग्रहणसे ग्रहण किया जाता है ॥२७॥

२३ वीं परिभाषा के होने में ये भी दोष हैं कि 'ग्रवतप्ते नकुलस्थितं त एतत्' यहां क्त प्रत्ययान्तस्थित शब्द के साथ सप्तम्यन्त का समास कहा है, सो गतिसंज्ञक 'श्रव' शब्द के सहित सप्तम्यन्त श्रोर कर्त्तृ कारकवाची 'नकुल' शब्द के सहित कान्त कृदग्त स्थित शब्द है। इस कारण समास नहीं प्राप्त है। इसिलये यह परिभाषा है—

#### २८-कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणं भवति ॥ अ०१।४।१३॥

जहां कृत्प्रत्यय के प्रहण से कार्य हो, वहां उस कृदन्त के पूर्व गतिसंज्ञक श्रीर कारक हो तो भी वह कार्य हो जावे ।

इस से गतिसंद्यक 'अव' और कारक 'नकुल' के होने से भी समास हो जाता है। तथा 'सांकृटिनम्' यहां 'इनुण्' कृत्पत्ययान्त से 'अण्' तिद्धत होता है। सो जो 'कृटिन्' शब्द से करें, तो उसी के आदि को वृद्धि होते। इस परिभाषा से गतिसंद्यक 'सम्' के सिहत के 'अण्' के होने से सम् के सकार को वृद्धि होती है। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं।

(गतिरनन्तरः) इस सूत्र में 'अनन्तर' ब्रह्ण इस परिभाषा के होने में झापक है ॥ २०॥

(येन विधिस्तद्न्तस्य) इस परिभाषासूत्र में सामान्य करके तद्न्तविधि कही है। विशेष विषय में उसदा अपवाद्रूप वच्यमाण परिभाषा है—

### २९-पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य च ॥ अ० १। १ । ७२ ॥

उत्तरपदाधिकार, अर्थात् षष्ठाध्याय के तृतीयपाद, में श्रीर श्रङ्गाधिकार में जिस को कार्य्यविधान हो, वा जिस के आश्रय हो उस का, श्रीर वह जिस के श्रन्त में हो, उन दोनों का प्रहण् होता है। जैसे—(इष्टकेशिकामालानां चितत्लमारिषु) इससूत्र में 'इष्टकचितं चिन्नीत' यहां उसी 'इष्टका' शब्द को इस स्त्रीर 'पक्षेष्टकचितं चिन्नीत' यहां तदन्त को भी इसां होता है। 'इषीकत्लेन; सुञ्जेशेकत्लेन; मालभारिषी कन्या; उत्पलमालभारिषी कन्या' यहां भी 'इषीका' श्रीर 'माला' शब्द को दोनों प्रकार इस्व हुआ है।

अङ्गाधिकार में (सान्तमहत: संयोगस्य) 'महान्' यहां उसी महत् शब्द की उपधा को दीर्घ और 'परममहान्' यहां तदन्त को भी होता है। इत्यादि अनेक उदाहरण महा-आष्य में लिखे हैं।। २६॥

(एकाचो द्वे प्रथमस्य) यहां अनेकाच् धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होता है, जैसे 'जजागार' यहां 'जा' भाग को द्वित्व हुआ है। जो केवल एकाच् धातु है, उस में प्रथम एकाच् अवयव कहा है, जिस को द्वित्व हो, जैसे—पपाच, इयाज इत्यादि। तथा 'एकाच्' शब्द में भी वहुवीहि समास है कि एक अच् जिस में हो, अर्थात् अन्य एक वा अधिक हल् हों, वह 'एकाच्' अवयव कहाता है। सो जहां केवल एक ही अच् धातु है, जैसे—इयाय; आर, यहां 'इ; ऋ' धातुओं को द्वित्व कैसे हो सके ? इसलिये यह परिभाषा है—

#### ३०-- व्यपदेशिवदेकस्मिन् ॥ अ० १ । १ । २१ ॥

सत् निमित्त के होने से मुख्य जिसका व्यपदेश=व्यवहार हो, वह व्यपदेशी कहाता है; और एक वह है जिस के व्यवहार का कोई सहायी कारण न हो। उस एक में व्यपदेशी के तुल्य कार्य होता है।

इस से एकाच् धातु 'पपाच' छ।दिमें द्वित्व और केवल एकही अच्धातु 'इयाय; आर' आदि में भी द्विवचन हो जाता है। क्योंकि एकाच् और एकही अच्धातु की अपेचा में अनेकाच् व्यपदेशी है। तद्वत्कार्य मानने से सर्वत्र द्वित्व हो जाता है।

(श्रादेशप्रत्यययोः) इस सूत्र में प्रत्यय के श्रवयव शकार को मूर्जन्य कहा है, सो 'करिष्यति' श्रादि में तो हो ही जाता है। श्रोर 'स देवान् यत्तत्' यहां 'यत्तत्' किया में केवल सिप् विवरण का सकारमात्र प्रत्यय है, उस को व्यपदेशिवद्भाव मान के मूर्जन्य होता है। इत्यादि श्रानेक प्रयोजन हैं।

लोक में भी यह व्यवहार होता है कि किसी के बहुत पुत्र हैं, वहां तो ज्येष्ठ, मध्यम और किनष्ठ का व्यवहार बनता है, और जिसका एकही पुत्र है, तो वहां उसी में ज्येष्ठ, मध्यम और किनष्ठ व्यवहार होता है ॥ ३० ॥

ति मं जैसे—'नड़ादि; गर्गादि श्रोर शिवादि' इत्यादि प्रातिपदिकों से अपत्य श्रादि श्रथों में 'श्रण्' श्राद् प्रत्यय कहे हैं, सो 'उत्तमनड़; परमगर्ग श्रोर महाशिव' श्रादि प्राति-पदिकों से तदन्तविधि में क्यों नहीं होते ? इसिवये यह परिभाषा है—

# ३१-महण्यवता प्रातिपदिकेन तद्नतिविधः प्रतिविध्यते ॥ अ०५।२।८७॥

प्रत्यय का प्रहण करने वाले प्रातिपदिक से तदन्तविधि नहीं होता। इसलिये 'उत्तमनड' और 'परमगर्ग' आदि प्रातिपदिकों से 'फक्' और 'यज्' आदि प्रत्यय नहीं होते।

त्रीर इस परिभाषा के निकलने का ज्ञांपक (पूर्वादिनिः; सपूर्वाञ्च) ये दोनों सूत्र हैं। क्योंकि जो 'पूर्व' शब्द से विधान किया 'इनि' प्रत्यय तद्न्त से भी हो जाता, तो द्वितीय सूत्र व्यर्थ होजाता।फिर व्यर्थ होकर यह ज्ञापक होता है कि यहां तद्न्तविधि नहीं होता॥३१॥

'सूत्रान्त' प्रातिपदिकों से 'ठक्' श्रीर 'दशान्त' श्रादि प्रातिपदिकों से 'ड' श्रादि प्रत्यय कहे हैं। सो (३०) वीं परिभाषा से व्यपदेशिवद्भाव मान कर केवल 'सूत्र' श्रीर 'दश' श्रादि से 'ठक्' तथा 'ड' श्रादि प्रत्यय क्यों नहीं हो जाते ? इसिलये यह परिभाषा है—

# ३२-व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेन ॥ अ० १ । १ । ७२ ॥

1

व्यपरेशिवद्भाव की प्रवृत्ति प्रातिपदिकाधिकार को छोड़ के होती है।

इसिलये केवल 'सूत्र' म्रादि शब्दों से 'ठ्क्' म्रादि प्रत्यय नहीं होते। म्रोर इस परिभाषा का ज्ञापक भी (पूर्वादिनिः, सपूर्वाच) ये दोनों सूत्र हैं। क्योंकि जो यहां व्यप-देशिवद्भाव होता तो (पूर्वान्तादिनिः) ऐसा एक सूत्र कर देते, तो सबकाम सिद्ध हो जाता। किर पृथक् २ दो सूत्र करने से झात हुम्रा कि यहां व्यपदेशिवद्भाव नहीं होता॥ ३२॥

( श्रचिश्तुधातु॰) यहां 'थ्रियो; भ्रुवो' उदाहरणों में तो केवल 'श्रच्' के परे 'इयङ्; उवङ्' होजाते हैं। श्रोर 'थ्रियः; भ्रुवः' यहां 'इयङ्; उवङ्'न होने चाहियें, क्योंकि यहां केवल श्रच् परे नहीं है। इसलिये यह परिभाषा है—

# ३३-यस्मिन् विधिस्तदादावल्यहणे ॥ अ० १ । १ । ७० ॥

जिस प्रत्याद्दार रूप पर विशेषण के आश्रय से विधि हो, वह जिस के आदि में हो, उस के परे वह कार्य होना चाहिये।

इस से अजादि प्रत्यय के परे 'इयङ्ः उवङ्' होते हैं, तो श्रियः; भ्रुवः' यहां अजादि [जस्] में भी दोष नहीं आता।

तथा [ श्रवश्यवान्यम्; श्रवश्यपान्यम् ] इत्यादि में [ वान्तो यि प्रत्यये ] सूत्र से यकारादि प्रत्यय के परे वान्तादेश हो जाता है।

(इको क्षत्)यद्दां कलादि 'सन्' लिया जाता है। इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ह ३३॥ (तिष्यपुनर्वस्वोर्गस्त्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम्) इस स्त्र में 'बहुवचन' ग्रहण न करते तो भी प्रयोजन सिद्ध हो जाता। क्योंकि एक तिष्य श्रीर दो पुनर्वसु इन तीन के होने से बहुवचन तो प्राप्त ही था, फिर 'द्विवचन' के कहने से उसी बहुवचन की प्राप्ति में द्विवचन हो जाता। इस प्रकार 'वहुवचन' ग्रहण व्यर्थ होकर झापक है कि 'तिष्य; पुनर्वसु' में कहीं एकवचन भी होता है, वहां एकवचन को द्विवचन न हो। इसिलिये यह परिभाषा है—

#### ३४-सर्वो द्वन्द्वो विभाषेकवद्भवति ॥ अ० १ । २ । ६३ ॥

दो वा अधिक किन्हीं शब्दों का इन्द्रसमास हो, वह सब विकल्प करके एक-वचन होता है।

इस से 'तिष्य; पुनर्वसु' के एकवचनपत्त में द्विवचन हो, इसिलये बहुवचनस्थानी का ग्रहण है।

तथा इसी परिभाषा से 'घटपटम्; घटपटो; ईपलोमकूलम्; माथोत्तरपदव्यपतु-दम्' इत्यादि में भी एकवचन सिद्ध हो जाता है। समाहार द्वन्द्व सर्वत्र एक ही वचन होता है।

श्रीर यह परिभाषा इतरेतरद्वन्द्व समास में लगती है। इसी से इसके उदाहरण भी सब इतरेतरद्वन्द्व के दिये हैं॥ ३४॥

(व्यत्ययो वहुलम्) इस से 'स्य' आदि विकरणों का व्यत्यय होना सूत्रार्थ है। तथा (षष्टीयुक्तश्ज्ञन्दिस वा) इस सूत्र से भी षष्टीयुक्त 'पित' शब्द की घिसंज्ञा का वेद में विकल्प है। इन दोनों में भाष्यकार ने विभाग करके यह परिभाषा सिद्ध की है—

#### ३५-वा च्छन्द्सि सर्वे विधयो भवन्ति ॥ अ० १ । ४ । ६ ॥

वेद में सब कार्य विकल्प करके होते हैं।

10.

जैसे—'द्विणायाम्' इस सप्तम्यन्त की प्राप्ति में 'द्विणायाः' ऐसा प्रयोग होता है। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥ ३४॥

किसी विद्यार्थी ने 'अग्नी' ऐसा द्वियचनान्त शब्द उच्चारण किया, जो उसका कोई अनुकरण करे कि 'अग्नि इत्याह' तो यहां अनुकरण में साचात् द्वियचन के न होने से जो प्रगृह्यसंक्षा न होने, तो इकार के साथ संधि होना चाहिये। इसिवये यह परिभाषा है—

### ३६-प्रकृतिवद्नुकरणं भवति ॥ अ० ८ । २ । ४६ ॥

जो अनुकरण किया जाता है, वह प्रकृति के तुल्य होता है।

इस से 'अग्नी' द्वियचनप्रकृति के तुल्य अनुकरण को मान के प्रगृह्यसंज्ञा होने से संधि नहीं होती। श्रोर एकवचन बहुवचन में तो संधि होती है।

'कुमार्थ लृतक इत्याह' यहां 'ऋतक' शब्द के अनुकरण 'लृतक' के परे भी यणादेश होता है।

'द्वि: पचन्तिवत्याह' यहां 'द्वि: पचन्तु' शब्द के ऋतुकरण में भी ऋति्ङ से परे तिङ पद निघात हो जाता है।

( अर्थवद्धातुरप्रत्ययः ) इस सूत्र में धातु का पर्युदास प्रतिषेध मानें, कि धातु से अन्य अर्थवान की प्रातिपदिकसंद्धा हो, इस से 'चि' आदि धातुओं के अनुकरण को प्रकृतिवत् होने से खाश्रय कार्य मानकर प्रातिपदिकसंद्धा हो जाती है। फिर पंचमी विभक्ति के एकवचन में चिधातु को इयङ् आदेश नहीं प्राप्त है। इसिलिये धातु के अनुकरण को प्रकृतिवत् मान के 'इयङ्' आदेश भी हो जाता है। इस से (चियो दीर्घात्ः परोभुवोऽवञ्चाने; नेविशः) इत्यादि सब निर्देश ठीक बनजाते हैं॥ ३६॥

'भवतुः पचतु' इत्यादि की पद्संज्ञा न होनी चाहिये, क्योंकि तिङन्त की पद-संज्ञा कही है। यहां तो तिप् के इकार को उकार हो जाने से तिङ् नहीं रहा। इसिलये यह परिभाषा है—

#### ३७-एकदेशविकृतमनन्यवद्भवति ॥ अ० ४ । १ । ८३ ॥

जिस किसी का एक अवयव विपरीत हो जावे, तो वह अन्य नहीं हो जाता, किन्तु वही बना रहता है।

इससे इकार के स्थान में उकार हो जानेसे भी पदसंद्या हो जाती है।

(प्राग्दीन्यतोऽण्) इस सूत्र से 'दीन्यत्' शब्द पर्यन्त 'श्रण्' प्रत्यय का श्रिकार करते हैं, श्रोर दीन्यत् शब्द कहीं नहीं है, किन्तु 'दीन्यति' शब्द है। इस का एकदेश इकार के जाने से 'दीन्यत्' रह जाता है। इसी झापक से यह परिभाषा निकली है।

लोक में भी किसी कुत्ते का कान वा पूंछ काट लिया जावे, तो उसको घोड़ा वा गधा नहीं कहते, किन्तु कुत्ता ही कहते हैं। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥ ३७॥

'स्योन:' यहां 'सिवुं' धातु से उणादि 'न' प्रत्यय के परे वकार को 'ऊठ् होकर पकार को स्थानिवत् मानने से धातु के इकार को 'लघूपधगुण' श्रोर उसी इकार को 'यणादेश' दोनों प्राप्त हैं। इस में गुण पर श्रोर यणादेश श्रन्तरङ्ग है। श्रव दोनों में से कौनसा कार्य होना चाहिये ? इसलिये यह परिभाषा है—

1

### ३८-पूर्वपरनित्यान्तरङ्गाऽपवादानामुत्तरोत्तरं बळीयः ॥

्र्वं से पर, पर से नित्य, नित्य से अन्तरङ्ग, और अन्तरङ्ग से अपवाद ये सब पूर्व २ से उत्तर २ बत्तवान् होते हैं। यह परिभाषा महाभाष्य के अभिप्रायानुकूल है, अर्थात् इसी प्रकार की कहीं नहीं लिखी। पूर्व से पर बलवान् होना यह विषय (विप्रतिषेधे परं कार्यम्) इसी सूत्र का है। जैसे-'अत्रि' इस शब्द से अपत्याधिकार में ऋषिवाची होने से 'अण्' प्राप्त और "इकारान्तद्व चच्" होने से ढक् प्राप्त है। सो पूर्व 'अण्' को वाध के परविहित 'ढक्' होता है। जैसे--'अत्रेरपत्यम्=आत्रेयः' इत्यादि।

'भू' धातु से लिट् लकार के 'गुल्' प्रत्यय के परे 'भू+म्र' इस श्रवस्था में द्वित्व, यगादेश, उवस्, गुग्, वृद्धि और बुक् श्रागम ये सब प्राप्त हैं। द्विवेचन नित्य होने से पर यगादेश का बाधक है। उवस् अन्तरंग होने से नित्य द्वित्व का भी बाधक है। श्रोर उवस् का अपवाद गुग्, गुग्र का अपवाद वृद्धि, और इन दोनों का अपवाद निरवकाश होने से 'बुक्' हो जाता है।

इसी प्रकार अन्य भी बहुत प्रयोगों में यह परिभाषा लगती है। 'दुद्यूषति' यहां 'सन्' प्रत्यय के परे 'दिव्' धातु के वकार को 'ऊट्' किये पीछे द्विवंचन और यणादेश दोनों प्राप्त हैं, नित्य होने से द्विवंचन होना चाहिये। फिर नित्य द्विवंचन से भी अन्तरक होने से 'यणादेश' प्रथम हो जाता है, इत्यादि ॥ ३८॥

'ईजतु:' यहां यज् धातु से 'श्रतुस्' प्रत्यय के परे द्वित्व को बाध के परत्व से संप्रसारण होता है। फिर द्वित्व होना चाहिये वा नहीं ! इसलिये यह परिभाषा है—

#### ३६-पुनः प्रसङ्गविज्ञानात् सिद्धम् ॥ अ०१ । ४ । २ ॥

परत्व से वा अन्य किसी प्रकार से प्रथम बाधक कार्य हो जावे, फिर जो उत्सर्ग कार्य की प्राप्ति हो तो उत्सर्ग भी हो जावे।

इस से 'यज्' धातु को संप्रसारण किये पीछे भी द्वित्व होजाता है।

इसी प्रकार परत्व से 'हि' के स्थान में 'तातरू' आरेश होने से फिर 'हि' को 'धि' न होना चाहिये। सो भी 'तातरू' के निषेधपत्त में 'हि' को 'धि' होकर 'भिन्धि' आदि प्रयोग वन जाते हैं। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ३६॥

लोक में यह रीति है, कि तुल्य अधिकारी दो खामियों का एक भृत्य होता है, तो वह आगे पीछे दोनों के कार्य किया करता है। परन्तु जो उस भृत्य को दोनों खामी अनेक दिशाओं में एक काल में कार्य करने के लिये आज्ञा दें, तो उस समय जो वह किसी का विरोधी न हुआ चाहे, तो दोनों के कार्य न करे। क्योंकि एक को एककाल में.दो दिशाओं में जाके दो कार्य करना असम्भव है। फिर जिस का पीछे करेगा वही अप्रसन्न होगा।

इसी प्रकार सूत्रों में भी दो में जो बलवान् होगा, वह प्रथम हो जावेगा, श्रीर जो दोनों तुल्यवल वाले होंगे, तो एक दूसरे को हटाने से लोक के तुल्य एक भी कार्य

न होगा। जैसे—स्निलिङ्ग में वर्तमान 'त्रि;चतुर' शब्द को सामान्य विभक्तियों में 'तिस्; चतसृ' श्रादेश कहे हैं, श्रीर 'त्रि' शब्द को 'श्राम्' विभक्ति के परे 'त्रय' श्रादेश भी कहा है, फिर (विप्रतिषेधे परं कार्यम्) इस सूत्र से पर विप्रतिषेध मान के प्रथम 'तिसृ' श्रादेश हो गया। फिर उस को स्थानिवत् मान के 'त्रय' श्रादेश भी होना चाहिये, तो लोकवत् श्रनिष्टमसङ्ग श्राजावे। इसलिये यह परिभाषा है—

#### ४०-सक्टद्गता विप्रतिषेधे यद् बाधितं तद् बाधितमेव ॥ अ०१।४।२॥

एककाल में जब दो कार्यों की प्राप्ति होती है, तव विप्रतिषेध में पर का कार्य होकर फिर दूसरे पूर्व सूत्र का कार्य प्रवृत्त नहीं हो सकता। क्योंकि जो बाधक हुआ सो हुआ।

इस से फिर स्थानिवत् मान के 'त्रय' आरेश नहीं होता। इस कारण [तिस्णाम्] इत्यादि प्रयोग शुद्ध ठीक बन जाते हैं। और जो दूसरा कार्य भी पश्चात् प्राप्त हो, और प्रथम हुआ कार्य कुळु न विगड़े, तो [३६] वी परिभाषा के अनुकूल वह भी कार्य्य हो जावेगा ॥ ४० ॥

श्रव यह विचार भी कर्त्तव्य है कि धातुओं से परे जो लकारों के खान में 'तिप्' श्रादि परस्मैपद श्रोर आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं, वे पहिले हों किंवा विकरण हों? श्रात्मनेपदादि के करने से प्रथम श्रोर पीछे भी विकरणों की प्राप्ति हैं, इस से वे नित्य हैं। श्रोर श्रात्मनेपद परस्मैपद विधायक प्रकरण से परे भी विकरण ही हैं, श्रोर विकरण किये पीछे आत्मनेपद नियम की प्राप्ति नहीं, क्योंकि (श्रवुदात्तिल्डित् ) यह पश्चमीनिर्दिष्ट कार्य व्यवधानरित उत्तर को होना चाहिये। विकरणों के व्यवधान से फिर श्रात्मनेपद नहीं पाता। श्रोर जो श्रात्मनेपद नियम को श्रनवकाश मानें सो भी नहीं। क्योंकि श्रदादि श्रोर जुहोत्यादिगण में जहां विकरण विद्यमान नहीं रहते, वहां श्रोर लिङ्, लिद् लकारों में श्रात्मनेपद, परस्मैपद को श्रवकाश ही है। फिर 'प्रथते, स्पर्दते' श्रादि में श्रात्मनेपद नहीं हो सकता। इसलिये यह परिभाषा है—

#### ४१-विकरणेभ्यो नियमो बलीयान् ॥ अ० १ । ४ । १२ ॥

विकरण विधि से आत्मनेपद परस्मैपद नियमविधान बतावान् है।

क्योंकि जो आत्मनेपद् आदि के होने से पहिले विकरण ही होते हों, तो (आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्; पुषादिद्युताद्य्लुदितः परस्मैपदेषु) इन विकरणविधायक-सूत्रों में आत्मनेपद् के आश्रय से विकरणविधान क्यों किया ? इससे यह ज्ञापक है कि विकरणविधि से पहिले ही आत्मनेपद परस्मैपद नियम कार्य होते हैं। इस से 'एधते; स्पर्दते' आदि में आत्मनेपद सिद्ध हो गया। इत्यादि प्रयोजन इसके हैं ॥ ४१ ॥

'न्यविशत; व्यक्तीणीत' यहाँ 'नि; वि' उपसर्गों से परे 'विश' और 'क्री' धातु से आत्मनेपद होता है। सो विकरण, आत्मनेपद और अट् आगम तीनों कार्य्य एक साथ प्राप्त हैं। इन में से आत्मनेपद सब से पिहले हो कर अब विकरण करने के पिहले और पीछे भी 'अट्' प्राप्त हैं। इस से अट् नित्य हुआ। और विकरण भी 'अट्' करने से पिहले तथा पीछे भी प्राप्त हैं, तो विकरण भी नित्य हुए। जब दोनों नित्य हुए तो परत्व से 'अट्' प्राप्त हैं। और अङ्ग कार्य अट् से विकरणों का होना प्रथम इष्ट हैं, क्योंकि विकरण के आजाने पर सब की 'अङ्ग' संज्ञा हो, और अङ्ग संज्ञा के प्रधात् 'अट्' होवे। इसलिये यह परिभाषा है—

#### ४२-शब्दान्तरस्य च प्राप्नुवन् विधिरनित्यो भवति ॥ अ० १ । ३ । ६० ॥

जो दो कार्य एक साथ प्राप्त हों, और वे दोनों नित्य ठहरते हों, तो उन में एक विधि के होने से पहिले जिस शब्द को दूसरी विधि प्राप्त है, श्रौर पहिले कार्य के होने पश्चात् वह विधि दूसरे शब्द को प्राप्त हो, तो वह श्रनित्य होता है।

यहां 'श्रट्' श्रागम पहिले तो केवल 'विश्' को प्राप्त है, श्रीर विकरण किये पीछे विकरणसदित सव की श्रंगसंज्ञा होने से सब को प्राप्त है। इसलिये 'श्रट्' श्रनित्य हुश्रा। फिर प्रथम विकरण हो कर पुनः प्रसंग मानने से 'श्रट्' हो जाता है। इत्यादि प्रयोजन हैं॥ ४२॥

[ नुकुट्यां भवः=नार्कुटः; नृपतेरपत्यं=नार्पत्यः ] यहां जो 'नृ' शब्दको वृद्धि होती है, उसी वृद्धिरूप श्राकार का सहचारी रेफ रहता है। उस रेफ की खर् प्रत्याहार के परे [ खरवसानयोर्विसर्जनीयः ] इस सूत्र से विसर्जनीय होने चाहियें। इसिलये यह परिभाषा है —

#### ४३-असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे ॥ अ० ८ । ३ । १५ ॥

#### ४४-असिद्धं बहिरङ्गलक्षणमन्तरङ्गलक्षणे ॥ अ०६। ४। १३२॥

इन में से पहिली परिभाषा बहुधा व्यवहारकाल में प्रवृत्त होती, श्रोर दूसरी बहुधा व्याकरणादिशास्त्रों में लगती है। बहिरंग कार्य करने में श्रन्तरंग कार्य श्रसिद्ध हो जाता है।

'बहिर्' ग्रोर 'ग्रन्तर्' इन दोनों शब्दों के श्रागे जो 'श्रंग' शब्द है, वह उपकारक-वाची श्रोर ग्रंग शब्द के साथ दोनों शब्दों का बहुवीहि समास है। [निमित्तसमुदायस्य मध्ये यस्य कार्यस्यांगमुपकारिनिमित्तं विहः कार्यान्तरापेत्तया दूरमधिकं वा वर्त्तते, तद्वहिरङ्गं कार्य्यम् । एवं निमित्तसमुदायस्य मध्ये यस्य कार्यस्या- क्षमुपकारिनिमित्तमन्तः कार्यान्तरापेत्तया सिन्निहितं वा न्यूनं वर्त्तते, तदन्तरक्नं कार्यम् । तथा बद्धपेत्तं विहरक्षमल्पापेत्तमन्तरक्षम् । ]

'बहिरक्न' उस को कहते हैं कि प्रकृति, प्रत्यय, वर्ण श्रौर पद के समुदाय में जिस कार्य के उपकारी श्रवयव दूसरे कार्य की अपेक्षा से दूर वा अधिक हों। श्रौर 'श्रन्तरक्न' वह कहाता है कि प्रकृति आदि निमित्तों के समुदाय में जिस कार्य के उपकारी श्रवयव दूसरे कार्य की श्रपेक्षा से समीप वा न्यून हों। तथा जो बहुत निमित्त श्रौर व्याख्यान की श्रपेक्षा रक्खे वह 'बहिरक्न,' तथा थोड़े निमित्त श्रौर व्याख्यान की श्रपेक्षा रक्खे वह 'श्रन्तरक्न' कहाता है। इसिलिये प्राय: श्रन्तरक्नकार्य प्रथम होता है, श्रौर बहिरक्न श्रसिद्ध हो जाता है। श्रोर कहीं २ वहिरक्न प्रथम हो भी जावे, तो श्रन्तरक्नकार्य की हिए में श्रसिद्ध श्रथात् नहीं हुश्रा सा ही रहता है।

श्रव प्रकृत में 'नार्कुट'; नार्पत्यः' यहां ककार प्रकार विसर्जनीय के निमित्त श्रन्तरङ्ग, श्रीर वृद्धि का निमित्त तिद्धत विहरङ्ग है। सो प्रथम विहरङ्गकार्य वृद्धि हो भी जाती है। परन्तु श्रन्तरङ्गकार्य विसर्जनीय करने में वृद्धि के श्रसिद्ध होने से रेफ ही नहीं, फिर विसर्जनीय किस को हो ?

1

तथा (बाह ऊठ्) इस सूत्र में 'ऊठ्' नहीं पढ़ते तो संप्रसारण की अनुवृत्ति आकर 'प्रष्ट+वाह्+िग्व+ग्रस्' इस अवस्था में 'िएव' प्रत्यय के परे वकार को 'उ' संप्रसारण और पूर्वक्रय हो कर 'प्रष्ट+उह्+िएव+ग्रस्' इस अवस्था में उकार को श्रोकार गुण और उस भ्रोकार के साथ वृद्धि एकादेश हो कर 'प्रष्टोहः' श्रादि प्रयोग सिद्ध हो हो जाते, फिर 'ऊठ्' प्रहण व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक होता है कि 'प्रष्टोहः' आदि में गुण करते समय संप्रसारण ग्रसिद्ध होता है। अर्थात् यजादि प्रत्यविभित्त म संज्ञा और भसंज्ञाके श्राथ्य संप्रसारण होता है। इस प्रकार बहुत अने ज्ञा वाला होने से संप्रसारण बहिरक्त और 'वि' प्रत्यय को मान के गुण श्रंतरक्त है। फिर श्रंतरक्त गुण करने में जब संप्रसारण श्रसिद्ध हुआ, तो गुण की प्राप्ति नहीं। जब गुण नहीं हुआ, तो वृद्धि होकर 'प्रष्टोहः' श्रादि प्रयोग भी नहीं बन सकते। इसिलिये 'ऊठ्' प्रहण करना चाहिये। इसी 'ऊठ' ग्रहण के ज्ञापक से यह परिभाषा निकली है।

तथा 'पचावेदम्; पचामेदम्' यहां लोट् के उत्तम पुरुष के एकार को ऐकारादेश प्राप्त है। सो ऐत्व श्रंतरक्त की दृष्टि में (श्राद्गुण्:) सूत्र से हुआ गुण बहिरक्त होने से श्रसिद्ध है। इसलिये वहां एकार ही नहीं, तो ऐकार किसको हो ? इत्यादि इस परिभाषा के श्रसंख्य प्रयोजन हैं।

लोक में भी श्रंतरक कार्य करने में बहिरक श्रसिद्ध ही माना जाता है। जैसे मनुष्य प्रात:काल उठकर पहिले निज शरीर संबन्धी श्रंतरक कार्यों को करता है, पीछे मित्रों के, श्रोर उसके पीछे सम्बन्धियों के काम करता है। क्योंकि मित्र श्रादि के कार्य निज शरीर की श्रोचा में बहिरक हैं॥ ४३-४४॥ श्रव श्रन्तरक्षविद्यक्ष त्या परिभाषा में ये दोष हैं कि 'श्रद्धेदीं व्यति श्रद्धायाः' यहां 'दिव्' धातु से 'किप्' प्रत्यय के परे किप् को मान के वकार को 'ऊर्' होता है। उस विद्यक्ष ऊर् को श्रसिद्ध माने, तो यणादेश नहीं हो सकता। इत्यादि होषों की निवृत्ति के लिये यह श्रगली परिभाषा है—

#### ४५-नाजानन्तर्ये बहिष्ट्वप्रक्रुतिः ॥ अ० १ । ४ । २ ॥

जहां दोनों अचों के समीप वा मध्य में कार्य विधान करते हों, वहां अन्तरक्ष बहिरक्रवच्या परिभाषा नहीं लगती।

इस से 'श्रद्यू' श्रादि में विहरङ्ग ऊठ् को जब श्रसिद्ध नहीं माना, तो यणादेश

तथा ( वत्वतुकोरसिख: ) इस सूत्र में 'तुक्' ग्रहण का यही प्रयोजन हैं कि 'अधीत्य, मेत्य' इत्याद प्रयोगों में तुक् अन्तरङ्ग और सवर्णदार्घ तथा गुण एकादेश बहिरङ्ग है। जो 'तुक्' अन्तरङ्ग के करने में बहिरङ्ग एकादेश असिख हो जाता, तो तुक् हो ही जाता। फिर तुग्विधि में एकादेश को असिख करने से यह बापक निकला कि जो दो अचों के आअय बहिरङ्ग कार्य हो, वह अन्तरंग कार्य की दृष्टि में असिख नहीं होता। इसी तुक्षहण ज्ञापक से यह परिभाषा निकली है। ४४॥

Bei

'गोमान् त्रियो यस्य स गोमत्त्रियः; यवमत्त्रियः; गोमानिवाचरित गोमत्यते; यवमत्यते' इत्यादि प्रयोगों में समासाश्रित अन्तर्वित्तिनी विभक्ति का लुक् द्विपदाश्रय होने से बहिरङ्ग, और (हल्ङ्यादि०) सूत्र से प्राप्त सुलाप एकपदाश्रय होने से अन्तरङ्ग है। सो जो बहिरङ्ग का वाधक अन्तरङ्ग हो जावे, तो जुम् आदि कार्य होकर 'गोमत्त्रियः' प्रयोग सिद्ध न हो, किन्तु 'गोमान्त्रियः' ऐसा प्राप्त होवे, सो अनिष्ट है। इसलिये यह परिभाषा है—

#### ४६-अन्तरङ्गानिप विधीन् बाधित्वा बहिरङ्गो लुग् भवति ॥ अ० ७ । २ । ६८ ॥

अन्तरङ्ग विधियों को बाध के भी बहिरङ्ग लुक् होता है।

श्रर्थात् जब श्रन्तर्वित्तिनी विभक्ति का लुक् समासाश्रय होने से बहिरक हुआ, एकपदाश्रयसुलीप श्रादि श्रन्तरक्षों का बाधक होगया, तो (न लुमतांगस्य) इस स्व से 'नुम्' श्रादि करने में प्रत्ययलद्मण का निषेध होकर 'गोमत्प्रियः' इत्यादि प्रयोग बन जाते हैं।

तथा ( प्रत्ययोत्तरपद्योश्च ) इस सूत्र का यही प्रयोजन है कि 'त्यामिच्छिति त्यामिच्छिति त्यामिच्छिति त्यामिच्छिति त्यामिच्छिति । स्वायः प्रत्यादि

प्रयोगों में युष्मद्, श्रस्मद् शब्दों को त्व, म श्रादेश होजावें । 'त्वं नाथोऽस्य' इस श्रय-स्था में मध्यवित्तिनी विभक्ति का लुक् त्व, म श्रादेश होने के पहिले श्रोर पीछे भी प्राप्त होने से नित्य, श्रोर त्व, म श्रादेश श्रन्तरङ्ग हैं । नित्य से श्रन्तरङ्ग बलवान् होता है, यह तो कह चुके हैं । सो जो श्रन्तरङ्ग होने से त्व, म श्रादेश पहिले हो जावें, तो इस सूत्र का कुछ प्रयोजन न रहे । क्योंकि वर्त्तमान विभक्ति के परे (त्वमावेकवचने ) सूत्र से त्व, म हो ही जावेंगे । फिर व्यर्थ होकर यह झापक हुश्रा कि श्रन्तरङ्ग विधियों का भी बहिरङ्ग लुक् वाधक होता है । फिर जब बहिरङ्ग लुक् पहिले हुश्रा, तो सूत्र सार्थक स्वा । श्रोर इसी झापक से यह परिभाषा निकली है ॥ ४६ ॥

1

-

'पूर्वेषुकामशमः' यहां पूर्वेषुकामशमी शब्द से तद्धित अण् प्रत्यय होता है।
'पूर्व+रषु+काम+शमी+म्र' इस अवस्था में जो तद्धितप्रत्ययाश्रित बहिरङ्ग उत्तरपदवृद्धि
से अन्तरङ्ग होने के कारण अकार इकार को गुण एकारादेश पहिले हो जावे, तो पूर्वोत्तरपद के पृथक् २ न रहने और उभयाश्रय कार्य में अन्तादिवद्भाव के निषेध होने से
(विशोऽमद्राणाम्) इस सूत्र से उभयपद वृद्धि नहीं हो सकती। इत्यादि दोषों की
निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है—

#### ४७-पूर्वोत्तरपद्यास्तावत्कार्यं भवति नकादेशः ॥ अ०१।४।२॥

पूर्वोत्तरपदिनिमित्तकार्य से बन्तरङ्ग भी एकादेश पिहले नहीं होता, किन्तु पूर्वो-त्तरपदिनिमित्त कार्य अन्तरङ्ग एकादेश से पिहले हो जाता है।

इस से 'पूर्वेषुकामशमः' यहां अन्तरङ्ग मानकर प्रथम गुण एकादेश नहीं होता, किन्तु पहिले उत्तरपद को वृद्धि होकर वृद्धि एकादेश हो जाता है। यह भी परिभाषा (४४) वीं परिभाषाकी सहचारिणी है।

इस का ब्रापक यह है कि (नेन्द्रस्य परस्य) इस सूत्र में उत्तरपद्वृद्धि का निषेध है कि उत्तरपद् में 'इन्द्र' शब्द को वृद्धि न हो, जिस से 'सोमेन्द्रः' प्रयोग सिद्ध होजावे । सो जो 'सोम' के साथ 'इन्द्र' का एकादेश अन्तरङ्ग होने से पहिले हो जावे, तो इन्द्र शब्द का इकार तो एकादेश में गया, अन्त्य का अन् तद्धित प्रत्यय के परे लोप में गया, फिर जब उत्तरपद इन्द्र शब्द में कोई अन् ही नहीं, तो वृद्धि का निषेध क्यों किया दिस से व्यर्थ होकर यह ब्रापक हुआ कि अन्तरङ्ग भी एकादेश पूर्वोत्तरपद कार्य के पहिले नहीं होता, किन्तु अन्तरङ्ग का बाधक उत्तरपद वृद्धि पहिले होती है। इसलिये उत्तरपद में इन्द्र शब्द को वृद्धि का निषेध किया है॥ ४७॥

'प्रधायः प्रस्थाय' इत्यादि प्रयोगों में 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान में 'त्यप्' आदेश होता है। सो त्यप् होने से पहिले 'प्रधा+त्वा' इस अवस्था में धा के स्थान में 'हि' अगेर स्था को 'इकारादेश' तथा त्वा को 'त्यप्' भी प्राप्त है। इस में 'हि' आदि आदेश पर और अन्तरङ्ग हैं, और 'ल्यप्' वहिरङ्ग है। सो पर और अन्तरङ्ग मान के 'हि' आदि आदेश कर लें, तो 'प्रधाय; प्रस्थाय' आदि प्रयोग नहीं वन सकें, इसितये यह परिभाषा है—

#### ४८-अन्तरङ्गानिप विधीन् बहिरङ्गो ल्यब् बाधते ॥ अ० २। ४। ३६॥

अन्तरङ्ग विधियों का भी विहरङ्ग ल्यबारेश वाध करता है।

इस से 'हि' आदि आदेशों को वाध के प्रथम 'ल्यप्' हो गया, फिर हि आदि की प्राप्ति नहीं, तो 'प्रदाय; प्रधाय; प्रस्थाय' आदि प्रयोग सिद्ध हो गये।

श्रोर (श्रदो जिश्वत्येप्ति किति) इस सूत्र में 'ल्यप्' का ग्रद्दण नहीं करते, तो तकारादि प्रत्ययमात्र की श्रपेचा रखने वाला 'श्रदु' धातु को 'जिश्व' श्रादेश अन्तरक होने के कारण पूर्वपद को श्रपेचा रखने वाले समासाधित वहिरक्ष ल्यप् श्रादेश से प्रथम हो जाता। फिर 'ल्यप्' ग्रहण व्यर्थ होकर इस का ज्ञापक हुआ कि श्रन्तरक्षविधियों को भी वाध के पहिले 'ल्यप्' होता है। फिर तकारादि कित् न होने से 'जिश्व' श्रादेश प्राप्त नहीं होता। इसिलये 'ल्यप्' ग्रहण किया है। यही 'ल्यप्' ग्रहण इस परिभाषा के निकलने में ज्ञापक है।। ४८॥

'इयाय; इयिय' इत्यादि प्रयोगों में पर होने से गुण वृद्धि, श्रोर नित्य होने से द्वित्व प्राप्त है। द्वित्व होने के पश्चात् 'इ+इ+श्च;इ+इ+इथ' इस श्रवस्था में परत्व से गुण वृद्धि, श्रोर श्रन्तरक्ष होने से सवर्णदीर्घ एकादेश प्राप्त है। सो जो बलवान् होने से श्रन्त-रक्ष सवर्णदीर्घ एकादेश हो जावे तो 'इयाय; इयियथ' श्रादि, प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकें, इसिलये यह परिभाषा है—

### ४६—वारगादाङ्गं बलीया भवति ॥ अ० ६ । ४ । ७८ ॥

वर्णकार्य से अङ्गकार्य वलवान् होता है।

यहां वर्णकार्य सवर्णदीर्घ एकादेश स्त्रोर स्रंगकार्य गुणवृद्धि हैं। उस वर्णकार्य से स्रङ्गकार्य को वलवान् होने से गुणवृद्धि प्रथम होकर 'इयाय; इयिथ' इत्यादि प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं।

( अभ्यासस्यासवर्षें ) इस सूत्र में असवर्ष अच् के परे अभ्यास के इवर्ष उवर्ष को इयङ्, उवङ् आदेश कहे हैं। सो जो गुण वृद्धि का बाधक एकादेश हो जाने, तो अभ्यास से परे असवर्ष अच् हो ही नहीं सकता। किर उस असवर्ष गुण वृद्धि किये अच् के परे इयङ्, उवङ् कहने से निश्चित ज्ञात हुआ कि वर्णकार्य का बाधक अङ्गकार्य होता है। यही असवर्ष अच् के परे इयङ्, उवङ् का विधान इस परिभाषा के होने में ज्ञापक है॥ ४६॥

यह बात प्रथम लिख चुके हैं कि अन्तरङ्ग से भी अपवाद बलवान होता है। (जुसि च) इस सूत्र से जो गुणविधान है, सो (क्ङिति च) आदि निषेधप्रकरण का अपवाद है, क्योंकि 'िम' के ङित् होने से उसके स्थान में जुस् भी ङित् ही आदेश होता है। सो जैसे 'अबिभयु'; अबिभरु' इत्यादि में निषेध का बाधक जुस् में गुण होता है, वैसे ही 'चितुयु'; सुतुयु' यहां यासुर् के आश्रय से प्राप्त गुण निषेध का भी बाधक हो जावे, तो 'चितुयु'; सुतुयु' आदि प्रयोगों में गुण होना चाहिये। इसलिये यह परिभाषा है—

#### ५०-येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति॥ अ०१।१।६॥

.

जिस कार्य की प्राप्ति में अपवाद का आरम्भ किया जाता है, वह अपवाद उसी कार्य का बाधक होता है। और जिस की प्राप्ति अप्राप्ति में सर्वथा अपवाद का आरम्भ है, उसका बाधक नहीं होता।

इससे यह बाया कि 'चितुयुः', सुनुयुः' यहां दो छित् हैं, एक सार्वधातुक जुस् प्रत्यय का, श्रोर दूसरा यासुट् का। सो सार्वधातुक प्रत्ययाश्रित जो छित्व है. उसी को मान के प्राप्त गुण का निषेध है। उस निषेध की प्राप्ति में जुस् के परे गुण कहा है, श्रोर यासुट् के डित्वनिमित्तपाप्त निषेध के होने वा न होने में उभयत्र जुस् के परे गुण कहा है। क्योंकि 'श्रावि नयुः' श्रादि में यासुट् के विना केवल सार्वधातुक के श्राश्रयगुण का निषेध प्राप्त है। इसलिये 'चितुयुः' श्रादि में गुण नहीं होता। इत्यादि इस परिभाषा के श्रावेक प्रयोजन हैं॥ ४०॥

अब इस पूर्वोक्त परिभाषा के विषय में यह विशेष विचार है कि (नासिकोद्रौ-ष्ठमङ्गाद्नतकर्ण्यक्षाच्च) यह सूत्र अगने (न क्रोडादिग्रह्मचः; सहनञ्०) इन दो सूत्रों का अपवाद है। और दोनों की प्राप्ति में इस का आरम्भ भी है। पूर्व परिभाषा के अनुकूत माना जाने तो सह, नञ् और विद्यमानपूर्वक शृद्दों से प्राप्त निषेध का बाधक छ प् प्रत्यय 'सनांसिका; अनासिका; विद्यमाननासिका' आदि में भी डीष् प्रत्यय होना चाहिये, तो ये प्रयोग नहीं बन सकें। इसिलये यह परिभाषा है—

#### ५१-पुरस्तादपवादा श्रनन्तरान् विधीन् बाधन्ते न परान् ॥ अ० ४ । १ । ५५ ॥

जो पहिले अपवाद और पीछे उन्सर्ग पढ़ा हो. तो वह अपने समीपस्थ कार्य का बाधक हो, और परविधि अर्थात् जिसके साथ व्यवधान है, उस का बाधक नहीं होते। इस से बह्नच् लक्षण से प्राप्त डीष् के निषेध का बाधक हुआ, श्रीर सह, नञ्, विद्यमानपूर्वक नासिका से प्राप्त डीष् के निषेध का बाधक नृहीं हुआ। इस प्रकार 'सना सिका; अनासिका' आदि प्रयोग सिद्ध हो गये। इसी प्रकार अन्यत्र भी इसका विषय जानना ॥ ५१॥

अब (नासिकोदरौष्ठ०) इस सूत्र में जो त्रोष्ठ श्रादि पांच संयोगोपध शब्द हैं, उन से निषेश भी प्राप्त है । उस का बाधक पूर्व परिभाषा नहीं हो सकती, क्योंकि (नासिकोदर०) सूत्र से भी संयोगोपध का निषेध पूर्व है। (नासिकोदर०) सूत्र में नासिका और उदर शब्द तो सह श्रादि पूर्व होने से पर दोनों सूत्रों के अपवाद हैं, और ओष्ठ आदि शब्द सह श्रादि पूर्व हों तो (सहनज्०) इस पर सूत्र के और सामान्य उपपद में (खाङ्गाचोप०) इस पूर्व सूत्र के भी अपवाद हों। सो दोनों के अपवाद होने चाहियें, या किसी एक के ? इस सन्देह की निवृत्ति के बिये यह परिभाषा है—

13

Ju.

#### ४२-मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान् ॥ अ० ४ । १ । ४५ ॥

जो पूर्व पर दोनों छोर उत्सर्ग और मध्य में अपवाद पढ़ा हो, तो वह अपने से पूर्व विधि का बाधक होता है, उत्तर का नहीं।

इस से 'विम्बोष्ठी; विम्बोष्ठा; दीर्घजङ्घी; दीर्घजङ्घा' इत्यादि उदाहरणों में संयोगोपधलक्षण निषेध का वाधक होगया, श्रोर 'सदन्ता; श्रदन्ता; विद्यमानदन्ता' इत्यादि में परसूत्र से प्राप्त निषेध की बाधा नहीं हुई। इसी प्रकार सर्वत्र योजना कर लेनी चाहिये॥ ४२॥

(सुडनपुंसकस्य) इस सूत्र में सुट् की सर्वनामसंज्ञा का निषेध है, सो 'कुएडानि तिष्ठन्तिः, बनानि तिष्ठन्ति' यहां भी जो नपुंसक के सुट् की सर्वनामस्थानसंज्ञा का निषेध हो जावे, तो सुम् आदि होकर 'कुएडानि' आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं, सो न हो सकें। इसक्रिये यह परिभाषा है—

#### प्र३-अनन्तरस्य विधिर्वो प्रतिषेधो वा ।। अ० १ । १ । ४३ ॥

जिस में कुछ ग्रन्तर न हो, ग्रर्थात् जो श्रत्यन्त समीप हो, उस का विधि वा निषेध होता है, दूरस्य का नहीं।

इससे सुट् करके जो सर्वनाम्स्थानसंज्ञा की प्राप्ति है, उसी का निषेध करता है, श्रि की सर्वनामस्थानसंज्ञा का निषेध नहीं। इस से 'कुएडानि' आदि प्रयोग बन जाते हैं। श्रीर (नेटि) सूत्र में इडादि सिच् के परे वृद्धि का निषेध होता है। सो जो दूर-स्थवृद्धि का भी हो, तो 'श्रमाजीत्; श्रलावीत्; श्रपावीत्' इत्यादि में भी वृद्धि का निषेध होना चाहिये। इस परिभाषा से समीपस्थ हलन्तलच्या वृद्धि का निषेध हो जाता है, सामान्य करके नहीं। इत्यादि प्रयोजन हैं॥ ४३॥

'द्दति; दधति' इत्यादि प्रयोगों में जो प्रत्ययादि सकार को अन्तरङ्ग होने से अन्तादेश प्रथम हो जावे, तो अभ्यस्तसंज्ञकों से विद्वित प्रत्ययादि सकार को 'अत्' आदेश व्यर्थ और अनिष्टप्रयोग सिद्ध होने लगें। इसिलये ये परिभाषा हैं—

५४-न चापवादविषये उत्सर्गोऽभिनिविशते ॥

प्र्-पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुरसर्गाः ॥

५६-प्रकल्प चापवादविषयमुत्सर्गः प्रवर्तते ॥ अ०६।१।५॥

ये तीनों परिभाषा उत्सर्गापवाद की व्यवस्था के लिये हैं। अपवादविषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती। प्रथम अपवादों की और पश्चात् शेषविषय में उत्सर्गों की प्रवृत्ति होती है। अपवाद के विषय को छोड़ के अपने विषय में उत्सर्ग प्रवृत्त होते हैं।

इससे यह आया कि अभ्यस्तसंज्ञक से प्राप्त जो प्रत्ययादि सकार को 'अत्' आदेश, उस अपवाद के विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति न होने से प्रथम अपवाद प्रवृत्त हुआ, तो प्रत्ययादि सकार को अत् आदेश होकर 'ददति, दधति' आदि प्रयोग सिद्ध होगए।

श्रीर जैसे अन्त श्रादेश का बाधक 'पचेयु:, श्रजागरु:' श्रादि प्रयोगों में िक को जुस् होता है, वैसे 'ऐप्सन्' श्रादि प्रयोगों में उत्सर्ग का विषय है, उस में 'कि' को 'जुस्' नहीं होता। श्रर्थात् श्रपवाद के विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती, श्रीर उत्सर्ग के विषय में श्रपवाद की प्रवृत्ति हो ही जाती है ॥ १४-१६॥

श्रव पूर्व परिमाषाओं से यह श्राया कि श्रपवादविषय में उत्सर्गों की प्रवृत्ति नहीं होती, किन्तु खविषय में श्रपवाद उन्सर्ग का बाधक होता है। तो (दीर्घोऽकितः) इस सूत्र में 'श्रकित्' प्रहण व्यर्थ होता है, क्योंकि जो सामान्य से श्रभ्यास को दीर्घ कहते, तो श्रुनासिकान्त श्रकारोपध धातुश्चों के श्रभ्यास को दीर्घ का बाधक 'जुक्' श्रागम होकर श्रजन्न के न रहने से दीर्घ की प्राप्ति ही नहीं थी, तो 'यंयम्यते; रंरम्यते' श्रादि प्रयोग सिद्ध हो ही जाते। फिर 'श्रकित्' ग्रहण व्यर्थ होकर इस वन्त्यमाण परिभाषा के निकलने में हापक है—

## प्र७-अभ्यासिवकारेष्वपवादा उत्सगिन्न बाधन्ते।। अ० ७। ४। ८३॥

अभ्यास के श्रादेशविधान प्रकरण में श्रपवाद उत्सर्गों के वाधक नहीं होते।

तो जब दीर्घरूप उत्सर्ग का वाधक 'जुक्' न रहा तो 'यंयम्यते' आदि में दीर्घ की प्राप्ति हुई। इसलिये अकित् प्रहण सार्थक हुआ, यह तो खार्थ में चरितार्थ।

श्रीर श्रन्यत्र फल यह है कि 'डोढोक्यते; तोत्रोक्यते' इत्यादि प्रयोगों में उत्सर्गरूप इस्य का वाधक दीर्घ नहीं होता। श्रीर जो इस्य का श्रपवाद होने से श्रोकार को श्रोकार ही दीर्घ कर लेवें तो फिर इस्य होकर गुण न होने, तो 'डोढोक्यते' श्रादि प्रयोग भी सिद्ध न हों। इत्यादि इस परिभाषा के श्रनेक प्रयोजन हैं॥ ४७॥

तच्छीलादि अर्थों में 'तृन्' प्रत्यय 'ण्वुल्' का अपवाद है, और ग्वुल् तथा तृन् असक्षप प्रत्यय भी हैं। सो धात्वंधकार में असक्षप प्रत्यय उत्सर्ग का बाधक विकल्प करके होता है, पन्न में उत्सर्ग भी हो जाता है। अय (निन्द्दिसक्किश्) इस सूत्र में 'वुज्' प्रत्यय का 'तृन्' अपवाद क्यों पढ़ा, क्योंकि तृन् के द्वितीय पन्न में ग्वुल् होकर 'निन्द्कः; हिंसकः' आदि प्रयोग वन ही जाते, कि जो वुज् प्रत्यय के होने से वनते हैं। और 'निन्द्कः' आदि में ग्वुल्, वुज् का खर भी एक ही होता है। एक 'अस्यकः' शब्द के खर में तो ग्वुल्, वुज् के होने से भेद पड़ेगा। ग्वुल् का खर 'अस्यकः', वुज् का 'अस्यकः'। और 'निन्द्कः' आदि में आद्वादात्त ही रहेगा। फिर 'निन्द् आदि धातुओं से वुज् विधान व्यर्थ हुआ। इसलिये यह झापकसिद्ध परिभाषा है—

#### प्र-तार्च्छालिकेषु सर्व एव तृजादयो वाऽसरूपेण न भवन्ति।। अ०३।२।१४६॥

तृच् श्रादि श्रपवादों के साथ श्रसक्रप उत्सर्गक्रप प्रत्यय तच्छीलाधिकारविद्वित श्रपवादों के पक्त में नहीं होते।

इस से तच्छीलाधिकारविहित 'तृन्' के पत्त में जब 'ग्वुल्' नहीं हो सकता, तो निन्द श्रादि धातुश्रों से बुञ्विधान सार्थक होगया। श्रीर 'श्रस्यकः' में खरभेद होने के लिये 'बुञ्' कहना श्रावश्यक ही है। इत्यादि श्रनेक प्रयोजन हैं॥ ४८॥

श्रव धात्वधिकार में सर्वत्र वाऽसक्तपविधि के मानने से 'इसितं, इसनं वा छात्रस्य शोभनम्' यहां क श्रोर ल्युट् के विषय में 'घज्'; 'इच्छिति भोकुम्' यहां लिङ्, लोट्; श्रोर 'ईपत्पानः सोमो भवता' यहां 'खल्' श्रसक्तप उत्सर्ग होने से प्राप्त हैं। इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है—

# ्राह-क्तल्युट्तुमुन्खलर्थेषु वाऽसरूपविधिनीस्ति॥अ०३।१।६४॥

क, ल्युट् तुमुन् और खलर्थ प्रत्ययों के विषय में श्रसक्र उत्सर्ग प्रत्यय श्रपवाद-

इस से 'इसितम्; इसनम्' आदि प्रयोगों के विषय में 'घज्' आदि उत्सर्ग प्रत्यय

नहीं होते।
(ग्रहें कृत्यत्चश्च) इस सूत्र में कृत्य ग्रीर तृच् प्रत्यय नहीं कहते, तो ग्रहें ग्रर्थ में कहे हुए लिङ् के साथ ग्रसारूप्य होने से ग्रहें ग्रर्थ में कृत्य ग्रीर तृच् हो ही जाते। में कहे हुए लिङ् के साथ ग्रसारूप्य होकर यह जनाते हैं कि (वाऽसरूपोऽ।स्त्रयाम्) यह फिर कृत्य श्रीर तृच् ग्रहण व्यर्थ होकर यह जनाते हैं कि (वाऽसरूपोऽ।स्त्रयाम्) यह परिमाषा ग्रनित्य है ॥ ४६॥

(हशस्तोर्लङ् च) इस सूत्र में 'लङ्' प्रहण नहीं करते, तो भूतानद्यतनपरोक्तकाल में विहित 'लिट्' के साथ असरूप लङ् का समावेश हो ही जाता। फिर लङ् व्यर्थ होकर इस परिभाषा का ज्ञापक होता है—

## ६०-लादेशेषु वाऽसरूपविधिर्न भवति ॥ अ० ३ । १ । ६४ ॥

लकारार्थ विधान में वाऽसरूपविधि नहीं होती।

इस से लङ् लकार का प्रह्ण सार्थक हुआ। श्रीर (लट: शतृशानचा०) यहां विकल्प की श्रतृतृत्ति इसलिये करते हैं कि जिस से तिङ् का भी पत्त में समावेश हो जावे। जो 'वाऽसक्रपीवधि' हो जाती तो तिङ् समावेश के लिये विकल्प नहीं लाना पड़ता। इत्यादि श्रतेक प्रयोजन इस परिभाषा के समसने चाहियें॥ ६०॥

श्रव (तिसान्निति॰; तसादिन्युत्तरस्य) इन सूत्रों से सप्तमीनिर्दिष्ट कार्य श्रव्यवित पूर्व को श्रोर पंचमीनिर्दिष्ट उत्तर को होता है। सो (इको यणिच) यहां सप्तमीनिर्दिष्ट पूर्व को, श्रोर (द्वयन्तरुपसर्गेश्योऽप ईत्) 'द्वीपम्' यहां पंचमीनिर्दिष्ट उत्तर को होता है। परन्तु जहां पंचमी श्रोर सप्तमी दोनों विभक्तियों का निर्देश हो, वहां किसको कार्य होना चाहिये ? इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है—

## ६१-उभयनिदेंशे विप्रतिषेधात् पंचमीनिर्देशः॥अ०१।१।६६॥

जहां सप्तमी पंचमी दोनों विभक्तियों से निर्देश किया है, वहां (तिस्मिन्निति०; तस्मा-दित्यु०) इन दोनों सूत्रों में परविप्रतिषेध मान के पंचमीनिर्दिष्ट का कार्य होना चाहिये।

जैसे (बहोलोंपो भू च बहो: ) यहां बहु शब्द पंचमीनिर्दिष्ट श्रीर इष्ठन्; इमनिच्; ईयसुन् सप्तमीनिर्दिष्ट हैं। यहां बहु से परे इष्ठन् श्रादि को वा इष्ठन् श्रादि के परे बहु शब्द को कार्य होवे। इस सन्देह की निवृत्ति इस परिभाषा से हुई कि पंचमीनिर्दिष्ट को कार्य होना चाहिये, अर्थात् बहु से परे इष्टन् आदि को कार्य होवे। सो पर को विहित कार्य अर्थात् ईयसुन् के आदि का लोप हो जाता है, भूयानः, भूमा।

तथा (ङमो दूखाद्चि ङमुण् नित्यम् ) यद्दां ङम् से परे अच् को वा अच् परे हो तो ङम् को कार्य हो, यद्द सन्देह है। सो हस्व से परे जो ङम्, उस से परे अच् को कार्य होता है, तिङ्ङतिङ:, कुर्वन्नास्ते। इत्यादि बहुत सन्देह निवृत्त हो जाते हैं ॥६१॥

इस व्याकरणशास्त्र में (स्वं रूपं शव्दस्या०) इस परिभाषासूत्र के अनुकूल 'पयस्कुम्भी। पयस्पात्री' इत्यादि प्रयोगों में विसर्जनीय को सकारादेश न होना चाहिये। क्योंकि कुम्म और पात्र आदि शब्दों के परे कहा है। उन के खरूप प्रहण होने से स्त्रीलिक में नहीं हो सकता। इसलिये यह परिभाषा है—

#### ६२-प्रातिपदिकग्रहणे छिङ्गविशिष्टस्यापि <mark>ग्रहणं भवति ॥</mark> अ० ४ । १ । १ ॥

प्रातिपदिक के परे वा प्रातिपदिक को जहां कार्य कहा हो, वहां पठित लिङ्ग से विशेष लिङ्ग का भी प्रहण होना चाहिये।

इस से 'पयस्कुम्भी' श्रादि प्रयोग भी सिद्ध हो जाते हैं।

जैसे सर्वनाम को सुद् कहा है, सो 'येषाम्; तेषाम्' यहां तो होता ही है, 'यासां; तासां' यहां भी हो जावे।

जैसे 'कष्टं श्रित:=कष्टश्रितः' यहां समास होता है, वैसे 'कष्टं श्रिता=कष्टश्रिता' यहां भी हो जावे।

जैसे 'हस्तिनां समूहो=हास्तिकम्' यहां ठक् होता है, वैसे 'हस्तिनीनां समूहो= हास्तिकम्' यहां भी हो जावे।

जैसे 'प्रामेवासी' यहां सप्तमी का त्रालुक् होता है, वैसे 'प्रामेवासिनी' यहां भी हो जावे, इत्यादि श्रनेक प्रयोजन हैं ॥ ६२ ॥

जब प्रातिपदिक के प्रहण में लिङ्गविशिष्ट का भी प्रहण होता है, तो जैसे 'यूनः पश्य' यहां युवन् शब्द को सम्प्रसारण होता है, वैसे 'युवतीः पश्य' यहां स्नीलिङ्ग में भी होना चाहिये। इत्यादि सन्देहों की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है:—

#### ६३-विभक्तौ लिङ्गविशिष्टप्रहणं न ॥ अ० ७ । १ । १ ॥

विभक्ति के आश्रय कार्य करने में पठितिता से अन्य लिंग का प्रहण्नहीं होता।

#### इस से भसंद्वाश्रय सम्प्रसारण 'युवति' शब्द को नहीं होता।

तथा जैसे 'गोमान्, यवमान्' यहां तुम् स्रोर दीर्घ होते हैं, वैसे 'गोमती, यवमती' यहां होवे। सो सर्वनामस्थ विभक्त्याश्रित कार्य होने से नहीं होता।

जैसे 'सखा; सखायों' यहां सिख शब्द को आकारादेश होता है, वैसे 'सखी; सख्यो; सख्यः' यहां स्त्रीतिङ्ग में विभक्तचाश्रित आकार नहीं होता। इत्यादि इस परिभाषा के भी बहुत प्रयोजन हैं॥ ६३॥

(तस्यापत्यम्) इस सूत्र में 'तस्य' यह पुत्तिङ्ग षष्ठी का एकवचन स्रोर अपत्य शब्द नपुंसकिता प्रथमैकवचन निर्देश किया है, तो 'कन्याया अपत्यं≔कानीनः' यहां स्नीतिंग शब्द से 'कानीन' शब्द नहीं सिद्ध होना चाहिये। स्रोर 'द्वयोर्मात्रोरपत्यं≔द्वैमातुरः' यहां द्विवचन से प्रत्ययोत्पत्ति भी नहीं होनी चाहिये। इसिलये यह परिभाषा है—

#### ६४-सूत्रे लिङ्गवचनमतन्त्रम् ॥ अ० ४ । १ । ६२ ॥

जो सूत्र में लिंग श्रीर वचन पढ़े हैं, वे कार्य करने में प्रधान नहीं होते। श्रर्थात् जहां स्त्रीलिंग, पुर्लिंग वा नपुंसकलिंग से तथा एकवचन, द्विचचन, बहुवचन से निर्देश किये जावें, वहां उसी पठितलिंग वा वचन से कार्य्य लिया जाय, यह नियम नहीं समसना चाहिये, किन्तु एक किसी लिंग वा वचन से शब्द पढ़ा हो, तो सभी लिंग वचनों से कार्य हो सकते हैं।

इस से 'कानीन:; द्वैमातुर:' इत्यादि शब्द सिद्ध हो जाते हैं। इत्यादि अनेक प्रयोजन इस परिभाषा से सिद्ध होते हैं॥ ६४॥

श्रव श्रञ्यन्त 'मृशादि' प्रातिपदिकों से जो भू धातु के श्रर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय होता है, वह 'क दिवा भृशा भवन्ति' यहां भी भृश शब्द से होना चाहिये। इत्यादि सन्देहों की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है—

#### ६५-नञिवयुक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथा ह्यर्थगतिः ॥

अ०३।१।१२॥

7

. 2

वाक्य में जो नञ्युक्त पद है, उस के समान जो वाक्य में युक्त श्रोर उस नञ्युक्त पदार्थ के सदश धर्मवाला हो, उस में कार्य्यविधान होना चाहिये।

ऐसा ही अर्थ लोक में प्रतीत होता है, अर्थात् वाक्य में जिस पदार्थ को जिस किया का निषेध होवे, उस पदार्थ के तुल्य धर्मवाले को उसी किया का विधान कर लेना चाहिये। जैसे लोक में किसी ने कहा कि 'अब्राह्मणमानय' ब्राह्मण से भिन्न को लेश्रा, तो ब्राह्मण से भिन्न चित्रयादि किसी मनुष्य को ले श्राता है। क्योंकि ब्राह्मण के तुल्य धर्मवाला मनुष्य ही होता है, किन्तु यह नहीं होता कि ब्राह्मण से इतर को मंगवाने में मही हा पत्थर श्रादि किसी पदार्थ को लेश्रा के श्रपना श्रमीष्ट सिद्ध कर लेवे।

इसी प्रकार शास्त्रों में भी जिस का निषेध किया हो, उसके सदश दूसरे का विधान करना चाहिये। यहां जो चिवप्रत्ययान्त से अन्य 'भृशादि' शब्दों से 'क्यङ्' प्रत्यय विधान किया है, वह चिवप्रत्ययान्त के तुल्य अर्थ वाले भृशादिकों से 'क्यङ्' होना चाहिये। चिव प्रत्यय का अर्थ अभूततद्भाव है, उसी अर्थ में 'क्यङ्' होता है, 'अभृशो भृशो भवति=भृशायते' इत्यादि। 'क दिवा भृशा भवन्ति' यहां अभूततद्भाव के न होने से 'क्यङ्' नहीं होता।

तथा 'दिधच्छादयित; मधुच्छादयित' इत्यादि प्रयोगों में 'तुक्' आगम को अभक्त मानें कि न पूर्वान्त श्रीर न परादि दोनों से पृथक् है, तो श्रितिङ् से परे तिङ् पद को निघात होजावे। सो 'तुक्' तिङ् से भिन्न तिङ् के तुल्य धर्मवाला पद नहीं है, इस से निघात नहीं पावेगा। श्रीर निघात होना इष्ट है, इसिलये 'तुक्' को श्रमक नहीं करना, किन्तु पूर्वान्त ही करना चाहिये। इत्यादि श्रनेक प्रयोजन हैं ॥ ६४॥

(उपपदमितिङ्) इस सूत्र में 'श्रितिङ्' ग्रहण का यही प्रयोजन है कि तिङन्त उपपद का समास न होने। सो जो 'सुप्; सुपा' इन दोनों की श्रनुवृत्ति चली श्राती है, तब तो तिङ् उपपद का समास प्राप्त ही नहीं, फिर निषेधार्थ करना व्यर्थ हुआ। इसिलिये ऐसा ह्यापक होना चाहिये कि श्रसुवन्त के साथ श्रसुवन्त का भी समास होता है, तब तो श्रतिङ्ग्रहण सार्थक होता है। इसिलिये यह परिभाषा है—

#### ६६-गतिकारकोपपदानां क्रिक्रिः सह समासवचनं प्राक् सुंबुत्पत्तेः ॥ अ० ४ । १ । ४८ ॥

गति, कारक श्रीर उपपद इन का कृदन्त के साथ सु श्रादि की उत्पत्ति से पहिले ही समास हो जाता है।

यहां केवल सुप्रहित छदन्त के साथ समास हुआ, तो 'श्रतिङ्' प्रहण सार्थक होने से खार्थ में चरितार्थ हो गया।

श्रीर श्रन्यत्र फल यह है कि गति—'सांक्टिनम्' यहां जो ति हितोत्पित्त से पिहले सम् श्रीर कृटिन् सुबन्तों का समास करके पीछे ति इत उत्पन्न किया चाहें, तो ति दिन तोत्पित्त की विवत्ता में कृटिन् शब्द की पृथक् पदसंक्षा रहने से सम् शब्द को वृद्धि नहीं हो सकती। श्रीर जब सुप्रहित केवल कृटिन् कृदन्त के साथ समास होता है, तब समास समुदाय की एक पदसंक्षा होकर ति इतोत्पित्त होने से 'सम्' को वृद्धि हो जाती है।

कारक—'या वस्त्रेण कीयते सा वस्त्रकीती; अश्वकीती' इत्यादि शब्दों में केवल 'कीत' कृदन्त के साथ 'वस्त्र' आदि शब्दों का समास होकर करणपूर्व कीतान्त प्रातिपदिक से 'डीब्' प्रत्यय हो जाता है। और जो सुबन्त के साथ ही समास नियम रहे, तो समास की विवचा में ही अन्तरक होने से अकारान्त कीत शब्द से टाप् हो जावे। पुन: आकारान्त हो जाने से अकारान्त से विहित डीब् प्रत्यय नहीं होवे, तो 'वस्त्रकीती' आदि प्रयोग भी सिद्ध न हो सकें।

उपपद्—'मासवापिग्री; ब्रीहिवापिग्री' यहां प्रातिपिदिकान्त नकार को 'गुत्व' होता है। सो जो सुबन्तों का ही समास करें, तो समास की विवक्षा में ही नकारान्त 'वापिन्' शब्द से 'डीप्' होकर पीछे समास हो, तब उस डीबन्त 'माषवापिनी' समुदाय की प्रातिपिदिकसंबा होवे, तो प्रातिपिदिकान्त ईकार के होने से फिर गुत्व नहीं हो सके। श्रीर जब केवल छदन्त 'वापिन्' शब्द के साथ समास होता है, तब केवल 'माषवापिन' नकारान्त शब्द की प्रातिपिदिकसंबा होकर डीप् होता है, तो प्रातिपिदकान्त नकार को गुत्व हो जाता है, इत्यादि श्रानेक प्रयोजन हैं॥ ६६॥

(उगिद्वां सर्वनामस्थाने उधातोः) इस सूत्र में उगित् धातु के निषेध का यही प्रयोजन है कि 'उखास्नत्ः पर्याध्वत्' इत्यादि में 'तुम्' आगम न हो। सो यह प्रयोजन तो 'अञ्चु' धातु के प्रहृण से निकल जाता कि उगित् धातु को तुम् आगम् हो, तो अञ्चु ही को हो। इस नियम से अन्य उगित् धातु को तुम् होता ही नहीं, फिर अधातु प्रहृण व्यर्थ हुआ। इसके व्यर्थ होने रूप झापक से यह परिभाषा निकली हैं—

.

#### ६७-साम्प्रतिका अभावे भूतपूर्वगतिः ॥

जो पदार्थ वर्तमान काल में अपनी प्रथमावस्था से पृथक् हो गया हो, तो उसी पूर्वावस्था के सम्बन्ध से उस को वर्तमान में भी कार्य हों।

जैसे 'गोमन्तमिञ्ज्ञति=गोमत्यति, गोमत्यते: किप्=गोमान्' यहां प्रथम तो 'गोमान्' प्रातिपदिक है। पीछे उस से क्यच् हुआ, तो धातुसंक्षा हुई। फिर क्यच्प्रत्ययान्त से किप् होने से धातुसंक्षा उसकी बनी रही। सो पूर्व रही प्रातिपदिकसंक्षा के स्मरण से पीछे धातुसंक्षा के बने रहते भी 'तुम्' होता है, अर्थात् अधातुनिषेध नहीं लगता। इससे अधातु निषेध भी सार्थक रहा।

तथा 'श्रात्मनः कुमारीमिच्छति=कुमारीयति, कुमारीयतेः कर्त्तरि किप्=कुमारी ब्राह्मणः, तस्मै कुमार्ये \* ब्राह्मणायं यद्दां 'कुमारी' शब्द प्रथमावस्था में स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त

\* यहां भृतपूर्वगित परिभाषा के मानने से कार्य भी चलजाता, तथा अन्यन्न भी सब काम चलता है, फिर 'कुमार्थे ब्राह्मणाय' इत्यादि प्रयोगसिद्धि के लिये नदीसंज्ञा में (प्रथमलिङ्गग्रहण्याञ्च) इस वार्तिक का भी कुछ प्रयोजन नहीं रहा। क्योंकि इस परिभाषा के होने से सब काम निकल जाते हैं। वार्तिक एकदेशी और परिभाषा सर्वदेशी है॥ है, तब तो स्त्र्याख्य ईकारान्त नदीसंज्ञा सिद्ध है। पीछे जब पुलिङ्गवाची हो गया, तब भी पूर्वावस्था के भूतपूर्व स्त्रीत्व को लेकर नदीसंज्ञा होके नदीसंज्ञा के कार्य भी होते हैं। इत्यादि स्त्रनेक प्रयोजन हैं॥ ६७॥

बहुवीहि समास में अन्य पदार्थ प्रधान होता है, अर्थात् जिन दो वा अधिक पदों का समास किया जावे, उन पदों से पृथक् पद वाच्य अन्य पदार्थ कहाता है। जैसे 'चिन्ना गावो यस्य स चित्रगुः; शवलगुः' यहां गौन्नों का विशेषण चित्रगुण और गौ इन दोनों पदों से भिन्न इन का स्वामी 'चित्रगु' कहाता है। इसी प्रकार 'सर्व आदियें वां तानि सर्वादीनि' यहां सर्व और आदि दोनों शब्द से पृथक् अन्य पदार्थ लिया जावे, तो सर्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा नहीं हो सके। इसलिये यह परिभाषा है—

## ६८-भवति हि बहुवीहो तद्गुग्संविज्ञानमपि ॥ अ०१।१।२७॥

बहुवीहि दो प्रकार का होता है—एक तद्गुणसंविद्यान, श्रोर दूसरा श्रतद्गुण-संविद्यान। 'तद्गुणसंविद्यान' उस को कहते हैं कि जहां उस श्रन्य पदार्थ के साथ उसके निज गुणों का समवायसम्बन्ध हो। जैसे 'लम्बकर्णः, तुङ्गनासिकः, दीर्घबाहुः, क्लमकेशनखश्मश्रुः' इत्यादि में श्रन्य पदार्थ का बोध कान श्रादि के सहित होता है।

'श्रतद्गु एसंविज्ञान' वह है कि जिन पदों का समास किया जावे, उन से श्रन्य पदार्थ का पृथक् सम्बन्ध बना रहे, कि जैसे 'चित्रगु' शब्द में दिखा दिया है।

इस से 'सर्वादि' में भी तद्गुणसंविद्यान मान के सर्व शब्द को भी सर्वनामसंद्या हो जाती है। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये॥ ६८॥

जहां समास को अन्तोदात्त स्वर कहा है, वहां 'ब्राह्मण्समित; राजदृषत्' इत्यादि प्रयोगों के अन्त में तकार है, तो विधानसामर्थ्य से उस व्यञ्जन को ही उदात्त हो जाना चाहिये। इत्यादि सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है—

### ६६-हल्स्वरप्राप्तौ व्यंजनमविद्यमानवन्नवति ×॥ अ०६।१।२२३॥

<sup>\*</sup> इस परिमापा के त्रागे नागेश ने (चानुकृष्टं नोत्तरत्र) यह परिमापा लिखी है। सो ठीक नहीं, क्योंकि उसका मूल कहीं महाभाष्य से वा स्त्रों से नहीं निकलता। और न कोई उदाहरण मुख्य प्रयोजन का दिया ॥

<sup>×</sup> इस परिभाषा को नागेश भट्ट तथा अन्य लोग भी महाभाष्य से विरुद्ध लिखते पढ़ते हैं कि (स्वरविधों व्यंजनमविद्यमानवत)। ऐसा पाठ करने में महाभाष्यकार ने ये दोप भी दिखाये हैं कि उदात्तादि स्वरों के विधानमात्र में जो व्यव्जन अविद्यमानवत् माना जावे तो, 'विद्युत्वान् वलाहकः' यहां विद्युत् के तकार को अविद्यमान मानें, तो हुस्व से परे मतुष् को उदात्त स्वर ( हुस्वजुद्भ्यां ) सुत्र से प्राप्त

व्यञ्जन को उदात्तादि खर प्राप्त हो, तो वह व्यञ्जन श्रविद्यमानवत् होता है।

इससे 'ब्राह्मण्समित्' त्रादि प्रयोगों में श्रन्य तकार को श्रविद्यमानवत् मानके इकार को उदास हो जाता है।

इस का ज्ञापक (यतोऽनावः) इस सूत्र में यत्प्रत्ययान्त द्वश्चच् प्रातिपदिक को आयुदात्त कहा है। स्रोर 'नो' शब्द का निषेध इसीलिये हैं कि 'नाव्यम्' यहां आयु-दात्त न हो। सो जब आदि में नकार है, तब खर के होने से आयुदात्त प्राप्त ही नहीं, फिर निषेध करने से यही प्रयोजन है कि उस नकार को भी खर प्राप्त होता है। सो अविद्यमानवत् मान के आकार को होजाता, इसिलिये निषेध किया।

तथा अनुदात्तादि वा अन्तोदात्त से परे जो कार्य कहे हैं, उन में जहां आदि और अन्त में व्यञ्जन हैं, वहां उन कार्यों की प्राप्ति नहीं होगी। वहां भी अविद्यमानवत् मान कर काम चल जाता है।

श्रीर जो कदाचित् ऐसा मान लिया जावे कि उदात्तादि गुण व्यंजनों के ही हैं, उन के संयोग से श्रचों के भी धर्म समभे जाते हैं, सो नहीं बन सकता। क्यों कि व्यंजन के विना भी केवल श्रचों में उदात्तादि धर्म प्रसिद्ध हैं। श्रीर श्रच् के विना व्यंजन का उचारण होना भी कठिन है। इसिलये उदात्तादि गुण स्वतंत्र व्यंजनों के नहीं हो सकते। परन्तु यह बात तो माननी चाहिये कि श्रच् के संयोग से व्यंजन को भी उदात्तादि गुण प्राप्त हो जाते हैं। जैसे दो रक्ने वस्त्रों के बीच एक श्वेत बस्त्र हो तो वह भी कुछ रिक्ति प्रतीत होता है॥ ६६॥

(वामदेवाड् ड्यड्ड्यो) इस सूत्र में ड्यत् और ड्य प्रत्यय 'डित्' इसिलये पढ़े हैं कि डित् के परे वामदेव शब्द के टि भाग का लोप हो जावे। सो (यस्येति च) सूत्र से तिहत के परे भसंद्वक अवर्ण का लोप हो ही जाता, फिर डित्करण व्यर्थ होकर इन परिभाषाओं के निकलने में झापक हैं—

७०-अननुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य ग्रहणम् ॥

७१-तद्नुबन्धकप्रहणे नातद्नुबन्धकस्य ग्रहणम्।। अ०४। २।६।।

अनुबन्धरहित प्रयोगों के प्रहण् में अनुबन्धसहितों का प्रहण् नहीं हो सकता।

अर्थात् जहां यत् प्रत्यय डकार अनुबन्ध से रहित पढ़ा है, श्रोर ड्यत् में डकार की इत्संज्ञा होकर यत् ही रह जाता है, जहां यत् श्रोर य प्रत्यय का प्रहण किया है

है : इत्यादि अनेक दोप आदेंगे। और (हल्स्वरप्राप्ती०) इस प्रकार की परिभाषा में कोई दोष नहीं आता। इसिंखये नागेश आदि का मानना ठीक नहीं है॥ वहां ज्यत्, ज्य प्रत्यय का प्रहण न हो। श्रोर जिस श्रनुवन्ध से जो प्रत्यय पढ़ा है, उस में द्वितीय श्रनुबन्ध के सिंहत प्रत्यय का प्रहण न हो। श्रर्थात् यत् कहने से एयत्, श्रङ् कहने से चङ्, श्रोर श्रच् कहने से एच् का ग्रहण न हो।

इस से यह आया कि (ययतोश्चातदथें) इस स्वरविश्वायक सूत्र में नज् से परे य, यत् प्रत्ययांन्त को अन्तोदात्त स्वर होता है। सो जो ड्यत्, ड्य का भी प्रहण् होवे, तो 'अवं मदेव्यम्' यहां भी अन्तोदात्त स्वर हो जावे। और पूर्वपद्पकृतिस्वर इष्ट है, इसिलिये डित्यहण् का सार्थक होना स्वार्थ में चिरतार्थ।

श्रीर श्रङ् के परे जो गुग श्रादि कार्य कहा है, सो चङ् के परे नहीं होता, श्रीर चङ् के परे जो दित्वादि कार्य कहा है, सो श्रङ् के परे नहीं होता। इत्यादि श्रनेक प्रयोजन हैं ॥ ७०—७१॥

(णवः स्त्रियामञ्) यहां णच्प्रत्ययान्त से स्वार्थ में 'ग्रञ्' प्रत्यय कहा है। सो (कर्माव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्) इस सूत्र से णच् प्रत्यय का तो स्त्रीलिंग में ही विश्वान हैं, फिर स्वार्थ में णच्प्रत्ययान्त से 'ग्रञ्' कहने से स्त्रीलिंग हो हो जाता। क्यों कि स्वार्थिक प्रत्ययों के होने में प्रकृति के लिङ्ग श्रौर वचन की श्रजुवृत्ति होती है, फिर स्त्रीग्रहण व्यर्थ हुआ। इसलिये यह परिभाषा है—

8

#### ७२-कचित्स्वार्थिका अपि प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्त्तन्ते ॥ अ०५ । ३ । ६८ ॥

कहीं २ खार्थिक प्रत्यय भी प्रकृति के लिङ्ग वचनों को छोड़ देते हैं। जब प्रकृति के लिङ्ग वचन खार्थप्रत्ययोत्पत्ति में सर्वत्र नहीं बने रहते, तो ( गुच: क्रियामञ् ) सूत्र में स्त्रीप्रहण सार्थक हो गया।

तथा 'श्रप्कल्पम्' यहां नियत स्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त 'श्रप्' शब्द से 'कल्पप्' प्रत्यय खार्थ में हुआ है, सो श्रपने लिङ्ग वचन छोड़ के नपुंसकिलङ्ग एकवचन रह जाता है।

तथा 'गुडकल्पा द्राचाः पयस्कल्पा यवागः' यहां 'गुड' पृक्षिङ्ग ग्रौर 'पयः' नपुं-सक्तिंग से 'कल्पप्' प्रत्यय होकर स्त्रीतिङ्ग हो जाता है।

श्रीर कचित् कहने से यह प्रयोजन है कि 'बहुगुडो द्रान्ता; बहुपयो यवागृः' इत्यादि में प्रकृति के श्रनुकृत ही लिङ्ग यचनं रहते हैं। इत्यादि श्रनेक प्रयोजन हैं ॥७२॥

(प्रतेरंखाद्यस्तत्पुरुषे) इस सूत्र के ग्रंश्वादिगण में 'राजन' शब्द पढ़ा है, तो उस का यही प्रयोजन है कि प्रति से परे तत्पुरुष समास में 'राजन' शब्द अन्तोदात्त होजावे। सो जब प्रतिपूर्वक राजन् शब्द से तत्पुरुष समास में समासान्त 'टच्' प्रत्यय प्राप्त है, तब तो चित् होने से अन्तोदात्त हो ही जाता, फिर राजन् शब्द का पाठ व्यर्थ हुआ। इसिल्ये यह परिमाषा है—

## ७३-विभाषा समासान्तो भवति 🕸 ।। अ०६ । २ ।१६७ ॥

समासान्त सब प्रत्यय विकल्प करके होते हैं।

तो प्रतिपूर्वक 'राजन्' शब्द से जिस पद्म में समासान्त 'रुच्'न हुआ वहां 'प्रतिराजा' मंभी अन्तोदात्त होजावे। इसिंजिये 'राजन्' शब्द का अंश्वादिगण में पढ़ना सार्थक हो गया।

तथा (द्वित्रिभ्यां पाइन्) इस सूत्र से भी बहुवीहिसमास में द्वित्रिपूर्वक मूर्ड शब्द को अन्तोदात्त स्वर कहा है, सो यहां भी द्वित्रिपूर्वक मूर्ड से जब समासान्त ष प्रत्ययविधान है, तो प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त सिद्ध ही है। फिर 'मूर्डन्' शब्द का ग्रहण इसीलिये है कि समासान्त प्रत्यय विकल्प होते हैं। सो जिस पत्त में समासान्त नहीं होता 'द्विमूर्डा; त्रिमूर्डी' यहां भी अन्तोदात्त स्वर हो जावे। इत्यादि प्रयोजनों के लिये यह परिभाषा है॥ ७३॥

'शतानि; सहस्राणि' यहां जब सर्वनामस्थान शिको मान के उम् आगम होता है, तब 'शतनः; सहस्रन्' शब्दों के नकारान्त हो जाने से (ब्लान्ता षट्) सूत्र से षट्संझा होजावे, तो (षड्भ्यो लुक्) सूत्र से शिका लुक् होना चाहिये। इत्यादि समाधान के लिये यह परिभाषा है—

## ७४-सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य ॥ अ०१ । १ ।३६।।

1

जो एक के आश्रय से दूसरे का सम्बन्ध होता है, वह 'सन्निपातें कहाँता है। उसी सन्निपातसम्बन्ध का जो निमित्त हो, ऐसा जो विधि कार्य है, वह उस अपने निमित्त के बिगाड़ने को अनिमित्त अर्थात् असमर्थ होता है।

यहां 'शतः सहस्र' शब्द से जस् आकर शि आदेश हुआ। अब शि के आश्रय से शत शब्द को नुम् होकर शत नान्त हुआ। अब जिसके आश्रय से शत को नान्तत्व गुण मिला, उस नान्तगुण से उसी का विधात करे, यह ठीक नहीं। इस से 'शतानि; सहस्राणि' आदि में शि का लुक् नहीं होता।

\* इस परिभाषा को नागेश मह ने (समासान्तविधिरनित्यः) ऐसा बिखा है, सो महाभाष्य से विरुद्ध है। क्योंकि प्रनित्य और विभाषा में बहुत भेद है। ग्रनित्य उसको कहते हैं कि जो कभी हो और कभी न हो, ग्रोर विकर्प के दो पच सदा बने रहते हैं। ग्रोर इस परिभाषा की भूमिका में 'सुपथी नगरी' यह महाभाष्य का उदाहरण करके रक्खा है, कि 'पथिन्' शब्द से (इनः खियाम्) सूत्र से समासान्त कप् नहीं हुआ, तो समासान्त ग्रानित्य हैं। सो यह नहीं विचारा कि (न पूजनात्) सूत्र से 'सुपथी नगरी' ग्रादि सब में पूजनवाची समास से समासान्त का निषेध सिद्ध है, जब कप् प्राप्त ही नहीं, तो समासान्तविध के श्रानित्य होने में 'सुपथी नगरी' यह प्रयोग कब समर्थ हो सकता है ? देखो व्याकर्य में नागेश की कितनी बड़ी मुद्ध है ॥

तथा 'इयेष; उवोष' यहां गुल् प्रत्यय के आश्रय से इष, उष धातु को गुण होता है। गुण होने से इजादि मान कर 'श्राम्' प्राप्त है, श्रोर श्राम् के होजाने से उस से परे जुक् कहा है, तो उसी गुल् का विघात हो कि जिस के श्राश्रय से 'इष; उष' इजादि हुए हैं। इत्यादि इसके श्रनेक प्रयोजन हैं।

श्रीर लोक के साथ भी इस परिभाषा का संवन्ध है कि जो पुरुष जिस धनाढ थ के थन से खयं धनवान हुआ हो, वह उसी धन से धनाढ च का विघात करे, यह बहुत विरुद्ध है, श्रर्थात् ऐसा कभी न होना चाहिये, कि जिस के संग से जो सामर्थ्य प्राप्त हो, उस सामर्थ्य से उसी को नष्ट करे॥ ७४॥

'पञ्चेन्द्राययो देवता अस्य स पञ्चेन्द्र: खालीपाक:' 'पञ्चेन्द्राणी' शब्द से देवता अर्थ में विद्वित 'अर्थ' प्रत्यय का (द्विगोर्जु गनपत्ये) सूत्र से जुक् होकर (जुक् तद्धितजुकि) सूत्र से ईकार खीपत्यय का भी जुक हो जाता है। तव 'ङीष्' के संयोग से आया जो 'आजुक्' आगम उसे का जुक्विधान किसी सूत्र से नहीं किया, सो उस 'आजुक्' का अवण हो, तो 'पञ्चेन्द्र:' आदि शब्द सिद्ध नहीं हो सकें। इसलिये यह परिभाषा है---

#### ७५-संनियोगशिष्टानामन्यतराऽभावे उभयोरप्यभावः ॥

अ०६।४।१५३॥

जिस कार्य के होने में एक साथ दो का नियम हुआ हो, उन में से जब एकका अभाव हो जावे, तब दूसरे का अपने आप अभाव हो जाता है।

जैसा — किसी कार्य का नियम है कि देवदत्त यश्चदत्त दोनों मिल के इस काम को करें, सो जो देवदत्त न रहे तो यश्चदत्त उस कार्य से खयं निवृत्त होजाता है। इसी प्रकार यहां भी 'इन्द्र' शब्द से स्त्रीत्व रूप कार्य की विवत्ता को 'ङीष्' श्रोर 'श्रानुक्' दोनों पूरी करते हैं। सो जब 'ङीष्' का श्रभाव होता है, तब 'श्रानुक्' भी वहां से निवृत्त हो जाता है।

तथा 'पञ्चाग्नाय्यो देवता अस्य स पञ्चाग्निः' यहां स्त्रीप्रत्यय के लुक् होने के पश्चात् 'ऐकार' आगम की भी नित्रृत्ति होजाती है।

इस परिभाषा का ज्ञापक यह है कि (विल्वकादिभ्यश् छ्रस्य लुक्) इस सूत्र में विल्वकादि से परे 'छु' प्रत्यय का लुक् कहा है। श्रोर उसी 'छु' प्रत्यय के संयोग से विल्वादि शब्दों को 'कुक्' होता है। सो विल्वादि शब्दों से छ का लुक् कह देते, तो कुक् श्रागम की भी निवृष्टि हो जाती। इसिलये विल्वादि शब्दों को 'कुक्' श्रागम के सिहत पढ़ उन से परे 'छु' प्रत्ययमात्र का लुक् कहा है। इस से सिद्ध हुआ कि श्रागमी की निवृष्ति में श्रागम की निवृष्ति होजाती है। तब छत कुगागम विल्वकादि से छ प्रत्यय का लुक् कहा है। इत्यादि श्रानेक प्रयोजन हैं॥ ७४॥

(तद्नुबन्धकप्रहणें) इस पूर्विलिखित परिभाषा के अनुकूल 'अण्,' प्रत्यय के आश्रय कार्य है, वह ण प्रत्यय को मान के न होना चाहिये, तो (कार्मस्ताच्छील्ये) इस सूत्र का यही प्रयोजन है कि ताच्छील्य अर्थ में 'ण्' प्रत्यय परे हो तो 'कर्मन्' शब्द के टि भाग का लोप हो, सो (नस्तद्धिते) सूत्र से नान्त भ संझक अङ्ग के टि का लोप सिद्ध ही हैं। तो ताच्छील्य अर्थ में 'कार्मः' प्रयोग बन ही जाता। फिर यह सूत्र व्यर्थ होकर इस परिभाषा का झापक है—

100

y.

## ७६-ताच्छीछिके णेऽग्कृतानि भवन्ति॥ अ०६। ४। १७२॥

तच्छील अर्थ में विद्यित 'गा' प्रत्यय के परे 'अगा' प्रत्ययाश्रित कार्य भी होते हैं।

इस से यह आया कि (अन्) सूत्र से 'अगा' प्रत्यय के परे अज्ञन्त को प्रकृतिभाव
कहा है, सो ताच्छील्य अर्थ में 'गा' प्रत्यय के परे अज्ञन्त कर्मन् शब्द को भी प्राप्त था।

इसिलिये (कार्मस्ताच्छील्ये) सूत्र में टिलोप निपातन सार्थक होगया, यह स्वार्थ में
चरितार्थ है।

अन्यत्र फल यह है कि 'चुरा शीलमस्याः सा चौरीः; तपः शीलमस्याः सा तापसी' इत्यादि प्रयोगों में ताच्छीलिक 'गु' प्रत्ययान्त से ( टिड्डाग्रज्०) सूत्र में अगुन्त से कहा 'कीप्' हो जाता है। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥ ७६॥

(दागिडनाय॰) इस सूत्र में 'भ्रोणहत्य' शब्द निपातन किया है। उस से यही प्रयोजन है कि 'भ्रूणभ्रो भाव: भ्रोणहत्यम्' यहां निपातन से तकारादेश होजावे। सो जो (इनस्तोऽचिण्णलो:) सूत्र से 'ध्यञ्' प्रत्यय के परे हन् के नकार को तकारादेश होजाता, तो फिर निपातन करना व्यर्थ है। इसिलिये यह परिभाषा है—

## ७७-धातोः कार्यमुच्यमानं तत्प्रत्यये भवति ॥ अ० ७। २। ११४॥

जो धातु को कार्य कहा है, वह उसी धातु से विहित प्रत्यय के परे हो, अर्थात् धातु को कार्य प्रातिपदिक से विहित तिहत के परे न हो।

इस से 'इन्' धातु को कहा तकारादेश 'भ्रोणहत्य' में प्रातिपदिक से विहित तिहत 'ध्यम्' के परे नहीं हो सकता। इसिलये 'भ्रोणहत्य' में तकारादेश निपातन करना सार्थक हुआ।

स्रोर सन्यत्र फल यह है कि 'भ्रोणझः' यहां 'श्रण्' प्रत्यय के परे तकारादेश नहीं होता।

तथा 'कंसपरिमृड्भ्याम्' यहां प्रातिपदिक से विहित विभक्ति के परे 'मृज्' धातु को कही वृद्धि नहीं होती।

'रज्जुसृङ्भ्याम्; देवहग्भ्याम्' यहां भावादि श्रकित् विभक्ति के परे 'सृज्' धातु को 'श्रम्' श्रागम नहीं होता। इत्यादि श्रनेक प्रयोजन हैं ॥ ७७ ॥ 'सर्वकें, विश्वकें, उचकें:, नीचकें:' यहां सर्वनाम और अन्ययसंज्ञा नहीं होनी चाहिये, क्योंकि सर्वादि में सर्व विश्व शब्द और अन्ययों में उच्चेस, नीचेस् शब्द पढ़े हैं। सो जब शब्द के सक्य का महण होता है, तो उक्त शब्दों की सर्वनाम और अन्ययसंज्ञा कैसे होगी ? और संज्ञा के विना सर्वनाम और अन्यय के कार्य भी नहीं हो सकते। इसिलये यह परिभाषा है—

## ७८-तदेकदेशभूतस्तद्यहण्येन यहाते ॥ अ०१।१।७२॥

किसी के एकदेश में कोई अन्य आजावे, तो वह उसी के प्रहण से प्रहण किया जाता है।

इस से यहां सर्व आदि शब्दों के मध्य में 'अकच्' प्रत्यय आगया, वह उसी के प्रहण् से प्रहण् किया गया, तो 'सर्वनामसंज्ञा' हो गई।

इसी प्रकार 'उच्चकै:' त्रादि में 'श्रव्ययसंद्या' होना जानो।

तथा 'ग्रहं पठामिक' यहां त्रतिङ् से परे तिङ्पद 'श्रनुदात्त' भी हो जाता है। इत्यादि श्रनेक प्रयोजन हैं॥ ७८॥

(गातिस्थाघुपा०) इस सूत्र में 'गाति' निर्देश से तो श्रदादि के 'इण्' धातु का श्रहण होना ठीक है। परन्तु 'पा' धातु के श्रहण में संदेह है कि श्रलुक्विकरण श्रदादि इन दोनों में से किस का श्रहण किया जावे ? सो जो श्रदादि के 'पा' धातु का भी श्रहण हो तो 'श्रपासीद्धनम्' यहां भी सिच् का लुक् हो जाना चाहिये। इसलिये यह परिभाषा है—

#### ७६-लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्यैव ग्रहणम् ॥

अ०७।२।४४॥

लुग्विकरण श्रौर श्रलुग्विकरण के प्रहण में जहां संदेह पड़े, वहां श्रलुग्विकरण का ही ग्रहण होना चाहिये।

इस से उक्त (गातिस्था०) सूत्र में 'पा पाने' त्रालुग्विकरण धातु का प्रहण हो जाता है, श्रोर लुग्विकरण 'पा रक्तणे' का प्रहण नहीं होता।

इस का ज्ञापक यह है कि (खरितस्तिस्यिति०) इस स्त्र में 'स्ति; स्यिति' दोनों के स्थान में 'स्ङ्' पढ़ते, तो इन्हों दोनों का प्रह्य हो जाता। क्योंकि वे ही दोनों स्ङ् हैं, तीसरा नहीं। परन्तु स्ति लुग्विकरण् अदादि और स्यित अलुग्विकरण् दिवादि का है। इससे यही आया कि सामान्य 'स्ड्' के पढ़ने से अलुग्विकरण् स्यिति का प्रह्ण होता और स्ति का नहीं होता। इसिलिये पृथक् २ दोनों का निर्देश किया गया है। इत्यादि इसके अनेक प्रयोजन हैं॥ ७६॥

(हेरचिक ) इस सूत्र में अभ्यास से परे 'हि' धातु के 'हकार' को 'कुत्व' कहा है, परन्तु वह कुत्व चक् में न हो, सो चक् ग्रिजन्त से होता है। उस चक् के परे हि की अक्ससंज्ञा ही नहीं किन्तु ग्रिच् के सिहत और ग्रिच् के परे हि की अक्स संज्ञा है। और अंगाधिकार में अक्स को कार्य का विधान वा निषेध होता है। इस चक् के परे कुत्व प्राप्त ही नहीं, फिर निषेध क्यों किया ? इसिलिये यह परिभाषा है—

## ८०-प्रकृतिप्रहृगो ण्यधिकस्यापि कुत्वं भवति॥ अ० ७।३। ५६॥

कुत्व प्रकरण में जहां मूलप्रकृति का ग्रहण है, वहां णिच्सहित प्रकृति का भी ग्रहण हो जावे।

इस से चर्क् के परे निषेध सार्थक होगया। श्रीर श्रन्यत्र फल यह है कि 'प्रजिघाययिषति' यहां गिजन्त 'हि' धातु को 'सन्' प्रत्यय के परे 'कुत्य' हो जाता है। इत्यदि प्रयोजन हैं ॥ ८०॥

(ज्यादादीयसः) इस सूत्र में जो 'ज्य' से परे 'ईयसुन्' प्रत्यय को 'श्राकारादेश' न कहते, तो भी लोप की श्रनुवृत्ति श्राकर, पर के श्रादि ईकार का लोप होकर, श्रकृत् यकारादि प्रत्यय के परे ज्य को दीर्घ हो के 'ज्यायान्' प्रयोग सिद्ध हो ही जावेगा। फिर श्राकारादेशविधान व्यर्थ होने से यह परिभाषा है—

AL

#### ८१-अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिः ॥ अ०६। ४। १६०॥

श्रंगाधिकार में कोई कार्य निष्पन्न हो गया हो, तो फिर दूसरे कार्य में प्रवृत्ति न होवे। इस से यह श्राया कि श्रंगाधिकार के एक 'ईयसुन्' लोप कार्य होने में फिर ब्रितीय कार्य दीर्घ नहीं हो सकता। इसलिये पूर्वोक्त (ज्यादादीयसः) सूत्र में श्राकारादेश सार्थक हो गया।

तथा (रीङ् ऋतः) यहां जो दीर्घ रीङ् न कहते, तो भी 'मात्रीयति' श्रादि में श्रकृत् यकारादि प्रत्यय के परे दीर्घ हो जाता। फिर दीर्घ 'रीङ्' ग्रह्ण का यही प्रयोजन है कि रिङ् किये पीछे दीर्घ नहीं हो सकता। इसिलये दीर्घ रीङ् पढ़ना चाहिये। इत्यादि श्रमेक प्रयोजन हैं ॥ ८१॥

'परमात्मानं नमस्करोति नमस्यति वा' इत्यादि प्रयोगों में 'नमः' शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति ( नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंबषट्योगास्व ) इस सूत्र से होनी चाहिये। सो इस समाधान के लिये यह परिभाषा है—

## ८२-उपपद्विभक्तेः कारकविभक्तिर्बळीयसी ॥ अ० २ । ३ ।१६ ॥

उपपव्विभक्ति से कारकविभक्ति बलवान् होती है।

'उपपद्विभक्ति' वह कहाती है कि जहां कर्माद् कारक व्यवस्था से किसी निज विभक्ति का नियम न किया हो। श्रीर जहां कर्माद् कारक व्यवस्था से नियत विभक्ति होती है, उस को 'कारक विभक्ति' कहते हैं। सो 'परमात्मने नमः' गुरवे नमः' इत्यादि में तो उपपद्विभक्ति चतुर्थी हो जाती। श्रीर 'परमात्मानं नमस्करोति' इत्यादि में उपपद्विभक्ति को वाध के कारकविभक्ति हो जाती है।

तथा 'गा: खामी व्रजति' यहां 'खामी' शब्द के योग में उपपद विभक्ति षष्ठी सप्तमी (खामीश्वराधिपति०) इस सूत्र से प्राप्त है, परन्तु 'व्रजति' क्रिया में गौश्रों को कर्मत्य होने से द्वितीया विभक्ति हो जाती है, इत्यादि ॥ ८२॥

'मिमार्जिषति' यहां 'मृज्+सन्+तिप्' इस अवस्था में बह्रपेत्त वृद्धि की अपेत्ता में अल्पापेत्त अन्तरङ्ग होने से द्वित्व होकर, परत्व से अभ्यासकार्य होके, 'मिम्ब्ज्+सन्+ तिप्' इस अवस्था में इकार ऋकार दोनों को वृद्धि प्राप्त हैं। सो जो अभ्यास को भी वृद्धि होजावे, तो हस्व का अपवाद होने से फिर हस्व नहीं हो सकता। तो 'मिमार्जिषति' आदि प्रयोग भी सिद्ध नहीं हो सकते। इसक्तिये यह परिभाषा है—

#### ८३ - अनन्त्यविकारे उन्त्यसदेशस्य कार्यं भवति ॥ अ० ६ । १ । १३ ॥

जहां श्रनन्त्य श्रोर श्रन्त्य वर्ण के समीपस्थ दोनों वर्ण को जो कार्य प्राप्त हो, वहां श्रन्त्य के समीपस्थ वर्ण को कार्य होना चाहिये, श्रोर दूरस्थ व्यवहित पूर्ववर्ण को नहीं होने।

इससे 'मिमार्जिषति' में श्रभ्यास को वृद्धि नहीं होती।

तथा 'अदोऽश्चिति; अद्मुयक्' यहां 'किए' प्रत्ययान्त 'अञ्चु' धातु के परे 'अद्स्' शब्द के टि भाग को 'अद्रि' आदेश होकर 'अद्युक्' इस अवस्था में (अद्सी-ऽसेर्दाहुदोम:) इस सूत्र से दोनों दकारों से परे उ और दकारों को मकार प्राप्त है। सो इस परिभाषा से अन्त्य को होता है, अनन्त्य पूर्व को नहीं। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥ दे३॥

'देहि; घेहि' इत्यादि प्रयोगों में जो अभ्यास का लोप होता है, सो अलोन्त्यविधि मान के अन्त्य अल् का लोप होने, तो 'देहि; घेहि' आदि प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकें। इसलिये यह परिभाषा है—

#### ८४-नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥ अ०१ । १ । ६५ ॥

अनर्थक ग्रन्द को कहा कार्य अन्त्य अल् को न हो, परन्तु अभ्यास विकार को छोड़ के। धातु को जो द्वित्व किया जाता है, उसमें एक भाग अनर्थक श्रीर दोनों भाग सार्थक होते हैं, क्योंकि वहां शब्दाधिक्य होने से श्रर्थाधिक्य नहीं हो जाता। इससे अनर्थक अभ्यास का लोप अन्त्य श्रल् को न हुआ, तो 'देहि; धेहि' आदि प्रयोग सिद्ध हो गये।

तथा ( श्रव्यक्तानुकरण्यात इती ) इससे 'श्रत्' भाग को कहा परक्षप इस परिभाषा के श्राश्रय से श्रन्य श्रल् को नहीं होता=घटत्+इति=घटिति; पटिति । इत्यादि श्रनेक प्रयोजन हैं ॥ ८४॥

जैसे 'ब्राह्मण्थ ब्राह्मण्रे च ब्राह्मण्रेः वत्सश्च वत्सा च वत्सी' यहां स्त्रीवाचक शब्द के साथ पुरुषवाची शब्द एकशेष रह जाता है, वैसे 'ब्राह्मण्वत्सा च ब्राह्मणी-वत्सश्च' यहां भी एकशेष होना चाहिये। इसलिये यह परिभाषा है—

#### 

जहां प्रधान श्रोर श्रप्रधान दोनों में कार्य प्राप्त हों, वहां प्रधान में कार्य होना निश्चित रहे, श्रप्रधान में नहीं।

'ब्राह्मणुवत्सा च व्राह्मणीवत्सश्च' यहां स्त्रीत्व श्रोर पुंस्त्व स्वार्थ में श्रप्रधान श्रोर स्वस्वामिसम्बन्ध में प्रधान हैं, इसलिये एकशेष नहीं होता, इत्यादि ।

तथा लोक में भी और किसी ने किसी से पूछा कि यह कोन जाता है, उसने उत्तर दिया कि राजा। यद्यपि राजा के साथ सेनादि सब थे, तथादि प्रधान राजा का प्रहण होता। और दो मजुष्यों का देवदत्त नाम हो, तो उन में जो प्रधान होता है उसी से व्यवहार किया जाता है ॥ ८४॥

'स्वस्नादिगण' में 'मातृ' शब्द पढ़ा है, उससे 'ङीप्' प्रत्यय का निषेध किया है, सो जननीवाचक है। स्रोर परिमाण स्रर्थात् तोलन करने वाली सामान्य स्त्री को भी 'मातृ' कहते हैं, सो दोनों का निषेध हो वा किसी एक का ! इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है—

#### ८६-अवयवप्रसिद्धेः समुदायप्रसिद्धिंबलीयसी ॥

श्रवयव की प्रसिद्धि से समुदाय की प्रसिद्धि वलवान होती है।

अवयव की अवृत्ति थोड़े अंश में और समुदाय की अवृत्ति बहुत अंश में होती है। इस कारण जननीवाचक मातृ शब्द के रूढि होने से अवयव मानकर स्वस्नादिगण से डीप का निषेध होजाता है। और परिमाणकर्त्तृ वाचक 'मातृ' शब्द के यौगिक होने से समुदायवाची मान कर स्वस्नादि गण से डीप का निषेध नहीं होता। अर्थात् परिमाण-वाचक 'मातृ' पुरुष हो तो 'माता, मातारों, मातारः' और स्त्री हो तो 'मात्री, मात्र्यों, मात्र्यः' ऐसे प्रयोग होंगे। इस पारिभाषा के इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ६६॥

(श्रिच विभाषा) इस सूत्र में 'ग्' धातु के रेफ को लकारादेश होता है। सो जहां कराठवाची गल शब्द है, वहां भी लत्व का विकल्प हो, तो गर शब्द भी कराठवाचक होजावे। सो नियम से विरुद्ध है। क्योंकि 'गर' शब्द केवल विष का वाची और 'गल' शब्द कराठवाची है। इन दोनों के अर्थ में लत्व के विकल्प से व्यभिचार होजाना चाहिये। इस के समाधान के लिये यह परिभाषा है—

#### ८७-व्यवस्थितविभाषयाऽपि कार्याणि क्रियन्ते ॥

व्यवस्थित विभाषा से भी कार्य किये जाते हैं।

'व्यविश्वित विभाषा' उसको कहते हैं कि जिस कार्य का विकल्प किया हो, वहीं कार्य किसी नियतार्थवाचक शिष्टप्रयुक्त शब्द में नित्य हो जावे, और किसी में हो ही नहीं। और जहां सब प्रयोगों में उस कार्य का होना न होना दोनों भेद रहें, तो उसको 'श्रव्यविश्वित विभाषा' कहते हैं।

इससे कएठवाची गल शब्द में नित्य लत्य हो जाता है। इसके उदाहरखों की कारिका महाभाष्य की यह है कि--

## देवत्रांतो गको ग्राह इतियोगे च सिद्धिः। मिथस्ते न विभाष्यन्ते गवाचः संशितवतः।।

'देवश्चासो त्रातो देवत्रातः' यहां संज्ञावाचक 'त्रात' शब्द में ( तुद्विदोन्द्त्रा० ) इस सूत्र से निष्ठा के 'तकार' को 'नकार' नित्य ही नहीं होता, श्रौर कियावाचक में तो 'त्रायम्; त्रातम्' दोनों होते हैं।

'गल' शब्द का लिख दिया। सामान्य यौगिकवाची 'गरः; गलः' दोनों ही होते हैं। (विभाषा श्रहः) इस सूत्र में 'श्रह' धातु से 'ग्र' प्रत्यय होकर 'श्राहः' प्रयोग बनता है। सो यह जलजन्तु की संज्ञा है। इस में नित्य य हो जाता है। श्रोर जहां नक्षत्र श्रादि लोकवाची में श्रह शब्द श्रच् प्रत्ययान्त होगा, वहां ग्र नहीं होता।

तथा 'इति' शब्द के योग में सत्संज्ञक 'शृतः, श्रानच्' प्रत्यय विकल्प से प्राप्त भी हैं। जैसे—'इन्तीति पलायते; वर्षतीति भावति' यहां प्रथमासमानाभिकरण में व्यय-स्थितविभाषा मानकर नित्य नहीं होते।

'गवान्तः' यह भरोखा की संद्वा है। यहां 'गो' शब्द को 'श्रवङ्' श्रादेश विकल्प से प्राप्त है, सो नित्य ही हो जाता है। श्रीर जहां 'गौ' के 'श्रन्त' नेत्र का नाम होगा वहां 'गवान्तम्, गोश्रन्तम्, गोऽन्तम्' ये तीन प्रयोग हो जावेंगे।

श्रीर 'संशितवतः' यहां (शाच्छ्रोरन्यतरस्याम्) इसं सूत्र से तादि कित् के परे 'शो' धातु को विकल्प से प्राप्त इकारादेश नित्य होता है। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥ 🗝॥

(ग्राशंसायां भूतवच ) इस सूत्र में प्रिय पदार्थ की इच्छा-संबन्धी भविष्यत् काल में भूतवत् ग्रीर वर्त्तमानवत् प्रत्यय कहे हैं। श्रर्थात् भूतकालिक जिस अर्थ में प्रकृति से जो प्रत्यय कहा है, वह प्रत्यय उसी अर्थ में उसी प्रकृति से होना चाहिये।

सो सामान्यभूत में निष्ठा और लुङ् आदि होते हैं, और अनद्यतनभूत में लङ् तथा परोज्ञानद्यतनभृत में लिट् होता है । इस में यह सन्देह है कि भूतवत् कहने से सामान्यमूतकालिक प्रत्ययों का अतिदेश होवे वा सामान्य विशेष दोनों का ? इसलिये यह परिभाषा है-

## ८८-सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः ॥

जहां सामान्य श्रीर विशेष दोनों का श्रतिदेश प्राप्त हो, वहां विशेष का श्रतिदेश नहीं होता।

इससे सामान्यभूत के अतिदेश में विशेषभूत में विहित लङ् लिट् का अतिदेश

नहीं होता, इत्यादि ॥ ८८ ॥

(सनाशंसभित्त ड:) इस सूत्र में 'सन्' धातु वा 'सन्' प्रत्यय का ग्रहण होना चाहिये ? इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है-

## ८६-प्रत्ययाप्रत्यययोः प्रत्ययस्यैव ब्रह्णम् ॥ अ०६ । ४ । १ ॥

जहां प्रत्यय श्रीर श्रप्रत्यय दोनों का एकखरूप होने से प्रहण हो सकता हो, यहां प्रत्यय ही का प्रह्रण हो, श्रप्रत्यय का नहीं।

इसिलिये 'सन्' धातु का प्रहृण नहीं होता, किन्तु सन् प्रत्ययान्त से उ प्रत्यय

होता है।

तथा 'चिचीषति; तुपूषति' यहां सन् के परे अजन्त को दीर्घ होता है। सो 'दिध सनोति; मधु सनोति' यहाँ सन् धातु के परे दीर्घ नहीं होवे। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८६॥

(विषराभ्यां जे:) इस सूत्र में वि परा पूर्वक 'जि' घातु से आत्मनेपद कहा है। सो 'परा जयित सेना' यहां सेना शब्द के विशेषण परा शब्द से परे भी खात्मनेपद होना

चाहिये ? इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है-

## ६०-सहचारतासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम् ॥

सहचारी और असहचारी दोनों का जहां प्रहण हो सकता हो, वहां सहचारी का ही ग्रहण हो, ग्रीर ग्रसहचारी का नहीं।

'विजयते; पराजयते' यहां ऋात्मनेपद् हो गया । ऋौर 'बहुविजयित वनम्; परा जयित सेना' यहां न हुन्ना। क्योंकि जहां वि, परा, केवल उपसर्ग हैं, वहां हो। यहां बहुवि वन का और परा सेना का विशेषण, अर्थात् दोनों अनुपसर्ग हैं, वहां आत्मने-पद नहीं होता । 'वन' और 'सेना' के विशेषण में 'वि' श्रीर 'परा' शब्द उपसर्ग के सहचारी नहीं हैं, इस कारण वहां त्रात्मनेपद नहीं हुआ।

तथा ( पंचम्पपाङ्परिभिः ) यहां कर्मप्रवचनीय अप् आङ् और परि के योग में पंचमी विभक्ति होती है। सो दर्जनार्थं अप् शब्द के साहचर्य से 'वृद्धं परि विद्योतते विद्युत्' यहां लक्त्या अर्थं में पंचमी विभक्ति नहीं होती। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥ ६०॥

जैसे 'अहो आश्चर्यम्; उताहो इमे' इत्यादि में ओकारान्त निपात की प्रगृह्यसंज्ञा होकर प्रकृतिभाव होजाता है, वैसे 'अतिरिह्तर' समप्यत=तिरोऽभवत्' यहां विवप-त्यान्त लाज्ञिक ओकारान्त की निपातसंज्ञा होकर प्रगृह्यसंज्ञा होजावे, तो प्रकृतिभाव होना चाहिये। इसलिये यह परिभाषा है—

## ६१ - लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैन ग्रहणम् ॥ अ०१।१।१५।।

लच्चण नाम जो सूत्र से कार्य होकर वना हो वह 'लाक्सिक,' ग्रोर जो स्वामा-विक है, वह 'प्रतिपदोक्त' कहाता है। उन लाक्सिक ग्रोर प्रतिपदोक्त के वीच में जहां संदेह पड़े, वहां प्रतिपदोक्त को कार्य हो, ग्रोर लाक्सिक को नहीं।

इससे 'तिरोऽभवत्' यहां लाचि शिक्ष श्रोकारान्त निपात की प्रगृह्यसंद्वा होकर प्रकृतिभाव नहीं होता।

तथा 'आशिषा तरित=आशिषिकः' यहां इस भाग के लाचिशक होने से (इसुसु-कान्तात्कः) सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय को ककारादेश नहीं होता । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६१॥

इस परिभाषा के होने में ये दोष हैं कि —जो (दाधाद्यदाप्) सूत्र से दा धा की घु संज्ञा होती है, सो 'देड् रक्षणे; दो श्रवखएडने; घेट् पाने' आदि की घु संज्ञा नहीं होनी चाहिये, क्योंकि 'दुदाज्; दुधाज्' प्रतिपदोक्त और देड् श्रादि लाक्षणिक हैं। इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है—

#### ९२-गामादाग्रहणेष्त्रविशेषः ॥ अ० १ । १ । २० ॥

गा, मा, दा ये तीनों जिन सूत्रों में प्रहण किये हों, वहां सामान्य करके लाचि कि खाँर प्रतिपदीक्त दोनों का प्रहण होता है।

इस से 'देड़्' श्रादि लाचिंगिक धातुत्रों की भी घु संज्ञा हो जाती है।

'दैए' धातु में पित् पढ़ने का यही भयोजन है कि जो दाप की घु संज्ञा का निषेध है, सो दै मात्र के पढ़ने से प्राप्त नहीं था, इसिलये पित् किया। सो जो लाज्ञाणिक दे मात्र की घु संज्ञा प्राप्त ही नहीं थी, तो निषेध के लिये पित् क्यों पढ़ा है इस से यह आया कि लाज्ञणिक की भी घु संज्ञा होती है।

(घुमास्थागापाजहातिसां हिला) यहां 'मा' करके 'मेड्' श्रादि को भी ईकारादेश होता है=मीयते; मेमीयते इत्यादि । गा करके गै श्रादि भी लिये जाते हैं=गीयते; जेगीयते। 'इड्' धातु के स्थान में जो 'गाड्' श्रादेश होता है, उस का भी श्रहण होता है, जैसे 'श्रध्यगीष्ट; श्रध्यगीषाताम्' इत्यादि बहुत प्रयोजन हैं ॥ ६२ ॥ (वृद्धिरादेच्) सूत्र में आ, ऐ, ओ इन तीनों की वृद्धिसंज्ञा होती है। इस में यह संदेह होता है कि जो तीनों वर्ण की एक साथ वृद्धिसंज्ञा होजावे तो 'कारकः' आदि में एक साथ तीनों वर्ण वृद्धि होने चाहियें। इसिलये यह परिभाषा है—

## ९३-प्रत्यवयवं वाक्यपरिसमाप्तिः ॥ अ०१।१।१॥

वाक्य की समाप्ति प्रत्येक अवयव के साथ होती है। अर्थात् जहां समुदाय को कार्य कहा है, वहां वाक्यस्थ क्रिया जब प्रत्येक अवयव के साथ सम्बन्ध कर लेती हैं,

14

तव उस को पूर्ण वाक्य कहते हैं।

जैसे किसी ने कहा कि 'देवद्त्तयज्ञद्त्तविष्णुमित्रा मोज्यन्ताम्,' यद्यपि यहां यह नहीं कहा कि देवद्त्त, यज्ञद्त्त ग्रोर विष्णुमित्र को पृथक् २ मोजन कराग्रो, तथापि मोजन किया प्रत्येक के साथ सम्बन्ध रखती है। इसी प्रकार यहां न्ना, ऐ, ग्रो की वृद्धि संज्ञा पृथक् कही है, इसी से प्रत्येक वर्ण के साथ वृद्धि का सम्बन्ध पृथक् २ रहता है। ऐसे ही गुणु ग्रादि संज्ञा भी प्रत्येक की होती है ॥ १३॥

अब इस पूर्वोक्त परिभाषा से यह दोष आया कि जो (हलोऽनन्तरा: संयोगः) यहां प्रत्येक वर्ष की संयोगसंक्षा रहे तो 'निर्यायात्; निर्वायात्' यहां 'या; वा' धातु को संयोगादि मान कर (वान्यस्य संयोगादेः) इस सूत्र से एकारादेश होना चाहिये। इत्यादि अनेक दोष आवेंगे। इसिलये यह परिभाषा है—

#### ९४-समुदाये वाक्यपरिसमाप्तिः ॥ अ० १ । १ । ७ ॥

कहीं ऐसा भी होता है कि समुदाय में वाक्य की परिस्रमाप्ति होवे । अर्थात् वाक्यस्थ किया का केवल समुदाय के साथ सम्बन्ध रहे । और प्रत्येक अवयव के साथ

पृथक् २ सम्बन्ध न होवे।

जैसे राजा ने आजा की कि 'गर्गाः शतन्दराड्यन्ताम्,' यहां गर्गों पर सो रुपये दराड कहा, तो उन में प्रत्येक पर सौ २ दराड किया जावे वा समुदाय पर १ तो जैसे समुदाय पर एक दराड होता है, वैसे ही समुदित हलों की संयोगसंज्ञा होती है। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६४॥

(वृद्धिरादेव्) सूत्र प्रं म्रा, ऐ, म्रो इन तीन दीर्घ वर्णों की वृद्धिसंद्वा की है, फिर म्राकार तपर क्यों पढ़ा, क्योंकि सवर्णप्रहणपरिभाषा से म्रचरसमाम्राय का ही म्राण् सवर्णप्राहक है। परन्तु जो म्रचरसमाम्राय में हस पढ़ते हैं, उन्हों का प्रहण होगा, दीर्घों का नहीं। फिर दीर्घ से सवर्णप्रहण की प्राप्ति ही नहीं। म्रोर तपरकरण का यही प्रयोज्जन होता है कि तपर से भिन्नकालिक सवर्णी का प्रहण न हो। इस के समाधान के लिये यह परिभाषा है—

#### ६५-मेदका उदात्ताद्यः॥ अ०१।१।१॥

जिस वर्ण के साथ जो उदात्तादि गुण लगता है, वह उसको सभाव से भिन्न कर देता है, परन्तु कालभेद नहीं होता।

दीर्घ उदात्त, दीर्घ अनुदात्त, दीर्घ खरित इन में काल का तो भेद नहीं परन्तु उद्यत्व, नीचत्व, समत्व आदि का भेद है। सो जो आकार को तपर न पढ़ते तो भी अभेदकों का अहण होही जाता। फिर तपर से यही प्रयोजन है कि मिन्नधर्मवाले तात्-कालिक उदात्तादि का भी अहण होजावे। इसलिये आकार में तपरकरण सार्थक हुआ। तथा अभ्यत्र भी दीर्घ वर्णों को तपर पढ़ने का यही प्रयोजन है।

श्रीर लोक में भी उदात्तादि का भेद दील पड़ता है। जैसे कोई विद्यार्थी उदात्त के स्थान में श्रनुदात्त वोले तो श्रध्यापक उसको शासन करता है कि तू श्रन्यथा क्यों बोलता है। सो जो उदात्तादि में भेद नहीं होता, तो शासन भी नहीं वन सकता। श्रीर यह भी दृष्टान्त है कि एकजल शीत, उष्ण श्रीर खारी श्रादि भेदक गुणों के होने से भिन्न २ हो जाता है। इत्यादि श्रनेक प्रयोजन हैं॥ ६४॥

इस पूर्वोक्त विषय में ऐसे भी दृष्टान्त मिलते हैं कि एक देश्द्त स्वाक, युवा, वृद्ध आदि अवस्था गुणों और सुरह, जटिल आदि गुणों से वही बना रहता है, कोई भिन्न नहीं होजाता । इस से यह भी आया कि गुण अभेदक हैं। और (यासुट् परस्मेपदेश्वदात्तो कि हा इस सूत्र में 'यासुट्' को उदात्त न कहते किन्तु उस को उदात्त ही पढ़ देते तो उदात्तादि गुणों के भिन्न २ होने से उदात्त के पढ़ने में अनुदात्त हो ही नहीं सकता। फिर उदात्त शहण व्यर्थ हुआ। इसलिये यह परिभाषा है—

#### ६६-अभेद्का गुणाः ॥ अ० १ । १ । १ ॥

उदात्तादि गुण अभेदक होते हैं। अर्थात् गुणी के खरूप को कुछ भी नहीं बदल सकते।

इसीलिये (श्रस्थिद्धि०) इत्यादि सूत्रों में उदात्त वा श्रनुदात्त पढ़ा है। जो उदात्तादि शन्दों से उदात्त नहीं पढ़ते, तो श्रभेदक होने से विशेष गुणी का ज्ञान नहीं होता। इस से उदात्तादि शन्दों का पढ़ना सार्थक हो गया।

इन गुणों के अभेदक पत्त में दीघों को तपर पढ़ने का द्वितीय समाधान है। (आदेच्) यहां तो आकार के तपर पढ़ने का यही प्रयोजन है कि तकार से परे पे आं तपर माने जावें, तो 'महा ओजा:=महौजा:' यहां चार मात्रिक स्थानी के स्थान में चार मात्राओं का आदेश भी पाप्त होता है, सो न हो, किन्तु द्विमात्रिक ही 'प्, पे, आं, आं' आदेश होवें। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं। इन दोनों में गुणों का अभेदकपत्त ही वलवान् है। १६॥

(सर्वादीनि सर्वनामानि) इस सूत्र में सर्वनामशब्द में णुत्वनिषेध निपातन किया है। सो उस को सूत्र में चरितार्थ हो जाने से लोकिक प्रयोगविषय में सर्वनाम शब्द को णुत्व होना चाहिये। इसलिये यह परिभाषा है—

#### ६७-बाधकान्येव हि निपातनानि ॥ अ० १ । १ । २७ ॥

जिस अप्राप्त कार्य का विधान वा प्राप्त का निषेध निपातन से कर दिया हो, वह सर्वथा वाधक हो जाता है, फिर वह वैसा ही प्रयोगकाल में भी रहेगा। इस से 'सर्वनाम' आदि शब्दों में गुत्वनिषेध आदि कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥ ६७ ॥
'स्यन्तस्यित' इस 'स्यन्दू' धातु के प्रयोग में 'इट' का विकल्प अन्तरक और
निषेध विहरक है । सो जो अन्तरक कार्य करने में विहरक असिद्ध माना जावे, तो
परसीपद में भी इट् का विकल्प होना चाहिये ? इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह
परिभाषा है—

६८-प्रतिषेधाश्च बलीयांसो भवन्ति ॥ अ०१।१।६३॥

पर, नित्य और अन्तरङ्ग से भी प्रतिषेध बलवान् होते हैं। इस से अन्तरङ्ग भी इट्विकल्प को बाध के नित्य प्राप्त इट् का निषेध हो जाता है। इत्यादि प्रयोजन हैं॥ ६८॥

( त्रइउण् ) त्रादि प्रत्याहार सूत्रों में जो 'ण्; क्' त्रादि श्रजुवन्ध पढ़े हैं, उनका श्रच् के प्रहण् से प्रहण् किया जावे, तो 'दिध णकारीयित; ऊरीकरोति' इत्यादि में णकार ककार के परे इकार ईकार को यणादेश होना चाहिये। इसिलये यह परिभाषा है—

#### हर-सर्वविधिभ्यो छोपविधिर्बेहीयान् ॥

सब विधियों से लोपविधि बलवान् होती है।

इससे 'णु; क्' आदि अनुवन्धों का प्रत्याहार की प्रवृत्ति से पहिले ही लोप हो जाता है। फिर 'अच्' में यकार ककार के न रहने से 'दिध गुकारीयति; ऊरीकरोति' आदि में यगादेश नहीं होता, इत्यादि।

श्रीर लोक में भी यही रीति है कि किसी का मृत्यु श्रा जावे तो सब कामों का वाधक हो जाता है। श्रर्थात् श्रदर्शन श्रम्रहण होता है॥ ६६॥

'श्रर्थ प्रत्याययित स प्रत्ययः' जो श्रर्थ का निश्चय करावे वह 'प्रत्यय' कहाता है । इस श्रर्थ के न होने से केवल खार्थ में विहितों की गृत्ययसंद्धा नहीं होने । इसिलये यह परिभाषा है—

१००-स्रनिर्दिष्टार्थाश्च प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति॥ स्र०३।२।४॥

जिन प्रत्ययों की उत्पत्ति में कोई विशेष अर्थ नियत न किया हो, वे खार्थ में हों, अर्थात् प्रकृत्यर्थ के सहायक और बोधक रहें। इसी से वे प्रत्यय कहावें।

जैसे (गुप्तिज्किद्भ्यः सन्; यावादिभ्यः कन्) इत्यादि प्रत्यय स्वार्थं में होते हैं=जुगुप्सते, यावकः इत्यादि ॥ १०० ॥

(सुपि स्थः) इस सुत्र से कर्त्ता में प्रत्यय होते हैं। इसिवये 'श्राखूनामुत्थानमा-खूत्थः' इत्यादि प्रयोगों में भाव में 'क' प्रत्यय नहीं हो सकता। इसिवये यह परिभाषा है—

#### १०१-योगविभागादिष्टसिद्धिः ॥

जहां इष्टकार्य की सिद्धि न हो, वहां योगविभाग करना चाहिये। श्रौर योग-विभाग करके इष्टकार्य साधलेना, श्रनिष्ट नहीं होने देना। (सुपि) इतना पृथक् सूज किया, तो यह अर्थ हुआ कि सुवन्त उपपद हो तो आकारान्त धातु से क प्रत्यय हो। इस से 'कच्छेन पिवति कच्छपः, कटाहपः, द्वाभ्यां पिवति द्विपः' इत्यादि प्रयोग सिद्ध हुये। पीछे (स्थः) इतना पृथक् किया तो यह अर्थ हुआ कि स्था धातु से सुवन्त उपपद हो तो क प्रत्यय हो।यहां योगविभाग करके कर्ता से हटाया तो स्वार्थ भाव में 'आखूत्थः' आदि प्रयोग सिद्ध होगये। इसी प्रकार सर्वज जानो॥ १०१॥

लाघव गोरव का विचार सर्वत्र रहता है कि जहां तक हो थोड़ा वचन पढ़के बहुत अर्थ निकालना, परन्तु—

#### १०२-पर्यायशब्दानां लाधवगौरवचर्चा नाद्रियते ॥

पर्याय शब्दों में थोड़े बहुत होने का विचार नहीं करते, कि जहां थोड़े वचन से काम चल सकता है, तो उस का पर्याय अधिक अच्चर का शब्द न पढ़ना।

जैसे 'अन्यतरस्याम्; विभाषा; वा; उभयथा' इत्यादि एकार्थ शब्दों में किसी को पढ़ दिया, यह नियम नहीं कि इतना अधिक क्यों पढ़ा, इत्यादि ॥ १०२ ॥

जो ज्ञापकरूप परिभाषात्रों से कार्य सिद्ध होते हैं, वहां सर्वत्र ज्ञापकसिद्ध की अवृत्ति नहीं होती। इसिलिये यह परिभाषा है—

#### १०३-जापकिसद्धं न सर्वत्र ॥

जैसे अर्थवान् और अनर्थक के प्रह्या में ज्ञापकसिद्ध परिभाषा से अर्थवान् को कार्य होता है, सो अन्नन्त को कहा कार्य 'किनन्' प्रत्यय के परे सार्थक 'अन्' को और मन् प्रत्यय के तिरर्थक 'अन्' को भी होते हैं॥ १०३॥

त्रिपादी में हुआ कार्य सपादसप्ताऽध्यायी में असिद्ध माना जाता है। सो 'द्रोग्धा द्रोग्धा; द्रोढा द्रोढा' यहां त्रिपादिस्थ (वा द्रुष्टमुद्द०) सूत्र से हकार को घ और ढ आदेश होते हैं। सो जो द्वित्व करने में उस घ को असिद्ध मानें, तो द्वित्व के एकभाग में घ और द्वितीय भाग में ढ आदेश रहना चाहिये। इसिल्ये यह परिभाषा है—

#### १०४-पूर्वत्रासिद्धीयमद्विवचने ॥ अ० ८ । १ । १ ॥

त्रिपादी का कार्य द्वित्व करने में श्रसिद्ध न माना जावे।

इससे 'द्रोग्धा द्रोग्धा' श्रादि में ढत्व नहीं होता। तथा 'तुन्नं तुन्नम्, तुत्तं तुत्तम्' यहां भी द्वित्व केएक भागों में न श्रोर एक में तकार प्राप्त है, सो न हो, इत्यादि ॥१०४॥

जैसे 'गोणु खाम्यखेणु च' यहां एक खामी शब्द के योग में दोनों भिन्नारुति शब्दों में एकाकृति सप्तमी विभक्ति होती है, वेसे गो शब्द में सप्तमी और श्रश्य में पष्ठी विभक्ति क्यों नहीं होती ? इसलिये यह परिभाषा है—

१०५-एकस्या आकृतेश्चरितः प्रयोगो द्वितीयस्यास्तृतीयस्यार्च न भवति ॥ अ० १ । ३ । ३६ ॥ जहां एक त्राकृति का प्रयोग चरितार्थ होता है, वहां द्वितीय वा तृतीय अन्यार्थ सम्भव कारक का प्रयोग नहीं होता।

इससे वहां 'श्रव्य' शब्द में षष्टी नहीं हो सकती। क्योंकि एकाकृति सप्तमी विभक्ति का चरितार्थ है। श्रीर षष्टी के होने से भिन्नार्थ भी सम्भव हो जावे॥ १०४॥

'विद्याध' इत्यादि प्रयोगों में परत्व से (हलादि: शेष:) इस सूत्र से अभ्यास के यकार का लोप होजावे, तो वकार को संप्रसारण प्राप्त होता है। इसलिये यह परिभाषा है—

#### १०६-संप्रसारगां संप्रसारणाश्रयं च कार्यं बलीयो भवति ॥

अ०१।१।१७॥

जो संप्रसारण और संप्रसारण के आश्रय कार्य हैं, वे दोनों वलवान होते हैं। इस से (हलादि: शेष:) सूत्र से प्राप्त परलोप को भी वाध के प्रथम यकार को संप्रसारण हो गया, तो फिर 'विव्याध' आदि प्रयोग वन गये।

तथा 'जुहवतु:; जुहुतु:' यहां संप्रसारण श्रीर हा धातु के श्राकार का श्रजादि श्रार्क्षधातुक के परे लोप भी प्राप्त है, परत्व से लोप होना चाहिये। बलवान् होने से संप्रसारण हो जाता है। श्रीर संप्रसारण हुए पीछे भी श्राकारलोप तथा संप्रसारणाश्रय पूर्वक्रप भी प्राप्त है। परत्व से श्राकारलोप होना चाहिये। बलवान् होने से संप्रसारणा-श्रय पूर्वक्रप हो जाता है। इत्यादि श्रनेक प्रयोजन हैं॥ १०६॥

जब ग्रुक्त नील त्रादि गुण्याचक शब्द त्रपने केवल गुण्याचकपन त्रथीत् स्वतंत्र त्रथं में पुलिक्तादि किसी थिशेष लिक्त वा एकत्वादि वचन का त्राश्रय करने से नहीं प्रतीत होते, पुनः जब इन का द्रव्य के साथ समानाधिकरण हो, तव कोन लिक्त वचन इन में होना चाहिये ? इसलिये यह परिभाषा है—

#### १०७-गुणवचनानां हि शब्दानामाश्रयतो लिङ्गवचनानि भवन्ति॥

अ०१।२।६४॥

गुणवाची शब्द जिस द्रव्य के आश्रित हों, उस द्रव्यवाचक शब्द के जो लिङ्ग यचन हों, वे ही गुणवाचक शब्द के भी हो जावें।

जैसे—'शुक्तं वस्त्रम्, शुक्ता शाटी, शुक्तः कम्वतः; शुक्तो कंवलो, शुक्ताः कम्बताः' इत्यादि । इसी प्रकार सर्वत्र जानो ॥ १०७ ॥

जैसे 'कष्टं श्रित:=कष्टश्रित:' इत्यादि में समास हो जाता है, यैसे 'महत् कष्टं श्रित:' यहां भी समास होना चाहिये, इसलिये यह परिभाषा है—

#### १०८-सापेक्षमसमर्थं भवति ॥ अ०२।१।१॥

जो पद विशेष्यविशेषणभाव से द्वितीय पद के साथ सम्बंन्ध रखता हो, वह सापेच होने से समास होने में असमर्थ कहाता है, उस का समास नहीं हो सकता। इस कारण महत् शब्द विशेषण के साथ कप्टसापेच होने से पर के साथ समास को प्राप्त नहीं होता।

तथा 'भार्या राज्ञ: पुरुषो देवदत्तस्य' यहां भार्या के साथ राजन् श्रन्द सापेक्ष विशेषण, श्रोर देवदत्ताः विशेषण के साथ पुरुष सापेक्ष है। इसलिये राजन् श्रोर पुरुष दोनों के परस्पर श्रसमर्थ होने से समास नहीं होता। इत्यादि श्रनेक प्रयोजन हैं॥ १०८॥

ंपरीयात्। अतीयात्' यहां परि + इयात् दो इकार को दीर्घ एकादेश हुआ है। सो जो अन्तादिवत् मानें, तो ( एतेर्लिङि ) सूत्र से उपसर्गों से परे इण् धातु को हस्त प्राप्त है। इसलिये यह परिभाषा है—

#### १०६-उभयत आश्रयेनान्तादिवत् ॥ अ० ६ । १ । ८५ ॥

पूर्व पर के स्थान में जो एकादेश हुआ हो, वह पूर्व पर दोनों के आश्रयकार्य की प्राप्ति में अन्तादिवत् न हो।

इस से 'परीयात्; अतीयात्' आदि में इस्त नहीं होता। इस्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥ १०६॥

जो टित्, कित्, मित् आगम होते हैं, उन में किसी टंकारादि अनुबन्ध से कोई उदात्तादि विशेष खर का विधान नहीं किया है। वहां क्या खर होना चाहिये ? इस-लिये यह परिभाषा है—

#### ११०-आगमा अनुदात्ता भवन्ति ॥ अ० ३ । १ । ३ ॥

टित् आदि आगम अनुदात्त होते हैं।

यद्यपि यह बात है कि अर्थवत् आगम इस परिभाषा के अनुकूल जो प्रत्यय वा प्रकृति का खर है, वही आगम का भी हो, तो एक पद में दो खर नहीं रहते। इसिलिये 'भविता' इत्यादि में आगम भी अनुदात्त विधान किये हैं।

इसमें ज्ञापक यह है कि (यासुट् परस्मैपदेषूदा०) इस सूत्र में उदात्तादि करने का यही प्रयोजन है कि त्रागम सब अनुदात्त होते हैं। इस से उदात्त प्राप्त नहीं था। और जो प्रत्यय को आद्युदात्त स्वर होता है, वह आगम को नहीं प्राप्त था। इसिलिये उदात्त कहा, इत्यादि ॥ ११०॥

गुप्, तिज्, कित्, मान आदि धातुओं से खार्थ में 'सन्' प्रत्यय होता है। उस सन् के नित्य होने से प्रथम गण में गुद्ध प्रयोग नहीं होता। तो यह सन्देह होता है कि इन से आत्मनेपद हो वा परस्मैपद हो ? जो सन्नन्त से पहिले कोई पद विधान होता हो वह (पूर्ववत्सन:) इस सूत्र से सन्नन्त से भी हो जाता, सो तो नहीं होता। और सन्नन्तों में कोई विशेष श्रनुबन्ध भी नहीं है, इसलिये यह परिभाषा है—

#### १११-अवयवे कृतं लिङ्गं तस्य समुदायस्य विशेषकं भवति यं समु-दायं सोऽवयवो न व्यभिचरति ॥ अ० ३ । १ । ५ ॥

अवयव में किया हुआ चिह्न उस समुदाय का विशेषक होता है कि जिल को

वह श्रवयव फिर न छोड़ देवे। इस से यह श्राया कि जिन गुए श्रादि धातुश्रों में जो श्रनुदात्तेत् चिह्न किया है.

इस सं यह त्राया कि किन पुत्र जान पुत्र जान पार्ज के विना कहीं पृथक प्रयोग भी नहीं होता। इसिलये 'गुप्' ग्रादि धातु जों उनका सन् के विना कहीं पृथक प्रयोग भी नहीं होता। इसिलये 'गुप्' ग्रादि धातु जों का अनुदा-का अनुदान्तेत् सन्नन्त का विशेषक हो के, अर्थात् गुप् ग्रादि सन्नन्तों को भी श्रानुदा-का श्राद्मनेपद हो=जुगुप्सते; मीमांसते यहां श्रात्मनेपद हो गया। श्रीर 'जुगुप्सयित वा जुगुप्सयते; मीमांसयित वा मीमांसयते' यहां शिजन्त समुदाय को शिच् छों इते हैं। छों इते हैं।

तथा 'पण' धातु अनुदात्तेत् है। उस के 'पणायित' प्रयोग में 'आय' प्रत्ययान्त से परस्मेपद ही होता है। क्योंकि आत्मनेपद तो व्यवहार अर्थ में और एकपत्त में आई-धातुक विषय में चरितार्थ है, शतस्य पणते, पणायांचकार, पेणे, पेणाते। और आय प्रत्ययान्त समुदाय को पण छोड़ भी देता है। इसिलये आय प्रत्ययान्त से आत्मनेपद नहीं होता।

श्रीर लोक में भी वैल को किसी श्रवयव में दाग देते हैं, तो वह चिह्न उस वैल का विशेषक हो जाता है कि यह श्रिक्षत वैल है। उसी श्रवयव का श्रीर सब साथ के

वैलों का भी विशेषक नहीं होता॥ १११॥

(अपृक्त एकाल्प्रत्ययः) इस सूत्र में एकप्रहण का यही प्रयोजन है कि 'द्विं:, जागृविः' यहां वि प्रत्यय की अपृक्तसंज्ञा नहीं। सो जो एकप्रहण न करते और अल् प्रत्यय कहते,तो भी अनेकाल् में नहीं होती। फिर एकप्रहण व्यर्थ हुआ। इस से यह ज्ञापकसिद्ध परिभाषा निकती—

११२-वर्णप्रहणे जातिप्रहणम्।। अ०१।२।४१॥

वर्ण के प्रहरण में वर्णजाति का प्रहरण होता है।

इससे एकप्रहण तो सार्थक होगया। क्योंकि अल्मात्र पढ़ते तो जातिप्रहण होने

से अनेक अलों का प्रहण होजाता, फिर एक प्रहण से नहीं हुआ।

स्त्रीर 'धीप्सिति; धिप्सिति' यहां दम्म धातु के दो हलों में भी हल्जाित मानकर (हलन्ताच ) सूत्र से इक् समीप हल् मान के सन् प्रत्यय कित् होजाता है। इत्यादि स्रोक प्रयोजन हैं ॥ ११२॥

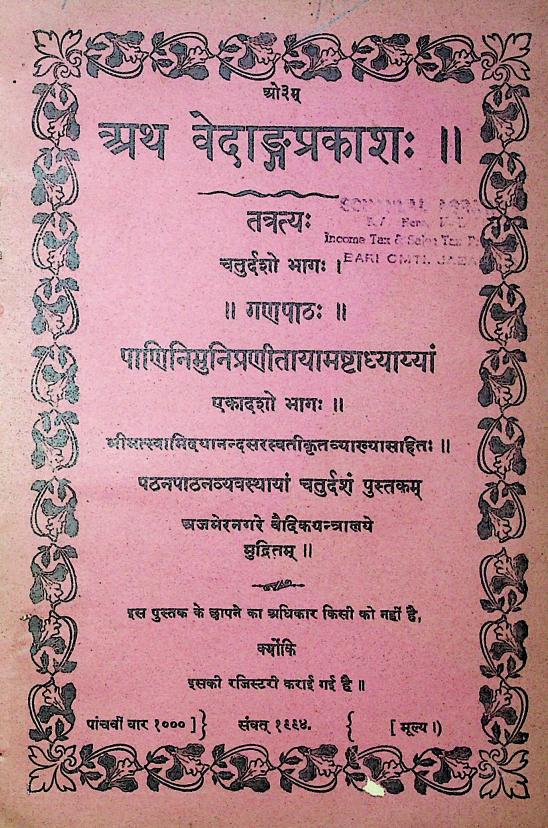
इति श्रीमत्परमहंसपरित्राजकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्द-सरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते वेदाङ्गप्रकाशे दशमोऽष्टाध्याय्यां नवमश्च पारिभाषिको ग्रन्थोऽलङ्कृतिमगात् ॥

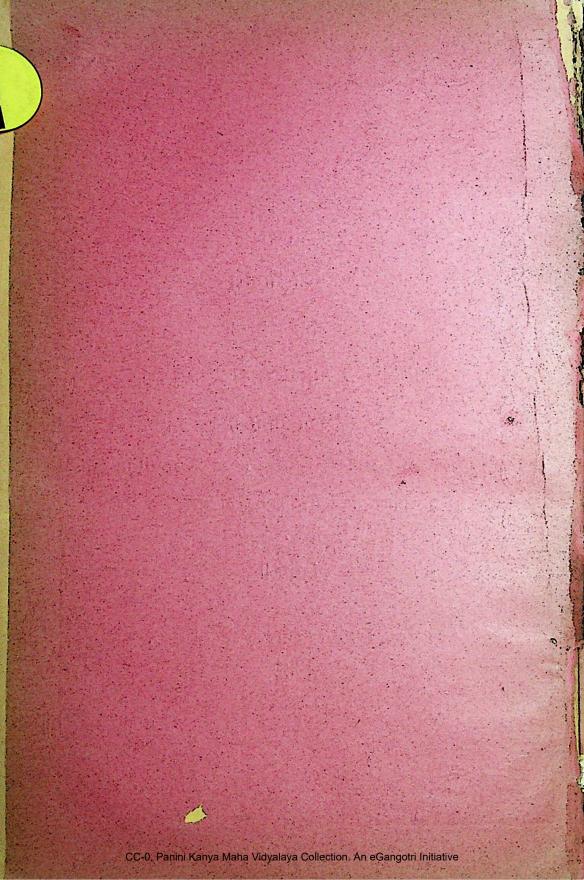
# वैदिक-पुस्तकालय में मिलने वाली पुस्तकों की सूची

विक्रयार्थ पुस्तकें	नूक्य	विऋयार्थ पुस्तकें	भूल्य
ऋग्वेदभाष्य ( ६ ) भाग	ध्र)	संस्कारविधि	11-)
यज्ञवेदभाष्य सम्पूर्ण	20)	विवाइपद्धति	11)
		शास्त्रार्थ फीरोजाबाद	1=)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका केवल संस्कृत ।।।)		वेदविरुद्धमतखएडन	1-)
	(9)	वेदान्तिध्वान्तनिवारण नागरी	-)11
वेदांगप्रकाश १४ भाग			-)11
अष्टाध्यायी मृत	=)		
अष्टाध्यायी भाष्य पहिला खएड	३॥)	भ्रान्तिनिवार्य	=)
,, दूसरा खपड	३॥)	शास्त्रार्थ काशी	-)11
पंचमहाय इविधि	=)	स्वमन्तन्यामन्तन्यप्रकाश नागरी	)11
निरुक्त	111=)	न्न न्या निर्मा	r )[[
संस्कृतवाक्यप्रवोध	=)11	ऋग्वेद संहिता वहिया जिल्द	8)
व्यवहारभातु	=)	यजुर्वेद संहिता ,, ,,	(3)
अमोच्छेदनं अमोच्छेदनं	-)	अथर्ववेद संहिता	३॥)
	-)	सामवेद संहिता	(11)
श्रुअमोच्छेदन १०— (वेचर चांत्रापर) ज		तामप् ताश्या	२।)
MACCONING			
आयोद्देश्यरत्नमाला नागरी एक	भात गा	ईशादिदशोपनिषद् मृत	111)
,, म्रह्ठी	-)	छान्दोग्योपनिषद् भाष्य	8)
" अंग्रेज़ी	-)	बृहदारएयकोपनिषद् भाष्य	8)
गोकरुणानिधि	-)11	यजुर्वेदभाषाभाष्य	A)
स्वामीनारायग्रमतखयडन	1)		प्रति )॥
सत्यार्थप्रकाश नागरी	(11)		प्रति ।।।
श्रायामिविनय गुटका	=)	कममोरेशन वाल्युम बढ़िया १०), घटिया ४)	
12 ment af	11=)	द्यानन्द् प्रन्थमाला बढ़िया ६), घटिया ४)	
भाट अचरा का			

नोट:-डाकमइस्ल सब का मूल्य से अलग होगा।

पुस्तक मिलने का पता— प्रवन्धकर्ता, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर.





# अथ गगानां स्चीपत्रम्॥

गर्णाः	ão	ψo	गगाः	. पृ०	ψo
<b>अ</b>		1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1	उञ्जादय:	४१	२०
			उत्कराद्यः	२६	28
श्रच्यतादयः	च्छ	38	उत्सादयः	१७	38
श्रङ्गल्यादयः.	85	२७	<b>उत्संगाद्यः</b>	३७	१०
श्रजाद्यः	१४	१४	उद्गात्रादय:	85	१२
श्रजिराद्यः	XX	१४	उपकादय:	१३	8
श्रध्यात्माद्यः	३३	१८	उर:प्रश्वतय:	४१	१६
श्रतुप्रवचनाद्यः	8१	4	ऊ		
श्रनुशतिकाद्यः	४६	व			
श्रपूपादय:	3,5	१२	<b>ज्रव्याद्यः</b>	च	१४
श्रर्द्धचीद्यः	80	\$			
श्चर्याद्यः	80	55	艰		
श्ररोहणाद्यः	२७	. 8	ऋगयनाद्यः	इस्र	. 8
श्रश्मादयः	रद	6	ऋश्यादयः	२७	१३
<b>अश्वादयः</b>	२०	१४	2 20		
श्चेश्वादय:	र्	२०	Ų		Photo 2
च्चश्वाद्य:	80	3	1 4 6 9		
श्रश्वपत्यादयः	१७	१३	पेषुकार्यादयः	२४	१०
त्रा			व्		
<b>आकर्षाद्य</b> :	४४	१६	कच्छादय:	38	२६
ग्राचितादयः	78	×	कडारादय:	3 .	१
ब्राहिताग्न्यादयः	4	१६	कर्गवादयः	38	२
अ उ			कव्याद्य:	२६	88
		A Popular	कथाद्य:	३८	२०
उक्थादयः	२४	२०	कक्याद्यः ।	¥3	4

## गणानां सूचीपत्रम्।।

गणाः	бо	ψ̈́ο	गखाः	ão	ψ̈́ο
कर्णाद्यः	88	\$8	T		
कल्याएयाद्यः	२२	8	ग		
कंवोजादय:	२३	38	317317331'		20
कस्काद्यः	थ्र	×	गम्याद्य:	\$\$	२४
क्रत्वाद्यः	४३	१४		38	२३
ऋमाद्यः	- २६	8	गवादयः गवाश्वप्रभृतयः	38	8
कार्त्तकोजपाद्यः	४२	3		३२	११
काशाद्यः	२७	28	गहाद्य:	4.7 3⊏	२४
काश्याद्यः	38	9	गृष्ट्याद्यः	२२	8
काष्टाद्यः	XX.	१६	गोपवनाद्यः	१२	E
किशराद्यः	३⊏	8	गोषदादयः	88	१०
किंशुलकाद्यः	XX.	3	गौरादय:	१४	80
कुञ्जाद्यः	१८	१६	गौराद्य:	88	24
कुम्भपदीप्रशृतयः.	प्रश	5		ę	
कुमुदादय:	२६	8	घ		
कुमुदादयः	२७	१७	घोषाद्य:	४३	. 8
कुर्वाद्यः	२२	२०			
कुलालाद्य:	34	Ę	=		
चुभाद्यः	ويد.	२२	चतुर्वर्णादयः	85	. २०
कृतापकृताद्यः	8	8	चाद्यः	2	२१
क्रशाश्वाद्य:	२७	4	चिह्याद्यः	४३	38
कोटराद्यः	XX .	3	चूर्णाद्यः	४३	२४
क्रोडाद्यः	१६	१३			
क्रोड्याद्य:	\$0	Ę	ञ्च		
			छुत्राद्यः	३८	१०
			कुदाद्यः	80	१३
ख			त		
			तचाद्यः	38	<b>२१</b>
खरिडकाद्य:	२४	१४	तारकाद्यः	88	२०

गणानां	सूचीपत्रम्	ll
		200

Н	3			
ı		١		
r	,			
c	٠			
s		ı	и	
		L	r	ч

गसाः	पृष्ठ	पंक्ति	गणाः	पृष्ठ.	ं पंक्ति
तालाद्य:	३६	2			THE STATE OF
तिककितवाद्यः	१२	99	प		
तिकादय:	२३	×			
तिष्ठद्गुप्रभृतयः	8	4	पचादयः	२८	१४ .
तुन्दादयः	80	9	प्रगदिसाद्यः	२८	२४
तृणाद्यः	२७	28	प्रकृत्याद्य:	3	६
तौल्वल्याद्य:	88	28	प्रज्ञादय:	४०	११
			प्रतिजनादयः	३८	१४
₹			परिमुखादय:	३३	१३
7			पर्पाद्य:	३६	. २३
द्एडाद्य:	८०	१८	पश्र्वादय:	38	१३
द्धिपयग्राद्य:	3	१८	पलद्यादयः	३०	२०
दामन्यादय:	38	9	पलाशाद्य:	34	१७
दासीभारादयः	४२	१८	सत्ताद्य:	३६	११
द्वाराद्य:	XX.	२२	प्रवृद्धादय:	४४	. 3
दिगाद्य:	इइ	8	पात्रेसम्मिताद्यः.	×	8
द्विद्गुड्याद्यः	Ko	38	पामाद्य:	8ई	१७
<b>दढादयः</b>	85	<b>२१</b>	पाशादय:	२४	२०
देवपथादय:	४८	१३	प्राद्य:	3	
		Wall of	पिच्छादय:	. 88	38
घ			प्रियाद्य:	XX	8
avertinent)	38	१६	पील्वाद्य:	88	१२
धूमाद्य:	4,	14	पुरोहितादयः	83	2
7			पुष्करादयः	४८	. 8
न			पृथ्वादय:	85	१४
चनारग'	१८	२२	प्रेचाद्य:	२७	२६
नडाद्यः		8	पैलाद्यः	88	8
नडादयः	30				
नद्याद्यः	३०	१३	ब		
न्यङ्कादयः	४६	The state of the s			
निरुद्काद्यः	78	१४	STREET,		
निष्कादयः	38	१८	बलाद्यः	२८	१२

गणाः	पृष्ठ	पंक्ति	गयाः	पृष्ठः	पंक्ति
बह्राद्य:	१६	8	योधेयाद्य:	२४	8
बलाद्यः	용도	9	योधेयादय:	38	१४
बाह्माद्य:	१८	8			
व्राह्मगाद्यः	४२	8	T		
विल्वाद्य:	३४	१२	Territori	20	
व्रीह्याद्य:	े ४७	. 8	रजताद्यः	३६ ४४	8
List Leave		3000	रसाद्य:		२४
. भ			राजदन्ताद्यः	२४	<b>97</b> 0
भगीद्य:	च्छ	3	राजन्याद्यः रेवत्याद्यः	<b>२२</b>	१ १४
भस्राद्यः	₹9	188	रपत्याद्यः	177	10
भिज्ञादय:	२४	3	₹ 5		
भिवादय:	188	8		100	
भीमाद्य:	- 58	3	लोमाद्यः	86	१६
भृशाद्यः	१३	१२	लोहिताद्य:	१३	२०
भौरिक्याद्य:	२४	3			The same
			व		
म					PLATE
मध्वाद्य:	35	१४	वर्णाद्य:	38	3
मनोक्चाद्य:	88	3	वनस्पत्याद्यः	४३	२८
मयूरव्यंसकाद्यः	Ę	१६	वरणाद्यः	२६	3
महिष्याद्यः	30	२४	वराहाद्य:	28	१
मालाद्यः	X3	१२	वंशाद्यः	80	5
			वसंताद्यः	२६	X
य			च्याघ्राद्य:	X.	१३
	) Vic		वाकिराद्य:	2	२१
यबाद्य:	४६	:२३	विनयाद्यः	Xo	×
यस्काद्यः याजकाद्यः	88	२२	विमुक्तादय:	८४	. ३
यावाद्य:	20	१७	विदाद्य:	38	१३
युक्तरोह्याद्य:	38	२४	ब्युप्टाद्य:	So	२३
युवादय:	४२	22	वृषाद्य:	४१	२६
341441	8ई	१८	वेतनाद्य:	30	8

गणाः	पृष्ठ	पंक्ति	गणाः	प्रष्ठ	ं पंक्ति
श			संधिवेलाद्य:	३२	१८
S THE RESERVE	2		संपदादय:	र्रह	Ę
शरिडकाद्य:	इप्ट	१३	सर्वाद्य:	8	Ę
शर्कराद्य:	४८	२२	सवनाद्य:	७४	१७
शराद्य:	३४	२३	स्वराद्य:	2	१४
शराद्य:	22	१८	सवस्राद्य:	१४	Ę
शाकपार्थिवाद्य:	६	88	साचात्प्रभृतयः	व	२३
शाखाद्यः	82	१८	स्वागताद्य:	XX	२७
शार्ङ्गरवादय:	१६	38	सिध्माद्य:	४६	8
शिवादय:	2१	. 8	सिंध्वाद्य:	इप्र	39
श्रारिडकाद्यः	इप्र	१३	सुखाद्य:	४७	१६
ग्रुभाद्यः	२१	१४	सुतंगमाद्य:	२८	28
श्रेग्याद्य:	×	38	सुवास्त्वाद्य:	२६	38
शोगडादयः	8	१८	सुषामाद्यः	थ्र	80.
शोनकाद्यः	\$8	२८	स्थूलाद्य:	38	२०
स	i i no		A REPORT OF		
(1)			7		THE CASE
संकलाद्यः	२६	११	ह	THE PARTY	1. 1.
तंकाशाद्यः	२८	4	the Residence		11 100
संख्याद्य:	२८	8	हरीतक्याद्यः	. ३६	१७
तंतापाद्य:	88	2	हस्त्याद्य:	४१	8



## ॥ भूमिका॥

इस पुस्तक का नाम गणापाठ इसलिये है कि एकत्र मिला के बहुत २ शब्दों का समुदाय पठित है। यह पुस्तक पाणिनि मुनिजी का बनाया है इस-के कार्यकर अन्टाध्यायी के सूत्र हैं, यद्यपि काशिकादि पुस्तकों में तत्तत् सूत्र पर गणपाठ भी छप गया है तथापि बीच २ सूत्रों के दूर २ होने से गण भी दूर २ हैं इससे कएठस्थ करना, विचारना वा अनुवृत्ति करना कठिन होता था इसलिये उस २ गणकार्य सूत्र को सार्थक लिख कर एक दो उदाहरण देके जहां २ एक ऐसा (:-- ) चिह्न बना के लिखा है वहां २ से गरापाठ का आरम्भ समस्तना चाहिये और जिस २ शब्द की विशेष व्याख्या अपेचित थी उस २ पर एक ग्रादि ग्रङ्क लिख श्रौर रेखा देकर नीचे विवरण (जिस-को नोट कहते हैं ) लिखा है उसको भी यथायोग्य समभ लेना चाहियें इन के अर्थ अष्टाध्यायी, निरुक्त, निघएटु और उणादिकोष तथा प्रकृति-प्रत्ययादि की ऊहा से समभ लेना योग्य है। यद्यपि भ्वादि ख्रौर उणादि भी एक २ सूत्र पर गण हैं तो भी उनके बड़े और विलच्चण (१) होने से पृथक श्रीपाणिनि मुनिजी ने लिखे हैं और सूत्र के समान वार्तिकगण हैं उन को भी वार्त्तिक के आगे लिख दिया है जो साधारणता से व्याकरण के बोधयुक्त हैं वे भी इनका रूप श्रीर श्रर्थ पढ़ पढ़ा सकते हैं ॥

श्रलमतिविस्तरेख विपश्चिद्वरशिरोमणिषु ॥

स्थान महाराणाजी का उदयपुर मिति माघ शुक्रा १० सं० १६३६

द्यानन्द स्रस्वती

(१) भ्वादि धातु श्रानुबन्ध सिहत श्रोर उणादि में प्रकृतिप्रत्ययसाधुत्व पूर्वक लेख है श्रोर सर्वादि में सिद्ध शब्दों का पाठ श्रानुक्रम से है इसीलिये उन दोनों गणों से यह श्रोर इससे वे पृथक् २ रक्खे हैं।

## त्रथ गगापा**ठः**॥

## १—सर्वादीनि सर्वनामानि ॥ अ० १ । १ । २७ ॥

सर्वादीनि प्रातिपदिकानि सर्वनामसंज्ञानि भवन्ति । सर्वे । सर्वस्मै । सर्वेपां नामानि सर्वनामानीति समासेनान्वर्थसंज्ञाविज्ञानात् सर्वे नाम कश्चिन्मनुष्यवि-शोषस्तस्मै सर्वाय देई।ति सर्वनामसंज्ञा न भवति । अत एव विशेषणवाचकानि सर्वादीनि प्रातिपदिकानि विज्ञेयानि ।

सर्व । विश्व । उम । उमय । उतर । इतम । इतर । अन्य । अन्यतर । त्व । त्वत् । नेम । सम (१) । सिम (२) । पूर्वपरावरदित्योत्तरापराधराणि न्यवस्थायामसंज्ञायाम् ॥ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ॥ अन्तरम्बहिर्योगोपसंन्यानयोः॥ त्यद् । तद् । यद् । एतद् । इदम् । अदस् । एक । द्वि । युष्मद् । अस्मद् । अवतु । िकम् । इति सर्वादिर्गणः ॥

#### र—स्वरादिनिपातमव्ययम् ॥ अ० १ । १ । ३७ ॥

स्वरादयश्च निपाताश्चेषां समाहारः स्वरादिनिपातमन्ययसंज्ञं भवति । नि-पाताश्चादयो वच्यन्ते ।

स्वर् । अन्तर् । प्रातर् । एते अन्तोदात्ताः ॥ पुनर् । आद्युदात्तः ॥ सनुतर् । उचैस् । नीचैस् । शनैस् । ऋधक् । आरात् । ऋते । युगपत् । पृथक् । अन्तो-दात्ताः ॥ ह्यस् । व्यस् । दिवा । रात्रौ । सायम् । चिरम् । मनाक् । ईपत् । जोषम् । तृष्णीम् । वहिस् । आविस् । अवस् । अधस् । समया । निकपा । स्त्रयम् । मृषा । नक्कम् । नव् । हेतौ । अद्धा । इद्धा । सामि । ह्यस् प्रभृतयोऽप्यन्तोदात्ताः ॥ वत् (३)।

- (१) सूत्रान्तरे समानामिति निर्देशात्सर्वपर्यायस्यैव समशब्दस्य सर्वनामसंक्षेष्यते तेन तुल्यवाचकस्य न भवति ।।
- (२) इमानि त्रीणि सूत्राएयष्टाध्याय्यामपि पठ्यन्ते। तत्र जसि विभाषा सर्वनाम-संज्ञा । अत्र तु सामान्येन ।।
- (३) वदिति तदन्तस्य वितिप्रत्ययान्तस्य प्रह्णम् । ब्राह्मण्वत् । ज्ञत्रियवत् । रथानिवत् । इत्यादि ।।

सन् । सनाव् । सनत् । तिरस् । एत । आद्युदात्ताः ॥ अन्तरा । अय-मन्तोदात्तः ॥ अन्तरेण । ज्योक् । कम् । शम् । सना । सहसा । विना । नाना । स्वस्ति । स्वधा । अलम् । वपद् । अन्यत् । अस्ति । उपांशु । त्वमा । विहायसा । दोषा । मुघा । मिथ्या । (१) क्वातोसुन्कसुनः । कृन्मेका रान्तः सन्ध्यत्व-रान्तोऽव्ययीभावश्च ॥ पुरा । मिथो । मिथस् । अवाहुकस् । आय्येहलस् । अभीक्णम् । साकस् । सार्द्धम् । समस् । नमस् । हिरुक् । (२) तसिलाद्यः प्राक्षाशपः । शस्त्रभृतयः प्राक् समासान्तम्यः । मान्तः । कृत्वर्थः । तसि । आ-च्यालो । प्रतान् । प्रशान् । इति स्वरादिर्गणः ॥

## ३—चादयोऽसत्वे ॥ अ०१ । ४ । ५७ ॥

अद्रव्यवाचकाश्चादयो निपातसंज्ञा भवन्ति । असत्त्व इति किम् । पशु-वैपुरुपः । अत्र पशुशब्दस्य द्रव्यवाचकत्वादव्ययसंज्ञा न भवति ।

च | वा | इ | अह | एव | एवम् | नूनम् | शरवत् | युगपत् | स्पत् | कृपत् | कृपित् | नेत् | चेत् | चण् | किचित् | यत्र | नह | इन्त | माकिम् | निकेम् | माङ् | नव् । यावत् | तावत् | त्वा | त्व | द्वे । रै । औषद् । वौषद् । स्वाहा | वथद् । स्वधा | अोम् । किला । तथा । अथ । सु । सम । अस्मि । अ । इ । छ । ए । ऐ । ओ । औ । अम् । तक् । उन् । उकन् । वेलायाय । मात्रायाम् । यथा । यत् । यम् । तत् । किम् । पुरा । अद्धा । धिक् । हाहा । हे । है । प्याद् । पाद् । थाद् । अहो । उताहो । हा । तुम् । तथाहि । खलु । आम् । आहो । अयो । ननु । मन्ये । मिथ्या । असि । ब्रूहि । तु । नु । इति । इव । वत् । चन । वत । इह । शम् । कम् । अनुकम् । नहिकम् । हिकम् । सुकम् । त्यम् । ऋत्तम् । वाकिरादयः । प्रतिपेधे । उत । दह । अदा । इद्धा । सुधा । नोचेत् । नचेत् । नहि । जातु । कथम् । कुतः । कुत्र । कुत्र । अनु । इहो । हेहा । आहोस्वित् । अन्वद । सम् । दिष्ट्या । पशु । वट् । सह । आनुपक् । अङ्ग । फट् । ताजक् । अये । सम् । दिष्ट्या । पशु । वट् । सह । आनुपक् । अङ्ग । फट् । ताजक् । अये ।

<sup>(</sup>१) क्त्वादीनामष्टाध्यायी सूत्रपाठे प्रह्णमास्त । तेपामेवात्र खरादिषु परिग्णनं कृतम् । न कश्चिद्विशेषः ॥ (२) तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिरिति सूत्रेण येपामञ्ययसंज्ञा तेषामेव तद्धितप्रत्ययानामत्र विस्पष्टार्थं परिगणनम् ॥

श्ररे । चटु । वाद । कुम् । खुम् । घुम् । हुम् । आईम् । शीम् । सम् ।वै । त्वे । तुवै । न्वे । अध । अधम् । स्मि । अच्छ । अदल् । दह । हेहे । हैहे । नौ । म । आस । शस् । शुकम् । शम् । वव । वात् । डिकम् । हिनुक् । वशम् । शिकम् । श्व- कम् । सनुकम् । जुकम् । अन्त । द्यौ । सुक् । भाजक् । अले । वद् । वाद् । किम् । उपसर्गाविभक्तिस्वरप्राति कपकाश्च निपाताः (१) । इति चादिर्गणः ॥

### ४—प्राद्यः ॥ अ०१ । ४ । ५८ ॥

श्रमत्त्ववाचकाः प्रादयो निपातसंज्ञा भवन्ति । परामृशति । पराजयते इत्यादि । श्रमत्त्व इति किम् । पराजयति सेना । श्रत्रोपसर्गसंज्ञयाऽऽत्मनेपदं मा भृत् ।

प्र । परा । अप । सम् । अनु । अव । निस् । निर् । दुस् । दुर् । वि । आङ् । नि । आधि । अपि । अति । सु । उत् । आभि । प्रति । परि । उप । इति प्रादयः ।

५--- ऊर्यादिचिवडाचरच ॥ अ० १ । ४ । ६९ ॥

जर्यादयः शब्दाश्च्च्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञा भवन्ति । च्वि । शुक्रीकृत्य । शुक्रीकृतम् । डाच् । पटपटाकृत्य । पटपटाकृतम् । ऊरीकृत्य । शु-क्लीकरोति । पटपटाकरोति । ऊरीकरोति । इत्यादि ।

जरी । उररी । पापी । ताली । त्राताली । वेताली । धूसी । शकला । संशकला । ध्वंसकला । अंशकला ।। शकलादयो हिंसायाम् ॥ गुलगुधा पीड़ार्थे ॥ सजूः स-हार्थे । फल्, फली, विक्की, आवली । इति विकारे ॥ आलोष्टी । कराली । के-वाली । शेवाली। वर्षाली। मस्मसा । मसमसा। एते हिंसायाम् ॥ वपट् । वौपट् । औषट् । स्वाहा । स्वधा । वन्धा । प्रादुस् । अत् । आवित् । इत्यूर्याद्यः ॥

#### ६—साक्षात्प्रभृतीनि च ॥ अ० १ । ४ । ७४ ॥

साचादादीनि प्रातिपदिकानि कुन्योगे विभाषा गतिसंज्ञानि भवान्ते । अ-साचात् साचात्कुत्वा । साचात्कृत्य । साचात्कृत्वा । इत्यादि ।

साचात्। मिथ्या। चिन्ता। भद्रा। लोचना। विभाषा। सम्पत्का। श्रास्था। श्रमा। अद्धा। जियी। प्राजरुहा। वीजयी। वीजरुहा। संसर्या। श्रथे। लवसम्। उपसम्।

(१) उपसर्गप्रतिरूपकाः । श्रवदत्तम् । विदत्तम् । प्रदत्तम् । श्रत्राच उपसर्गादि-ति तत्त्वं न भवति । विभक्तिप्रतिरूपकाः । चिरेण् । चिरात् । चिराय । इत्यादयः । स्व-रप्रातिरूपकाः—श्र । इ । उ । श्र । ए । श्रो । इत्येवमादयः ॥ शीतम् । उदकम् । आर्द्रम् (१) । अग्नी । वशे । विकम्पने । विद्ताने । प्रइस-ने । प्रतपने । प्रादुस् । नमस् । आविस् । इति सावात्प्रभृतयः ॥

## ७—तिष्ठद्ग्रप्रभृतीनि च॥ अ०२।१।१७॥

श्तिष्ठद्ग्वादयः समुदायाः कृतसमासा अव्ययीभावसंज्ञका विभाषया नि-पात्यन्ते । तिष्ठान्ते गावो यास्मन् काले दोइनाय स तिष्ठद्गु कालविशेषः । खले यवादीनि प्रथमान्तानि विभक्तचन्तरेण नैव संवध्यन्ते । अन्यपदार्थे च काले वर्तन्ते ।

तिष्ठद्गु । वहद्गु । आयतीगवम् । खलेयवम् । खलेवुसम् । नृनयवम् । खूयमानयवम् । पूत्रयवम् । पूर्यमानयवम् । संहृतयवम् । संहृयमाण्यवम् । संहृतवुसम् । संहृयमाण्युसम् । एते कालशब्दाः ॥ समभूमि । समपद्।ति । सुषमम् । विष्मम् । निष्पमम् । दुष्पमम् । अपरसमम् । आयतीसमम् । प्राह्वम् । प्ररथम् । प्रस्नम् । प्रदानिणम् । अपरद्विणम् । सम्पति । असम्प्रति । पापसमम् ।
पुख्यसमम् । इच् कर्मव्यतिहारे (२) ॥ इति तिष्ठद्गुप्रभृतयः ।

#### ८—सप्तमी शौण्डैः ॥ अ०२।१।४०॥

शौएडैरिति बहुवचनादेव गण्निर्देशः । सप्तम्यन्तं सुवन्तं शौएडादिभिः सह विभाषा समस्यते सप्तमीतत्पुरुषश्च स समासो भवति । अचेषु धूर्तोऽचधूर्तः । अचिकतवः । इत्यादि ॥

शौएड । धूर्त । कितव । व्याड । प्रवीण । संवीत । अन्तर् । आधिपडु । पिटित । क्रुशल । चपल । निपुण । संव्याड । मन्थ । समीर। इति शौएडादयः ॥

६—पात्रे संमिताद्यश्च ॥ अ०२ । १ । ४८ ॥ पात्रे संमितादयः सम्रुदायाः चेपे गम्यमाने सप्तमीतत्पुरुषसंज्ञा निपात्यन्ते ।

- (१) लवणादय त्रार्द्रपर्यन्ताः शब्दा गतिसंज्ञासम्बन्धेन मकारान्ता निपात्यन्ते नत् सर्वत्र ॥
- भवन्ति । दण्डादि । मुसलामुसलि । नखानिख । केशाकेशि । इत्यादि ।।

(१) पात्रे सम्मिताः। पात्रे बहुत्ताः। उदस्क्रमिः। कूपकच्छपः। कूपचूर्णकः। अवटकच्छपः। कूपमएड्कः। कुम्ममएड्कः। उदपानमएड्कः। नगरकाकः। नगरवायसः। मातरिपुरुषः। पिएडीशूरः। गेहे शूरः। गेहे
नदीं। गेहे क्ष्वेडी। गेहे विजिती। गेहे न्याडः। गेहे तृप्तः। गेहे
धृष्टः। गर्मे तृप्तः। आखनिकवकः। गोष्ठे शूरः। गोष्ठे विजिता।
गोष्ठे च्वेडी। गेहे मेही। गोष्ठे पदुः। गोष्ठे पिएडतः। गोष्ठे प्रगल्मः।
कर्षे टिटिमः। कर्षे चुरचुरा। आकृतिग्राऽयम्।।

#### १०-उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ॥ अ०२।१।५६॥

सामान्यधर्मस्यात्रयोगे सत्युपमेयवाचि सुवन्तसुपमानवचनैव्याघादिभिः सह विभाषा समस्यते स सामानाधिकरणतत्पुरुषः समासो भवति । व्याघ इव पुरुषः पुरुषव्याघः । पुरुषासिंहः । इत्यादि । सामान्यात्रयोग इति किम् । पुरुषो व्याघ इत्र शूरः । उपमानोपमेयत्रधानो धर्मः शूरत्वमत्र प्रयुच्यतेऽतः समासानिषेधः ।

व्याघ । सिंह । ऋचा । ऋपभ । चन्दन । वृत्त । वृष । बराह । हस्तिन् । कुञ्जर । रुरु । पृषत् । पुण्डरीक । बलाहक । (२) आकृतिगणोऽयम् । इति व्याघादयः ॥

#### ११-श्रेण्याद्यः कृतादिभिः ॥ २ । १ । ५६ ॥

श्रेषयादयः सुवन्ताः कृतःदिभिः समानाधिकरणैः सद्द विभाषा समस्यन्ते अश्रेणयः श्रेणयः कृताः श्रेणिकृताः (३) एककृता वसन्ति वर्णिकः । इत्यादि । श्रेणि । एक । पूग । कुएड । राशि । विशिख । निचय । निधान । इन्द्र ।देव

- (१) येऽत्र गणे कान्तास्तत्र च्लेप इति पूर्वसूत्रेणैव सिद्धे पुनः पाठो युकारोद्धा-द्यन्तर्गतपात्रे सम्मितादीनां पूर्वपदाद्युदात्तार्थः ।।
- (२) अत्राकृतिगयोनेदमपि सिद्धं भवति । मुखं पद्मिनव, मुखपद्मम् । मुख-कमलम् । करिकसलयम् । पार्थिवचन्द्रः ।।
- (३) श्रत्र श्रेण्यादेषु च्व्यर्थवचनमिति वार्तिकेन च्व्यर्थलामः । यदा च च्व्यन्ताः श्रेण्यादयस्तदा च्विप्रत्ययान्तानां गतिसंज्ञत्वात् गतिप्रादय इति नित्यसमासः श्रेणिकृता इत्यादि ।।

मुग्ड | भूत । अवग्र । वदान्य । अध्यापक । ब्राह्मण् । चत्रिय । पट्ट । पिवडत। कुशल । चपल । निपुण् । कृपण् । इति श्रेग्यादयः ॥ कृत । मित । मत । भूत । उक्त । समाझात । समाम्नात । समाख्यात । सम्भावित । अवधारित । निराकृत । अवकात्पत । उपकृत । उपकृत । आकृतिगणोऽयम् । इति कृतादयः ॥

१२—वा॰—कृतापकृतादीनामुपसंख्यानम् (१)॥ २।१।६०॥

कृतापकृतम् । श्रुक्तविभुक्तम् । पीतिविपीतम् । गतप्रत्यागतम् । यातानुया-तम् । ऋयाक्रियेका । पुटापुटिका । फलाफलिका । मानोन्मानिका । इति कृ-तापकृतादयः ॥

१३—वा०-समानाधिकरणाधिकारे शाकपार्थिवादीनामु-पसंख्यानमुत्तरपद्छोपश्च (२)॥२।१।६६॥

शाकभोजी पार्थिवः । शाकपार्थिवः । क्रुतपसौश्रुतः । श्रजातौल्वालिः । यष्टि-मौद्गल्यः । इत्यादि ॥

१४ मयूख्यंसकादयक्च ॥ अ०२।१। ७२॥

मयूरव्यंसकादयः समुदायाः कृतसमासाः समानाधिकरण्तत्पुरुषसंज्ञका निपात्यन्ते चकारो निश्चयार्थः । परममयूरव्यंसक इति समासान्तरं न भवति— मयूरव्यंसकः । छात्रव्यंसकः (३)। काम्बे।जम्रुएडः । यवनमुएडः (४)। छन्दति । इस्तेगृद्य । पादेग्रद्य । लाङ्गूले ग्रद्य । पुनर्दाय ।। (४) एदीडादयोऽ-

- (१) अनम्विशिष्टकान्तेनापि समासो यथास्यादिति वार्तिकम् । क्रतंचापक्रतं च कृतापक्रतं । वार्त्तिकोपरि तत्सूत्रसंख्या सर्वत्र धरिष्यते । यस्योपरि महाभाष्ये वार्त्तिकमस्ति ।।
- (२) शाकपार्थिवादिषु समानाधिकरणतत्पुरुषः समासो यथा स्यात् । पूर्वसमासे यदुत्तरपदं तस्य च लोपः । यथा दृष्टं विज्ञेयम् ।।
- (३) मयूर इव व्यंसको धूर्त्तो मयूरव्यंसकः । छात्र इव व्यंसकः । कस्बोज इव मुख्डः । इत्युपमानसमासापवादोऽयं समासः ।।
  - (४) श्रतोऽपे चत्वारः शब्दारछन्दसि वेदविषये निपात्यन्ते ॥
- ( ४ ) त्वं यस्येडामत्रं स्तुतिं वा—एहि प्राप्तुहि तत् एहीडम् । एवमेहि यवादिषु यधाप्रयोगमधीतुकूलः समासो क्षेयः ।।

न्यपदार्थे ।। एहीडम् । एहि यवं वर्तते । एहिवाणीजािकया । अपेहिवाणिजा । प्रेविवाणिजा । प्रेविवाणा । प

#### १५-याजकादिभिश्च ॥ अ० २। २। ६॥

षष्ठचन्तं सुवन्तं याजकादिभिः सुवन्तैः सह समस्यते स पष्टीतत्पुरुषः स-मासो भवति । ब्राह्मण्याजकः । चत्रिययाजकः । प्रतिषेधवाधकिमदं स्त्रम् ।

याजक । पूजक । परिचारक । परिषेचक । परिवेषक । स्नातक । अध्या-पक । उत्सादक । उद्वर्षक । इर्तृ । वर्षक । होतृ । पोतृ । भर्तृ । रथगणक । पतिगणक । इति याजकादयः ॥

#### १६-राजदन्तादिषु परम् ॥ अ० २ । २ । ३१ ॥

- (१) जिह क्रियाऽऽभीच्एयेऽर्थे स्वेनैव कर्मणा सह बहुलं समस्यते समाससमुदा-यश्च कर्त्त्वाचको भवति । त्वं जोडं जिह, इति जिहिजोडस्त्वम् । उन्जिहिजोडः । जिह-स्तम्बः । इत्यादि । आख्यातः क्रियाशब्द आख्यातेनैव सह समस्यते अश्नीत च पिबति च, इति समासे क्रते प्रातिपदिकसंज्ञायां क्रियाविशोषणे टाप् । अश्नीतिपिबता । इत्यादि ।।
  - (२) आविहितलचणस्तत्पुरुषो मयूरव्यंसकादिषु द्रष्टव्यः ।।

राजदन्तादिषु परमुपसर्जनं प्रयोक्नव्यम् । पूर्विनिपातापवादः । दन्तानां राजा, राजदन्तः । श्रनेन दन्तशब्दस्य पूर्विनिपातो बाध्यते ।

१७--वाऽऽहिताग्न्यादिषु ॥ अ० २।२।३७॥

श्राहिताग्न्यादिषु निष्ठान्तस्य विभाषा पूर्वनिपातो भवति पचे च परनि-पातः । श्राहितोऽग्निर्येन सः ।

श्राहिताग्निः । श्रान्याहितः । जातपुत्रः । पुत्रजातः । जातदन्तः । जातरम-श्रुः । तैलपीतः । घृतपीतः । ऊढभार्यः । गतार्थः । श्राकृतिगणोऽयम् (३)। इत्याहिताग्न्यादयः ॥

१८---कडाराः कर्मधारये ॥ अ० २ । २ । ३८ ॥

कर्मधारये समासे कडाराद्यः शब्दा विभाषा पूर्वे प्रयोक्तव्याः । कडार-श्रासौ जैमिनिश्च कडारजैमिनिः । जैमिनिकडारः । इत्यादि । कडारादीनां गु-णवाचकत्वाद्विशेषणस्य पूर्वनिपातः प्राप्तः स वाध्यते ।

- (१) धम्मोदिपूभयमिति वार्त्तिकेन कृतद्वन्द्वयोद्वेयोरिप पर्व्यायेण पूर्विनिपातः । अत्र गणान्तेऽपि केशादयो धर्मादिषु द्रष्टव्याः ।।
- (२) श्रत्र जायाशब्दस्य जम्भावो दम्भावश्च निपात्यते । श्रास्मिन् गणे सर्वेषु समासेषूपसर्जनमनुपसर्जनं वा निपात्यते । सर्वेषां च यथाप्राप्तानामपवादः ।।
- (३) अत्राकृतिगणेन गडुकण्ठादयोऽपि द्रष्टन्याः। कण्ठेगडुः। गडुकण्ठः। गडुशिराः। इत्यादि।।

कडार । गडुल । काण । खञ्ज । कुएठ । खञ्जर । खलित । गौर । वृद्ध । भिचुक । पिङ्गल । तनु । वटर । इति कडारादयः । कम्मधारय इति किम् । कडारपुरुषो ग्रामः । अत्र वहुत्रीही मा भृत् ॥

१६—वा०—तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् (१)॥२।३।१८॥

्त्रकृति । प्राय । गोत्र । सम । विषम । द्विद्रोण । पञ्चक । साइस्र । श्रा-कृतिगणोऽयम् । इति प्रकृत्यादयः ॥

२० -- गवाश्वप्रभृतीनि च ॥ अ० २ । ४ । ११ ॥

गवासप्रभृतीनि कृतैकवज्ञावानि द्वन्द्वरूपाणि सिद्धानि प्रातिपादिकानि निपात्यन्ते । गौश्रास्रश्च ।

गवाश्वम् । गवाविकम् । गवैडकम् । अजाविकम् । अजैडकम् । कुञ्ज-वामनम् । कुञ्जकैरातम् । पुत्रपौत्रम् । श्वचिण्डालम् । स्त्रीकुमारम् । दासीमा-णवकम् । शाटीपिच्छकम् । उष्ट्रस्वरम् । उष्ट्रशशम् । मूत्रशकृत् । मूत्रपुरीपम् । यकुन्मेदः । मांसशोणितम् । दर्भशरम् । दर्भपूतीकम् । अर्जुनाशरीपम् । तृणो-लपम् । दासीदासम् । कुटीकुटम् । भागवतीभागवतम् (२)। इति गवाश्वप्रभृतयः।।

२१-न द्धिपयआदीनि ॥ अ० २ । ४ । १४ ॥

द्राधिपयत्रादीनि शब्दरूपाणि द्वन्वे नैकवज्रवन्ति ॥

द्धिपयसी । सर्पिर्मधुनी । मधुसर्पिषी । ब्रह्मप्रजापती । शिववैश्रवणौ । स्कन्द्विशाखौ । परिव्राद्कौशिकौ । परिव्राजककौशिकौ । प्रवर्ग्येपसदौ । शु-क्लकुन्णौ । इध्माबर्हिषी । दीचातपती । श्रद्धातपती । मधातपती । श्रध्ययनत-पती । उल्लुखलग्रुसले । श्राधावसाने । श्रद्धामेधे । श्रवसामे । वाङ्मनसे । इति दिधपयश्रादयः ॥

२२-अर्द्धर्चाः पुंसि च ॥ अ० २ । ४ । ३१ ॥ अर्द्धर्चादयः श्रृब्दाः पुंसि चानपुंसके च भाष्यन्ते ।

- (१) प्रकृत्यादिभ्यस्तृतीयाविभिक्तर्यथा स्यात् । कर्तृकरणाभावादप्राप्ता विधीयते । प्रकृत्याऽभिक्तपः । प्रकृत्या दर्शनीयः । इत्यादि ।।
- (२) अत्र गर्णे यथोचारित एव द्वन्द्वो द्रष्टन्यः । तेन रूपान्तरे न भवति । गोरवम् । गोरवौ । अत्र पशुद्वन्द्वो विभाषेकवद् भवति ।।

अर्द्धर्च। गोमय। कषाय। कार्षापण। कुतप। कपाट। शङ्खा चक्र। गुथ । यूथ । ध्वज । कवन्ध । पद्म । गृह । सरक । कंस । दिवस । यूप । अन्ध-कार । दएड । कपएडलु । मएड । भूत । द्वीप । यूत । चक्र । धर्म । कर्मन् । मोदक । शतमान । यान । नख । नखर । चरण । पुच्छ । दाडिम । हिम । र-जत । सक्तु । पिधान । सार । पात्र । घृत । सैन्धव । त्रोषध । त्रादक । चष-क । द्रोगा । स्वलीन । पात्रीय । पष्टिक । वार । बागा । प्रोथ । कार्यत्थ । शुष्क । शोल । शूल्व । सीधु । कवच । रेणु । कपट । सीकर । मुसल । सुवर्ष । यूप । चमस । वर्ण । चीर । कर्प । आकाश । घष्टापद । मङ्गल । निधन । नि-र्यास । जम्म । वृत्त । पुस्त । च्येडित । शृङ्ग । शृङ्खल । मधु । मूल । मृलक । शराव । शाल । वप्र । विमान । मुख । प्रग्रीव । शूल । वज्र । कर्पट । शिखर। कल्क । नाट । मस्तक । वलय । कुसुम । तृगा।पङ्क । कुएडल । किरीट। अर्बुद। श्रंकुश । तिमिर । श्राश्रम । भूषण । इल्कस । मुकुल । वसन्त । तडाग । पि-टक । विटङ्क । माप । कोश । फलक । दिन । दैवत । पिनाक । समर । स्थाणु । अनीक । उपवास । शाक । कर्पास । चवाल । खएड । दर । विटप । रण । वल । मल । मृणाल । इस्त । सूत्र । ताएडव । गाएडीव । मएडप । पटइ । सौध । पारर्व । शारीर । फल । छल । पुर । राष्ट्र । विश्व । अम्बर । कुद्दिम । मएडल । ककुद । तोमर । तोरण । मञ्चक । पुङ्क । मध्य । वाल । वर्लमीक । वर्ष । वस्र । देइ । उद्यान । उद्योग । स्नेइ । स्वर । सङ्गम । निष्क । देम । शुक्त । छत्र । पवित्र । यौवन । पानक । भूषिक । वल्कल । कुञ्ज । विद्वार । लोहित । विवाण । भवन । अरएय । पुलिन । दृढ । आसन । ऐरावत । शूर्प । तीर्थ । लोमशा । तमाल । लोह । दएडक । शपथ । प्रतिसर । दारु । घनुस् । मान । तङ्क । वितङ्क । मव । सहस्र । त्र्योदन । प्रवाल । शकट । अपराण्ह । नीड । शकल । कुण्प । मुग्ड । पूत । मरु । लोमन । लिङ्ग । सीर । चत । ऋषा । कडार । पूर्ण । पणव । विशाल । बुस्त । पुस्तक । पल्लव । निगड । खला । स्थृल । शार । नाल । प्रवर । कटक । कएटक । छाल । इमुद । पुराण । जाल । स्कन्ध । ललाट । कुङ्कुम । कुश्ल । विडङ्ग । पिएयाक । आर्द्र । इल । योध । विम्ब । कुक्कुट । कुडप । खण्डल । पञ्चक । वसु । उद्यम । स्तन । स्तेन । चत्र । कलइ। पालक । वर्चस्क । कूर्च । तएडक । तएडल । इत्यर्द्धर्चादयः ॥

#### २३ — पैलादिभ्यश्च ॥ अ० २ । ४ । ५९ ॥

पैलादिप्रातिपदिकेम्यो युवप्रत्ययस्य लुग्भवति । पीलाया त्र्यपत्यं पैलः । तस्य युवापत्यमिति फिन्त्तस्य लुक्।पैलः पिता ।पैलः पुत्रः। एवं शालङ्किः । इत्यादि ।

पैल । शालिङ्क । सात्यिक । सात्यकामि । दैवि । श्रौदमार्ज । श्रौदनित । श्रौदमेषि । श्रौदवृद्धि । दैवस्थानि । पैङ्गलायिन । राणायिनि । रौद्दविति । भौ- लिङ्कि । श्रौद्गाहमानि । श्रौजिद्दानि । रागचिति । राणि । सौमनि । ऊद्दमानि । तद्राजाचाणः (१)। श्राकृतिगणोऽयम् । इति पैलादयः ।

#### २४ — न तौल्बलिभ्यः ॥ अ०२ । ४ । ६१ ॥

तौल्वल्यादिभ्यः परस्य युवप्रत्ययस्य लुङ् न भवति । तुल्वलस्य गोत्रापत्यं तौल्वलिः । तस्य युवापत्यं तौल्वलायनः ।

तौल्व लि । घारिषा । राविषा । पारिषा । दैलीपि । दैवलि । दैवमति । दै-वयि । प्रावाहिषा । मान्धातिक । आनुहारित । श्वाफल्कि । आनुमति । आ-हिंसि । आसुरि । आयुधि । नैमिपि । आसिवन्धिक । वैकि । पौष्करसादि । वैराकि । वैलिकि । वैकिषा । कारेणुपालि । कामिलि । रान्धिक । आसुराहित । प्राणाहित । पौष्कि । कान्दिकि । दौपकगित । आन्तराहित । इति तौल्वल्याद्यः ॥

#### २५--यस्कादिभ्यो गोत्रे ॥ अ०२। ४। ६३॥

यस्कादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः परस्यास्त्रीलिङस्य वहुवचने वर्त्तमानस्य गोत्र-प्रत्ययस्य खुग्भवति यदि तेनैव गोत्रप्रत्ययेन कृतं वहुत्वं भवेत्तदा । यस्कस्य गोत्रापत्यं यास्कः । यास्कौ । यस्काः । लभ्याः । तेनैवेति किम् । प्रियो यास्को येषां ते प्रिययास्काः । श्रिस्त्रियामिति किम् । यास्क्यः स्त्रियः । गोत्र इति किम् । यास्कारछात्राः ।

यस्क । लभ्य । दुझ । अयः ध्यूण । तृशाकः र्थ (२)। सदांमत्त । कम्बल-भार । अहियोंग । कर्णाटक । पर्णाडक । पिएडीजङ्घ । बकसक्य (३)। बिरत । कहु । विश्रि । कहु । ऋजविरत । मित्रयु (४)। रह्यामुख । जङ्घारथ । मन्थक । उत्कास । कहुक । मन्थक । पुष्करसद् । विषपुट । उपरिमेखल । कोण्डुमान । कोण्डुपाद । शर्षिमाय (५)। खरप (६)। पदक । वर्मक (७)।

<sup>(</sup>१) वङ्गानां राजा वाङ्गः । तस्य युवापत्यम् वाङ्गः । श्रङ्गस्यापत्यमाङ्गः पिता पुत्रो वा ।। (२) यस्कादिपञ्चभ्यः शिवादित्वादण् ।। (३) सदामत्तादिसप्तभ्य इञ् ।

<sup>(</sup>४) वस्त्यादिषद्भ्यो गृष्ट्यादित्वाड्टम्।। (४) रह्मामुखाद्येकादशस्य इस्।

<sup>(</sup>६) खरपशाब्दान्नडादिः(वारफक् । (७) पदकवर्मकाम्यामिक् ।।

भन्दन (१)। मिडिल । भिष्डिल। भिडित । भिष्डित (२)। इति यस्कादयः॥ २६—न गोपत्रनादिभ्यः॥ अ०२। ४।६७॥

गोपवनादिप्रातिपदिकेभ्यः परस्य गोत्रप्रत्ययस्य वहुवचनविभक्षौ छुङ् न भवति यत्रवोश्चेति प्राप्तो छुक् प्रतिषिध्यते । गोपवनस्य गोत्रापत्यं गौपवनः । गौपवनौ । गौपवनाः ।

गोपवन । शिशु । विन्दु । भाजन । अश्व । अवतान । श्यामाक । श्वापर्ण ।

इत्यष्टौ विदायन्तर्गता गोपवनादयः ॥

२७—तिककितवादिभ्यो द्वन्द्रे ॥ अ०२ । ४ । ६८ ॥

तिकादिभ्यः कितवादिभ्यश्च परस्य गोत्रप्रत्ययस्य द्वन्द्वसमासे यहुवचनवि-भक्तौ ज्ञुग्भवति । तैकायनयश्च कैतवायनयश्चेत्यत्र तिकादिभ्यः फिञ् तस्य ज्ञुक् ।

तिककितवाः । वङ्खरभग्डीरथः (३) । उपकलमकाः (४) । पफकनरकाः । वकनत्वश्वगुदेपरिण्यद्धाः (४) । उव्जककुभाः (६) । लङ्कशान्तमुखाः (७) । उरसलङ्कटाः (८) । अष्टककिपष्ठलाः । कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः (६) । अग्नि-वेशदासेरकाः (१०) । इति तिककितवादयः ॥

२८—उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे ॥ अ०२॥ ४। ६६॥ उपकादिप्रातिपदिकेम्यः परस्य गोत्रप्रत्ययस्य वहुवचनविभक्षौ द्वन्द्वे चाद्वन्द्वे च विभाषा छुग्मवति । अद्वन्द्वप्रहणं द्वन्द्वाधिकारनिवृत्पर्थम् । एतेषां मध्ये त्रयो द्वन्द्वास्तिकितवादिषु पठिताः । उपकलमकाः । अष्टककिपष्टलाः । कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः । तेम्यः पूर्वस्रत्रेणैव नित्यछुग्भवति । अद्वन्द्वेत्वनेन विकल्पः । उपकाः । औपकायनाः । लमकाः । लामकाः । शोपाणां द्वन्द्वेऽद्वन्द्वे च विकल्पः ।

(१) भन्दनशब्दािच्छवादित्वाद्ण्।।(२) भिडलादिचतुभ्योऽश्वादित्वात् फञ्।।
(३) वाङ्खरयश्च भांडीरथयश्चेतीञ्।।(४) श्रोपकायनश्च लाभकायनश्चेति
नडादित्वात् फक्।।(५) पाफकयश्च नारकयश्च, वाकनखयश्च, श्वागुद्परिणद्धयश्च
सर्वेभ्योऽत इच् तस्य लुक्।।(६) श्रोव्जयश्च, इच् काकुभाश्च, शिवादित्वादण्।
तयोर्जुक्।।(७) लाङ्कयश्च शान्तमुखयश्च, इच् तस्य लुक्।।(८) श्रोष्टकयश्च, कापिष्ठलयश्च।
काष्णांजिनयश्च कार्ष्णसुन्दरयश्च । श्रतइच् तस्य लुक्।।(१०) श्राग्नवेश्याच,
गर्गादित्वाद् यच्। दासेरकयश्च, श्रत इच् तयोर्लुक्।।

उपक । लमक । अष्टक । किपण्डल । कुष्णाजिन । कुष्णासुन्दर । पर्गडा-रक । अर्ग्डारक। गडुक । सुपय्यक । सुपिष्ट । मयूरकर्ण । खारीजक्ष । शलावल । पतञ्जल । कठरेणि । कुपीतक । काशकुत्सन । निदाध । कलशीकर्ण्ड । दा-मकर्ण्ड । कुष्णापिङ्गल । कर्णक । पर्णक । जिटलक । विधिरक । जन्तुक । अनु-लोम । अर्द्धिपङ्गलक । प्रतिलोम । प्रतान । अनिभेत्त । चूडारक । उदङ्क । सु-धायुक । अवन्धक । पदञ्चल । अनुपद । अपजग्ध । कमक । लेखाअ । क-मन्दक । पिञ्जल । मस्रकर्ण । मदाध । कदामत्त । इत्युपकादयः ॥

२९—भृशादिभ्यो सुञ्यच्वेर्लोपश्च हराः ॥ अ०३।१।१२॥ अच्यन्तेम्यो स्थादिप्रातिपदिकेम्यो भवत्यर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति हल-न्तानां नान्त्यलोपः । अधृशो पृशो भवतीति मृशायते । सुमनायते । अच्वेरति किस् । मृशीभवति । अत्र मा भृत् ।

भृश । शीघ । मन्इ । चपल । पायिडत । उत्सुक । उन्मनस् । आमिमनस् । सुमनस् । दुर्भनस् । रहस् । रेहस् । शश्वत् । वृहत् । वेहत् । तृपत् । श्राधि । अधर । आजिस् । वर्षस् । विभनस् । रभन् । हन् । रोहत् । श्राचिस् । अजरस् । इति भृशहदिः ।

३० — लोहितादिङाज्भ्यः क्यष् ।। अ० ३ । १ । १३ ॥ श्रच्चयन्तेभ्यो लोहितादिभ्यो डाजन्तेभ्यश्र भवत्यर्थे क्यप् प्रत्ययो भवति । श्रलोहितो लोहितो भवति लोहितायते .। लोहितायति । श्रपटपटा पटपटा भ-वति पटपटायति । पटपटायते ।

लोहित । नील । हारित । पीत । मद्र । फेन । मन्द । आकृनिगणत्वात् । वर्मन् । निद्रा । करुणा । कुपा । इति लोहितादयः ॥

३१ — अविष्यति गरूयाद्यः ॥ ३ । ३ । ३ ॥
गम्पाद्यः शब्दा भविष्यति काले साधवो भवन्ति । ग्रामंगमी ।
गमी । श्रागामी । प्रस्थायी । प्रतिरोधी । प्रतिवोधी । प्रतियोधी । प्रतियोधी । प्रतियोधी । प्रतियायी । श्रायायी । भावी । इति गम्यादयः ॥

३२—ि विद्भिदादिश्योऽङ् ॥ अ०३ । ३ । १०४ ॥ विद्श्यो भिदादिश्यश्च धातुश्यः स्त्रियामङ् प्रत्ययो भवति । जृष्-जरा । त्रणा । भिदादयः पठचन्ते ।

मिदा (१)। छिदा । विदा । विषा । गुहा गिर्ध्योपध्योः ॥ श्रद्धा । मेघा । गोघा । त्रारा । हारा । कारा । विषा । भारा । घारा । रेखा । लेखा । चूडा । पीडा । वपा । वसा । मृजा ॥ ऋषेःसंप्रसारणं च ॥ कृषा, भिदा, वि-दारणे ॥ छिदा द्वैधीकरणे ॥ त्रारा शास्त्र्यम् ॥ घारा प्रपाते । इति भिदादयः॥

३३—वा०—संपदादिभ्यः किप् (२) ॥ अ० ३ । ३ । १०८॥ संपत् । विषत् । प्रतिपत् । स्राप्त् । परिषत् । इति संपदादयः ॥ ३४—भीमादयोऽपादाने ॥ अ० ३ । ४ । ७४ ॥

भीमादयः शब्दा उणादिस्था अपादानकारके निपात्यन्ते ।

भीमः । भीष्मः । भयानकः । वरुः । चरुः । भूमिः । रजः । संस्कारः । सं-क्रन्दनः । प्रपतनः । समुद्रः । स्नुचः । स्नुक् । खलतिः ॥ इति भीमादयः ॥

#### ३५—अजाचतष्टाप् ॥ ऋ० ४ । १ । ४ ॥

श्रजादिस्यः प्रातिपदिकेस्योऽकारान्ताच स्त्रियां ठाप् प्रत्ययो भवति । श्रजा । देवदत्ता । श्रदितितपरकरणं तत्कालार्थम् । कीलालपाः, ब्राह्मणी । श्रत्र ठाप् न भवति । श्रजादिग्रहणं तु जात्यादिलव्यास्य कीपादेवीधनार्थम् ।

श्रजा। एडका। चटका। श्रश्वा। सूपिका (३)। वाला। होड़ा।पाका। वत्सामन्दा । विलाता । पूर्वापहरणा । श्रपरापहरणा (४) ॥ संभक्षाजिन-श्रणापिएडेभ्यः फलात् ॥ संफला। (४) भक्षफला। श्राजिनफला । श्राणफला । पिएडफला। सदच्काएडप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् ॥ (६) सत्पुष्पा। प्रा-क्पुष्पा। प्रत्यक्पुष्पा। काएडपुष्पा। प्रान्तपुष्पा। श्रतपुष्पा। श्रद्धा-

- (१) भिदादिगणे येष्वर्थनियमः स महाभाष्यकारेणैव कृतोऽस्ति । विदारणा-दन्यार्थे भित्तिरिति सर्वत्रार्थान्तरे तिन् ।।
- (२)संपदादिगणपिठतेभ्य एव श्चियां किप् प्रत्ययो भवति । संपदादिश्चाकृतिगणो विद्येयः। कृत्यन्युटो बहुलामिति बहुलवचनात् तित्रपि भवति । संपत्तिः। विपत्तिः। इत्यादि ॥
- (३) श्रजादिभ्यः पञ्चभ्यो जातिलज्ञ्णो यो डीष् प्राप्तः सवाध्यते ।। (४) वाला-दिभ्यः पडभ्यो वयसि डीप् प्राप्तः ।। (५) श्राभ्यां टिक्षज्ञ्णो डीप् प्राप्तः ।।(६) समा-दिभ्यः फलात् सदादिभ्यश्च पुष्पाद् बहुत्रीहौ यः पाककर्णेति सूत्रेण डीष् प्राप्तः स वाध्यते ।।

चामइत्पूर्वा जातिः ॥ (१) क्रुब्चा । उष्णिहा । देवाविशा । (२) ज्येष्ठा । क-निष्ठा । मध्यमा । (३) कोकिला । (४) मूलाक्षत्रः । (५) अमूला । इ-त्यजादयः ॥

३६-न षद्स्वस्रादिभ्यः ॥ अ० ४ । १ । १० ॥

1

षद्सं इकेम्यः खस्नादिभ्यश्च प्रातिपदिकेम्यः स्त्रीप्रत्ययो न भवति, सप्त । अष्ट । खसा। दुहिता। ननान्दा। याता। माता। तिस्नः। चतस्रः। इति खस्नादयः॥

३७-षिद्गौरादिभ्यश्च ॥ अ० ४ । १ । ४१ ॥

षिद्भयो गौरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति । नर्चकी । खनकी । रजकी । गौरादिभ्यः । गौरी । मत्सी ।

गौर । मतस्य । मनुष्य । शृङ्ग । इय । गवय । युक्य । ऋष्य । पुट । दुण । द्रोण । हिरिण । कण । पटर । उकण । आमलक । कुवल । बदर । विम्व । तर्कार । शुक्तर । शिखएड । युपम । सलन्द । गडुज । आनन्द । सृपाट । सृगेट । आढक । शुष्कुल । स्वर्म । सुव । सूर्य । पूप । मृप । घातक । सकल्क । सल्लक । मालक । मालक । मालत । साल्लक । वेतस । अतस । प्रस । मह । मट । छेद । रवन् । तत्तन् । अनदुही । अनद्वाही । एपण, करणे । देह । काकादन । गवादन । तेजन । रजन । लवण । पान । मेघ । गौतम । आप । स्थूण । मौरि । मौलिक । मौलिङि । औद्गाहमानि । आलिङि । आपिन्छिक । आरदे । टोट । नट । नाट । मूलाट । ज्ञातन । पातन । पावन । आस्तरण । अन्वर्म । स्वर्म । सुपङ्गलात् संज्ञायाम् । सुन्दर । मएडल । पट । पिएड । विकर । कुर्द । गूर्द । पाण्ट । लोफाएट । कन्दर । कन्दल । तरुण । तल्लन । युहत् । महत् । सौधम्मी । रोहिणी, नत्तने रेवती, नत्तने । विकल । निष्कल । पप्पलादयश्च । पिप्पली ।

<sup>(</sup>१) अमहत्पूर्वाच्छूद्रशब्दाब्जातो टाप्। श्र्द्रा। पुंयोगे तु डिवेव श्र्द्रस्य स्त्री श्र्द्री। अमहिदिति किम्। महाश्र्द्री।। (२) कुञ्चादिभ्य किभ्यो प्राप्तष्टाव् विधिः।। (३) क्येष्ठादिभ्यिक्षभ्यः पुंयोगे डीप् प्राप्तोऽनेन वाध्यते। क्येष्ठस्य भाया क्येष्ठा।। (४) कोकित्तशब्दाक्जातित्त्त्त्राणो डीप् प्राप्तः।। (४) मूलशब्दाद् वहुव्रीहौ पाककर्णेति डीप् प्राप्तः। नास्तिमृत्तमस्या सा अमृता।

हरीतकी । कोशातकी । शमी । करीरी । पृथिवी । कोधी । मातामह (१)। पिता-मह । इति गौरादयः ॥

३८—बह्वादिभ्यश्च ॥ अ० ४ । १ । ४५ ॥

बह्वादिप्रातिपदिकेम्यः स्त्रियां वा कीष् अत्ययो भवति । बह्वा । बहुः ।

बहु । पद्धति । अङ्कति । अञ्चति । अंहति । वहति । शकटि ।। शक्तिः शस्त्रे ।। शाकिः शस्त्रे ।। शारि । वारि । गति । अहि । किष । मिन । यष्टि ।। इतः पाएयङ्गात् ।। कृदिकारादक्षिनः ।। सर्वतोऽक्षित्रयोदित्येके (२) ।। चएड । अराल । कमल । कृपाण । विकट । विशाल । विशंकट । मरुज । ध्वज ।। चन्द्रभागान्नद्याम् ।। चन्द्रभागी । कल्पाण । उदार । पुराण । अहर् ।। इति वहादयः ।।

३६ — न को ड़ादि बह्वचः ॥ ऋ० ४ । १ । ५६ ॥

कोडायन्ताव् वहजन्ताच प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् मत्ययो न भवति । स्वाङ्गादिति प्राप्तः मतिपिध्यते । शोभनकोडा । शोभनखुरा । पृथुजघना ।

कोड । खुर । वाल । शफ्र । गुद । घोषा । नख । मुख । भग । गल । श्राकृतिगर्योऽयम् । इति क्रोडादयः ॥

४०--शार्झरवायञो ङीन् ॥ अ० ४ । १ । ७३ ॥

शार्ङ्गरवादिम्योऽवन्तेम्यश्च प्रातिपदिकेम्यः स्त्रियां बीन् मत्ययो भवति । शार्ङ्गरवी । वैदी । जातिप्रहणमत्रानुवर्त्तते तेन जातिलच्चणो बीपनेन बाध्यते न पुंयोगलच्चणः ।

शार्करव । कापटव । गौगुलव । ब्राह्मण् । गौतम । कामएडलेन । ब्राह्मकु-तेय । आनिचेय । आनिधेय । आशोकेय । वात्स्यायन । माजायन । केकसेय । कान्य । शैन्य । एहि । पर्स्येहि । आश्मरथ्य । श्रौद्पान । अराल । चएडाल ।

<sup>(</sup>१) श्रत्र डामहच् प्रत्ययस्य वित्वादेव डीवि सिद्धे पुनः पाठेन विस्तव्यास्य कीवोऽनित्यत्वं ज्ञाप्यते तेन दंष्ट्रा, इति सिद्धं भवति । पृथिवीशव्दे श्रौणादिकः विवन् प्रत्ययस्य वित्वान् डीवि सिद्धे उणादीनामन्युत्पन्नत्वज्ञापनार्थः पाठः ।।

<sup>(</sup>२) इकारान्तात् प्राष्यङ्गवाचकान् ङीष् भवति । श्रंगुली । इकारान्तात् छदन्तात् स्त्रियां ङीष् । छिष । भूमी । वापी । केषांचिन्मते किन्नाधिकारस्थादिकारान्तमा-त्रादेव ङीष् न भवति । तदा छिषिः । वापिः । इत्येव ।।

वतएड । भोगवद्गौरिमतोः संज्ञायाम् ॥ भोगवती । गौरिनती ॥ नृनस्योद्घेद्धि-श्र्व ॥ नारी । इति शार्कस्वाद्यः ॥

४१--क्रोड्यादिभ्यइच ॥ घ्र० ४ । १ । ८० ॥

.

ऋौड्यारिप्रातिपार्दिकेभ्यः स्त्रियां प्यङ् प्रत्ययो भवति । अगुरूपोत्तमार्थ आरम्भः । क्रौड्या । लाड्या ।

क्रोडि । लाडि । न्याडि । ग्रापिशालि । श्रापिति । नौपयत । नैटयत । शैकयत । नैटनयत । नैकरपयत । सौधातिक ॥ स्वतत् युनत्याम् । स्ट्रा, युनितः ॥ भोज, चित्रिये ॥ भोज्या, चात्रिया । भौतिकि । भौलिकि । शारमिल । शाला-स्थिलि । कापिष्ठलि । गौकत्त्य ॥ इति क्रौडिचादयः ॥

. ४२--- अश्वपत्यादिभ्यश्च ॥ अ० ४ । १ । ८४ ॥

अश्वपत्यादिप्रातिपदिकेम्यः प्राग्दीन्यतीयेष्त्रर्थेष्वण् प्रत्ययो भवति । पत्युत्तर-पदात् प्राप्तस्य एयस्यापनादः । आश्वपतम् । शातपतम् ।

अश्वपति । शतपति । धनपति । गणपति । राष्ट्रपति । कुलपति । गृहपति । धान्यपति । पश्चपति । धर्मपति । समापति । प्राणपति । चेत्रपति । स्थानपति । यज्ञपति । धन्यपति । आधिपति । वन्धुपति । इत्यश्वपत्यादयः ॥

४३--- उत्सादिभ्योऽञ् ॥ अ० ४ । १ । ८६ ॥

जत्सादिस्यः प्राग्दीव्यतीयेष्त्रर्थेष्वञ् प्रत्ययो भवति । श्रौत्सः । श्रौदपानः । श्राणस्तदपवादानां च वाधकः ।

उत्स । उद्यान । तिकर । तिनोद । महानद । महानस । महाप्राण । तरुण । तल्ल । विक्रियासे (१) ॥ घेतु । पृथिती । पंक्ति । जगती । त्रिष्टुप् । अनुष्टुप् । जनपद । भरत । उशीनर । ग्रीव्म । पीलु । कुल । उदस्थान, देशे ॥ पृष, दंशे (२)॥ भल्लकीय । रथन्तर । मध्यन्दिन । वृहत् । महत् । सत्यन्तु (३)। कुरु । पञ्चाल । इन्द्रावसान । जिल्लाक् । ककुप् । सुवर्ण । सुपर्ण । देव । ग्रीव्मादच्छन्दसि (४)॥ इत्युत्सादयः॥

- (१) वक्कयशब्दादसेऽर्थात् केवलादेवाञ् । तदन्तात्त्वर्योव भवति ।।
- (२) उदस्थानशञ्दादेशार्थे एवाञ् । अन्यार्थेऽऐव भवति । एवमन्यत्रापि ।।
- (३) श्रत्र सत् शब्दान्मतुप्—प्रत्वन्, तु, श्रव्ययम् । सत्वतोऽपत्यं सात्वताः ।।
- ( ४ ) श्रत्र छन्दःशब्देन वृत्तं गृह्यते न तु वेदः । ततोऽन्यत्राम् ॥

### ४४—बाह्वादिभ्यश्च ॥ ऋ०४ । १ । ६६ ॥

बाह्नादिशब्देभ्योऽपत्यसामान्ये इक् प्रत्ययो भवति । बाह्नोरपत्यं बाह्विः । सौमित्रिः । इत्यादि ।

वाहु । जपवाहु । विवाकु । शिवाकु । वटाकु । उपविन्दु । वृक । चूडाला । मृिका । वलाका । भगला । जगला । ध्रवका । ध्रवका । सुमित्रा । दुर्मित्रा । पुष्करसत् । अनुहरत् । देवश्मित्र । अग्निशमित् । कुनामन् । सुनामन् । पञ्चन् । सप्तन् । अप्रतिजेतसः सलोपश्च (१)॥ उदञ्च । शिरस् । शराविन् । चेमवृद्धिन् । शङ्कलातोदिन् । खरनादिन् । नगरमार्दिन् । प्राकारमार्दिन् । लोमन् । अजीगर्ते । कृष्ण । सलक । युविष्ठिर । अर्जुन । साम्व । गद । पद्युम्न । राम । उदङ्कः संज्ञायाम् ॥ सम्भूयोऽम्मसोः सलोपश्च (२)॥ आकृतिगणोऽयम् (२)॥ इति वाह्वादयः ॥

४५—गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ् ॥ अ० ४ । १ । ६८ ॥

गोत्रसंज्ञकेऽपत्ये वाच्ये कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् प्रत्ययो भवति । इञोऽप-वादः । कुञ्जस्य गोत्रापत्यं कौजायन्यः । कौजायन्यौ । कौजायनाः । स्वार्थे व्यस्तस्य तद्राजत्वाद्वहुपुलुक् । गोत्र इति किम् । कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौजिः ।

कुञ्ज । ब्रध्न । शङ्ख । भस्मन् । गण् । लोमन् । शाठ । शाक । शाकट । शुख्डा । शुभ । विपाश । स्कन्द् । स्कम्भ । शुम्भा । शिव । शुभंया । इति कुञ्जादयः ॥

४६ — नडादिभ्यः फक् ॥ अ० ४ । १ । ६६ ॥

नडादिप्रातिपदिकेम्यो गोत्रापत्ये फक् प्रत्ययो भवति । नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः । चारायणः ।

नड । चर । बक । मुञ्ज । इतिक । इतिश । उपक । लमक ।। शलंकुशल-इक्च (४) ।। सहल । वाजप्य । िक । अभिशर्मन् वृष्णे । प्राण । नर ।

- (१) श्रामितौजसोऽपत्यमामितौजिः।।
- (२) सम्भूयसोऽपत्यं साम्भूयिः । श्राम्भिः ॥
- (३) सूत्रस्थचकारेणात्राऽऽकृतिगण्तवं बोध्यते । तेन जाम्बः । ऐन्द्रशर्मिः । आजधेनविः । आजवन्धविः । श्रौडुलोभिः । इत्यादिष्विव् सिद्धो भवति ।।
- ( ४ ) शलङ्कुरान्दस्य शलङ्कादेशः । शलङ्कोरपत्यं शालङ्कायनः ।।

सायक | दास | मित्र | द्वीप | पिङ्गर | पिङ्गल | किङ्कर | किङ्कल | कातर | कातल | काश्य | काश्यप | काव्य | अज | अप्रुष्य |। कृष्ण्रण्यों ब्राक्षण्-वासिष्ठयोः (१) |। आमित्र | लिगु | चित्र | कुमार | क्रोष्ट | कोष्टन्च (२) |। लोह | दुर्ग | स्तम्म | शिश्यपा | अग्र | तृण् | शकट | सुमनस् | सुमत | मिमत | अप्रक् | जन् | युगन्धर | हंसक | दापिडन् | हस्तिन् | पञ्चाल | चमसिन् | सुकृत्य | स्थिरक | ब्राक्षण | चटक | बदर | अश्वक | खरप | कामुक | ब्राक्षत्य | उदुम्बर | शोण् | अलोह | दएड | एक | वानव्य | शायक | नाव्य | अन्वजत्व | अन्तजन | इत्यरा | अंशक | अश्वला | अध्वर | दएडप | इति नडादयः |।

४७--अनृष्यानन्तर्थे विद्।दि्भ्योऽञ् ॥ अ०४।१।१०४॥ विदादिप्रातिपादिकेभ्यो गोत्रापत्येऽञ् प्रत्ययो भवति । येऽत्र गर्योऽनृपिवा-चकास्तेभ्यस्त्वनन्तरापत्य एव । विदस्य गोत्रापत्यं वैदः । पुत्रस्यानन्तरापत्यं पौत्रः । दौहित्रः ।

विद । उर्व । करयण । क्काशिक । भरद्वाज । उपमन्यु । किलालप । किदर्भ । विश्वानर । ऋषिषेण । ऋपभाग । इर्थ्यश्व । प्रियक । आपस्तम्ब । क्र्चवार । शरदृत् । श्रुनक । धेतु । गोपवन । शिग्रु । विन्दु । भाजन । अश्वावतान । श्यामाक । श्यामाक । श्यापण । इरित । किन्दास । वहास्क । अर्कछूप । वध्यो-ष । विष्णुवृद्ध । प्रातिबोध । रथन्तर । रथीतर । गविष्ठिर । निपाद । मठर । सृद । पुनर्भू । पुत्र । दुहितृ । ननान्द्द ।। परस्त्री, पर्श्रुं च (३)।। किता । सम्बक । शावली । श्यायक । अलस । इति विदादयः ॥

४८—गर्गादिभ्यो यञ् ॥ श्र० ४ । १ । १०५ ॥

गर्गादिभ्योऽन्तरे गोत्रापत्ये यञ् प्रत्ययो भवति । गार्ग्यः । श्रनन्तरापत्ये तु गार्गिरित्येव ।

गर्ग । वत्स । वाजाऽसे (४) । संकृति । अज । व्याघ्रपात् । विदभृत् ।

- (१) कृष्णस्यापत्यं कार्ष्णायनो त्राह्मणः। राणायनो वासिष्ठः।।
- (२) कोष्टोरपत्यं कौष्टः ॥
- (३) परिक्रया अपत्यं पारशवः ॥
- (४) असेऽसमासे वाजराज्दाद्यञ्। सुवाजस्यापत्यं सौवाजिः । अत्र यञ् न भवति ।।

प्राचीनयोग । अगस्ति । पुनिस्ति । रेभ । अग्निवेश । शङ्ख । श्राठ । धूम । अन्वट । चमस । धनज्ञय । मनस । वृद्ध । विश्वावसु । जनमान । लोहित । संश्वात । वृद्ध । मनतु । मनतु । जिगीपु । मनु । मनतु । मनतु । प्रालेगु । शङ्क । लिगु । गुलु । मनतु । जिगीपु । मनु । तनतु । मनायी । भूत । कथक । कप । तएड । वतएड । कपि । कत । कुरुकत । अनङ्कद्द । कएव । शकल । गोकच्च । अगस्त्य । कुरिडन । यज्ञवल्क । उमय । जात । विरोहित । वृपगण् । रहूगण् । शायिडल । वण् । कचुलुक । सुद्गल । सुसल । पराशर । जतुकर्ण । मन्तित । संहित । अश्मरथ । शर्कराच । पूतिमाप । स्थूण् । अररक । विङ्कल । कृष्ण् । गोल्जन्द । उल्कृक्ष । तितिच । मिनपज्ञ । मिडित । भिरुल । स्थूण । सिहत । स्थूण् । पिप्पलु । वृद्गिन । जमदानि । सुलोभिन् । उकत्थ । कुटीगु । इति गर्गाद्यः ।।

#### ४९-अश्वादिभ्यः फञ् ॥ अ० ४। १। ११०॥

श्रश्वादिभ्यो गोत्रापत्ये फञ् प्रत्ययो भवति । श्राश्वायनः । श्राश्मायनः । येस्मिन् गणेऽपत्यैकप्रत्ययान्ताः पठचन्ते तेषु सामध्याद्यानिप्रत्ययो विज्ञायते ।

श्रश्व । श्रश्मन् । शङ्ख । विद । पुट । रोहिण् । खर्ज्य् । खर्ज्य् । पिन्ज्र । भिंडल । भिंडल । भिंडल । भिंडल । भिंडल । प्रहृत । रामोद ।
चत्र । ग्रीवा । काश । भोलाङ्कच । श्रक्त । स्वन । ध्वन । पाद । चक्र । कुल ।
पवित्र । गोमिन् । श्याम । धूम । धूम्र । वाग्मिन् । विश्वानर । कुट । वेश ।
श्रात्रेय । नत्त । तड । नड । ग्रीष्म । श्रई ॥ विशम्य । विशाला । गिरि । चपल । चुनम । दासक । वैल्य । धर्म । श्रानहुद्ध । पुंसिजात । श्रर्जुन । श्रुद्धक ।
सुमनस् । दुर्मनस् । च्वान्त । प्राच्य । कित । काण् । चुम्प । श्रविष्ठा । वीच्य ।
पविन्दा । कुत्स । श्रातव । कितव । शिव । खदिर ॥ श्रात्रेय, भारद्वाने । भारद्वाज, श्रात्रये (१) ॥ पथ । कन्थु । श्रुव । सनु । कर्कटक । रुच्च । तरुच्च । तरुच्च । विलम्य । विष्णुज । इत्यश्वादयः ॥

#### ५०-शिवादिभ्योऽस् ॥ अ० ४। १। ११२॥

शिवादिभ्यः सामान्यापत्येऽण् प्रत्ययो भवति । यथाप्राप्तानामित्रादीना-मण्पवादानां च वाधकः । शिवस्यापत्यं शैवः ।

<sup>(</sup>१) श्रात्रेयशब्दाद् भारद्वाजगोत्रे फन्। श्रात्रेयायणो भारद्वाजः। भारद्वाज शब्दादात्रेयगोत्रे फन्। भारद्वाजायन श्रात्रेयः।।

शिय । प्रौष्ठ । प्रोष्ठिक । चएड । सएड । जम्म । म्रुनि । सन्धि । भ्रीर । कुटार । अनिमन्तान । अनिमन्तान । ककुत्स्थ । कहोड । लेख । रोध । स्वन्जन । कोहड़ । पिष्ट । हेह्य । स्वन्जार । स्वन्जात । मुरोहिका । पर्ण । कहूप । परिल । वतएड । तृण्य । कर्ण । चिरहृद । जलहृद । परिणिक । जिटिलिक । गोफिलिक । विधिरका । सम्जीरक । वृष्णिक । रेख । आलेखन । विश्रवण । स्वण । वर्त्तनाच । पिटक । पिटाक । तृच्याक । नभाक । ऊर्णनाम । जरत्कार । उत्चिपा । रोहितिक । आर्थखेत । सुपिष्ट । स्वर्जूरकर्ण । मम्रुरकर्ण । स्वर्कर्ण । स्वर्यकर्ण । स्व

५१—शुआदिभ्यश्च ॥ घ्र० ४ । १ । १२३ ॥

शुआदिप्रातिपदिकेम्योऽपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति । यथाप्राप्तामेन्यादींनाम-पवादः । शुअस्यापत्यं शौश्रेयः ।

शुम्र । विष्टपुर । ब्रह्मकृत । शतद्वार । शतावर । शलाका । शालाचल । शलकाम्नू । लेखाम्नू । विमातृ । विभवा । क्रुकसा । रोहिणी । रुक्मिणी । दिशा । शालूक । म्रजवस्ति । शकान्ध । लच्चणश्यामयोविसिष्ठे (२)॥गोघा । क्रुकलास । म्रणीव । प्रवाहण । भरत । भारत । भारम । युकएडु । मघष्टु । मकष्टु । कर्पूर । इतर । मन्यतर । म्रालीढ । सुदत्त । सुचचस । सुनामन् । कहु । तुद । अकशाप । कुनारिका । किशोरिका । कुनेणिका । जिम्लाशिन । परिधि । वायुदत्त । शकल । खट्दर । मन्यका । म्रशोका । शुद्धिकृता । स्वडोन्मत्ता । म्रजुदृष्टि । जरतिन् । वालिवर्दिन् । विग्रज । वीज । स्वन् । म्ररमन् । स्वर्व । म्रजिर । स्थूल । सुकएडु । मक्यु । यमष्टु । कष्टु । सुकएड । सुकएड । सुकएड । गुद । कुने। इति शुभादयः ॥

<sup>(</sup>१) स्त्रीवाचकाद् द्वयच इति सूत्रेण ढक् प्राप्तः स नदीवाचकान्माभूत् । रेवा-या अपत्यं रैवः । त्रिवेण्यास्त्रिवणादेशो विशेषः । त्रिवेण्या अपत्यं त्रैवणः ॥

<sup>(</sup>२) लज्ञणस्यापत्यं लाज्ञणेयो वसिष्ठः । श्यामाया श्रपत्यं श्यामेयो वसिष्ठः । मानुषी वाचकात् श्यामाशब्दादण् प्राप्तः सोऽनेन वाध्यते ।।

## प्र-कल्याण्यादीनामिनङ् ॥ अ० ४ । १ । १२६ ॥

10

कल्याएयादिप्रातिपदिके स्योऽपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति तस्मिन् सति इन-कादेशः । कल्याएया अपत्यं काल्याणिनेयः । सौभागिनेयः (१) ॥

कल्याणी । सुमगा । दुर्भगा । बन्धकी । अनुदृष्टि । अनुसृष्टि । जरती । बलीवर्दी । ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमा । परस्त्री । इति कल्याण्याद्यः ॥

प्र- गृष्टचादिभ्यश्च ॥ अ० ४ । १ । १३६ ॥

गृष्टचादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ढब् प्रत्ययो भवति । श्राणादीनामपवादः । गृष्टेरपत्यं गार्ष्टेयः ॥

मृष्टि । हृष्टि । हालि । विलि । विश्रि । कुद्रि । अजवस्ति । मित्रयु । फलि । आलि । दृष्टि । इति मृष्टचादयः ॥

५४--रेवत्यादिभ्यष्ठक् ॥ अ० ४ । १ । १४६ ॥

रेषत्यादिस्योऽपत्ये ठक् प्रत्ययो भवति । ठगादीनामपवादः । रेवत्या अ-पत्यं रैवातिकः ॥

रेवती । त्रश्वपाली । मणिपाली । द्वारपाली । वृक्षविन्चन् । वृक्षपाइ । क-गीग्राइ । दएडग्राइ । कुक्कुटाच । वृक्षवन्धु । चामरग्राइ । ककुदाच । इति रेवत्यादयः ॥

प्र-कुर्वादिभ्यो गयः ॥ अ० ४। १। १५१॥

क्रुवीदित्रातिपदिकेम्योऽपत्ये एयः प्रत्ययो भवति । क्रुरोरपत्यं कौरव्यः । काव्यः ॥

कुरु । गर्ग । सङ्गुष । अजमारक । रथकार । वावद्क । सम्राजः चत्रिये (२) । कवि । मति । वाक् । पितृमत् । इन्द्रजालि । दामोध्णीषि । गणकारि । कैशोरि । कापिन्जलादि । कुट । शलाका । मुर । एरक । अभ्र । दर्भ । केशिनी । वेनाच्छन्दासि ॥ शूर्पणाय । श्यावनाय । श्यावरथ । श्यावपुत्र । सन्त्यंकार । वडभीकार । शङ्कु । शाक । पथिकारिन् । मृद । शकन्धु । कर्नृ । इन्हि । शाकिन् । इनिपण्डी । विस्फोटक । काक । स्फाएटक। शाकिन् । घातिक ।

<sup>(</sup>१) कल्याएयादिभ्यो ढक् तु सिद्ध आदेशार्थं वचनम् । इ.द्वासिन्ध्वन्त इत्यु-भयपद्युद्धिः ।।

<sup>(</sup> २ ) सम्राट् शब्दात् चित्रये वाच्ये एयो भवति सम्राजोऽपत्यं साम्राज्यः चित्रयः ॥

घेनुजि । बुद्धिकार । वामरथस्य करावादिवत् स्वरवर्जम् (१) । इति कुर्वादयः ॥
५६--तिकादिभ्यः फिञ् ॥ अ० ४ । १ । १५४ ॥

तिकादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये फिञ् प्रत्ययो भवति । तिकस्यापत्यं तैका-यनिः । कैतवायनिः ॥

तिक। कितव। संज्ञा। वाल। शिखा। उरस्। शाढण। सैन्धव। यमुन्द। रूप्य। प्राम्य। नील। त्रामित्र। गौकत्त्य। कुरु। देवरथ। तैतिल। त्र्योरस। कौरन्य। भौरि-कि। भौलिकि। चौपयित। चैटयत। शैकयता। चैतयत। ध्वाजवत। चन्द्रमस्। श्रुम। गङ्गा। वरेएय। सुयामन्। त्र्यारद्ध्व। वद्यका। खल्य। वृष (२)। लोमक। उदन्य। यज्ञ। ऋष्य। भीत। जाजल। रसः। लावक। ध्वजवद। वसु। वन्धु। त्रावन्धका। सुपामन्। इति तिकादयः।।

५७--वाकिनादीनां कुक्च ॥ अ० ४ । १ । १५८ ॥

वाकिनादिशब्देभ्योऽपत्ये फिच् प्रत्ययो भवति । तत्सिन्नियोगेन चैवां कु-गागमः वाकिनस्वापत्यं वाकिनकायनिः ॥

वाकिन। गारेध। काकठ्य। काक। लङ्का।। चर्मिवर्मिणोर्नलोपश्च (३)।। इति वाकिन।दयः।।

प्र—वा०—कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनम् ॥ अ०४। १। १७५॥ कम्बोजादिशब्देभ्योऽपत्ये तद्राजिन विहितस्य लुग्भवति । कम्बोजस्यापत्यं तद्राजो वा कम्बोजः ।

कम्बोज । चोल । केरल । शक । यवन । इति कम्बोजादयः ॥

पुरु — न प्राच्यभगीदियौधेयादिभ्यः ॥ अ० ४ । १ । १७८ ॥

प्राच्यचत्रियवाचकेम्यो भगीदिभ्यो यौधेयादिभ्यश्चोत्पन्नस्य तहाज-

- (१) वामरथराव्दाण्यप्रत्ययो भवति कर्वादिवच्च स्वरवर्जं कार्यमातिदिश्यते । कर्वादयो गर्गाद्यन्तर्गतास्तेभ्यः शैषिकोऽण् यथा कार्व्यस्येमे छात्राः कार्वाः । एवं वामरथादिप शैषिकोऽण् वामरथस्य छात्रा वामरथाः । बहुवचने यञ्वण्रयस्याऽपि लुक् । वामरथाः । यञश्चेति ङीप् । वामरथी । इत्यादि स्वरस्त्वन्तोदात्त एव ।।
- (२) फिञ् प्रत्ययसम्बन्धे वृषशब्दस्य यकारान्तत्त्वं महाभाष्ये कृतम् । वृषस्यापत्यं वाष्यीयागिः ।।
  - (३) चार्मिकायिषः । वार्मिकायािषः ।।

प्रत्ययस्य जुङ् न भवति । श्रतश्चेति प्राप्तः प्रतिविध्यते । प्राच्य पञ्चालानां राज्ञी पाञ्चाली । वैदेही । भागी । यौधेयी ।

भर्ग । करूष । केकय । कश्मीर । साल्व । सुस्थाल । उरश । कौरव्य । इति भर्गादयः ॥ यौधेय । शौश्रेय । शौक्रेय । ग्रावाणेय । वार्त्तेय । धार्त्तेय । त्रिगर्त्त । भरत । उशीनर । इति यौधेयाद्यः ॥

६०-सिक्षादिभ्योऽण् ॥ अ० ४। २। ३८॥

पृष्टीसमर्थभिद्यादिशब्देभ्यः समूहार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । अजादिवाध-नार्थमण्ब्रहणम् । भिद्याणां समुहो भैद्यम् । गार्भिणम् ।

भिज्ञा। गर्भिणी । ज्ञेत्र । करीष । श्रङ्गार । चर्मिन् । धर्मिन् । चर्मिन् । धर्मिन् । चर्मिन् । धर्मिन् । सहस्र । युवति । पदाति । पद्धति । श्रथवेन् । श्रवेन् । दिच्या । भूत । विषय । श्रोत्र ॥ वृद्धादिभ्यः स्वएडः (१)॥ वृद्धस्वएडः । वृज्ञ । तरु । पादप । इति भिन्धादयः ॥

६१ — खारिडकादिभ्यश्च ॥ श्र० ५ । २ । ४५ ॥

खिरिडकादिभ्यः समुहार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति । खिरिडकानां समूहः खारिडकम् । खिरिडका । वडवा ।। ज्ञुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायाम् (२) ।। भिन्नुक । श्रुक । खन् । युग । श्रहन् । वरत्रा । हलवन्ध । इति खरिडकादयः ।।

६२-पाशादिभ्यो यः ॥ अ० ४ । २ । ४६ ॥

पष्टीसमर्थपाशादिभ्यः समूहार्थे यः प्रत्ययो भवति । पाशानां समूहः पाश्या रज्जुः । तृएया ।

पाश । तृर्ण । धूम । वात । श्रङ्गार । पोत । वालक । पिटक । पिटाक । शकट । इल । नड । वन । पाटलका । गल । इति पाशादयः ॥

६३--राजन्यादिभ्यो बुञ् ॥ अ० ४ । २ । ५३ ॥

राजन्यादिप्रातिपदिकेभ्यो विषयो देश इत्येतास्मन्नर्थे बुज् प्रत्ययो भवति । राजन्यानां विषयो देशः राजन्यकः ।

- (१) खण्डराञ्दः पुस्तकान्तरपठितो न सर्वत्र काचित्तु वृत्तादिभ्यः षण्डः । इति पाठः । वृत्त्तपण्डः ।।
- (२) जुद्राश्च मालवाश्चेति चत्रियद्वन्द्वः । ततः पूर्वेग्यैवाान्नि सिद्धे गोत्रवुञ् वाधनार्थं वचनम् । जुद्रकमालवानां समृद्दः चौद्रकमालवी सेना । सेनासंज्ञोति नियमार्थम् । अन्यत्राञ् न भवति । चौद्रकमालवकम् ।।

00

राजन्य । देवयान । शालङ्कायन । जालन्धरायण । त्रात्मकामेय । अन्बरीयपुत्र । वसाति । वैल्वान । शैलूप । उदुम्बर । वैन्ववल । आर्जुनायन । संप्रिय । दान्ति । ऊर्णुनाम । आत्रीत । अब्रीड । वैतिल । वात्रक (१)। इति राजन्यादयः ॥

६४--भौरिक्याचैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ॥अ०४।२।५४॥

विषयो देश इत्येतस्तिन् विषये षष्टीसमर्थेभ्यो भौरिनयादिभ्य ऐषुका-र्यादिभ्यश्व यथासंख्यं विधल्भक्षलौ प्रत्ययौ भवतः। अणोऽपवादः। भौरिकी-णां विषयो देशः, भौरिकिविधः। ऐषुकारिभक्षः।।

भौरिकि । भौलिकि । वैपेय । चैटयत । काण्येय । वाणिजक । कालिज । वालिज्यक । शैकयत । वैकयत । इति भौरिक्याद्यः ॥ ऐषकारि । सारस्यायन । चान्द्रायण । द्वचाचायण । ज्यायण । ज्योडायन । जौडायन । खाडायन । सौनीर । दासिनित्र । दासिनित्रायण । शौद्रायण । दाचायण । श्रायण्ड । ताच्यायण । शौश्रायण । साविष्ड । शौण्ड । वैश्वमाण्य । वैश्वधेनव । नद । तुण्डदेव । अलायत । शौजाजायत । शौण्ड । श्रायण्ड । वैश्वदेव । इत्येषुकार्यादयः ॥

६५ — ऋतुक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ॥ अ० ४ । २ । ६० ॥

तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन् विषये ऋतुविशेषवाचिभ्य उक्थादिभ्यः सूत्रान्ताच प्रातिपदिकाद्ठक् प्रत्ययो भवाते । त्राणोऽपवादः । त्रामिष्टोममधीते वेद वा स्रामिष्टोमिकः । वाजपैयिकः । त्रौक्षिकः । वार्त्तिकद्वत्रमधीते वार्त्तिकद्वत्रिकः । सांग्रहस्तिकः ।

उक्थ । लोकायत । न्याय । न्यास । निमित्त । पुनरुक्त । निरुक्त । यह । चर्चा । धर्म । क्रमेतर । श्लचण । संहिता । पर । क्रम । संघात । वृत्ति । संग्रह । गुणागुण । त्रायुर्वेद ॥ द्विपदी, ज्योतिषि (२) ॥ अनुपद । अनुकल्प । अनुगुण । इत्युक्थादयः ॥

६६ — क्रमादिभ्यो बुन् ॥ अ० ४ । २ । ६१ ॥ तद्धीते तद्देदेत्यर्थे क्रमादिभ्यो बुन् प्रत्ययो भवति। क्रममधीते क्रमकः। पदकः।

- (१) श्रयमाकृतिगण्स्तेन मालवानां विषयो देशः मालवकः । वैराटकः । त्रैगर्त्तकः । इत्यादयः शब्दाः सिद्धा भवन्ति ॥
  - (२) द्विपदीं ज्योतिःशास्त्रमधीते जानाति वा स द्वैपदिकः ।।

क्रम । पद । शिचा । मीमांसा । सामन् । इति क्रमादयः ॥ ६७ — वसन्तादिभ्यष्टक् ॥ अ० ४ । २ । ६३ ॥

तद्धीते तद्धेदेत्यस्मिन् विषये वसन्तादिशातिपादिकेम्यष्ठक् प्रत्ययो भवति । वसन्तसङ्चरितो प्रन्थो वसन्तस्तमधीते वेद वा स वासन्तिकः । वार्षिकः । एवं सर्वत्र । वसन्त । वर्षा । शरद् । हेमन्त । शिशिर । प्रथम । गुण् । चरम । ग्रनुगुण् ।

0

अपर्वन् । अथर्वन् । इति वसन्तादयः ॥

६८—संकलादिभ्यश्च ॥ ऋ० ४।२। ७५॥

संकलादिप्रातिपदिकेम्यश्रातुर्रार्थकोऽत्र् प्रत्ययो भवति । अगोऽपवादः । पुष्कला अस्मिन् सन्तीति पौष्कलो देशः । सिकताया अदूरभवो प्रामः सैकतः ।

यथासम्भवमर्थसम्बन्धः ।

संकल । पुष्कल । उद्धय । उद्घप । उत्पुट । कुम्म । विधान । सुदत्त । सुदत्त । सुम्त । सुनेत्र । सुपिङ्गल । सिकता । पूर्ताकी । पूलास । कूलास । प्लाशं । निवेश । गवेश । गम्भीर । इतर । शर्मन् । श्रहन् । लोमन् । वेमन् । वरुष । बहुल । संघोज । श्रामिषिङ्ग । गोधत् । राजभृत् । यह । भृत । मह्न । माल । (वृत् ) इति संकलादयः ॥

६६—सुवास्त्वादिभ्योऽण् ॥ स्त्र० ४ । २ । ७७ ॥
सुवास्त्वादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुर्रार्थिकोऽण् प्रत्ययो भवति । स्रन्रोऽपवादः ।

सुवास्तोरदूरं नगरं सौवास्तवी नदी ।

सुवास्तु । वणु । भएड । खण्ड । कएड । सेचालिन । कर्पूरन् । शिख-ण्डिन् । गर्त्त । कर्कश । शटीकर्ण । कृष्ण । कर्क । कर्कन्धूमती । गोद्ध । गाहि । श्रहिसक्थ । (वृत् ) इति सुवास्त्वादयः ॥

७०-वुञ्छगकठजिलसोनिरढञ्ण्ययफक्षिञ्ञञ्यककठकोऽरी-हणकृशाश्वर्य कुमुदकाशृतृगाप्रेक्षाश्मसिवसंकाशबलपक्षकर्णसु-तङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥ अ० ४ । २ । ८० ॥

अरीहणादिसप्तदशगणस्थप्रातिपदिकेभ्यश्वातुर्रार्थका बुबाद्यः सप्तदशैव प्रत्यया यथासंख्येन भवन्ति । आदिशब्दः प्रत्येकमिसंबध्यते । यथासम्भ-वमर्थसम्बन्धः । अरीहणादिभ्यो बुब् । शिरीषाणामदूरभवो प्रामः शैरीषिकः । अरीहणानां निवासो देश आरीहणकः । श्ररीहरा । द्वष्ण । खदिर । सार । भगल । उलन्द । सांपरायण । कौ-ष्ट्रायण । भाद्वायण । मैत्रायण । त्रैगर्चायन । रायस्पोष । विषथ । उद्यु । उद्यु । उद्यु । साद्वायम । खाडायन । खएड । वीरण । काशकृत्स्न । जाम्बवन्त । शिशापा । किरण । रवत । वेल्व । वैमतायन । मैनतायण । सौसायन । शापिडल्यायन । शिरीष । विधर । वैगर्चायण । गोमतायण । सौमतायण । खाएडायण । विपाश । सुयह । जम्बु । सुश्मि । इत्यरीहणादयः ॥ कुशास्थादिभ्यश्क्षण् ॥ का-र्शास्थीयः । श्ररिष्टेन निर्वृतमारिष्टीयम् ।

कुशाश्व । अरिष्ट । अरीश्व । वेश्मन् । विशाल । रोमक । शवल । कूट । रोमन् । वर्वर । सुकर । सूकर । प्रत्तर । सदश । पुरग । सुलं । धूम । आजिन । विनता । विनता । अवनत । कुविद्यास । अरुस् । अवयास । अयावस् । मौ-द्गल्य । इति कुशाश्वादयः ॥ ऋश्यादिम्यः कः ॥ न्यग्रोधानामदूरभवं वनं न्यग्रोधकस् ।

ऋश्य । न्यग्रोध । शिरा । निलीन । निवास । निधान । निवात । निवद्ध । विवद्ध । परिगूद । उपगृद । उत्तराश्मन् । स्थूलबाहु । खदिर। शर्करा । अनुदुद्द् । परिवंश । वेणु । वीरण । खएड । परिवृत्त । कर्दम । अंशु । इति ऋश्यादयः ॥ कुग्रुदादिस्यष्ट्च ॥ वस्वजाः सन्त्यस्मिन् स वस्वजिको देशः ।

कुमुद । शर्करा । न्यग्रोध । उत्कट । इत्कट । गर्च । वीज । अश्वत्य । व-ल्वज । परिवाप । शिरीप । यवाप । कूप । विकङ्कत । कपटक । कङ्कट । संकट । पलाश । त्रिक । कत । दशग्राम । इति कुमुदादयः ॥ काशादिम्य इलः । काशाः सन्ति यत्र स काशिलो देशः ।

काशा । वाशा । अश्वत्थ । पलाशा । पीपूप । विशा । विस । तृशा । नर । चरणा । कईम । कर्पूर । कएटक । गृह । आवास । नड । वन । वधूल । वर्बर । इति काशादयः ॥ तृशादिस्यः शः । तृशानि यत्र सन्ति स तृशाशो देशः ।

तृषा । नड । बुस । पर्ण । वर्ण । चरण । अर्ण । जन । वल । लव । वन । इति तृषादयः ॥ प्रेचादिम्य इनिः । प्रेचपा निर्वृत्तः प्रेची ।

त्रेचा । इलका । फलका । वन्धुका । ध्रुवका । चिपका । न्यग्रोध । इर्क्सट । बुधका । संकट । क्रूपका । कर्कटा । सुकटा । मङ्कट । सुक । महा । इति प्रे-चादयः ॥ अश्मादिस्यो रः । अश्मना निर्वृत्तः अश्मरः । श्रमन् । यूप । रूप । मीन । दर्भ । वृन्द । गुड । खण्ड । नग । शिखा । यूथ । रूप । नद । नख । काट । पाम । इत्यश्मादयः ॥ सख्यादिभ्यो ढ्य् ॥ सखायः सन्त्यत्र साखेयो देशः ।

सखि । सखिदच । वायुदत्त । गोहित । गोहिल । भल्ल । पाल । जऋपाल । चऋवाल । छगल । अशोक । करवीर । सीकर । सकर । सरस । समल । चर्क । वऋपाल । उसीर । सुरस । रोह । तमाल । कदल । सप्तल । इति सख्यादयः ॥

संकाशादिभ्यो एयः । सांकाश्यम् । काम्पिल्यस्यादृरभवो त्रामः काम्पिल्यः ।

संकाश । काम्पिल्य । समीर । कश्मर । शूरसेन । सुपथिन् । सकथच । यूप । ग्रंश । राग । अश्मन् । कूट । मालिन । तीर्थ । ग्रामित । विरत । विकार । विरह । नासिका । इति संकाशादयः ॥ वलादिभ्यो यः प्रत्ययः ॥ वलोन निर्वृत्तो वल्यः ।

वल । बुल । तुल । डल । डुल । कपल । वन । कुल । इति वलादयः ॥ पद्मादिभ्यः फक् प्रत्ययः । पद्मेण निर्वृत्तः पाद्मायणः ।

पत्त । तुष । अएड । कम्बालिक । चित्र । अश्मन् । अतिस्वन् ।। पथिन्, पन्थच (१) ॥ कुम्म । सरिज । सरिक । सरक । सलक । सरस । समल । रोमन् । लोमन् । इंसका । लोमक । सकएडक । अस्तिवल । यमल । इस्त । सिंहक । इति पत्ताद्यः ॥ कर्णादिम्यः फिल् प्रत्ययः ॥ कर्णस्य निवासः कार्णायनिः ।

कर्ण । वसिष्ठ । श्रलुश । शल । डुपद । श्रनडुद्य । पाञ्चजन्य । स्थिरा । कुलिश । कुम्भी । जीवन्ती । जित्व । श्रापडीवत् । श्रक्र । लूप । स्फिक् । ज्ञावत् । इति कर्णादयः ॥ सुतङ्गमादिभ्य इत्र प्रत्ययो भवति । सुतङ्गमेन निर्वृत्तः सौतङ्गमिः ।

सुतङ्गम । सुनिचित्त । विश्वचित्त । महापुत्र । श्वेत । गडिक । सुक्र । विग्र । बीजवापिन् । श्वन । श्रर्जुन । श्राजिर । जीव । इति सुतङ्गमादयः ।। प्रगदिना-दिभ्यो व्यः प्रत्ययो भवति ॥ प्रगदिनो यत्र सन्ति स प्रागद्यो देशः ।

प्रगदिन् । मगदिन् । शरिदन् । कलिव । खडिव । गडिव। चूडार। मार्जार । कोविदार । इति प्रगदिनादयः ॥ वराहादिभ्यः कक् प्रत्ययः ॥ वराहाः सन्ति यत्र स वाराहको देशः । पालाशकः ।

<sup>(</sup>१) पथोऽदूरभवं वनं पान्थायतनम् ।।

वराह । पलाश । शिरीष । पिनद्ध । स्थूण । विदग्ध । विभग्न । वाहु । खिदर। शर्करा । विनद्ध । निवद्ध । विरुद्ध । मृल । इति वराहादयः ॥ कुमुदादि-स्पष्टक् प्रत्ययो भवति ॥ कुमुदाः सन्ति यस्मिन् देशे स कौमुदिको देशः ।

कुमुद । गोमथ । रथकार । दशप्राम । अश्वत्थ । शाल्मली । कुएडल । मु-निस्थूल । कूट । मुचुकर्ण । कुन्द । मधुकर्ण । श्राचिकर्ण । शिरीप । इति कुमुदादयः ।

७१--- वरणादिभ्यश्च ॥ स्र० ४ । २ । ८२ ॥

वरणादिप्रातिपादिकेभ्य उत्पन्नस्य चातुरर्थिकप्रत्ययस्य जुब् भवति । वरणा-नामदूरभवं नगरं वरणाः ।

वरणाः । पूर्वो गोदौ । पूर्वेश गोदौ । अपरेश गोदौ । आलिङ्ग्यायन । पर्णी । शृङ्गी । शल्पलयः । सदाण्वी । विश्विक । विश्विक । जालपद । मथुरा । उज्ज-यिनी । गया । तचाशिला । उरशा । आकृत्या (१) । इति वरणादयः ॥

७२--मध्वादिभ्यश्च ॥ अ० ४।२। ८६॥

मध्वादिशब्देम्यश्रातुरार्थिको मतुप्त्रत्ययो भवति । मध्वस्मिन्नस्तीति मधुमान् । मधु । विस । स्थाणु । ग्रुष्टि । हृष्टि । इन्नु । वेणु । रम्य । ऋच । कर्कन्धु । श्रामी । किरीर । हिम । किश्ररा । शर्पणा । मरुत् । मरुव । दार्वाघाट । शर । इष्टका । तच्चशिला । शाक्ति । त्रासन्दी । त्रासुति । शलाका । त्रामिधी । खडा । वेटा । इति मध्वाद्यः ।

७३ — उत्करादिभ्यश्छः ॥ स्त्र० ४ । २ । ६० ॥ चत्करादिप्रातिपदिकेम्यश्रातुर्शिकश्रवः प्रत्ययो भवति । यथासम्भवमर्थस-म्बन्धः । स्रकीग्रामद्रभवो त्रामः, स्रकीयः ।

उत्कर । संफर्ण । संकर । शफर । पिप्पल । पिप्पलीमूल । अश्मन् । अर्क । पर्ण । सुपर्ण । खलाजिन । इडा । अर्गने । तिक्र । कितव । आतप । अनेक । पलाश । तृण्य । पिचुक । अश्वत्थ । पकासुद्र । मस्ता । विशाला । अवरोहित । गर्च । शाल । अन्य । जन्या । आजिन । मञ्च । चर्मन् । उत्कोश । शान्त । खिद्र । शूर्पणाय । श्यावनाय । नैव । वक्र । नितान्त । दृच । इन्द्रवृच । आर्द्रवृच । अर्जुनवृच । इत्युत्करादयः ॥

(१) अत्र सूत्रस्थचकारेणाकृतिगण्तवं बुध्यते । तेन कटुकवद्य्या अदूरभवो मामः कटुकवद्री । शिरीषाः । काञ्ची इत्यादिषु लुव् सिद्धो भवति ।। ७४—नडाद्ीनां कुक् च ॥ ऋ० ४।२।६१॥ नडादिप्रातिपदिकेम्यश्रातुरार्थिकश्छः प्रत्ययो भवति तास्मिन् सति कुगाग-मश्र । यथासंभवमर्थसंवंधः । नडाः सन्ति यत्र तक्षडकीयं वनम् ।

नड । स्रच । विल्व । वेणु । वेत्र । वेतस । तृषा । इतु । काष्ट । कपोत ॥ कुञ्चाया इस्वत्वं च (१)॥ तचन्नलोपश्च ॥ इति नडादयः॥

७५ — करुयादिभ्यो ढकञ्॥ अ० ४ । २ । ६५ ॥ करुयादिशब्देभ्यः शेपार्थे ढकञ् प्रत्ययो भवति । कन्ते भवः कान्त्रेयकः । कान्त्रि । उम्मि । पुष्कर । पुष्कल । मोदन । कुम्भी । कुिएडन । नगर । वन्ती । भिक्के । माहिष्मती । चर्मपवती । वर्मती । श्राम । उख्या ॥ कुल्याया यले।पश्च (२)॥ इति करुयादयः ॥

७६ — नद्यादिभ्यो ढक् ॥ अ० ४। २। ७६ ॥
नद्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैपिको ढक् प्रत्ययो भवति । नद्यां भवं नादेयम् ।
नदी । मही । वाराणसी । श्रावस्ती । कौशाम्बी । नवकौशाम्बी । काशफरी । खादिरी । पूर्वनगरी (३)। पावा । मावा । साल्वा । दार्वा । दाल्वा ।
वासेनकी । वडवायाद्वपे । इति नद्यादयः ॥

७७—प्रस्थोत्तरपद्पलद्यादिकोपधाद्ण्।। अ०.४।२।११०॥ श्रस्थोत्तरपदात् पलद्यादिभ्यः कोपधाच प्रातिपादिकादण् प्रत्ययो भवति शौपिकः। मद्रीप्रस्थे भवो माद्रीप्रस्थः। माहकीप्रस्थः। पलद्यां भवः पालदः। पारिपदः। कोपधात्। नैलीनकः।

पलदी । परिपत् । यकुन्नोमन् । रोमक । कालकूट । पटचर । वाहीक । कलकीट । कमलकीट । कमलकीट । कमलकीट । कमलकीट । कमलकीट । कललकीट । कललकीट । कललकीकटा । पत्त । पत्त । कललकीट । कललकीकटा । गोष्ठी । नैकिती । सकुल्लोमन् । इति पलद्यादयः ॥

### ७८-कण्वादिभ्यो गोत्रे ॥ अ० ४ । २ । १११ ॥

- (१) क्रुञ्चाः सन्त्यस्मिन् तत् क्रुञ्चकीयं वनम् । तत्त्वकीयो प्रामः ॥
- (२) कुल्यायां भवः कौलेयकः । यकारलोपः ॥
- (३) पूर्वनगर्यां भवः पौर्वनगरेयः। श्रत्र पूः। वन । गिरि । इति पाठान्तरम्। तदा-पौरेयम् । वानेयम् । गैरेयमिति विभक्षं रूपत्रयं सिध्यति ॥

गोत्रप्रत्ययान्तकएशादिप्रातिपदिकेभ्यः शौपिको अण् प्रत्ययो भवति । काएव्य-स्येमे काएवाश्खात्राः गर्गाद्यन्तर्गताः । कएवादयः । स्रतएवात्र न लिख्यन्ते ॥

#### ७६ — कार्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ॥ अ० ४ । २ । ११६ ॥

कारयादिमातिपदिकेम्यः शौषिको ठिन्निज्ञौ प्रत्ययौ भवतः। प्रत्यययोर्ज-कारिवपर्ययभेदात् स्त्रीप्रत्यये विशेषः । ठञन्तान् कीप् ञिठान्तात् तु टावेष भवति । कारयां भवः काशिकः । काशिकी । काशिका ।

काशि । चेदि । बैदि । संज्ञा । संवाह । अच्युत । मोहमान । शकुलाद । हस्तिकर्षू । कुदामन् । कुनामन् । हिरएय । करण् । गोधाशन । मौरिकि । भौलिकि । अरिन्दम । सर्वामित्र । देवदत्त । साधुमित्र । दासिमत्र । दासग्राम । सौधावतान । युवराज । उपराज । सिन्धुमित्र । देवराज ॥ आपदादिपूर्वपदान्तात् कालान्तात् ॥ आपत्कालिकी । आपरकालिकी । आपरकालिकी । और्ध्वकालिकी । और्ध्वकालिकी । तत्कालिकी । इति काश्यादयः ॥

#### ८०—धूमादिभ्यश्च ॥ अ० ४। २। १२७ ॥

देशवाचिम्यो धूमादिप्रातिपदिकेम्यः शैपिको बुञ् प्रत्ययो भवति । अग्रोऽ-पवादः । धूमे भवो धौमकः ।

धूम । लण्ड । खडएड । श्रशादन । आर्जुनाद । दाएडायनस्थली । माइ-कस्थली । घोषस्थली । मायस्थली । राजस्थली । राजगृह । सत्रासाह । भदास्थली । भद्रक्त । गर्नक्त । आश्रोक्त । द्वचाहाद । त्रचाहाद । संहीय । वर्वर । वर्चगर्च । विदेह । आनर्च । माठर । पाथेय । घोष । शिष्य । मित्र । वल । आराज्ञी । धार्चराज्ञी । अवयात । तीर्थ ।। क्ल्लात्सौदीरेषु ।। समुद्रान्नावि मनुष्येच (१) ।। कुन्ति । अन्तरीप । द्वीप । अठमा । उज्जियनी । दिनिमापथ । साक्रेत । मानवल्ली । वल्ली । सुराज्ञी । इति धूमादयः ।

८१ - कच्छादिभ्यश्च ॥ अ० ४ । २ । १३३ ॥

कच्छादिदेशवाचिप्रातिपदिकेम्यः शौषिकोऽण् प्रत्ययो भवति । बुवादेर-पवादः । कच्छे भवः काच्छः ।

कच्छ । सिन्धु । वर्णु । गन्धार । मधुमत् । कम्बोज । कश्मीर । साल्व ।

(१) समुद्रशब्दान्नावि मनुष्ये च वाच्ये वुम्। समुद्रे भवा सामुद्रिका नौः। सामुद्रिको मनुष्यः। अन्यत्र सामुद्रं जलम्।। कुरु। र स्कु। अणु। अराउ। खण्ड। द्वीप। अनूप। अनवाइ। विजा-पक। कुलून। इति कच्छादयः॥

## ८२—गहादिभ्यश्च ॥ अ० ४।२।१३८ ॥

गहादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकरछः प्रत्ययो भवति ऋणुकोरपवादः । अन्तःस्थे भव अन्तःस्थीयः ।

गह । अन्तःस्थ । सम । विषम ॥ मध्यमध्यमं चाण् चरणे (१) ॥ उत्तम । अङ्ग । वङ्ग । सगध । पूर्वपच । अपरपच । अध्मशाख । उत्तमशाख । समानशाख । एकप्राम । एकपृच । एकपलाश । इन्त्रम । इन्त्रम । अत्रम्यन्दी । अवस्कन्द । कामप्रस्थ । खाडायनि । खाण्डायनी । कावेरिण । कामवेरिण । शौशिरि । शौकि । आहिंसि । आहिंसि । आमित्र । व्याडि । वैदिन । भौनि । आद्रचि । आतृशांसि । सौवि । पारिक । आग्निशर्मन् । देवशर्मन् । श्रौति । आरटिक । वाल्मीिक । चेमवृद्धिन् । उत्तर । अन्तर ॥ मुखपार्थतसोर्लोपः ॥ जनपरयोः कुक् च ॥ देवस्य च ॥ वेणुकादिस्यश्व्रण् (२) ॥ इति गहाद्यः ॥

# ८३—सन्धिवेलायृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥ अ० ४ । ३ । १६ ॥

सन्धिवेत्तादिभ्य ऋतुभ्यो नत्त्रत्रेभ्यश्च कालवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शौषिकोऽण् प्रत्ययो भवति । ठकोऽपवादः । श्रण्यहणं वृद्धाच्छस्य बाधनार्थम् । सन्धिवेत्तायां जातः सान्धिवेतः । ग्रैष्मः । तैषः । पौषः ॥

सन्धिवेला । सन्ध्या । अमावास्या । त्रयोदशी । चतुर्दशी । पञ्चदशी । पौर्यामासी । प्रतिपत् ॥ संवत्सरात् फलपर्वणोः ॥ सांवत्सरं फलम् । सांवत्सरं पर्व। इति सन्धिवेलादयः ॥

- (१) श्रास्यैव सूत्रस्य शेषवार्त्तिकप्रमाणेन पृथिवीमध्यशब्दस्य मध्यमादेशश्चरणे-ऽभिधेये निवासलत्तरणोऽण् प्रत्ययः । श्रान्यत्र तु छ एव । पृथिवीमध्ये निवास एपां ते माध्यमाश्चरणाः । चरणादन्यत्र—मध्ये भवो मध्यमीयः ।।
- (२) मुखपार्श्वयोस्तसन्तयोरन्त्यलोपः । मुखतो भवं मुखतीयम् । पार्श्वतीयम् । जने भवो जनकीयः । परकीयः । देवे भिक्तरस्य देवकीयः । वेशुकादिराक्वातिगर्णः । वेशुकदेशे भवो वेशुकीयः । वेरेश्कीयः । पालाशकीयः ।।

### ८४—दिगादिभ्यो यत् ॥ अ० ४ । ३ । ५४ ॥

सप्तमीसमर्थदिगादिप्रातिपदिकेम्यो भवार्थे यत् प्रत्ययो भवति । अग्राश्कस्य चापत्रादः । दिशि भवं दिश्यम् ।

दिश । वर्ग । पूर्ग । गर्म । पद्म । घाव्या । मित्र । मेघा । अन्तर । पथिन् । रहम् । अलीक । उरवा । साचिन् । आदि । अन्त । मुख । जघन (१)। मेघ । यूथ ।। उदकात्सं ज्ञायाम् (२) ॥ न्याय । वंश । अनुवंश । विश । काल । अप् । आकाश । इति दिगादयः ॥

८५-ताः - ज्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम्।।४।३।५०॥ अन्ययीभावसं इकेभ्यः परिमुखादिप्रातिपदिकेभ्यो ज्यप्रत्ययो भवति । नि-यमार्थे वार्त्तिकामिदम् । स्त्रेण सामान्यान्ययीभावाद् ज्यः प्राप्तो नियम्यते । परिमुखं भवं पारिमुख्यम् । पारिहनन्यम् । नियमादिह न भवति । उपकृतं भवमीपकृत्वम् ।

परिष्ठुख । परिह्तु । पयोष्ठ । पर्युलू । श्रोपमूल । खल । परिसीर । श्रनुसीर । उपसीर । उपस्थल । उपकलाप । श्रनुपथ । श्रनुखह्ग । श्रनुतिल । श्रनुशीत । श्रनुपाप । श्रनुपव । श्रनुपुप । श्रनुवंश । श्रनुस्वक । इति परिष्ठुखाद्यः ॥

⊏६—वा०-अध्यात्मादिभ्यश्च ॥ ४ । ३ । ६० ॥

श्रध्यात्मादिभ्यो भवार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । श्रध्यात्मं भवमाध्यात्मिकम् । श्रध्यात्म । श्राधिदेव । श्राधिभूत । श्राकृतिगणोऽयम् । इत्यध्यात्मादयः ॥ ८७—अगु अनुगयनादिभ्यः ॥ अ० ४ । ३ । ७३ ॥

षष्टीसप्तमीसमर्थेभ्य ऋगयनादिप्रातिपादिकेभ्यो भवन्याख्यानयोर्थयोरण् प्रत्ययो भवति । ऋगयने भवमार्गयनः । तस्य न्याख्यानो वा । अण्य्रहणं बाधकवाधनार्थम् । वास्तुविद्याया न्याख्यानो प्रन्थो वास्तुविद्यः । अत्र छप्रत्ययो माभृत् ।

- (१) मुखजधनशब्दाभ्यां शरीरावयवत्वादेव यति सिद्धे पुनरत्र दिगादिषु पाठोऽश-रीरावयवार्थः । सेनामुखे भवः सेनामुख्यम् । सेनाजधन्यम् । सेनाया अप्रपश्चाद्भागौ गृह्येते । तदन्तविधिना यत् ।।
- (२) उदके भवा उदक्या रजस्वला। संज्ञाप्रह्णादिह न भवति । उदके भव

ऋगयन । पदन्याख्यान । छन्दोमान । छन्दोमाना । छन्दोनिचिति। न्याय।
पुनरुक्त । न्याकरण । निगम । वास्तुनिद्या । अङ्गनिद्या । चत्रविद्या । उत्पात ।
उत्पाद । संवत्सर । मुहूर्च । निमित्त । उपनिषद् । शिद्या । छन्दोनिजिनी ।
न्याय । निरुक्त । विद्या । उद्याव । भिद्या । इति ऋगयनादयः ॥

८८—शुविडकादिभ्योऽस् ॥ अ० ४ । ३ । ७६ ॥

पञ्चमीसमर्थश्चारिडकादिप्रातिपादिकेम्य आगतार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । श्चारिडकादागतः शौरिडकः ॥

शुरिडक । कृकण । स्थिरिडल । उदपान । उपल । तीर्थ । भूमि । तृण । पर्थ । इति शुण्डिकादयः ॥

८६-शण्डिकादिभ्यो ज्यः ॥ अ० ४ । ३ । ६२ ॥

प्रथमासमर्थशण्डिकादिप्रातिपदिकेम्योऽभिजनेऽभिधेये व्यः प्रत्ययो भवति । शाण्डिकोऽभिजनोऽस्य स शाण्डिक्यः ॥

शाण्डिक । सर्वकेश । सर्वसेन । शक । शट । रक । शङ्ख । बोध । इति शाण्डिकादयः ॥

६०—सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ ॥ अ० ४ । ३ । ६३॥

प्रथमासमानाधिकरणेम्यः सिन्ध्वादिम्यस्तत्त्वशिलादिम्यश्वामिजने उर्थे यथा-संख्यमण्यौ प्रत्ययौ भवतः । सिन्धुरिभजनोऽस्य स सैन्धवः । तत्त्वाशिलाऽभि-जनोऽस्य स तात्ताथिलः । प्रत्ययभेदः स्वरभेदार्थः ॥

सिन्धु । वर्णु । गन्धार । मधुमत् । कम्बोज । कश्मीर । साल्व । किब्किन्धा। गाब्दिका । उरस । दरत् । कुलून । दिरसा । इति । त्रिन्ध्वादयः ॥

तच्चिशला । वत्सोद्धरण । कौमेदुर । काण्डवारण । त्राप्तणी । सरालक । कंस । किन्नर । संकुचित । सिंहकोष्ठ । कर्णकोष्ठ । वर्वर । अवसान । इति तच्च-शिलादयः ॥

६१--शोनकादिभ्यश्छन्दिस ॥ अ० ४ । ३ । १०६ ॥

तृतीयासमर्थशौनकादिशातिपदिकेभ्यश्वन्दिति वेदे प्रोक्तार्थे णिनिः प्रत्ययो भवति । छाणोरपवादः । शौनकेन प्रोक्तमधीयते शौनिकिनः । वाजसनोयिनः । छन्दसीति किम् । शौनकीया शिचा । अत्र छन्द एव भवति ।

शौनक । वाजसनेय । साङ्गरव । शाङ्गरव । सांपेय । शाखेय । खाडायन ।

स्कन्द । स्कन्ध । देवद्त्तशाठ । रज्जुकएठ । रज्जुभार । कठशाड । कशाय । तलबकार । पुरुषासक । अध्येष । स्कम्भ । इति श्लीनकादपः ॥

६२ — कुलालादिभ्यो वुञ् ॥ अ० ४ । ३ । ११८ ॥

तृतीयासमर्थकुला चादिप्रातिपदिकेम्पो चुन् प्रत्ययो भवति। कृतिमत्येतस्मिष्यें संज्ञायां गम्यापानायाम् । कुज्ञालेन कृतं कौलालकम् । वारुडकम् ।

कुलाल । वरुड । चएडाल । निषाद । कर्मार । सेना । सिरिध्र । सेन्द्रिय । देवराज । पारिषत् । वध् । रुरु । ध्रुव । रुद्र । ध्रनडुद्द । ब्रह्मन् । कुम्मकार । स्वपाक्त । इति कुलालादयः ॥

६३-विल्वादिभ्योऽस् ॥ अ० ४ । ३ । ११६ ॥

षष्ठी रमर्थवि स्वादिप्रातिपदिके स्थो विकारावयवयोर्थयोरण् प्रत्ययो भवति । विस्वस्य विकारोऽवयवो वा वैस्वः ।

विल्व । ब्रीहि । कारड । मुद्ग । मस्र । गोधूम । इन्नु । वेणु । गवेधुका (१) । कर्पासी । पाटली । कर्कन्धू । कुटीर । इति विल्वाद्यः ॥

६४—पलाशादिभ्यो वा ॥ अ० ४ । ३ । १४१ ॥

पत्ताशादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरञ् प्रत्ययो भवति । पत्ताशास्य विकारः पालाशस्। खादिरस्।

पलाश । स्विदर । शिंशपा । स्यन्दन । करीर । शिरीप । यवास । विक-ङ्कत । इति पलाशादयः ॥

६५—नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ॥ अ० ४ । ३ । १४४ ॥

वृद्धेम्यः श्रादिम्यश्च प्रातिपदिकेम्यो मत्त्याच्छादनयोर्विकारावयवयोर्भा-षायां विषये नित्यं मयद् प्रत्ययो भवति । वृद्ध-त्र्याम्रमयम् । शालमयम् । श-रमयम् । दर्भपयम् ।

शर। दर्भ। मृत्। कुटी। तृरा। सोम। बल्वन। इति शगदयः॥

६६—तालादिभ्योऽस् ॥ अ० ४ । ३ । १५२ ॥

तालादित्रातिपादिकेम्यो विकारावयवयोरण् प्रत्ययो भवति । तालस्य विका-रः तालं धनुः । अन्यत्र तालामयम् । वृद्धत्वान्मयट् ।

(१) श्रास्मात्कोपधाचेत्याणि सिंधे पुनः पाठो मयड्वाधनार्थः एतास्मन् पत्तेऽपि मयएमा भूदिति ।। तालाद्धनुषि । वार्हिण । इन्द्रालिश । इन्द्रादश् । इन्द्रायुघ । चाप । रया-माक । पीयुचा । इति तालादयः ॥

६७—प्राणिरजतादिभ्योऽण् ॥ अ० ४ । ३ । १५४ ॥

प्राणिवाचिभ्यो रजतादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरन् मत्ययो भवति । कपोतस्य विकारः कापोतम् । राजतम् ।

रजत । सीस । लोइ । उदुम्बर । नीच । नील । दारु । रोहितक । विभी-तक । कपीत । दारु । तीव्रदारु । त्रिकएटक । कएटकार । इति रजतादयः ।।

६८— प्रचादिभ्योऽस् ॥ अ० ४ । ३ । १६४ ॥

स्वादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवत्वेन विवित्तते फलेऽभिधेयेऽण् प्रस्ययो भवति । स्वस्य विकारः सावम् । नैयग्रोधम् ।

सच । न्यग्रोध । अरवत्थ । इक्कदी । शिष्ठु । कर्कन्छु । कर्कन्तु । ऋकतु । वृहती । काच । तुरुरु । इति सचादयः ॥

#### **६६—हरीतक्यादिभ्य**इच ॥ अ० ४ । ३ । १६७ ॥

इरीतक्यादिप्रातिपदिकेम्यः फलेऽभिधेये प्रत्ययस्य जुब् भवति । जुिक प्राप्ते जुपो विधानं युक्तवज्ञावार्थम् । इरीतक्याः फलं इरीतकी । इरीतक्याः फल् ज्ञानि इरीतक्यः (१)।

इरीतकी । कोशातकी । नखरजनी । नखरजनी । शुष्कराडी । शाकराडी । दाडी । दोडी । दंदी । श्वेतपाकी । ऋर्जुनपाकी । काला । द्राचा । ध्वाइचा । गर्गरिका । कराटकारिका । शोफालिका । इति इरीतक्यादयः ।

१००-पर्पादिभ्यः ष्टन् ॥ स्र० ४ । ४ । १० ॥

पर्पादिभ्यश्वरतीत्यर्थे छन् प्रत्ययो भवति । षकारो ङीपर्थः । पर्पेण चरति पर्पिकः । पर्पिका ।

पर्प । अश्व । अश्वत्थ । रथ । जाल । न्यास । व्याल ।। पादः पच्च ॥ पदिकः । इति पर्पाद्यः ॥

(१) हरीतक्यादिषु व्यक्तिर्भवति युक्तवद्भावेनेति वार्त्तिकेन लिङ्गस्यैवयुक्तवद्भावो न तु वचनस्य। १०१ — वेतनादिभ्यो जीवति ॥ अ० ४ । ४ । १२ ॥
तृनीयासमर्थवेतनादिप्रातिपदिकेभ्यो जीवतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । वेतनेन जीवति वैतनिकः ।

वेतन । वाह । अर्द्धवाह । धतुर्दग्ड (१)। जाल । वेस । उपवेस । प्रेष-ण । उपित । सुल । शय्या । शक्ति । उपिनषत् । उपवेप । स्नक् । पाद । उप-स्थान । इति वेतनादयः ।

१०२ हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ॥ अ० ४ । ४ । १५ ॥

तृतीयासमर्थोत्सङ्गादिप्रातिपदिकेभ्यो इरतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो मवति । उ-त्सङ्गेन इरति, श्रीत्सङ्गिकः ।

उत्सङ्ग । उहुप । उत्पत । पिटक । उहुप । पिटाक । इत्युत्सङ्गाद्यः ॥

१०३ — भस्रादिभ्यः ष्टन् ॥ अ० ४ । ४ । १६ ॥

अस्तादितृतीयासमर्थप्रातिपदिकेम्यो इरतीत्यर्थे छन् प्रत्ययो भवति । भस्नया इरति मस्त्रिकः । मास्त्रकी ।

भला। भरट। भरण। भारण। शीर्वभार। शीर्वभार। श्रंसभार। श्रंसभार। श्रंसभार। श्रंसभार। श्रंसभार। श्रंसभार।

१०४—निर्वृत्ते ऽक्षयूतादिभ्यः ॥ अ० ४ । ४ । १६ ॥

अच्चतादितृतीयासमर्थप्र'निपदिकेभ्यो निर्वृत्तेऽर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । अ-च्चतेन निर्वृत्तम्, आच्चतिकं वैग्म् ।

श्रवयूत । जानुप्रहृत । जङ्घाप्रहृत । पादस्वेदन । क्रयटकमर्दन । गतागत । यातोपयात । श्रनुगत । इत्यवयूतादयः ॥

१०५ — अण् महिष्यादिभ्यः ॥ अ० ४ । ४ । ४८ ॥ • पष्ठीसमर्थमहिष्यादिप्रातिपदिक्षेभ्यो धर्म्यामेत्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति । महिष्या

धम्य माहिषम् ।

महिषी । प्रजावती । प्रलेपिका । विलेपिका । श्रुताहेत । म-थिपाली । श्रनुचारक । होतृ । यजमान । इति महिष्याः यः ॥

(१) अत्र संघातविमहीतयोर्प्रहणं भवति । धनुर्द्रएडेन जीवति धानुर्द्रिष्डनः । धनुषा जीवति धानुष्कः । दााप्डिकः ।। १०६-किशरादिभ्यः ष्ठन् ॥ अ० ४ । ४ । ५३ ॥

प्रथमासमानाधिकरणिकशादिप्रातिपदिकेम्यः पर्णयमित्यर्थे छन् प्रत्ययो भव-ति । गन्धविशेषवाचकाः किशरादयः । किशराः पर्णयमस्य किशरिकः । किशरिकी । किशर । नरद । नलद । सुमङ्गल । तगर । गुग्गुल । उशीर । इतिद्रा ।

इरिद्रायणी । इति किशरादयः ॥

१०७ - छत्रादिभ्यो णः ॥ अ० ४ । ४ । ६२ ॥

प्रथमासमानाधिकरण्छत्रादिप्रातिपदिकेम्यः शीलमित्यर्थे गः प्रत्ययो भवति। इव शब्दस्यात्र लोपो द्रष्टव्यः । छत्रमिव शीलमस्य स छात्रः शिष्यः । छत्रवद्गुरुरत्तकः ।

स्त्रत्र । बुभुद्धाः । शिद्धाः । पुरोहः । स्थाः (१) । चुराः । उपस्थानः । ऋषि । कर्मन् । विरुवधाः । तपस् । सत्य । अनृतः । शिविकाः । इति स्त्रत्राद्यः ॥

१०८ प्रतिजनादिभ्यः खञ् ॥ स्त्र० ४ । ४ । ६६ ॥ सप्तमीसमर्थप्रतिजनादिप्रातिपदिकेम्यः साधुरित्यस्मिन्नर्थे खन् प्रत्ययो भवति ।

त्रतिजने साधुः प्रातिजनीनः । जने जने साधुरित्यर्थः ।

प्रातिजन । इदंगुग । संगुग । समयुग । परयुग । परकुल । परस्यकुल । अधुष्यकुल । सर्वजन । विश्वजन । पञ्चजन । महाजन । इति प्रतिजनाद्यः ॥

१०६---कथादिभ्यष्ठक् ॥ अ० ४ । ४ । १०२ ॥

सप्तमीनमर्थकथादिप्रातिपदिकेम्यः साधुरित्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । कथायां साधुः काथिकः ।

कथा । विकथा । त्रितएडा । कष्टाचित् । जनवाद । जनेवाद । वृत्ति । सद्-युद्द । गुण् । गण् । त्रागुर्वेद । इति कथादयः ॥

.

११०-- गुडादिभ्यष्ठञ् ॥ अ० ४ । ४ । १०३ ॥

सप्तमीसमर्थगुडादिप्रातिपादिकेम्यः साधुरित्यर्थे ठव् प्रत्ययो भवति । गुडे साधुः गाँडिक इद्धः ।

गुड । कुल्माप । सङ्घ । श्रपूप । भांसौदन । इच्च । वेणु । संग्राम । संघात । प्रवास । निवास । इति गुडादयः ॥

(१) श्रत्र स्थपहरोन सोपसर्गस्य प्रह्णामिष्यते । श्रास्था शीलमस्य स श्रास्थः । सांस्थः । श्रावस्थः ।।

# १११--उगवादिभ्यो यत्।। ऋ०५।१।२॥

उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च प्रातिपदिकेम्पः मादक्रीतीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो अविति । शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दाठ । गवे हितं गव्यम् ।

गो । इविस् । वर्षिस् । खट । अष्टका । युग । मेना । स्नक् ॥ नामि नमं च ॥ श्रुनः संप्रशारणं वा च दीर्वत्वं तत्संनियोगेन चान्तोद।त्तत्वम् (१)॥ श्रुन्यम् । श्रूत्यम् ॥ ऊधसोऽनङ् च ॥ ऊधन्यः । कूपः । उद्र । खर । स्वद । अवर । विष । स्कन्द । अध्वा । इति गवादयः ॥

११२—विभाषा हविरपूपादिभ्यः ॥ ऋ०५ । १ । ४ ॥

इविर्विशेषवाचिभ्योऽपूर्शाद्दभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्कीतीयेष्वर्थेषु विभाषा यत् मत्ययो भवति पत्ते छः । पुरोडाशाय हिताः पुरोडाश्याः । पुरोडाशीया वा तएडुलाः । अपूर्वभ्यो हितं, अपूष्यम् । अपूर्णियम् ।

अपूप । तराडुल । अभ्यूप । अभ्योप । पृथुक । अभ्येष । अर्गल । मुसल । स्प । कटक । वर्णवेष्टक । किएव ॥ अन्नविकारेभ्यरच ( २ ) ॥ पूप । स्थूणा। पीप । अरव । पत्र । कट। अयःस्थूण । ओदन । अवोष । प्रदीप । इत्यपूपादयः ॥

११३ — असमासे निष्कादिभ्यः ॥ अ० ५ । १ । २० ॥

असमस्तेम्यो निष्कादिशातिपादिकेम्य आर्हीयेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति । निष्कं पारिमाणमस्य तनेष्किकम् । असमासे किम्। परमनैष्किकम् । अत्र ठब्खरे मेदः ।

निष्क । पण । पाद । माप । वाहद्रोग । पष्टि । इति निष्कादयः ।।

११४-गोद्रचचोऽसङ्ख्यापरिमाणाश्वाद्येत्।।अ० ५।१।३६॥

संख्यापरिमाणाशादित्रिवर्जिताद् गोशब्दाद् द्वयचश्च प्रातिपदिकायत् प्रत्ययो भवति । तस्य निमित्तं संयोगोः पातावित्यर्थे । गोर्निभित्त संयोग उत्पातो वा गब्यः । द्वयच्-धनस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा धन्यम् । स्वर्ग्यम् । यशस्यम् ।

<sup>(</sup>१) नामये हितो नभ्योऽत्तः । नभ्यमञ्जनम् । यस्तु शरीराषयवयाची नामि-शब्दस्ततः शरीरावयवादिति यति कृते नामये हितं नाभ्यं तैलामिति भवति । चकार-स्यानुक्तसमुचयार्थत्वात्रस्तद्वित इति लोपो न भवति ।।

<sup>(</sup>२) श्रन्नविकारवाचिभ्यो यत् प्रत्ययो भवति । शब्कुलीभ्यो हितं शब्कुल्यम् । सूप्यम् । श्रोदन्यम् ॥

आयुष्यम् । संख्या-पञ्चानां निमित्तं पञ्चकम् । परिमाण-प्रास्थिकम् । स्रश्या-दि-आश्विकम् । सर्वत्र यत् न भवति ।

अरव । अरमन् । गण । ऊर्णा । उमा । वसु । वर्ष । मङ्ग । इत्यरवादयः ॥

११५—तद्धरतिवहत्यावहतिभाराद्वंशादिभ्यः ॥अ०५।१।५०॥

द्वितीयासमर्थाद् वंशादिभ्यः परस्माद् भारशब्दाद्धरत्यादिषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति । वंश्मारं हरति वहत्यावहति वा वांग्रभाग्कः । कौटजभारिकः । भारा-दिति किम् । वंशं हरति । वंशादिभ्य इति किम् । ब्रीहिभारं हरति । स्त्रत्र । स्त्रु । वंश । क्रुटज । वल्वज । मृल । अन्त । स्युगा । अग्मन् । अश्व । इन्नु ।

खद्वा । इति वंशादयः ॥

११६—हेदादिभ्यो नित्यम् ॥ अ० ५ । १ । ६४ ॥

द्वितीयासमर्थछेदादिप्रातिपादिकेम्यो नित्यमईतीत्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो मवति । छेदनं नित्यमईति छैदिकः ।

छेद । नेद । द्रोह । दोह । वर्त । कर्ष । संप्रयोग । विश्रयोग । प्रेषण । सं-प्रश्न । विप्रकर्ष ।। विराग विरंगं च ॥ वैरङ्गकः । इति छेदादयः ॥

११७-दग्डादिभ्यो यः ॥ अ० ४ । १ । ६६ ॥

द्वितीयासमर्थदण्डादिप्रातिपादिकेम्योऽईतीत्यर्थे यः प्रत्ययो भवति । दण्ड-मईति दण्ड्यः ।

दएड । मुसल । मधुपर्क । कशा । अर्घ । मेघा । मेव । युग । उदक । वध ।

गुहा । भाग । इभ । इति दयडादयः ॥

११८-व्युष्टादिभ्योऽण् ॥ अ० ५ । १ । ६७ ॥

सप्तमीसमर्थन्युष्टादिव्रातिपदिकेभ्यो दीयते कार्यमित्येतयोर्थयोरण् प्रत्ययो भवति । न्युष्टे दीयते कार्य वा वैयुष्टम् ।

च्युष्ट । नित्य । निष्क्रमण । प्रवेशन । तीर्थ । संश्रम । श्रास्तरण । संग्राम । संघात । श्राग्निपद । पीलुमूल । प्रवास । उपसंक्रमण । दीर्घ । उपवास । इति च्युष्टादयः ॥

११६—तस्मै प्रभवति संतापादिभ्यः ॥ अ०५ । १ । १०१ ॥
चतुर्यासमर्थसन्तापादिप्रातिपदिकेम्यः प्रभवतीत्यर्थे ठब् प्रत्ययो भवति ।
सन्तापाय प्रभवति सान्तापिकः ।

सन्ताप । संनाइ । संब्राप । संयोग । संपराय । संपेष । निष्पेष । निसर्ग । अप्रसर्ग । विसर्ग । उपराम । प्रवास । प्रवास । संघात । संमोदन । सक्तु ।। मांसौदनाद्विग्रद्दीतादि ।। मांसौदिनकः । मांसिक । औदिनकः ।। निर्घोष । सर्ग । संपात । संवाद । संवेशन । इति संतापादयः ॥

१२०—ग्रमुप्रवचनादिभ्यश्छः ॥ ग्र० ५ । १ । १११ ॥ प्रथमासमानाधिकरणानुप्रवचनाप्रातिपदिकेम्यः प्रयोजनिमत्यर्थे छः प्रत्ययो भवति । श्रमुप्रवचनं प्रयोजनमस्य, श्रमुप्रवचनीयस् ।

अनुप्रवचन । बत्थापन । प्रवेशन । अनुप्रवेशन । उपस्थापन । संवेशन । अनुवेशन । अनुवचन । अनुवादन । अनुवासन । आरम्भण । आरोहण । प्र-रोहण । अन्वारोहण । इत्यनुप्रवचनादयः ।

१२१ — पृथ्वादिभ्यः इमनिज्वा ।। अ० ५ । १ । १२२ ॥
पष्ठीसमर्थपृथ्वादिप्रातिपदिकेम्यो भावेर्थे इमनिच् प्रत्ययो वा भवति । वा
वचनमणादेः समवेशार्थम् । पृथोर्भावः प्रथिमा । पार्थवम् । पृथुत्वम् । पृथुता ।

पृथु । मृदु । महत् । पदु । तनु । लघु । बहु । साधु । बेणु । आपु । बहु-ल । गुरु । दएड । ऊरु । लएड । चएड । बाल । आर्केचन । होड । पाक । बत्स । मन्द । स्वादु । दूरव । दीर्घ । प्रिय । वृष । ऋ ज । चित्र । जुद्र । इति पृथ्वादयः ॥

१२२—वर्णहढादिभ्यः ष्यञ् च ॥ अ० ५ । १ । १२३ ॥ वर्षाविशेषवाचिभ्यो हढादिभ्यश्च प्रातिषदिकेभ्यो भावे ष्यन् चादिमनिच् प्रत्ययो भवति । शुक्कस्य भावः शौक्रयम् । शुक्किमा । शुक्तत्वम् । शुक्कता । दा- दर्चम् । द्राहिमा । दृहत्वम् । दृहता ।

दृढ । परितृढ । भृश । कुश । चक्र । आम्र । लवगा । ताम्र । अम्ल । शीत । ज्ञ्या । जड । विधर । पिउत । मधुर । मूर्व । मूक् ।। वेर्यातलाभमितमनः शारदानाम् ॥ समो मितमनसोर्जवने (१) ॥ वाल । तक्या । मन्द । स्थिर । बहुल । दीर्घ । मृढ । आकृष्ट । इति दृढादयः ॥

१२३ - गुण्यवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥ अ०५।१।१२४॥

(१) वेः परेभ्यो यातादिभ्यः ष्यञ् । वैयात्यम् । वैलाभ्यम् । वैमत्यम् । वैमनस्यम् । वैशारद्यम् । साम्भात्यम् । साम्भात्यम् । साम्भात्यम् । साम्भात्यम् ।

गुणवचनेम्यो ब्राह्मणादिभ्यश्च प्रातिपदिकेम्यो भावे कर्माणि चाभिषेये व्यव् प्रत्ययो भवति । जडस्य भावः कर्म वा जाड्यम् । ब्राह्मणस्य भावः कर्मा वा ब्राह्मएयम् ।

ब्राह्मण् । वाडव । माण्य । चार । मृक । आराध्य । विराध्य । अपराध्य । उपराध्य । एकमात्र । दिमात्र । त्रिभात्र । अन्यभात्र । समस्थ । विषमस्थ । परमस्थ । मध्यमस्थ । अनीखर । कृशल । कार्य । वपल । अनेत्र । निपुण्ण ।। अईतो नुम् च ॥ आईन्त्यम्। संत्रादिन् । संत्रेशिन् । वहुभाषिन् । वालिशा । दुष्पुरुष । कापुरुष । दायाद । विशासि । धृतं । राजन् । संपापिन् । शीर्षपातिन् । आधिपति । आलस्स । पिशान्य । पिशान्य । त्रिशाल् । गाण्पति । धनपति । नरपति । गडुल । निवा । निधान । विष् । सर्ववेदाादिभ्यः स्वार्थे (१)॥ चार्वेदस्योभयपदद्यद्विश्व ॥ चार्त्वेद्यम् । स्त्रभात्र । निधानिन् । विधातिन् । राजपुरुष । विशास्ति । विशाय । विशात । निधानिन् । स्विधातिन् । राजपुरुष । विशास्ति । विशाय । विशात । निधातिन् । सुद्दित । दीन । विद्यम्य । उचित । समग्र । शाली । तत्पर । इदम्पर । यथातथा । पुरस् । पुनः।पुनर् । अभीक्ण् । तरतम् । मकाम् । यथाक्षम् । अयथापुर । स्यध्यमे । अनुकूल । परिमाण्डल । विश्वरूपः। अदिव्य । उदातिन । ईश्वर । प्रतिभू । सावि । मानुष । आस्तिक । नास्तिक । यगपत् । पूर्वापर । उत्तराधर । इति ब्राह्मणादयः ॥

१२४-वा०-चातुर्वणर्यादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्।।अवेप्राश्११

चत्वार एव वर्णाश्चातुर्वपर्यम् । चातुराश्रमम् ।

चतुर्वर्ष । चतुराश्रम । त्रिज्ञोक । त्रिस्वर । पड्गुण । सेना । सामिधि । समीप । उपमा । सुख । इति चातुर्वर्णादयः ।

१२५-पत्यन्तपुरोहितादिभ्योयक् ॥ अ०५।१। १२८॥

षष्ठीसमर्थेभ्यः पत्यन्तेभ्यः पुरोहितादिभ्यश्च मातिपदिकेभ्य भावकर्पणी-र्यक् प्रत्ययो भवति । सेनापतेर्भावः कर्म वा सैन्यापत्यम् । प्रजापत्यम् । पुरोहितस्य भावः कर्म वा पौरोहित्यम् ।

(१) सर्वे एव वेदाः सार्ववेद्यम् । सार्वलोक्यम् । सार्वराज्यम् । सार्वगुरयम् । आकृतिगणोऽयम् ।। पुरोहित । राजन् । संग्रामिक । एपिक । वर्मित । खिएडक । दिएडक । छितिक । पिएडक । वाल । मन्द । स्तानिक । चिहितक । कृपिक । पूतिक । पात्रिक । प्रतिक । प्रजानिक । सलिक । स्विक । राकर । स्वक । पिकि । सारिक । प्रतिक । प्रतिक । प्रतिक । प्रामिक । चिमिक । किमिक । प्रामिक । चिमिक । किमिक । प्राणिक । प्रतिक । तिलिका । तिथ्विक । प्रजातिका । प्राणिक । प्रतिक । प्रतिक । प्रविक । प्रविक । प्रविक । प्रविक । प्रविक । स्वरिक । स्वरिक । प्रविक । स्वरिक । स्वरिक । स्वरिक । स्वरिक । इति पुरोहितादयः ॥

१२६-प्राणभुज्जातित्रयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ॥ अ०५।१।१२६॥

प्राण्यभुज्ञातिभ्यो वयोवचनेभ्य उद्गात्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावक-र्मणोरञ् प्रत्ययो भवति । अश्वस्य भावः कर्म वा आश्वम् । श्रौष्ट्रम् । कौमारम् । कैशीरम् । श्रौद्गात्रम् ।

उद्गात । उन्नेतृ । प्रतिइर्चृ । रथगणक । पाचिगणक । पत्रिगणक । सुष्ठु । द्वुष्ठु । द्वार्चु । वधू ॥ सुभग मंत्रे (२)॥ प्रशातृ । होतृ । पोतृ । कर्नृ । इत्यु-

दुगात्राद्यः ॥

१२७—हायनान्तुयुवादिभ्योऽण् ।। अ०५ । १ । १३०।। हायनान्तेभ्यो युवादिभ्यश्च पष्टीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोर्थयोरण् प्रत्ययो भवति। द्विहायनस्य भावः कर्मवा द्वैहायनम् । यूनो भावः कर्मवा यौवनम् ।

युवन् । स्थविर । होतृ । यजमान । कमण्डलु ॥ पुरुषाऽसे (३) ॥ सुहृत् । यातृ । अवण । कुस्री । सुस्री । सुहृद्य । सुआतृ । वृपल । दुर्आतृ ॥ हृद्याऽसे (४) ॥ चेत्रज्ञ । कृतक । परिव्राजक । कुशल । चपल । निपुण । पिशन । सब्रह्मचारिन् । कुत्रहल । अनृशंस । आतृ । कचुक । कन्दुक । दुःस्री । दुई्दय । दुईत् । मिथुन । कुलली । महस् । कतक । कितव । पात । इति युवादयः ॥

१२८ — द्वन्द्रसनोज्ञादिभ्यश्च ॥ अ० ५ । १ । १३३ ॥ द्वन्द्वसंज्ञकेभ्यो मनोज्ञादिभ्यश्च षष्ठीसमर्थप्रातिपादिकेभ्यो भावकर्मणोरर्थयो-

- (१) राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम्। समासे तु ब्राह्मणादित्वात् ध्यव् । सौराज्यम्।।
- (२) सुभगस्य भावः सौभगो मंत्रः ॥
- (३) पुरुषस्य भावः कर्म वौरुषम् । सुपुरुपत्वभिति समासे ।।
- ( ४ ) हार्दयम् । समासे तु परमहृदयत्वामित्येव ।।

र्बुत्र् प्रत्ययो भवति । गोपालपश्चपालानां भावः कर्म वा गौपालपश्चपालिका । शैष्योपाध्यायिका । मनोइस्य भावः कर्म वा मानोइकम् ।

मनोइ । कल्यामा । प्रियरूप । छान्दस । छात्र । मेधाविन् । अभिरूप । आख्य । कुलपुत्र । श्रोत्रिय । चोर । धूर्च । वैश्वदेव । युवन् । ग्रामपुत्र । ग्राम-खण्ड । ग्रामकुमार । श्रमुज्यपुत्र । श्रमुज्यकुल । श्रतपुत्र । कुशल । बहुल । श्र-वश्य । श्रहोपुरुप । इति मनोइादयः ।

१२६ — तस्य पाकमूले पील्वादिकणीदिभ्यः कुगाब्जाहचौ॥ अ० ५ । २ । २४ ॥

पील्वादिम्यः कर्णादिम्यश्च षष्ठीसमर्थप्रातिपदिकेम्यो यथासंख्यं पाकम्-लयोर्थयोः कुण्डलाह्चौ प्रत्ययौ भवतः । पील्नुनां पाकः पीलुकुणः । कर्णस्य मृलं कर्णलाहम् ॥

पीलु । कर्कन्धु । शमी । करीर । कुवल । बदर । अश्वत्थ । खिद्र । इति

पील्वादयः ॥

कर्ण । त्रिचि । नख । मुख । मख । केश । पाद । गुल्फ । अूमङ्ग । दन्त । स्रोष्ठ । पृष्ठ । अङ्गुष्ठ । इति कर्णादयः ॥

१३०—तद्स्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ॥ अ०५।२। ३६ ॥
प्रथमासमर्थेभ्यस्तारकादिप्रातिपदिकेभ्योऽस्येति पष्ट्यर्थे इतच् प्रत्ययो भवति ।
तारकाः संजाता अस्य तारिकतं नभः। पुष्पितो वृत्तः संजातग्रहणप्रकृतिविशेषणम् ॥

तारका । पुष्प । मुकुल । कएटक । पिपासा । मुख । दुःख । ऋजीष । कड्मल । सूचक । रोग । विचार । तन्द्रा । बेग । पुत्ता । श्रद्धा । उत्कएट । भर । द्रोह ।। गर्भादप्राणिनी (१) ।। फल । उचार । स्तवक । पल्लव । खएड । घेनुष्या । श्रश्ने । श्रङ्कार । श्र्यक्त । पुलक । कुवलय । श्रेवल । गर्व । तरङ्ग । कल्लोल । पण्डा । चन्द । स्रवक । मुदा । राग । इस्त । कर । सीमन्त । कर्दम । कज्जल । कलङ्क । कुत्इल । कन्दल । श्रान्दोल । श्रन्थकार । कोरक । श्रङ्कर । रोमाञ्च । हर्ष । उत्कर्ष । जुधा । ज्वर । गोर । दोह । शास्त्र । मुकुर । तिलक । बुभुत्ता । निद्रा । तारकादिराकृतिगण्डः । इति तारकादयः ॥

१३१—विमुक्तादिभ्योऽण्।। अ० ५। २। ६२॥

(१) गर्मिताः शालयः। श्रप्रााणिनीतिवचनाद् गर्भिणी भार्यो। इत्यत्रेतच् न भवति।।

श्रध्यायानुवाकयोरिभिधेययोर्विम्रुक्वादिप्रातिपदिकेम्यो मत्वर्थेऽण् प्रत्ययो भवति । विम्रुक्वं वर्त्ततेऽस्मिन् स वैम्रुक्वोध्यायाऽनुवाको वा । दैवासुरः ॥

विमुक्त । देवासुर । वसुमत् । सत्वत् । उपसत् । दशाईपयस । इविधान । मित्री । सोमापूषन् । अग्नाविष्णु । वृत्रहति । इडा । रचोऽंसुर । सदसत् । परिषा-दक् । यसु । मरुत्वत् । पत्नीवत् । महीयल । सत्वत् (१) । दशाई । वयस् । पतित्रि । सोम । महित्री । हेतु । अस्यहत्य । दशार्ष । उर्वशी । सुपर्ण । इति विमुक्तादयः ।

१३२-गोबदादिभ्यो बुन् ॥ म्र० ५ । २ । ६२ ॥

अध्यायानुवाकयोरिभधेययोर्गोषदादिवः तिपदिकेम्यो मत्वर्थे वुन् प्रत्ययो म-वति । गोषदशब्दोऽस्मिन्नास्ति, गोषदकोऽध्यायोऽनुवाको वा । इषेत्वकः ।

गोपद् । इपेत्वा । मातरिश्वन् । देवस्यन्वा । देवीरापः । कृष्णोऽस्याखरेष्टः । दैवींघियम् । रचोद्या । अञ्जन । प्रभूत । प्रतुर्त । दशान । युञ्जान । सहस्र-शीर्षा । वातस्पते । कृशास्व । स्वाहाप्राण् । प्रसुस्त । इति गोपदादयः ॥

१३३ --- आकर्षादिभ्यः कन् ॥ अ० ५ । २ । ६४ ॥

आकर्षादिस्यः सप्तमीसमर्थप्रातिपदिकेस्यः कुशल इत्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति । आकर्षे कुशल आकर्षकः ।

त्राकर्ष । त्सरु । पिपासा । पिचएड । अशानि । अश्मन् । विचय । चय । जय । आचय । अय । नय । निपाद । गद्गद । दीप । इद । इत्द । इलाद । शकुनि । पिशाच । पिएड । इत्याकपीदयः ॥

### १३४-रसादिभ्यश्च ॥ अ० ५ । २ । ६५ ॥

प्रथमासमानाधिकरण्रसादिप्रातिपदिकेम्योऽस्यास्त्यस्मिकत्यर्थे मतुप् प्रत्ययो भवति । रसादिगुण्वाचकेम्योऽन्ये मत्वर्थीयाः प्रत्यया माभूविनिति सत्त्रारम्भः । रूपिणी कन्येत्यत्र तु शोभापरत्वं रूपस्य । रसोऽस्मिन्नस्तीति रसवान् । रूपवान् । रस। रूप। गन्ध । स्पर्श । शब्द । स्नेह ॥ गुणात् एकाचः (२)॥ इति रसाद्यः॥

<sup>(</sup>१) सत्वदिति शब्दोऽस्मिन् गणे द्विवारं पठ्यते । यद्येकस्तालव्यादिर्भवेत्तदा तु युक्तमन्यथा प्रामादिकः पाठः ॥

<sup>(</sup>२) अत्र गुण्शब्दो रसादीनां विशेषण्म् । एकाच् शब्दादिप मतुव् भवति नत्वत इनिठनौ । स्ववान् । खवान् ।।

### १३५—सिध्मादिभ्यश्च ॥ अ० ५ । २ । ६७ ॥

सिध्मादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे विकल्पेन लच् प्रत्ययो भवति । सिध्मोऽस्या-स्तीति सिध्मलः । सिध्मवान् । स्रत्र पंचे मतुविष्यते नत्वत इनिठनौ ।

सिध्म। गडु। मिणा। नामि। जीव। निष्पाव। पांसु। सक्कु। इतु। मांस। परशु।। पार्धिणधमन्योदीर्धश्रं।। पार्ध्यालः। धमनीलः। पर्ण। उदक। प्रज्ञा। मण्ड। पार्श्व। गण्ड। प्रन्थि।। वातदन्तवलललाटमलानामुङ् च।। वात्तः। दन्तृलः। वल्लः। ललाट्टलः। मलूलः।। जटाघटाकालाः चेपे।। जटालः। घटालः। कालालः। सक्थि। कर्णा। स्नेइ। शीत। श्याम। पिङ्ग। पित्त। शुष्क । पृथु। मुदु। मञ्जु। पत्र। चटु। कपि। कण्डु। संज्ञा। द्वुद्रजन्तूपतापाचेष्यते।। चुद्रजन्तुः। यूकालः। मचिकालः। उपतापिच्चिक्तालः। विपादिकालः। मुच्छिलः। इति सिध्मादयः।।

१३६-लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः॥अ०५।२।१००॥

0

लोमादिभ्यः पामादिभ्यः पिच्छादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो मत्त्रथे यथासंख्यं श, न, इलच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति । लोमान्यस्य सन्तीति लोमशः । लोमवान् । पाम विद्यतेऽस्य स पामनः । पामवान् । पिच्छमस्यास्तीति पि च्छलः । पिच्छलवान् ।

लोमन् । रोमन् । वल्गु। बभ्रु। इरि । कपि। श्रुनि । तरु । इति लोमादयः ॥ पामन् । वामन् । देमन् । श्लेष्मन् । कद्रु । विल । श्रेष्ठ । पलल । सामन् ॥ अङ्गात्कल्याणे ॥ शाकीपलालीदत्रा हस्वत्वं च ॥ विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतस-न्धे ॥ लच्म्या अच्च (१) ॥ इति पामादयः ॥ पिच्छ । उरम् । ध्रुवका । जुवका ॥ जराघटाकालात् चेपे (२) ॥ वर्णे । उदक । पङ्क । प्रज्ञा । इति पिच्छादयः ॥

१३७ -- ब्रीह्यादिभ्यश्च ॥ अ० ५ । २ । ११६ ॥

प्रथमासमानाधिकरण् त्रीह्यादिप्रातिपदिकेम्यो मत्वर्थे इनिठनौ प्रत्ययौ भवतः । त्रीहयोऽस्य सन्तीति ब्रीही । त्रीहिकः । ब्रीहिमान् ।

<sup>(</sup>१) श्रङ्ग शब्दात्कल्याणे नः प्रत्ययः । कल्याणकरमंगं शरीरमस्याः सा, श्र-ङ्गना । शाकिनः । पलालिनः । दृहुणः । विषु—श्रच् इत्यवस्थायां नः प्रत्ययस्तदैवोत्तरप-दृस्याज् भागस्य लोपः । विष्वगस्यास्तीति विषुणः । लद्दमी श्रस्यास्तीति लद्दमणः ।

<sup>(</sup>२) कुत्सिता जटा श्रस्य सन्तीति जाटिलः । एवं घटिलः । कालिलः ॥

त्रीहि । माया । शिखा । मेखला । संज्ञा । बलाका । मालग । बीगा । व-डवा । अष्टका । पताका । कर्मन् । चर्मन् । इंसा (१) । यवखद । कुमारी । नौ (२) ॥ शीर्पाञ्चलः ॥ आशीर्पी । अशीर्पिका । इति ब्रीह्यादयः ॥

१३८ - तुन्दारिभ्य इलच ॥ अ० ५ । २ । ११७ ॥ तुन्दादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इलचकारगदिनिठनौ मतुप् च प्रत्यया भवन्ति । तुन्दोऽस्यास्तीति तुन्दिलः । तुन्दी । तुन्दिकः । तुन्दवान् ।

तुन्द। उदर। पिचएड। घट। यव। ब्रीहि॥ खाङ्गाद्विवृद्धौ च (३)॥ इति०॥ १३६—अर्श अगदिभ्योऽच् ॥ अ० ५ । २ । १२७ ॥

अर्श आदि प्रातिपदिकेम्यो मत्वर्थेऽच् प्रत्ययो भवति । अर्शास्यस्य विद्यन्ते स, अर्शसः । अर्थः बल्लान्यः वर्षात्रेरपाला

अर्शस् । उरस् । तुन्द् । चतुर । पलितं । जटा । घटा । अअ । कर्दम । आम । लवण ॥ स्वाङ्गाद्धीनात् ॥ वर्णात् (४) ॥ आकृतिगणोयम् । इत्यर्श आदयः ॥

१४०--सुलादिभ्यश्च ॥ अ० ५ । २ । १३१ ॥ सुलादिशातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इनिः प्रत्ययो भवति । मतुवादीनामपवादः । सुलमस्यास्तीति सुली । दुःखी ।

सुरत । दुःख । दृप्त । कुच्छू । आम्र । अलीक । करुणा । कृपण । सोढ । प्रमीप । शील । इल ॥ माला चेपे ( ४ ) ॥ प्रणय । इति सुरतादयः ॥

१४१ — पुष्करादिभ्यो देशे ॥ ऋ० ५ । २ । १३५ ॥ पुष्करादिप्रातिपदिकेम्यो मत्वर्थे देशेऽभिधेये इनिः प्रत्ययो भवति । पुष्करोऽ-स्मिनिति पुष्करी देशः । पत्नी वा । देशे इति किम् । पुष्करवान् इस्ती ।

- (१) सिखादिभ्य इनिरेवेष्यते नतु ठक्।।
- (२) यवखादादिभ्यष्टगेवेष्यते शेषादुभयम् ।।
- (३) विदृद्ध्युपाधिभूतात् स्वाङ्गवाचिनः प्रातिपदिकादिलच् । दीर्घो नासिकाऽ-स्यास्तीति नासिकिलः । लम्बौ कर्णौ यस्य स कर्णिलः । श्रौष्टिलः ।।
- (४) द्दीनशब्दात्परस्मात् स्वाङ्गादजेव स्याञ्चतु मतुवादिः श्राद्यभ्यां द्दीनो द्दी-नाचः । द्दीनहस्तः । द्दीनबाहवः । वर्णादिति श्वेतादेर्महर्णं नत्वकारादेः । श्वेतो वर्णोऽ-स्यास्तीति श्वेतः । नीलः । कालः । पीतः । इरितः । इत्यादि ।।
  - ( ४ ) कुत्सिता मालाऽस्यास्तीति माली । मतुव् मा भूत् प्रण्यी ।।

पुष्कर । पद्म । उत्पत्त । तमाल । क्रुप्रद । नड । कपित्य । विस । सृणाल । कर्दम । शालूक । विगई । करीप । शिरीप । यवास । प्रवास । हिरएय । कौरव । कल्लोल । तरङ्ग । वयस । इति पुष्करादयः ॥

१४२-बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ॥ अ०५। २। १३६॥ बलादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे विकल्पेन मतुप् पत्त इनिः ठक् तु न भवति । बलमस्यास्तीति बलवान् । बली ।

वल । उत्साह । उद्घाव । उद्घास । उद्घाम । सिखावल । वूगमूल । दंश । कुल । श्रायाम । उपयाम । श्रारोह । श्रवरोह । परिणाह । युद्ध । इति वलादयः ॥

袋

१४३ — देवपथादिभ्यश्च ॥ अ० ५ । ३ । १०० ॥ देवपथादिप्रातिपदिकेभ्यो इवार्थे प्रतिकृतौ संज्ञायां च विद्दितस्य कन् प्रत्ययस्य जुब् भवति । देवपथस्येव प्रतिकृतिः, देवपथः । इंसपथः ।

देवपथ । इंसपथ । वारिपथ । जलपथ । राजपथ । शतपथ । शिंहगति । उष्ट्रप्रीवा । चामरज्ञु । रज्जु । इस्त । इन्द्र । दगड । पुष्प । मत्स्य । रथपथ । शब्दुपथ । सिंहपथ । आकृतिगणोऽयम् । इति देवपथादयः ॥

१४४—शाखादिभ्यो यत् ॥ अ० ५ । ३ । १०३ ॥ शाखादिप्रातिपदिकेभ्यो इवार्थे यत् प्रत्ययो भवति । शाखेव शाख्यः । मुख्यः । शाखा । मुख । जवन । शृङ्ग । मेघ । चरणं । स्कन्ध । शिरस् । उरस् । अप्र । शरणः । इति शाखादयः ॥

१४५ — शर्करादिभ्यो प्र् ॥ अ०५ ॥ ३ । १०७ ॥ शर्करादिप्रातिपदिकेभ्यो इवार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । शर्करेव शार्करम् । शर्करा । कपालिका । पिष्टिका । किनिष्टिक । कपिष्टिक । पुराडरीक । शतपत्र । गोलोमन् । गोपुच्छ । नरालि । नक्कल । सिकता । इति शर्करादयः ॥

१४६—अंगुल्यादिभ्यष्ठक् ॥ अ० ५ । ३ । १०८ ॥ ग्रङ्गल्यादिप्रातिपादिकेभ्यो इवार्थे ठक् प्रत्ययो भवति । श्राङ्गलिरिवाङ्गलिकः । श्रङ्गलि । भरुज । वस्रु । वस्गु । मएडर । मएडल । शब्कुल । कपि । उदश्चित् । गागी । उरस् । शिखा । क्वालिश । इत्यङ्गल्यादयः ॥ १४७-दामन्यादित्रिगर्त्तषष्ठाच्छः ॥ अ० ५ । ३ । ११६॥

दामन्यादिभ्यक्षिगर्त्तपष्ठेभ्यश्रायुधर्जाविमंघवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे छः प्रत्ययो भवति । त्रिगर्त्तः पष्ठो येषां ते त्रिगर्त्तपष्ठाः । दामन्येव दामनीयः । दामनीयौ । दामन्यः । तद्राजत्वाद् बहुवचने खुक् । त्रिगर्त्तपष्ठाः । कौएडोपरथ एव, कौएडोपरथीयः । अन्यत्पूर्ववत् । दाएडिक । कौष्टिक । जालमानि । ब्रह्मगुप्त । जानिक । इति त्रिगर्त्तपष्ठाः । अत्र जानिकरित्यस्यैव त्रिकर्त्त इति नामान्तरम् ।

दामनी । श्रीलिप । श्राकिदन्ती । काकरिन्त । काकदन्ति । शत्रुन्ति । सार्वसेनि । विन्दू । मौज्जायन । उलभ । सावित्रीपुत्र । श्रच्युतन्ति । कोकतन्ती । तुलभ । देववापि । श्रीतकी । श्रपच्युतकी । कर्की । पिएड । इति दामन्यादयः ॥

१४८—पर्श्वादियौधेयादिभ्यामणञ्जा ॥ अ० ५ । ३ । ११७ ॥ पर्श्वादिभ्यो यौधेयादिभ्यश्रायुधजीविसंघवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽण्यात्री प्रत्ययौ यथासंख्यं भवतः । पर्श्वरेव पार्शवः । यौधेयः ।

पर्शु । असुर । रचस् । वाल्हीक । वयस् । मरुत् । दशाई । पिशाच । वि-शाल । अशानि । कार्षापण । सत्वत् । वसु । इति पश्वीदयः ॥

यौधेय । कौशेय । कौशेय । शौकेय । शौभेय । धार्त्तेय । वार्त्तेय । जावा-लेय । त्रिगर्त्त । भरत । उशीनर । इति यौधेयादयः ॥

१४६-स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ॥ अ०५ । ४ । ३ ॥ स्थूलादिप्रातिपादिकेम्यः प्रकारवचने द्योत्ये कन् प्रत्ययो भवति । स्थूलप्रकारः स्थूलकः ॥

स्थूल । ऋगु । माप । इषु ।। कृष्णतिलेषु ।। यवत्रीहिषु ।। इच्चितिलपायका-लावदाताः सुरायाम् ।। गोमूत्र ऋाच्छादने ।। सुराया ऋहै। ।। जीर्णशालिषु ।। पत्र-मूले समस्तव्यस्ते (१)।। कुमारीपुत्र । कुमार । श्वशुर । माणि । इति स्थूलादयः ।।

१५० - यावादिभ्यः कन् ॥ अ०५ ॥ ४। २६॥ यावादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति । याव एव यावकः ॥ याव।मणि । अस्थि । चएड । पीतस्तम्ब । ऋताबुष्णशीते।पशौ लूनवियाते।

(१) कृष्णप्रकाराः कृष्णकास्तिलाः । यवका ब्रीहयः । इन्नका । तिलका।पाद्य-का । कालका । व्यवदातका । वासुरा । मूत्रक्रमाच्छादनम् । सुराकः सर्पः । जीर्णकाः शालयः । पत्रकं समस्तम् । मूलकं व्यस्तम् ।। अणुनिपुणे । पुत्रकृतिमे ॥ स्नात वेदसमाप्तौ ॥ शून्यिरक्ते । दानकृतिसंते ॥ ततु-स्रुत्रे (१)॥ ईयसश्र ॥ श्रेयस्कः। ज्ञात ॥ कुमारीक्रीडनकानि च ॥ इति यावाद्यः॥

१५१—विनयादिभ्यष्ठक् ॥ अ० ५ । ४ । ३४ ॥

विनयादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति । विनय एव वैनयिकः । विनय । समय ॥ उपायाद्ध्रस्वत्वं च ॥ श्रौपियकः । सङ्गति । कथंचित् । श्रकस्मात् । समयाचार । उपचार । समाचार । व्यवहार । सम्प्रदान । समुत्कर्ष । समूह । विशेष । श्रात्यय । श्रास्थि । कराहु । इति विनयादयः ॥

S.

१५२-प्रज्ञादिभ्यश्च ॥ अ०५ । ४ । ३८ ॥

प्रजानातीति प्रज्ञः । प्रज्ञादिप्रातिपदिकेम्यः स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । प्रज्ञ एव प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री । यस्यास्तु प्रज्ञा विद्यते सा प्राज्ञा भवति ।

प्रज्ञ । विशिक् । उश्मिक् । उश्मिक् । प्रत्यच्व । विद्वम् । विद्वन् । पोडन् । पोडरा । विद्या । मनस् । श्रोत्रशारीरे । श्रोत्रम् । जुह्वीत् । कृष्णमुगे । कार्ष्णः । विकार्षत् । चोर । शक । योध । वचस् । चजुस् । धूर्च । वसु । एत् । मरुत् । कुङ् । राजा । सत्वन्तु । दशाई । वयस् । श्रातुर । श्रसुर । रच्चस् । पिशाच । श्रश्चि । कार्षापण । देवता । वन्धु । इति प्रज्ञादयः ॥

१५३—द्विद्वडचादिभ्यश्च ॥ अ० ५ । ४ । १२८ ॥

द्विदएड्यादिशःदेषु बहुब्रीहिसमाप्ते समासान्त इच् प्रत्ययो निपात्यते । द्वा-म्यां दएडाम्यां इन्यतेऽसौ द्विदिएड । अन्ययीभावसमासे परिगणनमतोन्ययत्वम् । एवं द्विस्रमत्ति ॥

द्विदिएड । द्विपुसिल । उभाग्जाले । उभयाञ्जाले । उभाकार्थे । उभया-कर्षि । उभादित । उभयादित । उभाइस्ति । उभयाइस्ति । उभापाणि । उभ-यापाणि । उभावाहु । उभयावाहु (२)। एकपिद । प्रोह्मपिद । आढ्यपिद । सपिद । निकुच्यकर्षि । सहतपुच्छि । इति द्विदएड्याद्यः ॥

- (१) उष्णकः, शीतको वा ऋतुः। नूनकः, वियातको वा पशुः। श्रामुको निपुणः। पुत्रकः । कृत्रिमः। स्नातको वेदपारगः। शून्यकं रिक्तम्। कृत्सितं दानं दानकम्। तनुकं सूत्रम्।।
- (२) अत्रोभयत्र निपातनादिच्यत्ययस्य लोपः। प्रत्ययलत्त्र्णेन चान्ययीभावसंज्ञा भवत्येव । अत्रापि केचिच्छन्दास्तत्पुरुषसमासान्ता निपात्यन्ते । तेऽर्थसङ्गत्या ज्ञेयाः ।।

१५४-पाद्स्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः॥ अ० ५ । ४ । १३८॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपो बहुत्रीहो । व्याघपादाविव पादावस्य, स व्याघपात् । अहस्त्यादिम्य इति किम् । हस्तिपादः ॥

इस्तिन् । कटोल । गण्डोल । गण्डोलक । महिला । दासी । गणिका । कुछल । इति ।।

१५५ — कुम्भपदीषु च ॥ अ० ५ । १ । १३६ ॥

कुम्भपदीप्रभृतयः कृतपादसमासान्तलोपः सद्धदायाबहुत्रीहौ समासे निपात्यन्ते । कुम्भपदी । शतपदी । अष्टापदी । जालपदी । एकपदी । मालापदी । ग्रुनि-पदी । गोपदी । कलशीपदी । गृतपदी । दासीपदी । निष्पदी । आ-द्रपदी । कुणपदी । कुणपदी । द्रोणपदी । द्रुपदी । शकुत्पदी । स्पपदी । प-व्यपदी । स्तनपदी । स्तनपदी । स्त्रपदी । क्लहंसपदी । द्रिपदी । विषुपदी । स्तरपदी । स्वपदी । स्त्रपदी । स्वपदी । स्वपदी

१५६—उरः प्रभृतिभ्यः कप् ॥ अ० ५ । ४ । १५१ ॥ उरः प्रभृत्यन्ताद्वहुत्रीहेः समासान्तः कप् प्रत्ययो भवति । व्यूद्धपुरोऽस्य स व्युदोरस्कः । भियसर्पिकः ॥

उरस् । सर्पिस् । उपानद् । पुमान् । अनद्वान् । नौः । पयः । लक्ष्मीः । दिध । मधु । शालिः ॥ अर्थान्नवः ॥ अनर्थकः । इत्युराप्रभृतयः ॥ १५७—उञ्छादीनाञ्च ॥ अ० ६ । १ । १६० ॥

उञ्बादीनां शब्दानामन्त उदात्तः स्वरो भवति ।

जन्छ । म्लेच्छ । जन्ज । जल्प । जप । न्यघ । वघ ॥ युगकालविशेषे र-थाद्यपकरणे च ॥ गरो दृष्येऽवन्तः ॥ वेगवेदचेष्टवन्धाः करणे ॥ स्तुयुद्धवरछन्दिस ॥ परिष्ठुत् । संयुत् । परिद्धुत् ॥ वर्त्तानिः स्तोत्रे ॥ श्वभ्रेदरः ॥ साम्बतापौ भावगद्दी-याम् ॥ उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र ॥ भन्नमन्यभोगदेहाः ॥ इत्युञ्छादयः ॥

१५८ — वृषादीनाञ्च ॥ अ०६ । १ । २०३ ॥ इषादीनामादिख्दाचो भवति ।

हुपः । अनः । ज्वरः । ग्रहः । हयः । गयः । नयः । तयः । पयः । वेदः । श्रंशः । दवः । स्रदः । गुहा ।। श्रमरणी संज्ञायां संमती भावकर्मणोः ॥ मंत्रः । श्रान्तिः । कामः । यामः । श्रारा । धारा । कारा । वहः । कल्पः । पादः । श्रा-कृतिगणोऽयम् । श्रविहितलचणमाद्यदात्तरवं वृषादिषु द्रष्टव्यम् ॥ इति वृषादयः ॥

# १५६ — कार्तकौ जपादयश्च ॥ अ०६।२।३७॥

कृतद्वन्द्वसमासाः कार्त्तकौजपादयः शब्दाः पूर्वपदप्रकृतिस्वरा भवन्ति । कृत-स्यापत्यं कार्त्तः । कुजपस्यापत्यम् कौजपः । कार्त्तश्च कौजपश्च कार्त्तकौजपौ ।

सावर्णिमार् इसेयो । आवन्त्यश्मकाः । पैलश्यापर्णियाः । पैलश्यापर्णियो । कपि-श्यापर्णियाः । शैतिकाचपांचालेयाः । कडुकवार्चालेयौ । शाकलश्चनकाः । शाक-लसणकाः । श्चनकधात्रेयाः । सणकवाश्रवाः । आर्चामिमौद्गलाः । कुन्तिसुराष्ट्राः । चितिसुराष्ट्राः । तरडवतराखाः । गर्गवत्साः । अविमत्तकामविद्धाः । वाश्रवशाल-क्कायनाः । वाश्रवदानच्युताः । कठकालापाः । कठकौथुमाः । कौथुमलौकाचाः । स्त्रीकुमारम् । मौद्रपैष्यलादाः । द्विषाठः समासान्तोदात्तार्थः । वत्सजरत् । सौश्च-तपार्थवाः । जरामृत्यू । याज्यानुवाक्ये । इति कार्तकौजपादयः ॥

१६०-कुरुगाईपातिरिक्तगुर्वसूतजरत्यरलीलदृढरूपापारेवडवा-तैतिलकद्रुः पग्यकम्बलोदासीभाराणाञ्च ॥ अ०६।२।४२॥

कुरुगाईपत, रिक्नगुरु, श्रद्धतजरती, श्रश्लील दृढ्खपा, पारेव द्ववा, तैतिल कदू, प्रयुवक स्वल इत्येपां समासानां दासी भारादीनां च पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । कुरूगां गाईपतं कुरुगाईपतम् । रिक्नो गुरुः रिक्नगुरुः । श्रद्धता जरती, श्रद्धत-जरती । श्रश्लीला दृढ्खपा, श्रश्लील दृढ्खपा । दास्या भारो, दासी भारः ।

दासीभारः । देवहूतिः । देवज्र्तिः । देवस्तिः । देवनीतिः । वसुनीतिः । श्रोषधिः । चन्द्रमाः । अविहितल्चणः पूर्वपदप्रकृतिस्वरो दासीभारादिषु द्रष्टव्यः ॥

१६१--युक्तारोह्याद्यश्च ॥ अ०६ । २ । ८१ ॥ युक्तारोह्यादिषु पूर्वपदमाद्यदात्तं निपात्यते ।

युक्तारोही । आगतरोही । आगतयोधी । आगतवञ्ची । आगतनर्दी । आगतप्रहारी । आगतमत्स्या । चीरहोता । भगिनीभत्ती । ग्रामगोधुक् । अश्वितिरात्रः । गगीत्रेरात्रः । व्युष्टित्ररात्रः । शाणपादः । समपादः । एकाशितिपात् ॥
पात्रे सम्मितादयश्च । इति ।।

१६२—घोषादिषु च ॥ अ० ६ । २ । ८५ ॥ घोषादिषु चोत्तरपदेषु परेषु पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति । दाचिघोषः । दाचिकटः । दाचिपल्वलः । दाचित्रल्लभः । दाचिद्रदः । दाचिवदः । दाचि

१६३ — प्रस्थे ऽतृद्धमकत्रयादीनाम् ।। अ०६ । २ । ८७ ॥ प्रस्थ उत्तरपदे कर्क्यादेरहितमबृद्धं पूर्वपदमाद्यदात्तं भवाते । इन्द्रप्रस्थः । कुः एडप्रस्थः । अवृद्धिमिति किम् । दाविप्रस्थः । अक्रक्यीदीनाभिति किम् । कर्क्षीप्रस्थः । कर्की । मघी । मकरी । कर्कन्थ् । श्रामी । करीर । कटुक । कुरल । कवल । वरद । इति ।।

१६४ — मारादीनां च ॥ अ० ६ । २ । ८८ ॥

प्रस्थ उत्तरपदे मानादय ब्राह्यदाना भवन्ति । मानाप्रस्थः । शालाप्रस्थः । माला।शाला।शोणा। द्राह्मा। होना। हामा। काञ्ची । एक । काम।इति०॥

१६५ — क्रत्वादयर्च ॥ अ०६।२।११८॥

सोहत्तरपदस्थाः ऋत्वादयो बहुबाँही समासे त्र्याद्यदात्ता भवन्ति । सुऋतुः । ऋतु । दृशीक । प्रतीक । प्रतूर्ति । हृन्य । भाग । इति ऋत्वाद्यः ॥

१६६--आदिश्चिहणादीनाम् ॥ अ०६ । २ । १२५ ॥ कन्थान्ते नपुंसकं तत्पुरुषे चिइणादिपूर्वपदानातादिस्दाचो भवति । चिह गाकन्थम् ।

चिर्ण । महर । महर । वैतुल । पटत्क । वैदालिकणः । वैतालिकणिः । कुक्कुट । चिन्कण । चिक्कण । इति चिहणादयः ॥

१६७ — चूर्णादीन्यप्राशिषध्यः ॥ अ०६ । २ । १३४ ॥ तत्पुरुपसमासेऽप्राणिवाचिनः पष्टचन्तात्पराणि चूर्णादीन्युत्तरपदानि आद्यदा-त्तानि भवन्ति । मुद्गस्य चूर्णं मुद्गचूर्णम् ।

चूर्ण । करिप। करिव । शाकिन । शाकट । द्रादा । तूर्त । कुन्दम् । दलप। चमसी । चकन । चक्रन । चौल । इति चूर्णादीनि ॥

१६८—उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ अ०६ । २ । १४० ॥ वनस्पत्यादिषु समाप्तेषुमे पूर्वोत्तरपदे युगपत्त्रकृतिस्वरे भवतः । वनस्पतिः । बृहस्पतिः । शाचीपतिः । दन्तृनपात । नराशंसः । शुनःशेपः । शएडामको । तृष्णावरूत्री । बम्बाविश्ववयसौ । मर्भृत्युः । इति वनस्पत्यादयः ॥ १६६-संज्ञायामनाचितादीनाम् ॥ अ०६ । १ । १४६ ॥

संज्ञायां विषये गतिकारकोपपदात्परं क्वान्तग्रुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति आचिता-

दीन् वर्जायत्वा । संभूतः । धनुष्लाता । अनाचितादीनामिति किम् । आचितम् । पर्याचितम् । आस्थापितम् । परिगृहीतम् । निरुक्तम् । प्रतिप-न्नम् । प्रश्लिष्टम् । उतहतम् । उपस्थितम् । संहिताऽगवि । इत्याचितादयः ॥

१७०-प्रवृद्धादीनों च ॥ अ०६।२।१४७॥

प्रवृद्धादिशब्दानां क्रान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । प्रवृद्धं यानम् । प्रवृद्धो वृपलः । प्रयुक्ताः सक्तवः । आकर्षेऽविद्दितः । अविद्दितो भोगेषु । खट्वा-रूढः । कविशस्तः । आकृतिगण्तवात् पुनरुत्स्यूतं वासोदेयम् । पुनर्निष्कृतो रथः । इति ।।

१७१-निरुद्कादीनि च ॥ अ०६।२।१८४॥

निरुदकादीनि च शब्दरूपाएयन्तोदात्तानि निपात्यन्ते ।

निरुद्दकम् । निरुत्तपम् । निरुप्तम् । निर्मित्तकम् । निर्मित्तकम् । निष्कालकः । निष्कालिकः । निष्पेषः । दुस्तरीपः । निस्तरीपः । निस्तरीकः । निर्पिनम् । उदिनिरम् । उपाजिनम् ।। परेईस्तपादकेशकर्षाः । परिदस्तः । परिपादः । परिनकेशः । परिकर्वः । प्राक्वितगणोऽयम् । इति निरुद्दकादयः ।

१७२-प्रतेरंश्वाद्यस्तत्पुरुषे ॥ अ०६।२।१६३॥

तत्पुरुपसमासे प्रतेरुत्तरा श्रंश्वादयोऽन्तोदात्ता भवन्ति । प्रतिगतोशुः प्रत्यंशुः । श्रंशु । जन । राजन् । उष्ट् । रोटक । श्रजिर । श्राद्री । श्रवण । कृतिका । श्रद्धं । पुर । इत्यंश्वादयः ॥

१७३ — उपाद्द्य जिनमगौराद्यः ॥ अ०६ । २ । १६४ ॥ उपादुत्तरं यन्छन्दरूपमिनं च तत्पुरुपसमासे गोरादिवर्जितमन्तोदात्तं भवति। उपगतोदेवसुपदेवः। उपसोमः । उपाजिनम् । अगौरादय इति किम् । उपगौरः।
गौर । नैप । तैल । लेट । लोट । जिह्वा । कृष्णा । कन्या । गुड़ ,। कल्प ।
पाद । इति गौरादयः ॥

१७४-श्चियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रि-यामपूरणीप्रियादिु॥ अ०६।३।३४॥ भाषितपुंस्कशब्दात्परस्य समानाधिकरणस्त्रीलिङ्गे पूरणीप्रियादिवर्जिते उत्तरपदे परतः पुंशब्दस्येव रूपं भवति । दर्शनीया भार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः । दीर्घ- जङ्घः । अप्रियादिष्विति किम् । कल्याणीप्रियः ।

प्रिया । मनोज्ञा । कल्याणी । सुभगा । दुर्भगा । भिक्तः । सिववा । स्रम्बा । कान्ता । चान्ता । समा । चपला । दुहिता । वामा । इति । प्रियादयः ॥ १७५—वनगिर्योः संज्ञायां कोटरार्केशुलकादीनाम् ॥अ०६।३।११७॥

वन, गिरि, इत्येतयोहत्तरपदयोः परयोर्यथासंख्यं कोटरादीनां किंशुलका-दीनां च संज्ञायां विषये दीर्घी भवति । कोटरात्रणम् । किंशुलकागिरिः ।

कोटर । मिश्रक । पुरक । सिध्रक । सारिक । इति कोटराद्यः । किंशुलक । साल्वक । अञ्जन । लोहित । कुक्कुट । इति किंशुलकादयः ।

१७६-मतौ वह्नचो उनिजरादीनाम् ॥ अ०६ । ३ । ११६॥ मतौ प्रत्येष परतोऽजिरादिवर्जितस्य वह्वचो दीर्घो भवति संक्षायां विषये । उदुम्बरावती । मशकावती । अमरावती । अनजिरादीनामिति किम् ।

श्रजिखती । खाँदरवती । पुलिनवती । इंसकारएडवती । चक्रवाकवती । इत्यजिशदयः ॥

१७७ — इारादीनां च ॥ अ०६ । ३ । १२० ॥ संज्ञायां विषये मतौ परतः शरादीनां च दीर्घो भवति । शरावती । वंशावती। शर । वंश । धूम । ऋहि । कपि । मिथा। म्रानि । श्रुचि । इतु । इति श्रादयः ॥

१७८ - द्वारादीनां च ॥ अ० ७ । ३ । ७ ॥

द्वारादीनां युवाभ्याप्रत्तरस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्न भवति । किन्तु युवाभ्यां पूर्वावैजागमौ भवतः । द्वारे नियुक्तः, दौवारिकः। स्वरमाधिकृत्य कृतो ग्रन्थः, सौवरः ।

द्वार । स्वर । व्यल्कश । स्वस्ति । स्फचकृत । स्वादुमृदु । श्वन्स्व । इति

१७६ — स्वागतादीनां च ॥ अ० ७ । ३ । ७ ॥

खागतादीनां शब्दानां य्वाभ्यां पूर्वी शित् णित् कित् तद्धिते परत ऐजागमौ न भवतः । वृद्धिस्तु भवत्येव । खागतिभत्याह खागतिक । खाध्वरेण चरति, स्वाध्वरिकः ॥

खागत । खध्वर । स्वङ्ग । व्यङ्ग । व्यख । व्यवहार । खपति । इति खागतादयः ॥

१८०—अनुश्तिकादीनां च ॥ अ० ७ । ३ । २० ॥

वितिणितिकिति च तद्धिते परतोऽनुशतिकादिशब्दानां पूर्वपदस्योत्तरपदस्या-चामादेरचःस्थाने वृद्धिर्भवति । श्रनुशतिकस्येदमानुशातिकम् ।

श्रनुशतिक । अनुहोड । अनुसंवत्सर । अङ्गारवेणु । असिहत्य । बध्योग । पुष्करसत् । अनुहत् । कुरुकत । कुरुपञ्चाल । उदकशुद्ध । इहलोक । परलोक । सर्वलोक । सर्वपुरुप । सर्वभूमि । प्रयोग । परश्ली ।। राजपुरुपात् ब्यानि ।। सन्न-नड ।। आकृतिगणोऽयम् (१) । इत्यनुशतिकादयः ।।

१८१—न्यङ्कादीनां च ॥ अ० ७ । ३ । ५३ ॥

न्यङ्कादिपु कुत्वं निपात्यते । नितरामञ्चतीति । न्यङ्कुः । मद्गुः । भृगुः । दूरेपाकः । फलेपाकः । चणेपाकः । फलेपाका । दूरेपाकुः । फलेपाकुः । तक्रम् । वक्रम् । व्यतिपङ्गः । अनुपङ्गः । अवसर्गः । उपसर्गः । मेघः । अपाकः । मांसपाकः । कपोतपाकः । उल्कपाकः । संज्ञाया-मर्घः । अवदाघः । निदाधः ( २ ) । न्यग्रोधः । इति न्यक्कादयः ॥

१८२—पूजनात्पूजितमनुद्रातं काष्टादिभ्यः॥ अ०८।१।६७॥ पूजनवाचिभ्यः काष्टादिभ्यः परं पूंजेनम्रुत्तरपदमञ्जदात्तं भवति । काष्ट्रथासाव-ध्यापकः काष्टाध्यापकः।

काष्ठ । दारुण । अमातापुत्र । अयुत्त । अञ्चल । अञ्चल । भूग । घार । परम । सु । अति । अनुज्ञात । कल्याण । येश । इति काष्ट दयः ॥

१८३-मादुपधायाश्च मतोवीं अयवा दिभ्यः ॥ अ० ६। २। त।

मकारान्तान्मकारोपधादवर्णान्तादवर्णोपधाच परस्य मतुपो मकारस्य वकारा-देशो भवति नतु यवादिभ्यः परस्य मस्य वो भवति । मान्तात्—किंवान् । श्र्वान् । मकारोपयात्—ग्रामीवान् । दाडिभीवान् । अवर्णान्तार्—वृत्तवान् । खट्वावःन् । अवर्णोपधात्—यशस्वान् । मादुपधाश्रेति किम् । अग्निमान् । अयवादिभ्य इति किम् । यवमान् ।

यव । दिलेम । ऊर्मि । भूमिं । कुमि । कुञ्चा । वशा । द्वाचा । वृचा । वेशा ।

(१) अत्राकृतिगऐनिदमि सिद्धं भवति । आभगममर्हति, अभिगाभिकः । आ-धिदेवे भवमाधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । आध्यात्मिकम् । चतस्र एव विद्याः, चातु-वैद्यम् । स्वार्थे ज्यव् ।

(२) श्रर्घ, श्रवदाघ, निदाघ, इति त्रिषु राज्देषु संज्ञायामेव कुरवम् । श्रन्यत्र-श्रर्दः । श्रवदाहः । निराहः ।। भ्राजि । ध्वाजि । सञ्जि । वजि । ब्रजि । शञ्जि । सिञ्जि । इरित् । ककृत् । गरुत् । इच्च । मधु । दुम । मएड । धूम । त्राकृतिगणोऽयम् ॥ 150

१८४ — कस्कादिषु च ॥ अ० ८ । ३ । ४८ ॥

कस्कादिशब्देषु विसर्जनीयस्य सः पो वा कवर्गपवर्गयोः परतः।

कस्कः । कीतस्कुतः । आतुष्पुत्रः । शुनस्कर्णः । सद्यस्कालः । सद्यस्क्रीः । सद्यस्त्रः । कांस्कान् । सर्पिष्कृषिडका । धनुष्कपालम् । वर्हिष्पूलम् । यजुष्पात्रम् । श्रयस्काएडः । मेदस्पिएडः । श्राकृतिगणोऽयम् । इति कस्कादयः ॥

१८५ — सुषामादिषु च ॥ अ० ८ । ३ । ६८ ॥

सुपामादिषु सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो निपात्यते । शोभनं साम यस्यासौ सुपामा ब्राह्मणः ॥

सुषामा । निष्षामा । दुष्पेधः । सुपन्धिः । दुःपन्धिः निषन्धिः । सुष्ठु । दुष्ठु ।। गौरिषक्थः संज्ञायाम् । प्रातिष्णिका । जलापाहम् । नौपेवनम् । दुन्दुभिःषे-वनम् । अविहितलचणो मूर्दन्यः सुपामादिषु द्रष्टन्यः । इति सुपामादयः ।।

१८६-नरपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् ॥अ०८।३।११०॥

रेफपरस्य सकारस्य सृपिमृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनां सस्य मूर्द्धन्यादेशो न भ-वति । रपर, विस्नंतिका । विस्नब्धः । विसृपः । विसर्जनम् । सुस्पृशम् । निस्पृहम् ।

सवने सवने । स्ते स्ते । सामे सामे । सवनमुखे सवनमुखे । अनुसवनमनु-सवनम् । बृहस्पतिसवः । शकुनिसवनम् । संवत्सरे संवत्सरे । ग्रुसलं ग्रुसलम् । मोसनिम् । अश्वसनिम् । इति सवनादयः ॥

१८७-- जुभ्नादिषु च ॥ अ० ८ । ४ । ३६ ॥

च्चुभ्ना इत्यादि शब्देषु नस्य गुकारादेशो न भवति । यथाप्राप्तिनिषेधः । चुभ्नाति । चुभ्नीतः । चुभ्नन्ति । चनमन । नन्दिन् नन्दिन् । नगर । नरी-नृत्यते । तृष्तु । नर्त्तन । गइन । नन्दन । निवेष । निवाश । अग्नि । अनुप ॥ आचार्यादगत्वं च । आचार्यभोगीनः । आचार्यानी । हायन । हरिकादिस्यः वनोत्तरपदेभ्यः संज्ञायाम् ॥

इरिका । तिमिर । समीर । कुनेर । इरि । कमीर । चुआदिराकृतिगणः ॥ इति जुञ्जादयः ॥

॥ समाप्तश्रायं ग्रन्थः ॥



